यां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि !

न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥

नोपस्करेषूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु । जले च नावगाहेत शून्यागारञ्च वर्जयेत्

वल्मीकाये न तिष्ठेत न चोद्विग्नमना भवेत् । विलिखेन्न नखैर्भूमिन्नाङ्गारेण न भस्मना

न शयालुः सदा तिष्ठेद् व्यायामञ्च विवर्जयेत् ।

न तुषाङ्गारभस्मास्थिकपालिषु समाविशेत् ॥

वर्जयेत्कलहं लोकैर्गात्रभङ्गन्तथैवच । न मुक्तकेशा तिष्ठेत नाशुचिः स्यात्कदाचन

न शयीतोत्तरशिरा न चापरशिराःक्वचित् । न वस्त्रहीना नोद्विग्ना नचार्द्रा चरणासती

नामङ्गल्यां वदेद्वाचं न च हास्याधिका भवेत् ।

कुर्यात्तु गुरुशुश्रूषां नित्यं माङ्गल्यतत्परा ॥

८ आधिपत्याभिषेचनम् । १८

पृथुराजाके पृथ्वी के अधिपति होने पर उसने औषधि, यज्ञ, व्रत और तपका इनका। अधिपति चन्द्रमाको बनाया, नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म और लता इनका अधिपति सूर्य और जलका स्वामी वरुण, धन और राजाओंके मालिक वैश्रवणको बनाया ; इसी प्रकार विष्णु, अग्नि, दक्ष, इन्द्रज प्रह्लाद, यम, शिव, समुद्र, चित्ररथ, वासुकि, दिगीश, नागराज, पशु, पक्षी, और सम्पूर्ण दिशाओं के नाना स्वामी बनाये।

९ मन्वन्तरानुवर्णनम् । २०

मनुओं का चरित्र वर्णन ।

१० पृथ्वीदोहनम् २२

पृथ्वी दोहने के फलस्वरूप नाना ऋषि गन्धर्व, मुनि, यक्ष, राक्षस, पिशाच और मनुष्य आदि को विभिन्न वस्तुओं में दुग्ध की प्राप्ति ।

आत्मा अविनाशी है आत्मा के साथ भावना बराबर रहती है। तत्त्वों से निर्मित यह मानव शरीर अन्त में तत्त्वों में ही समा जाता है। अतः वे तत्त्वरूप से हमारे कल्याण की कामना करते हैं। उनका हमारा अनादि सम्बन्ध इतना घनिष्ट बना रहता है कि तत्त्व रूपमें भी उनकी भावना निरन्तर हमें फूला फला देखने की रहती है। हम जो समय २ पर पित्रेश्वरों की पूजा श्राद्धादिके रूपमें करते है वह तत्त्वोंकी पूजा है शास्त्रकार पिता को वसु (वायु) रूप; पितामह रुद्र (जल) रूप और प्रपितामह आदित्य (सूर्य) रूप कहते है अर्थात् (वायु) जल, और सूर्य, रूप होकर तत्त्व रूप पित्रेश्वर हमारी सर्वदा रक्षा करते रहते हैं। वसून्वदन्ति पितॄन्रुद्रांश्चैव, पितामहान् प्रपितामहांस्तथाऽऽदित्यानित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥ ३ ॥ मत्स्य पु० १६ अ०

"ग्रः अक्षिपन्ति पृथिवी मुतद्यः" "स्वधापितृभ्यो दिवसद्भ्यः स्वधापितृभ्यो अन्तरिक्षषद्भ्यः ।" (अथर्ववेद)

साधारण श्राद्ध का लक्षण और उसकी नियत तिथियां अयन, विषुव, सङ्क्रान्तिकाल, अमावास्या, अष्टका, कृष्णपक्ष गजच्छाया, व्यतीपात आदि इन दिनों विशेष विधान पूर्वक पितृतर्पण स्वाध्याय, शान्तिकाध्याय मण्डल ब्राह्मण आदि का पारायण किया जाय ।

श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिवक्ष्यति ।
असम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ॥
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकाल उपस्थिते ।
अन्योन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः ॥
ब्राह्मणास्ते समायान्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः ।
वायुभूताश्च तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम् । (औशनस स्मृ० अ० ५)

निमन्त्रित ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद पितृविसर्जन के अनन्तर अपने बन्धुवर्ग, पुत्र स्त्री, भृत्य आदिको लेकर बलिवैश्वदेवपूर्वक भोजन करें । अनुपनीत भी इसे कर सकता है । शूद्र भी अमन्त्रक कर सकता है ।

भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् ।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥ ६४ ॥

द्वादशाह के दिन सपिण्डीकरण और पित्रेश्वर को तिथि (वार्षिक) के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्धको ही विशेष महत्त्व दिया गया है अन्य पार्वणादिक को नहीं ।

"एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत् ।

सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः ।
मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधो याति मानवः ।
सम्पृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषु तु यतो भवेत् ।
प्रतिसम्वत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ।

पितर वसु हैं, पितामह रुद्र हैं और प्रपितामह आदित्य हैं । हव्य कव्य जो इन्हें अर्पित किये जांय वे नाम गोत्र के साथ श्राद्ध मन्त्रों का विधि सहित उच्चारण करते हुए हों । वह श्रद्धा से अर्पित अन्न उन उन पितरों को नाना योनियों में तृप्तिकारक होता है :—

देवो यदि पिताजातः शुभकर्म्मानुयोगतः ।
तस्यान्नममृतं भूत्वा दिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति ।
दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् ।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण सर्पत्वेऽप्युपतिष्ठति ।
पानं भवति यक्षत्वे गृध्रत्वेऽपि तथाऽऽमिषम् ।
मनुष्यत्वेऽन्नपानानि नानाभोगरसम्भवेत् ॥

पितर तृप्त होकर सम्पूर्ण पृथ्वी के भोग, दानशक्ति, वैभव, रूप, आरोग्य, विद्या स्वर्ग और मोक्ष, आदि की कृपा करते हैं। पितरों की कृपा से कौशिक के पुत्रों को पांच जन्म में परम पद लाभ हुआ था ।

सात कौशिक पुत्रों के कर्म्म के क्षय होने का सुन्दर वर्णन । उन कौशिक पुत्रों की पित्रेश्वरों के प्रताप से नीचयोनि प्राप्त होने पर भी जातिस्मरादि (पूर्व जन्मों की स्मृति) विशेषताओं के साथ पांच जन्म में भगवत् प्राप्ति ।

२५ ययातिचरितवर्णनम् । ६१

प्राचीनकाल में जब कभी सुरों और असुरों का युद्ध होता था तब जो राक्षस देवताओंसे मारे जाते थे उन्हें शुक्राचार्यजी अपनी सञ्जीवनी विद्या के बल से जिला देते थे। वृहस्पतिजी को यह विद्या न आने से देवता लोग घाटे में रहते थे। इससे दुःखी होकर वृहस्पति के जेष्ठपुत्र कचको शुक्राचार्य से विद्या सीखनेको देवताओं ने कहा। इसके लिये शुक्रकी लड़की देवयानी को उपयुक्त माध्यम बनाने से कच का शुक्र के घर जाना। वहां पर बृहस्पति पुत्र कचको गोचारण करते हुए राक्षसों द्वारा मारडालना। बिना कच के देवयानी द्वारा इह लीला समाप्त करने की धमकी दी। फिर शुक्राचार्य द्वारा सञ्जीवनी विद्या के प्रसाद से कच का जीवित हो जाना। बादको वनमें कचका चूर्ण बनाकर सुरा में राक्षसों द्वारा ब्राह्मणों को पीने के लिये दिया जाना। इस दुर्वृत्त का ज्ञान होने पर वृहस्पति के पुत्र कचको फिर जिला कर भविष्य में सुरापान करनेवाले ब्राह्मणादि द्विजमात्र को श्राप।

"यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चिन्मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव स स्यादस्मिन्लोके गर्हितः स्यात्परे च ॥ ६३ ॥

और शुक्र द्वारा कच को ब्रह्मसञ्जीवनी विद्या का उपदेश।

२६ कचदेवयानीसम्वादकथनम्। ६६

कच की देवयानी के द्वारा प्रशंसा और उसके प्रति पाणिग्रहण के लिये प्रस्ताव। कच का अनुरोध के प्रति सकारण उपेक्षा का भाव। गुरु पुत्री को विवाहका दूसरा प्रबन्ध करने को कहने पर देवयानी द्वारा उसका अधिकाधिक प्रस्ताव समर्थन कर विवाह के लिए आग्रह करना। इसी पर देवयानीका कचको विद्यासिद्धि सफल न होने का शाप। कच का शाप लौटाने के लिये अनुरोध। ऋषि-पुत्र कभी भी तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करेगा।

पाणिग्रहण (विवाह) का प्रस्ताव किया। तदुपरान्त राजा ययाति ने देवया से कहा तुम ब्राह्मण कन्या हो मैं क्षत्रिय हूं अतः प्रतिलोम विवाह ठीक न कारण ब्राह्मण तो सर्प एवं अग्नि से भी दुर्धर्ष है। देवयानी के कारण पूछने ययाति ने बतलाया कि सर्प एक को डसता है एवं एक शस्त्र एक को मारता है लेकिन क्रोधित विप्र राष्ट्रों को नष्ट कर देता है अतः मैं पिता द्वा देने पर भी तुम्हें ग्रहण करने में असमर्थ हूं। देवयानी ने कहा कि बिना मां देने पर ग्रहण करने में कोई भी डर नहीं है। पिता के पास देवयानी अपनी दासी को भेजना और दैत्य गुरु शुक्राचार्य द्वारा प्रस्ताव देवयानी के अनुरोध से पूर्ण समर्थन करना परन्तु ययाति का वर्णस सन्तान से अधर्म का भय बता कर अनुरोध को टालदेना। इस पर शुक्र अधर्म से छुटकारा देकर इस शुभविवाह के लिये रत्न काञ्चन का संयो बता कर अपनी शुभ कामना प्रगट की और आशीर्वाद दिया।

३१ ययातिचरित्रम्। ७

देवयानी सहित ययाति के घर लौटने पर यथासमय ऋतुकाल उ स्थित होने पर गर्भस्थिति हो जाना और शर्मिष्ठा भी जो देवयानी के सा दासी रूप में थी, पूर्ण यौवना हो गई उसे इस बात की चिन्ता होने लगी पूर्णयौवना होने पर भी मैं अविवाहित हूं उसने यह निश्चय किया कि अप युवावस्था का पुत्र रूप का फल राजा द्वारा ही मिले। इसलिये एकान्त राजासे मिलकर काम बनाना ठीक है। उसने राजा से मिल कर कहा अपनी सहेली का पति होने के नाते मैं भी आपको ही पति रूप में व करने की प्रार्थना करती हूं। राजा द्वारा शर्मिष्ठा की प्रार्थनाका स्वीकार कि जाना तथा प्रथम गर्भ में ही सूर्य के समान तेजस्वी कुमार की उत्पत्ति।

३२ ययातिचरित्रम्। ७

शर्मिष्ठा के पुत्र होने की बात जानने पर देवयानी का उसपर कु

होना तथा ययाति को क्रोध से इस सबका कारण पूछना। ययाति का स्पष्ट उत्तर एवं शुक्राचार्य के सामनें अपने आचरण का (शर्मिष्ठा के विवाह) यह कहते हुये औचित्य स्वीकार करना।

ऋतुं यो याच्यमानाया न ददाति पुमान् वृतः।
भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन्? स चेह ब्रह्मवादिभिः॥
ऋतुकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः।
न याति यो हि धर्मेण ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः॥
अधर्म्मभयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान्॥

शुक्राचार्य ने विरोध करते हुए कहा कि हे ययाते मिथ्याचरण धर्म में इस प्रकार एक को धोखेमें रखने से चौर्य होता है। शुक्राचार्य के द्वारा शाप दिये जाने पर अपनी पूर्वावस्था को छोड़ कर ययातिका बुढ़ा बन जाना, फिर बहुत अनुनय विनय करने पर शुक्राचार्यने कहा कि यदि दूसरे से अवस्था का सङ्क्रमण कर लो तो फिर अवस्था मिल सकती है। जो उसे अपना यौवन दे वह पुण्य और कीर्ति वाला हो उसके लिये शुक्राचार्य से आज्ञा मिल गई।

३२ ययात्युपाख्यानम्। ८१

बुड्ढा होकर जब ययाति अपने नगर में आया तो अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को अपनी युवावस्था को देने की और ऋषिवर्य शुक्राचार्य के शाप की बात कही। इस पर यदु ने बिलकुल मना कर दिया और दूसरे२ बेटों से अवस्था मांगने का सुझाव दिया। ययाति ने फिर तुर्वसु के पास जाकर वही मांग की! तुर्वसु ने भी काम भोग को नष्ट करनेवाली और बल, रूप का अन्त करनेवाली बुद्धि और अपने मान को मिट्टी में मिला देनेवाली इस बुढापे की अवस्था को नहीं चाहा।

इस पर यदु को दुष्प्रजा और तुर्वसु को सन्तानच्छेद का शाप देकर ययाति शर्मिष्ठा में उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र द्रुह्यु को बोला कि वह अपनी

अवस्था हजार वर्ष तक के लिये उसे देकर फिर लेले। द्रुह्यु ने कहा न राज्य न रथ, न घोड़ों की सवारी और न स्त्रियों को वृद्ध भोग सकता है, न उसका संसार के प्रति राग रहता है फिर उसे जलप्रधान देश में सदा रह कर राज्य करने का शाप देकर वह अनु के पास गया उसने भी वृद्धावस्था की निन्दा कर नकारात्मक उत्तर दे दिया। फिर पूरु के पास जाने पर पूरु ने उसकी आज्ञानुसार अपनी युवावस्था उसे दे दी और राजा की वृद्धावस्था को स्वयं ले लिया।

३४ ययात्युपाख्यानम्। ८

उस राजर्षि ने अपने पुत्र में बुढ़ापे का सङ्क्रमण किया और स्वयं युवा बन धर्माविरुद्ध राज्यके शासनको चलाया। उन्होंने यज्ञसे देवताओंको तृप्त किया श्राद्ध से पितामहादिकों को सन्तुष्ट किया, इष्ट अनुग्रह से दीनों को इष्ट कामनाओं से द्विजों को, अतिथियों को अन्नपान से, वैश्यों को प्रतिपालन से, शूद्रों को दयालुता से और चोरों को शमन कर सम्पूर्ण प्रजा का पालन किया। हजार वर्ष तक इस पुकार भोगों को भोग कर इनकी असारता को अपने पुत्र पूरु से कहा जैसे घी की अग्नि में आहुति डालने से वह पूर्णतः बढ़ता है उसी प्रकार भोगों के भोगने से उनकी तृप्ति न होकर वे बढ़ते जाते हैं। शम की बराबरी संसार के ऐश्वर्य, धनधान्य, पशु, स्त्री और पुत्रादि नहीं कर सकते हैं हे पूरो अपने यौवन को तुम सम्भालो और अपने राज्य को भी। पूरु को यौवन मिलने पर और उसके बड़े भाई यदु की उपस्थिति में उसे अभिषेक किये जाने पर ब्राह्मणादि समाज के प्रमुख महानुभाव आपत्ति कर राजा को समझाने के लिये गये। ययाति ने कहा कि आज्ञाकारी पुत्र ही पिता का अनुग्रह भाजन होता है जो पिता के विपरीत होता है वह पुत्र नहीं।

"प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः"

राजा ययाति उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने पुत्र के प्रति इच्छानुसार वर मांगने की इच्छा प्रगट की। सारी प्रजा ने आकर पूरु के त्याग की बड़ी प्रशंसा की और राज्य के लिए पूरु का अभिषेक कर स्वयं राजा वनको तप करने चला गया।

३५ ययात्युपाख्यानम्। ८४

इस प्रकार ययाति ने वानप्रस्थ होकर स्वर्गवास की तैयारी की और स्वर्ग जाकर इन्द्र ने उसे फिर नीचे आने को बाध्य किया। कहते हैं कि वह बीच में ही स्थित रह गया। शतानीक द्वारा राजा को इन्द्र ने पृथ्वी पर क्यों डाला इसका कारण पूछने पर शौनक ने तपस्या की कमी ही एकमात्र कारण बतलाया। पृथ्वी पर आकर फिर उसने १००० वर्ष तक संसार से विरक्त होकर शिलोंञ्छ वृत्ति से तपस्या की और अम्बुभक्ष, वायुभक्ष बनकर अंत में स्वर्ग पद को पाया।

३६ ययातिशक्रसंवादवर्णनम्। ८५

एक बार इन्द्र ने स्वर्ग में स्थित ययाति को पूछा कि तुमने पूरु को राज्य देकर क्या कहा? ययाति बोला किसी के साथ क्रोधपूर्ण व्यवहार न करना—कड़ा वचन न कहना, सज्जनों की सदा रक्षा और उनका सम्मान करना। किसी को कड़ा वचन कहने से उसके मर्म भेदे जाते हैं। संसार में मैत्री, दान, और मधुर वाणी से ही सब कुछ शक्य है।

३७ ययातिशक्रसंवादवर्णनम्। ८७

इन्द्र ने कहा कि हे ययाते सब कामनाओं को छोड़कर वन में निवास करते हुए तुम्हारी तपस्या किसके बराबर है? ययाति ने कहा "किसी के भी नहीं।" इस पर इन्द्र ने पूछा क्षीण पुण्य वाले लोक में तुम्हारा अधिकार है।" ययाति ने हां करके देवराज की बातों का समर्थन किया। तब आकाश

से गिरते हुए ययाति को अष्टक ने देखा। और अष्टक ने उसको सा
हाल पूछा।

"प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः। प्रभुःसूर्य्यःप्रकाशाच्च सतांचाभ्यागतः प्रभुः।

३८ ययात्यष्टकसंवादवर्णनम्। ८

ययाति ने अपना परिचय नहुष के पुत्र के रूप में और पूरु के पिता
रूप में दिया और कहा कि अल्प पुण्य होने से मुझे च्युत कर दियागया है
उसने अष्टक का अभिवादन किया और कहा कि "विद्या, तपस्या और ज
से जो वृद्ध है वही वृद्ध माना जाय। इसी प्रकार ययाति और अष्टक संवा
हुआ। फिर ययाति ने कहा, "मनुष्य को सुख दुःख के इस परिवर्तनशी
संसारमें किसी प्रकार का भय अथवा संताप या मानसिक दुःख नहीं कर
चाहिए। क्योंकि पूर्व कर्मों से ऊर्ध्वगति और अधोगति मिलती है। अष्ट
ने फिर ययाति को पूर्व जन्मों का वृत्तान्त पूछा, उसने पूर्व जन्मों में पृथ्
का सार्वभौम राज्य, अमरावती का वास और फिर क्षीण पुण्य होने पर इ
स्थान पर आना बतलाया।

३९ ययात्यष्टकसंवादवर्णनम्। ९

ययाति और अष्टक का जीव की नानागतियों पर मननीय सम्वाद
अपने पूर्व सत्कर्म के प्रताप से ऊर्ध्वगति और बुरे कर्मों से नाना नी
योनियों की प्राप्ति मनुष्य को होती है। पृथ्वी पर जो नारकीय यातनायें
उनका परिताप उस जीव को भिन्न२ योनियों के आवागमन में फंसने से हो
रहता है। ययाति ने नीच कर्म को छोड़ने से सदा उन्नति होने की बात क
है। अष्टक ने फिर नाना जलचर, थलचर, नभचर योनियों के सम्बन्ध
प्रश्न पूछा। ययाति ने वीर्य और रज की पूर्व स्थितियों को बता क
नानायोनियों के प्राणियों का गर्भ में आना बतलाया। वनस्पति औषधि, औ

जल, वायु, पृथिवी और अन्तरिक्ष में तत्त्वरूप से जीवयोनि, चतुष्पद, द्विपद पक्षी रूपमें मिलती हैं। फिर अष्टक ने पूछा कि गर्भमें शरीर स्वेच्छा से धारा जाता है कि प्रकृति गत व्यापार का वह एक अङ्ग होता है। इस पर ययातिने बतलाया कि पुष्पित योनि में वीर्य रज से मिलकर डिम्ब कोशों में चला जाता है जहां पर स्त्री परमाणु और पुं परमाणु के योग से गर्भ बढ़ता जाता है और नवम मासमें बाहर आता है एवं नाना योनियों में आपेक्षिक समय का अन्तर होता है। बाहर आकर पाप पुण्य के अनुसार जीवन बिताकर पुण्यवान ऊँची योनियों में और फिर पापकर्मा नीच योनियों में जाते हैं।

फिर ययाति ने मनुष्यों के पुण्य के सात द्वार बताये मान से सदा दूर रह कर मनुष्य उत्तम कर्म बनाकर यह लोक और परलोक बनाते हैं।

मानव जीवन की ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास की अवस्थाओं को ययाति से अनुरोधपूर्वक पूछने पर उसने बताया कि विद्या बल लेकर अपने गुरु की आज्ञा का पालन उनसे प्रथम उठकर सारा कार्य कर गुरु के सोने पर सोना, सरल स्वभाव, दमनशील, प्रमाद से दूर काम में लगा हुआ ब्रह्मचारी प्रशस्त है।

गृहस्थ—अपने धर्मागत अर्जन से यज्ञ श्रेष्ठ कर्म करता है अतिथि सेवापरायण हो दूसरे के धन पर कभी हाथ साफ न करे यही परम्परा से चली आती गृहस्थ की परिपाटी है।

वानप्रस्थ—अपने वीर्यार्जन से जीवन का क्रम चलाने वाला, घरेलू झंझटों से दूर दूसरों को ज्ञानदान करने वाला, और दूसरों के लिये कभी उपताप (दुःख) का कारण न बनने वाला ऐसा वानप्रस्थ सर्व सिद्धियों का समूह है। वह वन में रह कर अपनी इन्द्रियों को नियत आहार विहार में लगा कर ब्रह्म का चिन्तन करता है।

सन्यासीः—विना घर के रहने वाला किसी भी सांसारिक इच्छा
हजारों कोस दूर, प्रति दिन पर्यटक, सब झंझटों से छूटा हुआ और जि
रात्रि में संसारी प्राणी भोगादि में लगे रहते हैं उसमें वह योगी यतात्
होकर योग साधना द्वारा ब्रह्म में एकीभाव पाने में तैयार रहता है। ऐ
अरण्यवासी सन्यासी जीवन से उस व्यक्ति के समस्त कुल इक्कीस पीढी त
तारा जाता है।

४१ ययात्यष्टक संवादवर्णनम् । ९५

ययाति ने दूसरे के पुण्य से स्वर्गारोहण अस्वीकार कर दिया। प्रतर्द
और ययाति का सम्वाद किसी प्रकार की आसक्ति न करनेवाले दो प्रका
के मुनियों में कौनसा देवताओं के सात्म्य को पा लेता है इस पर ययाति
ने निःसङ्ग और ब्रह्मपरायण एकान्त वासी योगीराज को ऊँचा स्थान दिय
और उसकी प्रशंसा की।

४२ ययात्यष्टकसंवादवर्णनम् । ९७

अष्टक और ययाति के बीच हुए सम्वाद में इसी बात पर विशेष जो
दिया गया है कि जीवन के सार्वभौम धर्म जैसे दान, शौच, सत्य, अहिंसा
लज्जा, श्री, तितिक्षा, समता और सरलजीवन का जितना अधिक हो स
सेवन करना चाहिए इन्हें बढ़ाने से मनुष्यका इहलोक और परलोक दोनों
सुधरता है।

फिर ययातिको उनके दौहित्रों ने तार (उद्धार) दिया और वे पर
पदके भागी बने।

४३ यदुवंशवर्णनम् । १००

ऋषियों द्वारा सूतजी को यदुवंश का सविस्तर वर्णन करने के लि
पूछना। यदुके पांच धर्मात्मा, तेजस्वी पुत्रोंका वर्णन। ये सब बहुत योग्य

और आज्ञाकारी थे। कार्तवीर्य ने दत्तात्रेय भगवान् की आराधना कर चार वर मांगे। प्रथम वरमें सहस्रभुजा, द्वितीय में अधर्म में रतमनुष्यका सज्जनों से निराकरण, तृतीय में युद्ध से पृथ्वी कोजीतकर धर्मपूर्वक पालन एवं चतुर्थ में संग्राम में बलवान से वध। आपवमुनिका अर्जुनको शाप। कार्तवीर्य का प्रातःकाल नाम लेने वालेका धन कभी नष्ट नहीं होता और नष्ट होता है तो फिर मिल जाता है।

४४ यदुवंशवर्णने क्रोष्टुवंशवर्णनम्। १०३

ऋषियोंका सूतजी से प्रश्न कि महात्मा कार्तवीर्यने जो कि प्रजाकी रक्षा करने वाला था आपवके वनको क्यों जलाया। भगवान् सूर्य कार्तवीर्य के सामने ब्राह्मणरूप में आये और भोजन मांगा। कार्तवीर्य ने उन्हें आहार दिया। सूर्यका प्रत्यक्ष तेज असह्य होने केकारण राजाको बाण दिये गये। उसने उनको छोड़ा और सूर्य की तृप्ति की। आपवका जलमें प्रवेश। दश हजार वर्ष के बाद जलमें से निकलने पर उसने आश्रमको जला हुआ देखा और राजर्षिको श्राप दिया। क्रोष्टु राजा के वंश का वर्णन। इसी कुल में भगवान् विष्णु हुए। विदर्भ वंशका वर्णन। विदर्भवंश के अनन्तर अन्धक वंशका वर्णन। अन्धकवंशमें सभी राजा महान् तेजस्वी दानवीर धार्मिक यज्ञ करनेवाले पवित्र विद्वान् एवं कीर्तिशाली हुये। अन्धकवंशवर्णनका फल।

४५ स्यमन्तकमणिसंक्षिप्तचरित्रम्। १०७

वृष्णि के दो स्त्रियां थी गान्धारी और माद्री। माद्री के युधाजित्, देवमीढुक, अनमित्र और शिवि हुए तथा गान्धारीके सुमित्र हुआ। अनमित्र का पुत्र निघ्न एवं निघ्न के दो पुत्र प्रसेन और शक्तिसेन। प्रसेन के पास सब रत्नों में श्रेष्ठ स्यमन्तक मणि थी। उसके लिये भगवान् स्वयं भी लेने को लालायित थे परन्तु प्रसेन ने उनको नहीं दी। एकबार प्रसेन मणि को

धारण कर वन में शिकार के लिये गया वहां पर एक गुफा देखी जिसमें
आवाज आ रही थी वहीं उसे एक भालू मिला। उसने प्रसेन
मारकर स्यमन्तक मणि लेली। उस भालू के निवासस्थान में इस प्र
प्रसेनकी अज्ञात दुःखान्त मृत्यु से भगवान् कृष्णपर घर वालोंको शं
हुई। भगवान् ने इस कलंक के टीके को मिटाने के लिये प्रसेन
मारनेवाले की पूरी खोज की और स्वयं शिकार के लिये उसी गुफा के प
पहुंचे। ऋक्षराज ने क्रोधी कृष्ण को देखकर अपने वैष्णवोचित कार्यों
उन्हें प्रसन्न कर दिया। भगवान् के वर मांगने को कहने पर उसने के
चक्र से अपनी मृत्यु मांगी तथा मणि समेत अपनी पुत्री को ग्रहण क
का वर मांगा। भगवान् ने उसकी इच्छा पूर्ण कर मणि सहित जाम्ब
की कन्या के साथ घर लौटकर स्यमन्तक मणि सत्राजित को देकर अ
कलंक को उतार दिया। इस स्यमन्तक मणि के आख्यान को जो पढ़े
उसे मिथ्या चोरी का कलंक नहीं लगेगा।

४६ कृष्णोत्पत्तिवर्णनम्। १०

वृष्णि वंश का वर्णन। इस वंश में महाबाहु वसुदेव हुये। वसुदेव
के कंस की बहिन देवकी के गर्भ से कृष्ण आदि पुत्र हुए।

४७ कृष्णसन्तानवर्णनम्। ११

भगवान् धर्म की हानि और अधर्म को बढ़ते देख साधु पुरुषों के
णार्थ और दुष्टों के दमन करने के लिये अर्थात् भूमि का भार उतारने के लि
अवतार लेते हैं। इसपर भगवान् ने वसुदेव को तपस्या पर प्रसन्न हो
साक्षात् चतुर्भुज रूप दिखाया। फिर वसुदेव की प्रार्थना पर अपना बाल
बनाकर नन्दजी के घरमें ले जाने को तथा इसीसे यादवोंका कल्या
होगा ऐसा कहा। मुनियों के इस प्रश्न पर कि वसुदेव और देवकी कौन

५० कुरुवंशवर्णनम् । १

कुरु वंश का अनुकीर्तन । अजमीढ राजा के वंश का वर्णन । जरा का जन्म और अपध्यात तथा देवापि का वर्णन । शन्तनु का वंश वर्ण परिक्षित् को वैशम्पायन का श्राप तथा अधि, सोम, कृष्ण और आदि वंशों का वर्णन ।

५१ अग्निवंशवर्णनम् । १

मुनियों द्वारा अग्नि वंश के सम्बन्ध में पूछने पर सूतजी ने कहा स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्मा के मानसपुत्र अग्नि से स्वाहा नामक स्त्री पावक, पवमान और शुचिनाम की सन्तान हुई । दक्षिणाग्नि निर्मथ्य और गार्हपत्य अग्नि का निरूपण । भगवान् विष्णु की उत्पत्ति ।

५२ कर्मयोगवर्णनम् । १

योग माहात्म्य और उसके पूर्व के आचार्यों का वर्णन । सूतजी ने योग को हजार ज्ञान योग से विशिष्ट बतलाया क्योंकि ज्ञान योग कर्म योग से ही उत्पन्न होता है उसके लिये आठ आत्मा के गुणों प्रधानता बतलाई है, जैसे—

दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽऽतुरस्य च ।
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः ।
अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम् ॥
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च ।
तथाऽस्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ॥
अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः ।
अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ॥

सब प्राणियों में दया, क्षमा, आतुर की रक्षा, दूसरों में दोष

निकालना, बाह्याभ्यन्तर की शुद्धि, अनायास कार्यों में माङ्गल्याचार सेवन, द्रव्योंमें कृपणता न करना और परस्त्री एवं परद्रव्यों में इच्छा न करना यही क्रियायोग ज्ञानयोग का साधक है। पंच महायज्ञ ब्रह्मादित्रिदेव सूर्य, अष्टवसु, एकादश गणाधिप आदि विभूतियां अग्नि में यज्ञ के द्वारा और सदा अनुष्ठान करने वाले द्विजाति के द्वारा पूजे जाते हैं। जिनके लिये दान, व्रत, उपवास, जप, होम साधन होते हैं। संसार में कर्मयोगी वेद, शास्त्र, स्मृति से प्रेम करने वाले अर्थात् इनके आदेशों पर चलनेवाले व्यक्तिको विकर्म से डर रहता है और संसार में वह सब सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

५३ पुराणसंख्या वर्णनम्। १४४

पुराणों का अनुक्रम कथन। कल्प के आरम्भ में एक ही पुराण था। यह शतकोटि विस्तारवाला हुआ अर्थात् पुराणों से प्रेरणा लेकर अनेकानेक महर्षियों ने नाना शास्त्र, स्मृति, तन्त्र, उपपुराण, ज्योतिष, मीमांसा, न्याय-दर्शन, आयुर्वेद और इतिहास आदि एवं साहित्य स्रष्टाओं ने अगणित विषयों के ग्रन्थों की रचना की। अतः नाना शाखा भेद से शतकोटि वाले पुराण हैं। चार लाख श्लोकों का अठारह पुराणों में वर्णन। पुराणों का लक्षण। नाना मासों में पुराण की पुस्तक देने का विविधप्रकार से फल कथन। पुराण श्रवण का फल। (पुराण चतुर्दिक् प्राण हैं। प्रथम परम पिता परमात्मा के निःश्वास भूत प्राण. वेदों के प्राण, सारे प्राणियों का उद्धार इनके चलाये मार्ग से होता है इसलिये सारे प्राणियों के प्राण हैं और सारे ज्ञान का मंथन रूप सार होने से उसके भी प्राण ये पुराण हैं।) इनकी महिमा अगाध है। यह पितरों के प्रिय हैं, देवताओं के लिये अमृत स्वरूप हैं। शाश्वत सत्योंका इनमें प्रतिपादन है इसलिये यह मनुष्यों को सदा दुष्कर्मों से बचाते हैं।

व्रत का प्रकार और व्रत फलका विशेष वर्णन है।

६३ रसकल्याणिनी तृतीयाव्रतकथनम्। १६

माघ मासकी शुक्ल पक्षकी तृतीया को प्रातः काल गव्य पय औ तिल से स्नान करे। देवीजी को मधु और ईखके रस से स्नान करावे। पह दहिने अङ्गोंको पूजकर फिर वायें अङ्गों को पूजे। इसके साथ ही द्विज दम्प को निमन्त्रण कर विधि विधान से पूजा कर उन्हें सौभाग्यमाङ्गल्ययु उपकरण सामग्री से सन्तुष्ट करे। इसके करनेवालेको अग्निष्टोम फल मिलता है।

६४ शुक्लतृतीयाव्रतकथनम्। १७

आर्द्रानन्दकरी नामकी तृतीया के व्रत का वर्णन। यह जब आषा ब्रह्मर्क्ष, मृगर्क्ष, या हस्त या मूल की शुक्ल पक्ष की तृतीया हो तब किय जाता है। भगवान् शंकर सहित महादेवी की पूजन करनी चाहिए। पादा केशान्त अङ्गों का न्यास विधि सहित पूजन करे इसके करनेवाली सधव अथवा विधवा दोनों को ही भगवती जगदम्बा का प्रसाद मिलता है औ गौरीपद की प्राप्ति होती है।

६५ अक्षयतृतीयाव्रतकथनम्, सरस्वतीव्रतकथनञ्च। १७३

सम्पूर्ण कामों की देनेवाली अक्षय तृतीया का व्रत भी महत्त्वपूर्ण है यह व्रत वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया को किया जाता है। इसको करनेवाले की सन्तान अक्षय होती है। भगवान् जनार्दन की पूजन का विशेष फल है इसीके साथ सारस्वत व्रत का विधान प्रतिपक्ष की पञ्चमी को बताया गया है। भगवती ब्रह्मवासिनी की पूजा का विधान है इस दिन मौन रहना आवश्यक है तेरह मास तक लगातार विधिविधान से मौन रखकर भोजन करने के बाद उद्यापन किया जाता है।

कभी रोग नहीं होता और वह व्यक्ति अपने पूर्वज और वंशजों की इक्कीस पीढियों को तार देता है।

७६ शर्करासप्तमीव्रतकथनम्। १९४

शर्करा सप्तमी का व्रत। यह व्रत वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी से होता है। भगवान् सूर्य की पूजा प्रातः काल के नित्य कर्मों से निवृत्त होकर करे, एक जलपात्र, साथ में चीनी का पात्र सफेद वस्त्रों से सजाकर और सफेद माला लगाकर उसमें सोना रख कर मन्त्र से पूजा करे। रात्रि में पञ्चगव्य पीकर पृथ्वी पर सोवे। इस समय पुराण श्रवण या सौर सूक्त का पाठ करे प्रातः अष्टमी को नित्य कर्म कर वे सम्पूर्ण वस्तु विद्वान् अधिकारी ब्राह्मणको दे दे। सुन्दर भोजन से ब्राह्मणको तृप्त करे तथा स्वयं बिना तेल और लवण के खावे। एक के बाद उद्यापन कर दे। इसका अनंत फल होता है।

७७ कमलसप्तमीव्रतकथनम्। १९५

कमल सप्तमी का व्रत चैत्र मास में करने का विधान बताया है।

७८ मन्दारसप्तमीव्रतकथनम्। १९६

मन्दार सप्तमी का व्रत मार्गशुक्ला पंचमी को थोड़ा सा खावे। षष्ठी को सारे दिन उपवास करे। रात्रि में मन्दार का प्राशन करे फिर सप्तमीको भगवान्का पूजन कर विद्वान् ब्राह्मणों को वह सब देदे। इसको करनेवाला स्वर्ग का अधिकारी वैभवशाली और सम्पूर्ण पापों से छुट जाता है।

७९ शुभसप्तमीव्रतकथनम्। १९७

शुभ सप्तमी का व्रत रोग, शोक, दुख से छुट कारा करता है। आश्विन के महीने में इसका आरम्भ किया जाता है। सोनेकी गाय और सोने का बैल बनाकर योग्य विद्वान को देनेका विधान।

प्रयाग में ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देव निवास करते हैं, और प्रयाग-मण्डल की रक्षा करते हैं। वहां पर यज्ञ करने से सब पाप नष्ट होते हैं तथा नरक की प्राप्ति नहीं होती है।

प्रयागमाहात्म्य के श्रवण पठनका फल। भगवान् वासुदेव द्वारा प्रयाग की प्रशंसा तथा राजा युधिष्ठिर और मार्कण्डेयजी का प्रस्थान।

ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि हे महाराज! द्वीप एवं समुद्र और पर्वत कितने हैं तथा वर्ष कितने हैं और उनमें नदियां कितनी हैं। लोकालोक का प्रमाण, भूमि प्रमाण, चन्द्र, सूर्य गति और ज्योतिश्चक्र वर्णन हमारे लिए विस्तार से कहिए।

उत्तर में सूतजी ने जम्बू द्वीपादिकों का नाम सप्रमाण वर्णन किया।

भारतवर्ष की व्युत्पत्ति जैसे—

"भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते ।

निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम्"

भारतवर्ष के नव भेदों का वर्णन जैसे—इन्द्रद्वीप, केशर, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और ९ वां भारतवर्ष इस तरह नवभेद हैं। यह भारतवर्ष दक्षिणोत्तर हजार योजन में है। वहां पर होने-वाले नाना नदी एवं देशोंका वर्णन तथा जम्बूद्वीप किम्पुरुष हरिवर्षा-दिकों का वर्णन।

११४ पुरूरवसःपूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम् २६

राजा पूरूरवा के पूर्वजन्म के वृत्तान्त वर्णन में कहा है कि पूरूरवा पू
जन्म में मद्र देश का राजा था उसने राज्य की कामना से एकादशी व
उपवास कर जनार्दन का पूजन किया था इस व्रत के पुण्य से मद्रदेश
उसका अकण्टक राज्य हो गया।

११५ हैमवतीनदीमहात्म्यवर्णनम् २६

राजा मद्रेश्वर रूप की कामना से हिमालय प्रदेश में गया जह
पर हैमवती नदी है जो ऋषिदेवगन्धर्वों से सेवित है वहां पर जाने
मनुष्यों के पाप दूर होते हैं एवं पुण्य की प्राप्ति होती है।

११६ हिमवद्वर्णनम् २६

हैमवती नदी पर जाने से मद्रेश्वर की थकावट दूर हो गई तत्पश्चा
हिमालय को देखने के लिए चला। वहां पर तप करनेवाले अलपतपस्या से
सिद्धि को प्राप्त होते हैं। जिसके दर्शन मात्र से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं

११७ हिमवत्प्रदेशवर्णनम् २७०

पर्वतेन्द्र हिमालय से ऐरावती नाम की श्रेष्ठ नदी निकली है जहां प
शाल, ताल, तमाल एवं खर्जूरादि के असंख्य वृक्ष लगे हुए हैं तथा नान
तरह की औषधियां उसी प्रदेश में उत्पन्न होती हैं। हंस, कारण्डव आदि
बहुत से पक्षी तथा व्याघ्र सिंहादि जानवर वहीं रहते हैं। वहां का दृश्य
महान् रमणीय है। उसी स्थानपर अत्रि ऋषि का परमरमणीय आश्रम है

११८ हिमवत्प्रदेशवर्णनम् २७४

हिमालय प्रदेश के दो महाश्रृङ्ग हैं उन दोनों के बीच एक श्रृङ्ग अत्यन्त
ऊंचा है वहां का जल अत्यन्त शीतल है वहां मद्रेश्वर ने तप करना
प्रारम्भ किया।

दुगुनाहै। उस द्वीप में दो पर्वत हैं प्रथम सुमन नाम पर्वत द्वितीय सर्वौषधि से युक्त कुमुद नाम पर्वत है। मीठे जलवाले समुद्रसे वेष्टित पुष्कर द्वीप है। यह गोमेदक द्वीपसे दुगुना है। इस द्वीप में रहनेवाले मनुष्यों की आयु तीस हजार वर्ष की तथा आरोग्यता एवं सुख की बाहुल्यता और मानसी सिद्धि में स्थित हैं। इन तीनों द्वीपों में सुख, आयु और रूप की समानता है तथा ईर्षा, निन्दा, भय, लोभ, पाषण्ड और द्वेष का नाममात्र भी नहीं है और वहां पर आनन्द की पराकाष्ठा है। चन्द्रोदय होने से समुद्र बढ़ता है तथा अस्त होनेपर क्षीण होता है। जैसे—"क्षयवृद्धी समुद्रस्य शशिवृद्धिक्षये तथा।" शाक द्वीप में शाक पर्वत, कुश द्वीप में कुशस्तम्ब, शाल्मल द्वीप में शाल्मलि वृक्ष, क्रौञ्चद्वीप में क्रौञ्च गिरि गोमेदक में गोमेद पर्वत और पुष्कर द्वीप में न्यग्रोध वृक्ष है। इसी पुष्करमें ब्रह्मा साध्य देवोंके साथ निवास करते हैं। जम्बूद्वीप से नानाविध रत्नों का निकास है। सब द्वीप समुद्रों से वेष्टित हैं। पृथ्वी से दश गुना जल है जो चारों तरफ से पृथ्वी का पालन करता है। जल से दशगुना अग्नि (तेज) है जो सम्पूर्ण जल को धारण करता है। अग्नि से दशगुना वायु है जो सम्पूर्ण तेज को धारण करता है। वायु से दशगुना आकाश है जो सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करता है। इस तरह पृथ्वी आदि तत्त्व परस्पर में एक दूसरे से अधिक शक्तिशाली हैं एवं परस्पर ओत प्रोत हैं।

१२३ पृथिवीपरिमाणवर्णनम्, आकाशपरिमाणवर्णनम् सूर्यगतिवर्णनम्, ग्रहाणांगतिवर्णनम् २६४

सप्तद्वीपवती पृथिवी के परिमाण का वर्णन तथा आकाश के परिमाण का वर्णन। सूर्यमण्डल का विस्तार नौ हजार योजन है तथा विस्तारसे तीन गुना ऊंचा मण्डल है। सूर्यमण्डल के विस्तारसे दुगुना चन्द्रमण्डल है जैसे

"भास्कराद्द्विगुणः शशी"। पचास कोटि योजन में पृथ्वी का विस्तार है तथा पृथ्वी के समान ही आकाश का विस्तार है। मेरुपर्वत के पूर्व की तरफ इन्द्रपुरी, दक्षिण में यमपुरी, पश्चिम में सुषा नाम की रमणीय वरुणपुरी और उत्तर में विभावरी नामकी चन्द्रपुरी है। मानस के उत्तर पृष्ठ में चारों तरफ लोकपाल धर्म की व्यवस्था के लिये तथा संसार की रक्षा के लिये विराजमान हैं। कुलाल (कुम्हार) चक्र की तरह सूर्य की गति है। दक्षिणायन में शीघ्रगति से भ्रमण करता है तथा उत्तरायण में मन्दगति से भ्रमण करता है। लोकालोक पर्वत के मध्य में लोकपालों की स्थिति है। सूर्य एवं ग्रहोंकी गति का विवरण।

१२४ ज्यौतिश्चक्रवर्णनम् ३००

ऋषियों ने सूत जी से पूछा कि सूर्य चन्द्र एवं ग्रह नक्षत्रों के संचार का वर्णन करिये तदनन्तर सूत जी का विस्तृत उत्तर। चौदह नक्षत्रों में शिशुमार चक्र स्थित है उन्हीं के बीच ध्रुवस्थित है वही ध्रुव चन्द्र आदित्यादि ग्रहोंको भ्रमण करवाता हुआ स्वयं भ्रमण करता है। वर्षा, गर्मी, जाड़ा, रात्रि, दिन और शुभाशुभ फल ये सब ध्रुव से ही होते हैं। सूर्य की किरणें वायु के संयोग से समुद्र से जल को खींचती हैं और सब प्राणियों के हितार्थ छः मास तक वर्षा बरसाती हैं। मेघ शब्द की व्युत्पत्ति "मिहसेचने" धातु से है।

१२५ सूर्यरथवर्णनम् ३०२

सूर्यरथ का विस्तार से वर्णन। वह रथ ऋषि, गन्धर्व अप्सरा, सर्प राक्षसों के साथ आदित्य को वहन करता है। दिन रात एक चक्रवाले रथ से सूर्य भगवान् भ्रमण करते हैं। चन्द्ररथ का वर्णन। शङ्खके समान कान्तिवाले दश घोड़े चन्द्र रथ को वहन करते हैं। शुक्ल पक्ष में कला बढ़ती हैं तथा कृष्ण पक्ष में घटती हैं।

परस्परञ्च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः ।
विद्ध्वस्तदेवायतनाश्रमञ्च संभग्नदेवद्विजपूजकन्तु ।
जगद्बभूवामरराजजुष्टैरभिद्रुतं सस्यमिवालिवृन्दैः ॥

ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे तथा देवपूजा से विमुख हो गये और गुरुओं को अपमानित करने लगे परस्पर में निन्दा करने लगे। ऊंचे स्वर से गुरुओं को पुकारने लगे अचानक एवं असमयमें ही अश्रुपात, रात्रिमें दही सत्तू एवं कैथ आदिका भक्षण तथा कलहमें प्रवृत्त हो गये। उच्छिष्टमुख शयन तथा मूत्र करके हाथ पैर न धोना इत्यादि बहुतसे अशुद्ध आचरण करने लगे। देवताओंके मन्दिरोंका विध्वंस तथा देव पूजकों को मारने लगे।

१३१ दानवानामुपद्रवं दृष्ट्वा देवैः ब्रह्मसमीपे गमनम् ३२१

इतने महान् दानवों के उपद्रवों को देखकर देवता ब्रह्माजी के पास गये और कहा कि हे ब्रह्मन् जैसे मेघों के आने से हंस तथा सिंह के आने से मृग भाग जाते हैं उसी तरह हमलोग भी दानवों से पराभूत हो रहे हैं यदि इनसे आप रक्षा नहीं करेंगे तो—

यदि न त्रायसेलोकं दानवैर्विद्रुतं द्रुतम् ।
घर्षणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत् ॥

पृथ्वी मनुष्यों से रहित हो जायेगी। पुनः ब्रह्माजी के आदेश से देवताओं ने शङ्कर की स्तुति की।

१३२ देवेभ्यो महादेवस्यवरदानम्, देवैर्युद्धार्थ रथनिर्माणम् ३२२
देवानां शङ्करम्प्रति समभ्यर्थनम्

ब्रह्मादि देवताओं की स्तुति से प्रसन्न हो कर शंकर ने वरदान दिया और शंकर के आदेशानुसार देवताओं ने रथ का निर्माण किया। शिव और

से पीड़ित की गई हूं अतः मैं बहुत दुःखी हूं मुझे इस दुःखरूपी समुद्र से उद्धार करने के लिये पुत्र दीजिए तत्पश्चात् वज्राङ्गने पुत्रार्थ तप किया इस पर प्रसन्न हो ब्रह्माजी ने उसे वरदान दिया कि तुम्हारे तारक नाम का पुत्र होगा। तारकासुर के उत्पन्न होते ही पृथ्वी आकाश समुद्र सब चलायमान हो गये।

१४७ तारकासुरोपाख्यानम् ३८३

तारकासुर का दानवों को उपदेश तथा तारककी तपस्या। तदनन्तर उसको ब्रह्माजी का वरदान। तारकासुर का अपने मन्त्रियों के प्रति पुरुषार्थ निमित्त वचन।

लब्ध्वा जन्म न यः कश्चिद् घटयेत्पौरुषंनरः। जन्मतस्य वृथाभूतमजन्मा तु विशिष्यते

माता पितृभ्यां न करोति कामान् बन्धूनशोकान् न करोतियो वा।
कीर्तिं हि वा नार्जयते हिमाभां पुमान् स जातोऽपि मृतो मतं मे ॥

जो मनुष्य संसार में जन्म लेकर पुरुषार्थ नहीं करता उसका जन्म वृथा ही है। पुरुषार्थ करनेवालेको ही लक्ष्मी प्राप्त होती है जैसे महाभारत में कहा है कि "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः"। देव दानवों का युद्धार्थ उद्योग। ब्रह्मा एवं तारकासुर का संवाद इन्द्र के लिए गुरु वृहस्पति का साम दामादि उपाय कथन। दण्ड विधान वर्णन। देव सेना का सुसज्जित होना—

१४८. तारकोपाख्यानेदेवदानवयुद्धवर्णनम् ३८६

तारकासुर के आख्यान में देव दानवों के युद्ध का वर्णन। जिसमें शक्ति, त्रिशूल, मुदगर एवं चक्र तथा अन्यान्य अस्त्र शस्त्रों से भीषण संग्राम किया यहां तक कि नदियां खून की बहने लगी।

१४९ तारकोपाख्याने देवासुरयुद्धवर्णनम् ३९०

देव दानव युद्ध में ग्रसन दानव का यमराज के साथ भयङ्कर युद्ध। जम्भ का धनेश के साथ संग्राम। जम्भ की मृत्यु के पश्चात् कुजम्भ

ने धनेशके साथ युद्धारम्भ किया। युद्धमें यक्षराज कुबेर ने कुजम्भ के हृदयमें मुद्गर प्रहार किया। मुद्गर प्रहार से भी दानव विचलित नहीं हुआ फिर वरुण ने उसकी भुजाओं को पाशों से बांध कर गदा से मारा उससे उसके खून गिरने लगा। पुनः दैत्यों को दुःखी देखकर कालनेमि ने युद्ध किया प्रथम कालनेमि का सूर्य के साथ युद्ध तथा सम्पूर्ण देवसेना पर कालनेमि ने शस्त्र वृष्टि की जिससे देवसेना त्रासित होगई फिर विष्णु से कालनेमि की पराजय।

१५० तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धे ग्रसनवधवर्णनम् ४०३

सारथिका युद्ध में पतित कालनेमि को रथ में बैठाकर दूर ले जाना। इसके बाद बलवान् निमि दैत्य ने हरि के साथ युद्ध किया। क्रोधित दानवों ने भगवान् के ऊपर इस तरह एक ही साथ प्रहार किया।

परिघेण निमिर्दैत्यो मथनो मुद्गरेण तु। शुम्भः शूलेन तीक्ष्णेन प्रासेन ग्रसनस्तथा॥
चक्रेणमहिषः क्रुद्धो जम्भः शक्त्यामहारणे। जघ्नुर्नारायणंसर्वे शेषास्तीक्ष्णैश्चमार्गणैः

और वे अस्त्र भगवान् के अङ्गमें इस तरह प्रवेश कर गये जैसे श्रेष्ठ शिष्य को गुरु से उपदेश किये गये शास्त्र। तत्पश्चात् अन्य दानवों को परास्त कर चक्र से ग्रसन दानव के दो खण्ड कर दिये।

१५१ तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धवर्णनम् ४०५

देव दानवों के भीषण युद्ध का वर्णन। असुरों द्वारा नाना प्रकार के भयानक शस्त्रों से भगवान् जनार्दन पर प्रहार एवं सम्पूर्ण अस्त्रों के छोड़ने के बाद दैत्यों ने मृत घोड़े तथा हाथियों से ही युद्ध किया कुछ २ थकने के कारण विष्णु ने गरुड़ से युद्ध त्यागनेको कहा पुनः भगवान्ने पांच बाणों से तारकासुर के मर्मस्थानों पर आघात किया। और बदले में दैत्य ने भी अति तीक्ष्ण अस्त्रों से प्रहार कर विष्णु को घायल किया और अन्त में घोर संग्राम हुआ।

दैत्यों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर इन्द्र भगवान् विष्णु के पास गया और इस तरह से उत्साहवर्धक शब्दों में कहा कि इन दुष्ट दानवों से क्यों खेल करते हैं। अपने शत्रु को उपेक्षा बुद्धि से देखना बुरा है पहिले भी आपने हिरण्याक्ष हिण्यकशिपु आदि मदोद्धत राक्षसों का संहार किया है। आपने सदा ही इनके बढ़े हुए उपद्रवोंसे जनताको बचाया है। इसपर भगवान् ने देवताओं को सेना सज्जित करने के लिये कहा और बलके साररूप ग्यारह रूद्रों को बनाया। इन ग्यारह रूद्रों ने दैत्यों की सेना में विध्वंस मचा दिया इस प्रकार देवताओं की सेना को सजी हुई देख कर वह विकट वेषधारी दैत्य देवताओं को दायें बायें आगेपीछे मर्दित और चूर्णित करता हुआ आगे बढ़ा और रुद्रों के सामने आकर युद्ध के लिये ललकारने लगा। रुद्रों ने मन्त्रणाकर उस मायावी राक्षस को मारने का उपायसोचा और चारों तरफ से उस दैत्य पर आक्रमण किया इस प्रकार बड़ी देर तक युद्ध होने पर रुद्रों-ने उसे मार डाला और उसकी सारी सेना भयभीत होकर भाग गई। परन्तु फिर निमि ने पैर रोप कर लड़ाई की और देवताओं की सेना में हाहाकार मचादिया। निमि पर इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया और निमि ने इन्द्र के हाथी पर इतनी तेजी से आक्रमण किया कि वह युद्ध से डर के मारे भागखड़ा हुआ बाद में सभी प्रधान सुरों से युद्ध करते हुए तारक को विजय लाभ हुआ।

तारकासुर से दुःखित देवताओं द्वारा ब्रह्माजी की स्तुति। देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्नहुए ब्रह्माजी ने कहा कि यह दैत्य-देव दानव किसी से भी नष्ट नहीं होगा इसने मेरे से यही वरदान मांगा है कि मेरी मृत्यु सात दिन के बालक से हो। वह बालक भगवान् शंकर से होगा जो अभी स्त्री रहित है। हिमालय की लड़की पार्वती होगी जिसका वरदहस्त सदा ही सीधा रहता है उसके सकाश से जो सन्तान होगी उससे तारकासुर का वध होगा तुम लोग उस काल की प्रतीक्षा करो ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर देवता लोग चले गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने रात्रि को स्मरण किया। रात्रि के उपस्थित होने पर ब्रह्माजीने उससे कहा कि हे रात्रि देवताओं के सम्मुख एक महान् कार्य उपस्थित हुआ है उस कार्य के लिए तुम्हें जो करना है वह सुनो। दूसरे जन्म में जब दक्ष पुत्री सती हिमालय के घर पार्वती रूप में

अवतरित होगी तब वह भगवान् शङ्कर की तपस्या कर उन्हें पतिरूप में प्राप्त करेगी उस काल में तुम्हें सहवास के समय स्वयं सुन्दर रूप से उनका मनोरञ्जन करना चाहिये। इस बीचमें जब भगवान् शङ्कर उठकर चले जायेंगे तब मा भगवती पार्वतीजी रुष्ट होकर फिर तपस्या करने चली जायेंगी और उनसे उत्पन्न सन्तान दैत्यों को नष्ट करेगी तथा तुम्हें भी दानवों का नाश करना होगा जिससे संसार में उमा के अंश रूप में तुम भी पूजनीय बनोगी। ऐसा कहते हुये ब्रह्माजी ने रात्रि की स्तुति की। पार्वती का हिमालय के घर जन्म। उसके जन्म लेने पर सम्पूर्ण संसार सुखी हो गया यहाँ तक कि नरक में रहने वाले भी स्वर्ग के समान सुखी एवं क्रूर मनुष्य भी शान्त हो गये। उधर इन्द्र ने देवर्षिनारद को अपने कार्य को शीघ्र करनेके लिये स्मरण किया। देवराज इन्द्रको स्मरण करते जान नारदजी प्रसन्न हुए और इन्द्र भवन में आये। उनको आया हुआ देख इन्द्र ने अपने स्थान से उठकर नारदजी की पाद्य अर्घ्य आचमन से पूजा की तथा नारदजी ने कुशल क्षेम पूछा। तब इन्द्र ने कहा कि आप हिमालय की पुत्री पार्वती का भगवान् शंकर से योग हो ऐसा उद्योग कीजिये। इन्द्र के ऐसा कहने पर नारदजी का हिमालय के घर ज़ाना तथा हिमालय का कन्या विषयक दुःख प्रगट करना। नारद जी द्वारा हिमालय को सान्त्वना देना। नारदजी का हिमालय के घर से पुनः इन्द्र भवन जाना और इन्द्र को भगवान् शङ्कर के पास कामदेव को भेजने के लिये कहना। इन्द्र का कामदेवको स्मरण कर भगवान् शङ्कर के पास भेजना। भगवान् शङ्कर के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से कामदेव का भस्म होना। कामदेव की पत्नी रति का भगवान् शंकर की स्तुति करना। भगवान् शङ्कर का प्रसन्न होकर रति को वरदान देना कि तुम्हारा पति अब अनङ्ग नाम से विख्यात होगा। भगवती पार्वती का कठोर तप देख कर सम्पूर्ण प्राणी विचलित हो गये। इन्द्र का सप्तर्षियों का स्मरण करना। सप्त-

षियों का इन्द्र भवन में आगमन तथा इन्द्र द्वारा उनकी पूजा। इन्द्र ने सप्तर्षियों को अपना प्रयोजन कहा कि हिमालय की पुत्री हिमालय में घोर तपस्या करती है आप लोग उसके मनइच्छित कार्य को करने के योग्य हो। तदनन्तर सप्तर्षि पार्वती के पास गये तथा उससे पूछा कि हे पुत्रि तुम्हारी क्या इच्छा है। पार्वती का भगवान् शङ्कर को पति रूप में वरण करने की अपनी इच्छा प्रगट करना। सप्तर्षियों ने पार्वती से कहा कि शङ्कर तो नग्न रहने वाला, भयङ्कर, कपाल रखने वाला, भिक्षुक, विरूप, पागल एवं वन में रहने वाला है। तुम ऐसे भय देने वाले निन्दनीय, खून से सने हुए, कपालों को पहनने वाले, फूंकार मारने वाले, उग्र सर्पों को धारण करनेवाले, भयानक भूत प्रेतों को रखने वाले एवं श्मशान में रहने वाले से विवाह की इच्छा रखती हो। जगत् को धारण करने वाले, लक्ष्मीकान्त भगवान् हरि, देवराज इन्द्र, सम्पूर्ण देहधारियों का प्राणरूपवायु, सम्पूर्ण अर्थ को देने वाले वैश्रवण को छोड़ शङ्कर को क्यों भजती हो। मुनियों के ऐसा कहने पर पार्वती कुपित हो क्रोध से लाल नेत्र कर कड़कड़ाती हुई बोली कि—आपलोग सम्पूर्ण प्रजापति के समान हो एवं सर्वज्ञ हो फिर भी निरन्तर संसार के प्रभु, अज, ईशान, अव्यक्त, अनन्त महिमावाले उस आशुतोष भगवान् शङ्कर को निश्चयकर आप नहीं जानते हैं। जिस भगवान् शङ्कर को ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवता, महर्षि आदि भी पूजते हैं। जिसके प्रभाव को ब्रह्मादि देवता भी नहीं जानते हैं वह अनन्त पराक्रमी व अनन्त प्रभाव वाला है ऐसा कहते हुये पार्वती ने कहा—

नाहं भद्राः किलेच्छामि ऋते शर्वात् पिनाकिनः।
स्थितश्च तारतम्येन प्राणिनां परमन्त्विदम्॥
धीर्वलैश्वर्यकार्यादिप्रमाणं महतां महत्।
यस्मान्न किञ्चिदपरं सर्वं यस्मात् प्रवर्त्तते॥

यस्यैश्वर्यमनाद्यन्तं तमहं शरणं गता ।
एष मे व्यवसायश्च दीर्घोऽतिविपरीतकः ॥

अर्थात्—भगवान् शङ्कर को छोड़ कहीं भी कल्याण नहीं देखती हूं। तब सप्तर्षियों ने मा पार्वती से कहा कि हम उस महामहिमशाली देव के ऐश्वर्य को नहीं जानते हैं। आपकी निश्चित दृढ़ता को जानने के लिये ही हम यहां आये हैं। तुम्हारी मनोकामना शीघ्र ही पूर्ण होगी यह कह कर वे भगवान् शङ्कर को देखने हिमालय पर गये और शङ्कराश्रम के द्वारपाल वीरक से बोले कि हम शङ्कर से मिलने आये हैं। तब वीरक ने कहा कि शङ्करजी मन्दाकिनीके तटपर स्नान करने गये हैं। तत्पश्चात् क्षणभर के बाद शङ्कर का आगमन और शङ्कर की आज्ञासे ऋषियों का शङ्करजी से मिलना। प्रसन्न हुए मुनियों द्वारा शङ्कर की स्तुति। तदनन्तर शङ्करजी ने कहा कि मैं हिमालय कन्या के सत्कार्य को जानता हूं। इस कार्य के लिये सभी देवगण उत्सुक हैं।

शङ्कर से वार्ता करके मुनियों ने हिमालय और उसकी स्त्री मेना से विवाह विषय में बातचीत की पुनः पावती के विवाह के लिये शङ्कर का गणों सहित हिमालय के घर में गमन। वहां पर वैवाहिक कार्य की रचना। विवाह के समय सुगन्धित पवन चलने लगी गन्धर्व गायन करने लगे तथा अप्सराएं नृत्य करने लगी। विवाह के पश्चात् हिमालय से बिदाई लेकर शिव पार्वती ने वायुवेग वाले नन्दीश्वर पर बैठ कर मन्दराचल को प्रस्थान किया। शिवपार्वती गृहस्थ धर्म पालन करना। बहुत दिन बीतने के बाद पुत्रेच्छावाली पार्वती सखियों के साथ खिलौने बनाकर खेलने लगी। एक दिन पार्वती सुगन्धित तैल से मर्दन कर उसी चूर्ण (शरीर का मैल) से हाथी के मुखवाला मनुष्य बना उसके साथ क्रीड़ा करने लगी। फिर उसको गङ्गाजल में गिरवा दिया जिससे उसका सुन्दर रूप बन गया

और उसका नाम गाङ्गेय हुआ। ब्रह्माजी ने उसे विनायकों का अधिपति बना दिया। फिर पार्वती अशोक के अङ्कुर को पुत्र बना खेलने लगी इस पर देवमुनियों ने कहा कि हे देवि "प्रायः सुतफलो लोकः पुत्रपौत्रैश्च लभ्यते। अपुत्राश्च प्रजाः प्रायो दृश्यन्ते दैवहेतवः।" इन वृक्षों के पुत्रों से क्या फल होगा इसके अर्थ मर्यादा बनाइए तब देवी पार्वती ने कहा कि जो जल रहित देश में कूआ करवाता है वह जल की बूंद २ पानी से एक वर्ष तक स्वर्ग में रहता है और कहा कि—

दशकूपसमा वापी दश वापीसमो ह्रदः।

दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः। एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी भगवान् शङ्कर ने भी गणेश के नामों की बहुत प्रशंसा की। पार्वती का गणेश के प्रति उपदेश। ब्रह्माजी की आज्ञा से रात्रि का पार्वती के अंग में प्रवेश और पार्वती को कृष्णत्व रूप की प्राप्ति।

१५४ शिवपार्वतीसंवादवर्णनम् ४५५

शिवपार्वती के संवाद में पार्वती के प्रति शङ्करजी का व्यङ्ग वचन। शिववचनों को नहीं सहन करती हुई पार्वती का सुन्दर रूप प्राप्ति के लिये तपस्या को प्रस्थान इसी बीच पुत्र वीरक ने कहा कि मैं भी आपके साथ चलूंगा तत्पश्चात् पार्वती ने वीरक से कहा कि तुम यहीं द्वार रक्षक बन कर रहो जिससे यहां कोई अन्य स्त्री प्रवेश नहीं कर सके।

१५५ पार्वतीतपश्चर्यावर्णनम् ४५७

पार्वती की तपश्चर्या का वर्णन। अन्धक दैत्य की मृत्यु के पश्चात् आडि दैत्य की तपस्या। ब्रह्मा ने आडि दैत्य को वरदान देकर कहा कि जब तुम इस रूप से दूसरे रूप का परिवर्तन करोगे तब मृत्यु होगी अन्यथा नहीं तदनन्तर सर्परूप से आडि दैत्य का शङ्कर के पास जाना तथा शङ्कर द्वारा दैत्य की मृत्यु।

१५६ पार्वतीम्प्रतिब्रह्मवरदानम् ४

पार्वती का वीरक के प्रति क्रोध।

"निर्जगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः"।

अर्थात् भगवती के मुख से सिंहरूपी क्रोध निकला (भगवती सिंहवाहिनी होना माता की उस दुर्दान्त दुर्दमनीय क्रोधावस्था का परिचायक है। आज तक भी स्त्री के ऊपर पुरुषों ने कहीं भी आक्र नहीं किया है जो भी देश इसके विपरीत गया है। उसकी कहीं बलिहार नहीं हुई।)

यही उदाहरण पद्मपुराण में भी आया है। ब्रह्माजी का पार्वती वरदान। वरदान प्राप्ति के अनन्तर पार्वती का हिमालय के पास गमन

१५७ वीरकपार्वतीसंवादः ४६

हिमालय पर वीरक द्वारा पार्वती को शङ्कर के पास जाने से रोकन तदनन्तर पार्वती का वीरक पर क्रोध एवं शाप। (यहां पर यह कहते आवश्यकीय है कि माता पार्वती का क्रोध संसार में प्रलयङ्कारी हु इस विषय में सद्गृहस्थों को चाहिये कि अपनी गृहिणी, मा बहिन आदि को कभी भी क्रोधित न होने दें क्योंकि उनके क्रोधि होने से लक्ष्मी एवं कीर्ति नष्ट हो जाती है एवं वही क्रोध है संसार उत्थान का अवरोधक। इसलिये उनको सदैव प्रसन्नचित्त रक्खें)। पश्चा रोकने के रहस्य खुलने पर पार्वती को पश्चात्ताप होना तथा क्रोधकी नि करना। यथा—

अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः।
क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्॥
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम्।

विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः ॥

पार्वती के ऐसा कहने पर वीरकने पार्वती की स्तुति की।

वीरक की स्तुति से प्रसन्न हो पति के पास गई तत्पश्चात् पार्वती के दक्षिण कुक्षि से चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको कुत्सित दैत्यों को मारनेवाले कुमार नामक पुत्र को उत्पत्ति हुई। कुमार की लोक में स्कन्द, विशाख, षण्मुख और कार्तिकेय नाम से ख्याति हुई। पार्वती पुत्र कुमार की देवताओं द्वारा स्तुति। देवताओं की तारकासुर को वध करने के लिये कुमार से प्रार्थना। तदनन्तर इन्द्र का संसार के कण्टक रूप तारकासुर के पास दूत का भेजना। दूत एवं तारकासुर का संवाद। सिद्ध चारणों द्वारा असुरों के हृदय को दारण करनेवाली कुमार की जय गाथा।

देववन्दियों द्वारा कुमार की जयगाथा सुनकर ब्रह्माजी के वाक्यों का स्मरण कि तुम्हारी मृत्यु कुमार द्वारा होगी। इस बातको स्मरण कर तारकासुर अपने अनुगामियों के साथ शोकग्रस्त चित्त से अपने भवन से निकला। कालनेमि आदि दैत्य क्रोध से युक्त हो कुमार से युद्ध करने के लिये दौड़े। तारकासुरने कुमार को सामने देख कर कहा कि तुम बालक हो अभी तो तुम्हारी अवस्था गेंद खेलने की है क्या तुम संग्राम में भयानक दैत्यों से युद्ध करने आये हो?। ऐसा सुनकर कुमारने कहा तुम मुझे बालक मत समझो मैं बालरूप काल सर्प हूं। तदुपरान्त कुमार और तारकासुर का युद्ध। स्कन्द की तारकासुर पर विजय।

१६० नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्, हिरण्यकशिपुवैभववर्णनम् ४६

पहिले सत्ययुग में दैत्यों में हिरण्यकशिपु नामक आदिपुरुष हुआ। उ
ग्यारह हजार वर्ष तक जल में रहकर कठिन तपस्या की। जिससे प्र
हो ब्रह्माजी ने दैत्यराज को वर के लिये कहा। उसने ब्रह्माजी से
अद्भुत वरदान मांगा कि मैं किसी भी मनुष्य, देवता, राक्षस, पि
आदि से न मारा जाऊं, न किसी के शाप से, न किसी अस्त्र श
से, न दिन में न रात में न जल में न स्थल में न अन्तरिक्ष में मेरी मृत्यु हो
ब्रह्माजी ने कहा तथास्तु। परन्तु देवताओं को इससे बड़ी चिन्ता हुई
वे भगवान् विष्णु की शरण में ऐसे उद्दण्ड भयंकर उत्पात मचाने
राक्षस के वध के लिये गये और स्तुति की। प्रसन्न हुये भगवान् ने उन
आर्त्त प्रार्थना को मानकर नरसिंह रूप में अपने वक्षस्थल पर नखों
उस दैत्य को मारने की बात कही। हिरण्यकशिपु बड़ापराक्रमी
तेजस्वी था भगवान् उसके भवन में नरसिंह रूप में अवतीर्ण हुए।

१६१ नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम् ४७

हिरण्यकशिपुनरसिंहयुद्धवर्णनम् ४७

नरसिंह भगवान् को अवतरित हुए देखकर भक्तप्रवर प्रह्लाद ने हिर
कशिपु से कहा कि ऐसा अद्भुत रूप न कभी देखा है न सुना है यह अ
किक दिव्य शरीर निश्चित रूप से दैत्यों का अन्त करने के लिये प्रगट हु
है। इस भगवान् नरसिंहके शरीर में सम्पूर्ण समुद्र, नदियां, हिमालय आ
पर्वत, नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, वसुओं सहित, आदित्य कुबेर, वरुण, यम, इ
मरुत, देव, गन्धर्व, ऋषि, नाग, यक्ष, पिशाच, राक्षस, ब्रह्मा, ललाटस्थ शङ्क
स्थावर जंगम, आप और मैं तथा सम्पूर्ण चराचर जगत स्थित है
प्रह्लादके वचनों को सुनकर आदिदैत्य हिरणाकशिपुने सम्पूर्ण दानवग

को आज्ञा दी कि इस वनगोचर को पकड़ कर बांध दो। तत्पश्चात् भगवान् नरसिंह ने कालरूप हो सम्पूर्ण दानवगणों की सभा को भंग कर दिया। हिरण्यकशिपु से भीषण युद्ध का वर्णन।

अग्नि के तुल्य पराक्रमी भगवान् नरसिंह से त्रासित हुए दिति के पुत्र भय से विचलित हो गये। तदनन्तर अन्य दैत्यगणने क्रोधित हो प्रचण्ड वेग से अस्त्र शस्त्रों की वृष्टि की परन्तु भगवान् नरसिंह के शरीर में उन शस्त्रास्त्रों से कोई भी पीड़ा नहीं हुई। पुनः क्रोधित हो उन दानवों ने सर्प की तरह फूंकार मारते हुए बाणों की वृष्टि की। उन सबको भी भगवान् ने नष्ट कर दिया पश्चात् हिरण्यकशिपु ने बिजली के सदृश कान्तिवाली प्रज्वलित घोर शक्ति का प्रहार किया जिसे उन्होंने हुंकार से ही नष्ट कर दिया। फिर गर्जना करते हुए भगवान् ने उस दानवेश्वर की सेनाको तृणकी तरह उत्पाटित कर दिया। इस प्रकार अपनी सेना को क्षत विक्षत देखकर दैत्योंने पत्थरों की वर्षा और प्रचण्ड वेगवाली जलधारा की वर्षा की परन्तु उस देवको वे स्पर्श भी न कर सकीं। तदनन्तर दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने अग्निवर्षा, प्रचण्डवायु तथा दानवी माया के बल से भगवान् को पराजित करने के लिये अथक परिश्रम किया, परन्तु उस सम्पूर्ण दानवी मायाको प्रभुने इस प्रकार नाश किया जैसे सूर्य-उदित होते ही अन्धकार को नष्ट कर देता है। फिर भगवान् ने कुपित हो दानवेश्वर को पकड़ नखों से विदीर्ण कर युद्ध में मार दिया जिससे सम्पूर्ण जगत प्रफुल्लित हो गया तथा देवताओं ने भगवान् नरसिंह की स्तुति की।

मनु द्वारा भगवान् मत्स्य से प्रश्न-कि जब सृष्टि प्रलयकालीन जल में

विलीन हो गई फिर भगवान् जनार्दन के नाभिकमल से सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई ? प्रलयकालीन जल में सोते हुए पद्मनाभ भगवान् के प्रभाव से तीर्थाग्रणी पुष्कर राज में ऋषिगणों सहित देवता कैसे प्रगट हुए ? उस जल में भगवान् कितने समय तक सोते हैं एवं कितने काल से उठते हैं और कब निखिल जगत् की रचना करते हैं ? यह सम्पूर्ण मेरे लिये वर्णन करो। मनु के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् मत्स्य ने कहा कि सत्य, अमृत, अक्षर, तीनों काल, चर, अचर सम्पूर्ण इसी भगवान् पुरुषोत्तम में स्थित हैं उससे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

१६४ चातुर्युगगतिवर्णनम् ४८४

पहिला सत्ययुग चार हजार दिव्य वर्षों का है। सत्ययुग में धर्म के चार पैर तथा अधर्म बिना पैर अर्थात् उस काल में धर्म का पूर्ण उत्कर्ष था अधर्म का नाम भी नहीं था। सभी मनुष्य अपने २ वर्णाश्रम एवं धर्म में लीन थे। दूसरा त्रेतायुग तीन हजार वर्षों का दुगुनी सन्ध्या से युक्त है। त्रेता में धर्म में कुछ विकार होने से वर्ण धर्म एवं आश्रमों में दुर्बलता आ गई। तीसरा द्वापर दो हजार वर्षों का दुगुनी संध्या से युक्त है। इस युग में सम्पूर्ण प्राणी अर्थ लोलुप एवं रजोगुणी प्रकृति के हो गये; चतुर्थ कलियुग एक हजार दो सौ वर्ष का दुगुनी संध्या से युक्त है। जिस कलियुग में धर्म का पूर्ण ह्रास होकर प्राणियों की अधर्म में प्रवृत्ति हो गई। इसमें मनुष्यों की विषयभोग में लिप्सा की वृद्धि होकर उनके सात्विक भावों का ह्रास हो गया।

१६५ प्रलयकालवर्णनम् ४८५

पुराण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण ने सत्त्वमूर्ति सूर्यरूप होकर अपनी प्रचण्ड किरणों से समुद्रों को शोषित कर सम्पूर्ण नदी कूप एवं पर्वतों के

झरनों के जल को भी सुखा दिया। उनने अपनी प्रलयकालीन उग्र किरणों से पृथ्वी को भेद न करता हुआ पाताल के जल को भी खींच लिया तथा वायु ने भी सम्पूर्ण जगत के प्राणों को अपने में समाविष्ट कर लिया। इसी प्रकार सब तत्व अपने २ गुणों को खींच उस हृषीकेश भगवान् में लीन हो गये तदनन्तर वायु के झोकों से द्रुमशाखाओं में घर्षण होने से अग्नि पैदा हुई जिस सम्वर्तक अग्नि से सम्पूर्ण संसार, पर्वत, वृक्ष आदि सहित भस्मीभूत हो गया पश्चात् मूसलाधार वृष्टि से संसार जलप्लावित हो गया एवं अमित-पराक्रमी भगवान् पुरुषोत्तम भी अपने सत्वरूप में स्थित हो उस एकार्णव जल में योग को धारण कर सो गये।

यज्ञावतार का वर्णन। भगवान् मत्स्य द्वारा प्रथम वक्त्रादि से ब्रह्मा, उद्गातृ और सामगादि की उत्पत्ति का कथन। भगवान् के मुख में प्रविष्ट हुआ मार्कण्डेय उस भगवान् के कुक्षि में तीर्थ प्रसङ्ग से सम्पूर्ण पृथ्वी, तीर्थ, आश्रम, देवमन्दिर और नगरादिकों को देखकर आश्चर्यचकित हुआ। पुनः मुख से बाहर निकला परन्तु देवमाया से कुछ भी नहीं जान सका। जिधर देखता है, सिवा जल के कुछ भी भान नहीं होता। ऐसा देखकर उसको भयंकर भय पैदा हो गया एवं चिन्ता करने लगा कि वस्तुतः यह मुझे मोह हो रहा है या स्वप्न है ऐसा विचार करता हुआ फिर भगवान् के मुख में प्रविष्ट हुआ। वहां फिर समुद्र में मग्न मेघ के सदृश सूर्य की तरह तेज से देदीप्यमान देव को देखकर आप कौन हैं? इस बात को जानने के लिये समीप में आया। फिर कुक्षि में प्रवेश किया फिर वही दृश्य देखा पुनः बाहर आकर देखता है कि एक बालक वटके पत्ते पर सोया है उसके समीप जाकर पूछता है आप कौन हैं उत्तर में भगवान् ने कहा हे वत्स! तेरा पिता हूं। तुम्हारे पिता अङ्गिराने पुत्र की कामना से मेरी आराधना की थी। उसका

तपस्या से प्रसन्न होकर पुत्र होनेका वरदान दिया था। तब मार्कण्डेयने कहा कि मैं आपकी माया देखना चाहता हूं तब भगवान् ने मार्कण्डेय को विभूति योग का उपदेश किया और कहा कि संसार में जितने भी जलचर, स्थलचर, नभचर प्राणी हैं उन सब में मेरो ही स्वरूप जान। तदनन्तर मार्कण्डेय का भगवान् की कुक्षि में प्रवेश।

प्रलयानन्तर फिर संसार को रचने की इच्छा से समुद्र को क्षुभित कर शब्दादि स्थूलभूतों को उत्पन्न किया और स्वयं उसी जल में क्रीड़ा करता हुआ अपनी नाभि से कमल को उत्पन्न किया इसका वर्णन।

भगवान् ने पद्म को पैदाकर उसके मध्य में सम्पूर्ण लोकों की रचना करने वाले ब्रह्मा को उत्पन्न किया। उसी पद्म को पुराण जानने वाले पृथ्वी रूप कहते हैं। जो पद्मा है उसे रसादेवी तथा जो पद्मसार गुरु हैं वे पर्वत हैं इस प्रकार नदी, पर्वत और तालाब आदिकी उत्पत्ति बताई है।

पुष्करराज में ब्रह्मा के तप में स्थित होने पर मधुकैटभ नामक दैत्यों ने वहां आकर विघ्न किया तथा कहा कि तुम कौन हो? यहां आवो और हम से युद्ध करो तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि जिस प्रभु से संसार उत्पन्न होता है वही तुम्हें नष्ट करेगा पीछे भगवान् नारायण ने आत्ममाया से उन दोनों दैत्यों को खींच लिया। तब वे पद्मनाभ भगवान् के सामने प्रणाम कर स्थित हो गये तथा कहा कि हे भगवन् आप संसार के कारण हैं हमारी रक्षा कीजिये आपका दर्शन विफल नहीं होता है अतः वरदान

दीजिये। भगवान् ने कहा तुम क्या चाहते हो तब उन्होंने यह वर मांगा कि हम आपके सिवा किसी से न मरें।

ब्रह्म को जानने वाले ब्रह्मा ने पुष्कर में ऊर्ध्ववाहु होकर घोर तपस्या की। वहीं पर भगवान् नारायण दूसरा रूप धारण कर योगाचार्य रूप में तथा मतिमान् सांख्याचार्य कपिल उपस्थित हुए। ब्रह्माजी से मानस पुत्रों की उत्पत्ति तथा दक्षादिकों की उत्पत्ति का वर्णन। पुष्कर का प्रादुर्भाव एवं उसके माहात्म्य तथा श्रवण पठन का फल कथन।

वृत्रासुर वधके अनन्तर तारकासुरका देवताओंसे युद्ध। युद्ध में पराजित देवताओं का अपने स्थानों को छोड़कर भगवान् विष्णुकी शरण में जाना। शरणमें आये हुए भयभीत देवताओंको देखकर भगवान् ने दानवोंको विनाश करने के लिये मन में संकल्प किया पुनः आकाश में स्थित देवताओं से भगवान् ने कहा कि भय मत करो तुम्हारा कल्याण होगा। मेरे द्वारा सम्पूर्ण दानव पराजित हो गये हैं आपलोग त्रिलोकी को पुनः ग्रहण करो भगवान्‌की इस प्रतिज्ञाको सुनकर देवता हर्षयुक्त हो गये तथा ग्रह नक्षत्र समुद्रादि भी पूर्ववत् मर्यादामें स्थित हो गये।

दैत्यों के विनाश के लिये विष्णु भगवान् की प्रतिज्ञा सुनकर मय, विरोचन, हयग्रीव, वाराह, खर, त्वष्टा, विप्रचित्ति, बलिपुत्र अरिष्टासुर, लम्ब और स्वर्भानु आदि दैत्य अपने अपने वाहनों में स्थित अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये विपुल उद्योग करने लगे।

दैत्य सेनाओं का विस्तार सुनकर देवताओं ने भी अपनी सेना को सुसज्जित किया। द्वादश आदित्य, अष्टवसु, एकादश रूद्र, और लोकपालादि देवताओं का अपनी अपनी सेनाओं से युक्त हो अपने अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर गुरु बृहस्पति से कल्याण का आशीर्वाद ग्रहण कर युद्ध के लिये प्रस्थान करना। गुरुशुक्राचार्य ने भी असुरों को आशीर्वाद दिया।

परस्पर विजय की इच्छावाले देव दानवों का तुमुल युद्ध। अनेक शस्त्रास्त्रों से युक्त देवता और दानवों का धर्म अधर्म एवं अभिमान और विनय से युक्त अत्यन्त अद्भुत युद्ध। जिससे समस्त संसार भय से उद्विग्न हो गया वहीं पर मय दानव द्वारा छोड़ी हुई माया से देव सेना को जलती हुई देखकर देवराज इन्द्र से वरुण ने कहा कि हे इन्द्र यह और्व नामक अग्नि है। उर्व की जंघा से इसकी उत्पत्ति है इसने पहिले ब्रह्मचर्यपूर्वक कठिन तपस्या की है ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मणको ब्राह्मणत्व की प्राप्ति है तथा तप, योग धैर्य और यश ब्रह्मचर्य के बिना फलीभूत नहीं होते हैं जैसे—

ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणा दिवि संस्थिताः॥
नास्ति योगं विना सिद्धिर्नवा सिद्धिं विना यशः।
नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात्परन्तपः॥

इस लिये शीतरश्मि चन्द्रमा को मेरे साथ दीजिये जिससे इस माया को नष्ट करदूंगा।

१७५ देवासुरसंग्रामवर्णनम् ५११

सोम एवं वरुण द्वारा मय माया का शमन। पुनः मय ने दैत्य सेनाको सोम वरुण द्वारा दुःखित देखकर पार्वतीय मायाकी रचना की अर्थात् देवताओं पर पत्थरोंकी एवं वृक्षोंकी वृष्टि करना प्रारम्भ किया। तदनन्तर उस मायाको शान्त करने के लिए भगवान् विष्णु द्वारा अग्नि और वायु को दैत्य सेनाको नष्ट करने के लिए प्रेरित करना जिससे त्रासित हुए दैत्य रणाङ्गण से विमुख हो गये तथा सर्वत्र शान्ति हो गई। तदनन्तर विख्यात दानव कालनेमि ने अपने युद्ध से दानवों को हर्षित कर देवताओं को त्रासित किया।

१७६ कालनेमिवृत्तान्तवर्णनम् ५१४

कालनेमि बढ़े हुए इन्द्रादि देवताओं को अपने पराक्रम से हीन तेज कर ब्रह्माजी के स्थान में स्थित हो गया। पुनः देवदानवों का भयङ्कर युद्ध तत्पश्चात् क्रोधित कालनेमि ने इन्द्र, वरुण और सोम आदि देवताओं को परास्त कर सब सम्पत्ति छीन ली। उस कालनेमि को देवता तथा दैत्यगण पितामह ब्रह्माजी की तरह प्रसन्न करने लगे।

१७७ कालनेमिना सह विष्णुयुद्धम् ५१७

कालनेमि को कर्मों की विपरीतता से वेद, धर्म, क्षमा, सत्य और नारायणाश्रित लक्ष्मी नहीं मिली। वह स्वयं इन पांचों के अभाव से क्रोधित हुआ भगवान् विष्णु के स्थान को खोजता हुआ नारायण के पास पहुंचा। वहां पर भगवान् को शंख, चक्र, गदा धारण किये हुए दानवों के विनाश के लिए गदा घुमाते हुए गरुड़ पर चढ़ने हुए देखा। भगवान् को स्वस्थ चित्त रण में स्थित देख युद्ध के लिये ललकारने हुए भला बुरा कहा। उसी समय कालनेमि को प्रजापति की मर्यादा को नष्ट करनेवाला कहकर युद्ध के लिए आवाहन किया तथा

अपने अपने स्थानों में देवताओं को पुनः स्थापित कर दूंगा ऐसा कहते हुए भगवान् पर अट्टहास कर क्रोध से अपने सौ हाथों को उठाकर भगवान् विष्णु की छाती पर प्रहार किया तथा गरुड़ के सिर पर भी गदा छोड़ी जिससे गरुड़ को दुःखित देखकर भगवान् ने अपने चक्र से कालनेमि के सौ सिर तथा सौ हाथोंको नष्ट कर दिया पुनः गरुड़ने उसको भूमिपर गिरवा दिया। तदनन्तर ब्रह्माजी द्वारा विष्णु की स्तुति। भगवान् द्वारा देवताओं को अपने अपने अधिकारों का देना एवं ब्रह्माजी सहित अपने लोकमें गमन।

ऋषियों का भवमाहात्म्यके लिये सूतजी से प्रश्न। सूतजीने भवमाहात्म्य सूचक अन्धकासुरका वृत्तान्त वर्णन किया। अन्धकासुरने एकबार भगवान् शङ्कर को पार्वतीजी के साथ बैठे हुए देखकर मा भगवती को हरण करने की इच्छा की। जिससे भगवान् शङ्कर के साथ उसका घोर युद्ध हुआ। युद्ध में उसने राक्षसी माया रची जिससे कुपित हो भगवान् शङ्कर ने मातृगणों को उत्पन्न किया। मातृकाओं ने अन्य अन्धकों के रक्त को पान किया और अन्धकों में जो मूल पुरुष था उसको भगवान् शङ्कर ने अपने गणों का स्वामी वना दिया। उन मातृकाओंने फिर शङ्कर से देव, असुर और मनुष्यों को खानेके लिए आज्ञा मांगो। शङ्करजी ने कहा मातृकायें प्रजा के रक्षा के लिए ही होती हैं तत्पश्चात् मातृकाओं ने उस वचन का उल्लङ्घन कर सृष्टिके भक्षण के लिए उद्यम किया। उनके इस जघन्य कार्य को रोकने लिए भगवान् शङ्कर से प्रार्थित नृसिंह भगवान् का प्रादुर्भाव और भगवान् नृसिंह द्वारा निर्मित वाणीश्वर्यादि मातृकाओं द्वारा रुद्र मातृकाओं का पराभव एवं नृसिंह की स्तुति।

१७९. वाराणस्या माहात्म्यम् ५२६

ऋषियों का सूतजी से प्रश्न ? कि पिङ्गल गणत्व को कैसे प्राप्त हुआ इसपर सूतजी ने बताया कि पिङ्गल पर बनारस की पूर्ण कृपा होनेसे उसको ऊंचा स्थान मिला कहते हैं। पूर्णभद्र के सुपुत्र हरिकेश की भगवान् शङ्करजी में निश्चल भक्ति थी वह उठते बैठते शङ्करजी में ही तन्मय रहता था। एकबार पिता ने पुत्र को इस भक्तिपूर्ण स्थिति के लिए कड़ी जबान कही। वह घर बार छोड़कर वाराणसी में आकर तप करने लगा। वहां सारा शरीर वल्मीक से पूर्ण हो गया केवल हड्डी हड्डी हो रह गई। तब भगवती पार्वतीजी ने शङ्करजी से उस स्थान को देखने की इच्छा प्रगट की जहां सुन्दर उद्यानादि हैं। श्री भगवान् ने फिर बनारस क्षेत्र की अमित महिमा का वर्णन किया जहां सम्पूर्ण प्राणीमात्र को मोक्ष मिलता है। देवाधिदेव शङ्करजीने इस सिद्धस्थान पर तपस्या करनेवाले गुह्य क्षेत्रकी विशेषतायें बतलाई। नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, पुष्कर और प्रयाग से कहीं विशेष माहात्म्य बनारस क्षेत्र का है। इस स्थान पर मनुष्य मुझे भजता हुआ परमगति को प्राप्त करता है, उन्होंने नाना महान् सिद्ध योगियों को गिनाकर उन्हें जो सिद्धियां मिलीं उसका परिगणन कर इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता बतलाई।

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता,
रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि !।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि,
पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः॥

इसके बाद शङ्करजी ने पार्वतीजी को जहां यक्षपुत्र हरिकेश तपस्या कर रहा था वहां ले जाकर उस हड्डी के कङ्काल को दिखाया। दयामयी पार्वतीजी ने शङ्करजी से ऐसे भक्त की रक्षा करने और वर देनेकी प्रार्थना

की। भगवान् ने उसे उद्बोधन किया तो उसने उनके चरणों में भक्ति मांगी और शङ्कर का अविमुक्त पद मांगा। इस पर शङ्करजी ने उसे गणाध्यक्ष होकर आगे जन्म में अपना जन्म सफल करने का वरदान दिया एवं कैलाशधाम पधार गये।

१८० वाराणसीस्थक्षेत्रमाहात्म्यम् ५३३

वाराणसी क्षेत्र का माहात्म्य जो नन्दिकेश्वरजी ने बताया उसीको भगवती पार्वतीजी ने शङ्करजी से पूछा तब शङ्करजी ने इस सिद्ध क्षेत्र में सम्पूर्ण सत्कर्म किया हुआ अनन्त फल को देनेवाला है ऐसा कहा। जैसे—

अविमुक्ते परासिद्धिरविमुक्ते परागतिः। जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्॥
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम्।

१८१ वाराणसीमाहात्म्यम् ५३५

वाराणसी क्षेत्र अविमुक्त है यह सम्पूर्ण गुह्य स्थानों में श्रेष्ठ है। यहां सिद्धि हाथ के नीचे ही धरी रहती है जो कोई इस पवित्र क्षेत्र में एकमास पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत पालन करता हुआ रहता है उसे इष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।

१८२ वाराणसी माहात्म्यम् ५३६

वाराणस्यां दानमाहात्म्यम् ५४१

सम्पूर्ण सिद्धिस्थानों में श्रेष्ठ यह वाराणसी क्षेत्र है। इसके लिये पार्वती ने शङ्कर से उसके निवासियों की विशेषता के लिए प्रश्न किया। शङ्करजी ने कहा कि यहां भगवती गङ्गा उत्तरवाहिनी विराजमान है। यहां विश्वनाथ के दर्शन होनेसे यह स्थान मुझे प्रियतम है। यहां प्रलय के समय सभी स्थावर जङ्गम प्राणी मेरे में समा जाते हैं। उस रूपमें मैं सबकी पूजा ग्रहण करता हूं इसलिये यह स्थान श्रेष्ठ है। इस पवित्र तीर्थ वाराणसी में

जो हजारों जन्मों में अन्य स्थानों में दुर्लभ है वह यहां एक ही जन्म में मिल जाता है। साङ्ख्य और योग की प्रक्रिया का निरूपण और वाराणसीक्षेत्र का विस्तार। इस तीर्थ में वज्रसूची पाप भी मिट जाता है।

१८३ वाराणसी क्षेत्र माहात्म्यम्, ५४३

इस पवित्र स्थान में तपस्या और साधना करने वालों का पुनर्जन्म नहीं होता। जो लोग इस अविमुक्त क्षेत्र का सेवन नहीं करते वे सम्पूर्ण सिद्धियों से वञ्चित ही रह जाते हैं। यहां संक्षेप में सम्पूर्ण भुवन और सम्पूर्ण संसार भर की सिद्धियां निवास करती हैं। भगवान् शङ्करजी के द्वारा रक्षित यह भूमि शुभकर्मानुष्ठान के लिये सदा ही सेवन करने योग्य है। यहां पर तप साधन करने से बहुत उत्कृष्ट गति मिलती है।

१८४ वाराणसीमाहात्म्यम्, वाराणस्यां व्यासतपश्चर्यावर्णनम् ५४६

इस पवित्र क्षेत्र में योग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। व्यासजी ने इस क्षेत्र को श्राप दिया कि तीन पीढ़ी तक विद्या धन एवं मित्रता न रहेगी, जब पार्वतीजीने इसका कारण पूछा तो भगवान् शङ्करने बताया कि एकबार बारहवर्ष तक व्यासजीने तपस्या की थी तब एकाएक उन्हें भूख लगी किसीने भी उन्हें आधाग्रास भी नहीं दिया ऐसा रहते हुए उन्हें ६ मास बीत गये। तब उन्हें उपर्युक्त श्राप देनेको विवश होना पड़ा। इसको निवारण करने के लिये पार्वती और साक्षात् शङ्करजी मानुष रूप धारण कर आये और व्यास-जी से भिक्षा लेनेको आग्रह किया। भिक्षा से तृप्त हुए व्यासजी ने फिर कहा कि हे भगवन् आप मुझे चतुर्दशी और अष्टमी को इस स्थान में प्रवेश करने की आज्ञा दें। इस काशी क्षेत्र का माहात्म्य वर्णनातीत है। शङ्करजी ने बनारस में तीर्थों के पांच सार गिनाये विश्वेश्वर आनन्दकानन,

दशाश्वमेध, लोलार्क, केशव विन्दुमाधव और मणिकर्णिका। यह अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी का संक्षेप में माहात्म्य सबको मंगलदायी हो।

ऋषियोंका सूतजीसे नर्मदामाहात्म्य को सुनाने के लिये आग्रह करना। सूतजी ने कहा कि इसी प्रश्न को पाण्डवों को पहले मार्कण्डेयजीने समझाया था वही मैं बतला रहा हूं। उन्हीं के प्रश्नोत्तरके रूपमें यह माहात्म्य बतलाया गया है। नर्मदा सम्पूर्ण नदियोंमें श्रेष्ठ है। यह सम्पूर्ण स्थावर चरप्राणियोंको तारनेवाली है जैसे कनखलमें गङ्गाजी और कुरुक्षेत्र में सरस्वती पुण्य नदी है वैसे ग्राम, वन्य और सब स्थानों में नर्मदा है। सरस्वती के जलमें तीन दिन स्नान करने से, सप्ताह से यमुना जलमें तथा गङ्गाजल से तत्काल शुद्धि होती है परन्तु नर्मदा के जल के दर्शन मात्रसे शुद्धि हो जाती है।

कलिङ्ग देशके पश्चार्द्धमें अमर कण्टक पर्वतसे यह पवित्र नदी बहती है यहां बड़े बड़े ऋषि तपोधन सभी ने तपस्या कर परम सिद्धियां पाई हैं। यहां नियम से रहकर स्नान करने से सम्पूर्ण पितर कल्पान्त तक तृप्त होते हैं। यहां तर्पण का बड़ा भारी माहात्म्य है। यह क्षेत्र दो योजन विस्तार वाला है ६० करोड़ और ६० हजार तीर्थों का माहात्म्य यहां स्नान करने से मिलता है। यहां जप, तप, व्रत और दान का अखण्ड फल है। यहां वज्र पाप भी छूट जाते हैं। कहते हैं कि नर्मदा और समुद्र के सङ्गमपर स्नान करने का दशगुणा पुण्य होता है। इस प्रकार अमरकण्टक माहात्म्य का संक्षेप में वर्णन।

नर्मदा माहात्म्य को लेकर ज्वालेश्वर तीर्थके महत्त्वका निरूपण। बाण

साथ ब्रह्मावर्त आम्रातकेश्वर, कपिलातीर्थ, करजतीर्थ, कुण्डलेश्वर, विमलेश्वर, जहां प्रसिद्ध देवशिला है। फिर पुष्करणी आदिका सुन्दर निरूपण निःसन्देह इतने तीर्थों में स्नान करने से काय, मन और वाणी की शुद्धि होती है।

१६० नर्मदामाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ५६५

शूलभेद का माहात्म्य जिसमें स्नान कर भगवान् शिवको पूजने से हजार गोदानका फल होता है। यहां तीन रात रहकर शिवपूजन करने से आवागमन से छूट जाता है। भीमेश्वर, नारदेश्वर, नन्दिकेश, वरेश और स्वतन्त्रेश्वर आदि तीर्थों का वर्णन। कोटीश्वर तीर्थ में स्नान करने से सदेह स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यहां भोजन, वस्त्र आदिका दान, तप, जप, श्राद्ध, तर्पण का अनन्त गुणा फल होता है। जो मनुष्य नन्दितीर्थ में स्नान करते हैं भगवान् व्यासदेव उन पर प्रसन्न होते हैं। यहां पर प्रदक्षिणा करनेवालों को अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है। स्कन्दतीर्थ, लिङ्गसार, घटेश्वर, कोटितीर्थ, अङ्गारेश और कठेश्वर के दिव्य तीर्थों का वर्णन और उनका प्रभाव।

१६१ नर्मदामाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यकथनम् ५७२
शुक्लतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

शुक्ल तीर्थ की उत्पत्ति और उसके महत्त्व, गुण तथा प्रभाव का सुन्दर वर्णन शुक्लतीर्थ में भगवान् शिव स्वयं कैलास से निकल कर आये हैं। यह प्रसिद्ध सिद्धतीर्थ है। शुक्लतीर्थ में वैशाख और चैत्र मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को स्नान कर सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल पाता है। इस दिन जागरण का बहुत बड़ा फल है।

नर्मदा माहात्म्य को लेकर नरकादि तीर्थ यात्रा का वर्णन। भृगुक्षेत्रकी उत्पत्ति और उसके माहात्म्य का वर्णन। धौतपाप और एरण्डी तीर्थ आदि का वर्णन। भगवान् का भृगुजी द्वारा करुणाभ्युदय स्तोत्र निरूपण। इस क्षेत्र में दान, जप, तप सब अक्षय होता है। इसमें स्नान करने मात्र से कोई भी तपस्या कभी भी क्षरण नहीं होती जो कोई भृगुतीर्थ का माहात्म्य सुनाता है वह सब पापों से छूट कर रुद्रलोक को जाता है। आगे दीपेश्वर एरण्डी तीर्थ और देवतीर्थों का वर्णन है।

नर्मदामाहात्म्य के प्रसङ्ग में अंकुशादि तीर्थों का वर्णन। ऋषिकन्या तीर्थ की उत्पत्ति और स्वर्ण बिन्दु आदि तीर्थों का माहात्म्य वर्णन। नर्मदा-माहात्म्य के साथ इससे लाभ उठानेवाले मनुष्य मात्र को नाना प्रकार की फल प्राप्ति का निरूपण।

ऋषियों के प्रवरों को बतलाते हुए ब्रह्मादिकों की पुनरुत्पत्ति और भृगुवंशज ऋषिमहर्षियों का वर्णन। इन गोत्रकार ऋषिमहर्षियों के नाम कीर्तन करनेवाले व्यक्ति के समग्र पाप नष्ट हो जाते हैं।

आङ्गिरस वंशज ऋषियों का नाम गोत्र वंश तथा प्रवरों का वर्णन।

अत्रि वंशज ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश और प्रवर का वर्णन।

तभी से पलक मारने का नाम निमेष हुआ और वशिष्ठजी से कहा कि तुम मित्रावरुण के पुत्र बनोगे। वहीं पर भी तुम्हारा नाम वशिष्ठ ही होगा। दो जन्म बीतने पर भी तुम्हें अपना पूर्व जन्म का स्मरण रहेगा। एकबार मित्र और वरुण वसन्त ऋतु में तपस्या कर रहे थे, वहां पर उर्वशी पुष्प तोड़ने के लिये आई। उसे देखकर दोनों ही उर्वशी पर मोहित हो गये और उनके वीर्यका स्खलन मृगासन पर ही हो गया। ऋषियों के श्राप के भय से उन्होंने उस वीर्य को जलपात्र में रख छोड़ा और उसीसे वशिष्ठ और अगस्त्य दोनों महानुभावों की उत्पत्ति हुई। वशिष्ठजी का विवाह नारदकी बहिन अरुन्धती के साथ हुआ। उसमें शक्ति उत्पन्न हुए शक्ति से पराशर और उनसे द्वैपायन इस प्रकार पराशर वंश के आगे के वंशजों का वर्णन। अध्याय श्रवण पठन का फल।

प्रवरानुकीर्तन में अगस्त्य, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य के वंशों का कीर्तन।

मनुमत्स्य के सम्वाद के प्रकरण में धर्मवंश वर्णन और धर्म प्रवरों का अनुकीर्तन।

मनु मत्स्य सम्वाद में पितृगाथा का निरूपण। पितरों की यह इच्छा होती है कि हमारे कुल में ऐसा सत्पात्र वंशज हो कि जो हमें जल से पूर्ण नदियों में जलाञ्जलि दे, यथा समय नित्य श्राद्ध करे, त्रयोदशी को, वर्षाकाल में औरमाघमास में पायस मधु और सर्पि (घी) के साथ तृप्तिकारक अन्न से ब्राह्मणों को भोजन करावे या यथाशक्ति जैसा बन पड़े उसी द्रव्य से करे।

इसके साथ साथ गया श्राद्ध, धेनु दान, वृष का उत्सर्ग (छोड़ना) सुवर्ण, पृथ्वी का दान करनेवाला, कूआ, बावड़ी, तालाबों का बनाने वाला और भगवान् का भक्त हो और ऐसा कुल में पैदा हो कि जो विद्वान् लोगोंको धर्मशास्त्रों के पुण्यग्रन्थों की भेट करे। यह पितृगाथा पापों को नाश करने एवं पुण्य को बढ़ानेवाली और लोगों में उन्नति कारक है।

२०४ धेनुदानविधिवर्णनम्। ५९८

धेनु दान की विधि का वर्णन। जो व्यक्ति सोनेके शृङ्ग वाली, चाँदी के खुरोंवाली, पूँछ भी मछला की भाँति सजी हुई और कांस्य के दोहन पात्र के साथ बछड़ेवाली गाय को योग्य विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मण को देता है वह सम्पूर्णलोकों से ऊंचे ब्रह्मलोक को जाता है।

२०५ कृष्णमृगचर्मदानविधिवर्णनम्। ५९९

वैशाखी पूर्णिमा एवं सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण पर, माघी, आषाढ़ी या कार्तिकी पूर्णिमा और उत्तरायण की द्वादशी के अवसर पर योग्य आहिताग्नि द्विज को काले मृग की चर्म (मृगछाल) देने का अनन्त फल है। इसके साथ २ उसके सारे अङ्गोंपर नाना अलङ्कार वस्त्रादि सजाकर प्रभूत दक्षिणादि दान देने से उसका फल कई गुणा बढ़ जाता है।

२०६ वृषोत्सर्गविधिवर्णनम्। ६००

वृषोत्सर्ग के प्रकरण में वृष (सांड) का लक्षण सबसे पहले उस वृष की माता गाय की परीक्षा करे वह अरोगिणा, सब बछड़े जीवित, स्निग्ध वर्णकी, स्निग्ध खुर व सीङ्ग वाली, देखने में सौम्य व मनोहर हो, विस्तीर्ण जघनवाली, नेत्र सौम्य हो, गाय के छः स्थान उन्नत हो आगे का स्थान, पीठ, शिरोभाग कुक्षि (कोख) और श्रोणी। कान, नेत्र, ललाट, पुच्छ, समान और सक्थि (रखने) ये समायत हो साथ ही चारों स्तन भी

ऐसी गौ क बछड़े को सांड के लिये देखे उसका स्कन्ध और ककुद (थुआ) ऊंचा उठा हुआ, उसकी गलकम्बल और पूंछ सीधी कटिप्रदेश चौड़ा वैदूर्यमणि के समान स्वच्छ नेत्र मूंगा के मध्य भाग के समान शृङ्गों का अगला भाग, लम्बी और मोटी पूंछ नौ या अठारह दांत मल्लिका पुष्प के समान आंखोंवाला आगे वर्ण से ताम्र कपिल चिकने बालोंवाला, पीठ पर जरा भुरभुरा रंगवाला चितकबरा सुन्दर होता है। फिर नन्दीमुख आदि कई प्रकार के बैलों के लक्षण और उनका विस्तार से वर्णन। वृषोत्सर्ग और कन्यादान का फल विशेषरूप से समान है।

२०७ पतिव्रतामाहात्म्ये सावित्र्युपाख्यानम्। ६०३

मनुजीने भगवान् मत्स्य से प्रश्न किया कि पतिव्रताओं में श्रेष्ठ कौन है और किसके नामकीर्तन से सब पापोंका नाश हो जाता है तब मत्स्यने उत्तर दिया। सावित्री वह स्त्री रत्न है जिसने कुलको उद्धार कर अपने पतिदेव को मृत्यु के पास से छुड़ाया। वह मद्रदेश के शाकल राजा अश्वपति के बड़ी तपस्या के अनन्तर सावित्री के वर से रानी मालती के गर्भ से सावित्री का जन्म हुआ जब वह विवाह योग्य हुई तो राजाने उसका विवाह द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् से कर दिया। जब नारदजी ने आकर सत्यवान् के क्षीणायु होने की बात कही तो राजा ने विचार किया परन्तु भावी अमिट समझ कर उसने यह सम्बन्ध स्थिर रक्खा। राजा द्युमत्सेन वनमें रहते थे। जब सत्यवान् के दिन निकट आने लगे तो सती सावित्री फिर अपने सास, ससुर और पतिदेव की खूब सेवा करने लगी। अपने पति के गतायु होने के दिन वह स्वयं उसके साथ जंगल में लकड़ी लाने गई।

२०८ सावित्र्युपाख्यानम्। ६०४

सत्यवान् ने वन में वसन्त की शोभा निहार कर सुन्दर वर्णन किया।

इस बियाबान जङ्गल में सुरक्षित स्थान पर सावित्री को छोड़कर दूसरी तरफ बनमें लकड़ी इकट्ठी करने के लिये चला गया, परन्तु सावित्री अपने पति के साथ २ रही।

२०९ सावित्र्युपाख्यानम्। ६०६

जब वह लकड़ी को फाड़ रहा था तो एकाएक शिरमें दर्द होने लगा और सत्यवान् ने सावित्री की गोद में अपना सिर रख दिया मानो वह सो गया हो। उसी समय धर्मराजको काल और मृत्यु के साथ आकर उसके शरीर से अंगुष्ठ मात्र देह को पाश से बांध कर ले जाते हुए देखा। उसके बाद सावित्री ने हाथ जोड़कर दुःखित हृदय से यमराज को अपना हार्द प्रकट किया। यम ने सावित्री को पतिव्रताधर्म का उपदेश किया और यह आशा प्रगट की कि वह अपने सास ससुर की सेवावन्दना करे। फिर सावित्री ने "पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्। अनुगम्य स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः॥ मितन्ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः अमितस्य च दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥" (१७-१८) इसलिये जहां मेरा प्राणधनपति जाता है वहां ही मुझे जाना चाहिये। विधवा का जीवन शून्य है। यम ने इस पति भक्ति पर प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा सावित्री ने कहा कि मेरे अन्धे सास और श्वसुर को आंखें और राज्य वापिस मिल जाय।

२१० सावित्र्युपाख्यानम्। ६०८

सावित्री ने फिर यम से कहा कि सज्जन महाभागों के साथ में आनन्द मिलता है "विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम्। अकारणं जगद्वैरि खलेभ्यो जायते यथा। सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा॥ आप देवों से अधिक है अतः आप से मुझे कोई डर नहीं इस पर प्रसन्न

होकर यम ने दूसरा वर सत्यवान् के जीवन को छोड़कर मांगने को कहा। सावित्री ने कहा, मेरे सौ सहोदर भाईहों यह वर दीजिये। यमने सारे और्ध्वदेहिक काम कर सद्गत पति की मुक्ति की बात कही।

२११ सावित्र्युपाख्यानम्। ६१०

सावित्री को बार बार जानेके लिये कहने पर भी वह नहीं गई और धर्म सङ्गत वचनों से यम को सन्तुष्ट किया। "धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम्। धर्महीनस्य कामार्थौ वन्ध्यासुतसमौ प्रभो ॥३॥

धर्म ही सम्पूर्ण पृथ्वी का प्रतिष्ठापक है एक धर्म ही नित्य है। मनुष्य को धर्म के जो द्वार हैं उनका सेवन करनो आवश्यक है—

"तस्य द्वाराणि यजनन्तपो दानन्दमः क्षमा।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्थानुस्मरणं शुभम् ॥
स्वाध्यायसेवासाधूनां सहवासः सुरार्चनम्।
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम् ॥
इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ॥ २० ॥

मनुष्य को बालपनसे हो धर्म का आचरण करना चाहिये। युवावस्था की अपेक्षा बाल और वृद्धत्व की अपेक्षा युवा मृत्यु को गोदमें अधिक खेलते हैं, फिर बुढ़ापेकी तो बात ही क्या। इन वचनोंसे प्रसन्न होकर धर्मराज ने सत्यवान् के प्राणों को न मांगकर और कोई भी वर मागने को सावित्री से कहा। सावित्रो ने अपने औरस सौ पुत्रों का वरदान मागा क्योंकि संसार में बिना पुत्रवाले की कहीं कोई गति नहीं होती। यमराजने इसके लिये तथास्तु कह कर वर स्वीकार किया।

२१२ सावित्र्युपाख्यानम्। ६१२

सावित्री ने धर्मराज की यम, आदि नामों से प्रशंसा परक स्तुति की

और कहा कि इस राजपुत्र के बिना मेरे सास श्वसुर दोनों दुःखित हैं। आप मेरी रक्षा करें, आप मर्यादा पालक हैं इसको आप जीवित कीजिये। तब यमराज प्रसन्न होकर सावित्री को यथेप्सित वरदान देकर अन्तर्धान कर गये। इस सावित्री के उपाख्यान को पढ़नेवाला भी दीर्घायु का लाभ करता है।

२१३ सावित्र्युपाख्यानम्। ६१३

अब सावित्री जहां पर सत्यवान्का मृत देह रखा गया था वहां पहुंच गई जब धर्मराज ने उसके जीव को छोड़ दिया तो धीरे धीरे उसने अपनी आंखें खोली और सावित्रीसे उस दिनकी गहरी नींदके अनुभवकी बात कही और शीघ्र आश्रम चलनेका प्रस्ताव रक्खा। दोनों आश्रममें आये जहाँ आंखोंवाले द्युमत्सेन और उनकी स्त्री बैठे २ सत्यवान् और सावित्री की उत्कण्ठा से बाट देख रहे थे आकर दोनोंने राजा और रानोका सन्तोष किया। दूसरे दिन सारी प्रजा राजा द्युमत्सेन को फिर राज्य कार्य करनेके लिये लिवाने आई। अब सावित्री के सौ भाई हो गये इस प्रकार पतिव्रता साध्वी सावित्री ने अपने पितृकुल और पतिकुल दोनों को तार दिया।

इसलिये इन साध्वी माताओं और बहनों को घर घर में देवताओं के सदृश पूजा होनी चाहिये।

"तस्मात्साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः।
तासां राजन् प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम्॥ २१॥
तासां तु वाक्यं भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु।
तस्मात्सदा ताः परिपूजनीयाः कामान्समग्रानभिकामयानैः॥ २२॥

२१४ अभिषिक्तस्य राज्ञः कृत्यवर्णनम् ६१५
राजकृत्यवर्णनम्

भगवान् मत्स्य द्वारा मनुजी से अभिषिक्त हुए राजा के कर्तव्यों का

वर्णन। अकेले राजा से शासन जैसे कठिन उत्तरदायित्व के भार का चलाना कठिन है। अतः उसे अपने विश्वासपात्र कुलीन, साहसी, सत्वगुणवाले तेजस्वी धर्मज्ञ, कष्ट सहनेवाले, सहिष्णु, प्रियबोलनेवाले लोगोंको नियुक्त करना चाहिये और उन्हें अच्छे अच्छे पदों पर नियुक्त कर राज्यका कार्य चलावे। राजा की सहाय सम्पत्ति का वर्णन।

"बहुभिर्मन्त्रयेत्काम राजामन्त्रं पृथक् पृथक्। मन्त्रिणामपि नोकुर्यान्मूलमन्त्रप्रकाशनम्

राजा के धर्म बहुत विस्तार से बताये गये हैं।

२१५ राजकृत्यवर्णनम् ६२०

अनुजीवियों (अधिकारी वर्ग) को राजा के अनुसार प्रिय हितकर सत्य वचन बोलना आवश्यक है। उन्हें कभीभी राजा के अप्रियकारक अहित-कारक किसी दूषित जनसे सम्पर्क साधन नहीं करना चाहिये। राजाके अनु जीवियों को शठता, दुष्टता, नीचपन, नास्तिकता और चञ्चलता कभी नहीं करनी चाहिये। बिना बुलाये राजा से बोले नहीं यदि बोले तो थोड़ा, हितकारक और सभी प्रकार से परिणाम सुख को देनेवाला वचन कहे। राजा को सम्पूर्ण उपयोगी औषध, वृक्ष, रस, खनिज, विष, अन्न का पूरा संग्रह करना चाहिये।

२१६ राजकृत्यवर्णनम्, राजधर्मवर्णनम् ६२२

राजा अपने अमात्यवर्ग, कोष, रक्षापङ्क्ति और दुर्गादि के साथ सारे राज्य के बीच में राजधानी बनाकर रहे। यह स्थान हिंसक जन्तुओं से हीन हो दुर्ग निर्माणमें छै प्रकार के जो दुर्ग हैं उनमें उपयुक्त दुर्ग बनावे इन सबमें वैसे गिरिदुर्ग श्रेष्ठ है। दुर्ग के चारों ओर परकोटा, खाई, और सैकड़ों तोपों को लगाकर सुदृढ़ गोपुर, दरवाजों और स्थापत्य कला से पूर्ण सज्जित बनाना चाहिये। फिर हाथी, घोड़े आदि की शालाओं का आवास स्थान प्रकार और नाना वृक्ष वाटिकाओंका निर्माण प्रकार बताया गया है।

२१७ मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णनम् ६२७

राजधर्म में दुर्ग में की जाने योग्य राजरक्षा के रहस्यों का सुन्दर वर्णन रक्षोघ्न, विषघ्न, अङ्गद आदि औषधों का वर्णन। इस प्रकार उपयुक्त द्रव्यों को संग्रह कर अपने पुर की बराबर रक्षाकर राजा सुन्दर सुन्दर भवनों के निर्माण द्वारा नगर को शोभाशाली बनावे।

२१८ मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णनम् ६३०

राज रक्षाके उपयुक्त साधनों का संक्षेप से वर्णन। विषद् के लक्षण जब अन्न में विष दे दिया जाता है तो पकाये व्यञ्जन शुष्क द्रवपेय में बुद्बुदे उठ जाते हैं नमकीन वस्तुओं में झाग हो जाते हैं इसलिये सदा राजा मणि मन्त्र औषधियों के साथ अपनी रक्षा का उपाय करने को जागरूक रहे। प्रजारूपी वृक्ष का सेचन कर बढ़ाने से राष्ट्र पुष्पित और पल्लवित होता है। इसलिये इनके मूलमें स्थित राजा की सबको रक्षा करना चाहिये।

२१९ राजधर्मवर्णनम् ६३२

मत्स्य भगवान् ने फिर राजकुमार के सम्बन्ध में राजा के अवश्य ध्यान में रखने योग्य बातें कही क्योंकि भविष्य में उसीकी योग्यता से ही राज्यकार्य बराबर सञ्चालित हो सकते हैं। राजपुत्र के लिये सब विद्याओं में निपुण एक आचार्य रखना चाहिये और उसे अपनी बाल्यावस्थासे ही धर्म, काम और अर्थशास्त्र, धनुर्वेद रथ और हाथी पर चढ़ने की शिक्षा व्यायाम का अभ्यास तथा शिल्प शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिये। कुमार को विनयावनत बनाने की चेष्टा करनी चाहिये। जब सब विद्याओं में निपुण हो जाय तो कुमार को व्यावहारिक शिक्षा के लिये राज्य के कार्यों में थोड़े थोड़े अधिकार देवे। छोटे छोटे दायित्वों के बाद बड़े बड़े अधिकार भी सौंपता जाय। राजा को सुरापान,

जुआ, और शिकार नहीं खेलनी चाहिये। दिन में सोना भी वर्जनीय है। अर्थों का दुरुपयोग और अर्थों में दूषण दोनों ही राजा वर्जित करे। राजा को काम, क्रोध, मदमान, लोभ और हर्ष को प्रयत्न पूर्वक वर्जित करना चाहिये। उसे सदा सारे ही शत्रु, मित्र और उदासीन का यथायथ समझ कर जागरूक होकर व्यवहार करना चाहिये। राजा के सात अङ्ग हैं। "स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गदण्डस्तथैवच। कोशो मित्रश्च धर्मज्ञ! सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते"। राजा को सदा आकार, सङ्केत, गति और भाषण तथा आंख, मुँह के विकार से बाहर मुखाकृति से मनुष्य के अन्तर्हित भाव जानने चाहिए। राजा इसका सदा ध्यान रक्खे।

२२० दैवे पुरुषकारे च किंज्यायस्य इति मनुप्रश्ने मत्स्योत्तरम् ६३५

मनुजी ने दैव और पुरुषकार में कौन श्रेष्ठ है? इसका प्रश्न किया। मत्स्यने दोनोंमें पौरुषत्वको श्रेष्ठ बतलाया। उन्होंने कहा कि जैसे खेती में हल जोतने से और वर्षा से ही सुन्दर अन्न उत्पन्न होता है वैसे ही दैव और पुरुषकार से मनुष्य जीवन बनता है परन्तु प्रधानता है पुरुषकार की ही। इसलिये सदा ही धर्मपूर्वक पुरुषार्थ करे। आलसी मनुष्य तथा भाग्य पर विश्वास रखनेवाले को धन प्राप्त नहीं होता है। लक्ष्मी आलसी एवं भाग्य पर विश्वास करनेवाले को त्याग कर उत्थानशाली पुरुषों को प्राप्त होती है। अतः मनुष्य को सदा ही उद्योग करना चाहिये।

२२१ राजधर्मवर्णने सामप्रयोगवर्णनम् ६३६

राजधर्म में सामकथन। दो प्रकार का साम कहा गया है तथ्य और अतथ्य। इनका समय पर प्रयोग करना हितकर है।

२२२ राजधर्मवर्णने भेदप्रयोगवर्णनम् ६३७

जो जिस दोष से भेदन कर लिया जाय उसको भेद डालकर फोड़ना

चाहिये। राजधर्म का यह अविभाज्य अंग है क्योंकि शत्रुओं को इससे अपने वशमें करने में बड़ी सहायता मिलती है।

सम्पूर्ण उपायों में दान प्रयोग श्रेष्ठ बताया गया है। दानसे संसार में देवता तक भी वशमें हो जाते हैं। दान सब उपायों में शत्रुको भेदन करनेके लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है अतः दान प्रयोग विहित है।

राजधर्म में दण्ड की प्रशंसा वर्णन और दण्ड देने योग्य को दण्ड देने से और निरपराध की रक्षा करने से राज्य शासन भलो प्रकार चलता है इससे उलटा करनेवाला राजा नरक का भागी होता है। यदि दण्ड न हो तो भय है कि सारे ही वर्ग के लोग मर्यादा का लङ्घन कर जाँय इसलिये दण्ड की प्रतिष्ठा सार्वभौम रूप से करे।

सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा के लिये देव भागों को लेकर दण्ड को प्रसिद्ध करनेके लिये ब्रह्माजीने राजा को बनाया है। राजा को देखने से सब को आनन्द आता है इसलिये इसे चन्द्रमा की सञ्ज्ञा दी गई है। राजा, यम, वरुण, इन्द्र, वायु और सूर्य के समान कठिन असिधार व्रतका पालन कर राष्ट्र को कर प्रणालो से रक्षा और राज्य व्यवस्थाको सुदृढ़ बनावे। इस प्रकार राजा देवताओं के समान है। सारे राज्य में चारों को नियुक्त करने से राजा मारुत व्रत का आचरण कर शान्ति स्थापना का विशाल प्रयत्न करता है।

राजधर्म को लेकर सारे राज्य में नाना प्रकार के दण्ड विधान, अभि

योग और दोषों के निराकरण के लिये विस्तार पूर्वक सीमा निरूपण और दण्ड विधान का वर्णन। दण्ड प्रणयन की इस अध्याय में व्यवहार तोड़ने वाले, नियम से विपरीत चलनेवाले, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आचरणों को बिगाड़नेवाले, अगम्या में गमन करनेवाले, अपने से इतरवर्ण की स्त्रीके पास जानेवाले पुरुषों को कठिन से कठिन दण्ड व्यवस्था का विधान भगवान् मत्स्य ने आदिष्ट किया है।

२२७ मनुमत्स्यसंवादे त्रिविधमहोत्पातेषु शान्तिविधानम् ६५२

मनु महाराज का भगवान् मत्स्य से दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भौम त्रिविध उत्पातों की शान्तिविषयक प्रश्न ? उत्कट पाप के उदयके कारण संसार में अधिक से अधिक उपद्रव, नरसंहार, प्रकृति के प्रकोप, भूकम्प, बाढ़ एवं महामारी आदिके साथ होता है। राजा के देवांश होने से शान्तिको स्थापित करने का दायित्व उसीपर होता है। इसलिये दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भौम उत्पातों की शान्ति अत्यावश्यक है। भौम शान्ति ही विशेष रूपसे करनी चाहिये। अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्ति को अन्तरिक्ष की अभया और दिव्य की सौम्य शान्ति भी करनी चाहिये। यज्ञ काम के लिये सौम्य शान्ति प्रशस्त है। भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी दलके आक्रमण के भय होनेपर, लूट और हिंसा आदि में वैष्णवी शान्ति कही गई है। पशु एवं मनुष्यों के दारुण मारण अवस्था के उपस्थित होनेपर रौद्री शान्ति तथा ज्ञाननाश, वेदना और नास्तिक बहुल होनेपर ब्राह्मी शान्ति कही गई है। इसी प्रकार वारुणी, आग्नेयी आदि सोलह शान्ति भिन्न भिन्न घातक निमित्त उपस्थित होनेपर बतलाई गई हैं।

बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद्राजन्नृणां सन्नहनैर्युतानाम्।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद्धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम्॥

जैसे कवचधारी लोगोंका बाण प्रहार के आघात से बाल भी बांका

नहीं होता उसी प्रकार दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम उपद्रवोंका प्रभाव धर्मात्मा और शान्तिपरायण मनुष्यों पर नहीं होता।

आकस्मिक उत्पात और उल्कापातादिके शमन आदिका उपाय। दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम उपसर्गों का लक्षण वर्णन। इनके नाना ऋतुओं में नाना प्रकार से हुए उत्पातों और शमनों का वर्णन।

अद्भुत शान्ति एवं नाना प्रकार के उपद्रवों का वर्णन। इनके लिये दान, यज्ञ, जप, तप करना इस प्रकार शान्ति करने से देशमें आनन्द और शान्ति का अखण्ड साम्राज्य स्थापित होता है।

जहां पर स्वतः ही अग्नि बिना इन्धन के जलती हो वहां राजा लोगों द्वारा राष्ट्रका उत्पीड़न होता है। इस प्रकार के अत्यधिक उपद्रवों की तत्काल शान्ति करवानी चाहिये। हवन एवं सुवर्ण दानसे अग्नि विकृतिका जो प्रभाव है वह शमन हो जाता है।

जब वृक्षों से रस टपके या हंसने तथा रोनेकी आवाज आवे और बिना कारण ही डालियां गिर गिरकर पड़ें तो वृक्षोत्पात होता है। उससे राष्ट्रों में अशान्ति होती है। इसकी शान्ति गोदान, एवं सुवर्ण दान आदि से होती है।

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुभिक्षादि, भय, सर्दी और गर्मीकी विपरीतता होनेकी शान्ति यही है कि यज्ञ एवं दान विशेष रूप से करवाये जांय।

२३३ शान्तिविधानवर्णनम् ६५९

अद्भुतशान्तिमें जलाशय आदि की विकृति होने पर वारुण मन्त्रों का जप और जल में हवन, भोजन, गोदान, घड़े जलभर कर दान में देवे जिससे जलीय पाप की शान्ति हो जाय।

२३४ शान्तिविधानवर्णनम् ६६०

उचित क्रियाओं की जहां विच्छित्ति हो तथा कहीं भी मङ्गलमय शब्द सुनाई न दें जहां पूज्य जनों का अपमान हो शान्ति, मङ्गल और होम कार्यों में लोगों का नास्तिक्य भाव हो वहां राजाओं का नाश निश्चित है तो पूर्ववत् शान्ति इष्ट है।

२३५ शान्तिविधानवर्णनम् ६६०

जो कुछ अयुक्त है वह युक्त हो जाता है जो अचल हैं वे चल, एवं चल हैं वे अचल हो जाते हैं आकाशमें तूर्यनाद हो वहां वायु की पूजा मन्त्र विधान के साथ हो और प्रभूत अन्न दक्षिणा समेत देनेसे इसकी शान्ति होती है।

२३६ शान्तिविधानवर्णनम् ६६१

जब ग्राम के जीवजन्तु वन में चले जांय वन के ग्राम में चले आवें, जल के जन्तु स्थल में और स्थल के प्राणी जल में आवें तो मृगपक्षी चराचर प्राणियों के विकार से अशान्ति होती है इसकी शान्ति के लिये सोने की गाय और वस्त्र का दान करना चाहिये।

२३७ शान्तिविधानवर्णनम् ६६२

जहां सब दिशाओंमें धूआं हो ; अधिकतर चन्द्र सूर्य ग्रहण हो; उचित-क्रियायें जहां विपरीत ही होवें ; मङ्गलमय शब्द कहीं भी न सुनाई दे ; पूज्य

कांस्यके फूटने, मुण्डन, नग्नता, पुराने कपड़े पहनने, तैल मालिश, कीचड़ में लिपटना, ऊंचे स्थान से गिरना, झूले पर चढ़ना, घोड़ों का मारना, लाल फूल व वृक्ष का दीखना, वराह, रींछ, गधा व ऊंट इनपर चढ़ना, पके मांस का खाना, तैल और खिचड़ी का भोजन, हंसना, नाचना, विवाह और गीततन्त्री वाद्य से रहित गाने बजाने का सुनना, झरनों में स्नान, गोबर से स्नान या कीचड़ भरे जल से स्नान, माता के जठर में प्रवेश या चिता पर चढ़ना दिव्य अन्तरिक्ष और भौम उत्पातों का दर्शन, देवता, द्विज और गुरुजन का क्रोध, कुमारी के साथ आलिङ्गन, पुरुषों का मैथुन, शरीर की हानि, विरेचन और वमन होना, दक्षिण दिशा में जाना, रोग से पीड़ा, फल की हानि, पुष्पकी हानि, घर का गिरना, घर की सफाई होना, दूसरे से पराजय, पिशाच, राक्षस, बानर, रीछ और मनुष्यों से क्रीड़ा गेरुआ वस्त्र का धारण और स्त्री क्रीड़ा और स्नेह, मद्यपान और स्नान तथा रक्त माला का धारण करना इन सबको दुःस्वप्नके रूप समझना चाहिए। इन्हें कहकर प्रकट करदेना चाहिये तिल से कल्क स्नान, होम, ब्राह्मण पूजन, दान, जप, भगवान् का भजन और गजेन्द्र मोक्ष का जप ये सब दुःस्वप्न को नाश करते हैं। रात्रि के पहले पहर में स्वप्न का फल एक वर्ष तक होता है दूसरे में ६ महीने में तीसरे पहर में तीसरे महीने तक चतुर्थ मे चौथे मास तक अरुणोदय के समयका स्वप्न दश दिन में ही फल देता है यदि पहले स्वप्न देख लिया हैं फिर दूसरा स्वप्न देख लिया जाय तो दूसरे का फल मिलता है इसलिये बढ़िया स्वप्न देखनेके बाद नहीं सोना चाहिए। पर्वत, महल, हाथी, घोड़ा और वैल पर चढ़ना शुभ है, बहुतसे हाथ दीखना, बहुत से शिर दीखनेका फल अच्छा है। खूब सफेद वस्त्र, श्वेत माला धारण चन्द्र सूर्य और तारा का ग्रहण, परिमार्जन ये सब शुभ लक्षण है। विवाद, जूआ, युद्ध में विजय दूध, आर्द्र भोजन, रक्तका देखना, या रक्त से स्नानमद्य व रक्त का पीना या दूध

का पीना, आँतो से शरीर का बन्धन, पृथ्वी में निर्मल आकाश को देखना मुख से भैंस, गाय या सिंहिनी या हस्तिनी को दूहना तथा देव विप्र और गुरु जन से प्रसाद लेना, जल से अभिषेक या गाय के सींग के पानी या चन्द्रमा से छुटे जल से अभिषेक निश्चय ही राज योग देता है। राज्याभिषेक, शिर का छेदन, मरण, अग्नि में जलना, घोड़ों का आरोहण, रोदन, साध्वी सुन्दर स्त्री का मिलना, या आलिङ्गन, हथकड़ी बेड़ी पहनना, या विष्ठा का लेपन ये सबधन्य है जीवित राजा और मित्रों का दर्शन देवता और स्वच्छ जल का देखना ये सब शुभ हैं; इनसेविना परिश्रम ही शुभफलों की प्राप्ति अवश्य होतीं है। यदि वीमार इनको देखलेता है तो रोगसे मुक्त हो जाता है।

यात्रा के समय राजालोगों को औषधियां, काला धान, कपास, घास, सूखा गोमय, इन्धन, अङ्गार, गुड़तैल शुभ हैं मैल मालिश कियेहुए; मलिन मुण्डित, नग्न, और बिखरेंबालोंका रोगी, गेरुआ वस्त्रधारी, उन्मत्त, नपुंसक गरीब, आदि दीखने से अशुभ होता है। इष्ट माङ्गल्य वस्तुएं ये हैं।

श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च।
जलजाः पक्षिणश्चैव मांसं मत्स्याश्च पार्थिव ! ॥
गावस्तुरङ्गमाः नागा बद्धएकः पशुस्तथा। त्रिदशाः सुहृदो विप्राः ज्वलितश्चहुताशनः
मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन्! ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि।

विष्णु माहात्म्य का वर्णन। वामन प्रादुर्भावकथन। जब राक्षसो ने इन्द्रादि देवता गण को हरा दिया तो माता अदिति ने भगवान् को फिर

अवतार धारण करने के लिये परम कठिन तपस्या की। जब भगवान वर देने को आये तो अदिति ने भगवान् विष्णु की स्तुति की प्रसन्न होकर भगवान ने यथेच्छ वरमांगने के लिये कहा। तब अदितिने यह वर मांगा कि मेरा पुत्र इन्द्र त्रैलोक्य का अधिपति बने। प्रसन्न होकर भगवान् ने वर दिया कि मैं तेरे गर्भ से भगवान् कश्यप के अंश से उत्पन्न होकर दैत्यों के तेज की हानि कर सब यथा काम पूर्ण करुंगा फिर कश्यपजी के अंश से अदिति में गर्भस्थिति करने को कह कर भगवान् का अन्तर्धान हो जाना।

भगवान् के तेजसे असुरादि सभी निस्तेज हो गये यह देखकर अपने पितामह भक्तराज प्रह्लाद को बलिने विस्मित होकर इसका कारण पूछा। तब प्रह्लाद ने कहा वत्स! जिन अखिल ब्रह्माण्ड नायक वासुदेव के स्वरूप को ब्रह्मादि भी जानने में असमर्थ हैं और जिनसे यह सब विवर्त रूप में भाषित है वे अपनी कला से भगवान् कश्यप के अंश से अदिति में अवतीर्ण हुए हैं वह अब पृथ्वी के भार-स्वरूप दैत्यों को मारकर इन्द्रादि देवताओं को सुखी करेंगें। तब बलिने पूछा हे तात! यह हरि नामक कौन है जब मेरे ये विप्रचित्ति आदि वासुदेव से भी अधिक बलशाली सैकड़ों हैं तो उसकी तो गिनती ही क्या है उनके आधे से आधे भी बल की बराबरी कृष्ण नहीं कर सकते। इस पर प्रह्लाद ने बलि को धिक्कार कर शाप दिया कि तुम अपने गुरुजन के पूज्य कृष्ण की निन्दा करते हो तो शीघ्र ही तुम अपनी विभूति और ऐश्वर्य से हीन हो जाओगे। फिर प्रह्लाद के सामने अपनी भूल स्वीकार कर बलि ने बहुत अनुनय विनय की तो प्रह्लाद ने कहा आज से ही तुम भगवान की भक्ति करो वही तुम्हारी रक्षा करेंगे।

भगवान् वामन का अवतार उनके व्रतबन्धादि का वर्णन। ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की और भगवान् ने कहा कि मैं इसकी प्रतिज्ञा कर चुका हूं त्रैलोक्य का राज्य इन्द्र को दूंगा यह सत्य होगा। तब भगवान् को बृहस्पतिने कृष्ण मृगचर्म, वशिष्ठने कमण्डलु, मरीचिने व्रतीके धारण करने योग्य दण्ड और पुलह ने अक्षसूत्र तथा पुलस्त्य ने श्वेतवस्त्र दिया। वह सम्पूर्ण वेद और देवमय होकर बलि के यज्ञ में गये।

जब वामन भगवान् बलिराजा के यज्ञ में आने लगे तो सारी पृथ्वी कांपने लगी। बलिने उशना (शुक्राचार्य) जी को दण्डवत्प्रणाम कर इस सब उपद्रव का कारण पूछा और यह भी पूछा कि असुरों के दिये भाग को यह अग्नि क्यों नहीं ग्रहण करती है। तब शुक्राचार्य ने कुछ समय तक ध्यान कर इस प्रकार कहा "कश्यप महर्षि के घर में जगत् की योनि भगवान् विष्णु वामन रूप में प्रगट हुए हैं वही तुम्हारे यज्ञ में आ रहे हैं उन्हीं के चलने से पृथ्वी पर हड़कम्प मचा हुआ है इस प्राणियों के अधिष्ठाता भगवान् की गति को पृथ्वी सम्हाल नहीं सकती। उसीके सन्निधान से यह अग्नि असुर भागों को भी नहीं खाती। यह सब सुनकर बलिने हर्ष से शुक्राचार्य से कहा है हे भगवन्! जब भगवान् स्वयं यहां पधार ही रहे हैं। तो मेरा कर्त्तव्य हो जाता है उनकी आवभगत के लिये मैं क्या करूं? सो आप मुझे बताइये। शुक्राचार्यने कहा हे राजन्! दानवपते यह सत्त्व रूपस्थित भगवान् सृष्टि के पालन करने को और तुम्हे दबाने को इस ओर चले आ रहे हैं तब तुम किसी प्रकार की छोटी सी भी प्रतिज्ञा में मत बंधना—

"नालं दातुमहं देव! दैत्य! वाच्यं त्वया वचः।"

मैं आपको कोई भी वस्तु देने में असमर्थ हूं हे बलिराज! यह कहना। इस पर बलिने कहा हे गुरो! विविध व्रतोपवासों द्वारा अवतार

धारण करनेवाले भगवान् साक्षात् आकर देवो देवो कहकर मांगेंगे तो मैं ना किस तरह कर सकूंगा। मेरी उनमें दृढ़ भक्ति है वह मुझे कभी नहीं मारेंगे। आपको दान के समय किसी रूप में विघ्न नहीं करना चाहिए। ऐसी बातचीत होते होते बलि के द्वार पर मायारूप वामन वेषधारी भगवान् वामन जा पहुंचे। उसे देख राक्षस यज्ञ की भूमि में चले गये। सभी उपस्थित सभासद क्रोध में उबल पड़े और मुनि लोग जप करने लगे बलि ने अपना जन्म धन्य और सफल माना तब कोई भी न बोला। बलि को इस प्रकार हक्का बक्का देखकर वामन रूपधारी भगवान् ने सबका सन्तोष किया। यज्ञ द्वारस्थित वामन भगवान् का अर्घ्य, पाद्य, आचमानादि से सत्कार कर बलि ने कहा—

"सर्वस्वं सकलामुर्वीं भवतो वा यदीप्सितम्।
तद्ददामि श्रृणुष्व त्वं येनार्थी वामनः प्रियः॥"

हे वामन चाहे सर्वस्व, भले ही सारी पृथ्वी या और भी जो आपको इच्छित हो आप जिसके लिये आये हैं मांगिये; मैं दूंगा" तो वामनने कहा—

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन्! पदत्रयम्।

मेरी अग्नि क्रिया को करने के लिये मुझे तीन पाद (पैण्ड) की भूमि दीजिये। तब बलि ने तीन पैर पृथ्वी दे दी। हाथ में जल लेते न लेते भगवान् वामन अपने सर्व देवमय दीर्घकाय शरीर में प्रगट हुए और तीन पैण्ड का त्रैलोक्य लेकर इन्द्र को उसका अधिपति बना दिया तथा राजा बलि को अनेक वरदान देकर उसे सुतल में स्थापन कर दिया। इस प्रकार शौनक अर्जुन सम्वाद रूपमें यह वामनावतार की भगवल्लीला का वर्णन किया गया।

भगवानने वराह रूपमें समुद्रमेंडूबी हुई पृथ्वीको जिस प्रकार निकाला

विषका सम्वाद। देवता और दानवों द्वारा भगवान् शिव जी की स्तुति। देवदानव और शिवजी का सम्वाद का वर्णन। विष पान कर भगवान् शंकर कैलास पर चलेगये और देवदानवों ने अपना समुद्र मथन का क्रम फिर भी चालू ही रक्खा

मुद्रापितं मात्स्यमिदं पुराणं,
मोरेण रायान्तमनःसुखेन।
सङ्क्षेपतस्सूचिरियं निबद्धा,
कृतानुरागैः परिशोधनीया।

विद्वज्जनचरणानुरागिणः—

लक्ष्मणगढ़वास्तव्य ब्रह्मदत्तत्रिवेदि नवलदुर्गाभिजन कजोड़ीलाल मिश्र रामनाथ दाधीचाः।

॥ शुभम् भूयात् ॥

श्री गणेशाय नमः ।

श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीतम्

मत्स्यपुराणम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुराणपुरुषाय नमः ।

तत्रादौमङ्गलाचरणम् ।

मत्स्यावतारवर्णनम् ।

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्तायेन दिग्गजाः । भवन्तुविघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः ॥

पातालादुत्पतिष्णो र्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्यनेनापतन्ति ॥
विष्णोर्म्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यंशुमानं,
तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियम्वः श्रुतीनाम् ॥ २ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ३॥
अजोऽपियः क्रियायोगान्नारायण इतिस्मृतः । त्रिगुणायत्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे ॥
सूतमेकान्तमासीनं नैमिषारण्यवासिनः । मुनयो दीर्घसत्रान्तेपप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम् ॥५॥
प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च । कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः ॥
कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ । तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहेपुनः ॥
कथंससर्जभगवान् लोकनाथश्चराचरम् । कस्माच्च भगवान्विष्णुर्मत्स्यरूपत्वमाश्रितः ॥

भैरवत्वं भवस्यापि पुरारित्वञ्च गद्यते । कस्य हेतोः कपालित्वं जगाम वृषभध्वजः ॥
सर्वमेतत्समाचक्ष्व सूत ! विस्तरशः क्रमात् । त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिहजायते ॥

सूत उवाच ।

पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं श्रुणुत द्विजाः । मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जागाद गदाधरः।
पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलन्तपः । पुत्रेराज्यं समारोप्यक्षमावान् रविनन्दनः ॥
मलयस्यैकदेशेतु सर्वात्मगुणसंयुतः । समदुःखसुखोवीरः प्राप्तवान् योगमुत्तमम् ॥ १३
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते । वरम्वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः ॥ १४॥
एवमुक्तोऽब्रवीद्राजा प्रणम्य स पितामहम् । एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च । भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ॥१६॥
एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत । पुष्पवृष्टिः सुमहती खात्पपात सुरार्पिता ॥
कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम् । पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥१८॥
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः । रक्षणायाकरोद्यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥१९॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः । सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत्।
स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम् । तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ॥ २१ ॥
पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् । समत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणङ्गतः ॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद्रविनन्दनः । यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात्पुनर्योजनसम्मिताम् । तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहिपाहि नृपोत्तम॥
ततः स मनुना क्षिप्तोगङ्गायामप्यवर्धत । यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥२५॥
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः । तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपित्वमसुरेतरः ॥
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक्कथं भवेत् । योजनायुतविंशत्याकस्य तुल्यं भवेद्वपुः ।२७।
ज्ञातस्त्वंमत्स्यरूपेण मां खेदयसिकेशव ! । हृषीकेश ! जगन्नाथ ! जगद्धाम ! नमोऽस्तुते।
एवमुक्तःसभगवान्मत्स्यरूपीजनार्दनः। साधुसाध्वितिचोवाचसम्यग् ज्ञातस्त्वयाऽनघ॥
अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते । भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ॥ ३० ॥
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता । महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते ! ॥३१

स्वेदाण्डजोद्भिजोयेवैयेचजीवाजरायुजाः। अस्यांनिधायसर्वांस्ताननाथान् पाहिसुव्रत।
युगान्तवाताभिहता यदाभवतिनौर्नृप!।शृङ्गेऽस्मिन्मम राजेन्द्र! तदेमां संयमिष्यसि॥
ततोलयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्यच। प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते!॥
एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान्नृपः। मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मत्स्यावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

मत्स्य-मनुसंवादवर्णनम्।

सूत उवाच।

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम्। भगवन्! कियद्भिर्वर्षैर्भविष्यत्यन्तरक्षयः ॥१॥
सत्वानि च कथं नाथ! रक्षिष्ये मधुसूदन!। त्वया सह पुनर्योगः कथं वा भवितामम॥

मत्स्य उवाच।

अद्य प्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले। यावद्वर्षशतं साग्रन्दुर्भिक्षमशुभावहम्॥ ३॥
ततोऽल्पसत्वक्षयदा रश्मयः सत दारुणाः। सतसतेर्भविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्णिनः॥४॥
और्वानलोऽपि विकृतिङ्गमिष्यति युगक्षये। विषाग्निश्चापि पातालात्सङ्कर्षणमुखच्युतः।
भवस्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानलः॥ ५॥
त्रिजगन्निर्दहन् क्षोभंसमेष्यति महामुने!। एवंदग्धा महीसर्वा यदास्याद्भस्मसन्निभा।
आकाशमूष्मणा तप्तम्भविष्यति परन्तप!। ततः सदेवनक्षत्रं जगद्यास्यति संक्षयम्॥७॥
सम्वर्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डोवलाहकः। विद्युत्पताकः शोणस्तुसप्तैतेलयवारिदाः॥
अग्निप्रस्वेदसम्भूतां प्लावयिष्यन्तिमेदिनीम्। समुद्राः क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिताः॥
एतदेकार्णवंसर्वङ्करिष्यन्ति जगत्त्रयम्। वेदनावमिमां गृह्य सत्वबीजानि सर्वशः॥१०॥

आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत। संयम्य नावं मच्छृङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षितः ॥
एकः स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परन्तप !। सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वितः ॥
नर्मदा चनदीपुण्यामार्कण्डेयोमहानृषिः। भवोवेदाःपुराणाश्चविद्याभिःसर्वतोवृतम् ॥
त्वया सार्द्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये। एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये ॥
वेदान् प्रवर्त्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
मनुरप्यास्थितोयोगं वासुदेवप्रसादजम्। अभ्यसन् यावदाभूतसंप्लवं पूर्वसूचितम् ॥१६
काले यथोक्ते संजाते वासुदेवमुखोद्गते। शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथमत्स्यरूपी जनार्दनः ॥
भुजङ्गोरज्जुरूपेणमनोःपार्श्वमुपागमत्। भूतान्सर्वान्समाकृष्ययोगेनारोप्यधर्म्मवित् ॥
भुजङ्गरज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत्। उपर्युपस्थितस्तस्याःप्रणिपत्यजनार्दनम्।
आभूतसंप्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना। पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा ॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥ २० ॥
यद्भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्ट्यादिकमहन्द्विजाः। तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुःपप्रच्छ केशवम् ॥

मनुरुवाच।

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव वंशान्मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितञ्चैव भुवनस्यच विस्तरम् ॥२२
दानधर्म्मविधिञ्चैव श्राद्धकल्पञ्च शाश्वतम्। वर्णाश्रमविभागञ्च तथेष्टापूर्त्तसंज्ञितम् ॥
देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद्विद्यते भुवि। तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्म्मंव्याख्यातुमर्हसि ॥

मत्स्य उवाच।

महाप्रलयकालान्त एतदासीत्तमोमयम्। प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥२५॥
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्नुचरिष्णु च। ततःस्वयम्भूरव्यक्तःप्रभवःपुण्यकर्म्मणाम् ॥
व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत्तमोनुदः। योऽतीन्द्रियः परोऽव्यक्तादणुर्ज्यायान् सनातनः।
नारायण इति ख्यातः स एकः स्वयमुद्बभौ ॥ २७ ॥
यः शरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत्। अपएव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥
तदेवाण्डं समभवद्धेमरूप्यमयं महत्। संवत्सरसहस्रेण सूर्य्यायुतसमप्रभम् ॥ २६ ॥
प्रविश्यान्तर्महातेजाःस्वयमेवात्मसम्भवः। प्रभावादपितद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत्पुनः ॥

तदन्तर्भगवानेष सूर्य्यः समभवत् पुरा। आदित्यश्चादिभूतत्वात् ब्रह्माब्रह्मपठन्नभूत् ॥३२।
दिवं भूमिं समकरोत्तदण्डशकलद्वयम्। सचाकरोद्दिशः सर्व्वामध्येव्योमच शाश्वतम्॥
जरायुर्मेरुमुख्याश्च शैलास्तस्याभवंस्तदा। यदुल्वन्तदभूत्मेघस्तडित्सङ्घातमण्डलम्॥
नद्योऽण्डनाम्नः सम्भूताः पितरोमनवस्तथा। सप्तयेऽमीसमुद्राश्चतेऽपिचान्तर्जलोद्भवाः।
लवणेक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विताः ॥ ३४ ॥
स सिसृक्षुरभूद्देवः प्रजापतिररिन्दम। तत्तेजसश्च तत्रैप मार्तण्डः समजायत॥ ३५॥
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृतः। रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मनः।
चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोकपितामहः ॥ ३६ ॥
येन सृष्टं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्। तमवेहि रजोरूपं महत्सत्वमुदाहृतम्॥ ३७॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे मत्स्यमनुसंवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

सृष्टिप्रकरणम्।

मनुरुवाच।

चतुर्मुखत्वमगमत्कस्माल्लोकपितामहः। कथं तु लोकानसृजत् ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वरः ॥१

मत्स्य उवाच।

तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः। आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः॥२॥
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। नित्यं शब्दमयंपुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्योवेदास्तस्यविनिःसृताः। मीमांसान्यायविद्याश्चप्रमाणाष्टकसंयुताः॥
वेदाभ्यासमरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः। मनसः पूर्वसृष्टावै जातायत्तेनमानसाः॥
मरीचिरभवत्पूर्वंततोऽत्रिर्भगवान् ऋषिः। अङ्गिराश्चाभवत्पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम्॥

ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत। प्रचेताश्च ततः पुत्रो वशिष्ठश्चाभवत् पुनः ॥ ७॥
पुत्रो भृगुरभूत्तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत्। दशेमान्मानसान्ब्रह्मामुनीन् पुत्रानजीजनत्॥
शारीरानथ वक्ष्यामि मातृहीनान् प्रजापतेः। अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षः प्रजापतिरजायत ॥९॥
धर्मस्तनान्तादभवत् हृदयात्कुसुमायुधः। भ्रूमध्यादभवत्क्रोधोलोभश्चाधरसम्भवः॥
बुद्धेर्मोहः समभवदहङ्कारादभून्मदः। प्रमोदश्चाभवत्कण्ठान्मृत्युर्लोचनतो नृप ॥ ११॥
भरतः करमध्यात्तु ब्रह्मसूनुरभूत्ततः। एते नव ! सुता राजन् ! कन्या च दशमी पुनः।
अङ्गजा इति विख्याता दशमी ब्रह्मणः सुता ॥ १२ ॥

मनुरुवाच।

बुद्धेर्मोहः समभवदिति यत्परिकीर्त्तितम्। अहङ्कारः स्मृतःक्रोधोबुद्धिर्नामकिमुच्यते॥

मत्स्य उवाच।

सत्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्। साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता॥
केचित् प्रधानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगुः। एतदेव प्रजासृष्टिं करोति विकरोति च ॥१५
गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे। एकामूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
स विकारात् प्रधानात्तु महत्तत्त्वं प्रजायते। महानितियतःख्यातिर्लोकानांजायतेसदा॥
अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्धनः। इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु॥
प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्म्मवशानि तु ॥ १८ ॥
श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचयथाक्रमम्। पायूपस्थंहस्तपादंवाक्चेतीन्द्रियसंग्रहः॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसोगन्धश्च पञ्चमः। उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्चतत्क्रियाः॥
मन एकादश तेषांकर्म्मबुद्धिगुणान्वितम्। इन्द्रियावयवाःसूक्ष्मास्तस्यमूर्तिंमनीषिणः॥
श्रयन्ति यस्मात्तन्मात्राः शरीरं तेन संस्मृतम्। शरीरयोगाज्जीवोऽपिशरीरीगद्यतेबुधैः॥
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया। आकाशंशब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम्॥
आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्। वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः॥
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्। तेजोविकारादभवद्वारि राजंश्चतुर्गुणम् ॥२५॥
रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायोरसगुणात्मकम्। भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत्पञ्चगुणान्विता॥

प्रायोगन्धगुणा सातु बुद्धिरेषा गरीयसी। एभिः सम्पादितं भुङ्क्तेपुरुषःपञ्चविंशकः॥
ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः। एवं षड्विंशकंप्रोक्तं शरीरइहमानवे॥
सांख्यंसंख्यात्मकत्वाच्चकपिलादिभिरुच्यते। एतत्तत्त्वात्मकंकृत्वाजगद्वेधाअजीजनत्॥
सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वासमास्थितः। ततःसञ्जपतस्तस्यभित्वादेहमकल्मषम्॥
स्त्रीरूपमर्द्धमकरोदर्द्धं पुरुषरूपवत्। शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते।३१।
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप!। ततः स्वदेहसम्भूतामात्मजामित्यकल्पयत्।३२।
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामवाणार्दितो विभुः। अहो रूपमहोरूपमितिचाह प्रजापतिः॥
ततो वशिष्ठप्रमुखाः भगिनीमिति चुक्रुशुः। ब्रह्मा न किञ्चिद्ददृशे तन्मुखालोकनादृते॥
अहो रूपमहोरूपमिति प्राह पुनः पुनः। ततः प्रणामनम्रान्तां पुनरेवाभ्यलोकयत्॥३५॥
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी। पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया॥
आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणंपाण्डुगण्डवत्। विस्मयस्फुरदोष्ठञ्च पाश्चात्यमुदगात्ततः।
चतुर्थमभवत्पश्चाद्वामं कामशरातुरम्। ततोऽन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा ॥३८॥
उत्पतन्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूहलात्। सृष्ट्यर्थं यत् कृतं तेन तपःपरमदारुणम्॥
तत्सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया। तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत्पञ्चमं तस्य धीमतः।
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रञ्चावृणोत्प्रभुः॥ ४०॥
ततस्तानब्रवीत् ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान्। प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः। गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थंप्रणामावनतामिमाम्॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम्। सम्बभूव तया सार्द्धमतिकामातुरो विभुः।
सलज्जाञ्चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे॥ ४३॥
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः। ततः कालेन महतातस्याःपुत्रोऽभवन्मनुः॥
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम्। तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते।
वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः। स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथापरे
स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः। औत्तमिप्रमुखा स्तद्वद्येषान्त्वं सप्तमोऽधुना

इति श्री मत्स्यपुराणे तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सरस्वत्याश्चरित्रम् ।

मनुरुवाच ।

अहो कष्टतरञ्चैतदङ्गजागमनं विभो ! । कथं न दोषमगमत्कर्मणानेन पद्मभूः ॥ १ ॥
परस्परञ्च सम्बन्धः सगोत्राणामभूत्कथम् । वैवाहिकस्तत्सुतानाञ्छिन्धिमेसंशयंविभो

मत्स्य उवाच ।

दिव्येयमादिसृष्टिस्तु रजोगुणसमुद्भवा । अतीन्द्रियेन्द्रिया तद्वदतीन्द्रियशरीरिका ॥३॥
दिव्यतेजोमयी भूप ! दिव्यज्ञानसमुद्भवा । न मर्त्यैरभितः शक्त्या वक्तुं वै मांसचक्षुभिः ।

यथा भुजङ्गाः सर्पाणामाकाशं विश्वपक्षिणाम् ।
विदन्ति मार्गं दिव्यानां दिव्या एव न मानवाः ॥ ५ ॥

कार्य्याकार्य्ये न देवानां शुभाशुभफलप्रदे । यस्मात्तस्मान्न राजेन्द्र ! तद्विचारोनृणांशुभः
अन्यच्च सर्ववेदानमधिष्ठाता चतुर्मुखः । गायत्री ब्रह्मणस्तद्वदङ्गभूता निगद्यते ॥ ७ ॥
अमूर्तं मूर्तिमद्वापि मिथुनं तत्प्रचक्षते । विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती ॥

भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः ॥ ८ ॥

यथातपो न रहितश्छायया दृश्यते क्वचित् । गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वं तथैव न विमुञ्चति
वेदराशिःस्मृतोब्रह्मासावित्रीतदधिष्ठिता । तस्मान्नकश्चिद्दोषःस्यात् सावित्रीगमनेविभो
तथापि लज्जावनतः प्रजापतिरभूत् पुरा । स्वसुतोपगमात् ब्रह्मा शशाप कुसुमायुधम् ॥
यस्मान्ममापि भवता मनः संक्षोभितं शरैः । तस्मात्वद्देहमचिराद्रुद्रो भस्मीकरिष्यति ॥

ततः प्रसादयामास कामदेवश्चतुर्मुखम् ।
न मामकारणे शप्तुं त्वमिहार्हसि मानद ! ॥ १३ ॥

अहमेवंविधः सृष्टस्त्वयैव चतुरानन ! । इन्द्रियक्षोभजनकः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥१४ ॥
स्त्रीपुंसोरविचारेण मया सर्वत्र सर्वदा । क्षोभ्यंमनः प्रयत्नेन त्वयैवोक्तं पुरा विभो ॥
तस्मादनपराधेन त्वयाशप्तस्तथा विभो ! । कुरु प्रसादं भगवान् ! स्वशरीराप्तये पुनः ॥

ब्रह्मोवाच ।

वैवस्वतेऽन्तरेप्राप्ते यादवान्वयसम्भवः । रामो नाम यदा मर्त्यो मत्सत्वबलमाश्रितः ॥
अवतीर्य्यासुरध्वंसी द्वारकामधिवत्स्यति । तद्भ्रातुस्तत्समस्य त्वन्तदा पुत्रत्वमेष्यसि ।
एवं शरीरमासाद्यभुक्त्वा भोगानशेषतः । ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्स नृपात्मजः ॥
विद्याधराधिपत्वं च यावदाभूतसंप्लवम् । सुखानि धर्म्मतःप्राप्य मत्समीपङ्गमिष्यसि ।
एवं शापप्रसादाभ्यामुपेतः कुसुमायुधः । शोकप्रमोदाभियुतो जगाम स यथागतम् ॥

मनुरुवाच ।

कोऽसौ यदुरिति प्रोक्तो यदुवंशे कामसम्भवः ।
कथञ्च दग्धो रुद्रेण किमर्थं कुसुमायुधः ॥ २२ ॥

भरतस्यान्वये कस्य का च सृष्टिः पुराभवत् । एतत्सर्वं समाचक्ष्व मूलतःसंशयो हि मे ।

मत्स्य उवाच ।

या सा देहार्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी । जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ।
रतिर्मनस्तपो बुद्धिर्महदादिसमुद्भवः । ततः स शतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ।२५।
ये मरीच्यादयः पुत्रा मानसास्तस्य धीमतः । तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥
ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्! सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ।२७।
वामदेवस्तु भगवानसृजन् मुखतो द्विजान् । राजन्यानसृजद्बाह्वोर्विट्शूद्रानूरुपादयोः ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च । च्छदांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ततःपरम् ।
ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत् पुनः । कोटयश्चतुराशीतिर्जरामरणवर्जिताः ॥३०॥
वामोऽसृजन्नमर्त्यांस्तान् ब्रह्मणाविनिवारितः । नैवंविधाभवेत् सृष्टिर्जरामरणवर्जिता ।

शुभाशुभात्मिका यातु सैव सृष्टिः प्रशस्यते ।
एवं स्थितः स तेनादौ सृष्टौ स्थाणुरतोऽभवत् ॥ ३२ ॥

स्वायम्भुवो मनुर्धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । पत्नीमेवापरूपाढ्यामनन्तींनाम नामतः ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुस्तस्यामजीजनत् । धर्मस्य कन्या चतुरा सूनृतानाम भामिनी ।
उत्तानपादात्तनयान् प्राप मन्थरगामिनी । अपस्यतिमपस्यन्तं कीर्तिमन्तं ध्रुवं तथा ॥

उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः। ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि कृत्वातपःपुरा ॥
दिव्यमाप ततःस्थानमचलं ब्रह्मणोवरात्। तमेव पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥
धन्या नाम मनोः कन्या ध्रुवाच्छिष्टमजीजनत्।
अग्निकन्या तु सुच्छाया शिष्टात्मा सुषुवे सुतान् ॥ ३८ ॥
कृपं रिपुं जयं वृत्तं वृकं च वृकतेजसम्। चक्षुषं ब्रह्मदौहित्र्यां वीरिण्यां स रिपुञ्जयः ॥
वीरणस्यात्मजायान्तु चक्षुर्मनुमजीजनत्। मनुर्वैराजकन्यायां नड्वलायां सचाक्षुषः ॥
जनयामास तनयान्दश शूरानकल्मषान्। ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्हविः ॥
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः। अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत ॥
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी तु सुप्रभान्। अग्निं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसङ्गयम्।
पितृकन्या सुनीथातु वेनमङ्गादजीजनत्। वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्करादभूत् ॥
पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रौ द्वावजीजनत् ॥ ४४ ॥
अन्तर्धानस्तु मारीच शिखण्डिन्यामजीजनत्।
हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत् सुतान्।
प्राचीनवर्हिषं साङ्गं यमं शुक्रं बलं शुभम् ॥ ४५ ॥
प्राचीनवर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः। हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्त्तिताः।
सवर्णायान्तु सामुद्रयान्दशाधत्त सुतान्प्रभुः। सर्वेप्रचेतसोनाम धनुर्वेदस्य पारगाः।
तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभुर्लोके समन्ततः। देवादेशाच्च तानग्निरदहद्रविनन्दन ! ॥ ४८ ॥
सोमकन्याऽभवत्पत्नी मारिषा नाम विश्रुता। तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्र मग्रयमजीजनत्।
दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः। अजीजनत्सोमकन्या नन्दीं चन्द्रवतीं तथा ॥
सोमांशस्यचतस्यापिदक्षस्याशीतिकोटयः। तासांतुविस्तरं वक्ष्ये लोके यः सुप्रतिष्ठितः।
द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः। बलीमुखाःशङ्कुकर्णाःकर्णप्रावरणास्तथा ॥
अश्वऋक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा।
श्वशूकरमुखाः केचित् केचिदुष्ट्रमुखास्तथा ॥ ५३ ॥
जनयामासधर्मात्मास्लेच्छान् सर्वाननेकशः। सद्व्यमनसिदक्षःस्त्रियःपश्चादजीजनत्।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशतिः सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः ॥
देवासुरमनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूज्जगत् ॥ ५५ ॥

इति मत्स्यपुराणे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

दक्षादूर्ध्वं मैथुनतः सृष्टिः ।

ऋषय ऊचुः ।

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूत ! ब्रूहि यथातथम् ॥

सूत उवाच ।

सङ्कल्पाद्दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते । दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा ।
प्रजासृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज चैवादौ तथैव शृणुत द्विजाः ! ॥ ३ ॥
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान् ।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः । दक्षः पुत्रसहस्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत् ॥४॥
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागः सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः । नारदःप्राहहर्यश्वान् दक्षपुत्रान्समागतान्
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वोर्ध्वमधः एव च । ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः ॥
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् । अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः
हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः । वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ॥ ८ ॥
शवला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः । नारदोऽनुगतान्प्राह पुनस्तान्पूर्ववत्सतान्
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातॄनथो पुनः ॥ ९ ॥
आगत्य चाथ सृष्टिञ्च करिष्यथ विशेषतः । तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातॄन् यथा पुरा
ततः प्रभृति न भ्रातुः कनीयान्मार्गमिच्छति । अन्विषन्दुःखमाप्नोति तेन तत्परिवर्जयेत्
ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं कन्याः प्रजापतिः । वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा

प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशतिसोमायचतस्रोऽरिष्टनेमये(मिने) ।
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते । द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासान्नामानि विस्तरात्
श्रृणुध्वं देवमातृणां प्रजाविस्तरमादितः । मरुत्वती वसूर्यामी लम्बा भानुररुन्धती ॥

सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोधत ॥ १६ ॥
विश्वेदेवांस्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ १७ ॥

भानोस्तु भानवस्तद्वन् मुहूर्त्तायां मुहूर्तकाः । लम्बायांघोषनामानोनागवीथीतुयामिजा
पृथिवीतलसम्भूतमरुन्धत्यामजायत । सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो वसुसृष्टिन्निबोधत ।१६।
ज्योतिष्मन्तस्तुयेदेवाव्यापकाःसर्वतोदिशम् । वसवस्तेसमाख्यातास्तेषांसर्गन्निबोधत
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौप्रकीर्तिताः
आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वैदण्डएवच । शाम्बोऽथमणिवक्त्रश्चयज्ञरक्षाधिकारिणा
ध्रुवस्य कालपुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत । द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ।
कल्याणिन्यां ततः प्राणोरमणः शिशिरोऽपि च । मनोहराधरात्पुत्रानवापाथ हरेः सुता
शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा ! अवापाचानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः ।२५।
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत । तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥
अपत्यं कृत्तिकानां तुकार्तिकेयस्ततःस्मृतः । प्रत्यूषस्यर्षिः(षेः)पुत्रोविभुर्नाम्नाथदेवलः

विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ॥ २७ ॥

प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु । तडागारामकूपेषु स्मृतः सोमरवर्धकिः ॥ २८ ॥
अजैकपादहिर्बुध्न्य विरूपाक्षोऽथ रैवतः । हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥२६॥
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः । एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः
एतेषां मानसानान्तु त्रिशूलवरधारिणाम् । कोटयश्चतुराशीतिस्तत्पुत्राश्चाक्षया मताः ॥
दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः । पुत्रपौत्रसुताश्चैते सूरभी गर्भसम्भवाः ॥

इति मत्स्यपुराणे [illegible] नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

कश्यपान्वयवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान् । अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टासुरसातथा
सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा । कद्रूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान्निवोधत ॥
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । वैवस्वतेऽन्तरे चैते आदित्याद्द्वादशस्मृताः
इन्द्रोधाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथवरुणोयमः । विवस्वान्सवितापूषाअंशुमान्विष्णुरेवच

एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः ।
मारीचात् कश्यपादाप पुत्रानदितिरुत्तमान् ॥ ५ ॥

भृशाश्वस्य ऋषेः पुत्रा देवप्रहरणाःस्मृताः ।एते देवगणा विप्राः प्रतिमन्वन्तरेषु च ।६।
उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे ल्पे तथैव च । दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षं तथैव च । हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातं पुत्रचतुष्टयम् ॥ ८ ॥
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादोह्लाद एव च । प्रह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्वाष्कल एव च ॥
विरोचनश्चतुर्थश्च स बलिं पुत्रमाप्तवान् । बलेः पुत्रशतं त्वासीद्वाणज्येष्ठं ततोद्विजाः ।
धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापनः । निकुम्भनाभो गुर्वक्षः कुक्षिभीमो विभीषणः ।
एवमाद्यास्तु बहवो वाणज्येष्ठा गुणाधिकाः । वाणः सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसंयुतः ॥
तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलभृत् । महाकालत्वमगमत्साम्यं यश्च पिनाकिनः
हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदूलूकः शकुनिस्तथा । भूतसन्तापनश्चैव महानाभस्तथैव च ।१४।
एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः ।महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः
दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद्बलदर्पितम् । विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद्येषां मध्येमहाबलः ॥
द्विमूर्द्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरोधरः । अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो नामतस्तथा ॥
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरा गर्भशिरास्तथा । विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः ।१८।

इन्द्रजित् सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च। एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ।१९॥
असिलोमा पुलोमा च विन्दुर्वाणो महासुरः। स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोःसुताः
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा।
उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः ॥ २१ ॥
शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः। पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हि ते ॥
बह्वपत्ये महासत्वे मारीचस्य परिग्रहे। तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानामभूत्पुरा ॥२३॥
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत्पुरा। अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः
चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु। विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत्
हिरण्यकशिपोर्येवैभागिनेयास्त्रयोदश। व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र! नलो वातापिरेव च ॥
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा। नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ।२७।
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः। संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाःस्मृताः
अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ।२९।
षट्कन्या जनयामास ताम्रा मारीचवीजतः। शुकीश्येनीचभासीचसुग्रीवीगृध्रिकाशुचिः
शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः। श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुररानप्यजीजनत्
गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान्। हंससारसक्रौञ्चांश्च प्लवान् शुचिरजीजनत्
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत्। एषताम्रान्वयः प्रोक्तो विनतायांनिबोधत
गरुडः पततांनाथो अरुणश्च पतत्रिणाम्। सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ। सम्पातिपुत्रो वभ्रुश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुतः।
जटायुषः कर्णिकारः शतगामी च विश्रुतौ। सारसो रज्जुवालश्चभेरुण्डश्चापि तत्सुताः
तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम्। सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणामभवत्पुरा ॥३७॥
सहस्रशिरसाङ्कद्रूः सहस्रश्चापि सुव्रत!। प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिन्दम
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः। धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ॥ ३९ ॥
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रवलाहकाः। शङ्खपाल-महाशङ्ख-पुष्पदंष्ट्र-शुभाननाः ॥ ४० ॥
शङ्कुरोमा च वहुलो वामनः पाणिनस्तथा। कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरितिस्मृताः ॥

एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् । प्रायशो यत् पुरादग्धं जनमेजयमन्दिरे ॥४२॥
रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् । दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात्क्षयम् ।
रुद्राणाञ्च गणं तद्वद्गोमहिष्यो वराङ्गनाः । सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता ॥
मुनिर्मुनीनाञ्च गणं गणमप्सरसां तथा । तथा किन्नरगन्धर्व्वानरिष्टाऽजनयद्बहून् ॥ ४५
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीजनत् ! विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ॥
तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद्दितिः । जनयामास धर्म्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान् ॥४७

इति श्रीमत्स्यपुराणे कश्यपान्वयो नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः

मरुद्गणोत्पत्तिकथने मदनद्वादशीव्रतकथनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

दितेःपुत्राःकथंजाता मरुतो देववल्लभाः । देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्ते सख्यमुत्तमम् ॥

सूत उवाच ।

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु हरिणासुरैः । पुत्रपौत्रेषु शोकार्त्ता गत्वा भूलोकमुत्तमम् ॥२॥
स्यमन्तपञ्चके क्षेत्रे सरस्वत्यास्तटे शुभे । भर्तुराराधनपरा तप उग्रं चचार ह ॥ ३ ॥
तदादितिर्दैत्यमाता ऋषिरूपेण सुव्रत! । फलाहारा तपस्तेपे कृच्छ्रं चान्द्रायणादिकम् ॥
यावद्वर्षशतं साग्रं जाता शोकसमाकुला । ततः सा तपसा तप्ता वसिष्ठादीनपृच्छत ॥५॥
कथयन्तु भवन्तो मे पुत्रशोकविनाशनम् । व्रतं सौभाग्यफलदमिह लोके परत्र च ॥६॥
ऊचुर्वसिष्ठप्रमुखा मदनद्वादशीव्रतम् । यस्याः प्रभावादभवत् सुतशोकविवर्जिताः ॥७॥

ऋषय ऊचुः ।

श्रोतुमिच्छामहे सूत ! मदनद्वादशी व्रतम् । सुतानेकोनपञ्चाशद्येन लेभेदितिः पुनः ॥८

सूत उवाच ।

यद्वसिष्ठादिभिः पूर्वन्दितेः कथितमुत्तमम् । विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निबोधत ।९
चैत्रमासि सितेपक्षे द्वादश्यां नियतव्रतः । स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततण्डुलपूरितम् ॥१०॥
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदण्डसमन्वितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितम् ॥११॥
नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यन्तु शक्तितः । ताम्रपात्रं गुड़ोपेतं तस्योपरि निवेशयेत् ॥
तस्मादुपरि कामन्तु कदलीदलसंस्थितम् । कुर्य्याच्छर्कराभार्य्योपेतं रतिं तस्य च वामतः ॥
गन्धं धूपं ततो दद्याद्गीतं वाद्यञ्च कारयेत् । तदभावे कथांकुर्य्यात् कामकेशवयोर्नरः ।
कामनाम्नो हरेरर्चां स्नापयेद्गन्धवारिणा । शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेन्मधुसूदनम् ॥१५॥
कामाय पादौ संपूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च । ऊरूस्मरायेतिपुनर्मन्मथायेति वै कटिम् ।
स्वच्छोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरो हरेः । मुखं पद्ममुखायेति बाहूपञ्चशराय वै ॥ १७ ॥
नमः सर्वात्मने मौलिमर्चयेदिति केशवम् । ततः प्रभाते तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वयञ्चलवणाद्दृते । भुक्त्वा तु दक्षिणांदद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
प्रीयतामत्र भगवान् कामरूपी जनार्दनः । हृदये सर्वभूतानां यआनन्दोऽभिधीयते ।२०।
अनेन विधिनासर्वं मासिमासि व्रतं चरेत् । उपवासी त्रयोदश्यामर्चयेद्विष्णुमव्ययम् ।
फलमेकञ्च संप्राश्य द्वादश्यांभूतले स्वपेत् । ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् ।
शय्यां दद्यादनङ्गाय सर्वोपस्करसंयुताम् । काञ्चनंकामदेवञ्च शुक्लां गाञ्च पयस्विनीम् ।
वासोभिर्द्विजदाम्पत्यंपूज्यंशक्त्याविभूषणैः । शय्यागन्धादिकंदद्यात्प्रीयतामित्युदीरयेत् ।
होमःशुक्लतिलैःकार्य्यःकामनामानिकीर्त्तयेत् । गव्येनहविषातद्वत् पायसेनचधर्म्मवित् ॥
विप्रेभ्योभोजनंदद्याद्वित्तशाठ्यंविवर्जयेत् । इक्षुदण्डानथोदद्यात् पुष्पामालाश्च शक्तितः ।
यः कुर्याद्विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम् । स सर्वपापनिर्मुक्तःप्राप्नोति हरिसाम्यताम् ॥
इह लोकेवरान् पुत्रान् सौभाग्यफलमश्नुते । यःस्मरःसंस्मृतोविष्णुरानन्दात्मामहेश्वरः ।
सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम् । एतच्छ्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वं विशेषतः ॥
कश्यपो व्रतमाहात्म्यादगत्य परया मुदा । चकार कर्कशां भूयो रूपयौवनशालिनीम् ॥
वरैराच्छन्दयामास सा तु वव्रे ततोवरम् । पुत्रं शक्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥३१॥

वक्ष्यामि महात्मानं सर्वामरनिषूदनम्। उवाच कश्यपो वाक्यमिन्द्रहन्तारमूर्जितम् ॥
प्रदास्याम्यहमेवेहकिं त्वेतत्क्रियतां शुभे! । आपस्तम्बः करोत्विष्टिंपुत्रीयामद्यसुव्रते ।
विधास्यामि ततोगर्भमिन्द्रशत्रुनिषूदनम् । आपस्तम्बस्ततश्चक्रेपुत्रेष्टिन्द्रविणाधिकाम् ।
इन्द्रशत्रुर्भवस्वेति जुहाव च सविस्तरम् । देवा मुमुदिरे दैत्या विमुखाःस्युश्चदानवाः ॥
दित्यांगर्भमथाधत्तकश्यपः प्राहतां पुनः । त्वयायत्नो विधातव्यो ह्यस्मिन्गर्भेवरानने ।
सम्वत्सरशतं त्वेकमस्मिन्नेव तपोवने । सन्ध्यायां नैव भोक्तव्यंगर्भिण्यावरवर्णिनि! ॥
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा । नोपस्करेषूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ॥३८॥
जले च नावगाहेत शून्यागारञ्च वर्जयेत् । वल्मीकायां न तिष्ठेतनचोद्विग्नमना भवेत् ॥

विलिखेन्न नखैर्भूमिन्नाङ्गारेण न भस्मना ।
न शयालुः सदा तिष्ठेद् व्यायामञ्च विवर्जयेत् ॥ ४० ॥

न तुषांगारभस्मास्थिकपालिषु समाविशेत् । वर्जयेत्कलहंलोकैर्गात्रभंगं तथैव च ॥
न मुक्तकेशा तिष्ठेत नाशुचिःस्यात् कदाचन । न शयीतोत्तरशिरा नचापरशिराःक्वचित् ।
न वस्त्रहीना नोद्विग्ना नचार्द्रावरणा सती । नामंगल्यां वदेद्वाचं न च हास्याधिका भवेत् ।
कुर्य्याच्चु गुरुशुश्रूषांनित्यं मांगल्यतत्परा । सर्व्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणास्नानमाचरेत् ।
कृतरक्षा सुभूषा च वास्तुपूजनतत्परा । तिष्ठेत् प्रसन्नवदना भर्तुः प्रियहिते रता ।४५।
दानशीला तृतीयायां पार्वण्यं नक्तमाचरेत् । इति वृत्ताभवेन्नारी विशेषेणतु गर्भिणी ॥
यस्तुतस्या भवेत् पुत्रः शीलायुर्वृद्धिसंयुतः । अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः ।
तस्मात्त्वमनयावृत्त्यागर्भेऽस्मिन्यत्नमाचर । स्वस्त्यस्तुतेगमिष्यामितथेत्युक्तस्तयापुनः॥
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत । ततः सा कश्यपोक्तेन विधिनासमतिष्ठत ॥४६॥
अथ भीतस्तथेन्द्रोऽपि दितेः पार्श्वमुपागमत् । विहायदेवसदनं तच्छुश्रूषुरवस्थितः ॥५०
दितेश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः । विनीतोऽभवदव्यग्रः प्रशान्तवदनो वहिः ॥
अजानन् किलतत्कार्य्यमात्मनःशुभमाचरन् । ततोवर्षशतान्तेसान्यूनेतुदिवसैस्त्रिभिः ॥
मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा । अकृत्वापादयोःशौचंप्रसुप्ता मुक्तमूर्धजा ॥
निद्राभरसमाक्रान्ता दिवापरशिराः क्वचित् । ततस्तदन्तरं लब्ध्वाप्रविष्टस्तुशचीपतिः ॥

वज्रेण सप्तधा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः । ततः सप्तैव ते जाताः कुमाराः सूर्य्यवर्चसः ॥
रुदन्तः सप्तवेताला निषिद्धा गिरिदारिणा । भूयोऽपि रुदतश्चैतानेकैकं सप्तधा हरिः ॥५६॥
चिच्छेद वृत्रहन्ता वै पुनस्तदुदरे स्थितः । एवमेकोनपञ्चाशद् भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम् ॥
इन्द्रो निवारयामास मा रोदीष्ट पुनः पुनः ।
ततःसचिन्तयामासकिमेतदितिवृत्रहा । धर्म्मस्यकस्यमाहात्म्यात् पुनःसञ्जीवितास्त्वमी
विदित्वा ध्यानयोगेन मदन द्वादशी फलम् ॥ ५९ ॥
नूनमेतत् परिणतमधुना कृष्णपूजनात् । वज्रेणापि हताः सन्तो न विनाशमवाप्नुयुः ॥
एकोऽप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोप्यलम् । अवध्या नूनमेते वै तस्माद्देवा भवन्त्विति ॥
यस्मान्मारुदतेत्युक्तारुदन्तो गर्भसंस्थिताः । मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तुमखभागिनः ॥
ततः प्रसाद्य देवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः । अर्थशास्त्रं समास्थाय मयैतद्दुष्कृतंकृतम् ॥
कृत्वा मरुद्गणं देवैः समानममराधिपः । दितिं विमानमारोप्य ससुतामनयद्दिवम् ॥६४
यज्ञभागभुजो जाता मरुतस्ते ततो द्विजाः । न जग्मुरैक्यमसुरैरतस्ते सुरवल्लभाः ॥६५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मरुतोत्पत्तौ मदन द्वादशी व्रतं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोऽध्यायः

आधिपत्याभिषेचनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

आदिसर्गश्च यः सूत ! कथितो विस्तरेण तु । प्रतिसर्गश्चयेयेषामधिपास्तान् वदस्व नः ॥

सूत उवाच ।

यदाभिषिक्तः सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तदौषधीनामधिपं चकार यज्ञव्रतानां तपसाञ्च चन्द्रम् ॥२॥
नक्षत्र-तारा-द्विज-वृक्ष-गुल्मलतावितानस्य च रुक्मगर्भः ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणञ्च तद्वत् ॥३॥

विष्णुं रवीणामधिपं वसूनामग्निञ्च लोकाधिपतिश्चकार ।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षञ्चकार शक्रं मरुतामधीशम् ॥४॥
दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशञ्च यमं पितॄणाम् ।
पिशाचरक्षः-पशु-भूत-यक्ष-वेतालराजन्त्वथ शूलपाणिम् ॥५॥
प्रालेय शैलञ्च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं ससरिन्नदानाम् ।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ॥६॥
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिशाङ्गजानामधिपञ्चकार गजेन्द्रमैरावतनामधेयम् ॥७॥
सुपर्णमीशम्पततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसञ्चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवाञ्च वृक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम् ॥८॥
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चच्चैतान् पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्नाम्ना सुधर्माणमरातिकेतुम् ॥९॥
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम् ।
सकेतुमन्तञ्च दिगीशमीशश्चकार पश्चाद्भुवनाण्डगर्भः ॥१०॥
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवसुतञ्चकार ।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः शत्रून् दहन्तस्तु भुवोभिरक्षाम् ॥११॥
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम् ।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते ॥१२॥
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः ॥१३॥
इति मत्स्यपुराणे आधिपत्याभिषेचनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥

नवमोऽध्यायः

मन्वन्तरानुवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

एवं श्रुत्वा मनुः प्राह पुनरेव जनार्दनम् । पूर्वेषाञ्चरितं ब्रूहि मनूनां मधुसूदन ॥१॥

मत्स्य उवाच ।

मन्वन्तराणि सर्वाणि मनूनां चरितञ्च यत् । प्रमाणञ्चैवकालस्यतच्छृणुष्वसमाहितः ॥
एकचित्तः प्रशान्तात्मा श्रृणु मार्तण्डनन्दन । यामानामपुरादेवाआसन् स्वायम्भुवान्तरे॥
सप्तैवऋषयः पूर्वे ये मरीच्यादयः स्मृताः । आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च सहः सवन एव च ॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्योमेधामेधातिथिर्वसुः । स्वायम्भुवस्यास्यमनोर्दशैतेवंशवर्द्धनाः
प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुर्यत्परमस्पदम् । एतत्स्वायम्भुवंप्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम् ॥
स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः । नभो नभस्यप्रसृतिभानवः कीर्तिवर्द्धनाः ॥
दत्तोनिश्च्यवनस्तम्बः प्राणः कश्यप एप च । और्वो वृहस्पतिश्चैवसप्तैतेऋषयःस्मृताः ॥
देवाश्च तुषितानामस्मृताःस्वारोचिषेऽन्तरे । हवीन्द्रःसुकृतोमूर्तिरापोज्योतिरयस्मयः ॥
वसिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृताः । द्वितीयमेतत्कथितं मन्वन्तरमतः परम् ॥
औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथामन्वन्तरं शुभम् । मनुर्नामौत्तमिर्यत्र दशपुत्रानजीजनत् ॥११
ईषऊर्जश्च तर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च । मधुश्च माधवश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा ॥
सहः कनीयानेतेषामुदारः कीर्त्तिवर्द्धनः । भावनास्तत्र देवाःस्युरूर्जाः सप्तर्षयःस्मृताः ॥
कौकुरुण्डिश्च दाल्भ्यश्च शङ्खः प्रवहणःशिवः । सितश्चसस्मितश्चैवसप्तैतेयोगवर्द्धनाः ॥
मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतम् । कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिःकपिरेव च ॥१५
तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सप्तनामतः । साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे ॥
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः । तपो रति तपस्यश्च तपोद्युतिपरन्तपौ ॥१७
तपो भागी तपो योगी धर्माचाररताः सदा । तामसस्य सुताः सर्वेदशवंशविवर्द्धनाः ॥

पञ्चमस्य मनोस्तद्वद्रैवतस्यान्तरं शृणु। ऐन्द्रबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः ॥
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः। देवाश्चाभूतरजसस्तथाप्रकृतयः शुभाः॥२०
अरुणस्तत्वदर्शीचधृतिमान्हव्यवान्कविः। युक्तोनिरुत्सुकःसत्वोनिर्मोहोऽथप्रकाशकः
धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः। भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च ॥
विवस्वानतिनामा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे। चाक्षुषस्यान्तरे देवालेखा नाम परिश्रुताः॥२३
ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्चवारिमूलादिवौकसः। चाक्षुषस्यान्तरेप्रोक्तादेवानांपञ्चयोनयः ॥
रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश। प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मयापूर्वमेव तु ॥२५॥
अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्त्तितम्। सप्तमं तत्प्रवक्ष्यामि यद्वैवस्वतमुच्यते ॥
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपोगौतमस्तथा। भरद्वाजस्तथायोगीविश्वामित्रः प्रतापवान् ॥
जमदग्निश्च सप्तैते साम्प्रतं ये महर्षयः। कृत्वा धर्म्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमम्पदम् ॥
साध्याविश्वेचरुद्राश्चमरुतोवसवोऽश्विनौ। आदित्याश्चसुरास्तद्वत्सप्तदेवगणाःस्मृताः
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दशपुत्राः स्मृता भुवि। मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्तमहर्षयः ॥३०॥
कृत्वा धर्म्मव्यवस्थानं प्रयन्तिपरमम्पदम्। सावर्ण्यस्यप्रवक्ष्यामिमनोर्भावितथान्तरम्॥
अश्वत्थामा शरद्वांश्चकौशिकोगालवस्तथा। शतानन्दःकाश्यपश्चरामश्चऋषयःस्मृताः॥
धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च। चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुक्रश्च वीर्यवान्
भविष्यादशसावर्णेर्मनोःपुत्राःप्रकीर्त्तिताः। रौच्यादयस्तथान्येऽपिमनवः सम्प्रकीर्तिताः
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति। मनुर्भूतिसुतस्तद्वद्भौत्योनामभविष्यति ॥
ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः। ऋतश्च ऋतधामाचविष्वक्सेनोमनुस्तथा ॥
अतीतानागताश्चैते मनवः परिकीर्तिताः। षड्नं युगसाहस्रमेभिर्व्याप्तं नराधिप ॥३७॥
स्वेस्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम्। कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्तेब्रह्मणा सह ॥
एतेयुगसहस्रान्तेविनश्यन्तिपुनःपुनः। ब्रह्माद्याविष्णुसायुज्यंयातायास्यन्ति वैद्विजाः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मन्वन्तरानुकीर्तनं नाम नवमोऽध्यायः ॥

दशमोऽध्यायः

पृथ्वीदोहनम्

ऋषय ऊचुः ।

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयतेपुरा । पार्थिवाःपृथिवीयोगात्पृथिवीकस्य योगतः ॥

किमर्थञ्चकृतासंज्ञाभूमेःकिंपारिभाषिणी । गौरितीयञ्चविख्यातासूत ! कस्माद्‌ब्रवीहिनः॥

सूत उवाच ।

वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः । मृत्योस्तुदुहितातेनपरिणीतासुदुर्मुखा ॥३

सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नामसुतः पुरा । अधर्म्मनिरतश्चासीद्‌बलवान्वसुधाधिपः

लोकेऽप्यधर्म्मकृज्जातः परभार्यापहारकः । धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थंजगतोऽथमहर्षिभिः ॥

अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः । शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥६।

ममन्थु र्ब्राह्मणास्तस्यबलाद्देहमकल्मषाः । तत्कायान्मथ्यमानात्तुनिपेतुर्म्लेच्छजातयः ॥

शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः । पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्म्मचारिणः ॥

उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात्स धनुः सशरोगदी । दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः ॥

पृथोरेवा भवद्यत्नात् ततः पृथुरजायत । स विप्रैरभिषिक्तोऽपितपः कृत्वा सुदारुणम् ॥

विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत्पुनः । निःस्वाध्यायवषट्कारंनिर्धर्मंवीक्ष्य भूतलम् ॥

दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः । ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ॥

पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः । ततःस्थित्वैकदेशे तु किं करोमीतिचाब्रवीत् ॥

पृथुरप्यवदद्वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते । सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ॥

तथैव सा ब्रवीद्‌भूमिर्दुदोह स नराधिपः ।

स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम् ॥ १५ ॥

तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजा जीवन्तियेनवै । ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धावत्सः सोमस्तदाभवत् ।

दोग्धाबृहस्पतिरभूत्पात्रं वेदस्तपोरसः । वेदैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धामित्रस्तदा भवत् ॥

इन्द्रोवत्सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम् । देवानां काञ्चनं पात्रं पितॄणां राजतंतथा॥

अन्तकश्चाभवद्दोग्धा यमोवत्सः स्वधारसः । अलाबुपात्रंनागानांतक्षकोवत्सकोऽभवत् ॥
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत्पुनः । असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम् ।
पात्रे मायामभूद्वत्सः प्राह्लादिस्तु विरोचनः । दोग्धाद्विमूर्धा तत्रासीन्मायायेनप्रवर्त्तिता ।
यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्द्धानमीप्सुभिः । कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपते ॥
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धारा रुधिरमुल्वणम् । रौप्यनाभोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्सएवच ।
गन्धर्वैश्चपुरादुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः । वत्संचैत्ररथंकृत्वा गन्धान् पद्मदलेतथा ।
दोग्धा वररुचिर्नामनाट्यवेदस्य पारगः । गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च ।
औषधानिच दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः । वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रंशैलमयंपुनः ।
वृक्षैश्चवसुधादुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम् । पालाशपात्रंदोग्धातु शालःपुष्पलताकुलः ।
प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सःसर्ववृक्षोधनाधिपः । एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धायथेप्सितम् ॥
आयुर्धनानि सौख्यञ्चपृथौ राज्यंप्रशासति । न दरिद्रस्तदा कश्चिन्नरोगीन च पापकृत् ।
नोपसर्गभयंकिञ्चित् पृथौराजनिशासति । नित्यंप्रमुदितालोका दुःखशोकविवर्जिताः ॥
धनुष्कोट्याच शैलेन्द्रानुत्सार्य्यसमहाबलः । भुवस्तलंसमंचक्रे लोकानांहितकाम्यया ॥
न पुरग्रामदुर्गाणि नचायुधधरा नराः । क्षयातिशयदुःखञ्च नार्थशास्त्रस्य चादरः ॥
धर्मैकवासनालोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति । कथितानिचपात्राणि यत्क्षीरञ्चमयातव ।
येषां यत्र रुचिस्तत्तद्देयं तेभ्यो विजानता । यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ॥
दुहितृत्वङ्गता यस्मात् पृथोर्धर्म्मवतो मही । तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः ॥

इति मत्स्यपुराणे वैन्याभिवर्णनो नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

आदित्याख्यानम् ।

ऋषय ऊचुः ।

आदित्यवंशमखिलं वद सूत! यथाक्रमम् । सोमवंशञ्च तत्वज्ञ! यथावद्वक्तुमर्हसि ।१।

सूत उवाच ।

विवस्वान् कश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत्सुतः । तस्यपत्नीत्रयं तद्वत्संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा ॥

रैवतस्य सुता राज्ञी रैवतं सुषुवे सुतम्। प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्रीसंज्ञा तथा मनुम्॥
यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः। ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः ॥ ४ ॥
नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम्। त्वाष्ट्रीस्वरूपेणनाम्ना छायेतिभामिनीतदा॥
किङ्करोमीति पुरतः स्थितां तामभ्यभाषत। छाये! त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने ! ॥
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय। तथेत्युक्त्वा तु सा देवमगमत् क्वापि सुव्रता॥
कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमितिचादरात्। जनयामास तस्यांतु पुत्रञ्च मनुरूपिणम्॥
सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्म्मनोर्वैवस्वतस्य च। ततः शनिश्च तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु॥
छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः। छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा।
पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्च्छितः। सन्तर्जयामासतदा पादमुद्यम्य दक्षिणम्।
शशाप च यमं छाया सक्षतः कृमिसंयुतः। पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्रवः।
निवेदयामास पितुर्धर्म्मः शापादमर्षितः। निष्कारणमहं शप्तोमात्रा देव! सकोपया॥
बालभावान् मया किञ्चिदुद्यतश्चरणः सकृत्। मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद्विभो।
प्रायोन माता सास्माकं शापेनाहं यतो हतः। देवोऽप्याहयमं भूयः किङ्करोमिमहामते।
मौर्ख्यात्कस्यनदुःखंस्यादथवाकर्म्मसन्ततेः। अनिवार्याभवस्यापिकाकथान्येषुजन्तुषु।
कृकवाकुर्म्मया दत्तो यः कृमीन् भक्षयिष्यति। क्लेदश्च रुधिरञ्चैव वत्सायमपनेष्यति॥
एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्रं महायशाः। गोकर्णतीर्थे वैराग्यात् फलपत्रानिलाशनः॥
आराधयन् महादेवं यावद्वर्षायुतायुतम्। वरं प्रादान् महादेवः सन्तुष्टः शूलभृत्तदा॥
वव्रेसलोकपालत्वं पितृलोकेनृपालयम्। धर्म्माधर्म्मात्मकस्यापि जगतस्तुपरीक्षणम्।
एवं स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिनः। पितॄणाञ्चाधिपत्यञ्च धर्म्माधर्म्मस्य चानघ।
विवस्वानथ तज्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्म्मचेष्टितम्। त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे चरोषवान्।
तमुवाच ततस्त्वष्टासान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमाः। तवासहन्ती भगवन्! महस्तीव्रंतमोनुदम्।
वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता। निवारिता मया सातु त्वया चैव दिवाकर!
यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहागता। तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न त्वमर्हसि ॥२५
एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता। वडवा रूपमास्थाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता ॥२६॥

तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम् । अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर ! । रूपंतवकरिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो ! । तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम् । पृथक् चकारतत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत् । त्रिशूलञ्चापिरुद्रस्यवज्रमिन्द्रस्यचाधिकम् । दैत्यदानवसंहर्तुः सहस्रकिरणात्मकम् । रूपञ्चाप्रतिमञ्चक्रे त्वष्टा पद्भ्यामृते महत् ॥ न शशाकाथ तद्द्रष्टुं पादरूपंरवेःपुनः । अर्चास्वपि ततःपादौ न कश्चित्कारयेत् क्वचित् ॥

यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम् ।
कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः ॥ ३२ ॥

तस्माच्च धर्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च । न क्वचित्कारयेत्पादौ देवदेवस्य धीमतः । ततः स भगवान्! गत्वा भूर्लोकममराधिपः । कामयामास कामार्तो मुखएव दिवाकरः। अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः । संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भयविह्वला ॥ ३५॥ नासापुटाभ्यामुत्सृष्टंपरोऽयमितिशङ्कया । तद्रेतसस्ततोजातावश्विनावितिनिश्चितम् ॥ दस्रौसुतत्वात्सञ्जातौ नासत्यौनासिकाग्रतः । ज्ञात्वाचिराच्च तं देवंसन्तोषमगमत्परम् ।

विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता ॥ ३७ ॥

सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः । शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः ॥ यमुना तपती चैवपुनर्नद्यौ बभूवतुः । विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यवस्थिता ॥ मनोर्वैवस्वतस्यासन् दशपुत्रा महाबलाः । इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्ट्यां समजायत ॥ इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ण एवच । नरिष्यतः करूषश्च शर्य्यातिश्च महाबलः ॥

पृषध्रश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः ॥ ४१ ॥

अभिषिच्य मनुः पुत्रमिलं ज्येष्ठं स धार्मिकः । जगाम तपसेभूयः स महेन्द्रवनालयम् ।

अथ दिग्जयसिध्यर्थमिलः प्रायान् महीमिमाम् ।
भ्रमन् द्वीपानि सर्वाणि क्ष्माभृतः संप्रधर्षयन् ॥ ४३ ॥

जगामोपवनं शम्भोरश्वाकृष्टः प्रतापवान् । कल्पद्रुमलताकीर्णं नाम्ना शरवणं महत् ॥ रमते यत्रदेवेशः शम्भुः सोमार्द्धशेखरः । उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः ॥ ४५ ॥ पुन्नामसत्त्वं यत् किञ्चिदागमिष्यति ते वने । स्त्रीत्वमेष्यति तत्सर्वं दशयोजनमण्डले ॥

अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा। स्त्रीत्वमाप विशन्नेव वडवात्त्वं हयस्तदा॥

पुरुषत्वं हृतं सर्वं स्त्रीरूपे विस्मितो नृप।
इलेति साभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी॥ ४८॥

उन्नतश्रोणिजघना पद्मपत्रायतेक्षणा। पूर्णेन्दुवदना तन्वी विलासोल्लासितेक्षणा॥
मूलोन्नतायतभुजा नीलकुञ्चितमूर्धजा। तनुलोमा सुदशना मृदुगम्भीरभाषिणी॥५०॥
श्यामगौरेण वर्णेन हंसवारणगामिनी। कार्मुकभ्रू युगोपेता तनुताम्रनखाङ्कुरा॥५१॥

भ्रमन्ती च वने तस्मिन् चिन्तयामास भामिनी।
को मे पिताऽथवा भ्राता का मे माता भवेदिह॥ ५२॥

कस्य भर्तुरहं दत्ता कियद्वत्स्यामि भूतले। इति चिन्तयती दृष्टा सोमपुत्रेण साङ्गना॥
इलारूपसमाक्षिप्तमनसा वरवर्णिनीम्। बुधस्तदाप्तये यत्नमकरोत् कामपीड़ितः॥५४॥
विशिष्टाकारवान् दण्डी सकमण्डलुपुस्तकः। वेणुदण्डकृतानेकपवित्रकगणित्रकः॥५५॥
द्विजरूपः शिखी ब्रह्मनिगदन् कर्णकुण्डलः। वटुभिश्चान्वितोयुक्तैःसमित्पुष्पकुशोदकैः
किलान्विषन्वने तस्मिन्नाजुहाव स तामिलाम्। वहिर्वनस्यान्तरितः किल पादपमण्डले
ससम्भ्रममकस्मात्तां सोपालम्भमिवावदत्। त्यक्त्वाग्निहोत्रशुश्रूषां क्वगता मन्दिरान्मम
इयं विहारवेला ते ह्यतिक्रामति साम्प्रतम्। एह्येहि पृथुसुश्रोणि! सम्भ्रान्ताकेन हेतुना
इयं सायन्तनीवेला विहारस्येह वर्तते। कृत्वोपलेपनं पुष्पैरलंकुरु गृहं मम॥ ६०॥
सात्वब्रवीद्विस्मृताहं सर्वमेतत्तपोधन!। आत्मानं त्वाञ्च भर्तारं कुलञ्च वदमेऽनघ॥
बुधः प्रोवाच तान्तन्वीमिला त्वं वरवर्णिनि!। अहञ्च कामुको नामबहुविद्योबुधःस्मृतः
तेजस्विनः कुलेजातः पितामे ब्राह्मणाधिपः। इति सा तस्यवचनात्प्रविष्टाबुधमन्दिरम्
रत्नस्तम्भसमायुक्तं दिव्यमायाविनिर्मितम्। इला कृतार्थमात्मानं मेने तद्भवनस्थिता॥
अहोवृत्तमहोरूपमहोधनमहोकुलम्। मम चास्य च मे भर्तुरहोलावण्यमुत्तमम्॥६५॥
रेमे च सा तेन सममतिकालमिला ततः। सर्वभोगमये गेहे यथेन्द्रभवने तथा॥ ६६॥

इति मत्स्यपुराणे इलोपाख्याने एकादशोऽध्यायः।

द्वादशोऽध्यायः

सूर्यवंशवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अथान्विषन्तो राजानं भ्रातरस्तस्यमानवाः । इक्ष्वाकुप्रमुखाजग्मुस्तदाशरवणान्तिकम् ॥
ततस्तेदद्दृशुः सर्वे वडवामग्रतः स्थिताम् । रत्नपर्याणकिरणदीप्तकायामनुत्तमाम् ॥२॥
पर्याणप्रत्यभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागताः । अयं चन्द्रप्रभो नाम वाजीतस्य महात्मनः
अगमद्वडवा रूपमुत्तमं केन हेतुना । ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुस्ते पुरोधसम् ॥ ४ ॥
किमित्येतदभूच्चित्रंवदयोगविदाम्वर !। वशिष्ठश्चाब्रवीत् सर्वं दृष्ट्वा तद्ध्यानचक्षुषा ॥५॥
समयः शम्भुदयिताकृतः शरवणे पुरा । यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्स्यति ॥
अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद्राज्ञा सहैवतु । पुनः पुरुषतामेति यथासौ धनदोपमः ॥
तथैव यत्नः कर्तव्यश्चाराध्यैव पिनाकिनम् । ततस्ते मानवा जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः ॥
तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ । तावूचतुरलङ्घ्योऽयं समयः किन्तु साम्प्रतम्
इक्ष्वाकोरश्वमेधेनयत्फलं स्यात्तदावयोः । दत्त्वा किम्पुरुषोवीरः स भविष्यत्यसंशयम्
तथेत्युक्तास्ततस्तेस्तुजग्मुर्वैवस्वतात्मजाः । इक्ष्वाकोश्चाश्वमेधेनचेलःकिम्पुरुषोऽभवत्
मासमेकम्पुमान्वीरः स्त्रीच मासमभूत् पुनः । बुधस्य भवने तिष्ठन्निलो गर्भधरोऽभवत्
अजीजनत् पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् । बुधश्चोत्पाद्य तं पुत्रं स्वर्लोकमगमत्ततः ॥ १३ ॥
इलस्य नाम्ना तद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा । सोमार्कवंशयोरादाविलोऽभूत्मनुनन्दनः ॥१४॥
एवं पुरूरवाः पुंसोरभवद्वंशवर्द्धनः । इक्ष्वाकुरर्कवंशस्य तथैवोक्तस्तपोधनाः ॥ १५ ॥
इलः किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते । पुनः पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नस्यापराजितम् ॥
उत्कलो वै गयस्तद्वद्धरिताश्वश्च वीर्य्यवान् । उत्कलस्योत्कलानाम गयस्यतुगयामता
हरिताश्वस्य दिक्पूर्वो विश्रुता कुरुभिः सह । प्रतिष्ठानेऽभिषिच्याथ स पुरूरवसं सुतम्
जगामेलावृतं भोक्तुं वर्षं दिव्यफलाशनम् । इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥
नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभूच्छुचो नाम महाबलः । नाभागस्याम्बरीषस्तु धृष्टस्य च सुतत्रयम्

धृतकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्च वीर्य्यवान् । आनर्तो नाम शर्यातेः सुकन्याचैव दारिका
आनर्तस्याभवत्पुत्रो रोचमानः प्रतापवान् । आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरीच कुशस्थली
रोचमानस्य पुत्रोऽभूद्रेवोरैवत एव च । ककुद्मीचापरान्नामज्येष्ठः पुत्रशतस्य च ॥२३॥
रैवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्यविश्रुता । करूषस्य तु कारूषावहवः प्रथिताभुवि
पृषध्रोगोवधाच्छूद्रो गुरुशापादजायत । इक्ष्वाकुवंशं वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ! ॥
इक्ष्वाकोः पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट् । ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुताः
मेरोरुत्तरतस्तेतु जाताः पार्थिवसत्तमाः । चतुर्दशोत्तरश्चान्यच्छ्रुतमस्य तथाभवत् ॥

मेरोर्दक्षिणतो ये वै राजानः सम्प्रकीर्त्तिताः ।
ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाऽभूत्तत्सुतस्तु सुयोधनः ॥ २८ ॥

तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः । इन्दुस्तस्यचपुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्ततोऽभवत्
श्रावस्तश्चमहातेजावत्सकस्तत्सुतोऽभवत् । निर्मिता येन श्रावस्तीगौडदेशेद्विजोत्तमाः

श्रावस्ताद् वृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ।
धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुं नाम्ना हतः पुरा ॥ ३१ ॥
तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढ़ाश्वो दण्ड एव च ।
कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

दृढ़ाश्वस्य प्रमोदश्चहर्यश्वस्तस्यचात्मजः । हर्यश्वस्यनिकुम्भोऽभूत्संहताश्वस्ततोऽभवत्
अकृताश्वोरणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ । युवनाश्वोरणाश्वस्य मान्धाताचततोऽभवत्
मान्धातुः पुरुकुत्सोऽद्धर्म्मसेनश्च पार्थिवः । मुचुकुन्दश्च विख्यातः शत्रुजिच्चः प्रतापवान्
पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद्वसुदोनर्म्मदापतिः । सम्भूतिस्तस्यपुत्रोऽभूत्त्रिधन्वा चततोऽभवत्
त्रिधन्वनःसुतोजातस्त्रय्यारुण इति स्मृतः । तस्मात्सत्यव्रतोनामतस्मात्सत्यरथःस्मृतः
तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्चरोहितः । रोहिताच्च वृको जातो वृकाद्बाहुरजायत ॥
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिकः । द्वे भार्य्ये सगरस्यापि प्रभाभानुमती तथा ॥
ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोऽग्निः पुत्रकाम्यया । औौर्वस्तुष्टस्तयोःप्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम्
एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं तथापरा । गृह्णातु वंशकर्तारं प्रभाऽगृह्णाद् बहूंस्तदा ॥४१॥

एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम् । ततः षष्टिसहस्राणि सुषुवे यादवीप्रभा ॥४२॥
खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे । असमञ्जसस्तु तनयोयोंऽशुमान्नामविश्रुतः
तस्यपुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः । येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता ॥
भगीरथस्य तनयोनाभाग इतिविश्रुतः । नाभागस्यांबरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्
तस्यायुतायुः पुत्रोऽभूदृतुपर्णस्ततोऽभवत् । तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः
तस्यानरण्यः पुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्य सुतोऽभवत् । निघ्नपुत्रावुभौजातौ अनमित्ररघूनृपौ
अनमित्रो वनमगाद्भविता स कृते नृपः । रघोरभूद् दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा ॥४८॥
दीर्घबाहुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृपः । तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥
नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत् । रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः ॥
वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः । तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ ॥

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।
नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत ॥ ५२ ॥
नभसः पुण्डरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ।
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ॥ ५३ ॥

अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः । ततचन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत् ।
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत् । श्रुतायुरभवत्तस्माद्भारते यो निपातितः ॥
नलौद्वावेवविख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे । वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिपः ॥५६॥
एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः । इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः ।

इति श्रीमत्स्यपुराणे सूर्य्यवंशानुकीर्त्तनो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

———

त्रयोदशोऽध्यायः

देव्या अष्टोत्तरशतनामकथनम् ।

मनुरुवाच ।

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पितॄणां वंशमुत्तमम् । रवेश्चश्राद्धदेवत्वं सोमस्य च विशेषतः ।

मत्स्य उवाच ।

हन्तते कथयिष्यामि पितॄणां वंशमुत्तमम् । स्वर्गेपितृगणाः सप्तत्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥

मूर्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाममितौजसः । अमूर्त्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः ॥

यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः ।

दिवि ते योगविभ्रष्टाः प्राप्य लोकान् सनातनान् ॥ ४ ॥

पुनर्ब्रह्मविदान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः । संप्राप्यतां स्मृतिं भूयो योगं साङ्ख्यमनुत्तमम्

सिद्धिंप्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम् । योगिनामेवदेयानि तस्माच्छ्राद्धानिदातृभिः

एतेषां मानसीकन्यापत्नीहिमवतोमता । मैनाकस्तस्यदायादःक्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत् ।

क्रौञ्चद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो घृतसंवृतः । मेनाचसुषुवेतिस्रः कन्यायोगवतीस्ततः ।८।

उमैकपर्णापर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः । रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यस्यचापरा ॥६॥

दत्ता हिमवता बालाः सर्वा लोके तपोऽधिकाः ।

ऋषय ऊचुः ।

कस्माद्दाक्षायणी पूर्वं ददाहात्मानमात्मना ॥ १० ॥

हिमवद्दुहिता तद्वत् कथं जाता महीतले । संहरन्ती किमुक्तासौ सुता वा ब्रह्मसूनुना ॥

दक्षेण लोकजननी सूत ! विस्तरतो वद ।

सूत उवाच ।

दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे ॥ १२ ॥

समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितरं सती । किमर्थं तात ! भर्तामे यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रितः ।

अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत् । उपसंहारकृद्रुद्रस्तेनामंगलभागयम् ॥ १४ ॥

चुकोपाथ सती देहं त्यक्षामीति त्वदुद्भवम्। दशानान्त्वञ्च भविता पितॄणामेकपुत्रकः।
क्षत्रियत्वेऽश्वमेधे च रुद्रात्त्वं नाशमेष्यसि। इत्युक्त्वायोगमास्थायस्वदेहोद्भवतेजसा।
निर्दहन्ती तदात्मानं सदेवासुरकिन्नरैः। किं किंमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः।
उपगम्याब्रवीद्दक्षः प्रणिपत्याथ दुःखितः। त्वमस्य जगतो माताजगत्सौभाग्य देवता॥
दुहितृत्वङ्गता देवि ममानुग्रहकाम्यया। न त्वया रहितं किञ्चित् ब्रह्माण्डेसचराचरम्॥
प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मान्त्यक्तुमिहार्हसि। प्राह देवी यदारब्धं तत्कार्य्यं मे न संशयः
किं त्ववश्यं त्वया मर्त्ये हतयज्ञेन शूलिना। प्रसादेलोकसृष्ट्यर्थं तपःकार्यं ममान्तिके॥
प्रजापतिस्त्वं भविता दशानामङ्गजोप्यलम्। मदंशेनाङ्गनाषष्टि र्भविष्यन्त्यङ्गजास्तव॥
मत्सन्निधौ तपः कुर्वन् प्राप्स्यसेयोगमुत्तमम्। एवमुक्तोऽब्रवीद्दक्षःकेषुकेषुमयाऽनघे॥
तीर्थेषु च त्वं द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभिः।

देव्युवाच।

सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि॥ २४॥
सर्वलोकेषु यत्किञ्चिद्रहितं न मया विना। तथापियेषुस्थानेषुद्रष्टव्यासिद्धिमीप्सुभिः॥
स्मर्तव्याभूतिकामैर्वातानिवक्ष्यामितत्वतः। वाराणस्यांविशालाक्षीनैमिषेलिङ्गधारिणी॥
प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने। मानसे कुमुदा नाम विश्वकायातथाम्बरे॥
गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी। मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे॥
कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते। एकाम्भकेकीर्तिमतीविश्वांविश्वेश्वरेविदुः॥
पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी। नन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका॥३०॥
स्थानेश्वरे भवानी तु विल्वके विल्वपत्रिका। श्रीशैले माधवी नाम भद्राभद्रेश्वरेतथा॥
जया वराहशैले तु कामला कमलालये। रुद्रकोट्याञ्च रुद्राणी काली कालञ्जरेगिरौ॥
महालिंगे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी। शालिग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया॥
मायापुर्याङ्कुमारी तु सन्ताने ललिता तथा। उत्पलाक्षी सहस्राक्षेकमलाक्षेमहोत्पला॥
गंगाया मंगला नाम विमला पुरुषोत्तमे। विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्द्धने॥३
नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे भद्रसुन्दरी। विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले॥

कोटवीकोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने। कुब्जाग्रके त्रिसन्ध्यातुगंगाद्वारेरतिप्रिया॥
शिवकुण्डे सुनन्दा तु नन्दिनी देविकातटे। रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने
देवकी मथुरायान्तु पाताले परमेश्वरी। चित्रकूटे तथा सीताविन्ध्येविन्ध्यनिवासिनी॥
सह्याद्रावेकवीरा तु हर्मचन्द्रेति चन्द्रिका। रमणा रामतीर्थेतु यमुनायां मृगावती ॥४०
करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके। अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥४१॥
अभयेत्युष्णतीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे। माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहामाहेश्वरेपुरे।
छागलण्डे प्रचण्डातु चण्डिका मकरन्दके। सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती॥
देवमाता सरस्वत्यां पारा पारातटे मता। महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिङ्गलेश्वरी।
सिंहिका कृतशौचेतु कार्त्तिकेये यशस्करी। उत्पलावर्त्तके लोला सुभद्रा शोणसङ्गमे॥
माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे। जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते।
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले। भीमा देवी हिमाद्रौतु पुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा॥
कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे। शङ्खोद्धारे धरा नाम धृतिः पिण्डारके तथा॥
कालातु चन्द्रभागाया मच्छोदे शिवकारिणी। वेणायाममृता नाम वद्र्यामुर्वशी तथा।
औषधी चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका। मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी।५०
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये। गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ॥
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती। सूर्य्यविम्बे प्रभा नाम मातॄणां वैष्णवीमता।
अरुन्धती सतीनान्तु रामासु च तिलोत्तमा। चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिःसर्वशरीरिणाम्।
एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम्। अष्टोत्तरञ्च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् ॥ ५४ ॥
यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते। एषु तीर्थेषुयः कृत्वा स्नानंपश्यति मां नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं शिवपुरे वसेत्। यस्तु मत्परमं कालं करोत्येतेषु मानवः॥
स भित्वा ब्रह्मसदनं पदमभ्येति शाङ्करम्। नाम्नामष्टशतं यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ।
तृतीयायामथाष्टम्यां वहुपुत्रो भवेन्नरः। गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा बुधः॥
देवार्चनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति। एवं वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना
स्वायम्भुवोऽपिकालेनदक्षः प्राचेतसोऽभवत्। पार्वतीसाभवद्देवी शिवदेहार्द्धधारिणी।

मेनागर्भसमुत्पन्ना भक्तिमुक्तिफलप्रदा। अरुन्धती जपन्त्येतत् प्राप योगमनुत्तमम् ।६१
पुरूरवाश्च राजर्षिर्लोके व्यजयतामगात्। ययातिः पुत्रलाभञ्च धनलाभञ्च भार्गवः ६२॥
तथान्येदेवदैत्याश्च ब्राह्मणाःक्षत्रियास्तथा। वैश्याःशूद्राश्चबहवः सिद्धिमीयुर्यथेप्सिताम्
यत्रैतल्लिखितं तिष्ठेत् पूज्यते देवसन्निधौ। न तत्र शोको दौर्गत्यं कदाचिदपि जायते।
इति श्रीमत्स्यपुराणे पितृवंशान्वये गौरीनामाष्टोत्तरशत-कथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।

चतुर्दशोऽध्यायः

पितृवंशानुकीर्त्तनम्।

सूत उवाच।

लोकाःसोमपथा नाम यत्रमारीचनन्दनाः। वर्त्तन्ते देवपितरो देवायान् भावयन्त्य...।
अग्निष्वात्ताइतिख्यातायज्वानो यत्रसंस्थिताः। अच्छोदानामतेषान्तुमानसीकन्यकानदी
अच्छोदन्नाम च सरः पितृभिर्निर्मितंपुरा। अच्छोदा तु तपश्चक्रेदिव्यं वर्ष सहस्रकम्।
आजग्मुः पितरस्तुष्टाः किलदातुञ्च तां वरम्। दिव्यरूपधराःसर्वेदिव्यमाल्यानुलेपनाः।
सर्वे युवानोबलिनः कुसुमायुधसन्निभाः। तन्मध्येऽमावसुंनाम पितरंवीक्ष्यसांऽगना।
वव्रेवरार्थिनी संगं कुसुमायुधपीडिता। योगाद्भ्रष्टा तु सा तेन व्यभिचारेणभामिनी।
धरान्तु नास्पृशत् पूर्वंपपाताथ भुवस्तले। तिथावमावसूर्यस्यामिच्छांचक्रे न तां प्रति।
धैर्येण तस्य सा लोकैरमावास्येतिविश्रुता। पितृणांवल्लभातस्यात्तस्यामक्षयकारकम्।
अच्छोदाऽधोमुखीदीना लज्जितातपसःक्षयात्। सा पितॄन्प्रार्थयामासपुरेचात्मप्रसिद्धये
विलप्यमाना पितृभिरिदमुक्ता तपस्विनी। भविष्यमर्थमालोक्य देवकार्यञ्च ते तदा॥
इदमुचुर्म्महाभागाः प्रसादशुभयागिरा। दिवि दिव्यशरीरेण यत्किञ्चित् क्रियते बुधैः।
तेनैव तत्कर्म्मफलं भुज्यते वरवर्णिनि। सद्यं फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे॥
तस्मात्त्वंपुत्रि! तपसःप्राप्स्यसेप्रेत्यतत्फलम्। अष्टाविंशेभवित्रीत्वं द्वापरेमत्स्ययोनिजा
व्यतिक्रमात्पितृणां त्वंकष्टंकुलमवाप्स्यसि। ...त्वमवश्यंभविष्यसि

कन्या भूत्वा च लोकान् स्वान् पुनराप्स्यसि दुर्लभान्।
पराशरस्य वीर्येण पुत्रमेकमवाप्स्यसि ॥ १५ ॥

द्वीपे तु बदरीप्राये बादरायणमच्युतम्। स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः ॥
पौरवस्यात्मजौद्वौ तु समुद्रांशस्य शन्तनोः। विचित्रवीर्य्यस्तनयस्तथा चित्राङ्गदोनृपः।
इमावुत्पाद्य तनयौ क्षेत्रजावस्य धीमतः। प्रौष्ठपद्यष्टकारूपा पितृलोके भविष्यसि ॥१८
नाम्ना सत्यवती लोके पितृलोके तथाष्टका। आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥
भविष्यसिपरे कालेनदीत्वञ्चगमिष्यसि। पुण्यतोयासरिच्छ्रेष्ठालोकेह्यच्छोदनामिका।
इत्युक्त्वा सगणस्तेषां तत्रैवान्तरधीयत। साप्यवाप च तत्सर्वं फलं तदुदितं पुरा ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पितृवंशानुकीर्त्तनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

माता सिद्ध
देवदारुवने प

—०—

पञ्चदशोऽध्यायः

पितृवंशानुकीर्त्तनम्।

सूत उवाच।

विभ्राजानाम चान्येतु दिविसन्ति सुवर्चसः। लोकावर्हिषदोयत्र पितरः सन्तिसुव्रताः।
यत्र बर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रशः। सङ्कल्प्य वर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः।
यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिनः। यांश्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसांगणाः ॥
यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः। पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगसमन्विताः।
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः। एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिविविश्रुता
योगिनो योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम्। प्रसन्नो भगवांस्तस्यावरंचव्रेतु सा हरेः।
योगवन्तं सुरूपंच भर्तारं विजितेन्द्रियम्। देहि देव! प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदताम्वरम्।

उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यदा शुकः।
भविता तस्य भार्यात्वं योगाचार्यस्य सुव्रते ॥ ८ ॥

भविष्यति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी ।
पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुष्यस्य त्वया तदा ॥ ६ ॥

जननीब्रह्मदत्तस्ययोगसिद्धा च गौःस्मृता । कृष्णोगौरःप्रभुःशम्भुर्भविष्यन्तिचतेसुताः ।
महात्मानोमहाभागागमिष्यन्ति परम्पदम् । तानुत्पाद्यपुनर्योगात्सवरा मोक्षमेष्यसि ।
सुमूर्त्तिमन्तः पितरो वशिष्ठस्य सुता स्मृताः । नाम्ना तु मानसाः सर्वे सर्वेते धर्म्ममूर्त्तयः ।
ज्योतिर्भासिषुलोकेषुये वसन्ति दिवः परम् । विराजमानाःक्रीडन्तियत्रतेश्राद्धदायिनः ।
सर्वकामसमृद्धेषुविमानेष्वपिपादजाः । किं पुनः श्राद्धदा विप्राभक्तिमन्तक्रियान्विताः ।

गौर्नाम कन्या येषान्तु मानसी दिवि राजते ।
शुक्रस्य दयिता पत्नी साध्यानां कीर्त्तिवर्द्धिनी ॥ १५ ॥

मरीचिगर्भानाम्नातुलोकामार्तण्डमण्डले । पितरोयत्रतिष्ठन्तिहविष्यन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥
तीर्थश्राद्धप्रदायान्ति ये च क्षत्रियसत्तमाः । राज्ञान्तु पितरस्तेवै स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ।
एतेषांमानसीकन्या यशोदा लोकविश्रुता । पत्नी ह्यंशुमतः श्रेष्ठा स्नुषा पंचजनस्य च ॥
जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही । लोकाःकामदुघानाम कामभोगफलप्रदाः ॥१६॥
सुस्वधा नाम पितरोयत्रतिष्ठन्तिसुव्रताः । आज्यपा नाम लोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः ।
पुलहाङ्गजदायादा वैश्यास्तान् भावयन्ति च । यत्र श्राद्धकृताः सर्वे पश्यन्तियुगपद्गताः ।
मातृभ्रातृपितृष्वस्र सखिसम्बन्धिबान्धवान् । अपिजन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः ॥
एतेषां मानसी कन्या विरजानाम विश्रुता । या पत्नीनहुषस्यासीद्ययातेर्जननी तथा ।
एकाष्टकाऽभवत् पश्चाद् ब्रह्मलोके गता सती । त्रय एतेगणाःप्रोक्ताश्चतुर्थन्तुवदाम्यतः ।

लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थिताः ।
येषान्तु मानसी कन्या नर्मदा नाम विश्रुता ॥ २५ ॥

सोमपानामपितरोयत्रतिष्ठन्तिशाश्वताः । कृत्वासृष्ट्यादिकंसर्वं मानसेसाम्प्रतंस्थिताः ।
नर्मदानाम तेषान्तु कन्यातोयवहासरित् । भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी ॥
तेभ्यःसर्वे तु मनवःप्रजाःसर्गेषु निर्मिताः । ज्ञात्वाश्राद्धानि कुर्वन्तिधर्माभावेऽपिसर्वदा ।
तेभ्य एव पुनः प्राप्तुं प्रसादाद्योगसन्ततिम् । पितॄणामादिसर्गे तु श्राद्धमेवविनिर्मितम् ।

सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् । दत्तंस्वधापुरोधाय पितॄन् प्रीणाति सर्वदा ।
अग्नीषोमयमानान्तुकार्य्यमाप्यायनंबुधैः । अग्न्यभावेऽपिविप्रस्य पाणावपिजलेऽथवा ।
अजाकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वा सलिलान्तिके ।
पितॄणामम्बरं स्थानं दक्षिणादिक् प्रशस्यते ॥ ३२ ॥
प्राचीनावीतमुदकं तिलाःसव्याङ्गमेव च । दर्भामांसं च पाठीनं गोक्षीरं मधुरा रसाः ॥
खड्गलोहामिषमधुकुशश्यामाकशालयः । यवनीवारमुद्गेक्षु शुक्लपुष्पघृतानि च ॥३४॥
वल्लभानि प्रसस्तानि पितॄणामिहसर्वदा । द्वेष्याणिसम्प्रवक्ष्यामिश्राद्धेवर्ज्यानियानितु ।
मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः । पद्मविल्वार्कधत्तूरपारिभद्राट्टरूषकाः ॥३६ ॥
न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा । कोद्रवोदारचणकाः कपित्थं मधुकातसी ॥
एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः प्रियमिच्छता ।
पितॄन् प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयन्ति तम् ॥ ३८ ॥
यच्छन्ति पितरः पुष्टिं स्वर्गारोग्यं प्रजाफलम् ।
देवकार्यादपि पुनः पितृकार्य्यं विशिष्यते ॥ ३६ ॥
देवनानाञ्चपितरःपूर्वमाप्यायनंस्मृतम् । शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधानिःशस्त्राःस्थिरसौहृदाः ।
शान्तात्मानः शौचपराः सततं प्रियवादिनः । भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरःपूर्वदेवताः ।
हविष्मतामाधिपत्ये श्राद्धदेवः स्मृतो रविः । एतद्वः सर्वमाख्यातं पितृवंशानुकीर्त्तनम् ॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यं कीर्त्तनीयं सदा नृभिः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पितृवंशानुकीर्त्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ।

षोडशोऽध्यायः

श्राद्धप्रकरणम् ।

सूत उवाच ।

श्रुत्वैतत्सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम् ।
श्राद्धकालञ्च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च ॥ १ ॥

श्राद्धेषुभोजनीयायेये च वर्ज्याद्विजातयः । कस्मिन्वासरभागेवापितृभ्यःश्राद्धमाचरेत् ।
कस्मिन्दत्तं कथंयाति श्राद्धन्तु मधुसूदन । विधिनाकेनकर्त्तव्यं कथं प्रीणातितत्पितॄन् ।

मत्स्य उवाच ।

कुर्य्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा । पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥४॥
नित्यन्नैमित्तिकंकाम्यंत्रिविधंश्राद्धमुच्यते । नित्यंतावत्प्रवक्ष्यामिअर्घावाहनवर्जितम् ।
अदैवं तद्विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम् । पार्वणं त्रिविधंप्रोक्तं शृणुतावन्महीपते !।

पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताञ्छृणुष्व नराधिप ! ।

पञ्चाग्निःस्नातकश्चैवत्रिसुपर्णःषडङ्गवित् । श्रोत्रियःश्रोत्रियसुतोविधिवाक्यविशारदः
सर्वज्ञोवेदविन्मन्त्री ज्ञातवंशः कुलान्वितः । पुराणवेत्ता धर्म्मज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः ।

शिवभक्तः पितृपरः सूर्य्यभक्तोऽथ वैष्णवः ॥ ९ ॥
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान् ।
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नतः स्वसुहृद्गुरून् ॥ १० ॥

विट्पतिं मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान् । यश्चव्याकुरुतेवाक्यंयश्चमीमांसतेऽध्वरम् ।
सामस्वरविधिज्ञश्च पङ्क्तिपावनपावनः । सामगोब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथब्रह्मवित् ॥
यत्रैते भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवित् । एते भोज्याः प्रयत्नेन वर्जनीयान्निबोध मे ॥
पतितोऽभिशस्तःक्लीवश्चपिशुनव्यङ्गरोगिणः । कुनखीश्यावदन्तश्चकुण्डगोलाश्वपालकाः
परिवित्तिर्नियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मत्तदारुणाः । वैडाली वकवृत्तिश्च दम्भोदेवलकादयः ॥
कृतघ्नान्नास्तिकांस्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः । त्रिशङ्कुर्वर्वरद्रावबीतद्रविडकोकणान् ॥
वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वान् श्राद्धकाले विशेषतः । पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ॥
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् । वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते
दक्षिणं जानुमालभ्यत्वंमयातुनिमन्त्रितः । एवं निमन्त्र्यनियमंश्रावयेत्पितृबान्धवान् ॥
अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः । भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥

पितृयज्ञं विनिर्वर्त्य तर्पणाख्यन्तु योऽग्निमान् ।
पिण्डान्वाहार्यकं कुर्य्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये सदा ॥ २१ ॥

गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणप्रवणेस्थले। श्राद्धं समाचरेद्भक्त्या गोष्ठे वा जलसन्निधौ॥
अग्निमान्निर्वपेत्पित्र्यं चरुञ्चसाममुष्टिभिः। पितृभ्यो निर्वपामीतिसर्वंदक्षिणतोन्यसेत्।
अभिधार्यं ततः कुर्य्यान्निर्वापत्रयमग्रतः। तेपि तस्यायताःकार्य्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः।
दर्व्वीत्रयन्तु कुर्व्वीत खादिरं रजतान्वितम्। रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम्
उदपात्रञ्च कांस्यञ्च मेक्षणञ्चसमित्कुशान्। तिलाःपात्राणिसद्वासोगन्धधूपानुलेपनम्।
आहरेदपसव्यन्तु सर्वं दक्षिणतः शनैः। एवमासाद्य तत्सर्वं भवनस्याग्रतो भुवि॥२७॥
गोमयेनोपलिप्तायांगोमूत्रेणतुमण्डलम्। अक्षताभिःसपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत्।
विप्राणां क्षालयेत्पादावभिनन्द्य पुनः पुनः। आसनेषूपक्लृप्तेषु दर्भवत्सु विधानवत्॥
उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत्। द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र च॥३०॥
भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्य्याद्विस्तरं बुधः। दैवपूर्वं नियोज्याथविप्रानर्घ्यादिनाबुधः॥
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि। स्वगृह्योक्तविधानेन कांस्येकृत्वाचरुं ततः॥
अग्नीषोमयमाभ्यान्तु कुर्यादाप्यायनं बुधः। दक्षिनाग्नौप्रतीतेवा य एकाग्निर्द्विजोत्तमः॥
यज्ञोपवीती निर्वर्त्य ततः पर्युक्षणादिकम्। प्राचीनावीतिना कार्यमतः सर्वं विजानता॥
षट्चतस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वाततोदकम्। दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिलं सव्यपाणिना
जान्वाच्य सव्यं यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सरः। विधाय लेखा यत्नेन निर्वापेष्ववनेजनम्॥
दक्षिणाभिमुखः कुर्य्यात्करे दर्वीं निधायवै। निधाय पिण्डमेकैकं सर्वदर्भेष्वनुक्रमात्॥
निनयेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः। तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम्॥३८
तथैव च ततः कुर्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम्। षडप्येतान्नमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभिः॥
एवमावाह्य तत्सर्वं वेदमन्त्रैर्यथोदितैः। एकाग्नेरेकएव स्यान्निर्वापोदर्विका तथा॥४०
ततः कृत्वान्तरेदद्यात्पत्नीभ्योऽन्नंकुशेषुसः। तद्वत्पिण्डादिकेकुर्यादावाहनविसर्जनम्॥
ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्योमात्राः सर्वाः क्रमेणतु। तानेवविप्रान्प्रथमंप्राशयेद्यत्नतोनरः॥
यस्मादन्नात् धृता मात्राभक्षयन्तिद्विजातयः। अन्वाहार्यकमित्युक्तंतस्माच्चन्द्रसंक्षये॥
पूर्वं दत्त्वातु तद्धस्तेसपवित्रंतिलोदकम्। ततपिण्डाग्रंप्रयच्छेत्स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन्॥
वर्णयन् भोजयेदन्नं मिष्टं पूतञ्च सर्वदा। वर्जयेत् क्रोधपरतां स्मरन्नारायणं हरिम्॥४५

तृप्तान् ज्ञात्वा ततः कुर्याद्विकिरन् सार्ववर्णिकम् ।
सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद्भुवि ॥४६॥

आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम् । स्वस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरिसमाहरेत् ॥
देवायत्तं प्रकुर्वीतश्राद्धनाशोऽन्यथाभवेत् । विसृज्यब्राह्मणांस्तद्वत्तेषांकृत्वा प्रदक्षिणम् ॥

दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् पितॄन् याचेत मानवः ।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥४६॥

श्रद्धाचनोमाव्यगमत्बहुदेयञ्चनोऽस्त्विति । अन्नञ्चनो बहुभवेदतिथींश्च लभामहे ।५०॥
याचितारश्च नः सन्तुमाचयाचिष्मकञ्चन । एतदस्त्वितितत्प्रोक्तमन्वाहार्यन्तुपार्वणम् ॥
यथेन्दुसंक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते । पिण्डांस्तुगोऽजविप्रेभ्योदद्यादग्नौ जलेऽपिवा ॥
विप्राग्रतो वा विकिरेद्वयोभिरभिवाशयेत् । पत्नीतुमध्यमंपिण्डं प्राशयेद्विनयान्विता ॥
आधत्त पितरोगर्भमत्र सन्तानवर्धनम् । तावदुच्छेषणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ॥५४
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि । इष्टैः सह ततः शान्तोभुञ्जीत पितृसेवितम् ॥
पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् । श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैवसर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥५६॥
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नञ्च सर्वदा । अनेन विधिना श्राद्धं निरद्धस्येह निर्वपेत् ॥

कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा ।

यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डिकरणात्परम् । तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा ॥५८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे अग्निमच्छ्राद्धे श्राद्धकल्पो नाम षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः

साधारणाभ्युदयकीर्त्तनम् ।

सूत उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम् । श्राद्धं साधारणंनामभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
अयने विषुवे युगमे सामान्ये चार्कसंक्रमे । अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ॥२

आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे। गजच्छायाव्यतीपाते विष्टि वैधृतिवासरे ॥३॥
वैशाखस्य तृतीयायां नवमी कार्तिकस्य च। पञ्चदशी च माघस्य नभस्येचत्रयोदशी ॥
युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षय्यकारिकाः। तथा मन्वन्तरादौचदेयंश्राद्धंविजानता ॥
अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशीकार्तिके तथा। तृतीया चैत्र मासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥
फाल्गुनस्यह्यमावास्यापौषस्यैकादशीतथा। आषाढ़स्याऽपिदशमीमाघमासस्यसप्तमी ॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा। कार्तिकीफाल्गुनीचैत्रीज्येष्ठपञ्चदशीसिता ॥
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥८॥
यस्यां मन्वन्तरस्यादौ रथमास्तेदिवाकरः। माघमासस्यसप्तम्यांसातु स्याद्रथसप्तमी ॥
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥१०॥
वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये। तीर्थायतनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च ॥ ११ ॥
विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता। विप्रान् पूर्वे परेचाह्नि विनीतात्मानिमन्त्रयेत् ॥
शीलवृत्तगुणोपेतान् वयोरूपसमन्वितान्। द्वौ दैवे त्रींस्तथा पैत्र्ये एकैकमुभयत्रवा ॥
भोजयेत्सुसमृद्धोपिनप्रसज्जेतविस्तरे। विश्वान्देवान्यवैःपुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् ॥
पूरयेत्पात्रयुग्मन्तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम्। शन्नोदेवीत्यपःकुर्य्याद्यवोऽसीतियवानपि ॥
गन्धपुष्पैश्च संपूज्य वैश्वदेवं प्रतिन्यसेत्। विश्वेदेवासइत्याभ्यामावाह्यविकिरेद्यवान् ॥
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्ययादिव्येत्यपउत्सृजेत्। अभ्यर्च्यताभ्यामुत्सृष्टंपितृकार्य्यं समारभेत्
दर्भासनन्तुतत्त्वादौत्रीणिपात्राणिपूरयेत्। सपवित्राणिकृत्वादौशन्नोदेवीत्यपःक्षिपेत् ॥
तिलोऽसीति तिलान् कुर्य्याद्गन्धपुष्पादिकं पुनः। पात्रंवनस्पतिमयंतथापर्णमयं पुनः ॥
जलजं वाथ कुर्व्वीत तथा सागरसम्भवम्। सौवर्णं राजतं वापि पितॄणां पात्रमुच्यते ॥
रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा। राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः ॥२१॥
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते। तथार्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितॄणां राजतं मतम् ॥
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितृवल्लभम्। अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ॥२३॥
एवं पात्राणि संकल्प्य यथालाभंविमत्सरः। यादिव्येतिपितुर्नामगोत्रैर्दर्भकरोन्यसेत् ॥

पितॄनावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तै पुनः ।
उशन्तस्त्वा तथायन्तु ऋग्भ्यामावाहयेत् पितॄन् ॥२५॥
यादिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकांस्ततः ।
हस्तात्तदुदकं पूर्वं दत्त्वा संश्रवमादितः ॥२६॥

पितृपात्रे निधायाथन्युब्जमुत्तरतोन्यसेत् । पितृभ्यःस्थानमसीतिनिधाय परिषेचयेत् ॥

तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ॥२८॥

प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः । गुणाढ्यैः सूपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः ॥
अन्नन्तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम् । मासम्प्रीणातिवैसर्वान्पितॄनित्याहकेशवः ॥
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेनतु । औरभ्रमेणाथचतुरःशाकुनेनाथपञ्चवै ॥
षण्मासंच्छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा । सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावेणजेनतु ॥३२॥
दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः । शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैव तु ॥३३॥
संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन च । रौरवेण च तृप्यन्ति मासान् पञ्चदशैव तु ॥
व्याघ्रयाः सिंहस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी । कालशाकेनचानन्ताखड्गमांसेनचैवहि ।
यत्किञ्चिन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम् । दत्तमक्षयमित्याहुः पितरःपूर्वदेवताः ॥३६॥

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च ।
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तवानि विविधानि च ॥ ३७ ॥

इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तितः । वृहद्रथन्तरंतद्वज्ज्येष्ठसामसरौहिणम् ।३८।
तथैव शान्तिकाध्यायं मधु ब्राह्मणमेव च । मण्डलं ब्राह्मणंतद्वत्प्रीतिकारितुयत्पुनः ॥

विप्राणामात्मनश्चैव तत्सर्वं समुदीरयेत् ।
भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप ! ॥ ४० ॥

सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा । समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद्भुवि
अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाकुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमाङ्गतिम्

येषां न माता न पिता न बन्धुर्न गोत्रशुद्धिर्न तथान्नमस्ति ।
ततृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयातु लोकेषु सुखाय तद्वत् ॥ ४३ ॥
असंस्कृतप्रमीतानान्त्यक्तानां कुलयोषिताम् । उच्छिष्टभागधेयःस्याद्दर्भेविकिरयोश्च यः ॥
तृप्ता ज्ञात्वोदकं दद्यात् सकृद्विप्रकरे तथा । उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा ॥
निधाय दर्भान् विधिवद्दक्षिणाग्रान्प्रयत्नतः । सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांस्तु पितृयज्ञवत् ।
अवनेजनपूर्वन्तु नामगोत्रेण मानवः । गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम् ॥४७॥
जान्वाच्यसव्यं सव्येनपाणिनाथ प्रदक्षिणम् । पित्र्यमानीय तत्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना
दीपप्रज्वालनंतद्वत् कुर्यात्पुष्पार्चनं बुधः । अथाचान्तेषु चाचम्यवारिदद्यात्सकृत्सकृत्
अथ पुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च । सतिलं नामगोत्रेणदद्याच्छक्त्याचदक्षिणाम्
गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च । दद्याद्यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च ॥
वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन् । ततः स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम्

दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद्विश्वेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः ।
अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः ॥ ५३ ॥

गोत्रं तथावर्द्धन्तान्नस्तथेत्युक्तश्च तै पुनः । दातारोनोऽभिवर्द्धन्तामिति चैवमुदीरयेत् ॥

एताः सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः ।
स्वस्तिवाचनकं कुर्यात् पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ॥ ५५ ॥

उच्छेषणन्तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो ग्रहबलिं कुर्यादिति धर्म्मव्यवस्थितिः
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्यास्तिकस्य च । दासवर्गस्य तत्पित्र्यं भागधेयं प्रचक्षते ॥
पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा । अपुत्राणां सपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप ! ॥
ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृह्योदपात्रकम् । वाजेवाज इतिजपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥
बहिः प्रदक्षिणान्कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन् । बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ॥
निवृत्य प्राणपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्त्रवत् । वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिमेव च ॥
ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥
एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेसु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥

भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् ।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥ ६४ ॥

तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते । उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले ॥६५॥
मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम् । ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च ॥
प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः । प्राङ्मुखो निर्वपेत्पिण्डान् दूर्वयाच कुशैर्युतान्
सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्घ्यं द्वयोर्द्वयोः । युग्मा द्विजातयः पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभिः
तिलार्थस्तु यवैः कार्योनान्दिशब्दानुपूर्वकः । माङ्गल्यानि च सर्वाणिवाचयेद्द्विजपुङ्गवैः
एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा । नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नतः सदा
दानप्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान्प्रभुः । दानेन सर्वकामाप्तिरस्य सञ्जायते यतः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे साधारणाभ्युदयकीर्तनो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः

एकोद्दिष्टश्राद्धप्रकरणम् ।

सूत उवाच ।

एकोद्दिष्टमतोवक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना । मृते पुत्रैर्यथाकार्यमाशौचञ्च पितर्यपि ॥ १ ॥
दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणेषु विधीयते । क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैवहि ॥ २ ॥
शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । नैशम्वाऽकृतचूडस्य त्रिरात्रम्परतः स्मृतम् ॥
जननेऽप्येवमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा । तथास्थिसञ्चयादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥
प्रेताय पिण्डदानन्तु द्वादशाहं समाचरेत् । पाथेयं तस्य तत् प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत्
तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं न नीयते । गृहं पुत्रं कलत्रञ्च द्वादशाहं प्रपश्यति ॥ ६ ॥
तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा । सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥
तत एकादशाहे तु द्विजानेकादशैव तु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुतो द्विजान् ॥

द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत् । आवाहनाग्नौकरणं दैवहीनं विधानतः ॥६॥
एकं पवित्रमेकोऽर्घ एकः पिण्डो विधीयते । उपतिष्ठतामित्येतद्देयं पश्चात्तिलोदकम् ॥
स्वादितं विकिरेद्ब्रूयाद्विसर्गे चाभिरम्यताम् । शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः ।
अनेन विधिना सर्वमनुमासं समाचरेत् । सूतकान्ताद्द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्याद्विलक्षणाम्
काञ्चनं पुरुषं तद्वत् फलवस्त्रसमन्विताम् । संपूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषणैः ॥
वृषोत्सर्गं प्रकुर्वीत देया च कपिला शुभा । उदकुम्भश्च दातव्यो भक्ष्यभोज्यसमन्वितः
यावदब्दं नरश्रेष्ठ ! सतिलोदकपूर्वकम् । ततः संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकरणं भवेत् ।१५।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत् । वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः ॥
सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत् । पितॄनेवासयेत्तत्र पृथक् प्रेतं विनिर्दिशेत् ॥
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घार्थं पितृपात्रेषु-प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥१८॥

तद्वत्संकल्प्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तदा ।
ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यन्तु विभजेत्त्रिधा ॥ १६ ॥

चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतोभवेत् । ततः पितृत्वमापन्नः सर्वतस्तुष्टिमागतः ॥
अग्निष्वात्तादिमध्यत्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्नदीयते
पितृष्वेव तु दातव्यं तत् पिण्डोयेषु संस्थितः॥। ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादि पर्वसु
त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि । एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत्
सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः । मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधोयाति मानवः
संपृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषु तु यतोभवेत् । प्रतिसंवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥
यावदब्दन्तु योदद्यादुदकुम्भं विमत्सरः । प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा । तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिण्डांस्तेनैवनिर्वपेत् ॥
त्रिभिः सपिण्डिकरणे अशेषत्रितये पिता । यदा प्राप्स्यतिकालेनतदामुच्येतवन्धनात् ॥
मुक्तोऽपिलेपभागित्वंप्राप्नोतिकुशमार्जनात् । लेपभाजश्चतुर्थाद्याःपित्राद्याःपिण्डभागिनः

पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥२६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सपिण्डीकरणकल्पो नामाष्टादशोऽध्यायः ।

एकोनविंशोऽध्यायः

श्राद्धप्रकरणम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कथं कव्यानि देयानिहव्यानिचजनैरिह । गच्छन्तिपितृलोकस्थान्प्रापकःकोऽत्र गद्यते ॥
यदि मर्त्यो द्विजो भुङ्क्ते हूयते यदिवानले । शुभाशुभात्मकैःप्रेतैर्दत्तन्तद्भुज्यतेकथम् ॥

सूत उवाच ।

वसून्वदन्तिचपितॄन्रुद्रांश्चैवपितामहान् । प्रपितामहांस्तथादित्यानित्येवंवैदिकीश्रुतिः ॥
नामगोत्रंपितॄणान्तुप्रापकंहव्यकव्ययोः । श्राद्धस्यमन्त्राःश्रद्धाच उपयोज्यातिभक्तितः ॥
अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्येव्यवस्थिताः । नामगोत्रकालदेशाभवान्तरगतानपि ॥५॥
प्राणिनः प्रीणयन्त्येते तदाहारत्वमागतान् । देवो यदि पिताजातःशुभकर्म्मानुयोगतः ॥
तस्यान्नममृतं भूत्वा दिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति । दैत्यत्त्वे भोगरूपेण पशुत्त्वेचतृणंभवेत् ॥
श्राद्धान्नं वायुरूपेण सर्पत्त्वे प्युपतिष्ठति । पानं भवति यक्षत्वे गृध्रत्वेऽपि तथामिषम् ।
दनुजत्वे तथा माया प्रेतत्त्वे रुधिरोदकम् । मनुष्यत्त्वेऽन्नपानानि नानाभोगरसंभवेत् ।
रतिशक्तिःस्त्रियःकान्ता भोज्यंभोजनशक्तिता । दानशक्तिःसविभवा रूपमारोग्यमेवच ।
श्रद्धा पुष्पमिदंप्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः । आयुःपुत्रान्धनंविद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानिच ॥
राज्यंचैवप्रयच्छन्ति प्रीताःपितृगणा नृणाम् । श्रूयतेचपुरामोक्षं प्राप्ताः कौशिकसूनवः ॥
पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैर्गता विष्णोः परं पदम् ॥ १२ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे श्राद्धकल्पे फलानुगमनो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

श्राद्धमाहात्म्ये कौशिकसूनुकथानकम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कथंकौशिकदायादाः प्राप्तास्तेयोगमुत्तमम् । पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैःकथं कर्म्मक्षयोऽभवत्

सूत उवाच ।

कौशिकोनामधर्म्मात्मा कुरुक्षेत्रेमहानृषिः । नामतःकर्म्मतस्तस्य सूतान्सप्तनिबोधत।
स्वसृपःक्रोधनोहिंस्रः पिशुनःकविरेव च । वाग्दुष्टः पितृवर्तीच गर्गशिष्यास्तदाभवन् ॥
पितर्य्युपरते तेषामभूद्दुर्भिक्षमुल्वणम् । अनावृष्टिश्च महती सर्वलोकभयङ्करी ॥४॥
गर्गादेशाद्वनेदोग्ध्रीं रक्षन्तस्तेतपोधनाः । खादामःकपिलामेता वयं क्षुत्पीड़िताभृशम्।
इति चिन्तयतां पापं लघुःप्राह तदानुजः । यद्यवश्यमियं वध्या श्राद्धरूपेण योज्यताम् ।
श्राद्धेनियोज्यमानेयं पापात् त्रास्यतिनोध्रुवम् । एवंकुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्ती तदानुजैः ॥
चक्रेसमाहितः श्राद्धमुपयुज्यचतांपुनः । द्वौ देवे भ्रातरौ कृत्वा पित्र्येत्रीनप्यनुक्रमात् ॥
तथैकमतिथिं कृत्वा श्राद्धदः स्वयमेव तु । चकार मन्त्रवच्छ्राद्धं स्मरन् पितृपरायणः ॥
विना गवा वत्सकोऽपि गुरवे विनिवेदितः । व्याघ्रेण निहता धेनुर्वत्सोऽयं प्रतिगृह्यताम्
एवंसाभक्षिताधेनुः सप्तभिस्तैस्तपोधनैः । वैदिकं बलमाश्रित्य क्रूरे कर्म्मणि निर्भयाः ॥
ततःकालावकृष्टास्ते व्याधा दासपुरेऽभवन् । जातिस्मरत्वंप्राप्तास्ते पितृभावेन भाविताः
यत् कृतं क्रूरकर्म्मापि श्राद्धरूपेण तैस्तदा । तेन ते भवने जाताव्याधानांक्रूरकर्मिणाम् ।
पितॄणाञ्चैव माहात्म्याज्जाता जातिस्मरास्तु ते । ते तु वैराग्ययोगेन आस्थायानशनंपुनः
जातिस्मराःसप्तजाता मृगाःकालञ्जरे गिरौ । नीलकण्ठस्य पुरतः पितृभावानुभाविताः॥
तत्रापिज्ञानवैराग्यात् प्राणानुत्सृज्यधर्म्मतः । लोकैरवेक्ष्यमाणास्तेतीर्थान्तेऽनशनेनतु ।
मानसेचक्रवाकास्ते सञ्जाताःसप्तयोगिनः । नामतःकर्मतःसर्व्वान् शृणुध्वंद्विजसत्तमाः ॥
सुमनाः कुमुदः शुद्धश्छिद्रदर्शी सुनेत्रकः । सुनेत्रश्चांशुमांश्चैव सप्तैते योगपारगाः ॥१८
योगभ्रष्टास्त्रय स्तेषां वभ्रमुश्चाल्पचेतनाः । दृष्ट्वा विभ्राजमानं तमुद्याने स्त्रीभिरन्वितम्।
क्रीड़न्तं विविधैर्भावैर्महाबलपराक्रमम् । पाञ्चालान्वयसम्भूतं प्रभूतबलवाहनम् ॥ २० ॥
राज्यकामोभवच्चैक स्तेषांमध्येजलौकसाम् । पितृवर्तीचयो विप्रःश्राद्धकृत्पितृवत्सलः।
अपरौ मन्त्रिणौ दृष्ट्वा प्रभूतबलवाहनौ । मन्त्रित्वेच कृतुश्चेच्छामस्मिन्मर्त्ये द्विजोत्तमाः।
तन्मध्ये ये तु निष्कामास्ते बभूवुर्द्विजोत्तमाः ।।
विभ्राजमानस्त्वेकोऽभूत् ब्रह्मदत्त इति स्मृतः ॥ २९ ॥

मन्त्रिपुत्रौतथाचोभौकण्डरीकसुबालकौ । ब्रह्मदत्तोऽभिषिक्तःसन् पुरोहितविपश्चिता ।
पाञ्चालराजोविक्रान्तः सर्वशास्त्रविशारदः । योगवित् सर्वजन्तूनांरुतवेत्ताऽभवत्तदा ॥
तस्यराज्ञोऽभवद्भार्य्या देवलस्यात्मजाशुभा। सन्नतिर्नामविख्याता कपिलायाभवत्पुरा।
पितृकार्ये नियुक्तत्वादभवद्ब्रह्मवादिनी । तया चकार सहितः सराज्यं राजनन्दनः ॥
कदाचिदुद्यानगस्तया सह स पार्थिवः । ददर्श कीटमिथुनमनङ्गकलहाकुलम् ॥ २८ ॥
पिपीलकामनुनयन् परितः कीटकामुकः । पञ्चवाणाभितप्ताङ्गः स गद्गदमुवाच ह ॥२९॥
न त्वयासदृशीलोके कामिनीविद्यतेक्वचित् । मध्यक्षामातिजघना वृहद्वक्षोऽभिगामिनी ।
सुवर्णवर्णा सुश्रोणी मञ्जूक्ता चारुहासिनी । सुलक्षनेत्ररसना गुड़शर्करवत्सला ॥३१॥
भोक्ष्यसेमयिभुंक्तेत्वं स्नासि स्नातेतथामयि । प्रोषितेसतिदीनात्वं क्रुद्धेऽपि भयचञ्चला
किमर्थंवदकल्याणि ! सरोषवदनास्थिता । सा तमाह सकोपातु किमालपसि मां शठ ॥
त्वयामोदकचूर्णन्तु मां विहाय विनेष्यता । प्रदत्तं समतिक्रान्ते दिनेऽन्यस्याःसमन्मथ ! ।

पिपीलिक उवाच ।

त्वत्सादृशान्मया दत्तमन्यस्यै वरवर्णिनि ! । तदेकमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि भामिनि ! ॥
नैतदेवं करिष्यामि पुनः क्वापीह सुव्रते ! । स्पृशामि पादौ सत्येन प्रसीद प्रणतस्यमे ॥

सूत उवाच ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा सा प्रसन्नाऽभवत्ततः । आत्मानमर्पयामास मोहनाय पिपीलिका ॥
ब्रह्मदत्तोऽप्यशेषन्तं ज्ञात्वा विस्मयमागमत् । सर्वसत्वरुतज्ञत्वात् प्रसादाच्चक्रपाणिनः ।

इति श्रीमत्स्यपुराणे श्राद्धकल्पे श्राद्धमाहात्म्ये पिपीलिकावहासो नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

एकविंशतितमोऽध्यायः

श्राद्धमाहात्म्ये पिपीलिकावहासवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कथं सत्वरुतज्ञोऽभूद् ब्रह्मदत्तो धरातले । तच्चाभवत् कस्य कुले चक्रवाकचतुष्टयम् ॥१

सूत उवाच ।

तस्मिन्नेवपुरे जातास्ते च चक्राह्वयास्तदा । वृद्धद्विजस्य दायादा विप्रा जातिस्मराःपुरा।
धृतिमांस्तत्त्वदर्शीच विद्याचण्डस्तपोत्सुकः । नामतःकर्म्मतश्चैते सुदरिद्रस्यते सुताः॥
तपसेबुद्धिरभवत्तदा तेषां द्विजन्मनाम् । यास्यामःपरमां सिद्धिमित्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः ।
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा सुदरिद्रो महातपाः । उवाच दीनया वाचा किमेतदिति पुत्रकाः ॥
अधर्म्म एष इति वः पिता तानभ्यवारयत् । वृद्धं पितरमुत्सृज्य दरिद्रं वनवासिनः ॥
कोनुधर्मोऽत्रभवितामत्त्यागाद्दुर्गतिरेव वा । ऊचुस्ते कल्पिता वृत्तिस्तवतात ! वदस्वतत्
वित्तमेतत् पुरो राज्ञः स ते दास्यति पुष्कलम् । धनं ग्रामसहस्राणि प्रभाते पठतस्तव ।

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दासास्तथा दासपुरे मृगाश्च ।
कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे ते वयमत्र सिद्धाः ॥ ९ ॥

इत्युक्त्वा पितरं जग्मुस्ते वनं तपसे पुनः । वृद्धोऽपि राजभवनं जगामात्मार्थसिद्धये ॥
अनघो नाम वैभ्राजः पाञ्चालाधिपतिःपुरा । पुत्रार्थी देवदेवेशं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥
आराधयामास विभुं तीव्रव्रतपरायणः । ततः कालेन महता तुष्टस्तस्य जनार्दनः ॥१२॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते हृदयेनेप्सितं नृप!। एवमुक्तस्तु देवेन वव्रे स वरमुत्तमम् ॥ १३ ॥
पुत्रं मे देहि देवेश ! महाबलपराक्रमम् । पारगं सर्वशास्त्राणां धार्मिकं योगिनां परम् ॥
सर्वसत्वरुतज्ञं मे देहि योगिनमात्मजम् । एवमस्त्विति विश्वात्मा तमाह परमेश्वरः ॥
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत । ततः स तस्य पुत्रोऽभूत् ब्रह्मदत्तः प्रतापवान् ॥
सर्वसत्वानुकम्पी च सर्वसत्वबलाधिकः । सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च सर्वसत्वेश्वरेश्वरः ॥१७॥
अहसत्तेन योगात्मा स पिपीलिकरागतः । यत्र तत् कीटमिथुनं रममाणमवस्थितम् ॥
ततः सा सन्नतिर्दृष्ट्वा तं हसन्तं सुविस्मिता । किमप्याशङ्क्य मनसा तमपृच्छन्नरेश्वरम्

सन्नतिरुवाच ।

अकस्मदतिहासस्ते किमर्थमभवन्नृप !। हास्यहेतुं न जानामि यदकाले कृतं त्वया ॥२०

सूत उवाच ।

अवदद्राजपुत्रोऽपि स पिपीलिकभाषितम् । रागवाग्भिः समुत्पन्नमेतद्धास्यं वरानने!

न चान्यत्कारणं किञ्चिद्धास्यहेतौशुचिस्मिते ¡। न सामन्यत्तदा देवीप्राहालीकमिदंवचः।
अहमेवाद्यहसिता न जीविष्ये त्वयाऽधुना । कथं पिपीलिकालापं मर्त्योवेत्ति विनासुरान्
तस्मात्त्वयाहमेवेहहसिताकिमतः परम् । ततो निरुत्तरो राजा जिज्ञासुस्तत्पुरोहरेः ॥
आस्थाय नियमन्तस्थौ सप्तरात्रमकल्मषः । स्वप्नेप्राह हृषीकेशः प्रभाते पर्यटन् पुरम् ॥
वृद्धद्विजोयस्तद्वाक्यात् सर्वं ज्ञास्यस्यशेषतः । इत्युक्त्वान्तर्दधेविष्णुःप्रभातेऽथनृपःपुरात्
निर्गच्छन्मन्त्रिसहितः सभार्यो वृद्धमग्रतः । गदन्तं विप्रमायान्तं तं वृद्धं सन्ददर्श ह ॥

ब्राह्मण उवाच ।

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दासास्तथा दासपुरे मृगाश्च ।
कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे ते वयमन्त्र सिद्धाः ॥२८॥

सूत उवाच ।

इत्याकर्ण्य वचस्ताभ्यां स पपात शुचा ततः । जातिस्मरत्वमगमत्तौच मन्त्रिवरावुभौ ।
कामशास्त्रप्रणेता च बाभ्रव्यस्तु सुबालकः । पाञ्चाल इतिलोकेषु विश्रुतः सर्वशास्त्रवित्
कण्डरीकोऽपिधर्मात्मा वेदशास्त्रप्रवर्तकः । भूत्वाजातिस्मरौशोकात् पतितावग्रतस्तदा।
हा वयं योगविभ्रष्टाः कामतः कर्मबन्धनाः । एवं विलप्य बहुशस्त्रयस्ते योगपारगाः ॥
विस्मयाच्छ्राद्धमाहात्म्यमभिनद्य पुनः पुनः । ततस्तस्मै धनं दत्त्वा प्रभूतग्रामसंयुतम् ॥
विसृज्य ब्राह्मणन्तञ्च वृद्धं धन मुदान्वितम् । आत्मीयं नृपतिः पुत्रं नृपलक्षणसंयुतम् ।

विष्वक् सेनाभिधानन्तु राजा राज्येऽभ्यषेचयत् ।
मानसे मिलिताः सर्वे ततस्ते योगिनो वराः ॥ ३५ ॥

ब्रह्मदत्तादयस्तस्मिन् पितृसक्ताविमत्सराः । सन्नतिश्चाभवद्भ्रष्टामयैतत् किलकारितम्।
राज्यत्यागफलंसर्वं यदेतदभिलष्यते । तथेति प्राह राजा तु पुनस्तामभिनन्दयन् ॥३७॥
त्वत् प्रसादादिदंसर्वं मयैतत् प्राप्यतेफलम् । ततस्ते योगमास्थाय सर्वएववनौकसः ॥
ब्रह्मरन्ध्रेण परमम्पदमापुस्तपोधनाः । एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ ३६
प्रयच्छन्तिसुतान् राज्यंनृणां प्रीताःपितामहाः । यइदंपितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्यचद्विजाः।
द्विजेभ्यः श्रावयेद्यो वा शृणोत्यथ पठेत वा । कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ।

इति श्रीमत्स्यपुराणे श्राद्धकल्पे पितृमाहात्म्यं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

श्राद्धयोग्यतीर्थानांवर्णनम्।

ऋषय ऊचुः।

कस्मिन्कालेचतच्छ्राद्धमनन्तफलदंभवेत्। कस्मिन् वासरभागेतुश्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत्।
तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत्।

सूत उवाच।

अपराह्णे तु संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये ॥ २ ॥
यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तदक्षयमुदाहृतम्। तीर्थानि कानि शस्तानि पितॄणां वल्लभानिच ॥
नामतस्तानि वक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः!। पितृतीर्थं गया नाम सर्वतीर्थवरं शुभम्।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः। तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयांव्रजेत्। यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।
तथावाराणसी पुण्या पितॄणां वल्लभासदा। यत्राविमुक्तसान्निध्यंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
पितॄणां वल्लभं तद्वत् पुण्यञ्च विमलेश्वरम्। पितृतीर्थं प्रयागन्तु सर्वकामफलप्रदम् ॥
वटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः। योगनिद्राशयस्तद्वत् सदावसति केशवः ॥
दशाश्वमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च। नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा ॥
तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम्। गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम् ॥
तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्रदे। तीर्थन्तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ १२ ॥
गङ्गोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः। तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत् ॥१३
यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजोहरः। नेमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत्पुरा ॥१४॥
तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम्। देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम् ॥ १५ ॥
यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं व्रजेत्। कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् ॥
यत्रास्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः। तीर्थमिक्षुमती नाम पितॄणां वल्लभं सदा ॥

सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गायाः पितरः सदा। कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थसमन्वितम् ॥
तथा च सरयूःपुण्या सर्वदेवनमस्कृता। इरावती नदी तद्वत् पितृतीर्थाधिवासिनी ॥
यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृषद्वती। नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा ॥
पितॄणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धेकोटिगुणा मताः। जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गोहिलक्ष्यते
अद्यापि पितृतीर्थं तत्सर्वकामफलप्रदम्। नीलकुण्डमितिख्यातं पितृतीर्थं द्विजोत्तमाः!
तथा रुद्रसरः पुण्यं सरोमानसमेव च। मन्दाकिनी तथाच्छोदा विपाशाथ सरस्वती।
पूर्वेमित्रपदन्तद्वद्वैद्यनाथं महाफलम्। क्षिप्रा नदी महाकालस्तथाकालञ्जरं शुभम् ॥२४॥
वंशोद्भेदं हरोद्भेदं गङ्गोद्भेदं महाफलम्। भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च ॥ २५ ॥
गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः। एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च ॥ २६ ॥
स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतांनृणाम्। ओङ्कारंपितृतीर्थञ्चकावेरीकपिलोदकम्
सम्भेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम्। कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन् स्नानादिकं भवेत्
शुक्रतीर्थञ्च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम्। सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम्
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसन्निधौ। कायावरोहणं नाम तथा चर्मण्वतीनदी
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमौशनसम्परम्। भैरवं भृगुतुङ्गञ्च गौरीतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥
तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम्। तथा पापहरं नाम पुण्याथ तपती नदी ॥३२॥
मूलतापीपयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा। महाबोधिः पाटला च नागतीर्थमवन्तिका
तथावेणा नदी पुण्या महाशालं तथैव च। महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा ॥
शतरुद्रा शताह्वा च तथा विश्वपदं परम्। अङ्गारवाहिका तद्वन्नदौ तौ शोणघर्घरौ ॥

कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा।
एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः ॥ ३६ ॥

श्राद्धमेतेषु यद्दत्तन्तदनन्तफलं स्मृतम्। द्रोणी वाटनदी धारासरित् क्षीरनदी तथा ॥
गोकर्णं गजकर्णञ्च तथा च पुरुषोत्तमः। द्वारका कृष्णतीर्थञ्च तथार्बुदसरस्वती ॥३८॥
नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका। धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा ॥
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते। तीर्थं मेघकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः ॥ ४० ॥

यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः । तथा मन्दोदरी तीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा
तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा । चक्रवाकं चर्म्मकोटं तथा जन्मेश्वरं महत् ॥
अर्जुनं त्रिपुरं चैव सिद्धेश्वरमतःपरम् । श्रीशैलं शाङ्करं तीर्थं नारसिंहमतःपरम् ॥४३ ॥
महेन्द्रश्च तथा पुण्यमथ श्रीरङ्गसंज्ञितम् । एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम् ॥
दर्शनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै । तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित् ॥
भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुड्मलानदी । नदी गोदावरी नाम त्रिसन्ध्यातीर्थमुत्तमम्
तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वतीर्थनमस्कृतम् । यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः ॥
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत् । स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजः
श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थमनुत्तमम् । तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च
भद्रतीर्थञ्च विख्यातं पम्पातीर्थञ्च शाश्वतम् । पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलं पुरम् ॥
अङ्गभूतञ्च विख्यातमानन्दकमलं बुधम् । आम्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्भकमतः परम् ।५१।
गोवर्धनं हरिश्चन्द्रं कृपुचन्द्रं पृथूदकम् । सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी ।५२।
रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः । इन्द्रकीलं महानादन्तथा च प्रियमेलकम्
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु । एतेषु सर्वदेवानां सान्निध्यं दृश्यते यतः
दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम् । बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवनं शुभम्
तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा । श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम् ॥
तथैव पितृतीर्थन्तु यत्र गोदावरी नदी । युता लिङ्गसहस्रेण सर्वान्तरजलावहा ॥ ५७ ॥
जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम् । प्रतीकस्य भयाद्भिन्नं यत्र गोदावरी नदी ॥
तत्तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसंज्ञितम् । श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम्
तथा सहस्रलिङ्गञ्च राघवेश्वरमुत्तमम् । सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा ॥
निहत्य नमुचिं शक्रस्तपसा स्वर्गमाप्तवान् । तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ॥
तीर्थन्तु पुष्करं नाम शालग्रामं तथैव च । सोमपानञ्च विख्यातं यत्र वैश्वानरालयम् ॥
तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च । मलन्दरानदीपुण्या कौशिकीचन्द्रिका तथा
वैदर्भावाथ वैरा च पयोष्णी प्राङ्मुखापरा । कावेरी चोत्तरापुण्या तथाजालन्धरोगिरिः

एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते। लोहदण्डं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ॥६५॥
विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतटं शुभम्। कुब्जाम्रन्तु तथा तीर्थं उर्वशी पुलिनंतथा
संसारमोचनं तीर्थं तथैव ऋणमोचनम्। एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ॥६७॥
अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च। तथा वशिष्ठं तीर्थन्तु हारितं तु ततः परम् ॥
ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हयतीर्थं तथैव च। पिण्डारकश्च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च ॥६९॥
घण्टेश्वरं बिल्वकञ्च नीलपर्वतमेव च। तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च ॥ ७० ॥
अश्वतीर्थश्च विख्यातमनन्तं श्राद्धदानयोः। तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवौघवती नदी ॥
तीर्थं वसुप्रदं नाम च्छागलाण्डं तथैव च। एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम् ॥
तथा च बदरीतीर्थं गणतीर्थं तथैव च। जयन्तं विजयश्चैव शुक्रतीर्थं तथैव च ॥ ७३ ॥
श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा। तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा ॥७४॥
वैकुण्ठतीर्थश्च परं भीमेश्वरमथापि वा। एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥
तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा। कुशेशरञ्च विख्यातं गौरीशिखरमेव च ॥७६॥
नकुलेशस्य तीर्थश्च कर्दमालं तथैव च। दिण्डिपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुरं तथा ॥७७॥
सप्त गोदावरी तीर्थं सर्वतीर्थेश्वरम्। तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः ॥ ७८ ॥
एषतूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहोमया। वागीशोऽपिनशक्नोतिविस्तरात् किमुमानुषः।
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थन्तु समुदाहृतम्।
एतत्तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते। यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं समाचरेत्
प्रातः कालोमुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्यादपराह्णस्ततः परम् ॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्रनकारयेत्। राक्षसी नामसा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु।
अह्नो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा। तत्राष्टमो मुहूर्तोयः सकालः कुतपः स्मृतः।
मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दीभवति भास्करः। तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भो भविष्यति।
मध्याह्नखड्ग पात्रञ्च तथा नेपालकम्बलः। रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमःस्मृतः।
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः। अष्टावेतेयतस्तस्मात् कुतपाइति विश्रुता॥
ऊर्ध्वं मुहूर्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्। मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवन मिष्यते ॥८८॥

विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा ।
श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत् प्राहुर्दिवौकसः ॥ ८६ ॥
तिलोदकाञ्जलिर्देय जलस्थैस्तीर्थवासिभिः । सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेवं विशिष्यते ।६०।
श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते । तर्पणन्तूभयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः ॥ ६१॥

सूत उवाच ।

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् । पुरा मत्स्येन कथितन्तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम् ॥
शृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान् सञ्जायते नरः ॥ ६२ ॥
श्राद्धकालेच वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः । सर्वपापोपशान्त्यर्थमलक्ष्मीनाशनं परम् ॥
इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापापहरञ्च पुंसाम् ।
ब्रह्मार्करुद्रैरपि पूजितञ्च श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति तज्ज्ञाः ॥ ६४ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे श्राद्धकल्पे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

सोमवंशाख्यानम् ।

ऋषय ऊचुः ।

सोमः पितॄणामधिपः कथं शास्त्रविशारदः । तद्वंश्या ये च राजानो बभूवुः कीर्तिवर्धनाः ।

सूत उवाच ।

आदिष्टो ब्रह्मणा पूर्वमत्रिः सर्गविधौ पुरा । अनुत्तमं नाम तपः सृष्ट्यर्थं तप्तवान् प्रभुः ॥
यदानन्दकरं ब्रह्म जगत् क्लेशविनाशनम् । ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणामभ्यन्तरमतीन्द्रियम् ॥३
शान्तिकृच्छान्तमनसस्तदन्तर्नयनेस्थितम् । माहात्म्यात्तपसा विप्राःपरमानन्दकारकम् ॥
यस्मादुमापतिः सार्द्धमुमयातमधिष्ठितः । तं दृष्ट्वा चाष्टमांशेन तस्मात् सोमोऽवच्छिशुः
अधःसुस्रावनेत्राभ्यांधामतच्चाम्बुसम्भवम् । दीपयद्विश्वमखिलंज्योत्स्नयासचराचरम् ॥

तद्दिशो जगृहुर्धाम स्त्रीरूपेणसुतेच्छया। गर्भोभूत्वोदरे तासामास्थितोऽब्दशतत्रयम्॥
आशास्तं मुमुचुर्गर्भमशक्ता धारणे ततः। समादायाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः॥८॥
युवानमकरोद् ब्रह्मा सर्वायुधधरं नरम्। स्यन्दनेऽथ सहस्राश्वे वेदशक्तिमये प्रभुः॥९॥
आरोप्य लोकमनयदात्मीयं सपितामहः। तत्रब्रह्मर्षिभिः प्रोक्तमस्मत्स्वामीभवत्वयम्॥
पितृभिर्देवगन्धर्वैरोषधीभिस्तथैवच। तुष्टुवुः सोमदैवत्यैर्ब्रह्माणं मन्त्रसंग्रहैः॥ ११ ॥
स्तूयमानस्यतस्याभू दधिकोधामसम्भवः। तेजो वितानादभवद् भुविदिव्यौषधीगणः।
तद्दीप्तिरधिका तस्माद्रात्रौ भवति सर्वदा। तेनौषधीशः सोमोऽभूद्द्विजेशश्चापि गद्यते
वेदधामरसञ्चापि यदिदं चन्द्रमण्डलम्। क्षीयते वर्द्धते चैव शुक्ले कृष्णे च सर्वदा॥१४
विंशतिञ्च तथा सप्तदक्षः प्राचेतसो ददौ। रूपलावण्यसंयुक्तास्तस्मै कन्याः सुवर्चसः।
ततः पाद्मसहस्राणां सहस्राणि दशैवतु। तपश्चचार शीतांशु विष्णुध्यानैकतत्परः॥
ततस्तुष्टस्तु भगवांस्तस्मै नारायणो हरिः। वरं वृणीष्व प्रोवाच परमात्मा जनार्दनः॥
ततो वव्रेवरान् सोमः शक्रलोकं जयाम्यहम्। प्रत्यक्षमेव भोक्तारोभवन्तु मम मन्दिरे॥

राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्याः सन्तु मे द्विजाः।
रक्षः पालः शिवोऽस्माकमास्तां शूलधरो हरः॥ १९ ॥

तथेत्युक्तः स आजह्रे राजसूयन्तु विष्णुना। होतात्रिर्भृगुरध्वर्युरुद्गाताभूच्चतुर्मुखः॥२०॥
ब्रह्मत्त्वमगमत्तस्य उपद्रष्टा हरिःस्वयम्। सदस्याः सनकाद्यास्तुराजसूयविधौस्मृताः॥
चमसाध्वर्यवस्तत्र विश्वेदेवा दशैव तु। त्रैलोक्यं दक्षिणा तेन ऋत्विग्भ्यःप्रतिपादितम्॥
ततः समाप्तेऽवभृथे तद्रूपालोकनेच्छवः। कामवाणाभि तप्ताङ्ग्यो नवदेव्यः सिषेविरे॥
लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवालीचकर्दमम्। द्युतिर्विभावसुं तद्वत्तुष्टिर्धातारमव्ययम्।
प्रभाप्रभाकरं त्यक्त्वाहविष्मन्तं कुहूःस्वयम्। कीर्तिर्जयन्तंभर्तारं वसुर्मारीचकश्यपम्॥
धृतिस्त्यक्त्वापतिंनन्दिंसोममेवाभजंस्तदा। स्वकीयाइवसोमोऽपिकामयामासतास्तदा
एवं कृतापचारस्य तासाम्भर्तृगणस्तदा। न शशाङ्कापचाराय शापैः शस्त्रादिभिःपुनः॥
तथाप्यराजत विधुर्दशधाभावयन्दिशः। सोमःप्राप्याथ दुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम्॥

सप्तलोकैकनाथत्वमवाप तपसा तदा॥ २८॥

कदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणैश्च शोभितम् ।
वृहन्नितम्बस्तनभारखेदात् पुष्पस्य भङ्गेऽप्यतिदुर्बलाङ्गीम् ॥ २९ ॥
भार्याञ्च तां देवगुरोरनङ्गबाणाभिरामायतचारुनेत्राम् ।
तारां स ताराधिपतिः स्मरार्तः केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ ॥ ३० ॥
सापि स्मरार्ता सह तेन रेमे तद्रूपकान्त्या हृतमानसेन ।
चिरं विहृत्याथ जगाम तारां विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि ॥ ३१ ॥
न तृप्तिरासीच्च गृहेऽपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखागमेषु ।
वृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्ध्याननिष्ठै कमना बभूव ॥ ३२ ॥
शशाक शापन्न च दातुमस्मै न मन्त्रशस्त्राग्निविषैरशेषैः ।
तस्यापकर्तुं विविधैरुपायैर्नैवाभिचारैरपि वागधीशः ॥ ३३ ॥
स याचयामास ततस्तु दैन्यात् सोमं स्वभार्यार्थमनङ्ग तप्तः ।
स याच्यमानोऽपि ददौ न तारां वृहस्पतेस्तत्सुखपाशबद्धः ॥ ३४ ॥
महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेन साध्यैर्मरुद्भिः सह लोकपालैः ।
ददौ यदा तान्न कथञ्चिदिन्दुस्तदा शिवः क्रोधपरो बभूव ॥ ३५ ॥
यो वामदेवः प्रथितः पृथिव्यामनेकरुद्रार्चितपादपद्मः ।
ततः सशिष्यो गिरिशः पिनाकी वृहस्पतिस्नेहवशानुबद्धः ॥ ३६ ॥
धनुर्गृहीत्वाजगवं पुरारिर्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः ।
युद्धाय सोमेन विशेषदीप्ततृतीयनेत्रानलभीमवक्त्राः ॥ ३७ ॥
सहैव जग्मुश्च गणेशकाद्या विंशच्चतुः षष्टिगणास्त्रयुक्ताः ।
यक्षेश्वरः कोटिशतैरनेकैर्युतोऽन्वगात्स्यन्दनसंस्थितानाम् ॥ ३८ ॥
वेतालयक्षोरगकिन्नराणां पद्मेन चैकेन तथार्बुदेन ।
लक्षैस्त्रिभिर्द्वादशभीरथानां सोमोऽप्यगात्तत्र विवृद्धमन्युः ॥ ३९ ॥
नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः शनैश्चराङ्गारकवृद्धतेजाः ।
जग्मुर्भयं सप्त तथैव लोकाश्चचालभूर्द्वीपपसमुद्रगर्भा ॥ ४० ॥

स सोममेवाभ्यगमत्पिनाकी गृहीत दीप्तास्त्र विशालवह्नि ।
अथाभवद्भीषणभीमसेनसैन्यद्वयस्यापि महाहवोऽसौ ॥ ४१ ॥
अशेषसत्वक्षयकृत्प्रवृद्धस्तीक्ष्णायुधास्त्रज्ज्वलनैकरूपः ।
शस्त्रैरथान्योन्यमशेषसैन्यं द्वयोर्जगाम क्षयमुग्रतीक्ष्णैः ॥ ४२ ॥
पतन्ति शस्त्राणि तथोज्वलानि स्वर्भूमि पातालमथादहन्ति ।
रुद्रः कोपाद् ब्रह्मशीर्षं मुमोच सोमोऽपि सोमास्त्रममोघवीर्यम् ॥ ४३ ॥
तयोर्निपातेनसमुद्र भूम्योरथान्तरिक्षस्य च भीतिरासीत् ।
तदस्त्रयुग्मं जगतां क्षयाय प्रवृद्धमालोक्य पितामहोऽपि ॥ ४४ ॥
अन्तः प्रविश्याथ कथं कथञ्चिन्निवारयामास सुरैः सहैव ।
अकारणं किं क्षयकृज्जनानां सोम ! त्वयापीत्थमकारिकार्यम् ॥ ४५ ॥
यस्मात्परस्त्रीहरणाय सोम ! त्वया कृतं युद्धमतीव भीमम् ।
पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु शान्तोऽप्यलं नूनमथासितान्ते ॥ ४६ ॥
भार्यामिमामर्पय वाक्पतेस्त्वं न चावमानोऽस्ति परस्वहारे ।

सूत उवाच ।

तथेति चोवाच हिमांशुमाली युद्धादपाक्रामदतः प्रशान्तः ॥ ४७ ॥
बृहस्पतिःस्वामपगृह्य तारां हृष्टो जगाम स्वगृहं स रुद्रः ।
इति श्रीमत्स्यपुराणे सोमवंशाख्याने सोमापचारो नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

बुधोत्पत्तिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

ततः संवत्सरस्यान्ते द्वादशादित्यसन्निभः । दिव्यपीताम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ।१।
तारोदराद्विनिष्क्रान्तः कुमारश्चन्द्रसन्निभः ।

सर्वार्थशास्त्रविद्धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः ॥ २ ॥
नामयद्राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैद्यकम् । राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद्राजपुत्रोबुधः स्मृतः ॥
जातमात्रः स तेजांसि सर्वाण्येवाजयद्बली । ब्रह्माद्यास्तत्र चाजग्मुर्देवादेवर्षिभिः सह ॥
बृहस्पतिगृहे सर्वे जातकर्मोत्सवे तदा । अपृच्छंस्तेसुरास्तारां केन जातःकुमारकः ॥
ततः सा लज्जिता तेषां न किञ्चिदवदत्तदा । पुनः पुनस्तदापृष्टा लज्जयन्ती वराङ्गना ॥६
सोमस्येति चिरादाह ततोऽगृह्णाद्विधुः सुतम् । बुधइत्यकरोन्नाम्नाप्रादाद्राज्यञ्चभूतले ॥
अभिषेकं ततः कृत्वा युवानमकरोद्विभुः । ग्रहसाम्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मर्षिसंयुतः ॥८॥
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत । इलोदरे च धर्मिष्ठं बुधः पुत्रमजीजनत् ॥ ९ ॥
अश्वमेधशतं साग्रमकरोद्यः स्वतेजसा । पुरूरवा इति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥१०॥
हिमवच्छिखरे रम्ये समाराध्य जनार्दनम् । लोकैश्वर्यमगाद्राजा सप्तद्वीपपतिस्तदा ॥११
केशिप्रभृतयोदैत्याः कोटिशो येन दारिताः । उर्वशी यस्य पत्नीत्वमगमद्रूपमोहिता ॥
सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना । धर्मेण पालिता तेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ १३ ॥
चामरग्राहिणीकीर्तिः सदाचैवाङ्गवाहिका । विष्णोः प्रसादाद्देवेन्द्रोददावर्धासनन्तदा ॥
धर्मार्थकामान्धर्मेणसममेवाभ्यपालयत् । धर्मार्थकामाःसन्द्रष्टुमाजग्मुः कौतुकात्पुरा ॥
जिज्ञासवस्तच्चरितं कथं पश्यति नः समम् । भक्त्या चक्रेततस्तेषामर्घ्यपाद्यादिकं नृपः ॥
आसनत्रयमानीय दिव्यं कनकभूषितम् । निवेश्याथाकरोत् पूजामीषद्धर्मेऽधिकांपुनः ॥
जग्मतुस्तेन कामार्थावति कोपं नृपं प्रति । अर्थः शापमदात्तस्मैलोभात्त्वंनाशमेष्यसि ॥
कामोऽप्याह तवोन्मादो भवितागन्धमादने । कुमारवनमाश्रित्यवियोगादुर्वशीभवात् ॥
धर्मोऽप्याहचिरायुस्त्वंधार्मिकश्चभविष्यसि । सन्ततिस्तवराजेन्द्रयावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥
शतशो वृद्धिमायातु न नाशम्भुवियास्यति । इत्युक्त्वान्तर्दधुःसर्वेराजाराज्यंतदन्वभूत् ॥
अहन्यहनि देवेन्द्रं द्रष्टुं याति सराजराट् । कदाचिदारुह्य रथंदक्षिणाम्बरचारिणम् ॥२२
सार्द्धमर्केण सोऽपश्यन्नीयमानामथाम्बरे । केशिना दानवेन्द्रेण चित्रलेखामथोर्वशीम् ॥
तं विनिर्जित्य समरे विविधायुधपाणिना । बुधपुत्रेणवायव्यमस्त्रंमुक्त्वायशोऽर्थिना ॥
तथा शक्रोऽपि समरे येन चैव विनिर्जितः । मित्रत्वमगमद्देवैर्ददाविन्द्राय चोर्वशीम् ॥

ततःप्रभृति मित्रत्वमगमत्पाकशासनः । सर्वलोकातिशायित्वं बलमूर्जो यशः श्रियम् ॥
प्रादाद्वज्रीतु सन्तुष्टो गेयतां भरतेन च । सा पुरूरवसः प्रीत्या गायन्तीं चरितं महत् २७
लक्ष्मी स्वयं वरं नाम भरतेन प्रवर्त्तितम् । मेनकामुर्वशीं रम्भां नृत्यतेति तदा दिशत् ॥
ननर्त्त सलयं तत्र लक्ष्मीरूपेण चोर्वशी । सा पुरूरवसं दृष्ट्वा नृत्यन्ती कामपीडिता ॥२६
विस्मृताभिनयं सर्वं यत्पुरा भरतोदितम् । शशाप भरतः क्रोधाद्वियोगादस्य भूतले ॥
पञ्चपञ्चाशदब्दानि लता सूक्ष्मा भविष्यसि । पुरूरवाः पिशाचत्वं तत्रैवानुभविष्यसि ॥
ततस्तमुर्वशी गत्वा भर्तारमकरोच्चिरम् । शापान्ते भरतस्याथ उर्वशी बुधसूनुतः ॥३२॥
अजीजनत् सुतानष्टौ नामतस्तान्निबोधत । आयुर्दृढायुरश्वायुधनायुर्धृतिमान्वसुः ॥३३
शुचिविद्यः शतायुश्च सर्वे दिव्यबलौजसः । आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा तथैव च ॥
रजिर्दम्भो विपाप्मा च वीराः पञ्च महारथाः । रजेः पुत्रशतंजज्ञेराजेयमिति विश्रुतम् ॥
रजिराराधयामास नारायणमकल्मषम् । तपसा तोषितो विष्णुर्वरान् प्रादान्महीपतेः ॥३६
देवासुरमनुष्याणामभूत् स विजयी तदा । अथ देवासुरं युद्धमभूद्वर्षशतत्रयम् ॥३७॥
प्रह्लादशक्रयोर्भीमं न कश्चिद्विजयी तयोः । ततो देवासुरैः पृष्टः प्राह देवश्चतुर्मुखः ॥३८॥
अनयोर्विजयीकःस्यात्रजिर्यत्रेतिसोऽब्रवीत् । जयायप्रार्थितोराजासहायस्त्वंभवस्वनः ॥
दैत्यैः प्राह यदि स्वामी वोभवामिततस्त्वलम् । नासुरैःप्रतिपन्नंततत्प्रतिपन्नंसुरैस्तथा ॥
स्वामी भव त्वमस्माकं संग्रामेनाशयद्विषः । ततोविनाशिताःसर्वेयेऽवध्यावज्रपाणिना ॥
पुत्रत्वमगमत् तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा विभुः । दत्वेन्द्राय तदा राज्यं जगाम तपसेरजिः॥
रजिपुत्रैस्तदाच्छिन्नं बलादिन्द्रस्य वैभवम् । यज्ञभागश्च राज्यञ्चतपोबलगुणान्वितैः ॥
राज्याद्भ्रष्टस्तदाशक्रोरजिपुत्रैर्निपीडितः । प्राहवाचस्पतिंदीनःपीडितोऽस्मिरजेःसुतैः ॥
न यज्ञभागो राज्यं मे निर्जितश्च बृहस्पते । राज्यलाभायमेयत्नंविधत्स्वधिषणाधिप ॥
ततो बृहस्पतिः शक्रमकरोद्बलदर्पितम् । ग्रहशान्तिविधानेन पौष्टिकेनच कर्मणा ॥४६॥
गत्वाऽथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः । जिनधर्मंसमास्थाय वेदबाह्यं सवेदवित् ॥
वेदत्रयी परिभ्रष्टांश्चकार धिषणाधिपः । वेदबाह्यान् परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान् ॥४८
जघान शक्रो वज्रेणसर्वान्धर्मबहिष्कृतान् । नहुषस्यप्रवक्ष्यामिपुत्रानसप्तैवधार्मिकान् ॥

यतिर्ययातिः संयातिरुद्भवः पाचिरेव च। सर्यातिर्मेघजातिश्च सप्तैते वंशवर्धनाः ॥५०॥
यतिः कुमारभावेऽपियोगीवैखानसोऽभवत्। ययातिश्चाकरोद्राज्यंधर्मैकशरणःसदा ॥
शर्मिष्ठा तस्य भार्याभूद्दुहितावृषपर्वणः। भार्गवस्यात्मजा तद्वद्देवयानी च सुव्रता ।५२।

ययातेः पञ्च दायादास्तान् प्रवक्ष्यामि नामतः।
देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुञ्चाप्यजीजनत् ॥ ५३ ॥

तथाद्रुह्य मनुं पूरुं शर्मिष्ठाजनयत्सुतान्। यदुः पूरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ ॥५४॥
ययातिर्नाहुषश्चासीत् राजा सत्यपराक्रमः। पालयामास स महीमीजेचविविधैर्मखैः ॥
अतिभक्त्या पितॄनर्च्य देवांश्च प्रयतः सदा। अथाजयत्प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः ॥
स शाश्वतीः समा राजाप्रजाधर्मेणपालयत्। जरामार्च्छन्महाघोरंनाहुषोरूपनाशिनीम् ॥
जराभिभूतः पुत्रान् स राजा वचनमब्रवीत्। यदुं पूरुं तुर्वसुञ्च द्रुह्यं चानुञ्च पार्थिवः ॥
यौवनेन चलान्कामान्युवायुवतिभिःसह। विहर्तुमहमिच्छामिसाहाय्यं कुरुतात्मजाः ॥
तं पुत्रो देवयानेयः पूर्वजो यदुरब्रवीत्। साहाय्यं भवतः कार्यमस्माभिर्यौवनेनकिम् ॥
ययातिरब्रवीत् पुत्रान् जरा मे प्रतिगृह्यताम्। यौवनेनाथ भवतांचरेयं विषयानहम् ॥६१
यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापाच्चोशनसो मुनेः। कामार्थः परिहीनो मेऽतृप्तोऽहंतेन पुत्रकाः ॥
स्वकीयेन शरीरेण जरामेनां प्रशास्तु वः। अहं तन्वाभिनवया युवा कामानवाप्नुयाम् ॥
न तेऽस्य प्रत्यगृह्णन्त यदुप्रभृतयो जराम्। चतुरस्तान् स राजर्षिरशपच्चेतिनः श्रुतम् ॥
तमब्रवीत्ततः पूरुः कनीयान् सत्यविक्रमः। जरांमादेहिनवयातन्वामेयौवनात्सुखी ॥६५

अहं जरावन्तवादाय राज्ये स्थास्यामि चाज्ञया।
एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्य्यसमाश्रयात् ॥ ६६ ॥

संस्थापयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि। पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः॥
ययातेश्चाथ वयसा राज्यं पूरुरकारयत्। ततो वर्षसहस्रान्ते ययातिरपराजितः ॥६८॥
अतृप्त इव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह। त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः ॥
पौरवो वंश इत्येष ख्यातिं लोके गमिष्यति। ततः स नृपशार्दूलः पूरुंराज्येऽभिषिच्य च
कालेन महता पश्चात्काले धर्ममुपेयिवान्। पूरुवंशं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मृषिसत्तमाः॥

यत्र ते भारता जाता भरतान्वय वर्द्धनाः ।

इति श्रीमत्स्यपुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

ययातिचरित्रम् ।

ऋषय ऊचुः ।

किमर्थं पौरवो वंशः श्रेष्ठत्वं प्राप भूतले । ज्येष्ठस्यापि यदोर्वंशः किमर्थं हीयते श्रिया ॥

अन्यद्ययातिचरितं सूत ! विस्तरतो वद । यस्मात्तत्पुण्यमायुष्यमभिनन्द्यं सुरैरपि ॥२

सूत उवाच ।

एतदेव पुरा पृष्टः शतानीकेन शौनकः । पुण्यं पवित्रमायुष्यं ययाति चरितं महत् ॥३॥

शतानीक उवाच ।

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापते । कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन । आनुपूर्व्याच्च मे शंस पूरोर्वंशधरान्नृपान् ॥५

शौनक उवाच ।

ययातिरासीद्राजर्षिर्देवराज समद्युतिः । तं शुक्रवृषपर्वाणौ वव्राथे वै यथा पुरा ॥ ६ ॥

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छतो राजसत्तम । देवयान्याश्च संयोगं ययातेर्नाहुषस्य च ॥७

सुराणामसुराणाञ्च समजायत वै मिथः । ऐश्वर्यं प्रतिसङ्घर्ष स्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥८॥

जिगीषया ततो देवा वव्रुराङ्गिरसं मुनिम् । पौरोहित्ये च यज्ञार्थे काव्यं तूशनसं परे ॥

ब्राह्मणौ तावुभौ नित्यमन्योन्यं स्पर्धिनौ भृशम् ।
तत्र देवा निजघ्नुर्यान् दानवान् युधिसङ्गतान् ॥१०॥
तान् पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात् ।
ततस्ते पुनरुत्थाय योधयांचक्रिरे सुरान् ॥११॥

असुरास्तु निजघ्नुर्यान् सुरान् समरमूर्द्धनि। नतान्संजीवयामासबृहस्पतिरुदारधीः॥
नहिवेदसतांविद्यांयांकाव्योवेदवीर्य्यवान्। संजीवनीन्ततो देवा विषादमगमन् परम्॥
अथ देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा। ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठंपुत्रंबृहस्पतेः॥

भजमानान् भजस्वास्मान् कुरु साहाय्यमुत्तमम्।
यासौ विद्या निवसति ब्रह्मणे मिततेजसि॥१५॥

शुक्रेतामाहरक्षिप्रंभागभाग्नोभविष्यसि। वृषपर्वणःसमीपेऽसौशक्योद्रष्टुंत्वयाद्विजः॥
रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान्। तमाराधयितुं शक्तो नान्यःकश्चिद्वतेत्वया॥
देवयानी च दयिता सुता तस्य महात्मनः। तामाराधयितुं शक्तो नान्यःकश्चनविद्यते॥
शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेणदमेनच। देवयान्यान्तुतुष्टायांविद्यान्तांप्राप्स्यसिध्रुवम्॥
तदाहि प्रेषितो देवैः समीपे वृषपर्वणः। तथेत्युक्त्वा तु स प्रायाद्बृहस्पतिसुतःकचः॥
स गत्वा त्वरितो राजन्! देवैः संपूजितः कचः। असुरेन्द्रपुरेशुक्रंप्रणम्येदमुवाचह॥२१
ऋषेरङ्गिरसः पौत्रं पुत्रंसाक्षाद्बृहस्पतेः। नाम्नाकचेतिविख्यातंशिष्यंगृह्णातुमांभवान्॥
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमं गुरो। अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन्! सहस्रपरिवत्सरान्॥

शुक्र उवाच।

कच! सुस्वागतन्तेऽस्तुप्रतिगृह्णामितेवचः। अर्चयिष्येऽहमर्च्यंत्वामर्चितोऽस्तुबृहस्पतिः

शौनक उवाच।

कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह तद्व्रतम्। आदिष्टङ्कविपुत्रेणशुक्रेणोशनसास्वयम्॥
व्रतञ्च व्रतकालञ्च यथोक्तं प्रत्यगृह्णत। आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीञ्च भारत॥२६॥
संशीलयन् देवयानीं कन्यां संप्राप्तयौवनाम्। पुष्पैःफलैःप्रेषणैश्चतोषयामासभार्गवीम्।
देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतचारिणम्। अनुयायन्ती ललना रहः पर्यचरत्तदा॥२८॥
पञ्चवर्ष शतान्येवं कचस्य चरतोभृशम्। तत्तत्तीव्रं व्रतं बुध्वा दानवास्तं ततः कचम्॥
गारक्षन्तं वनेदृष्ट्वा रहस्येनममर्षिताः। जघ्नुर्बृहस्पते र्द्वेषान्निजरक्षार्थमेव च॥ ३०॥
हत्वाशालावृकेभ्यश्चप्रायच्छंस्तिलशःकृतम्। ततोगावोनिवृत्तास्ताअगोपाःस्वनिवेशनम्॥
ता दृष्ट्वा रहितास्तु कचेनाभ्यागता वनात्। उवाच वचनं कालेदेवयान्यथ भार्गवम्॥

हुतश्चैवाग्निहोत्रन्तेसूर्यश्चास्तङ्गतःप्रभो । अगोपाश्चागतागावःकचस्तात ! न दृश्यते ॥
व्यक्तं हतो धृतो वापि कचस्तात ! भविष्यति ।
तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥३४॥

शुक्र उवाच ।

अथैह्येहीति शब्देन मृतं सञ्जीवयाम्यहम् । ततः सञ्जीवनींविद्यां प्रयुक्त्वा कचमाह्वयत ॥
आहूतः प्राद्रवद्दूरात् कचः शुक्रंननामसः । ततोऽहमितिचाचख्यौराक्षसैर्धिषणात्मजः॥
स पुनर्देवयान्युक्तः पुष्पाहारे यदृच्छया । वनं ययौ कचो विप्रः पठन्ब्रह्मचशाश्वतम् ॥
वने पुष्पाणि चिन्वन्तं दृष्ट्वशुर्दानवाश्चतम् । ततो द्वितीये तं हत्वापुनःकृत्वाचचूर्णवत् ॥
प्रायच्छन् ब्राह्मणायैव सुरायामसुरास्तदा ॥३६॥
देवयान्यथ भूयोऽपि पितरं वाक्यमब्रवीत् । पुष्पाहारप्रेषणकृत्कचस्तात ! न दृश्यते ॥
व्यक्तं हतो मृतोवापिकचस्तात ! भविष्यति । तंविनानैवजीवामिवचःसत्यं ब्रवीमिते ॥

शुक्र उवाच ।

वृहस्पतेः सुतः पुत्रि ! कचः प्रेतगतिं गतः ।
विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्यते करवाणि किम् ॥४२॥
मैनं शुचो मा रुद देवयानि ! न त्वादृशी मर्त्यमनु प्रशोचेत् ।
यस्यास्तव ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च सेन्द्रा देवा वसवोऽश्विनौ च ॥४३॥
सुरद्विषश्चैव जगच्च सर्वमुपस्थितं मत्तपसः प्रभावात् ।
अशक्योऽयं जीवयितुं द्विजातिः सञ्जीवितो यो वध्यते चैव भूयः ॥ ४४ ॥

देवायान्युवाच ।

यस्याङ्गिरा वृद्धतमः पितामहो वृहस्पतिश्चापि पिता तपोनिधिः ।
ऋषेः सुपुत्रन्तमथापि पौत्रं कथं न शोचेयमहन्नरुन्ध्याम् ॥ ४५ ॥
स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः ।
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये प्रियो हि मे तात! कचोभिरूपः ॥४६॥

शौनक उवाच ।

सत्वेवमुक्तो देवयान्या महर्षिः संरम्भेण व्याजहाराथ काव्यः ।
असंशयं मामसुरा द्विषन्ति ये मेशिष्यानागतान् सूदयन्ति ॥ ४७ ॥
अब्राह्मणं कर्तुमिच्छन्ति रौद्रा एभि र्व्यर्थं प्रस्तुतो दानवैर्हि ।
तत्कर्म्मणाप्यस्य भवेदिहान्तः कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम् ॥ ४८ ॥
स तेनापृष्टो विद्यया चोपहूतो शनैर्वाचं जठरे व्याजहार ।
तमब्रवीत्केन चेहोपनीतो ममोदरे तिष्ठसि ब्रूहि वत्स ! ॥ ४९ ॥

कच उवाच ।

भवत्प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः सर्वं स्मरेयं यच्च यथा च वृत्तम् ।
नत्वेवं स्यात्तपमः क्षयो मे ततः क्लेशं घोरतरं स्मरामि ॥५०॥
असुरैः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो हत्वा दग्धा चूर्णयित्वा च काव्य ! ।
ब्राह्मीं मायान्त्वासुरी त्वत्र माया त्वयि स्थिते कथमेवाभिवाधते ॥५१॥

शुक्र उवाच ।

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से ! विनैव मे जीवितं स्यात्कचस्य ।
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनाच्च दृश्येत् कचो मद्गतो देवयानि ! ॥ ५२ ॥

देवयान्युवाच ।

द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेतां कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः ।
कचस्यनाशे मम नास्ति शर्म तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता ॥ ५३ ॥

शुक्र उवाच ।

संसिद्धरूपोऽसि वृहस्पतेः सुत ! यत्त्वां भक्तं भजते देवयानी ।
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीन्त्वं न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य ॥५४॥
न निवर्तेतपुनर्जीवन् कश्चिदन्योममोदरात् । ब्राह्मणंवर्जयित्वैकं तस्माद्विद्यामवाप्नुहि ।
पुत्रोभूत्वा निष्क्रमस्वोदरान् मे भित्वा कुक्षिञ्जीवय मां च तात !
अवेक्ष्येऽथो धर्मवतीमवेक्षां गुरोः सकाशात्प्राप्य विद्यां स विद्यः ॥५६॥

शौनक उवाच ।

गुरोः सकाशात् समवाप्य विद्यां भित्वा कुक्षिन्निर्विचक्राम विप्रः ।
प्रालेयाद्रेः शुक्लमुद्भिद्य शृङ्गं रात्र्यागमेपौर्णमास्यामिवेन्दुः ॥५७॥
दृष्ट्वा च तं पतितं वेदराशिमुत्थापयामास ततः कचोऽपि ।
विद्यां सिद्धांतामवाप्याभिवाद्यः ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच ॥५८॥
निधिं निधीनां वरदं वराणां येनाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयम् ।
प्रालेयाद्रिप्रोज्वलभालसंस्थं पापान् लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः ॥५९॥

शौनक उवाच ।

सुरापानाद्वञ्चनात्प्रापयित्वा संज्ञानाशञ्चेतसश्चापि घोरम् ।
दृष्ट्वा कचञ्चापि तथाभिरूपं पीतं तथा सुरया मोहितेन ॥६०॥
स मन्युरुत्थाय महानुभावस्तदोशना विप्र हितंचिकीर्षुः ।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद सुरापानं प्रत्यसौ जातशङ्कः ॥६१॥

शुक्र उवाच ।

यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चिन्मोहात् सुरा पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव स स्यादस्मिन् लोके गर्हितः स्यात्परे च ॥६२॥
मया चेमां विप्र धर्मोक्त सीमां मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणां देवा दैत्याश्चोपश्रृण्वन्तु सर्वे ॥६३॥

शौनक उवाच ।

इतीदमुक्त्वा स महाप्रभावस्तपोनिधीनां निधिरप्रमेयः ।
तान्दानवांश्चैव निगूढबुद्धीनिदं समाहूय वचोऽभ्युवाच ॥ ६४ ॥

शुक्र उवाच ।

आचक्षाणो दानवा बालिशास्थ शिष्यः कचोवत्स्यति मत्समीपे ।
सञ्जीवनीं प्राप्यविद्यां ममायं तुल्यप्रभावो ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः ॥ ६५ ॥

शौनक उवाच ।

गुरोरुष्यसकाशे च दशवर्षशतानि सः । अनुज्ञातः कचोगन्तुमियेष त्रिदशालयम् ॥६६।

इति श्री मत्स्यपुराणे कचोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः

कचदेवयानीसंवादकथनम् ।

शौनक उवाच ।

समापितव्रतं तन्तु विसृष्टं गुरुणा तदा । प्रस्थितं त्रिदशावासं देवयानीदमब्रवीत् ॥१॥

देवयान्युवाच ।

ऋषेरङ्गिरसः पौत्र ! वृत्तेनाभिजनेन च । भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च ॥२॥
ऋषिर्यथाङ्गिरामान्यः पितुर्मम महायशाः । तथामान्यश्च पूज्यश्च मम भूयो बृहस्पतिः
एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद्ब्रवीमि तपोधन !। व्रतस्थे नियमोपेते यथावर्त्तास्यहं त्वयि
स समापितविद्यो मां भक्तान्न त्यक्तुमर्हसि । गृहाणपाणिं विधिवन् ममसन्त्रपुरस्कृतम् ।

कच उवाच ।

पूज्योमान्यश्च भगवान् यथा मम पिता तव । तथात्वमनवद्याङ्गि ! पूजनीयतमा मता ॥
आत्मप्राणैः प्रियतमा भार्गवस्य महात्मनः । त्वं भद्रे ! धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदामम
यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव । देवयानि ! तथैवत्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि ।

देवयान्युवाच ।

गुरुपुत्रस्य पुत्रो मे न तु त्वमसि मे पितुः । तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च ममापित्वं द्विजोत्तम
असुरैर्हन्यमानेतु कचे त्वयि पुनः पुनः । तदा प्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमेव स्मरस्व मे ॥
सौहार्द्येचानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम् । न मामर्हसि धर्मज्ञ! त्यक्तुं भक्तामनागसम्

कच उवाच ।

अनियोज्ये नियोगे मां नियुनक्षि शुभव्रते !। प्रसीद सुभ्रु ! मह्यन्त्वं गुरोर्गुरुतरा शुभे ॥
यत्रोषितं विशालाक्षि ! त्वया चन्द्रनिभानने !।
तत्राहमुषितो भद्रे ! कुक्षौ काव्यस्य भामिनि ! ॥ १२ ॥
भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः शुभानने !। सुखेनाध्युषितो भद्रे! न मन्युर्विद्यते मम

आपृच्छे त्वांगमिष्यामिशिवमस्त्वथमेपथि । अविरोधेनधर्मस्यस्मर्तव्योऽस्मिकथान्तरे
अप्रमत्तोद्यता नित्यमाराधय गुरुं मम ।

देवयान्युवाच ।

दैत्यैर्हतस्त्वं यद्भर्तृ वुध्या त्वं रक्षितोमया ॥ १६ ॥
यदि मां धर्मकामार्थां प्रत्याख्यास्यसि धर्मतः । ततःकचनतेविद्यासिद्धिरेषागमिष्यति

कच उवाच ।

गुरुपुत्रीति कृत्वाहं प्रत्याख्यास्ये न दोषतः । गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः काममेवं शपस्वमाम्
आर्षं धर्मंब्रुवाणोऽहंदेवयानि!यथात्वया । शप्तुंनार्होऽस्मि कल्याणि!कामतोऽद्यचधर्मतः
तस्माद्भवत्या यः कामो न तथासंभविष्यति । ऋषिपुत्रोनतेकश्चित्जातुपाणिंग्रहीष्यति
फलिष्यति नमे विद्या त्वद्वचश्चेतितत्तथा । अध्यापयिष्यामिच यं तस्यविद्याफलिष्यति

शौनक उवाच ।

एवमुक्त्वा नृप श्रेष्ठ ! देवयानीं कचस्तदा । त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य देवाः सेन्द्रपुरोगमाः । वृहस्पतिं सभाज्येदं कचमाहुर्मुदान्विताः ॥

देवा ऊचुः ।

त्वं कचास्मद्धितंकर्म कृतवान्महदद्भुतम् । न ते यशः प्रणशिता भाग्भाग्च भविष्यसि।

इति श्री मत्स्यपुराणे कचदेवयानी संवादो नाम षड्विंशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः

देवयानी कथानकम् ।

शौनक उवाच ।

कृतविद्ये कचे प्राप्ते हृष्टरूपा दिवौकसः । कचादवेत्य तां विद्यां कृतार्था भरतर्षभ !॥१ ॥
सर्व एव समागम्य शतक्रतुमथाब्रुवन् । कालः स्त्वद्विक्रमस्याद्य जहि शत्रून् पुरन्दर !
एवमुक्तस्तु सह तैस्त्रिदशैर्मघवांस्तदा । तथेत्युक्त्वोपचक्राम सोऽपश्यद्विपिने स्त्रियः

क्रीडन्तीनान्तु कन्यानां वने चैत्ररथोपमे। वायुर्भूतः सवस्त्राणि सर्वाण्येकव्यमिश्रयत्
ततोजलात्समुत्तीर्यताःकन्याःसहितास्तदा। वस्त्राणिजगृहुस्तानियथासंस्थान्यनेकशः
तत्र वासो देवयान्याः शर्मिष्ठा जगृहे तदा। व्यतिक्रममजानन्ती दुहितावृषपर्वणः॥
ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत। देवयान्याश्च राजेन्द्र! शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते॥

देवयान्युवाच।

कस्माद्गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्याभूत्वा ममासुरि! समुदाचारहीनायानतेश्रेयोभविष्यति

शर्मिष्ठोवाच।

आसीनञ्च शयानञ्चपिता ते पितरंमम। स्तौति पृच्छतिचाभीक्ष्णंनीचस्थः सुविनीतवत्
याचतस्त्वञ्च दुहिता स्तुवतः प्रतिगृह्णतः। सुताहं स्तूयमानस्य ददतो न तु गृह्णतः॥
अनायुधासायुधायाःकिंत्वंकुप्यसिभिक्षुकि! लप्स्यसेप्रतियोद्धारंनचत्वांगणयाम्यहम्

शौनक उवाच।

सा विस्मयंदेवयानीं गतां सक्ताञ्चवाससि। शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे ततः स्वपुरमाविशत्
हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्चया। अनवेक्ष्य ययौ तस्मात् क्रोधवेगपरायणा॥
अथ तं देशमभ्यगाद्ययातिर्नहुषात्मजः। श्रान्तयुग्मः श्रान्तरूपो मृगलिप्सुः पिपासितः
नाहुषिः प्रेक्ष्यमाणोहि सनिपानेन गतोदके। ददर्श कन्यां तां तत्र दीप्तामग्निशिखामिव
तामपृच्छत् स दृष्ट्वैव कन्याममरवर्णिनीम्। सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्गुना
कात्वंचारुमुखीश्यामासुमृष्टमणिकुण्डला। दीर्घंध्यायसिचात्यर्थंकस्माच्छ्वसिषिचातुरा
कथञ्च पतिता ह्यस्मिन् कूपे वीरुत्तृणावृते। दुहिता चैव कस्य त्वं वदसर्वं सुमध्यमे!

देवयान्युवाच।

योऽसौदेवैर्हतान् दैत्यानुत्थापयतिविद्यया। तस्यशुक्रस्यकन्याहन्त्वं मां नूनं न बुध्यसे
एष मे दक्षिणो राजन्! पाणिस्ताम्रनखाङ्गुलिः।
समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः॥ २०॥
जानामित्वाञ्चसंशान्तवीर्यवन्तंयशस्विनम्। तस्मान्मांपतितं कूपादस्मादुद्धर्तुमर्हसि।

शौनक उवाच ।

तामथ ब्राह्मणीं स्त्रीं च विज्ञाय नहुषात्मजः । गृहीत्वादक्षिणेपाणावुज्जहारततोबलात् ।
उद्धृत्य चैनान्तरसा तस्मात् कूपान्नराधिपः ।
आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययाति स्वपुरं ययौ ॥ २३ ॥

देवयान्युवाच ।

त्वरितं घूर्णिके गच्छ सर्वमाचक्ष्व मे पितुः । नेदानीं तु प्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः ॥

शौनक उवाच ।

सा तु वै त्वरितं गत्वा घूर्णिका सुरमन्दिरम् । दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदंकम्पमानाविचेतना
आचख्यौ च महाभागा देवयानी वने हता । शर्मिष्ठयामहाप्राज्ञ ! दुहित्रा वृषपर्वणः ॥
श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तदा शर्मिष्ठयाहताम् । त्वरयानिर्ययौदुःखात्मार्गमाणःसुतांवने ।
दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं तपोवने । वाहुभ्यांसंपरिष्वज्यदुःखितो वाक्यमब्रवीत् ।
आत्मदोषैर्नियच्छन्ति सर्वे दुःखसुखे जना । मन्येदुश्चरितंतस्मिन् तस्येयं निष्कृतिःकृता

देवयान्युवाच ।

निष्कृतिर्वास्तु वा मास्तु शृणुष्वावहितो मम । शर्मिष्ठयायदुक्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः
सत्यं किलैतत् सा प्राह दैत्यानामस्मि गायना ।
एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३१ ॥
वचनं तीक्ष्ण परुषं क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् । स्तुवतोदुहितासि त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः ॥
सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रति गृह्णतः । इति मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः ॥
क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णानना ततः ॥ ३३ ॥
यद्यहं स्तुवतस्तात दुहिता प्रतिगृह्णतः । प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता हि सखीमया ॥

शुक्र उवाच ।

स्तुवतो दुहिता नस्त्वंभद्रे ! न प्रतिगृह्णतः । अतस्त्वंस्तूयमानस्यदुहितादेवयान्यसि
वृषपर्वैव तद्वेद शक्रो राजा च नाहुषः । अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वन्द्वमैश्वरं हि बलं मम ।३६।

इति श्री मत्स्यपुराणे देवयानीकथानकं नाम सप्तविंशोध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

शुक्रकृतदेवयानीसान्त्वनम् ।

शुक्र उवाच ।

यः परेषां नरोनित्यमतिवादांस्तितिक्षते । देवयानि ! विजानीहि तेन सर्वमिदञ्जितम्
यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा । संयते त्यज्यते सद्भिर्नयो रश्मिषु लम्बते ॥
यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन नियच्छति । देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदञ्जितम्
यः समुत्पतितं कोपं क्षमयैव निरस्यति । यथोरगस्त्वचंजीर्णां स वै पुरुष उच्यते ॥
यस्तु भावयते धर्मं योनिमात्रन्तितिक्षति । यश्च तप्तो न तपति भृशं सोऽर्थस्य भाजनम्
यो यजेदश्वमेधेन मासि मासि शतं समाः । यस्तु कुप्येन्न सर्वस्य तयोरक्रोधनोवरः
ये कुमाराः कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः । नैतत् प्राज्ञस्तु कुर्वीत विदुस्तेन बलाबलम् ॥

·देवयान्युवाच ।

वेदाहन्तात ! बालापिकार्याणान्तुगतागतम् । क्रोधे चैवातिवादे वा कार्यस्यापिबलाबले
शिष्यस्याशिष्यवृत्तं हि न क्षन्तव्यं बुभूषुणा । असत्संकीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते
पुंसो ये नाभिनन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च । न तेषु निवसेत् प्राज्ञःश्रेयोऽर्थीपापबुद्धिषु ॥
ये नैनमभिजानन्तुवृत्तेनाभिजनेन च । तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते ॥
तन्मे मथ्नाति हृदयमग्निकल्पमिवारणिम् । वाग्दुरुक्तं महाघोरं दुहितुर्वृषपर्वणः ॥१२॥
नह्यतो दुष्करं मन्ये तात लोकेष्वपि त्रिषु । यः सपत्नश्रियं दीप्तां हीनश्रीः पर्युपासते

इति श्री मत्स्यपुराणे शुक्रकृत देवयानीसान्त्वनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

शुक्रस्य क्रोधोत्पत्तिकथनम्

शौनक उवाच ।

ततःकाव्यो भृगुश्रेष्ठःसमन्युरुपगम्य ह । वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन् ॥१॥
नाधर्मश्चरितोराजन् ! सद्यःफलतिगौरिव । शनैरावर्त्यमानस्तु मूलान्यपि निकृन्तति ॥

यदि नात्मनिपुत्रेषु न चेत्पश्यति नप्तृषु । पापमाचरितं कर्म त्रिवर्गमतिवर्तते ॥ ३ ॥
फलत्येवं ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे । यदाघातयसे विप्रं कचमांगिरसन्तदा ॥ ४ ॥
अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषुं मद्गृहे रतम् । वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम ॥ ५ ॥
वृषपर्वन्निबोधत्वंत्यक्ष्यामित्वांसबान्धवम् । स्थातुंत्वद्विषयेराजन् ! नशक्नोमित्वयासह
अद्यैवमभिजानामि दैत्यं मिथ्याप्रलापिनम् । यतस्त्वमात्मनोदीर्णां दुहितांकिमुपेक्षसे

वृषपर्वोवाच ।

नावद्यं न मृषावादं त्वयिजानामिभार्गव ! त्वयिसत्यञ्चधर्म्मञ्च तत्प्रसीदतुमांभवान् ।
अद्यास्मानपहायत्वमितोवास्यसि भार्गव ! । समुद्रंसंप्रवेश्यामिनान्यदस्तिपरायणम् ॥

शुक्र उवाच

समुद्रं प्रविशध्वं वा दिशो वा व्रजतासुराः । दुहितुर्नाप्रियं सोढुं शक्तोऽहंदयिताहिमे ॥
प्रसाद्यतां देवयानीं जीवितं यत्र मे स्थितम् । योगक्षेमकरस्तेऽहमिन्द्रस्येववृहस्पतिः ॥

वृषपर्वोवाच

यत्किञ्चिदसुरेन्द्राणां विद्यतेवसुभार्गव ! । भुवि हस्तिरथाश्वं वा तस्यत्वंममचेश्वरः॥

शुक्र उवाच

यत्किञ्चिदस्तिद्रविणंदैत्येन्द्राणांमहासुर ! । तस्येश्वरोस्मियद्येतद्देवयानि ! प्रसाद्यताम्।

शौनक उवाच ।

ततस्तु त्वरितः शुक्रस्तेन राज्ञा समं ययौ । उवाच चैनां सुभगे ! प्रतिपन्नं वचस्तव ॥

देवयान्युवाच ।

यदित्वमीश्वरस्तात ! राज्ञोवित्तस्य भार्गव । नाभिजानामितत्तेऽहं राजावदतुमांस्वयम्

वृषपर्वोवाच ।

यं काममभिजानासि देवयानि! शुचिस्मिते । तत्तेऽहंसंप्रदास्यामियद्यपिस्यात्सुदुर्लभम्

देवयान्युवाच ।

दासींकन्यासहस्रेण शर्मिष्ठामभिकामये । अनुयास्यति मां तत्र यत्र दास्यति मे पिता

वृषपर्वोवाच ।

उत्तिष्ठ धात्रि ! गच्छ त्वं शर्मिष्ठांशीघ्रमानय । यं च कामयतेकामं देवयानी करोतुतम्

शौनक उवाच ।

ततोधात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् । उत्तिष्ठ भद्रे ! शर्मिष्ठे ! ज्ञातीनांसुखमावह

त्यजति ब्राह्मणःशिष्यान् देवयान्याप्रचोदितः । यं साकामयतेकामंसकार्योऽनत्वयानघे

दासीत्वमभिजातासि देवयान्याः सुशोभने ! ॥ २० ॥

शर्मिष्ठोवाच ।

यं च कामयते कामं करवाण्यहमद्य तम् । मागान्मन्युवशं शुक्रो देवयानी च मत्कृते ॥

शौनक उवाच ।

ततः कन्यासहस्रेण वृता शिविकया तदा । पितुर्निदेशात्त्वरिता निश्चक्राम पुरोत्तमात्

शर्मिष्ठोवाच ।

अहं कन्यासहस्रेण दासी ते परिचारिका । ध्रुवं त्वां तत्र यास्यामियत्रदास्यतिते पिता

देवयान्युवाच ।

स्तुवतो दुहिता चाहं याचतः प्रतिगृह्णतः । स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि

शर्मिष्ठोवाच ।

येन केनचिदार्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत् । अनुयास्याम्यहं तत्र यत्र दास्यति ते पिता

शौनक उवाच ।

प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः । देवयानी नृपश्रेष्ठ ! पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

प्रविशामि पुरं तात तुष्टास्मि द्विजसत्तम । अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्याबलञ्च ते ॥

एवमुक्तो द्विजश्रेष्ठो दुहित्रा सुमहायशाः । प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः ॥२८॥

इति श्री मत्स्यपुराणे शर्मिष्ठाया दासस्यत्वस्वीकरणं नाममैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः

ययातिचरित्रम् ।

शौनक उवाच ।

अथ दीर्घेण कालेन देवयानी नृपोत्तम । वनं तदेव निर्याता क्रीड़ार्थं वरर्वाणनी ॥१॥
तेन दासी सहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठयां तदा । तमेव देशं संप्राप्ता यथा कामं चचार सा ॥

ताभिः सखीभिः सहिताः सर्वाभिर्मुदिता भृशम् ।
क्रीड़न्त्योऽभिरताः सर्व्वाः पिबन्त्यो मधु माधवम् ॥३॥
खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च ।
पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यद्दृच्छया ॥४॥

तमेव देशं संप्राप्तो जललिप्सुः प्रतर्षितः । ददर्श देवयानीञ्च शर्मिष्ठान्ताश्च योषितः ॥५
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः । उपविष्टाश्चददर्शदेवयानींशुचिस्मिताम् ॥
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणांमध्येवराननाम् । शर्मिष्ठयासेव्यमानांपादसम्वाहनादिभिः ॥

ययातिरुवाच ।

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यांद्वेकन्येपरिवारिते । गोत्रेचनामनीचैवद्वयोःपृच्छाम्यतोह्यहम् ॥

देवयान्युवाच ।

आख्यास्याम्यहमादत्स्ववचनंमेनराधिप! । शुक्रोनामासुरगुरुःसुतांजानीहितस्यमाम् ॥
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी । दुहितादानवेन्द्रस्यशर्मिष्ठावृषपर्वणः ॥१०

ययातिरुवाच ।

कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी । असुरेन्द्रसुता सुभ्रु ! परं कौतूहलं हि मे ॥

देवयान्युवाच ।

सर्वमेव नरव्याघ्र ! विधानमनुवर्त्तते । विधिना विहितं ज्ञात्वा माविचित्रंमनःकृथाः ॥
राजवद्रूपवेषौ ते ब्राह्मीं वाचं विभर्षि च । किं नामा त्वं कुतश्चासिकस्यपुत्रश्चशंसमे ॥

ययातिरुवाच ।

ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृतस्नः श्रुतिपथं गतः । राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरितिविश्रुतः ॥१४

देवयान्युवाच ।

केन चार्थेन नृपते ! ह्येनं देशं समागतः । जिघृक्षुर्व्वारि यत्किञ्चिदथवा मृगलिप्सया ॥

ययातिरुवाच ।

मृगलिप्सुरहं भद्रे ! पानीयार्थमिहागतः । बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥

देवयान्युवाच ।

द्वाभ्यांकन्यासहस्राभ्यांदास्याशर्मिष्ठयासह । त्वदधीनास्मिभद्रंतेसखे ! भर्त्ताचमेभव ॥

ययातिरुवाच ।

विध्यौशनसिभद्रंतेनत्वदर्होऽस्मिभामिनि । अविवाह्याःस्मराजानोदेवयानि ! पितुस्तव

देवयान्युवाच ।

संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रह्मणि संश्रितम् । ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाद्यभजस्वमाम् ॥

ययातिरुवाच ।

एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपिवरानने । पृथक्धर्म्माःपृथक्शोचास्तेषांवैब्राह्मणोवरः ॥

देवयान्युवाच ।

पाणिग्रहो नाहुषायं न पुंभिः सेवितः पुरा । त्वमेनमग्रहीदग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ।२१

कथंतुमेमनस्विन्याःपाणिमन्यःपुमान्स्पृशेत् । गृहीतमृषिपुत्रेणस्वयंवाप्यृषिणात्वया ॥

ययातिरुवाच ।

क्रुद्धादाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता ॥ २३ ॥

देवयान्युवाच ।

कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् । दुराधर्षतरोविप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ॥२४

ययातिरुवाच ।

दशेदाशीविषस्त्वेकं शस्त्रेणैकश्च वध्यते । हन्तिविप्रःसराष्ट्राणि पुराण्यपिहिकोपितः

दुराधर्षतरो विप्रस्तस्मात् भीरु ! मतोमम । अतो दत्ताञ्चपित्रात्वां भद्रे!नविवहाम्यहम्

देवयान्युवाच ।

दत्तां वहस्व पित्रामांत्वंहिराजन्! वृतोमया । अयाचतो भयं नास्ति दत्ताञ्चप्रतिगृह्णतः

शौनक उवाच ।

त्वरितंदेवयान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः । सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ॥

श्रुत्वैवच स राजानं दर्शयामास भार्गवः । दृष्ट्वैवमागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः ॥

ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतःस्थितः । तं चाप्यभ्यवदत्काव्यःसाम्नापरमवल्गुना

देवयान्युवाच ।

राजायं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत् । नमस्ते देहि मामस्मै लोकेनान्यं पतिं वृणे ॥

शुक्र उवाच ।

वृतोऽनया पतिर्वीर ! सुतया त्वं ममेष्टया ।
गृहाणे मां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज ! ॥ ३२ ॥

ययातिरुवाच ।

अधर्मोमां स्पृशेदेवं पापमस्याश्चभार्गव ! । वर्णसंकरतोब्रह्मन्! इतित्वां प्रवृणोम्यहम्॥

शुक्र उवाच ।

अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम् ।
अस्मिन् विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहो पापन्नुदामि ते ॥ ३३ ॥

वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं शुचिस्मिताम् । अनया सह संप्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ॥

इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठ वार्षपर्वणी । संपूज्य सन्ततं राजन्! नचैनांशयनेह्वयः ॥

शौनक उवाच ।

एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रंकृत्वा प्रदक्षिणम् । जगामस्वपुरं हृष्टःसोऽनुज्ञातो महात्मना ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे ययाति चरिते त्रिंशोऽध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

ययाति चरित्रम् ।

शौनक उवाच ।

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसन्निभम् । प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत् ॥
देवयान्याश्चानुमते सुतां तां वृषपर्वणः । अशोकवनिकाभ्यासे गृहं कृत्वा न्यवेशयत् ॥
वृतां दासीसहस्रेण शर्मिष्ठामासुरायणीम् । वासोभिरन्नपानैश्च संभिज्य सुसंवृताम् ॥
देवयान्यातु सहितः स नृपो नहुषात्मजः । विजहार बहूनब्दान् देववन्मुदितो भृशम् ॥
ऋतुकाले तु संप्राप्ते देवयानी वराङ्गना । लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारश्च व्यजायत ॥ ५ ॥
गते वर्षसहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षवर्णी । ददर्श यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा कमलेक्षणा ॥ ६ ॥
चिन्तयामासधर्म्मज्ञा ऋतुप्राप्तौचभामिनी । ऋतुकालश्च संप्राप्तोनकश्चिन्मे पतिर्वृतः॥
किंप्राप्तंकिञ्च कर्तव्यंकथं कृत्वासुखंभवेत् । देवयानी प्रसूतासौ वृथाऽहं प्राप्तयौवना॥
यथा तथावृतो भर्तातथैवाहं वृणोमि तम् । राज्ञा पुत्रफलं देयमितिमे निश्चिता मतिः॥
अपीदानीं स धर्मात्मा रहो मे दर्शनं व्रजेत् ॥ ६ ॥

शौनक उवाच ।

अथनिष्क्रम्यराजाऽसौतस्मिन्कालेयदृच्छया ।
अशोकवनिकाभ्यासेशर्मिष्ठांप्राप्यधिष्ठितः ॥ ८ ॥

तमेकंरहसि दृष्ट्वाशर्मिष्ठा चारुहासिनी । प्रत्युद्गम्याञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत्॥

शर्मिष्ठोवाच ।

सोमश्चेन्द्रश्च वायुश्च यमश्च वरुणश्च वा । तववा नाहुषगृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति ॥१२॥
रूपाभिजनशीलैर्हि त्वंराजन्! वेत्थमांसदा। सात्त्वांयाचे प्रसाद्येऽहरन्तुमेहिनराधिप!।

ययातिरुवाच ।

वेद्मित्वांशीलसम्पन्नांदैत्यकन्यामनिन्दिताम् । रूपन्तुतेनपश्यामिसूच्यग्रमपिनिन्दितम्॥
मामब्रवीत्तदा शुक्रो देवयानीं यदावहम् । नेयमाह्वयितव्या ते शयने वार्षपर्वणी ॥ १५॥

शर्मिष्ठोवाच ।

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन्नविवाहकाले ।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ १६ ॥
पृष्टास्तु साक्ष्ये प्रवदन्ति चान्यथा भवन्ति मिथ्यावचना नरेन्द्र ते ।
एकार्थतायान्तु समाहितायां मिथ्यावदन्तं ह्यनृतं हिनस्ति ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच ।

राजाप्रमाणंभूतानांस विनश्येन् मृषावदन् । अर्थकृच्छ्रमपिप्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ।

शर्मिष्ठोवाच ।

समावेतौमतौराजन् ! पतिःसख्याश्चयःपतिः । समं विवाह इत्याहुःसख्यामेऽसिपतिर्यतः ।

ययातिरुवाच ।

दातव्यं याचमानस्य हीतिमेव्रतमाहितम् । त्वञ्च याचसिकामंमां ब्रूहिकिङ्करवाणितत् ।

शर्मिष्ठोवाच ।

अधर्मात्त्राहि मां राजन्! धर्मञ्चप्रतिपादय । त्वत्तोऽपत्यवती लोकेचरेयं धर्ममुत्तमम् ।
त्रयएवाधनाराजन् ! भार्या दासस्तथासुतः । यत्तेसमधिगच्छन्ति यस्यतेतस्यतद्धनम् ।
देवयान्याभुजिष्यास्मिवश्याचतवभार्गवी । सचाहंचत्वयाराजन्! भरणीयांभजस्वमाम् ।

शौनक उवाच ।

एवमुक्तस्तया राजा ताञ्च्यमित्यभिजज्ञवान् । पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मंच प्रतिपादयत् ॥
स समागम्यशर्मिष्ठां यथाकाममवाप्यच । अन्योन्यंचाभिसंपूज्य जग्मतुस्तौयथागतम् ॥
तस्मिन् समागमे सुभ्रुः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । लेभे गर्भं प्रथमतः तस्मान्नृपतिसत्तमात् ।
प्रजज्ञे च ततः काले राज्ञी राजीवलोचना । कुमारं देवगर्भाभमादित्यसमतेजसम् ॥२७

इति श्री मत्स्यपुराणे ययाति चरिते एकत्रिंशोऽध्यायः ।

———

द्वात्रिंशोऽध्यायः

ययातिचरित्रम् ।

शौनक उवाच ।

श्रुत्वाकुमारञ्जातं सा देवयानीशुचिस्मिता । चिन्तयाविष्टदुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रत्यभाषत।
ततोऽभिगम्य शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम् । किमर्थंवृजिनं सुभ्रु! कृतन्ते कामलुब्धया।

शर्मिष्ठोवाच ।

ऋषिरभ्यागतः कश्चिद्धर्मात्मा वेदपारगः । समया तु वरः कामं याचितो धर्म्मसंहतम्।
नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मते! । तस्मादृषेर्ममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥

देवयान्युवाच ।

यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम । अपत्यं यदिते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात्॥
शोभनं भीरु ! सत्यं चेत्कथं स ज्ञायते द्विजः ।
गोत्रनामाभिजनतः श्रोतुमिच्छामि तं द्विजम् ॥ ५ ॥

शर्मिष्ठोवाच ।

ओजसा तेजसा चैव दीप्यमानं रविं यथा । तं दृष्ट्वा मम संप्रष्टुं शक्तिर्नासीच्छुचिस्मृते! ।

शौनक उवाच ।

अन्योन्यमेवमुक्त्वा च संप्रहस्य च ते मिथः । जगाम भार्गवीवेश्म तथ्यमित्यभिजानती॥
ययातिर्देवयान्यासु पुत्रावजनयन् नृपः । यदुञ्चतुर्वसुञ्चैव शक्रविष्णू इवापरौ ॥ ६ ॥
तस्मादेवतु राजर्षेः शर्मिष्ठावार्षपर्वणी । द्रुह्युंचानुञ्च पूरुञ्च त्रीन् कुमारानजीजनत् ॥
ततःकालेचकस्मिंश्चित् देवयानीशुचिस्मिता । ययातिसहिताराजन्! जगाम हरितंवनम्।
ददर्शच तदा तत्र कुमारान्देवरूपिणः । क्रीडमानान् सुविश्रब्धान् विस्मिता चेदमब्रवीत्।
कस्यैते दारका राजन्! देवपुत्रोपमाःशुभाः । वर्चसा रूपतश्चैव दृश्यन्ते सदृशास्तव ॥
एवं पृष्ट्वा तु राजानं कुमारान् पर्यपृच्छत । किं नामधेयगोत्रे वः पुत्रका ब्राह्मणःपिता ॥
विब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुकामास्म्यतो ह्यहम् । ते दर्शयन् प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम्
शर्मिष्ठां मातरञ्चैव तस्या ऊचुः कुमारकाः ।

शौनक उवाच ।

इत्युक्ताः सहितास्तेन राजानमुपचक्रमुः ॥ १६ ॥

नाभ्यनन्दत तान् राजा देवयान्यास्तदान्तिके । रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्तदा ॥

दृष्ट्वा तेषान्तु बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति । बुध्वाच तत्वतो देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् ।

देवयान्युवाच ।

मदधीना सती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम । तमेवासुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि किम्

शर्मिष्ठोवाच ।

यदुक्तमृषिरित्येव तत् सत्यञ्चारुहासिनि !। न्यायतो धर्म्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते ॥

यदा त्वया वृता राजा वृत एव तदा मया । सखिभर्ता हि धर्मेण भर्ता भवति शोभने !

पूज्यासि मम मान्या च श्रेष्ठा ज्येष्ठा च ब्राह्मणी ।

त्वत्तो हि मे पूज्यतरो राजर्षिः किन्न वेत्सि तत् ॥ २२ ॥

शौनक उवाच ।

श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम् । राजन्नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे त्वया कृतम्

सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम् ।

तूर्णं सकाशं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा ॥ २४ ॥

अनुवव्राज सम्भ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन् नृपः । न्यवर्तत न सा चैव क्रोधसंरक्तलोचना ।

अपि ब्रुवन्ती किञ्चिच्च राजानं साश्रुलोचना ।

अचिरादेव संप्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम् ॥ २६ ॥

सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता । अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम् ॥

देवयान्युवाच ।

अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम् । शर्मिष्ठयातिवृत्तास्मि दुहिता वृषपर्वणः ।२८।

त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राज्ञानेन ययातिना । दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ! ब्रवीमि ते

धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वह !। अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत्कथयामि ते ।

शुक्र उवाच ।

धर्मज्ञस्त्वं महाराज ! योऽधर्ममकृथाः प्रियम् । तस्माज्जरात्वामचिराद्धर्षयिष्यतिदुर्जया

ययातिरुवाच ।

ऋतुं यो याच्यमानाया न ददातिपुमान्वृतः । भ्रूणहेत्युच्यतेब्रह्मन् ! स चेह ब्रह्मवादिभिः

ऋतुकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः । नपाति योहिधर्मेण ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः

इत्येतानि समीक्ष्याहङ्कारणानि भृगूद्वह ! ।

अधर्म्मभयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान् ॥३४॥

शुक्र उवाच

न त्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव ! । मिथ्याचरणधर्मेषु चौर्यं भवति नाहुष

शौनक उवाच

क्रोधेनोशनसा शप्तो ययाति नाहुषस्तथा । पूर्वं वयः परित्यज्यजरांसद्योन्वपद्यत ।३६।

ययातिरुवाच

अतृप्तो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्वह ! । प्रसादं कुरु मेब्रह्मन् ! जरैयंमाविशेतमाम् ॥

शुक्र उवाच

नाहं मृषावदाम्येतज्जरांप्राप्तोऽसि भूमिप ! जरान्त्वेतांत्वमन्यस्मिन्संक्रामययदीच्छसि॥

ययातिरुवाच

राज्यभाक् स भवेद् ब्रह्मन् ! पुण्यभाक् कीर्तिभाक् तथा ।

यो दद्यान्मेव वयः शुक्रतद्भवाननुमन्यताम् ॥ ३९ ॥

शुक्र उवाच

संक्रामयिष्यसि जरां यथेष्टं नहुषात्मजः । मामनुध्याय तत्वेन नच पाप मवाप्स्यसि

वयो दास्यति ते पुत्रो यःसराजाभविष्यति । आयुष्मान् कीर्तिमांश्चैवबह्वपत्यस्तथैवच

इति श्री मत्स्यपुराणे ययातिचरिते द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ययात्युपाख्यानम् ।

शौनक उवाच

जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि । पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः ।

ययातिरुवाच

जरावलीचमांतात ! पलितानिच पर्यगुः । काव्यस्योशनसोः शापान्नचतृप्तोस्मियौवने
त्वं यदो ! प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह । यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥३॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु त्वदीयं यौवनं त्वहम् । दत्त्वासंप्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्जरया सह ॥

यदुरुवाच

सितश्मश्रुधरो दीनो जरसा शिथलीकृतः । वलीसन्ततगात्रश्च दुर्दर्शोदुर्वलः कृशः ॥५॥
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवने । सहोपजीविभिश्चैव तज्जरां नाभिकामये ॥६
सन्ति ते वहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ! । जरां गृहीतुंधर्मज्ञ ! पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातोवयःस्वंनप्रयच्छसि । पापान्मातुलसम्बन्धाद्दुष्प्रजातेभविष्यति।
तुर्वसो ! प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह । यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक ! ।९।
पूर्णे वर्ष सहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् । तथैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्जरया सह ॥

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात ! कामभोगप्रणाशिनीम् । बलरूपान्तकरणींवुद्धिमानविनाशिनीम् ।

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातोवयःस्वंनप्रयच्छसि । तस्मात्प्रजासमुच्छेदंतुर्वसोतवयास्यति ।
संकीर्णश्चोरधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च । पिशिताशिषुलोकेषु नूनं राजा भविष्यसि ।१३।
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिरतेषु च । पशुधर्मिषुम्लेच्छेषु पापेषु प्रभविष्यसि ॥१४॥

शौनक उवाच

एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिःसुतमात्मनः । शर्मिष्ठायाःसुतं ज्येष्ठं द्रुह्यं वचनमब्रवीत् ॥

ययातिरुवाच

द्रुह्य ! त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् । जरां वर्षसहस्रं मे यौवनंस्वं प्रयच्छताम् ॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु ते प्रदास्यामि यौवनम् । स्वञ्चादास्यामि भूयोऽहंपाप्मानञ्जरयासह ॥

द्रुह्य उवाच

न राज्यं न रथं नाश्वंजीर्णोभुङ्क्तेनचस्त्रियम् । न रागश्चास्य भवतितज्जरान्तेनकामये ।

ययातिरुवाच

यस्त्वं मेहृदयाज्जातोवयःस्वंनप्रयच्छसि । तद्द्रुह्य ! वैप्रियःकामोनतेसंपत्स्यतेक्वचित्

नौरूपप्लवसञ्चारोयत्र नित्यंभविष्यति । अराज्यभोजशब्दन्त्वंतत्रप्राप्स्यसिसान्वयः ॥

ययातिरुवाच

अनो ! त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह । एकं वर्षसहस्रन्तु चरेयं यौवनेन ते ॥२१॥

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुरिवादत्ते कालेऽन्नमशुचिर्यथा । न जुहोतिचकालेऽग्निं तां जरांनाभिकामये

ययातिरुवाच

यस्त्वं मेहृदयाज्जातोवयःस्वंनप्रयच्छसि । जरादोषस्त्वयोक्तोयस्तस्मात्त्वंप्रतिपद्यसे ।

प्रजाश्चयौवनंप्राप्ताविनश्यन्तिह्यनो ! तव । अग्निप्रस्कन्दनगतस्त्वञ्चाप्येवं भविष्यसि ॥

ययातिरुवाच

पूरो ! त्वं प्रतिपद्यस्वपाप्मानञ्जरयासह । त्वं मे प्रियतरः पुत्रस्त्वंवरीयान्भविष्यसि ॥

जरावली च मांतात ! पलितानिच पर्यगुः । काव्यस्योशनसःशापान्नचतृप्तोस्मियौवने ॥

किञ्चित् कालं चरेयंवैविषयान्वयसा तव । पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रतिदास्यामि यौवनम् ॥

स्वञ्चैव प्रतिपत्स्येऽहंपाप्मानञ्जरया सह । एवमुक्तःप्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा ॥२८॥

यथात्थत्वंमहाराज ! तत्करिष्यामितेवचः । प्रतिपत्स्यामितेराजन् ! पाप्मानंजरयासह ।

गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् । जरयाऽहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ॥

यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथेच्छया ॥३०॥

इति श्री मत्स्यमहापुराणे ययात्युपाख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ययात्युपाख्यानम् ।

शौनक उवाच

एवमुक्तः स राजर्षिःकाव्यंस्मृत्वामहाव्रतम् । संक्रामयामासजरां तदा पुत्रेमहात्मनि ॥
पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः । प्रीतियुक्तोनरश्रेष्ठश्चचार विषयान्प्रियान् ॥२॥
यथा कामं यथोत्साहंयथाकालंयथासुखम् । धर्माविरुद्धान्राजेन्द्रोयथार्हतिसएवहि ॥
देवानतर्पयद्यज्ञैः श्राद्धैरपि पितामहान् । दीनाननुग्रहैरिष्टैःकामैश्च द्विजसत्तमान् ॥४॥
अतिथीनन्नपानैश्च विशश्च प्रतिपालनैः । आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्निग्रहणेन च ॥५॥
धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन् । ययातिः पालयामाससाक्षादिन्द्रइवापरः ॥६॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः ।
अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ।

स सम्प्राप्य शुभान्कामान्तृप्तःखिन्नश्च पार्थिवः । कालंवर्षसहस्रान्तंसस्मारमनुजाधिपः
परिचिन्त्य स कालज्ञः कलाः काष्ठाश्च वीर्यवान् । पूर्णं मत्वाततःकालंपूरुं पुत्रमुवाचह
न जातुकामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवःस्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमितिमत्वाशमं व्रजेत्
यथासुखं यथोत्साहं यथाकाममरिन्दम !। सेविता विषयाः पुत्र ! यौवनेन मया तव ॥
पूरो ! प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम् । राज्यञ्चैवगृहाणेदंत्वंहिमे प्रियकृत्सुतः

शौनक उवाच ।

प्रतिपेदे जरांराजा ययातिर्नाहुषस्तदा । यौवनं प्रति पेदे स पूरुः स्वं पुनरात्मनः ॥१४॥
अभिषेक्तुकामञ्च नृपं पूरुं पुत्रं कनीयसम् । ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥
कथं शुक्रस्य दौहित्रं देवयान्याः सुतं प्रभो !। ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यंपूरोःप्रदास्यसि
ज्येष्ठो यदुस्तवसुतस्तुर्वसुस्तदनन्तरम् । शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्युस्तथानुः पूरुरेव च ॥
कथं ज्येष्ठमतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति । एतत्सम्बोधयामस्त्वां स्वधर्ममनुपालय

ययातिरुवाच ।

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वेश्शृण्वन्तु मे वचः । ज्येष्ठंप्रति यतोराज्यं न देयं मे कथञ्चन ॥
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः । प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ।
मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः । स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्तते पितृमातृषु ॥२१॥
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि वा । द्रुह्येण चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥
पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः । कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम ॥
मम कामः स च कृतःपूरुणा पुत्ररूपिणा । शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम्
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत सराजापृथिवीपतिः । भवन्तः प्रतिजानन्तु पूरुं राज्येऽभिषिच्यताम्

प्रकृतय ऊचुः ।

यः पुत्रोगुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितःसदा । सर्वं सोऽर्हति कल्याणं कनीयानपिसप्रभुः
अर्हः पूरो रिदं राज्यं यः प्रियः प्रियकृत्तव । वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥

शौनक उवाच ।

पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा । अभिषिच्य ततः पूरुं राज्ये स्वसुतमात्मजम् ॥
दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः । पुरात् स निर्ययौराजा ब्राह्मणैस्तापसैःसह
यदोस्तु यादवा जाता तुर्वसोर्यवनाःसुताः । द्रुह्यस्यतुसुताभोजा अनोस्तुम्लेच्छजातयः
पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव !। इदं वर्षसहस्रात्तु राज्यं कुरु कुलागतम्

इति श्रीमत्स्यपुराणे ययात्युपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ययात्युपाख्यानम् ।

शौनक उवाच ।

एवंसनाहुषोराजाययातिःपुत्रमीप्सितम् । राज्येऽभिषिच्य मुदितोवानप्रस्थोऽभवन्मुनिः
उषित्वावनवासं स ब्राह्मणैः सह संश्रितः । फलमूलाशनोदान्तो यथा स्वर्गमितो गतः

स गतः स्वर्गवासन्तु न्यवसन् मुदितःसुखी । कालस्य नातिमहतः पुनः शक्रेण पातितः
विवशः प्रच्युतः स्वर्गादप्राप्तो मेदिनीतलम् । स्थितश्चासीदन्तरीक्षे स तदेति श्रुतं मया
तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतिः । राज्ञावसुमता सार्द्धमष्टकेन च वीर्य्यवान् ॥
प्रतर्दनेन शिबिना समेत्य किल संसदि ॥ ५ ॥

शतानीक उवाच ।

कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः । कथमिन्द्रेण भगवन् ! पातितो मेदिनीतले
सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्वतः । कथ्यमानं त्वया विप्र ! देवर्षिगणसन्निधौ ॥
देवराजसमोह्यासीद्ययातिः पृथिवीपतिः । वर्द्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः ॥८॥
तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तेर्महात्मनः । श्रोतुमिच्छामिदेवेश ! दिविचेहचसर्वशः ॥

शौनक उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तमांकथाम् । दिविचेहचपुण्यार्थां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥
ययातिर्नाहुषो राजा पूर्वं पुत्रं कनीयसम् । राज्येऽभिषिच्य मुदितः प्रवव्राजवनं तदा ॥
अन्तेषु स विनिक्षिप्य पुत्रान्यदुपुरोगमान् । फलमूलाशनोराजावनेऽसौन्यवसच्चिरम् ॥
स जितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन्पितृदेवताः । अग्नींश्चविधिवज्जुह्वन्वानप्रस्थविधानतः ॥
अतिथीन् पूजयन्नित्यंवन्येनहविषाविभुः । शिलोञ्छवृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः ॥
पूर्णं सहस्रं वर्षाणामेवंवृत्तिरभून्नृपः । अम्बुभक्षः सचाब्दांस्त्रीनासीन्नियतवाङ्मनाः ॥१५
ततस्तु वायुभक्षोऽभूत्सम्वत्सरमतन्द्रितः । पञ्चाग्निमध्ये च तपस्तेपे सम्वत्सरं पुनः ॥
एकपादस्थितश्चासीत्षण्मासाननिलाशनः । पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गंजगमावृत्यरोदसी ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे ययातेः स्वर्गगमनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

ययातिशक्रसम्वादवर्णनम् ।

शौनक उवाच ।

स्वर्गतस्तु स राजेन्द्रोन्यवसद्देवसद्मनि । पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्भिर्वसुभिस्तथा ॥
देवलोकात् ब्रह्मलोकं सञ्चरन् पुण्यकृद्वशी । अवसत्पृथिवीपालोदीर्घकालमितिश्रुतिः ॥

स कदाचिन्नृपश्रेष्ठः ययातिः शक्रमागतः ।
कथान्ते तत्र शक्रेण पृष्टः स पृथिवीपतिः ॥३॥

शक्र उवाच

यदा स पूरुस्तव पुत्रेषु राजन्! जरां गृहीत्वा प्रचचार लोके ।
तदा राज्यं सम्प्रदायैव त्वमस्मै त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम् ॥ ४ ॥

ययातिरुवाच

प्रकृत्यनुमते पूरुं राज्ये कृत्वेदमब्रुवम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्येकृत्स्नोऽयंविषयस्तव । मध्येपृथिव्यास्त्वंराजाभ्रातरोन्तेऽधिपास्तव
अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्तथातितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।
अमानुषेभ्यो मानुषश्च प्रधानो विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः ॥६॥
आक्रोश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युमेव तितिक्षति । आक्रोष्टारंनिर्दहतिसुकृतंचास्यविन्दति ॥
नारुन्तुदस्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत ।
ययाऽस्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदे द्रुशतीं पापलौल्याम् ॥८॥
अरुन्तुदं परुषं तीव्रवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान् ।
विन्द्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निवद्धन्निर्ऋतिं वहन्तम् ॥९॥
सद्भिः पुरस्तादभिपूजितःस्यात् सद्भिस्तथा पृष्ठतोरक्षितः स्यात् ।
सदा सतामतिवादांस्तितिक्षेत् सतां वृत्तं पालयन् साधुवृत्तः ॥१०॥
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति वात्र्यहानि ।
परस्य नो मर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥११॥
नास्तीदृशं सम्वननं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । यथा मैत्री च लोकेषुदानञ्चमधुराच वाक् ॥
तस्मात् सान्त्वं सदावाच्यंपरुषंनैवकुत्रचित् । पूज्यान्संपूजयेद्द्यान्नभिशापं कदाचन ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे ययातिशक्रसम्वादवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

ययातिशक्रसम्वादवर्णनम् ।

इन्द्र उवाच ।

सर्वाणि कार्याणि समाप्य राजन्! गृहान् परित्यज्य वनं गतोऽसि ।
तत्त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र! केनापि तुल्यस्तपसा ययाते ॥१॥

ययातिरुवाच ।

नाहं देवमनुष्येषु न गन्धर्वमहर्षिषु । आत्मनस्तपसा तुल्यं कञ्चित् पश्यामिवासव ॥

इन्द्र उवाच ।

यदावमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च पापीयसश्चाविदितप्रभावः ।
तस्माल्लोकाऽह्यन्तवन्तस्तवेमे क्षीणे पुण्ये पतितोऽस्यद्य राजन् ॥३॥

ययातिरुवाच ।

सुरर्षिगन्धर्वनरावमानात् क्षयं गता मे यदि शक्रलोकाः ।
इच्छाम्यहं सुरलोकाद्विहीनः सतां मध्ये पतितुं देवराज ॥४॥

इन्द्र उवाच ।

सतां सकाशे पतितोऽसि राजन्! श्च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धासि भूयः ॥
एवं विदित्वा तु पुनर्ययाति न तेऽवमान्याः सदृशः श्रेयसे च ॥५॥

शौनक उवाच ।

ततः पपातामरराजजुष्टात् पुण्याल्लोकात्पतमानं ययातिम् ।
संप्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्तमुवाच सद्धर्मविधानगोप्ता ॥६॥

अष्टक उवाच ।

कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः स्वतेजसा दीप्यमानो यथाग्निः ।
पतस्युदीर्णोऽम्बुधरप्रकाशः खे खेचराणां प्रवरो यथाऽर्कः ॥७॥

दृष्ट्वा च त्वां सूर्यपथात् पतन्तं वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम् ।
किन्नुस्विदे तत् पततीव सर्वे वितर्कयन्तः परिमोहिताः स्मः ॥८॥
दृष्ट्वा च त्वाधिष्ठितं देवमार्गे शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम् ।
प्रत्युद्गतास्त्वां वयमद्यसर्वे तस्मात्पाते तव जिज्ञासमानाः ॥९॥
न चापित्वां धृष्णवः प्रष्टुमग्रे न च त्वमस्मान् पृच्छसि के वयं स्म ।
तत्त्वां पृच्छामि स्पृहणीय रूपं कस्य त्वं वा किन्निमित्तं त्वमागाः ॥ १० ॥
भयन्तु तेऽव्येतु विषादमोहौ त्यजाशु देवेन्द्रसमानरूप ! ॥
त्वां वर्तमानं हि सतां सकाशे नालं प्रसोढुं बलहापि शक्रः ॥ ११ ॥
सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां सतां सदैवामरराजकल्प ! ॥
ते सङ्गताः स्थावरजङ्गमेशाः प्रतिष्ठितस्त्वं सद्दशेषु सत्सु ॥ १२ ॥
प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः । प्रभुः सूर्य्य प्रकाशाच्च सतां चाभ्यागतः प्रभुः ॥
इति श्री मत्स्यपुराणे ययातिशक्रसम्वादवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

—०—

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

ययात्यष्टकसम्वादवर्णनम् ।

ययातिरुवाच ।

अहं ययातिर्नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सर्वभूतावमानात् ।
प्रभ्रंशितोऽहं सुरसिद्धलोकात् परिच्युतः प्रपताम्यल्पपुण्यः ॥ १ ॥
अहं हि पूर्वो वयसा भवद्भ्यस्तेनाभिवादं भवतां प्रयुञ्जे ।
यो विद्ययातपसा जन्मना वा वृद्धः स वै सम्भवति द्विजानाम् ॥ २ ॥

अष्टक उवाच ।

अवादीस्त्वं वयसास्मि वृद्ध इति वै राजन्नधिकः कथञ्चित् ।
यो वै विद्वांस्तपसा न वृद्धः स एव पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच ।

प्रतिकूलं कर्म्मणां पापमाहुस्तद्वर्तिनां प्रवणं पापलोकम् ।
सन्तो सतो नानुवर्तन्त ते वै यदात्मनैषां प्रतिकूलवादी ॥ ४ ॥
अभूद्धनं मे विपुलं महद्वै विचेष्टमानोऽधिगन्ता तदस्मि ।
एवं प्रधार्य्यात्महिते निविष्टो यो वर्तते सविजानाति धीरः ॥ ५ ॥
नानाभावा बहवो जीवलोके दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः ।
तत्तत् प्राप्य न विहन्येत धीरो दिष्टं बलीय इति मत्वात्मबुध्या ॥ ६ ॥
सुखं हि जन्तुर्यदिवापि दुःखंदैवाधीनं विन्दन्ति नात्मशक्त्या ।
तस्मादिष्टं बलवन्मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत्कदाचित् ॥ ७ ॥
भयेन मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित् सन्तापो मे मानसो नास्ति कश्चित् ।
धाता यथा मां विदधाति लोके ध्रुवं तथाहं भवितेति मत्वा ॥ ८ ॥
संस्वेदजा ह्यण्डजा ह्युद्भिदश्च सरीसृपाः कृमयोऽप्यप्सुमत्स्याः ।
तथाश्मानस्तृणकाष्ठञ्च सर्वं दिष्टक्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ते ॥ ९ ॥
अनित्यतां सुखदुःखस्य बुध्वा कस्मात्सन्तापमष्टकाहं भजेयम् ।
किं कुर्य्यां वै किञ्च कृत्वा न तप्ये तस्मात्सन्तापं वर्जयाम्यप्रमत्तः ॥ १० ॥

शौनक उवाच ।

एवं ब्रुवाणं नृपतिं ययातिमथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छत् ।
मातामहं सर्वगुणोपपन्नं यत्र स्थितं स्वर्गलोके यथावत् ॥ ११ ॥

अष्टक उवाच ।

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्रप्रधानास्त्वया भुक्तायश्च कालं यथा च ।
तन्मे राजन् ब्रूहि सर्वं यथावत् क्षेत्रज्ञवद्भाषसे त्वं हि धर्मम् ॥ १२ ॥

ययातिरुवाच ।

राजाहमासन्त्विह सार्वभौमस्ततो लोकान् महतश्चार्जयं वै ।
तत्राव संवर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान् परमानभ्युपेतः ॥ १३ ॥

ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां सहस्रद्वारां शतयोजनान्ताम् ।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान् परमानभ्युपेतः ॥ १४ ॥
ततो दिव्यमजरं प्राप्यलोकं प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम् ।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान् परमानभ्युपेतः ॥ १५ ॥
देवस्य देवस्य निवेशने च विजित्य लोकान् न्यवसं यथेष्टम् ।
संपूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैस्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥ १६ ॥
तथा वसन्नन्दनकामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
सहाप्सरोभिर्विचरन् पुण्यगन्धान् पश्यन्नगान् पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥१७॥
तत्र स्थितं मां देवसुखेषु सक्तं कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम् ।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥ १८ ॥
एतावन्मे विदितं राजसिंह ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात् क्षीणपुण्यः ।
वाचोऽश्रौषञ्चान्तरिक्षे सुराणामनुक्रोशाच्छोचतां मां नरेन्द्र ॥१९॥
अकस्माद्वैक्षीणपुण्यो ययातिः पतत्यसौ पुण्यकृन् पुण्यकीर्त्तिः ।
तानब्रुवं पतमानस्तदाहं सतां मध्ये निपतेयं कथन्नु ॥ २० ॥
तैराख्यातां भवतां यज्ञभूमिं समीक्ष्य चैनामहमागतोऽस्मि ।
हविर्गन्धैर्दर्शितां यज्ञभूमिं धूमापाङ्गं परिगृह्य प्रतीताम् ॥ २१ ॥
इति श्री मत्स्यपुराणे ययात्यष्टकसम्वादवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥

ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

ययात्यष्टकसम्वादवर्णनम् ।

अष्टक उवाच ।

यदा वसन्नन्दने कामरूपे संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्त्तयुगप्रधान हित्वा तद्वै वसुधामन्वपद्यः ॥ १॥

ययातिरुवाच ।

ज्ञाति सुहृत् स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यन्त्यजन्ति सद्यः खेचरा देवसंघाः ॥२॥

अष्टक उवाच ।

कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्ति संमुह्यते मेऽत्रमनोऽतिमात्रम् ।
किं विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतो मे ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच ।

इमं भौमं नरकन्ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव ! सर्वे ।
ते कङ्कगोमायुपलाशनार्थं क्षितौ विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति ॥४॥
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयञ्च कर्म्म ।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतत् भूयश्चेदानीं वद किन्ते वदामि ॥ ५ ॥

अष्टक उवाच ।

यदा तु तांस्ते वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति त्वत्तो भीमं नरकमहं शृणोमि ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच ।

ऊर्ध्वं देहात्कर्म्मणो जृम्भमाणात् व्यक्तं पृथिव्यामनुसञ्चरन्ति ।
इमं भौमं नरकन्ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ॥ ७ ॥
षष्टिं सहस्राणि पतन्तिव्योम्नि तथाशीतिञ्चैव तु वत्सराणाम् ।
तान्वै तुदन्ते प्रपतन्तः प्रयातान् भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ॥८॥

अष्टक उवाच ।

यदेतांस्ते संपततस्तुदन्ति भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथं भूगर्भभूता भवन्ति ॥ ९ ॥

ययातिरुवाच ।

असृग्रेतःपुष्परसानुयुक्तं अन्वेति सद्यः पुरुषेण सृष्टम् ।
तद्वै तस्याराज आपद्यते न स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥ १० ॥

वनस्पतीनोषधींश्चाविशन्ति अपो वायुं पृथिवीञ्चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पदं द्विपदञ्चापि सर्वं एवं भूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ११ ॥

अष्टक उवाच ।

अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भे उताहोस्वित् स्वेन कामेन याति ।
आपद्यमानो नरयोनिमेतामाचक्ष्व मे संशयात् पृच्छतस्त्वम् ॥ १२ ॥
शरीरदेहादिसमुच्छ्रयश्च चक्षुःश्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।
एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्टः क्षेत्रज्ञं त्वां मन्यमाना हि सर्वे ॥१३॥

ययातिरुवाच ।

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतःपुष्परसानुयुक्तम् ।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम् ॥ १४ ॥
स जायमानोऽथ गृहीतगात्रः संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः ।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥१५॥
घ्राणेन गन्धं जिह्वायाथो रसञ्च त्वचा स्पर्शमनसा वेदभावम् ।
इत्यष्टके होपचितं हि विद्धि महात्मनः प्राणभृतः शरीरे ॥१६॥

अष्टक उवाच ।

यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वापि निकृष्यते वा ।
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनात्मानं चेतयते पुरस्तात् ॥१७॥

ययातिरुवाच ।

हित्वा सोऽसून् सुप्तवन्निष्ठितत्वात् पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतञ्च ।
अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥१८॥
पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति ।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापान्न मे विवक्षास्ति महानुभाव ॥१९॥
चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च तथा भूता गर्भभूता भवन्ति ।
आख्यातमेतन्निखिलं हि सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥२०॥

अष्टक उवाच ।

किंस्वित् कृत्वा लभते तात संज्ञां मर्त्यः श्रेष्ठां तपसा विद्यया वा ।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वंयथावच्छुभान् लोकान् येन गच्छेत् क्रमेण ॥२१॥

ययातिरुवाच ।

तपश्च दानञ्च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा ।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुसांम् ॥२२॥
सर्वाणि चैतानि यथोदितानि तपःप्रधानान्यभिमर्शकेन ।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥२३॥
अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परस्य ।
तस्यान्तवन्तः पुरुषस्य लोकानचास्य तद्ब्रह्मफलं ददाति ॥२४॥
चत्वारि कर्माणि भयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुतमानमौनं मानेनाधीतमुतमानयज्ञः ॥ २५ ॥
न मान्यमानो मुदमाददीत न सन्तापं प्राप्नुयाच्चावमानात् ।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवःसाधुवुद्धिं लभन्ते ॥ २६ ॥
इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम् । इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानिनित्यशः
येनाश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनीषिणो मानसे मानयुक्तम् ।
तन्निश्रेयस्तेन संयोगमेत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ययात्यष्टकसम्वादवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

चत्वारिंशोऽध्यायः

ययात्यष्टकसम्वादवर्णनम् ।

अष्टक उवाच ।

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान् कथं भिक्षुः कथमाचार्य्यकर्म्मा ।
वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो वहून्यस्मिन् संप्रति वेदयन्ति ॥ १ ॥

ययातिरुवाच ।

आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यतः पूर्वोत्थायी चरमञ्चाथशायी ।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिद्ध्यति ब्रह्मचारी ॥ २ ॥
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन् भोजयेच्च ।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी ॥ ३ ॥
स्ववीर्य्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी ।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्या वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ॥ ४ ॥
अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अनोकशायी लघु लिप्समानश्चरन् देशानेकाम्वरः स भिक्षुः ॥ ५ ॥
रात्र्या यया चाभिरताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च ।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ॥ ६ ॥
दशैव पूर्वान् दश चापरांस्तु ज्ञातींस्तथात्मानमथैकविंशम् ।
अरण्यवासी सुकृतं दधाति मुक्त्वात्वरण्ये स्वशरीरधातून् ॥ ७ ॥

अष्टक उवाच ।

कतिस्विद्देवमुनयो मौनानि कतिचाप्युत । भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम्

ययातिरुवाच ।

अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः । ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिःस्याज्जनाधिप

अष्टक उवाच ।

कथंस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः । ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः ॥

ययातिरुवाच ।

न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत् । तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः
अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः । कौपीनाच्छादनं यावत्तावदिच्छेच्च चीवरम् ॥
यावत्प्राणाधिसन्धानं तावदिच्छेच्चभोजनम् । तदास्यवसतोग्रामेऽरण्यंभवति पृष्ठतः ॥
यस्तुकामान्परित्यज्यत्यक्तकर्माजितेन्द्रियः । आतिष्ठेतमुनिर्मौनंसलोकेसिद्धिमाप्नुयात्

धौतदन्तं कृत्तनखं सदास्नातमलङ्कृतम्। असितं सितकर्मस्थं कस्तन्नार्चितुमर्हति ।१५।
तपसाकर्शितःक्षामःक्षीणमांसास्थिशोणितः। यदाभवतिनिर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः
अथलोकमिमञ्जित्वा लोकञ्चापि जयेत्परम्। आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः
अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १७ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ययात्यष्टकसम्वादवर्णनं नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

ययात्यष्टकसम्वादवर्णनम्।

अष्टक उवाच।

कतरस्त्वेतयोःपूर्वंदेवानामेतिसात्म्यताम्। उभयोर्धावतो राजन्! सूर्य्याचन्द्रमसोरिव

ययातिरुवाच।

अनिकेतगृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः। ग्राम एव चरन् भिक्षुस्तयोः पूर्वतरङ्गतः ॥ २ ॥
अप्राप्यं दीर्घमायुश्च यः प्राप्तो विकृतिं चरेत्। तप्येत यदितत्कृत्वा चरेत्सोग्रं तपस्ततः
यद्वै नृशंसन्तदपथ्यमाहुर्यः सेवते धर्ममनर्थबुद्धिः।
अस्वावनीशः स तथैव राजन् तदार्जवं ससमाधिस्तदार्यम् ॥ ४ ॥

अष्टक उवाच।

केनाद्य त्वन्तु प्रहितोऽसि राजन् युवा स्रग्वी दर्शनीयः सुवर्चाः।
कुत आगतः कतमस्यां दिशि त्वमुताहोस्वित् पार्थिवस्थानमस्ति ॥ ५ ॥

ययातिरुवाच।

इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः प्रवेष्टुमुर्वीं गगनाद्विप्रकीर्णः।
उक्त्वाऽहं वः प्रपतिष्याम्यनन्तरन्त्वरन्त्वमी ब्रह्मणो लोकपा ये ॥ ६ ॥
सतां सकाशे तु वृतः प्रपातस्ते सङ्गता गुणवन्तस्तु सर्वे।
शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैष प्रतिष्यता भूमितलं नरेन्द्र! ॥ ७ ॥

अष्टक उवाच ।

पृच्छामि त्वां प्रपतन्तं प्रपातं यदि लोकाः पार्थिव सन्ति मेऽत्र ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच ।

यावत्पृथिव्यां विहितं गवाश्वं सहारण्यैः पशुभिः पक्षिभिश्च ।
तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै तथा विजानीहि नरेन्द्रसिंह ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच ।

तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोका दिवि राजेन्द्र सन्ति ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रममित्रहासि ॥ १० ॥

ययातिरुवाच ।

नास्मद्विधो ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य ! ।
यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्यस्तथा ददे पूर्वमहं नरेन्द्रम् ॥ ११ ॥
नाब्राह्मणः कृपणो जातु जीवेद्यद्यपि स्यात् ब्राह्मणी वीरपत्नी ।
सोऽहं यदेवाकृतपूर्वञ्चरेयं विवित्समानः किमु तत्र साधुः ॥ १२ ॥

प्रतर्दन उवाच ।

पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रुताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १३ ॥

ययातिरुवाच ।

सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र ! अप्येकैकं सप्तशतान्यहानि ।
मधुच्युतो घृतवन्तो विशोकास्तेनान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥ १४ ॥

प्रतर्दन उवाच ।

तांस्ते ददामि पतमानस्य राजन् ! ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः ॥ १५ ॥

यथातिरुवाच ।

न तुल्यतेजाः सुकृतं हि कामये योगक्षेमं पार्थिवात् पार्थिवः सन् ।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वान् चरेन्नृशंसं हि न जातु राजा ॥ १६ ॥
धर्म्यं मार्गं चिन्तयानो यशस्यं कुर्य्यात्तपो धर्ममवेक्षमाणः ।
न मद्विधो धर्मबुद्धिर्हि राजा ह्येवं कुर्य्यात् कृपणं मां यथात्थ ॥ १७ ॥
कुर्य्यामपूर्वं न कृतं यदन्यैर्विवित्समानः किमु तत्र साधुः ।
ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं नृपोत्तमो वसुमानब्रवीत्तम् ॥ १८ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे ययात्यष्टकसंवादे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

ययात्यष्टकसम्वादकथनम् ।

वसुमानुवाच ।

पृच्छाम्यहं वसुमानौषदश्विर्यद्यस्ति लोको दिवि मह्यं नरेन्द्र ! ।
यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन् क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १ ॥

ययातिरुवाच ।

यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च यत्तेजसा तपते भानुमांश्च ।
लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै ते त्वां भवन्तं प्रतिपालयन्ति ॥ २ ॥

वसुमानुवाच ।

तांस्ते ददामि पतमाप्रपातं ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
क्रीणीष्वैनां स्तृणकेनापि राजन् प्रतिग्रहस्ते यदि सम्यक् प्रदुष्टः ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच ।

न मिथ्याहं विक्रियं वै स्मरामि मयाकृतं शिशुभावेऽपि राजन् ।
कुर्य्याञ्चैवाकृतपूर्वमन्यैर्विवित्समानो वसुमन्न साधु ॥ ४ ॥

वसुमानुवाच ।

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन् ! मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते ।

नाहन्तान् वै प्रतिगन्ता नरेंद्र सर्वे लोकास्तावका वै भवन्तु ॥ ५ ॥

शिविरुवाच ।

पृच्छामि त्वां शिविरौशीनरोऽहं ममापि लोका यदि सन्ति तात !

यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच ।

न त्वं वाचा हृदयेनापि राजन् ! परीप्समानो मावमंस्था नरेन्द्र ।

तेनानन्ता दिवि लोकाःस्थिता वै विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः ॥ ७ ॥

शिविरुवाच ।

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन् मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते ।

न चाहन्तान् प्रतिपद्य दत्त्वा यत्र त्वं तात गन्तासि लोके ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच ।

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभावस्ते चाप्यनन्ता नरदेवलोकाः ।

तथाद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते तस्माच्छिवेनाभिनन्दामि वाचम् ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच ।

न चेदेकैकशो राजन् ! लोकान्नःप्रतिनन्दसि । सर्वेप्रदायतान्लोकान्गन्तारोनरकं वयम्

ययातिरुवाच ।

यदर्हास्तद्वदध्वं वः सन्तः सत्यादिदर्शिनः । अहन्तु नाभिगृह्णामि यत्कृतं न मया पुरा ॥

अलिप्समानस्य तु मे यदुक्तं न तत्तथास्तीह नरेन्द्रसिंह ! ।

अस्य प्रदानस्य यदेव युक्तं तस्यैव चानन्तफलं भविष्यम् ॥ १२ ॥

अष्टक उवाच ।

कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः । उच्चैःसन्तःप्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखाइव

ययातिरुवाच ।

भवतां मम चैवैते रथा भान्ति हिरण्मयाः । आरुह्यैतेषु गन्तव्यं भवद्भिश्च मया सह ॥

अष्टक उवाच ।

आतिष्ठस्व रथं राजन् विक्रमस्व विहायसा । वयमप्यनुयास्यामोयदाकालो भविष्यति

यया‍तिरुवाच।

सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सह स्वर्गो जितो यतः। एष वो विरजाः पन्था दृश्यते देवसद्मगः

शौनक उवाच।

तेऽभिरुह्य रथं सर्वे प्रयाता नृपते नृपाः। आक्रमन्तो दिवं भान्ति धर्मेणावृत्य रोदसी

अष्टक उवाच।

अहं मन्ये पूर्वमेकोऽभिगन्ता सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा।
कस्मादेवं शिबिरौशीनरोऽयमेकोऽत्ययात् सर्ववेगेन वाहान्॥ १८॥

ययातिरुवाच।

अददाद्देवयानाय यावद्वित्तमनिन्दितः। उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्मात् श्रेष्ठो हि वः शिबिः

दानं शौचं सत्यमथो ह्यहिंसा ह्रीः श्रीस्तितीक्षा समतानृशंस्यम्।
राज्यन्त्येतान्यथ सर्वाणि राज्ञि शिबौ स्थितान्यप्रतिमे सुबुद्ध्या।
एवं वृत्तं ह्री निषेवो बिभर्ति तस्माच्छिबिरभिगन्ता रथेन ॥ २०॥

शौनक उवाच।

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छन् मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम्।
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं कुतश्च कश्चासि कथं त्वमागाः।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता लोके त्वदन्यो ब्राह्मणः क्षत्रियो वा ॥२१॥

ययातिरुवाच।

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रो पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम्।
गुह्यं मन्त्रं मा केभ्यो ब्रवीमि मातामहो भवतां सुप्रकाशः॥ २२॥
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय स्तृद्धां महीमददं ब्राह्मणेभ्यः।
मेध्यानश्वान्नेकशस्तान् सुरूपान् तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥२३॥
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः पूर्णामिमामखिलान्नैः प्रशस्ताम्।
गोभिः सुवर्णैश्च धनैश्च मुख्यैरश्वाः सनागाः शतशस्त्वर्बुदानि ॥२४॥
सत्येन मे द्यौश्च वसुन्धरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु।

न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति ॥२५॥
साध्वष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं प्रतर्दनं वसुमन्तं शिविञ्च ।
सर्वे देवा मुनयश्च लोकाः सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम् ॥२६॥
यो नः स्वर्गजितं सर्वं यथा वृत्तं निवेदयेत् । अनसूयुर्द्विजाग्रेभ्यः सभजेत्र सलोकताम् ॥

शौनक उवाच ।

एवं राजन् स महात्मा ययातिः स्वदौहित्रैस्तारितो मित्रवर्यैः ।
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम् ॥२८॥
एवं सर्वं विस्तरतो यथावदाख्यातं ते चरितन्नाहुषस्य ।
वंशो यस्य प्रथितः कौरवे यो यस्मिन् जातस्त्वं मनुजेन्द्रकल्पः ॥२९॥

इति श्री मत्स्यपुराणे ययात्यष्टकसंवादे ययातिचरितसमाप्तिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

यदुवंशवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

इत्येतच्छौनकाद्राजा शतानीकोनिशम्य तु । विस्मितः परयाप्रीत्यापूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥
पूजयामास नृपतिर्विधिवच्चाथ शौनकम् । रत्नैर्गोभिःसुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा ॥
प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद्राज्ञा प्रहितं धनम् । दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत ॥

ऋषय ऊचुः ।

ययातिवंशमिच्छामः श्रोतुं विस्तरतो वद । यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितः ॥

सूत उवाच ।

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः । विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥५
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः । महारथा महेष्वासानामतस्तान्निबोधत ॥६॥
सहस्रजिरथोज्येष्ठःक्रोष्टुर्नीलोऽन्तिकोलघुः । सहस्रजेस्तुदायादोशतजिर्नामपार्थिवः ॥

शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्त्तयः । हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥८॥
हैहयस्य तु दायादो धर्म्मनेत्रः प्रतिश्रुतः । धर्म्मनेत्रस्यकुन्तिस्तुसंहतस्तस्य चात्मजः ॥
संहतस्य तु दायादो महिष्मान्नामपार्थिवः । आसीन्महिष्मतःपुत्रोरुद्रश्रेण्यःप्रतापवान् ।
वाराणस्यामभूद्राजा कथितं पूर्वमेव तु । रुद्रश्रेणस्य पुत्रोऽभूद्दुर्दमो नाम पार्थिवः ॥
दुर्दमस्यसुतोधीमान्कनकोनामवीर्य्यवान् । कनकस्यतुदायदाश्चत्वारोलोकविश्रुताः ॥
कृतवीर्य्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च । कृतोजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्य्यात्तुसोर्जुनः ॥
जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः । वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥१४॥
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम् । तस्मै दत्तावरास्तेनचत्वारः पुरुषोत्तम ॥
पूर्वं बाहुसहस्रन्तु स वव्रे राजसत्तमः । अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापिनिवारणम् ॥१६
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् । संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद्भवेत् ॥
तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता । समोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ॥
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः । रथो ध्वजश्च संजज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः ॥१६
दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा द्वीपेषु वै तदा । निरर्गला निवृत्तानि श्रूयन्ते तस्यधीमतः ॥२०
सर्वे यज्ञा महाराज्ञस्तस्यासन्भूरिदक्षिणाः । सर्वेकाञ्चनयूपास्तेसर्वाः काञ्चनवेदिकाः ॥
सर्वे देवैः समं प्राप्तैर्विमानस्थैरलङ्कृताः । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥
तस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वोनारदस्तथा । कार्तवीर्य्यस्यराजर्षेर्महिमानंनिरीक्ष्य सः ॥
न नूनं कार्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्तिक्षत्रियाः । यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्चविक्रमेणश्रुतेन च ॥
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चक्रीशरासनी । रथीद्वीपान्यनुचरन्योगीपश्यतितस्करान् ।
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः । स सर्वरत्नसम्पूर्णश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥

स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव हि ।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत् ॥२७॥

योऽसौ बाहु सहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा । भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैवभास्करः ॥
एष नागं मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः । कर्कोटकसुतंजित्वापुर्य्यां तत्रन्यवेशयत् ॥
एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै । क्रीडन्नेव सुखोद्भिन्नः प्रतिस्रोतोमहीपतिः ॥

ललता क्रीड़ता तेन प्रतिस्रग्दाममालिनी । ऊर्मि भ्रुकुटिसन्त्रासाच्चकिताभ्येतिनर्म्मदा ॥
एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णवः । करोत्युद्धतवेगान्तु नर्म्मदांप्रावृडुद्धताम् ॥३२
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाने महोदधौ । भवन्त्यतीव निश्चेष्टाःपातालस्था महासुराः॥
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम् । मारुताविद्धफेनौघमावर्त्ताक्षिप्तदुःसहम् ॥३४॥
करोत्यालोडयन्नेव दोःसहस्रेण सागरम् । मन्दारक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किताः॥
तदा निश्चलमूर्द्धानो भवन्ति च महोरगाः । सायाह्ने कदलीखण्डानिर्वातस्तिमिताइव ॥
एवं बध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्तंपञ्चभिःशरैः । लङ्कायांमोहयित्वातुसबलंरावणंबलात् ॥
निर्जित्यबध्वाचानीयमाहिष्मत्यांस्वबन्धच । ततोगत्वापुलस्त्यस्तुअर्जुनंसंप्रसादयत् ॥
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनेहसान्त्वितम् । तस्यबाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वनः॥
युगान्ताभ्रसहस्रस्य आस्फोटस्वशनेरिव । अहोबत विधेर्वीर्यंभार्गवोऽयं यदाच्छिनत् ॥
तद्वै सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा । यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ॥४१
यस्माद्वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय । तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्योहरिष्यति ॥४२
छित्वा बाहुसहस्रन्ते प्रथमन्तरसा बली । तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वांसवधिष्यतिभार्गवः ॥

सूत उवाच ।

तस्य रामस्तदा त्वासीन् मृत्युः शापेन धीमता ।
वरश्चैवन्तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४४ ॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः ।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो महाबलाः ॥४५॥

शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च । जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशाम्पते ॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः । तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः ॥
तेषांपञ्चकुलाख्याताःहैहयानांमहात्मनाम् । वीतिहोत्राश्चशार्याताभोजाश्चावन्तयस्तथा
कुण्डिकेराश्चविक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैवच । वीतिहोत्रसुतश्चापिआनर्त्तोनामवीर्य्यवान्
दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः ॥ ४६ ॥
सद्भावेन महाराज ! प्रजा धर्मेण पालयन् । कार्तवीर्य्यार्जुनो नामराजा बाहुसहस्रवान् ॥

येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही । यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः ॥
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टञ्च लभते पुनः । कार्त्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः
यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥५२॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे यदुवंशवर्णने कार्तवीर्याख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

यदुवंशवर्णने क्रोष्टुवंशवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

किमर्थं तद्वनं दग्धमापवस्य महात्मनः । कार्तवीर्येण विक्रम्य सूत ! प्रब्रूहि तत्वतः ॥१
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम् । सकथंरक्षिताभूत्वा अदहत्तत्तपोवनम् ॥

सूत उवाच ।

आदित्यो द्विजरूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः । तृप्तिमेकां प्रयच्छस्वआदित्योऽहंनरेश्वर ॥३

राजोवाच ।

भगवन् ! केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर । कीदृशं भोजनंदद्मिश्रुत्वातु विदधाम्यहम् ॥

आदित्य उवाच ।

स्थावरन्देहि मे सर्वमाहारन्ददतां वर । तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव ॥५

कार्तवीर्य उवाच ।

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसाचबलेनच । निर्दग्धुंतपतांश्रेष्ठ ! तेन त्वांप्रणमाम्यहम् ॥

आदित्य उवाच ।

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतोमुखान् ।
ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥ ७ ॥

आविष्टाममतेजोभिःशोषयिष्यन्तिस्थावरान्। शुष्कान्भस्मीकरिष्यन्तितेनतृप्तिर्नराधिप

सूत उवाच ।

ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत । ततो ददाह संप्राप्तान्स्थावरान्सर्वमेवच ॥

ग्रामांस्तथाश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च ।
तथा वनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥ १० ॥

एवं प्राचींसमदहत् ततःसर्वांश्चपक्षिणः । निर्वृक्षा निस्तृणाभूमिर्हताघोरेण तेजसा ॥
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः । दश वर्षसहस्राणि तत्रास्तेसमहानृषिः ॥
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठंस्तपोधनः । सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः ॥१३॥
क्रोधाच्छशाप राजर्षिं कीर्तितं वो यथा मया । क्रोष्टोः शृणुतराजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम् ॥

यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः ।
क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथः ॥ १५ ॥

वृजनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहोनाममहाबलः । स्वाहपुत्रोऽभवद्राजन्! रुषङ्गुर्वदतांवरः ॥
स तुप्रसूतिमिच्छन् वैरुषङ्गुःसौम्यमात्मजम् । चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्रःकर्मभिरन्वितः ॥
अथ चैत्ररथिर्वीरो जज्ञे विपुलदक्षिणः । शशविन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥१८॥

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन्पुराऽभवत् ।
शशविन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ॥ १९ ॥

धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् । तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबलाः ॥
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः । पृथुकीर्त्तिः पृथुमना राजानः शशविन्दवः ।२१।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पृथुश्रवसमुत्तमम् । अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत् ॥
उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षन्पृथिवीमिमाम् । आजहाराश्वमेधानांशतमुत्तमधार्मिकः ॥
तितिक्षुरभवत् पुत्र औशनः शत्रुतापनः । मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तमः ॥२४॥
आसीन्मरुत्ततनयो वीरः कम्बलबर्हिषः । पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिषः ॥
निहत्य रुक्मकवचःपरान् कवचधारिणः । धन्विनोविविधैर्बाणैरवाप्यपृथिवीमिमाम् ॥
अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम् । यज्ञेतु रुक्मकवचःकदाचित्परवीरहा ॥
जज्ञिरे पञ्चपुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः । रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः ॥
परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता । रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ॥२९॥
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्यात्ज्यामघस्तुतदाश्रमे । प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्चब्राह्मणेनावबोधितः ॥

जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी। नर्म्मदां नृपएकाकी केवलं वृत्तिकामतः ।३१।
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत्। ज्यामघस्याभवद्भार्या चैत्रापरिणतासती ॥
अपुत्रो न्यवसद्राजा भार्यामन्यान्नविन्दत। तस्यासीद्विजयो युद्धेतत्रकन्यामवाप्यसः ॥
भार्यामुवाच सन्त्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते। एवमुक्ताब्रवीदेनंकस्यचेयंस्नुषेति च ॥

राजोवाच

यस्तेजनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति। तस्मात्सातपसोग्रेणकन्यायाःसम्प्रसूयत ॥
पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती। राजपुत्र्यांचविद्वान्सस्नुषायांक्रथकैशिकौ ॥
लोमपादं तृतीयन्तु पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ ३६ ॥
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान्रणविशारदान्। लोमपादान्मनुःपुत्रोज्ञातिस्तस्यतुचात्मजः
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाःस्मृताः।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ ३८ ॥
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्। धृष्टस्यपुत्रोधर्मात्मानिर्वृतिःपरवीरहा ॥
तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना सतुविदूरथः। दशार्हस्तस्यवैपुत्रोव्योमस्तस्यचवैस्मृतः ॥
दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते ॥ ४० ॥
जीमूतपुत्रो विमलस्तस्यभीमरथःसुतः। सुतो भीमरथस्यासीत् स्मृतोनवरथःकिल ॥
तस्य चासीद्दृढरथः शकुनिस्तस्यचात्मजः। तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोबभूवह ॥
देवक्षत्रोऽभवद्राजा दैवरातिर्महायशाः। देवगर्भसमो जज्ञे देवनक्षत्रनन्दनः ॥ ४३ ॥
मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरवसस्तथा। आसीत् पुरवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ॥
जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रसेन्यांपुरुद्वतः। ऐक्ष्वाकीचाभवद्भार्याजन्तोस्तस्यामजायत ॥
सात्वतः सत्वसंयुक्तःसात्वतांकीर्तिवर्द्धनः। इमां विसृष्टिंविज्ञायज्यामघस्यमहात्मनः ॥
प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ॥ ४६ ॥
सात्वतान्सत्वसम्पन्नान्कौशल्यासुषुवेसुतान्। भजिनंभजमानन्तुदिव्यंदेवावृधंनृप! ॥
अन्धकञ्च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम्! तेषांतु सर्गाश्चत्वारोविस्तरेणैवतच्छृणु ॥
भजमानस्यसृञ्जय्यांबाह्यकायाञ्च बाह्यकाः। सृञ्जयस्य सुतेद्वेतुबाह्यकास्तुतदाभवन् ॥

तस्यभार्येभगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून् सुतान् । निमिंश्चक्रमिलंश्चैववृष्णिंपरपुरञ्जयम् ॥
ते बाह्यकायां सृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे ॥ ५० ॥
जज्ञे देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्द्धनः । अपुत्रस्त्वभवद्राजा चचार परमन्तपः ॥
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन् ॥ ५१ ॥
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत् । तदोपस्पर्शनात्तस्य चकार प्रियमापगा ॥
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मैसानिम्नगोत्तमा । चिन्तयाथपरीतात्माजगामाथविनिश्चयम् ॥
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः । जायेत तस्माद्द्याहं भवाम्यथसहस्रशः ॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः । ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः ॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा । पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ॥
अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीतिपरिश्रुतम् । गुणान् देवावृधस्यापिकीर्त्तयन्तो महात्मनः ॥
यथैवं शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात् । बभ्रुः श्रेष्ठोमनुष्याणां देवैर्देवावृधःसमः ॥
षष्टिश्च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः । एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप ! ॥
यज्वा दान पतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः । रूपवान्सुमहातेजाः श्रुतवीर्य्यधरस्तथा ।६०।
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् । कुकुरं भजमानश्च शशिं कम्बलबर्हिषम् ॥
कुकुरस्यसुतोवृष्णिवृष्णेस्तुतनयोधृतिः । कपोतरोमातस्याथतैत्तिरिस्तस्यचात्मजः ॥
तस्यासीत्तनुजापुत्रो सखाविद्वान्नलःकिल । ख्यायतेतस्यनाम्नाचनन्दनोदरदुन्दुभिः ॥
तस्मिन्प्रवितते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः । अश्वमेधं च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः ॥६४॥
तस्यमध्येतिरात्रस्यसभामध्यात्समुत्थितः । अतस्तुविद्वान्कर्मज्ञोयज्वादातापुनर्वसुः ॥
तस्यासीत् पुत्रमिथुनं बभूवाविजितं किल । आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातंमतिमतांवर ! ॥
इमांश्चोदाहरन्त्यत्रश्लोकान्प्रतितमाहुकम् । सोपासङ्गानुकर्षाणांसध्वजानांवरूथिनाम् ।
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु । नासत्यवादी नातेजा नायज्वा नासहस्रदः ॥
नाशुचिर्नाप्यविद्वान् हियोभोजेष्वभ्यजायत । आहुकस्यभृतिं प्राप्ताइत्येतद्वैतदुच्यते ॥
आहुकश्चाप्यवन्तीषुस्वसारंचाहुकीं ददौ । आहुकात्काश्यदुहिता द्वौ पुत्रौसमसूयत ॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ । देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥७१॥

देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः। तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ।७२।
देवकी श्रुतदेवी च यशोदा च यशोधरा। श्रीदेवी सत्यदेवी च सुतापी चेतिसप्तमी॥
नवोग्रसेनस्य सुताः कंशस्तेषांतु पूर्वजः। न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कःशङ्कुश्च भूयसः॥
सुतन्तूराष्ट्रपालश्चयुद्धमुष्टिः सुमुष्टिदः। तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसाकंसवती तथा॥
सुतलन्तूराष्ट्रपाली च कङ्का चेतिवराङ्गनाः। उग्रसेनःसहापत्यो व्याख्यातःकुकुरोद्भवः॥
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः। राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत्॥
राजाधिदेवस्य सुतौ जज्ञाते देवसंमितौ। नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः॥
शोणाश्वस्यसुताः पञ्चशूरारणविशारदाः। शमीच वेदशर्मा च निकुन्तःशक्रशत्रुजित्
शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रःप्रतिक्षत्रस्य चात्मजः। प्रतिक्षेत्रः सुतोभोजोहृदीकस्तस्य चात्मजः
हृदीकस्याभवन् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः। कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यमः॥
देवार्हश्चैव नाभश्च भीषणश्च महाबलः। अजातो वनजातश्च कनीयककरम्भकौ॥८२॥
देवार्हस्य सुतोविद्वान्जज्ञेकम्बलबर्हिषः। असमञ्जाः सुतस्तस्य तमोजास्तस्यचात्मजः
अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्त्तयः। सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धकामताः॥
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्त्तयतिनित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः

इति श्रीमत्स्यपुराणे सोमवंशे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

स्यमन्तकमणिसंक्षिप्तचरित्रम्।

सूत उवाच

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्येबभूवतुः। गान्धारी जनयामास सुमित्रंमित्रनन्दनम्
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रं शिबिंचैव पञ्चमं कृतलक्षणम्॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापितुद्वौ सुतौ। प्रसेनश्चमहावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ॥
स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यां सर्वरत्नानांराजावै सोऽभवन्मणिः॥

हृदिकृत्वातुबहुशो मणिन्तमभियाचितम् । गोविन्दोऽपिनतं लेभेशक्तोऽपिनजहारसः ॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः । यथाशब्दं स शुश्राव बिले सत्वेन पूरिते ॥
ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ऋक्षमैक्षत । ऋक्षः प्रसेनञ्च तथा ऋक्षं चैवप्रसेनजित् ॥
हत्वा ऋक्षः प्रसेनन्तु ततस्तं मणिमाददात् । अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा ।८।
प्रसेनन्तु हतं ज्ञात्वागोविन्दःपरिशङ्कितः । गोविन्देन हतोव्यक्तंप्रसेनोमणिकारणात् ॥
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः । तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह ॥
हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु ॥ १० ॥
अथ दीर्घेण कालेनमृगयांनिर्गतःपुनः । यदृच्छयाच गोविन्दोबिलस्याभ्यासमागमत् ॥
तं दृष्ट्वा तुमहाशब्दंसचक्रेऋक्षराट्बली । शब्दं श्रुत्वातु गोविन्दःखड्गपाणिःप्रविश्यसः ॥
अपश्यज्जाम्ववन्तं तं ऋक्षराजं महाबलम् ॥१२॥
ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा । जाम्ववन्तं स जग्राह क्रोध संरक्त लोचनः ॥
तुष्टावैनं तदा ऋक्षः कर्मभिर्वैष्णवैः प्रभुम् । ततस्तुष्टस्तु भगवान् वरेणैनमरोचयत् ॥

जाम्बवानुवाच

इच्छे चक्र प्रहारेणत्वत्तोऽहं मरणंप्रभो ! । कन्याचेयंममशुभा भर्त्तारंत्वामवाप्नुयात् ॥
योऽयं मणिः प्रसेनन्तु हत्वा प्राप्तो मया प्रयो ॥१५॥
ततः सजाम्ववन्तं तं हत्वाचक्रेणवै प्रभुः । कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत् ॥
ददौ सत्राजितायैनं सर्वसात्वदसंसदि । तेन मिथ्यापवादेन सन्तप्ता ये जनार्दने ॥१७॥
ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन् । अस्माकन्तु मतिर्ह्यासीत्प्रसेनस्तुत्वयाहतः ॥
कैकेयस्य सुता भार्यादशसत्राजितः शुभाः । तासूत्पन्नाःसुतास्तस्य सर्वलोकेषुविश्रुताः
ख्यातिमन्तो महावीर्य्या भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥ १९ ॥
अथ व्रतवती तस्मात् भङ्गकारात्तु पूर्वजात् । सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रःकमललोचनाः॥
सत्यभामा वरास्त्रीणां व्रतिनीचदृढव्रता । तथा पद्मावतीचैवताश्च कृष्णायसोऽददात् ॥
अनमित्रात् शनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ।
सत्यवांस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः ॥२२॥

सत्यवान्युयुधानस्तुशिनेर्नप्ताप्रतापवान् । असङ्गोयुयुधानस्यद्युम्निस्तस्यात्मजोऽभवत्॥
द्युम्नेर्युगन्धरःपुत्रइतिशैन्याः प्रकीर्त्तिताः । अनमित्रान्वयोह्येषव्याख्यातोवृष्णिवंशजः ॥
अनमित्रस्य संजज्ञे पृथ्व्यां वीरोयुधाजितः । अन्यौतु तनयो वीरौ वृषभः क्षत्रएव च॥
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत । जयन्तस्तु जयन्त्यान्तुपुत्रःसमभवच्छुभः॥
सदा यज्ञोऽति वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः । अक्रूरःसुषुवे तस्मात्सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ॥
रत्ना कन्याचशैब्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान् । पुत्रानुत्पादयामास एकादशमहाबलान् ॥
उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य्यएवच । सिरी ततो महापक्षः शत्रुघ्नोवारिमेजयः ॥
धर्म्मभृद्धर्म्मवर्माणौ धृष्टमानस्तथैव च । सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायांजज्ञिरे च ते ।३०।
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्द्धनौ । देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसन्निभौ ॥ ३१ ॥
अश्विन्यां च ततःपुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वत्थामा सुवाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥
वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेवच । अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा ।३३।
इमांमिथ्याभिशस्तियोवेदकृष्णादपोहिताम् । नसमिथ्याभिशापेनअभिशाप्योऽथकेनचित्
इति श्रीमत्स्यपुराणे सोमवंशवर्णने स्यमन्तकाख्यानं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कृष्णोत्पत्तिवर्णनम् ।

सूत उवाच

ऐक्ष्वाकी सुषुवे शूरं ख्यातमद्भुतमीदुषम् । पौरुषाज्जज्ञिरे शूरात् भोजायांपुत्रकादश ॥
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः । देवमार्गस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः ॥२॥
अनाधृष्टिः शिनिश्चैव नन्दश्चैव ससृञ्जयः । श्यामः शमीकः संयूपःपञ्चास्यवराङ्गनाः
श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवीश्रुतश्रवाः । राजाधि देवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ॥४
कृतस्य तु श्रुता देवी सुग्रहं सुषुवे सुतम् । कैकय्यां श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सोऽनुव्रतोनृपः
श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत । वार्षिको धर्म्मशारीरः स बभूवारिमर्दनः ॥६॥

अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजेसुतांददौ । एवंकुन्तीसमाख्यातावसुदेवस्वसा पृथा ॥
वसुदेवेन सा दत्ता पाण्डोर्भार्याह्यनिन्दिता । पाण्डोरर्थेनसाजज्ञे देवपुत्रान्महारथान् ॥
धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः । इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव शक्रतुल्य पराक्रमः ॥६॥
माद्रवत्यान्तु जनितावश्विभ्यामिति शुश्रुमः । नकुलः सहदेवश्च रूपशीलगुणान्वितौ ॥
रोहिणी पौरवी सा तु ख्यातमानकदुन्दुभेः । लेभेज्येष्ठंसुतंरामंसारणञ्चसुतं प्रियम् ॥
दुर्दमं दमनं सुभ्रं पिण्डारक महाहनू । चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्य्यौ तु रोहिण्यांजज्ञिरेतदा
देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि । उदासी भद्रसेनश्च ऋषिवासस्तथैव च ।
षष्ठो भद्र विदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ॥१३॥
प्रथमाया अमावास्या वार्षिकी तु भविष्यति । तस्यां जज्ञे महाबाहुःपूर्वंकृष्णःप्रजापतिः
अनुजात्व भवत् कृष्णात् सुभद्राभद्रभाषिणी । देवक्यान्तु महातेजा जज्ञेशूरोमहायशाः
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वहः । उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता ।
एकां कन्याञ्च सुभगाङ्कंसस्तामभ्यघातयत् ॥१६॥
विजयं रोचमानञ्च वर्द्धमानन्तु देवलम् । एते सर्वे महात्मानोह्युपदेव्याः प्रजज्ञिरे ॥१७॥
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत । वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दको नामनामतः ॥
सप्तमं देवकी पुत्रं मदनं सुषुवे नृप । गवेषणं महाभागं संग्रामेष्व पराजितम् ॥१६॥
श्रद्धा देव्या विहारे तु वने हि विचरन्पुरा । वैश्यायामदधात्शौरिःपुत्रंकौशिकमग्रजम्
सुतनूरथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ । पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ वलौ ॥
जरानाम निषादोऽभूत् प्रथमः स धनुर्धरः । सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्वौ बभूवतुः ॥
देवभागसुतश्चापि नाम्नाऽसावुद्धवः स्मृतः । पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवः समुद्भवम् ॥
ऐक्ष्वाक्यलभतापत्य अनाधृष्टेर्यशस्विनी । निर्धूतसत्वं शत्रुघ्नं श्राद्धस्तस्मादजायत ॥
करूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टः सुतन्ददौ । सुचन्द्रन्तु महाभागं वीर्यवन्तं महावलम् ॥
जाम्बवत्याः सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ । चारुदेष्णश्च साम्बश्चवीर्यवन्तौ महाबलौ
तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ । शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रान्ताःसुमहाबलाः
विराजश्च धनुश्चैव श्याम्यश्च सृञ्जयस्तथा ॥२७॥

अनपत्योऽभवच्छ्यामःशमीकस्तुवनंययौ । जुगुप्समानोभोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान्
कृष्णास्य जन्माभ्युदयं यःकीर्तयतिनित्यशः । शृणोति मानवोनित्यंसर्वपापैः प्रमुच्यते
इति श्रीमत्स्यपुराणे सोमवंशे कृष्णोत्पत्तिवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कृष्णसन्तानवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः । विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते ॥
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः । चतुर्बाहुस्तदा जातोदिव्यरूपोज्वलन्श्रिया ॥
श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा दिव्यैश्च लक्षणैः । उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो ॥३॥
भीतोऽहं देव ! कंसस्य ततस्त्वेतद्ब्रवीमि ते । ममपुत्राहतास्तेनज्येष्ठास्तेभीमविक्रमाः
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः । अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥५
दत्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत् । अतस्तु सर्वकल्याणंयादवानांभविष्यति॥

मुनय ऊचुः ।

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी । नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता ॥
यो विष्णुं जनयामास यश्च तातेत्यभाषत । या गर्भं जनयामास याचैनं त्वभ्यवर्द्धयत्॥

सूत उवाच ।

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता ।
ब्रह्मणःकश्यपस्त्वांशःपृथिव्यास्त्वदितिस्तथा ॥ ६ ॥

अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत् । ते तया काङ्क्षितानित्यमजातस्यमहात्मनः
सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषींतनुम् । मोहयन्सर्वभूतानियोगात्मा योगमायया
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः । कर्तुं धर्म्मस्य संस्थानंअसुराणांप्रणाशनम्

रुक्मिणीसत्यभामाचसत्यानाग्नजितीतथा। सुभामाचतथाशैव्यागान्धारीलक्ष्मणा तथा
मित्रविन्दा चकालिन्दीदेवीजाम्बवतीतथा। सुशीलाचतथामाद्रीकौशल्याविजयातथा।
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोड़श ॥१४॥
रुक्मिणी जनयामास पुत्रं रणविशारदम्। चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नञ्च महाबलम् ॥१५
सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च। परशुञ्चारु गुप्तञ्च चारु भद्रं सुचारुकम्।
चारुहासं कनिष्ठञ्च कन्यां चारुमतीं तथा ॥१६॥
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भ्रमरतेक्षणः। रोहितोदीप्तिमांश्चैव ताम्रबक्षो जलन्धमः॥
चतस्रोजज्ञिरेतेषांस्वसारस्तुयवीयसीः। जाम्बवत्याःसुतोजज्ञेसाम्बःसमिति शोभनः॥
मित्रवान्मित्रविन्दश्चमित्रविन्दावसङ्गना। मित्रबाहुःसुनीथश्चनाग्नजित्याःप्रजाहिसा॥
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत। अशीतिश्च सहस्राणिवासुदेव सुतास्तथा॥
लक्षमेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणाञ्च द्विजोत्तमाः ॥२०॥
उपासङ्गस्य तु सुतौ वज्रः संक्षिप्त एव च। भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषण सुतावुभौ॥
प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः। अनिरुद्धो रणे रुद्धः जज्ञेऽस्यमृगकेतनः॥
काश्या सुपार्श्वतनयासाम्बाल्लेभेतरस्विनः। सत्यप्रकृतयोदेवाःपञ्चवीराःप्रकीर्तिताः॥
तिस्रः कोट्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम्।
षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः।
देवांशाः सर्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः ॥२४॥
देवासुरे हता ये च असुरा ये महाबलाः। इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्॥
तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले। कुलानां शतमेकञ्च यादवानां महात्मनाम्
सर्वमेतत् कुलं यावद्वर्तते वैष्णवे कुले। विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।
निर्देशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः ॥२७॥

ऋषय ऊचुः।

सप्तर्षयः कुवेरश्च यक्षो माणिचरस्तथा। शालकिर्नारदश्चैव सिद्धोधन्वन्तरिस्तथा॥
आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सहदैवतैः। किमर्थं सङ्गशोभूताःस्मृताःसम्भूतयः कति॥

भविष्याः कतिचैवान्ये प्रादुर्भावा महात्मनः । ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते ॥
यदर्थमिह सम्भूतो विष्णुर्वृष्ण्यन्धकोत्तमः । पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नःप्रब्रूहि पृच्छताम् ॥

सूत उवाच ।

त्यज्य दिव्यान्तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते । युगेत्वथ परावृत्ते कालेप्रशिथिलेप्रभुः ॥
देवासुरविमर्देषु जायते हरिरीश्वरः । हिरण्यकशिपौ दैत्ये त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति ॥
बलिनाधिष्ठिते चैव पुरा लोकत्रये क्रमात् । सख्यमासीत्परमकं देवानामसुरैः सह ॥३४
युगाख्यासुरसंपूर्णंह्यासीदत्याकुलंजगत् । निदेशस्थायिनश्चापितयोर्देवासुराः समम् ॥
मृधो बलिविमर्दाय संप्रवृद्धः सुदारुणः । देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरोमहान् ॥
कर्तुं धर्म्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह । भृगोः शापनिमित्तन्तु देवासुरकृते तदा ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं देवासुरकृते व्यापारं प्राप्तवान् स्वतः । देवासुरंयथावृत्तन्तन्नःप्रब्रूहि पृच्छताम् ॥

सूत उवाच ।

तेषां दायनिमित्तं ते संग्रामास्तुसुदारुणाः । वराहाद्यादशद्वौचशण्डामर्कान्तरे स्मृताः ॥
नामतस्तु समासेन शृणुतैषां विवक्षतः । प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ॥४०

तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमन्थनः ।
संग्रामः पञ्चमश्चैव सञ्जातस्तारकामयः ॥ ४१ ॥

षष्ठोह्याडीवकाख्यस्तु सप्तमस्त्रैपुरस्तथा । अन्धकाख्योऽष्टमस्तेषांनवमोवृत्रघातकः ॥
धात्रश्च दशमश्चैव ततोहालाहलःस्मृतः । प्रथितो द्वादशस्तेषां घोरःकोलाहलस्तथा ॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नारसिंहेन पातितः । वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे पुरा ॥४४॥
हिरण्याक्षो हतोद्वन्द्वे प्रतिघाते तुदैवतैः । दंष्ट्रयातु वराहेण समुद्रस्तु द्विधाकृतः ॥४५॥
प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने । विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः ॥
इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये । अशक्नुवन् स देवानां सर्वं सोढुं सदैवतम् ॥
निहताः दानवाः सर्वेत्रैलोक्येत्र्यम्बकेणतु । असुराश्च पिशाचाश्च दानवाश्चान्धकाहते ॥
हता देवमनुष्ये स्वे पितृभिश्चैव सर्वशः । संपृक्तो दानवैर्वृत्रो घोरो हालाहले हतः ॥

तदा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निवर्तितः । हतोध्वजे महेन्द्रेण मायाच्छन्नस्तु योगवित् ॥
ध्वजलक्षणमाविश्य विप्रचित्तिः सहानुजः ॥ ५० ॥
दैत्यांश्च दानवांश्चैव संयतान् किलसंयुतान् । जयन् कोलाहलेसर्वान्देवैःपरवृतोवृषा ॥
यज्ञस्यावभृथे दृश्यौ शण्डामर्कौ तु दैवतैः ॥ ५१ ॥
एते देवासुरे वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु । देवासुरक्षयकराः प्रजानान्तु हिताय वै ।५२।
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ । द्विसप्तति तथाऽन्यानि नियुतान्यधिकानिच
अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यताङ्गतः ॥ ५३ ॥
पर्यायेण तु राजाऽभूद्बलिवर्षायुतं पुनः । षष्टिर्वर्षसहस्राणि नियुतानि च विंशतिः ।५४
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूवह । तावत्कालन्तु प्रह्लादो निवृत्तोह्यसुरैःसह ॥
इन्द्रास्त्रयस्ते विज्ञेया असुराणां महौजसः । दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं पुनः ॥
त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रेणानुपाल्यते । असपत्नमिदंसर्वमासीद्दशयुगं पुनः ॥ ५७ ॥
प्रह्लादस्य हते तस्मिन् त्रैलोक्येकालपर्ययात् । पर्यायेणतु संप्राप्तेत्रैलोक्यंपाकशासने॥
ततोऽसुरान् परित्यज्य शुक्रो देवा न गच्छत ॥ ५८ ॥
यज्ञे देवानथगतान्दितिजाःकाव्यमाह्वयन् । किंत्वंनो मिषतां राज्यंत्यक्त्वायज्ञंपुनर्गतः ॥
स्थातुंनशक्नुमोह्यत्रप्रविशामोरसातलम् । एवमुक्तोऽब्रवीद्दैत्यान्विषण्णान्सान्त्वयन्गिरा
माभैष्ट धारयिष्यामितेजसास्वेनवोऽसुराः । मन्त्राश्चैवोषधींश्चैवरसांवसुचयत्परम् ॥
कृत्स्नानि मयि तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै । तत्सर्वंवःप्रदास्यामि युष्मदर्थेधृतामया ॥
ततो देवास्तु तान् दृष्ट्वा वृतान्काव्येनधीमता । संमन्त्रयन्तिदेवावै संविग्नास्तुजिघृक्षया
काव्योह्येषइदंसर्वंव्यावर्तयति नो वलात् । साधुगच्छामहेतूर्णं यावन्नाध्यापयिष्यति ॥
प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे । ततो देवास्तु संरब्धा दानवानुपसृत्यह ॥
ततस्ते बध्यमानस्तु काव्यमेवाभिदुद्रुवुः । ततः काव्यस्तुतान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् ॥
रक्षां काव्येनसंहृत्यदेवास्तेऽप्यसुरार्दिताः । काव्यं दृष्ट्वास्थितंदेवानिःशङ्कमसुराजहुः ॥
ततः काव्योऽनुचिन्त्याथब्राह्मणोवचनंहितम् । तानुवाचततःकाव्यःपूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥
त्रैलोक्यं वो हृतं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः । बलिर्बद्धो हतोजम्भो निहतश्चविरोचनः

महासुरा द्वादशसु संग्रामेषु सुरैर्हताः । तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठं निहता वः प्रधानतः ॥७०॥

किञ्चिच्छिष्टास्तु यूयं वै युद्धं मास्त्विति मे मतम् ।

नीतयो वोऽभिधास्यामि तिष्ठत्वं कालपर्ययात् ॥७१॥

यास्याम्यहंमहादेवंमन्त्रार्थंविजयावहम् । अप्रतीपांस्ततोमन्त्रान्देवात्प्राप्यमहेश्वरात् ॥

युध्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम् ॥७३॥

ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्तदासुराः । न्यस्तशस्त्रा वयंसर्वे निःसन्नाहा रथैर्विना ॥

वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने । प्रह्लादस्य वचःश्रुत्वासत्याभिव्याहृतन्तुतत् ॥

ततो देवान्यवर्तन्त विज्वरामुदिताश्च ते । न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषुविनिवृत्तास्तदासुराः ॥

ततस्तानब्रवीत् काव्यः कञ्चित्कालमुपास्यथ ।

निरुत्सिक्तास्तपोयुक्ताः कालं कार्यार्थसाधकम् ॥७६॥

पितुर्मर्माश्रमस्था वै मां प्रतीक्षथ दानवाः । तत्संदिश्यासुरान्काव्योमहादेवंप्रपद्यत ॥

शुक्र उवाच

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ! ये न सन्ति वृहस्पतौ । पराभवाय देवानामसुराणांजयाय च॥

एवमुक्तोऽब्रवीद् देवोव्रतं त्वञ्चर भार्गव ! । पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः ॥

यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि ॥७९॥

तथेतिसमनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनन्दनः । पादौ संस्पृश्य देवस्य वाढमित्यब्रवीद्वचः ॥

व्रतं चराम्यहं देव ! त्वयाऽऽदिष्टोऽद्य वै प्रभो ! ॥८०॥

ततोऽनुसृष्टो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् । तदातस्मिन्गतेशुक्र ह्यसुराणांहितायवै ॥

मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ॥८१॥

तद्बुद्ध्वानीतिपूर्वंतुराज्येन्यस्तेतदासुरैः । अस्मिंश्छिद्रेतदामर्षाद्देवास्तान्समुपाद्रवन् ॥

दंशिताः सायुधाः सर्वे वृहस्पतिपुरःसराः ॥८३॥

दृष्ट्वाऽसुरगणादेवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः । उत्पेतुःसहसातेवैसन्त्रस्तास्तान्वचोऽब्रुवन् ॥

न्यस्ते शस्त्रभये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते ।

दत्त्वा भवन्तो ह्यभयं संप्राप्ता नो जिघांसया ॥ ८५ ॥

अनाचार्यावयंदेवा! स्त्यक्तशस्त्रास्त्ववस्थिताः। चीरकृष्णाजिनधरानिष्क्रियानिष्परिग्रहाः
रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथञ्चन। अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम्।
यापयामःकृच्छ्रमिदं यावदभ्येति नो गुरुः। निवृत्तेच तथाशुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः

एवमुक्त्वा सुराऽन्योन्यं शरणं काव्यमातरम्।
प्रापद्यन्त ततो भीतास्तेभ्योऽदादभयन्तु सा॥ ८६॥

न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं भयन्त्यजत। दानवाः! मत्सन्निधौ वर्ततां को न भीर्भवितुमर्हति
तयाचाभ्युपपन्नांस्तान् दृष्ट्वा देवास्ततोऽसुरान्। अभिजग्मुःप्रसह्यैतानविचार्यबलाबलम्।
ततस्तान् बाध्यमानांस्तुदेवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा। देवी क्रुद्धाऽब्रवीद्देवाननिन्द्रान्वःकरोम्यहम्।
संभृत्य सर्वसम्भारानिन्द्रं साभ्यचरत्तदा। तस्तम्भ देवी बलवद्योगयुक्ता तपोधना॥
ततस्तं स्तम्भितं दृष्ट्वा इन्द्रं देवाश्च मूकवत्। प्राद्रवन्त ततोभीता इन्द्रं दृष्ट्वा वशीकृतम्।
गतेषु सुरसङ्घेषु शक्रं विष्णुरभाषत। मां त्वं प्रविश भद्रंते नयिष्येत्वां सुरोत्तम!॥
एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरन्दरः। विष्णुना रक्षितंदृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवीत्।

एषा त्वां विष्णुना सार्धन्दहामि मघवन्! बलात्।
मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम्॥ ६७॥

दयाऽभिभूतौ तौ देवाविन्द्रविष्णू बभूवतुः। कथं मुच्येऽवसहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत॥

इन्द्रोऽब्रवीज्जहि ह्येनां यावन्नौ न दहेत् प्रभो!।
विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहञ्जहि मा चिरम्॥ ६६॥

ततः समीक्ष्य विष्णुस्तां स्त्रीवधे कृच्छ्रमास्थितः। अभिध्याय ततश्चक्रमापदुद्धरणेतुतत्।

ततस्तु त्वरया युक्तःशीघ्रकारी भयान्वितः।
ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः क्रूरन्देव्याश्चिकीर्षितम्॥
क्रुद्धः स्वमस्त्रमादाय शिरश्चिच्छेद वै भिया॥ १०१॥

तं दृष्ट्वा स्त्रीवधंघोरं चुक्रोध भृगुरीश्वरः। ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधेतदा।
यस्मात्ते जानतो धर्ममवध्या स्त्री निषूदिता। तस्मात्त्वं सप्तकृत्वेह मानुषेषूपपत्स्यसि।
ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनःपुनः। लोकस्यच हितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥१०४

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरस्त्वरन् । समानीयततः कायमसौ गृह्येदमब्रवीत् ।
एषात्वंविष्णुनादेवि!हतासञ्जीवयाम्यहम् । ततस्तांयोज्यशिरसाअभिजीवेतिसोऽब्रवीत्
यदि कृत्स्नोमया धर्मोज्ञायते चरितोऽपिवा । तेन सत्येन जीवस्वयदि सत्यं वदाम्यहम्
ततस्तांप्रोक्ष्यशीताभिरद्भिर्जीवेतिसोऽब्रवीत् । ततोऽभिव्याहृतेतस्यदेवीसञ्जीवितातदा ॥
ततस्तां सर्वभूतानिदृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव । साधु साध्विति चक्रुस्तेवचसा सर्वतोदिशम्
एवं प्रत्याहृता तेन देवीसा भृगुणातदा । मिषतां देवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत् ॥११०
असंभ्रान्तेन भृगुणा पत्नी सञ्जीविता पुनः । दृष्ट्वा चेन्द्रो नालभतशर्म काव्यभयात् पुनः ।
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥ १११ ॥
सञ्चिन्त्यसमतिमान्वाक्यंस्तांकन्यांपाकशासनः । एषकाव्योह्यमित्रायव्रतञ्चरतिदारुणम् ॥
तेनाहं व्याकुलः पुत्रि ! कृतो मतिमताभृशम् ॥ ११२ ॥
गच्छ संसाधयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः । तैस्तैर्मनोऽनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥११३
काव्यमाराधयस्वैनं यथा तुष्येत स द्विजः । गच्छ त्वं तस्य दत्तासि प्रयत्नंकुरुमत्कृते
एवमुक्त्वा जयन्ती सावचः संगृह्य वै पितुः । अगच्छद्यत्र घोरं स तप आरभ्यतिष्ठति
तंदृष्ट्वा तु पिबन्तंसा कणधूममवाङ्मुखम् । यक्षेण पात्यमानञ्चकुण्डधारेण पातितम् ॥
दृष्ट्वाच तं पात्यमानं देवी काव्यमवस्थितम् । स्वरूपध्यानशाम्यन्तं दुर्बलं भूतिमास्थिदम् ।
पित्रा यथोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा ॥ ११७ ॥
गीर्भिश्चैवानुकूलाभिःस्तुवतीवल्गुभाषिणी । गात्रसंवाहनैःकालेसेवमानात्वचःसुखैः ॥
व्रतचर्य्यानुकूलाभिरुवास बहुलाः समाः ॥ ११८ ॥
पूर्णे धूमव्रते तस्मिन् घोरे वर्षसहस्रके । वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतो भवस्तदा ॥

महादेव उवाच ।

एतद्व्रतं त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् । तस्माद्वै तपसा बुद्ध्या श्रुतेनच बलेन च ॥
तेजसाचसुरान्सर्वांस्त्वमेकोऽभिभविष्यसि । यच्चाभिलषितंब्रह्मन्! विद्यतेभृगुनन्दन! ।
प्रपत्स्यसेतुतत्सर्वंनानुवाच्यंतुकस्यचित् । सर्वाभिभावी तेनत्वं भविष्यसिद्विजोत्तम!
एतान्दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय भवः पुनः । प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वञ्च वै ददौ ॥

एतान् लब्ध्वा वरान् काव्यःसम्प्रहृष्टतनूरुहः । हर्षात् प्रादुर्भवन्तन्तु दिव्यस्तोत्रंमहेश्वरम्
तथा तिर्यक्स्थितश्चैव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥ १२४ ॥

शुक्र उवाच ।

नमोऽस्तुशितिकण्ठाय कनिष्ठायसुवर्चसे । लेलिहानाय काव्याय वत्सरायान्धसःपते
कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च । संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥१२६॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय बहुरूपाय वेधसे । वसुरेताय रुद्राय तपसे चित्रवाससे ॥१२७॥
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्यै रोहिताय च । कवये राजवृक्षाय तक्षकक्रीडनाय च ॥
सहस्रशिरसे चैव सहस्राक्षाय मीढुषे । वराय भव्यरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥१२६॥
गिरिशाय नमोऽर्काय बलिने आज्यपाय च । सुतृप्ताय सुवस्त्राय धन्विने भार्गवाय च
निषङ्गिणे च ताराय स्वक्षाय क्षपणाय च । ताम्रायचैव भीमाय उग्राय च शिवाय च
महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च । हिरण्याय वरिष्ठाय ज्येष्ठाय मध्यमाय च ॥
वास्तोष्पते पिनाकाय मुक्तये केवलाय च । मृगव्याधाय दक्षाय स्थाणवे भाषणाय च
बहुनेत्राय धुर्य्याय त्रिनेत्रायेश्वराय च । कपालिने च वीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च ॥
बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च । पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ॥
दुन्दुभ्यायैकपादाय अजाय बुद्धिदाय च । आरण्याण गृहस्थाय यतये ब्रह्मचारिणे ॥
साङ्ख्याय चैव योगाय व्यापिने दीक्षिताय च । अनाहताय शर्व्वाय भव्येशाय यमायच
रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये । चतुष्पदाय मेध्याय रक्षिणे शीघ्रगाय च ॥
शिखण्डिने करालाय दंष्ट्रिणे विश्ववेधसे । भास्वराय प्रतीताय सुदीप्ताय सुमेधसे ॥
क्रूरायाविकृतायैव भीषणाय शिवाय च । सौम्याय चैव मुख्याय धार्मिकाय शुभायच
अवध्यायामृतायैव नित्याय शाश्वताय च । व्यापृताय विशिष्टाय भरताय च साक्षिणे
क्षेम्याय सहमानाय सत्याय चामृताय च । कर्त्रे परशवे चैव शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥
सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च । शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे ॥
पिशिताशाय सर्व्वाय मेघाय विद्युताय च । व्यावृत्ताय वरिष्ठाय भरितायतरक्षवे ॥
त्रिपुरघ्नाय तीर्थायावक्राय रोमशाय च । तिग्मायुधाय व्याख्याय सुसिद्धाय पुलस्तये

रोचमानाय चण्डाय स्फीताय ऋषभायच। व्रतिने युञ्जमानाय शुचये चोर्ध्वरेतसे ॥
असुरघ्नाय स्वाघ्नाय मृत्युघ्ने यज्ञियाय च। कृशानवे प्रचेताय वह्नये निर्मलाय च १४७
रक्षोघ्नाय पशुघ्नायाविघ्नाय श्वसिताय च। विभ्रान्ताय महान्ताय अत्यन्तं दुर्गमाय च।
कृष्णाय च जयन्ताय लोकानामीश्वराय च। अनाश्रिताय वेध्याय समत्वाधिष्ठितायच
हिरण्यबाहवे चैव व्याप्ताय च महाय च। सुकर्म्मणे प्रसह्याय चेशानाय सुचक्षुषे ॥
क्षिप्रेषवे सदश्वाय शिवाय मोक्षदाय च। कपिलाय पिशङ्गाय महादेवाय धीमते ॥
महाकायाय दीप्ताय रोदनाय सहाय च। दृढधन्विने कवचिने रथिने च वरूथिने ॥
भृगुनाथाय शुक्राय गह्वरिष्ठाय वेधसे। अमोघाय प्रशान्ताय सुमेधाय वृषाय च ॥
नमोऽस्तु तुभ्यं भगवन्! विश्वाय कृत्तिवाससे। पशूनां पतये तुभ्यं भूतनांपतये नमः
प्रणवे ऋग्यजुः साम्नेस्वाहायचस्वधाय च। वषट्कारात्मने चैव तुभ्यं मन्त्रात्मनेनमः
त्वष्ट्रे धात्रे तथा कर्त्रे चक्षुःश्रोत्रमयाय च। भूतभव्यभवेशाय तुभ्यं कर्मात्मने नमः ॥
वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्यसुराय च। विषाय मारुतायैव तुभ्यं देवात्मने नमः॥
अग्नीषोमविधिज्ञाय पशुमन्त्रौषधाय च। स्वयम्भुवे ह्यजायैव अपूर्वप्रथमाय च ॥
प्रजानां पतये चैव तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ॥१५८॥
आत्मेशायात्मवश्याय सर्वेशातिशयाय च। सर्वभूताङ्गभूतायतुभ्यं भूतात्मने नमः १५६
निर्गुणाय गुणज्ञाय व्याकृतायामृताय च। निरुपाख्याय मित्राय तुभ्यं सांख्यात्मने नमः
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय दिव्याय च महाय च। जनस्तपाय सत्यायतुभ्यं लोकात्मनेनमः
अव्यक्ताय च महते भूतादेरिन्द्रियाय च। आत्मज्ञाय विशेषाय तुभ्यं सर्व्वात्मने नमः।
नित्याय चात्मलिङ्गाय सूक्ष्मायैवेतराय च। बुद्धयाय विभवे चैव तुभ्यं मोक्षात्मने नमः
नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु। सन्त्यातेषु महाद्येषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते।
नमःस्तोत्रे मयाह्यस्मिन् यदिनव्याहृतं भवेत्। मद्भक्त इति ब्रह्मण्य! तत्सर्वंक्षन्तुमर्हसि

सूत उवाच।

एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम्। प्रह्वोऽभिप्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाग्यतोऽभवत्
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भवः। निकामं दर्शनं दत्वातत्रैवान्तरधीयत

ततः सोऽन्तर्हितेतस्मिन्देवेशेऽनुचरीं तदा । तिष्ठन्ति पार्श्वतो दृष्ट्वाजयन्तीमिदमब्रवीत्
कस्य त्वं सुभगे! कावादुःखितेमयि दुःखिता । महता तपसा युक्ता किमर्थंमांनिषेवसे
अनया संस्तुतो भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च । स्नेहेन चैव सुश्रोणि! प्रीतोऽस्मिवरवर्णिनी!

किमिच्छसि वरारोहे! कस्ते कामः समृद्ध्यताम् ।
तत्ते सम्पादयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुष्करः ॥१७१॥

एवमुक्ताऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि । चिकीर्षितं हि ब्रह्मन् ! त्वंहि वेत्थ यथातथम् ॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा । मया सहत्वं सुश्रोणि! दशवर्षाणिभामिनि।
देवि! चेन्दीवरश्यामे! वरार्हे! वामलोचने! । एवंवृणोषिकामंत्वंमत्तोवैवल्गुभाषिणि।
एवं भवतु गच्छामो गृहान्नोमत्तकाशिनि!। ततः स्वगृहमागत्य जयन्त्याःपाणिमुद्वहन्
तया सहावसद्देव्या दशवर्षाणि भार्गवः । अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः ॥
कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः । अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ।
यदा गता न पश्यन्ति मायया संवृतंगुरुम् ।लक्षणंतस्य तद्बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।
वृहस्पतिस्तु संरुद्धं काव्यं ज्ञात्वावरेणतु । तुष्ट्यर्थं दशवर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया।
बुद्ध्वातदन्तरंसोऽपि दैत्यानामिन्द्रनोदितः । काव्यस्यरूपमास्थाय असुरान्समुपाह्वयत्
ततस्तानागतान् दृष्ट्वा वृहस्पतिरुवाचह । स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहंवो हितायच ॥
अहंवोऽध्यापयिष्यामि विद्याः प्राप्तास्तुयामया । ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे॥
पूर्णे काव्यस्तदा तस्मिन् समये दशवार्षिके । समयान्ते देवयानी तदोत्पन्नाइतिश्रुतिः

बुद्धिं चक्रे ततः सोऽथ याज्यानां प्रत्यवेक्षणे ॥ १८३ ॥
देवि ! गच्छाम्यहं द्रष्टुं मम याज्यान् शुचिस्मिते ! ।
विभ्रान्तवीक्षिते ! साध्वि ! त्रिवर्णायतलोचने ॥१८४॥

एवमुक्ताब्रवीदेनं भजभक्तान् महाव्रत ! । एष धर्मः सतां ब्रह्मन्! न धर्मं लोपयामिते ।

ततो गत्वा सुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता ।
वञ्चितान् काव्यरूपेण ततः काव्योऽब्रवीत्तु तान् ॥ १८६ ॥

काव्यं मां वो विजानीध्वन्तोषितो गिरिशो विभुः ।
वञ्चिता बत यूयं वै सर्वे शृणुत दानवाः ! ॥ १८७ ॥
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणन्तं संभ्रान्तास्ते तदाऽभवन् ।
प्रेक्षन्तस्तावुभौ तत्र स्थितासीनौ सुविस्मिताः ॥ १८८ ॥

सम्प्रमूढास्ततः सर्वे न प्राबद्धन्त किञ्चन । अब्रवीत्सम्प्रमूढेषु काव्यस्तानसुरांस्तदा ॥
आचार्योवोह्यहंकाव्योदेवाचार्योऽयमङ्गिराः । अनुगच्छतमांदैत्यास्त्यजतैनंवृहस्पतिम् ॥
इत्युक्ता ह्यसुरास्तेन तावुभौ समवेक्ष्यच । यदासुराविशेषन्तु न जानन्त्युभयोस्तयोः ।
वृहस्पतिरुवाचैनानसंभ्रान्तस्तपोधनः । काव्योवोऽहं गुरुर्दैत्या! मद्रूपोऽयंवृहस्पतिः ॥
संमोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः ! । श्रुत्वा तस्य ततस्तेवै समेत्यतुततोऽब्रुवन् ॥
अयंनो दशवर्षाणि शततं शास्ति वै प्रभुः । एष वै गुरुरस्माकमन्तरे स्फुरयन्द्विजः ॥
ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिनन्द्य च । वचनञ्जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः ॥
ऊचुस्तमसुराःसर्वेक्रोधसंरक्तलोचनाः । अयंगुरुर्हितोऽस्माकं गच्छत्वं नासि नोगुरुः ॥
भार्गवोवाङ्गिरावापि भगवानेषनोगुरुः । स्थितावयंनिदेशेऽस्य साधुत्वंगच्छमाचिरम् ।
एवमुक्त्वा सुराः सर्वे प्रापद्यन्तवृहस्पतिम् । यदा न प्रतिपद्यन्त काव्येनोक्तं महद्धितम्
चुकोपभार्गवस्तेषामवलेपेन तेन तु । बोधिताहि मया यस्मान्न मां भजथ दानवाः ॥
तस्मात्प्रनष्टसंज्ञावै पराभवमवाप्स्यथ । इतिव्याहृत्यतान्काव्योजगामाथ यथागतम् ।
शप्तांस्तानसुरान् ज्ञात्वा काव्येनस वृहस्पतिः । कृतार्थः स तदाहृष्टः स्वरुपं प्रत्यपद्यत ।

वुध्या सुरान् हतान् ज्ञात्वा कृतार्थोऽन्तरधीयत ।
ततः प्रणष्टेतस्मिंस्तु विभ्रान्ता दानवा भवन् ॥ २०२ ॥

अहो विवञ्चिताः स्मेति परस्परमथाब्रुवन् । पृष्ठतोऽभिमुखाश्चैव ताडिताङ्गिरसेन तु ॥
वञ्चिताः सोपधानेन स्वेस्वे वस्तुनिमायया । ततस्त्वपरितुष्टास्ते तमेव त्वरितायगुः ॥

प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुपदं पुनः ॥२०४॥

ततःकाव्यंसमासाद्य उपतस्थुरवाङ्मुखाः । समागतान् पुनर्दृष्ट्वाकाव्यो याज्यानुवाचह ।
मया सम्बोधिताः सर्वेयस्मान्मानाभिनन्दथ । ततस्तेनावमानेन गता यूयं पराभवम् ॥

एवं ब्रुवाणं शुक्रन्तु वाष्पसन्दिग्धया गिरा । प्रह्लादस्तत्तदोवाच मा नस्त्वन्त्यज भार्गव!

स्वाश्रयान् भजमानांश्च भक्तांस्त्वम्भज भार्गव ! ।

त्वय्यदृष्टे वयं तेन देवाचार्य्येण मोहितान् ।

भक्तानर्हसि वै ज्ञातुं तपोदीर्घेण चक्षुषा ॥ २०८ ॥

यदिनस्त्वं न कुरुते प्रसादं भृगुनन्दन ! । अपध्याता स्त्वयाह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ।

ज्ञात्वाकाव्यो यथातत्त्वं कारुण्यादनुकम्पया । एवंप्रत्यनुनीतो वै ततःकोपंनियम्यसः ॥

उवाचैतान्न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् ॥२१०॥

अवश्यंभाविनोह्यर्थाः प्राप्तव्यामयिजाग्रति । न शक्यमन्यथाकर्तुं दिष्टंहि बलवत्तरम् ॥

संज्ञाप्रणष्टाया बोऽद्य तामेतांप्रतिपत्स्यथ । देवाञ्जित्वासकृच्चापिपातालंप्रतिपत्स्यथ ॥

प्राप्तेपर्य्यायकालेच हीति ब्रह्माभ्यभाषत । मत्प्रसादाच्च त्रैलोक्यं भुक्तं युष्माभिरूर्जितम्

युगाख्यादश संपूर्णा देवानाक्रम्यमूर्द्धनि । एतावन्तश्च कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥

राज्यंसावर्णिके तुभ्यंपुनः किलभविष्यति । लोकानामीश्वरो भाव्यस्तवपौत्रःपुनर्बलिः

एवं किल मिथः प्रोक्तः पौत्रस्ते विष्णुना स्वयम् ।

वाचा हृतेषु लोकेषु तास्तास्तस्याभवन् किल ॥ २१६ ॥

यस्मात्प्रवृत्तयश्चास्य सकाशादभिसन्धिताः । तस्माद्वृत्तेनप्रीतेनतुभ्यंदत्तंस्वयम्भुवा ।

देवराज्येबलिर्भाव्य इतिमामीश्वरोऽब्रवीत् । तस्माददृश्योभूतानां कालापेक्षःसतिष्ठति ।

प्रीतेन चापरो दत्तोवरस्तुभ्यं स्वयम्भुवा । तस्मान्निरुत्सुकस्त्वंवै पर्य्यायं सहितोऽसुरैः

नहिशक्यंमयातुभ्यं पुरस्ताद्विप्रभाषितुम् । ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽहं भविष्यज्ञानताविभो!॥

इमौच शिष्यौद्वौ मह्यं समावेतौ बृहस्पतेः । दैवतैःसहसंसृष्टान् सर्वान्वोधारयिष्यतः ।

इत्युक्ता ह्यसुराः सर्वे काव्येनाक्लिष्टकर्मणा । हृष्टास्तेन ययुः सार्द्धं प्रह्लादेन महात्मना ॥

अवश्यंभाव्यमर्थन्तु श्रुत्वा शुक्रेण भाषितम् । सकृदाशंसमानास्तु जयंशुक्रेणभाषितम् ॥

दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ॥२२३॥

देवास्तदासुरान् दृष्ट्वासंग्रामे समुपस्थितान् । सर्वेसंभृतसम्भारा देवास्तान्समयोधयन्

देवासुरेतदा तस्मिन् वर्तमाने शतं समाः । अजयन्नसुरा देवास्ततो देवा ह्यमन्त्रयन् ॥

यज्ञेनोपाह्वयामस्तौ ततोजेष्यामहे सुरान्। तदोपामन्त्रयन्देवाः शण्डामर्कौ तुतावुभौ।
यज्ञेचाह्वयतौ प्रोक्तौ त्यजेतामसुरान्द्विजौ। वयंयुवां भजिष्यामःसहजित्वातु दानवान्
एवंकृताभिसन्धीतौ शण्डामर्कौ सुरास्तथा। ततोदेवाजयं प्रापुर्दानवाश्च पराजिताः॥
शण्डामर्कपरित्यक्ता दानवाह्यबलास्तथा। एवंदैत्याःपुरा काव्यशापेनाभिहतास्तदा॥
काव्यशापाभिभूतास्ते निराधाराश्च सर्वशः। निरस्यमानादेवैश्च विविशुस्तेरसातलम्॥
एवं निरुद्यमा देवैः कृताः कृच्छ्रेण दानवाः। ततः प्रभृति शापेन भृगोर्नैमित्तिकेन तु॥
जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्द्धर्मे प्रशिथिले प्रभुः। कुर्वन् धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥
प्रह्लादस्य निदेशेतुन स्थास्यन्त्यसुराश्चये। मनुष्यवध्यास्ते सर्वेब्रह्मेतिव्याहरत् प्रभुः॥
धर्मान्नारायणस्यांशः सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे। यज्ञं वै वर्तयामासुर्देवा वैवस्वतेऽन्तरे॥
प्रादुर्भावे ततस्तस्य ब्रह्माह्यासीत्पुरोहितः। युगाख्यायां चतुर्थ्यान्तु आपन्नेषु सुरेषुवै॥
सम्भूतस्तु समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे। द्वितीयेनरसिंहाख्ये रुद्रोह्यासीत् पुरोहितः॥
वलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमं प्रति। तृतीये वामनस्यार्थे धर्मेण तु पुरोधसा॥

एतास्तिस्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः।
मानुषाः सप्त योन्यस्तु शापजास्ता निबोधत॥ २३८॥

त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह। नष्टे धर्मे चतुर्थांशे मार्कण्डेयपुरःसरः॥२३९॥
पञ्चमः पञ्चदश्याञ्चत्रेतायां सम्बभूवह। मान्धाता चक्रवर्त्तींतु तदोत्तङ्कपुरःसरे॥२४०॥
एकोनविंश्यांत्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद्विभुः। जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः॥
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा। सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः॥
अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात्। वेदव्यास स्तथा यज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः।२४३
कर्त्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्। बुद्धो नवमकोयज्ञे तपसापुष्करेक्षणः॥

देवसुन्दररूपेण द्वैपायनपुरःसरः॥ २४४॥

तस्मिन्नेवयुगेक्षीणे सन्ध्याशिष्टेभविष्यति। कल्कीतु विष्णुयशसःपाराशर्य्यपुरःसरः

दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः॥ २४५॥

सर्वांश्च भूतांस्तिमिसान् पापण्डांश्चैव सर्वशः। प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतःशतसहस्रशः॥

निःशेषान् शूद्रराज्ञस्तु तदा स तु करिष्यति । ब्रह्मद्विषः सपत्नांस्तु संहृत्यैव च तद्वपुः
अष्टाविंशेस्थितःकल्किश्चरितार्थःससैनिकः । शूद्रान्संशोधयित्वातुसमुद्रान्तश्चवैस्वयम्
प्रवृत्तचक्रोबलवान् संहारन्तुकरिष्यति । उत्सादयित्वावृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्

ततस्तदा स वै कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः ।
प्रजास्तं साधयित्वा तु समृद्धास्तेन वै स्वयम् ॥ २५० ॥
अकस्मात्कोपितान्योन्यं भविष्यन्तीह मोहिताः ।
क्षपयित्वा तु तेन्योऽन्यं भाविनार्थेन चोदिताः ॥ २५१ ॥

ततः काले व्यतीते तु स देवोऽन्तरधीयत । नृपेष्वथ प्रनष्टेषु प्रजानां संग्रहात्तदा ॥
रक्षणे निविवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे । परस्परं निहत्वा तु निराक्रन्दाः सुदुःखिताः
पुराणि हित्वाग्रामांश्चतुल्यत्वेनिष्परिग्रहाः । प्रनष्टाश्रमधर्म्माश्च नष्टवर्णाश्रमास्तथा ॥
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः । प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥
ह्रस्वदेहायुषश्चैव भविष्यन्ति वनौकसः । सरित्पर्वतवासिन्यो मूलपत्रफलाशनाः ॥
चीरचर्माजिनधराः सङ्करं घोरमाश्रिताः । उत्पातदुःखाःस्वल्पार्थाःबहुबाधाश्चताःप्रजाः
एवं कष्टमनुप्राप्ताः काले सन्ध्यंशके तदा । ततः क्षयं गमिष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतमवर्त्तत । इत्येतत्कीर्त्तितं सम्यक् देवासुरविचेष्टितम् ॥
यदुवंशप्रसङ्गेन समासाद्वैष्णवं यशः । तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योस्तथाह्यनोः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे भगवदवतारकारणकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

———

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

ययातिपुत्राणामन्वयवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

तुर्वसोस्तुसुतोगर्भोगोभानुस्तस्यचात्मजः । गोभानोस्तुसुतोवीरस्त्रिसारिरपराजितः
करन्धमस्तु त्रैसारिर्भरतस्तस्य चात्मजः । दुष्यन्तः पौरवस्यापि तस्यपुत्रो ह्यकल्मषः
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा । तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल ॥ ३ ॥

दुष्यन्तस्य तु दायादोवरूथोनामपार्थिवः । वरूथात्तु तथावीरः सन्धानस्तस्यचात्मजः ।
पाण्ड्यश्चकेरलश्चैवचोलःकर्णस्तथैवच । तेषां जनपदास्फीताः पाण्ड्याश्चोलाःसकेरलाः
द्रुह्यस्य तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च । सेतु पुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्यचात्मजः ।
ख्यायते यस्य नाम्नासौ गन्धारविषयो महान् । आरट्टदेशजास्तस्य तुरगावाजिनांवराः
गन्धारपुत्रोधर्म्मस्तु घृतस्तस्यात्मजोऽभवत् । घृताच्चविदुषोजज्ञे प्रचेतास्तस्यचात्मजः
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व्व एव ते । म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे उदीचीन्दिशमाश्रिताः ।
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः । सभानरश्चाक्षुषश्च परमेषु तथैव च ॥१०॥
सभानरस्यपुत्रस्तु विद्वान्कोलाहलो नृपः । कोलाहलस्य धर्मात्मा सञ्जयोनामविश्रुतः
सञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो नाम पुरञ्जयः । जनमेजयो महाराज ! पुरञ्जयसुतोऽभवत्
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः । आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशाभवत्
महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः । सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्त्ती महामनाः ॥
महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ । उशीनरञ्च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव तावुभौ ॥
उशीनरस्य पुत्रस्तु पञ्चराजर्षिसम्भवाः । भृशा कृशानवा दर्शा या च देवी दृषद्वती ॥
उशीनरस्य पुत्रास्तु तासुजाताः कुलोद्वहाः । तपसा ते तु महता जातावृद्धस्यधार्मिकाः
भृशायास्तु नृगः पुत्रो नवायानव एवच । कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शायाःसुव्रतोऽभवत्
दृषद्वत्याः सुतश्चापि शिविरौशीनरो नृपः ॥ १८ ॥

शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः । पृथुदर्भः सुवीरश्च केकयो भद्रकस्तथा ।
तेषां जनपदाः स्फीताः केकयाभद्रकास्तथा । सौवीराश्चैवपौराश्च नृगस्यकेकयास्तथा
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा कृशस्य वृषला पुरी । नवस्य नवराष्ट्रन्तु तितिक्षोस्तु प्रजां शृणु ॥
तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः । वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत्सुतः
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयोवलिः । जातो मानुषयोन्यान्तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ।
महायोगी तु स वलिर्वद्धो वन्धैर्महात्मना । पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान्पञ्चपार्थिवान्
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च । पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा वालेयं क्षेत्रमुच्यते ॥
वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभो ॥ २५ ॥

बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम्।
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः। त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा।
जयश्चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम्। चतुरो नियतान् वर्णान् त्वं वै स्थापयिताप्रभुः
तेषाश्च पञ्च दायादावङ्गाङ्गाःसुह्मकास्तथा। पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्यतुनिबोधत

मुनय ऊचुः।

कथं बलेः सुताजाताःपञ्चतस्य महात्मनः। किं नाम्नी महिषी तस्यजनिताकतमोऋषिः
कथं चोत्पादितास्तेन तन्नःप्रब्रूहिपृच्छताम्। माहात्म्यञ्चप्रभावञ्च निखिलेन वदस्वतत्

सूत उवाच।

अथोशिज इति ख्यात आसीद्विद्वानृषिः पुरा। पत्नी वै ममता नाम बभूवास्यमहात्मनः
उशिजस्य यवीयान् वै भ्रातृपत्नीमकामयत्। बृहस्पतिर्म्महातेजा ममतामेत्य कामतः॥
उवाच मम तातन्तु देवरं वरवर्णिनी। अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तु विरम्यताम्
अयं तु मेमहाभाग ! गर्भःकुप्येत्वृहस्पते !। औशिजो भ्रातृजन्यस्तेसोपाङ्गंवेदमुद्गिरन्
अमोघरेतास्त्वञ्चापि नमां भजितुमर्हसि। अस्मिन्नेव गतेकाले यथा वा मन्यसेप्रभो !
एवमुक्तस्तथा सम्यक्बृहत्तेजाबृहस्पतिः। कामात्मास महात्मापिनमनःसोऽभ्यवारयत्
सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्द्धमकामया। उत्सृजन्तं तु तद्रेतो वाचं गर्भोऽभ्यभाषत

भो तात ! वाचामधिप ! द्वयोर्नास्तीह संस्थितिः।
अमोघरेतास्त्वञ्चापि पूर्वं चाहमिहागतः॥ ३६॥

सोऽशपत्तं ततः क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः। पुत्रं ज्येष्ठस्य वै भ्रातुर्गर्भस्थंभगवानृषिः।
यस्मात्त्वमीदृशे काले गर्भस्थोऽपिनिषेधसि। मामेव मुक्तवांस्तस्मात्तमोदीर्घंप्रवेक्ष्यसि
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत। अतोऽशजोबृहत्कीर्त्तिर्बृहस्पतिरिवोजसा॥
ऊर्ध्वरेतास्ततोऽसौ वै वसतेभ्रातुराश्रमे। स धर्मान् सौरभेयांस्तु वृषभाच्छ्रुतवांस्ततः
तस्य भ्राता पितृव्योयश्चकार भरणन्तथा। तस्मिन्निवसतस्तस्य यदृच्छैवागतोवृषः॥
यज्ञार्थमाहृतान्दर्भांश्चखाद सुरभीकृतः। जग्राह तं दीर्घतमाः शृङ्गयोस्तु चतुष्पदम्॥
तेनासौ निगृहीतश्च न चचाल पदात्पदम्। ततोऽब्रवीद्वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनांवर !

नमयासादितस्तात! वलवांस्त्वत्समःकचित्। ममचान्यः समोवापिनहिमेवलसंख्यया
मुञ्च तातेति च पुनः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु ॥४७॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवन्मे त्वंक्वयास्यसि। एष त्वां न विमोक्ष्यामि परस्वादंचतुष्पदम्

वृषभ उवाच।

नास्माकं विद्यते तात! पातकं स्तेयमेव च। भक्ष्याभक्ष्यं तथा चैवपेयापेयं तथैव च॥
द्विपदां वहवो ह्येते धर्म एष गवां स्मृतः। कार्याकार्ये न वा गम्यागमनञ्च तथैव च॥

सूत उवाच।

गवांधर्म्मन्तुवैश्रुत्वासम्भ्रान्तस्तुविसृज्यतम्। शक्त्यान्नपानदानात्तु गोपतिंसम्प्रसादयन्
प्रसादिते गते तस्मिन् गोधर्मंभक्तितस्तु सः। मनसैव समादध्यौ तन्निष्ठस्तत्परोहिसः
ततो यवीयसः पत्नीं गौतमस्याभ्यपद्यत। कृतावलेपान्तां मत्वा सोऽनड्वानिव न क्षमे
गोधर्म्मन्तुपरं मत्वा स्नुषान्तामभ्यपद्यत। निर्भर्त्स्य चैनं रुद्ध्वा च बाहुभ्यां सम्प्रगृह्यच
भाव्यमर्थन्तुतंज्ञात्वामाहात्म्यात्तमुवाचसा। विपर्ययन्तुत्वंलब्ध्वाअनड्वानिववर्त्तसे॥
गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात् प्रार्थयन् सुताम्।
दुर्वृत्तं त्वान्त्यजाम्यद्य गच्छ त्वं स्वेन कर्म्मणा ॥५६॥
काष्ठे समुद्गेप्रक्षिप्यगङ्गाम्भसिसमुत्सृजत्। यस्मात्त्वमन्धोवृद्धश्चभर्त्तव्योदुरधिष्ठितः॥
तमुह्यमानं वेगेन स्रोतसोऽभ्यासमागतः। जग्राह तं स धर्मात्मा वलिर्वैरोचनिस्तदा॥
अन्तःपुरे जुगोप्यैनं भक्ष्यभोज्यैश्च तर्पयन्। प्रीतश्चैवं वरेणैवच्छन्दयामासवै वलिम्॥
तस्माच्च स वरं वव्रे पुत्रार्थे दानवर्षभः। सन्तानार्थं महाभाग! भार्य्यायांममानद।
पुत्रान् धर्मार्थतत्त्वज्ञानुत्पादयितुमर्हसि ॥ ६० ॥
एवमुक्तोऽथ देवर्षिस्तथास्त्वित्युक्तवान् प्रभुः।
स तस्य राजा स्वां भार्य्यां सुदेष्णां नाम प्राहिणोत्।
अन्धं वृद्धञ्च तं ज्ञात्वा न सा देवी जगाम ह ॥ ६१ ॥
शूद्रान्धात्रेयिकां तस्मैअन्धायप्राहिणोत्तदा। तस्यांकाक्षीवदादींश्चशूद्रयोनावृषिर्वशी॥

जनयामास धर्मात्मा शूद्रानित्येवमादिकम् ।
उवाच तं बली राजा दृष्ट्वा काक्षीवदादिकान् ॥ ६३ ॥

राजोवाच ।

प्रवीणानृषिधर्म्मस्य चेश्वरान् ब्रह्मवादिनः ।
विद्वान् प्रत्यक्षधर्माणां बुद्धिमान् वृत्तिमान् शुचीन् ॥ ६४ ॥

ममैवचेति होवाच तं दीर्घतमसं बलिः । नेत्युवाच मुनिस्तं वैममैवमितिचाब्रवीत् ॥६५
उत्पन्नाः शूद्रयोनौ तु भवच्छन्दे सुरोत्तम । अन्धंवृद्धञ्चमांज्ञात्वासुदेष्णामहिषीतव ॥
प्राहिणोदवमानान् मे शूद्रान्धात्रेयिकां नृप ॥ ६६ ॥

ततःप्रसादयामासबलिस्तमृषिसत्तमम् । बलिःसुदेष्णान्तांभार्य्यां भर्त्सयामासदानवः ॥
पुनश्चैनामलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयत् । तां स दीर्घतमा देवीं तथा कृतवतीं तदा ॥६८
दध्नालवणमिश्रेण स्वसक्तं मधुकेन तु । लिहमाम जुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम् ।
ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि ! पुत्रान् वै मनसेप्सितान् ॥ ६९ ॥

तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तदा । तस्य सा पानमासाद्य देवीपरिहरत्तदा॥७०
तामुवाच ततः सोऽथ यत्ते परिहृतं शुभे । विना पानं कुमारन्तु जनयिष्यसि पूर्वजम्॥

सुदेष्णोवाच ।

नार्हसि त्वं महाभाग ! पुत्रं मे दातुमीदृशम् । तोषितश्च यथाशक्त्याप्रसादं कुरुमेप्रभो॥

दीर्घतमोवाच ।

तवापचाराद्देव्येष नान्यथा भविता शुभे । नैव दास्यति पुत्रस्तेपौत्रोवैदास्यतेफलम् ॥
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति । तस्माद्दीर्घतमाङ्गेषु कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत्
प्राशितं यद्यदग्रेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते । तेन तिष्ठन्तितेगर्भेपौर्णमास्यामिवोडुराट् ॥
भविष्यन्ति कुमारास्तेपञ्चदेवसुतोपमाः । तेजस्विनःसुवृत्ताश्चयज्वानो धार्मिकाश्चते ॥

सूत उवाच ।

तदंशस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठः पुत्रो व्यजायत । अङ्गस्तथाकलिङ्गश्चपुण्ड्रःसुह्मस्तथैवच ॥
वङ्गराजस्तु पञ्चैते बलेः पुत्राश्च क्षेत्रजाः । इत्येते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुतास्तथा ॥

प्रतिष्ठामागतानां हि ब्राह्मण्यं कारयंस्ततः । ततो मानुषयोन्यां स जनयामास वै प्रजाः
ततस्तं दीर्घतमसं सुरभिर्वाक्यमब्रवीत् । विचार्य यस्माद्गोधर्मं प्रमाणन्ते कृतं विभो ॥
भक्त्याचानन्ययाऽस्मासुतेनप्रीतास्मितेऽनघ । तस्मात्तुभ्यन्तमोदीर्घमाघ्रायापनुदामि वै
बार्हस्पत्यस्तथैवैष पाप्मा वै तिष्ठति त्वयि । जरां मृत्युं तमश्चैव आघ्रायापनुदामिते ॥
सद्यः स घ्रातमात्रस्तुअसितोमुनिसत्तम!। आयुष्मांश्च वपुष्मांश्चचक्षुष्मांश्च ततोऽभवत्
गोभ्याहते तमसिवैगौतमस्तुततोऽभवत् । काक्षीवांस्तुततोगत्वासहपित्रागिरिव्रजम् ॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पितुः सोवैह्युपविष्टश्चिरन्तपः । ततःकालेन महता तपसा भावितस्तु सः ॥
विधूय मातृजं कायं ब्राह्मण्यं प्राप्तवान् विभुः । ततोऽब्रवीत्पिता तंवैपुत्रवानस्म्यहं त्वया

सत्पुत्रेण तु धर्मज्ञ ! कृतार्थोऽहं यशस्विना ।
मुक्त्वात्मानं ततोऽसौ वै प्राप्तवान् ब्रह्मणः क्षयम् ॥८७॥
ब्राह्मण्यं प्राप्य काक्षीवान् सहस्रमसृजत् सुतान् ।
कौष्माण्डा गौतमाश्चैव स्मृताः काक्षीवतः सुताः ॥८८॥

इत्येष दीर्घतमसोबलेर्वैरोचनस्य च । समागमो वः कथितः सन्ततिश्चोभयोस्तथा ॥
बलिस्तानभिनन्द्याहपञ्चपुत्रानकल्मषान् । कृतार्थःसोऽपिधर्मात्मायोगमायावृतःस्वयम्॥
अदृश्यः सर्वभूतानां कालापेक्षः स वै प्रभुः । तत्राङ्गस्यतुदायादोराजासीद्दधिवाहनः ॥
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः । आसीद्दिविरथापत्यं विद्वान् धर्मरथोनृपः ॥
स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ । सोमः शुक्रेण वै राज्ञासहपीतो महात्मना
अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल । तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद्दशरथः किल ॥
लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत् । अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गोमहायशाः ॥
ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः । चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ॥९६॥
पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह । चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनोऽभवत्
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् । जज्ञे विभाण्डकाच्चास्यवारणःशत्रुवारणः ॥
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् । हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल ॥
अथ भद्ररथस्यासीत् बृहत्कर्मा जनेश्वरः । बृहद्भानुःसुतस्तस्यतस्माज्जज्ञेमहात्मवान् ॥

वृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् । नाम्नाजयद्रथं नाम तस्मात्वृहद्रथो नृपः ॥
आसीद्वृहद्रथाच्चैव विश्वजिज्जनमेजयः । दायादस्तस्यचाङ्गोवैतस्मात् कर्णोऽभवन्नृपः॥
कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथात्मजः । एतेऽङ्गस्यात्मजाःसर्वेराजानःकीर्तिता मया ॥
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च पूरोस्तु श्रृणुत द्विजाः ॥१०३॥

ऋषय ऊचुः ।

कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः । एतदिच्छामहेश्रोतुमत्यन्तकुशलोह्यसि ॥

सूत उवाच ।

वृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना वृहन्मनाः । तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्छैव्यस्य तनये ह्युभे ॥
यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशश्च मे श्रृणु ॥१०५॥
जयद्रथन्तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत् । सा वृहन्मनसः सत्या विजयंनाम विश्रुतम् ॥
विजस्य वृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो वृहद्रथः । वृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मामहामनाः ॥१०७
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाऽधिरथःस्मृतः । यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः
तच्चेदं सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम् ॥१०८॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे ययातिवंशवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पूरुवंशवर्णनम् ।

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः । प्राचीततःसुतस्तस्ययःप्राचीमकरोद्दिशम् ॥
प्राचीततस्य तनयोमनस्युश्च तथाभवत् । राजा पीतायुधो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥
दायादस्तस्यचाप्यासीद्धुन्धुर्नाममहीपतिः । धुन्धोर्बहुविधःपुत्रःसम्पातिस्तस्यचात्मजः
सम्पातेस्तु रहं वर्चा भद्राश्वस्तस्यचात्मजः । भद्राश्वस्यधृतायांतुदशाप्सरसि सूनवः ॥
औचेयुश्च हृषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः । घृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः ॥५॥
धर्मेयुः सन्नतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश । औचयोर्ज्वलना नाम भार्या वैतक्षकात्मजा ॥

तस्यां स जनयामास अन्तिनारं महीपतिम् ।
अन्तिनारो मनस्विन्यां पुत्रान् जज्ञे परान् शुभान् ॥७॥
अमूर्त्तरयसंवीरं त्रिवनञ्चैवधार्मिकम् । गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुर्जननी शुभा ॥
इलिनातुयमस्यासीत्कन्यायाजनयत्सुतान् । ब्रह्मवादपराक्रान्तांश्छुम्भदात्विलिनाह्यभूत्
उपदानवी सुतान् लेभे चतुरस्त्विलिनात्मजात् ।
ऋष्यन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥ १० ॥
चक्रवर्त्ती ततो जज्ञे दुष्यन्तात् समितिञ्जयः । शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्नाचभारताः
दौष्यन्ति प्रति राजानं वागूचे चाशरीरिणी । माताभस्त्रापितुःपुत्रोयेनजातःसएवसः ॥
भर स्वपुत्रं दुष्यन्त ! मावमंस्थाः शकुन्तलाम् । रेतोधां नयते पुत्रःपरेतं यमसादनात् ॥
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥१३॥
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल । पुत्राणांमातृकात् कोपात् सुमहान् संक्षयः कृतः
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः । संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु ॥१५

ऋषय ऊचुः ।

भरतस्य भरद्वाजः पुत्रार्थं मारुतैः कथम् । संक्रामितो महातेजास्तन्नो ब्रूहि यथातथम्

सूत उवाच ।

पत्न्यामापन्नसत्वायामुशिजः सः स्थितोभुवि । भ्रातुर्भार्य्यां सद्दृष्ट्वातु बृहस्पतिरुवाचह
उपतिष्ठ स्वलङ्कृत्य मैथुनायच मां शुभे ! । एवमुक्ताऽब्रवीदेनं स्वयमेव बृहस्पतिम् ॥
गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा । अमोघरैतास्त्वश्चापि धर्मश्चैवं विगर्हितम् ।१९
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्वयमेव बृहस्पतिः । नोपदेष्टव्यो विनयस्त्वया मे वरवर्णिनि ! ॥
धर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे । ततो बृहस्पतिं गर्भो धर्षमाणमुवाचह ॥२१॥
सन्निविष्टो ह्यहं पूर्वमिहनाम बृहस्पते ! । अमोघरैताश्च भवान् नावकाश इह द्वयोः ॥
एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह । यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति ॥
अभिषेधसि:तस्मात्त्वं तमोदीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥२३॥
ततः कामं सन्निवर्त्य तस्यानन्दाद्बृहस्पतेः । तद्रेतस्त्वपतद्भूमौ निवृत्तं शिशुकोऽभवत्

सद्यो जातं कुमारं तु दृष्ट्वा तं ममताऽब्रवीत् । गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरस्वैनं बृहस्पते
एवमुक्त्वागतासातुगतायांसोऽपितंत्यजत् । मातापितृभ्यां त्यक्तन्तुदृष्ट्वातंमारुतःशिशुम्
जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः ॥२६॥
तस्मिन् काले तु भरतो बहुभिः क्रतुभिर्विभुः । पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत्पुत्रलिप्सया ॥
यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत् प्रभुः । ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत् ॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टुवुः । उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै ॥२९॥
दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः । संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतं प्रति ।३०।
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत् । आदावात्महिताय त्वं कृतार्थोऽहंत्वयाविभो
पूर्वं तु वितथो तस्मिन् कृते वै पुत्रजन्मनि । ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजो नृपोऽभवत्
तस्मादपि भरद्वाजाद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि ।
द्व्यामुष्यायणकौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च ॥३३॥
ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ । भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्यसुतं ऋषिः
दायादो वितथस्यासीद्भुवमन्युर्महायशाः । महाभूतोपमाः पुत्राश्चत्वारो भुवमन्यवः ॥
बृहत्क्षेत्रो महावीर्यः नरो गर्गश्च वीर्यवान् ।
नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशाः ॥ ३६ ॥
गुरुधीरन्तिदेवश्च सत्कृत्यान्तावुभौ स्मृतौ । गर्गस्य चैव दायादः शिविर्विद्वानजायत
स्मृताः शैव्यास्ततो गर्गाः क्षत्रोपेता द्विजातयः । आहार्यतनयश्चैव धीमानासीदुरुक्षवः
तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम् । त्र्यूषणं पुष्करिं चैव कविं चैव महायशाः
उरुक्षवाः स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गताः । काव्यानान्तु वरा ह्येते त्रयः प्रोक्तामहर्षयः
गर्गाः संकृतयः काव्याःक्षत्रोपेताद्विजातयः । संभृताङ्गिरसो दक्षाःबृहत्क्षत्रस्यचक्षितिः
बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह । तेनेदं निर्मितं पूर्वं पुरन्तु गजसाह्वयम् ॥
हस्तिनश्चैव दायादास्त्रयः परमकीर्त्तयः । अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ।४३।
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रः कुरुकुलोद्वहाः । नीलिनीधूमिनीचैव केशिनी चैव विश्रुताः
स तासु जनयामास पुत्रान् वै देववर्चसः । तपसोऽन्तेमहातेजा जाता बृहद्स्यधार्मिकाः

भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे शृणु। अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत्किल॥
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना द्विजाः। अजमीढस्य भूमिन्यांजज्ञेबृहद्नुर्नृपः
बृहद्नोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः। बृहन्मनः सुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः।४८॥
बृहद्धनोर्बृहदिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः। अश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः॥
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः। रुचिराश्वश्चकाव्यश्च राजा दृढरथस्तथा।
वत्सश्चावर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः। रुचिराश्वस्य दायादःपृथुसेनो महायशाः

पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान्।
नीपस्यैकशतन्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम्॥ ५२॥

नीपा इति समाख्याताःराजानः सर्वएवते। तेषांवंशकरःश्रीमान् नीपानां कीर्त्तिवर्द्धनः
काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत्। समरस्य पारसम्पारौ सदश्व इति ते त्रयः
पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि। पारपुत्रः पृथुर्जातःपृथोस्तु सुकृतोऽभवत्
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्यचात्मजः। विभ्राजस्यतुदायादस्त्वणुहोनामवीर्य्यवान्
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः। अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः॥
युगदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः। विभ्राजः पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह। भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः

उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः॥ ५६॥

ऋषय ऊचुः।

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्य वंशे स कथ्यते। किमर्थंतेनते नीपाः सर्वेचैव प्रणाशिताः

सूत उवाच।

उग्रायुधः सूर्य्यवंश्यस्तपस्तेपे वराश्रमे। स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्रन्तं भेजे जनमेजयः॥६१
तस्य राज्यं प्रतिश्रुत्य नीपानाजघ्निवान्प्रभुः। उवाचसान्त्वंविविधं जघ्नुस्तेवैह्युभावपि
हन्यमाना गतानूचे यस्माद्धेतोर्न मे वचः। शरणागतरक्षार्थं तस्मादेवं शपामि वः॥
यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं सर्वान्नयतु वो यमः। ततस्तान् कृष्यमाणांस्तु यमेन पुरतः स तु
कृपया परयाविष्टो जनमेजयमब्रवीत्। गतानेतानिमान वीरांस्त्वं मे रक्षितुमर्हसि॥

जनमेजय उवाच ।

अरे पापा ! दुराचारा ! भवितारोऽस्यकिङ्कराः । तथेत्युक्तस्ततो राजायमेनयुयुधेचिरम्
व्याधिभिर्नारकैर्घोरैर्यमेन सह तान् बलात् । विजित्य मुनयेप्रादात्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥
यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम् । सर्वे यथोचितंकृत्वा जग्मुस्तेकृष्णमव्ययम्
येषान्तु चरितं गृह्य हन्यन्ते नापमृत्युभिः । इह लोके परे चैव सुखमक्षय्यमश्नुते ॥६९॥
अजमीढस्य धूमिन्यां विद्वाञ्जज्ञेयवीनरः । धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिस्मृतः
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् ॥ ७० ॥
दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः । आसीत् सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान्
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड्बभौ । तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः ॥
महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः । अथरुक्मरथस्यासीत् सुपार्श्वोनामपार्थिवः
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः । सुमतेरपि धर्मात्मा राजा सन्नतिमानपि ॥
तस्यासीत् सन्नतिमतः कृतो नाम सुतो महान् ।
हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौशल्यस्य महात्मनः ॥ ७५ ॥
चतुर्विंशतिधा येनप्रोक्ता वै सामसंहिताः । स्मृतास्तेप्राच्यसामानःकार्तानामेहसामगाः
कार्तिरुग्रायुधः सो वै महापौरववर्द्धनः । बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः ॥७७
नीलो नाम महाराजः पञ्चालाधिपतिर्वशी । उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः
क्षेमात् सुनीथः संजज्ञे सुनीथस्य नृपञ्जयः । नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः

इति श्रीमत्स्यपुराणे पूरुवंशवर्णनं नाम ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

———

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कुरुवंशवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अजमीढ़स्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः । नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुपपद्यत ॥१॥
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः । भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयान्शृणु ॥
सुद्गलश्च जयश्चैव राजा बृहदिषु स्तथा । यवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः ॥
पञ्चानाञ्चैव पञ्चलानेतान् जनपदान् विदुः । पञ्चालं रक्षिणो ह्येतेदेशानामितिनः श्रुतम् ।
मुद्गलस्यापिमौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः । एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः काण्वमुद्गलाः
मुद्गलस्यसुतोजज्ञे ब्रह्मिष्ठःसुमहायशाः । इन्द्रसेनःसुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्यचात्मजः ॥
विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामितिश्रुतिः । दिवोदासश्च राजर्षिरहल्याचयशस्विनी।
शरद्वतस्तु दायादमहल्या सम्प्रसूयत । शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपाः ॥ ८ ॥
सुतः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः । आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघं धार्मिकस्य तु
स्कन्नं रेतः सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसंजले । मिथुनं तत्र सम्भूतं तस्मिन् सरसिसम्भृतम् ॥
ततः सरसि तस्मिंस्तु क्रममाणं महीपतिः । दृष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुर्मृगयां गतः ॥
एते शरद्वतःपुत्रा आख्याता गौतमावराः । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्यवैप्रजाः।
दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः । मैत्रायणावरः सोऽथमैत्रेयस्तुततःस्मृतः॥
एतेवंश्यायतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः । राजा चैद्यवरो नाममैत्रेयस्य सुतःस्तृतः॥
अथचैद्यवरात् विद्वान् सुदासस्तस्यचात्मजः । अजमीढःपुनर्जातःक्षीणेवंशेतुसोमकः ॥
सोमकस्य सुतोजन्तुर्हते तस्मिन् शतं बभौ । पुत्राणामजमीढ़स्य सोमकस्य महात्मनः
महिषीत्वजमीढ़स्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी । पुत्राभावे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम् ॥१७

हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना ।
अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता ॥ १८ ॥

तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान् । ऋक्षं सा जनयामास धूमवर्णं शताग्रजम् ॥
ऋक्षात् संवरणोजज्ञे कुरुः संवरणात्ततः । यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत् ॥२०
कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ । कृष्यमाणस्ततः शक्रोभयात्तस्मै वरन्ददौ ॥
पुण्यञ्चरमणीयञ्चकुरुक्षेत्रन्तु तत्स्तृतम् । तस्यान्ववायःसुमहान् यस्यनाम्नातुकौरवाः॥
कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेवच । परीक्षिच्चमहातेजाःप्रजनश्चारिमर्दनः ॥२३
सुधन्वनस्तुदायादःपुत्रो मतिमतांवरः । च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित् ॥

च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपाः ।
कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यात इन्द्रसमो विभुः ॥ २५ ॥

चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः । चैद्यो परिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान्॥
महारथो मगधराट् विश्रुतो यो बृहद्रथः । प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः ॥२७
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः कालीच सप्तमी । बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नामविश्रुतः ॥
कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नामवीर्यवान् । वृषभस्यतु दायादः पुण्यवान्नाम पार्थिवः
पुण्यःपुण्यवतश्चैव राजासत्यधृतिस्ततः । दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्चजज्ञिवान्
सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद्राजा बृहद्रथः । द्वे तस्य शकले जातेजरया सन्धितश्चसः॥
जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्ततः । जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासन्धो महाबलः ॥
जरासन्धस्य पुत्रस्तु सहदेवःप्रतापवान् । सहदेवात्मजःश्रीमान् सोमवित्स महातपाः॥
श्रुतश्रवास्तु सोमादेर्मागधाःपरिकीर्तिताः । जह्नुस्त्वजनयत् पुत्रं सुरथं नामभूमिपम् ॥
सुरथस्यतु दायादो वीरो राजा विदूरथः । विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृतः ॥

सार्वभौमात् जयत् सेनो रुचिरस्तस्य चात्मजः ।
रुचिरात्तु ततो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत् ॥ ३६ ॥

अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद्देवातिथिः स्मृतः । देवातिथेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह॥
भीमसेनस्ततोदक्षाद्दिलीपस्तस्यचात्मजः । दिलीपस्यप्रतीरस्तुतस्यपुत्रास्त्रयःस्मृताः ॥
देवापिः शन्तनुश्चैव बाह्लीकश्चैवते त्रयः । बाह्लीकस्य तु दायादाः सप्त बाह्लीश्वरानृप!

देवापिस्तु ह्यपध्यातः प्रजाभिरभवन्मुनिः ॥ ३९ ॥

मुनय ऊचुः ।

प्रजाभिस्तु किमर्थं वै अपध्यातो जनेश्वरः । को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभिःसमुदाहृतः

सूत उवाच ।

किलासीद्राजपुत्रस्तुकुष्ठितं नाभ्यपूजयन् । भविष्यंकीर्तयिष्यामिशन्तनोस्तुनिबोधत ॥

शन्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् सो वै महाभिषक् ।
इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषक् ॥४२॥

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेवच । पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शन्तनुं विदुः
तत्तस्य शन्तनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते । ततो वृणुत भार्यार्थं शन्तनुर्जाह्नवीं नृपः ॥

तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः ।
काली विचित्रवीर्य्यन्तु दासेयोऽजनयत् सुतम् ॥ ४५ ॥

शन्तनोर्दयितंपुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम् । कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके ॥
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरं चाप्यजीजनत् । धृतराष्ट्रस्तुगान्धार्य्यां पुत्रानजनयत् शतम्॥
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः । माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे । धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ॥
इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः । नकुलं सहदेवञ्च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत् ॥५०
पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरेसुताः । द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठंप्रतिविन्ध्यंयुधिष्ठिरात्॥
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिं धनञ्जयात् । चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत ॥५२॥
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्त्तिताः । तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाःषडेवान्येमहारथाः॥
हैडम्बो भीमसेनात्तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः । काशीबलधरात्भीमाज्जज्ञेवैसर्वगंसुतम्॥
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत । करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तुनाकुलिः ॥५५॥
सुभद्राया रथी पार्थादभिमन्युरजायत । योधेयं देवकीचैव पुत्रं यज्ञे युधिष्ठिरात् ॥५६
अभिमन्योः परिक्षित्तु पुत्रः परपुरञ्जयः । जनमेजयः परिक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः ॥५७
ब्रह्माणं कल्पयामास सवै वाजसनेयकम् । स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा ॥५८
न स्थास्यतीहदुर्बुद्धे ! तवैतद्वचनं भुवि । यावत् स्थास्यसि त्वं लोकेतावदेवप्रपत्स्यति

क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः । अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपञ्च जनमेजयम् ।
ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः । उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः॥
क्षत्रस्ययाजिनःकेचित् शापात्तस्यमहात्मनः । पौर्णमासेनहविषा इष्ट्वातस्मिन्प्रजापतिम् ।
स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्ततः ॥ ६२ ॥
परिक्षितः सुतः सो वै पौरवो जनमेजयः । द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः॥६३॥
प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम् । विवादे ब्राह्मणैः सार्धमभिशप्तो वनं ययौ ॥
जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।
जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान् ॥ ६५ ॥
अथाश्वमेधेनततःशतानीकस्यवीर्यवान् । जज्ञेऽधिसोमकृष्णाख्यःसाम्प्रतं यो महायशाः॥
तस्मिन् शासति राष्ट्रे तु युष्माभिरिदमाहृतम् । दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥

मुनय ऊचुः ।

भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे । पुरा किल यदेतद्वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया
येषुवै स्थास्यतेक्षत्रं उत्पत्स्यन्ते नृपाश्रये । तेषामायुः प्रमाणञ्चनामतश्चैव तान्नृपान् ॥
कृतयुगप्रमाणञ्च त्रेताद्वापरयोस्तथा । कलियुगप्रमाणञ्च युगदोषं युगक्षयम् ॥ ७० ॥
सुखदुःखप्रमाणञ्च प्रजादोषं युगस्य तु । एतत्सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो ॥

सूत उवाच ।

यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्म्मणा । भाव्यं कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि च
अनागतानिसर्व्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा
ऐडेक्ष्वाकान्वये चैव पौरवे चान्वयेतथा । येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलंशुभम् ॥
तान् सर्वान् कीर्त्तयिष्यामि भविष्ये कथितान्नृपान् ॥ ७४ ॥
तेभ्योऽपरेऽपियेत्वन्येह्युत्पत्स्यन्तेनृपाःपुनः । क्षत्राःपारशवाःशूद्रास्तथान्येये महीश्वराः
अन्ध्राःशकाःपुलिन्दाश्चचूलिकायवनास्तथा । कैवर्त्ताभीरशवरायेचान्येम्लेच्छसम्भवाः॥
पर्य्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान् ॥ ७६ ॥

अधिसोमकृष्णश्चैतेषां प्रथमंवर्त्ततेनृपः । तस्यान्ववायेवक्ष्यामि भविष्येकथितान्नृपान् ।
अधिसोमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भवितानृपः । गङ्गया तु हृते तस्मिन नगरे नागसाह्वये ॥
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरंकौशाम्ब्यान्तुनिवत्स्यति । भविष्याष्टौसुतास्तस्यमहाबलपराक्रमाः
भूरिर्ज्येष्ठःसुतस्तस्यतस्यचित्ररथःस्मृतः । शुचिद्रवश्चित्ररथात् वृष्णिमांश्चशुचिद्रवात् ।
वृष्णिमतःसुषेणश्चभविष्यतिशुचिर्नृपः । तस्मात् सुषेणात्भवितासुनीथोनामपार्थिवः ।
नृपात् सुनीथाद्भविता नृचक्षुःसुमहायशाः । नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः । परिष्णवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः ॥
मेधावी तस्य दायादोभविष्यति न संशयः । मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरञ्जयः

उर्वोभाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः ।
तिग्मात् वृहद्रथो भाव्यो वसुदामा वृहद्रथात् ॥ ८५ ॥

वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः । भविष्यते च दयनात् वीरो राजा वहीनरः ॥
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति । दण्डपाणे र्निरामित्रो निरामित्रात्तु क्षेमकः
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः । ब्रह्मक्षत्रस्ययो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः॥

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे ॥ ८८ ॥

इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्त्तितः । धीमतः पाण्डुपुत्रस्य अर्जुनस्य महात्मनः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पुरुवंशवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अग्निवंशवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

ये पूज्याःस्युर्द्विजातीनामग्नयःसूत! सर्वदा । तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः ॥

सूत उवाच ।

योऽसावग्निरभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजीजनत् ॥ २ ॥

पावकं पवमानञ्चशुचिरग्निश्च यः स्मृताः । निर्मथ्यःपवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः ॥
शुचिरग्निःस्मृतःसौरः स्थावराश्चैवतेस्मृताः । पवमानात्मजो ह्यग्निर्हव्यवाहःसउच्यते
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहमुखः शुचिः । देवानां हव्यवाहोऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणःसुतः
सहरक्षः सुराणान्तु त्रयाणान्ते त्रयोऽग्नयः । एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशत्तथैव च ॥
प्रवक्ष्ये नामतस्तान्वैप्रतिभागेन तान् पृथक् । पावनोलौकिको ह्यग्निःप्रथमोब्रह्मणश्चयः॥
ब्रह्मोदनाग्निस्तत् पुत्रोभरतो नाम विश्रुतः । वैश्वानरो हव्यवाहो वहन् हव्यंसमारसः॥

स्मृतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करोदधिः ।

योऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स उच्यते ॥ ६ ॥

भृगोःप्रजायताथर्वाह्यङ्गिराथर्वणःस्मृतः । तस्यह्यलौकिकोह्यग्निर्दक्षिणाग्निःस वैस्मृतः
अथयःपवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निःस उच्यते । स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमोब्रह्मणःस्मृतः
ततःसभ्यावसथ्यौच संशत्यास्तौ सुतावुभौ । ततः षोडशनद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः ॥

यः खल्वाहवनीलोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥ १२ ॥

कावेरीं कृष्णवेणीञ्च नर्मदां यमुनां तथा । गोदावरीं वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ।
विपाशां कौशिकीञ्चैव शतद्रूं सरयूंतथा । सीतां मनस्विनीञ्चैव ह्लदिनीं पावनां तथा ।
तासुषोडशधात्मानं प्रविभज्य पृथक्पृथक् । तदातु विहरंस्तासु धिष्ण्येच्छःसबभूवह

स्वाभिधानस्थिता धिष्ण्यास्तासूत्पन्नाश्च धिष्णवः ।

धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्ते धिष्णवः स्मृताः ॥ १६ ॥

इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे । तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु

विभुः प्रवाहणोग्नीऽध्रस्तत्रस्था धिष्णवोऽपरे ॥ १७ ॥

विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे । अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम् ।
वासवोऽग्निःकृशानुर्योद्वितीयोत्तरवेदिकः । सम्राडग्निःसुताह्यष्टावुपतिष्ठन्तितान्द्विजाः।

पर्जन्यःपावमानस्तुद्वितीयःसोऽनुदृश्यते । पावकोष्णःसमुह्यस्तुवोत्तरेसोऽग्निरुच्यते ॥
हव्यसूदोह्यसंमृज्यः शामित्रः सविभाव्यते । शतधामासुधाज्योती रौद्रैश्वर्यःसउच्यते ।
ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते । अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखोयतः ॥
अनिर्देश्योह्यहिबुध्नो बहिरन्ते तु दक्षिणौ । पुत्राह्येते तु सर्वस्य उपस्थेयाद्द्विजैः स्मृताः
ततोविहरणीयांस्तुवक्ष्याम्यष्टौतुतान्सुतान् । होत्रियस्यसुतो ह्यग्निर्वर्हिषो हव्यवाहनः
प्रशंस्योऽग्निःप्रचेतास्तुद्वितीयःसंसहायकः । सुतोह्यग्नेर्विश्ववेदाब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते ।
अपांयोनिःस्मृतःस्वाम्भःसेतुर्नाम विभाव्यते । धिष्ण्यआहरणाह्येतेसोमेनेज्यन्तवैद्विजैः
ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योग उच्यते । अग्निःसोऽवभृथेज्ञेयोवरुणेन सहेज्यते

हृदयस्य सुतो ह्यग्नेर्जठरेऽसौ नृणां पचन् ।
मन्युमान् जाठरश्चाग्निर्विद्धाग्निः सततं स्मृतः ॥२८॥

परस्परोत्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन् । अग्नेर्मन्युतमः पुत्रो घोरः सम्वर्त्तकः स्मृतः
पिबन्नग्निः स वसति समुद्रे वडवामुखे । समुद्रवासिनः पुत्रः सह रक्षो विभाव्यते॥३०
सहरक्षस्तुवैकामान्गृहेसवसतेनृणाम् । क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान्योऽत्तिवैमृतान्
इत्येतेपावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः । ततः सुतास्तु सौवीर्य्याद्गन्धर्वैरसुरैर्हृताः
मथितोयस्त्वरण्यान्तुसोऽग्निरापसमिन्धनम् । आयुर्नाम्नातुभगवान् पशौयस्तुप्रणीयते
आयुषो महिमान्पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः । पाकयज्ञेष्वभीमानीहुतं हव्यं भुनक्ति यः ॥
सर्वस्माद्देवलोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः । पुत्रोऽस्य सहितो ह्यग्निरद्भुतःसमहायशाः
प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतंकव्यंभुनक्ति यः । अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तुमहान्स्मृतः
विविधाग्निस्ततस्तस्यतस्यपुत्रोमहाकविः । विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौसुताःस्मृताः
काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहायतिकृच्चयः । सुरभिर्वसुमान्नादोहर्य्यश्वःसोऽभवत्पुरा
प्रवर्ग्यः क्षेमवांश्चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्त्तिताः । शुच्यग्नेस्तु प्रजाह्येषा अग्नयश्च चतुर्दश ॥
इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे । समतीते तु सर्गे ये यामैः सहसुरोत्तमैः
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः । एते विहरणीयेषु चेतनाचेतनेष्विह ॥४१॥

स्थानाभिमानिनोऽग्नीध्राः प्रागासन्हव्यवाहनाः ।

काम्यनैमित्तिकाद्यास्ते ये ते कर्म्मस्वस्थिताः ॥४२॥
पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैश्च तैः सह । एते देवगणैः सार्द्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥४३
इत्येता योनयो ह्युक्ताःस्थानाख्याजातवेदसाम् । स्वारोचिषादिषुज्ञेयाःसवर्णान्तेषुसप्तसु
तैरेवन्तु प्रसंख्यातं साम्प्रतानागतेष्विह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् ॥४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः । वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च यामैर्देवैः सहाग्नयः ॥४६॥
अनागतैः सुरैःसार्द्धं वत्स्यन्तो नागतास्त्वथ । इत्येष प्रचयोऽग्नीनांमयाप्रोक्तोयथाक्रमम्
विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥४७॥
इति श्रीमत्स्यपुराणेऽग्निवंशवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्मयोगवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।
इदानीं प्राह यद्विष्णुः पृष्टः परममुत्तमम् । तमिदानीं समाचक्ष्व धर्माधर्मस्य विस्तरम् ।
सूत उवाच ।
एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः । विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम्
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे । कर्म्मयोगञ्च साङ्ख्यञ्च यथावद्विस्तरान्वितम्
ऋषय ऊचुः ।
श्रोतुमिच्छामहे सूत ! कर्म्मयोगस्य लक्षणम् । यस्मादविदितं लोके नकिञ्चित्तवसुव्रत
सूत उवाच ।
कर्म्मयोगञ्च वक्ष्यामि यथाविष्णुविभाषितम् । ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्म्मयोगःप्रशस्यते
कर्म्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात्तत्परमंपदम् । कर्म्म ज्ञानोद्भवं ब्रह्म नच ज्ञानमकर्म्मणः ॥६॥
तस्मात्कर्मणियुक्तात्मातत्त्वमाप्नोतिशाश्वतम् । वेदोऽखिलोधर्ममूलमाचारश्चैवतद्धितम्
अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः । दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्तीरक्षातुरस्यच

अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः । अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम् ॥
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च । तथा स्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ।१०।
अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताःपुराणस्यतुकोविदैः । अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्यसाधकः
कर्म्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते । श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत्प्रयत्नतः ॥
देवतानां पितॄणाञ्च मनुष्याणाञ्च सर्वदा । कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ॥ १३ ॥
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्विद्वान् यथाविधि । पितॄन् श्राद्धैरन्नदानैर्भूतानिबलिकर्मभिः
पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये । कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी ॥
पञ्चसूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति । तत्पापनाशनायामी पञ्चयज्ञाः प्रकीर्त्तिताः॥

द्वाविंशति तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्त्तिताः ।
तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जितः ॥ १७ ॥

तस्मादात्मगुणोपेतः श्रुतिकर्म्म समाचरेत् । गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत् ॥
गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च । पूजयेद् ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्रवस्वात्मकं शिवम्

व्रतोपवासैर्विधिवत् श्रद्धया च विमत्सरः ।
योऽसावतीन्द्रियः शान्तः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥
वासुदेवो जगन्मूर्त्तिस्तस्य सम्भूतयो ह्यमी ॥ २० ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्त्तण्डो वृषवाहनः । अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादशगणाधिपाः

लोकपालाधिपालैश्च पितरो मातरस्तथा ॥ २१ ॥

इमा विभूतयः प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः । ब्रह्माद्याश्चतुरो मूलमव्यक्ताधिपतिः स्मृतः ॥
ब्रह्मणा चाथ सूर्य्येण विष्णुनाथ शिवेन वा । अभेदात्पूजितेन स्यात्पूजितं सचराचरम्
ब्रह्मादीनां परन्धाम त्रयाणामपि संस्थितिः । वेदमूर्तावतः पूषा पूजनीयः प्रयत्नतः ।२४
तस्मादग्निद्विजमुखान् कृत्वा संपूजयेदिमान् । दानैर्व्रतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः ॥

इति क्रियायोगपरायणस्य वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य ।
विकर्म्मभीतस्य सदा न किञ्चित् प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कर्मयोगवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुराणसंख्यावर्णनम् ।

मुनय ऊचुः ।

पुराणसङ्ख्यामाचक्ष्व सूत ! विस्तरशः क्रमात् । दानधर्म्ममशेषन्तु यथावदनुपूर्वशः ॥

सूत उवाच ।

इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा । यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत ॥ २ ॥

मत्स्य उवाच ।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् । अनन्तरञ्चवक्त्रेभ्यो वेदास्तस्यविनिर्गताः
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ । त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥४
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया । अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणं न्यायविस्तरम्
मीमांसां धर्म्मशास्त्रञ्च परिगृह्य मया कृतम् । मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च । श्रुत्वा जगाद स मुनीन् प्रति देवान् चतुर्मुखः ॥
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः । कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप !
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे । चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥ ९ ॥

तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ १० ॥

तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण विशेषितम् । पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ! । ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।
ब्राह्मन्त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते । लिखित्वा तच्च योदद्याज्जलधेनुसमन्वितम् ॥

वैशाखपूर्णिमायाञ्च ब्रह्मलोके महीयते ॥१३॥

एतदेव यथा पद्मभूद्धैरण्मयं जगत् । तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥

पाद्मं तत् पञ्च पञ्चाशत् सहस्राणीह कथ्यते ॥१४॥

तत्पुराणञ्च यो दद्यात् सुवर्णकलशान्वितम् । ज्येष्ठेमासि तिलैर्युक्तमश्वमेधफलंलभेत्
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः । यत्प्राह धर्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवं विदुः ॥
तदाषाढ़े च यो दद्यात् घृतधेनुसमन्वितम् । पौर्णमास्यांविपूतात्मा स पदंयातिवारुणम्
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ॥१७॥ 23

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् । यत्र तद्वायवीयंस्यात् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ॥१८॥ 24

श्रावण्यां श्रावणे मासि गुड़धेनुसमन्वितम् । यो दद्यात् वृषसंयुक्तं ब्राह्मणायकुटुम्बिने
शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः ॥१९॥

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥२०॥
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः । तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ॥ 12
लिखित्वा तच्च योदद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् । पौर्णमास्यांप्रौष्ठपद्यां स यातिपरमांगतिम्
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रचक्षते ॥२२॥

यत्राह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पाश्रयाणिच । पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥ 25
तदिदं पञ्चदश्यान्तु दद्याद्धेनुसमन्वितम् । परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥
यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा । व्याख्यातावैमुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वंविस्तरेण तु । पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते॥२६॥ 9000
प्रतिलिख्यचयोदद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम् । कार्त्तिक्यांपुण्डरीकस्ययज्ञस्यफलभाग्भवेत्
यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च । वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते ॥
लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमपद्मसमन्वितम् । मार्गशीर्ष्यां विधानेन तिलधेनुसमन्वितम्
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥ २९ ॥ 16

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्यचतुर्मुखः । अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितिम्
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ॥ ३० ॥

चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानिच । भविष्यचरितप्रायं भविष्यन्तदिहोच्यते ॥३१॥
तत्पौषेमासियोदद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः । गुड़कुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलंभवेत् ॥

रथन्तरस्यकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च। सावर्णिर्नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदन्तं वर्णितं मुहुः। तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ॥ ३४ ॥
पुराणं ब्रह्मवैवर्त्तं यो दद्यान्माघमासि च। पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते॥३५
यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः। धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ॥
कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्तं पुराणंब्रह्मणा स्वयम्। तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति ॥
तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसाम्यताम् ॥ ३७ ॥
महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च। विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ॥
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्यमुनिसत्तमाः। चतुर्विंशत्सहस्राणि तत् पुराणमिहोच्यते ॥
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम्। पौर्णमास्यां मधौदद्यात् ब्राह्मणायकुटुम्बिने।
वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम् ॥ ४० ॥
यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः। कल्पे तत् पुरुषं वृत्तञ्चरितैरुपबृंहितम् ॥
स्कन्दं नाम पुराणञ्च ह्येकाशीति निगद्यते।
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ॥ ४२ ॥
परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम्। शैवं पदमवाप्नोति मीने चोपागते रवौ ॥
त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः। त्रिवर्गमभ्यधात्तञ्च वामनं परिकीर्त्तितम् ॥
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम्। यः शरद्विषुवे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौपदम्
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले। माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ॥
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ। अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ॥
यो दद्यादयने कूर्मं हेमकूर्मसमन्वितम्। गोसहस्रप्रदानस्य फलं सम्प्राप्नुयान्नरः ॥४८
श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्यर्थं जनार्दनः। मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम् ॥४९॥
अधिकृत्याऽब्रवीत्सप्तकल्पवृत्तंमुनीश्वराः। तन्मात्स्यमितिजानीध्वं सहस्राणिचतुर्दश
विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम्। योदद्यात्पृथिवी तेन दत्ताभवति चाखिला
यदाचगारुडेकल्पेविश्वाण्डात् गरुडोद्भवम्। अधिकृत्याऽब्रवीत्कृष्णोगारुडंतदिहोच्यते
तदष्टादशकञ्चैव सहस्राणीह पठ्यते। सौवर्णं हंससंयुक्तं यो ददाति पुमानिह ॥

स सिद्धिं लभते मुख्यां शिवलोके च संस्थितिम् ॥ ५३ ॥

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः । तच्चद्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डंद्विशताधिकम्
भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः । तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम्
यो दद्यात्तद्व्यतीपाते पीतोर्णायुगसंयुतम् । राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥
हेमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदम् ॥ ५६ ॥

चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्म्मणा । मत्पितुर्मम पित्रा च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥
इह लोकहितार्थाय संक्षिप्तं परमर्षिणा । इदमद्यापि देवेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥५८॥
उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः । पाद्मे पुराणे तत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्
तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ॥५९॥

नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते । नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते
यत्र शाम्बं पुरस्कृत्यभविष्येऽपिकथानकम् । प्रोच्यतेतत्पुनर्लोके शाम्बमेतन्मुनिव्रताः !
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः । धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम् ॥
एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगद्यते ॥ ६२ ॥

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणंयत्प्रदिश्यते । विजानीध्वंद्विजश्रेष्ठा ! स्तदेतेभ्योविनिर्गतम्
पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमिति स्मृतम् ।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणिच । वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥६४॥
ब्रह्मविष्णवर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्यच । ससंहारप्रदानाञ्च पुराणे पञ्चवर्णके ॥६५॥
धर्म्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते । सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धञ्चयत्फलम् ॥
सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः । राजसेषुच माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणोविदुः ॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्यच । संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणाञ्च निगद्यते ॥
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः । भारताख्यानमखिलञ्चक्रे तदुपबृंहितम् ।

लक्षैणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ॥ ६९ ॥
वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ।
ब्रह्मणाऽभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥७०॥

आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः। वाल्मीकिनाच्च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम्।
एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः ॥ ७१ ॥
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमाङ्गतिम् ॥ ७२ ॥
इदं पवित्रं यशसो निधानं इदं पितॄणामतिवल्लभञ्च।
इदञ्च देवेष्वमृतायितञ्च नित्यं त्विदं पापहरञ्च पुंसाम् ॥ ७३ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे पुराणसंख्यावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतकथनम्।

सूत उवाच।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषतः। व्रतोपवाससंयुक्तान् यथा मत्स्योदितानिह ।१।
महादेवस्य संवादे नारदस्य च धीमतः। यथा वृत्तं प्रवक्ष्यामि धर्म्मकामार्थसाधकम्॥
कैलासशिखरासीनमपृच्छन्नारदः पुरा। त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गाङ्गहरं हरम् ॥ ३ ॥

नारद उवाच।

भगवन्! देव! देवेश! ब्रह्मविष्ण्विन्द्रनायक!। श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्तः कथं भवेत् ॥ ४ ॥
नारीवाविधवासर्वगुणसौभाग्यसंयुता। क्रमान्मुक्तिप्रदन्देव! किञ्चिद्व्रतमिहोच्यताम्

ईश्वर उवाच।

सम्यक् पृष्टंत्वयाब्रह्मन्! सर्वलोकहितावहम्। श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद्व्रतंशृणुनारद!
नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतं नारायणात्मकम्। पादादि कुर्याद्विधिवत् विष्णुनामानुकीर्तनम्॥
प्रतिमां वासुदेवस्यमूलर्क्षादिषु चार्चयेत्। चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥

मूले नमो विश्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।
जङ्घेऽभिपूज्ये वरदाय चैव द्वे जानुनी वाश्विकुमार ऋक्षे ॥ ६ ॥
पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ ।
पूर्वोत्तराफल्गुनि युग्मके च मेढ्रं नमः पञ्चशराय पूज्यम् ॥ १० ॥
कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः संपूजयेन्नारद ! कृत्तिकासु ।
यथाऽर्चयेत् भाद्रपदाद्वये च पार्श्वे नमः केशिनिषूदनाय ॥ ११ ॥
कुक्षिद्वयं नारद ! रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय नमस्तथोरस्थलमेव पूज्यम् ॥ १२ ॥
पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वंसकराय तच्च ।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः ॥ १३ ॥
हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः ।
पुनर्वसावङ्गुलिपूर्वभागाः साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः ॥ १४ ॥
भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि संपूजयेन्मत्स्यशरीरभाजः ।
कूर्मस्य पादौ शरणं व्रजामि ज्येष्ठासु कण्ठे हरिरर्चनीयः ॥ १५ ॥
श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्या जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक् ।
पुष्ये मुखं दानवसूदनाय नमो नृसिंहाय च पूजनीयम् ॥ १६ ॥
नमोनमः कारणवामनाय स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयम् ।
आस्यं हरेर्भार्गवनन्दनाय सम्पूजनीयं द्विजवारणे तु ॥ १७ ॥
नमोऽस्तु रामाय मघासु नासा संपूजनीया रघुनन्दनस्य ।
मृगोत्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्ये नमोऽस्तुते रामविघूर्णिताक्ष ! ॥ १८ ॥
बुद्धाय शान्ताय नमो ललाटं चित्रासु संपूज्यतमं मुरारेः ।
शिरोऽभिपूज्यं भरणीषु विष्णोर्नमोऽस्तु विश्वेश्वर ! कल्किरूपिणे ॥ १६ ॥
आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य संपूजनीया हरये नमस्ते ।
उपोषिते नक्षदिनेषु भक्त्या संपूजनीया द्विजपुङ्गवाः स्युः ॥ २० ॥

पूर्णे व्रते सर्वगुणान्विताय वाग्रूपशीलाय च सामगाय ।
हैमीं विशालायतबाहुदण्डां मुक्ताफलेन्दूपलवज्रयुक्ताम् ॥ २१ ॥
जलस्य पूर्णे कलशे निविष्टामर्चां हरेर्वस्त्रगवा सहैव ।
शय्यां तथोपस्करभाजनादियुक्तां प्रदद्याद् द्विजपुङ्गवाय ॥ २२ ॥
यद्यस्ति यत्किञ्चिदिहास्ति देयं दद्याद् द्विजायात्महिताय सर्वम् ।
मनोरथं नः सफलीकुरुष्व हिरण्यगर्भाच्युत ! रुद्ररूपिन् ! ॥ २३ ॥
सलक्ष्मीकंसभार्याय काञ्चनंपुरुषोत्तमम् । शय्यांच दद्यान्मन्त्रेण ग्रन्थिभेदविवर्जितम् ॥
यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायतेक्वचित् । तथा सुरूपतारोग्यंकेशवे भक्तिमुत्तमाम्॥
यथा न लक्ष्म्याशयनं तवशून्यंजनार्दन! ।शय्या ममाप्यशून्यास्तुकृष्ण ! जन्मनिजन्मनि॥
एवं निवेद्य तत्सर्वं वस्त्रमाल्यानुलेपनम् । नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाथ विसर्जयेत् ॥२७॥
भुञ्जीतातैललवणं सर्वर्क्षेष्वप्युपोषितः । भोजनञ्च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥
इतिनक्षत्रपुरुषं उपास्यविधिवत् स्वयम् । सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकेमहीयते ॥
ब्रह्महत्यादिकंकिञ्चिदिह वामुत्रवाकृतम् । आत्मना वाथ पितृभिस्तत्सर्वं क्षयमाप्नुयात्
इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या पुरुषवरो व्रतमङ्गनाऽथ कुर्यात् ।
कलिकलुषविदारणं मुरारेः सकलविभूतिफलप्रदञ्च पुंसाम् ॥३१॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतकथने चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदित्यशयनव्रतकथनम् ।

नारद उवाच ।

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः । अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुत्तमम् ॥१॥

ईश्वर उवाच ।

उपवासेऽप्यशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते । यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत् ॥२॥
आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्करार्चनम् । येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥३॥

यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।
सूर्य्यस्य चाथ संक्रान्तिस्तिथिः सा सार्वकामिकी ॥ ४ ॥

उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत् सूर्यनामभिः । सूर्य्यार्चां शिवलिङ्गे च प्रकुर्वन् पूजयेद्यतः ॥
उमापतेरवेर्वापि न भेदो दृश्यते क्वचित् । यस्मात्तस्मान्मुनिश्रेष्ठ! गृहे शम्भुं समर्चयेत् ॥

हस्ते च सूर्य्याय नमोऽस्तु पादावर्काय चित्रासु च गुल्फदेशम् ।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय धात्रे विशाखासु च जानुदेशम् ॥ ७ ॥
तथानुराधासु नमोऽभिपूज्यमूरुद्वयञ्चैव सहस्रभानोः ।
ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्यमिन्द्राय सोमाय कटी च मूले ॥ ८ ॥
पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिन्त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय ॥ ९ ॥
चक्षुस्थलं ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपर्क्षे परिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदाद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ ॥ १० ॥
साम्नामधीशाय करद्वयञ्च संपूजनीयं द्विज ! रेवतीषु ।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय ॥ ११ ॥
कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीया ।
ग्रीवाग्नि ऋक्षे धरमम्बुजेशे संपूजयेन्नारद! रोहिणीषु ॥१२ ॥
मृगोत्तमाङ्गे दशना मुरारेः संपूजनीया हरये नमस्ते ।
नमः सवित्रे रसनां शङ्करे च नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥ १३ ॥
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्पेलकावेदशरीरधारिणे ।
शार्पेऽथ मौलिं विबुधप्रियाय मघासु कर्णाविति गोगणेशे ॥ १४ ॥
पूर्वासु गोब्राह्मणवन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः ।

अथोत्तराफल्गुनि भे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥१५॥
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशशूलपद्मकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥
इत्यादि चास्त्राणि च पूज्य नित्यं विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूज्य ।
भोक्तव्यमत्रैवमतैलशाकममांसमक्षारमभुक्तशेषम् ॥ १७ ॥

इत्येवं द्विज! नक्तानि कृत्वा दद्यात्पुनर्वशी । शालेयतण्डुलप्रस्थमौदुम्बरमये घृतम् ॥१८॥
संस्थाप्य पात्रे विप्राय स हिरण्यं निवेदयेत् । सप्तमे वस्त्रयुग्मञ्च पारणे त्वधिकंभवेत्
चतुर्दशे तु संप्राप्ते पारणे नारदाब्दिके । ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या गुड़क्षीरघृतादिभिः ॥
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् । शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम् ॥२१
शय्यांविलक्षणांकृत्वा विरुद्धग्रन्थिवर्जिताम् । सोपधानकविश्रामस्वास्तरव्यजनानिच॥
भाजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः । भूषणैरपिसंयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥ २३ ॥

तस्यां विधाय तत् पद्ममलङ्कृत्य गुणान्वितम् ।
कपिलां वस्त्रसंयुक्तां सुशीलाञ्च पयस्विनीम् ॥ २४ ॥

रौप्यखुरीं हैमशृङ्गीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् । दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे नचैनामभिलङ्घयेत्
यथैवादित्यशयनमशून्यं तव सर्वदा । कान्त्या धृत्या श्रिया रत्या तथा मे सन्तुसिद्धयः
यथा न देवाः श्रेयांसं त्वदन्यमनघं विदुः । तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् । शय्यागवादि तत्सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत्॥

नैतद्विशीलाय न दाम्भिकाय कुतर्कदुष्टाय विनिन्दकाय ।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेर्यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते ॥२९॥
भक्ताय दान्ताय च गुह्यमेतदाख्येयमानन्दकरं शिवस्य ।
इदं महापातकभिन्नराणामप्यक्षरं वेदविदो वदन्ति ॥३०॥
न बन्धुपुत्रेण बलैर्वियुक्तः पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम् ।
नाभ्येति रोगं न च शोकदुःखं या वाऽथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या ॥३१॥
इदं वसिष्ठेन पुरार्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण ।

यत्कीर्तनेनाप्यखिलानि नाशमायान्ति पापानि न संशयोऽस्ति ॥३२॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं रविशयनं पुरुहुतवल्लभः स्यात् ।
अपि नरकगतान् पितॄनशेषानपि दिवमानयतीह यः करोति ॥३३॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे आदित्यशयनव्रतकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कृष्णाष्टमीव्रतकथनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

कृष्णाष्टमीमथो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम् । शान्तिर्मुक्तिश्चभवति जयः पुंसांविशेषतः
शङ्करं मार्गशिरसि शम्भुं पौषेऽभिपूजयेत् । माघे महेश्वरं देवं महादेवञ्च फाल्गुने ॥२॥
स्थाणुं चैत्रे शिवं तद्वद्वैशाखे त्वर्चयेन्नरः । ज्यैष्ठे पशुपतिं चार्चेदाषाढे उग्रमर्चयेत् ॥३॥
पूजयेत् श्रावणे सर्वं नभस्ये त्र्यम्बकं तथा । हरमाश्वयुजे मासि तथेशानञ्च कार्तिके ॥
कृष्णाष्टमीषुसर्वासु शक्तःसम्पूजयेद्द्विजान् । गोभूहिरण्यवासोभिः शिवभक्तानुपोषितः
गोमूत्रघृतगोक्षीरतिलान् यवकुशोदकम् । गोशृङ्गोदशिरीषार्कविल्वपत्रदधीनि च ॥
पञ्चगव्यञ्च सम्प्राश्य शङ्करं पूजयेन्निशि ॥ ६ ॥
अश्वत्थं च वटं चैवोदुम्बरं प्लक्षमेव च । पलाशं जम्बुवृक्षञ्च विदुषञ्च महर्षयः ॥ ७ ॥
मार्गशीर्षाढमासाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामितिक्रमात् । एकैकंदन्तपवनं वृक्षेष्वेतेषु भक्षयेत्
देवाय दद्यादर्घ्यं च कृष्णाङ्गां कृष्णवाससम् । दद्यात्समाप्ते दध्यन्नं वितानध्वजचामरम्
द्विजानामुदकुम्भांश्च पञ्चरत्नसमन्वितान् । गावःकृष्णाः सुवर्णञ्च वासांसिविविधानिच
अशक्तस्तु पुनर्दद्याद्गामेकामपि शक्तितः ॥१०॥
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन्दोषमवाप्नुयात् । कृष्णाष्टमीमुपोष्यैव सप्तकल्पशतत्रयम्
पुमान् सम्पूजितो देवैः शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे कृष्णाष्टमीव्रतकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतकथनम् ।

नारद उवाच ।

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्तः पुमान् भूपकुलायुतः स्यात् ।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक् व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले ! ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ।

त्वया पृष्टमिदं सम्यक् उक्तश्चाक्षय्यकारकम् । रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः
रोहिणीचन्द्रशयनं नामव्रतमिहोत्तमम् । तस्मिन्नारायणस्यर्चामर्चयेदिन्दुनामभिः ॥३॥
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् । अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते
तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः । आप्यायस्वेति तु जपेत् विद्वानष्टशतं पुनः ।
शूद्रोऽपि परया भक्त्यापाषण्डालापवर्जितः । सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः
कृतजप्यः स्वभवनादागत्य मधुसूदनम् । पूजयेत् फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ।७।

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजङ्घे ।
ऊरुद्वयञ्चापि जलोदराय संपूजयेन्मेढ्रमनन्तबाहवे ॥८॥
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया ।
तथोदरञ्चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या ॥९॥
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखञ्च पूज्यं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।
हास्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय ॥१०॥
नासा च नाथाय वनौषधीनां आनन्दभूताय पुनर्भ्रुवौ च ।
नेत्रद्वयं पद्मनिभन्तथेन्दोरिन्दीवरश्यामकराय शौरेः ॥११॥
नमः समस्ताध्वरवन्दिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥१२॥

शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने ।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मीः सौभाग्यसौख्यामृतचारुकाये ॥१३॥
देवीं च संपूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यपुष्पादिभिरिन्दुपत्नीम् ।
सुप्त्वाऽथ भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥१४॥
देयः प्रभाते सहिरण्यवारिकुम्भो नमः पापविनाशनाय ।
संप्राश्य गोमूत्रममांसमन्नमक्षारमष्टावथ विंशतिश्च ॥
ग्रासान् पयः सर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं शृणुयान् मुहूर्त्तम् ॥१५॥
कदम्बनीलोत्पलकेतकानि जातीसरोजं शतपत्रिका च ।
अम्लानकुब्जान्यथ सिन्दुवारं पुष्पं पुनर्नारद ! मल्लिकायाः ॥
शुभ्रञ्च विष्णोः करवीरपुष्पं श्रीचम्पकं चन्द्रमसः प्रदेयम् ॥१६॥

श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा । यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्तत्पुष्पैरर्चयेद्धरिम्
एवं संवत्सरं यावदुपास्य विधिवन्नरः । व्रतान्ते शयनं दद्यात् दर्पणोपस्करान्वितम् ॥
रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वाऽथ काञ्चनम् । चन्द्रः षडङ्गुलःकार्यो रोहिणी चतुरङ्गुला
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम् । क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम् ॥
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे शालीक्षुफलसंयुतम् ॥ २० ॥
श्वेतामथ सुवर्णास्यां खुरैरौप्यैः समन्विताम् । सवस्त्रभाजनांधेनुंतथाशङ्खञ्चशोभनम्
भूषणैर्द्विजदाम्पत्यमलङ्कृत्य गुणान्वितम् । चन्द्रोऽहं द्विजरूपेण सभार्य्यं इतिकल्पयेत्
यथा न रोहिणीकृष्णशय्यांसन्त्यज्यगच्छति । सोमरूपस्यतेतद्वन्ममाभेदोऽस्तुभूतिभिः
यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः । भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु मेसदा
इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ !। रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् ।२५॥
इदमेव पितॄणां च सर्वदा वल्लभं मुने !। त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम् ॥
चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद् भूत्वा तु मुच्यते ॥ २६ ॥
नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत् । साऽपितत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्
इति पठति शृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तनेन नित्यम् ।

मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरैर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तड़ागारामकूपादीनां प्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

जलाशयगतं विष्णुमुवाच रविनन्दनः । तड़ागारामकूपानां वापीषु नलिनीषु च ॥ १ ॥
विधिं पृच्छामि देवेश ! देवतायतनेषु च । के तत्र चर्त्विजोनाथ ! वेदी वा कीदृशीभवेत
दक्षिणावलयः कालः स्थानमाचार्य्यएवच । द्रव्याणिकानि शस्तानिसर्वमाचक्ष्वतत्त्वतः

मत्स्य उवाच ।

शृणुराजन्महाबाहो ! तड़ागादिषुयो विधिः । पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यतेवेदवादिभिः
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे तड़ागस्य समीपतः । चतुर्हस्तां शुभां वेदिं चतुरस्रां चतुर्मुखाम् ॥
तथा षोड़शहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः । वेद्याश्च परितोगर्ता रत्निमात्रास्ति मेखलाः
नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज !।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलिविस्तृता ॥ ८ ॥
गर्ताश्चतस्रःशस्ताःस्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः। सर्वतस्तुसवर्णाःस्युःपताकाध्वजसंयुताः
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु । मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥
शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै । अष्टौ तु जापकाःकार्य्याःब्राह्मणावेदपारगाः
सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः । कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाःस्याद्द्विजोत्तमः
प्रतिगर्त्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च । व्यजनञ्चामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते ॥ १३॥
ततस्त्वनेकवर्णा[illegible] प्रतिदैवतम् । आचार्य्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः

त्र्यरत्निमात्रोयूपःस्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मितः। यजमानप्रमाणोवासंस्थाप्योभूतिमिच्छता हेमालङ्कारिणः कार्य्याः पञ्चविंशति ऋत्विजः। कुण्डलानिचहैमानि केयूरकटकानि च तथाङ्गुलयः पवित्राणिवासांसिविविधानिच। पूजयेत्तु समंसर्वानाचार्य्या द्विगुणंपुनः दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत् प्रियम्। सौवर्णकूर्म्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुन्दुभौ ताम्रौ कुलीरमण्डूकावायसः शिशुमारकः। एवमासाद्य तत्सर्वमादावेव विशाम्पते !॥ शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः। सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः॥१९॥ यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः। पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम्॥ ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निस्वनेन च। अञ्जसा मण्डलं कुर्य्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् षोड़शारन्ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम्। चतुरस्रञ्च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम्॥२२॥

वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहान् लोकपतींस्ततः।
सन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः॥ २३॥

कूर्मादि स्थापयेन्मध्ये वारुण्यां मन्त्रमाश्रितः। ब्रह्माणञ्चशिवंविष्णुं तत्रैवस्थापयेद्बुधः विनायकञ्च विन्यस्य कमलामम्बिकां तथा। शान्त्यर्थंसर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवंकृत्वाऽधिवासनम्। कुम्भान्सजलगर्भांस्तान्वासोभिःपरिवेष्टयेत् पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः। पठध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत् बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ। सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वथर्वणौ॥ उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्। यजध्वमितितान्ब्रूयाद् हौत्रिकान्पुनरेव तु

उत्कृष्टान् मन्त्रजापेन तिष्ठध्वमिति जापकान्।
एवमादिश्य तान् सर्वान् पर्युक्ष्याग्निं स मन्त्रवित्॥ ३०॥

जुहुयाद्वारुणैर्मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा। ऋत्विग्भिश्चाथ होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः ग्रहेभ्यो विधिवद्धुत्वातथेन्द्रायेश्वराय च। मरुद्भ्योलोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्मणे रात्रिसूक्तञ्च रौद्रञ्च पावमानं सुमङ्गलम्। जपेयुः पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बह्वृचाः पृथक्॥ शाक्रं रौद्रञ्च सौम्यंच कूष्माण्डं जातवेदसम्। सौरसूक्तं जपेन्मन्त्रं दक्षिणेन यजुर्विदः वैराज्यं पौरुषं सूक्तं सौवर्णं रुद्रसंहिताम्। शैशवं पञ्च निधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च॥

वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं सरथन्तरम् । गवां व्रतं च काण्वञ्च रक्षोघ्नं वयसस्तथा ॥
गायेयुः सामगा राजन् ! पश्चिमं द्वारमाश्रिताः ॥ ३६ ॥
अथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा । जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुणं प्रभुम् ॥
पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनम् । गजाश्वरथ्यावल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा ॥ ३८ ॥
रोचनाञ्च ससिद्धार्थां गन्धं गुग्गुलमेव च । स्नपनं तस्य कर्तव्यं पञ्चभङ्गसमन्वितम् ॥
प्रत्येकन्तु महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः । एवं क्षपातिवाह्याथ विधियुक्तेन कर्मणा ॥
ततः प्रभाते विमले सञ्जातेऽथ शतं गवाम् । ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्टिश्च वा पुनः ॥
पञ्चाशद्वाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशतिरप्यथ ॥ ४१ ॥
ततः साम्वत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने । वेदशब्दैश्च गान्धर्वैर्वाद्यैश्च विविधैः पुनः ॥
कनकालङ्कृतां कृत्वा जले गामवतारयेत् । सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशाम्पते
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम् । ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः
धृतां चतुर्विधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४४ ॥
महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम् । उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत् ॥४५
आथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामेत्यथेति च । आपो हिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डलम्
पूजयित्वा सरस्तत्र वलिं दद्यात् समन्ततः । पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः!
चतुर्थी कर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः । दक्षिणा राजशार्दूल ! वरुणक्ष्मापनं ततः ॥
कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च । ऋत्विग्भ्यस्तु समंदत्त्वामण्डपं विभजेत्पुनः
हेमपात्रीञ्च शय्याञ्च स्थापकाय निवेदयेत् ॥ ४६ ॥
ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा । भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद्वाथ विंशतिः ॥
एवमेषु पुराणेषु तडागविधिरुच्यते ॥ ५० ॥
कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च । एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥
मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात् प्रसादोद्यानभूमिषु । अयन्त्वशक्तावर्द्धेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा
अल्पेष्वेकाग्निवत्कृत्वा वित्तशाठ्यादृते नृणाम् ॥ ५२ ॥

प्रावृट्काले स्थिते तोये ह्यग्निष्टोमफलं स्मृतम् ।
शरत्काले स्थितं यत् स्यात् तदुक्तफलदायकम् ।
वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्ते शिशिरे स्थितम् ॥ ५३ ॥
अश्वमेधसमं प्राह वसन्तसमयेस्थितम् । ग्रीष्मेऽपि तत् स्थितन्तोयं राजसूयाद्विशिष्यते
एतान्महाराज ! विशेषधर्मान् करोति योऽप्यागमशुद्धबुद्धिः ।
स याति रुद्रालयमाशु पूतः कल्पाननेकान् दिवि मोदते च ॥ ५५ ॥
अनेकलोकान् स महत्तमादीन् भुक्त्वा परार्द्धद्वयमङ्गनाभिः ।
सहैव विष्णोः परमम्पदं यत् प्राप्नोति तद्यागफलेन भूयः ॥ ५६ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे तड़ागारामकूपादीनां प्रतिष्ठाविधिवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

पादपोद्यापनविधिवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

पादपानां विधिं सूत ! यथावद्विस्तराद्वद । विधिना केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः ॥
ये च लोकाः स्मृतास्तेषान्तानिदानीं वदस्व नः ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु । तडागविधिवत् सर्वमासाद्य जगदीश्वर ! ॥
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारश्चाचार्यश्चैव तद्विधः । पूजयेत् ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः ।३॥
सर्वौषध्युदकैःसिक्तान्पिष्टातकविभूषितान् । वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्
सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् । अञ्जनञ्चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया ॥
फलानि सप्त चाष्टौवाकालधौतानिकारयेत् । प्रत्येकंसर्ववृक्षाणां वेद्यान्तान्यधिवासयेत्
धूपोऽत्रगुग्गुलःश्रेष्ठःताम्रपात्रैरधिष्ठितान् । सर्वान्धान्यस्थितान्कृत्वावस्त्रगन्धानुलेपनैः

कुम्भान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर ! । सहिरण्यानशेषांस्तान्कृत्वा बलिनिवेदनम्
यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषतः । वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्यो द्विजातिभिः
ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम् । सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम्
पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेत् गामुदङ्मुखीम् ॥ १० ॥
ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः । ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा ॥
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्यात् ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ ११ ॥
स्नातः शुक्लाम्बरस्तद्वद्यजमानोऽभिपूजयेत् । गोभिर्विभवतःसर्वानृत्विजस्तान्समाहितः
हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकैः । वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः ॥
क्षीरेण भोजनं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ १३ ॥
होमश्च सर्षपैः कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा । पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः
दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रापि शक्तितः ॥ १४ ॥
यद्यदिष्टतमं किञ्चित् तत्तद् दद्यादमत्सरी । आचार्ये द्विगुणं दद्यात्प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् वृक्षोत्सवं बुधः । सर्वान्कामानवाप्नोति फलञ्चानन्त्यमश्नुते
यश्चैकमपि राजेन्द्र ! वृक्षं संस्थापयेन्नरः । सोऽपि स्वर्गे वसेद्राजन् ! यावदिन्द्रायुतत्रयम्
भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्द्रुमसंमितान् । परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । सोऽपि संपूजितो देवैर्ब्रह्मलोके महीयते ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे पादपोद्यापनविधिवर्णनं नामोनषष्टितमोऽध्यायः ।

षष्टितमोऽध्यायः

सौभाग्यशयनव्रतकथनम् ।

मत्स्य उवाच ।

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ॥
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु । सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत्तदा ॥

वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षस्थलस्थितम् ॥ २ ॥
ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप !। अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते ॥ ३ ॥
स्पर्धायाञ्च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः । लिङ्गाकारासमुद्भूता वह्नेर्ज्वालातिभीषणा
तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिःसृतम् ॥ ४ ॥
वक्षस्थलंसमाश्रित्यविष्णोःसौभाग्यमास्थितम्। रसरूपन्ततोयावत्प्राप्नोतिवसुधातलम्
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद्ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
दक्षेण पीतमात्रन्तद्रूपलावण्यकारकम् ॥ ६ ॥
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यदपतद्भूमावष्टधा समजायत ॥ ७ ॥
ततोजनानांसञ्जाताःसप्तसौभाग्यदायकाः । इक्षवोरसराजाश्चनिष्पावाजाजिधान्यकम्।
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा । लवणं चाष्टमन्तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥
पीतं यत् ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुनः । दुहिता साऽभवत्तस्य या सतीत्यभिधीयते ।
लोकानतीत्य लालित्यात् ललिता तेन चोच्यते ।
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् ॥ ११ ॥
यादेवीसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । तामाराध्य पुमान् भक्त्यानारीवाकिन्नविन्दति

मनुरुवाच ।

कथमाराधनं तस्या जगद्धात्र्या जनार्दन! । तद्विधानं जगन्नाथ! तत् सर्वञ्च वदस्व मे ॥

मत्स्य उवाच ।

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिय!। शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥
तस्मिन्नहनि सादेवी किल विश्वात्मना सती । पाणिग्रहणकैर्मन्त्रैरवसद्वरवर्णिनी ॥१५॥
तया सहैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत् । फलैर्नानाविधैर्धूपैर्दीपनैवेद्यसंयुतैः ॥ १६ ॥
प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन तु । स्नापयित्वाऽर्चयेत् गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम्॥
नमोऽस्तुपाटलायैतुपादौदेव्याःशिवस्यतु । शिवायेतिचसंकीर्त्यजयायैगुल्फयोर्द्वयोः ॥
त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्युगम् । शिवां रुद्रेश्वरायै च विजयायेति जानुनी ।
सङ्कीर्त्य हरिकेशाय तथोरू वरदे नमः ॥ १९ ॥

ईशायैच कटिं देव्याः शङ्करायेति शङ्करम्। कुक्षिद्वयञ्च कोटव्यै शूलिने शूलपाणये ॥२०
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुन्दरं चाभि पूजयेत्। सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यैच कुचद्वयम् ॥
शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत्। त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम् ॥२२॥
त्रिलोचनाय च हरं बाहुकालानलप्रिये। सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत्।

स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम् ॥ २३ ॥

अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ। स्थाणवेतु हरं तद्वद्वास्यं चन्द्रमुखप्रिये।
नमोऽर्द्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम्। नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यैतु तथालकान्। नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत्

भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्व्वात्मने नमः ॥ २६ ॥

शिवमभ्यर्च्यविधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः। स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान् ॥

रसराजञ्च लवणं कस्तुम्बरुमथाष्टकम्।

दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः ॥ २८ ॥

एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः। रात्रौ शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद् भूमावरिन्दम् !॥
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः। संपूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम्। प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
एवंसम्वत्सरंयावत्तृतीयायांसदामनो !। कर्त्तव्यंविधिवद्भक्त्यासर्वसौभाग्यमीप्सुभिः।
प्राशने दानमन्त्रेच विशेषोऽयन्निबोधमे। शृङ्गोदकञ्चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः ॥३३
ज्येष्ठेमन्दारकुसुमं विल्वपत्रं शुचौस्मृतम्। श्रावणेदधि सम्प्राश्यं नभस्येचकुशोदकम् ॥
क्षीरमाश्वयुजेमासि कार्तिके पृषदाज्यकम्। मार्गेमासेतु गोमूत्रंपौषे संप्राशयेद्घृतम् ॥
माघे कृष्णतिलंतद्वत् पञ्चगव्यञ्च फाल्गुने। ललिताविजया भद्राभवानी कुमुदाशिवा ॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती। उमाच दानकालेतु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥
मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालतीः। कुब्जकं करवीरञ्च वाणमम्लामकुङ्कुमम् ॥३८॥
सिन्दुवारञ्च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम्। जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका ॥
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरञ्च सर्वदा। एवं सम्वत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः ॥४०॥

स्त्रीभक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः ।
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ४१
उमा महेश्वरं हैमं वृषभञ्च गवा सह । स्थापयित्वाऽथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ४२॥
अन्यान्यपि यथाशक्त्या मिथुनान्यम्बरादिभिः । धान्यालङ्कारगोदानैरभ्यर्चेद्धनसञ्चयैः ॥
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेत् गतविस्मयः ॥ ४३ ॥
एवं करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् । सर्वान् कामानवाप्नोति पदमत्यन्तमश्नुते
फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ४४ ॥
य इच्छन् कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासंनराधिपः । सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
न वियुक्तो भवेद्राजन् ! नवार्बुदशतत्रयम् ॥ ४५ ॥
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् । करोति सप्त चाष्टौवा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः ।
पूज्यमानो वसेत् सम्यक् यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥ ४६ ॥
नारीवा कुरुते वापि कुमारीवा नरेश्वर ! । सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥
शृणुयादपियश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् । सोऽपिविद्याधरो भूत्वास्वर्गलोके चिरंवसेत् ॥
इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं शतधनुषा कृतवीर्यसूनुना च ।
कृतमथ वरुणेन नन्दिना वा किमु जननाथ ततो यदुद्भवः स्यात् ॥४६॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे सौभाग्यशयनव्रतकथनं नाम षष्टितमोऽध्यायः

एकषष्टितमोऽध्यायः

सप्तलोकाधिपत्यप्राप्तिव्रतकथनम् ।

नारद उवाच ।

भूलोकोऽथभुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथमहर्जनः । तपः सत्यश्च सप्तैतेदेवलोकाःप्रकीर्तिताः ॥
पर्यायेणतु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत् । इह लोके शुभं रूपमायुः सौभाग्यमेव च ।
लक्ष्मीश्च विपुला नाथ ! कथं स्यात् पुरसूदन ! ॥ २ ॥

ईशायैच कटिं देव्याः शङ्करायेति शङ्करम् । कुक्षिद्वयञ्च कोटव्यै शूलिने शूलपाणये ॥२०
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुन्दरं चाभि पूजयेत् । सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यैच कुचद्वयम् ॥
शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत् । त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम् ॥२२॥
त्रिलोचनाय च हरं बाहुकालानलप्रिये । सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत् ।

स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम् ॥ २३ ॥

अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ । स्थाणवेतु हरं तद्वद्वास्यं चन्द्रमुखप्रिये ।
नमोऽर्द्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम् । नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यैतु तथालकान् । नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत्

भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्व्वात्मने नमः ॥ २६ ॥

शिवमभ्यर्च्यविधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः । स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान् ॥

रसराजञ्च लवणं कस्तुम्बरुमथाष्टकम् ।
दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः ॥ २८ ॥

एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः । रात्रौ शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद् भूमावरिन्दम !॥
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः । संपूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम् । प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
एवंसम्वत्सरंयावत्तृतीयायांसदामनो !। कर्त्तव्यंविधिवद्भक्त्यासर्वसौभाग्यमीप्सुभिः ।
प्राशने दानमन्त्रेच विशेषोऽयन्निबोधमे । शृङ्गोदकञ्चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः ॥३३
ज्येष्ठेमन्दारकुसुमं विल्वपत्रं शुचौस्मृतम् । श्रावणेदधि सम्प्राश्यं नभस्येचकुशोदकम् ॥
क्षीरमाश्वयुजेमासि कार्तिके पृषदाज्यकम् । मार्गेमासेतु गोमूत्रंपौषे संप्राशयेद्घृतम् ॥
माघे कृष्णतिलंतद्वत् पञ्चगव्यञ्च फाल्गुने । ललिताविजया भद्राभवानी कुमुदाशिवा ॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती । उमाच दानकालेतु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥
मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालतीः । कुब्जकं करवीरञ्च वाणमम्लानकुङ्कुमम् ॥३८॥
सिन्दुवारञ्च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् । जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका ॥
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरञ्च सर्वदा । एवं सम्वत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः ॥४०॥

स्त्रीभक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः ।
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ४१
उमा महेश्वरं हैमं वृषभञ्च गवा सह । स्थापयित्वाऽथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ४२॥
अन्यान्यपि यथाशक्त्या मिथुनान्यम्बरादिभिः । धान्यालङ्कारगोदानैरभ्यर्चेद्धनसञ्चयैः ॥
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेत् गतविस्मयः ॥ ४३ ॥
एवं करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् । सर्वान् कामानवाप्नोति पदमत्यन्तमश्नुते
फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ४४ ॥
य इच्छन् कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासंनराधिपः । सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
न वियुक्तो भवेद्राजन् ! नवार्बुदशतत्रयम् ॥ ४५ ॥
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् । करोति सप्त चाष्टौवा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः ।
पूज्यमानो वसेत् सम्यक् यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥ ४६ ॥
नारीवा कुरुते वापि कुमारीवा नरेश्वर ! । सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥
शृणुयादपियश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् । सोऽपिविद्याधरो भूत्वास्वर्गलोके चिरंवसेत् ॥
इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं शतधनुषा कृतवीर्यसूनुना च ।
कृतमथ वरुणेन नन्दिना वा किमु जननाथ ततो यदुद्भवः स्यात् ॥४६॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे सौभाग्यशयनव्रतकथनं नाम षष्टितमोऽध्यायः

एकषष्टितमोऽध्यायः

सप्तलोकाधिपत्यप्राप्तिव्रतकथनम् ।

नारद उवाच ।

भूर्लोकोऽथभुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथमहर्जनः । तपः सत्यञ्च सप्तैतेदेवलोकाःप्रकीर्तिताः ॥
पर्यायेणतु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत् । इह लोके शुभं रूपमायुः सौभाग्यमेव च ।
लक्ष्मीश्च विपुला नाथ ! कथं स्यात् पुरसूदन ! ॥ २ ॥

पुरा हुताशनः सार्द्धं मारुतेन महीतले। आदिष्टः पुरुहूतेन विनाशाय सुरद्विषाम् ॥ ३ ॥
निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः। तारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रः परावसुः।
विरोचनश्च संग्रामादपलायंस्तपोधन ॥ ४ ॥
अम्भः सामुद्रमाविश्य सन्निवेशमकुर्वत। अशक्याइति तेऽप्यग्निमारुताभ्यामुपेक्षिताः॥
ततः प्रभृति तेदेवान् मनुष्यान् सह जङ्गमान्। संपीड्य च मुनीन् प्रविशन्ति पुनर्जलम्
एवं वर्षसहस्राणि वीराः पञ्च च सप्त च। जलदुर्गबलाद्ब्रह्मन्! पीडयन्ति जगत्त्रयम्।
ततः परमथोवह्निमारुतावमराधिपः। आदिदेश चिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम् ॥८॥
यस्मादस्माद्द्विषामेष शरणं वरुणालयः। तस्माद्भवद्भ्यामद्यैव क्षयमेष प्रणीयताम् ॥९॥
तावूचतुस्ततः शक्रमुभौ शम्वरसूदनम्। अधर्म्म एष देवेन्द्र! सागरस्य विनाशनम्॥
यस्माज्जीवनिकायस्य महतः संक्षयो भवेत्। तस्मान्न पापमद्यावाङ्कुर्वावः पुरन्दर!॥
अस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानिच। निवसन्ति सुरश्रेष्ठ! सकथं नाशमर्हति॥
एवमुक्तः सुरेन्द्रस्तु कोपात् संरक्तलोचनः। उवाचेदं वचोरोषान्निर्दहन्निवपावकम्॥
न धर्माधर्मसंयोगंप्राप्नुवन्त्यमराःक्वचित्। भवतस्तुविशेषेण माहात्म्यञ्चाधितिष्ठति।
मदाज्ञालङ्घनं यस्मान्मारुतेन समन्त्वया। मुनिव्रतमहिंसादि परिगृह्य त्वया कृतम्॥
धर्मार्थशास्त्ररहितं शत्रुं प्रति विभावसो! ॥
तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेण मानुषे। मारुतेन समं लोके तव जन्म भविष्यति ॥१६॥
यदाचमानुषत्वेऽपित्वयाऽगस्त्येनशोषितः। भविष्यत्युदधिर्वह्ने! तदादेवत्वमाप्स्यसि
इतीन्द्रशापात् पतितौ तत्क्षणात्तौ महीतले। अवाप्तावेकदेहेन कुम्भाज्जन्म तपोधन!॥
मित्रावरुणयोर्व्वीर्य्याद्वसिष्ठस्यानुजोऽभवत्। अगस्त्य इत्युग्रतपाः सम्बभूव पुनर्मुनिः॥

नारद उवाच।

सम्भूतः सकथंभ्राता वसिष्ठस्याभवन्मुनिः। कथञ्च मित्रावरुणौ पितरावस्यतौ स्मृतौ
जन्मकुम्भादगस्त्यस्य कथं स्यात् पुरसूदन! ॥ २० ॥

ईश्वर उवाच।

पुरा पुराणपुरुषः कदाचिद् गन्धमादने। भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चचार विपुलन्तपः॥

तपसा तस्य भीतेन विघ्नार्थं प्रेषितावुभौ । शक्रेण माधवानङ्गावप्सरोगणसंयुतौ ॥२२।
तदा तद्गीतवाद्येन नाङ्गरागादिना हरिः । न काममाधवाभ्याञ्च विषयान् प्रतिचुक्षुभे ॥
तदा काममधुस्त्रीणां विषादमगमद्गणः । संक्षोभाय ततस्तेषां स्वोरुदेशान्नराग्रजः ॥
नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यजनमोहिनीम् ॥ २४ ॥
संक्षुब्धास्तु तया देवास्तौ तु देववरावुभौ । अप्सरोभिः समक्षं हि देवनामब्रवीद्धरिः ।
अप्सराइति सामान्यादेवानामब्रवीद्धरिः । उर्वशीतिच नाम्नेयं लोकेख्यातिंगमिष्यति॥
ततः कामयमानेन मित्रेणाहूय सोर्वशी । उक्ता मां रमयस्वेति वाढमित्यब्रवीत्तु सा ॥
गच्छन्ती चाम्बरं तद्वत् स्तोकमिन्दीवरेक्षणा । वरुणेन धृता पश्चात् वरुणं नाभ्यनन्दत
मित्रेणाहं वृतापूर्वमद्य भार्या न ते विभो !। उवाचवरुणश्चित्तं मयि सन्न्यस्य गम्यताम्
गतायां वाढमित्युक्त्वा मित्रः शापमदात्तदा ।
तस्यै मानुषलोके त्वं गच्छ सोमसुतात्मजम् ॥ ३० ॥
भजस्वेति यतोवेश्या धर्म एष त्वया कृतः । जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च ॥
प्रक्षिप्तमथ सञ्जातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ ॥३१॥
निमिर्नाम सह स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यतः ।
तत्रान्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः ॥ ३२ ॥
तस्य पूजामकुर्वन्तं शशाप समुनिर्नृपम् । विदेहस्त्वं भवस्वेति ततस्तेनाप्यसौमुनिः ॥
अन्योन्यशापाच्च तयोर्विगते इव चेतसी । जग्मतुः शापमानाय ब्रह्माणं जगतः पतिम् ॥
अथ ब्रह्मण आदेशाल्लोचनेष्ववसन्निमिः । निमेषाः स्युश्च लोकानां तद्विश्रामाय नारद !
वसिष्ठोऽप्यभवत्तस्मिन् जलकुम्भेच पूर्ववत् । ततः श्वेतश्चतुर्वाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥
अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ॠषिसत्तमः ॥ ३६ ॥
मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः । सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपश्चक्रेसुदुश्चरम् ॥३७॥
ततः कालेन महता तारकादतिपीडितम् । जगद्वीक्ष्य स कोपेन पीतवान्वरुणालयम् ॥
ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शङ्करादयः । ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः ।
वरं वृणीष्व भद्रन्ते यदभीप्सञ्च वै मुने ! ॥ ३९ ॥

अगस्त्य उवाच ।

यावद् ब्रह्मसहस्राणां पञ्चविंशतिकोटयः । वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाचलवर्त्मनि ॥
मद्विमानोदये कुर्याद्यः कश्चित् पूजनं मम । स सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति ॥

ईश्वर उवाच ।

एवमस्त्विति तेऽप्युक्त्वा जग्मुर्देवा यथागतम् । तस्मादर्घः प्रदातव्योह्यगस्त्यस्य सदाबुधैः ॥

नारद उवाच ।

कथमर्घप्रदानन्तु कर्त्तव्यं तस्य वै विभो ! । विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद्वदस्व मे ॥

ईश्वर उवाच ।

प्रत्यूषसमये विद्वान् कुर्यादस्योदये निशि । स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वत् शुक्लमाल्याम्बरो गृही
स्थापयेदव्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम् । पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रसमन्वितम् ॥४५॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमेवायतबाहुदण्डम् ।
चतुर्मुखं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि ॥४६॥
सकांस्यपात्राक्षतशुक्तियुक्तं मन्त्रेण दद्यात् द्विजपुङ्गवाय ।
उत्क्षिप्य लम्बोदरदीर्घबाहुमनन्यचेता यमदिङ्मुखः सन् ॥४७॥
श्वेताश्च दद्याद्यदि शक्तिरस्ति रौप्यैः खुरैर्हेममुखीं सवत्साम्
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य सवत्सघण्टाभरणां द्विजाय ॥४८॥
आसप्तरात्रोदयमेतदस्य दातव्यमेतत् सकलं नरेण ।
यावत्समाः सप्तदशाथ वास्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् ॥४९॥

काशपुष्पप्रतीकाश ! अग्निमारुतसम्भव । मित्रावरुणयोःपुत्र ! कुम्भयोने! नमोऽस्तुते
प्रत्यब्दन्तु फलैर्यागमेवं कुर्वन्न सीदति ॥५०॥

होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम् । अनेन विधिनायस्तुपुमानर्घ्यं निवेदयेत् ॥
इमं लोकं स चाप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः । द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्चततःपरम् ॥
सप्तैवलोकानाप्नोतिसप्तार्घ्यान्यःप्रयच्छति । यावदायुश्चयःकुर्यात्परंब्रह्माधिगच्छति ॥

इह पठति शृणोति वा य एतद्युगलमुनिप्रभवार्घ्यसंप्रदानम् ।

मतिमपि च ददाति सोऽपि विष्णोर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥५४॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तलोकाधिपत्यप्राप्तिव्रतकथनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

गौरीतृतीयाव्रतकथनम् ।

मनुरुवाच ।

सौभाग्यारोग्यफलदममुत्राक्षय्यकारकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं देव ! तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥१

मत्स्य उवाच ।

यदुमायाः पुरा देव ! उवाच पुरसूदनः । कैलासशिखरासीनो देव्या पृष्टस्तदा किल ॥

कथासु संप्रवृत्तासु धर्म्यासु ललितासु च । तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्

ईश्वर उवाच ।

शृणुष्वावहिता देवि ! तथैवानन्तपुण्यकृत् । नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम्॥४॥

नभस्ये वाथ वैशाखे पुण्यमार्गशिरस्य च । शुक्लपक्षे तृतीयायां सुस्नातो गौरसर्षपैः ॥

गोरोचनं सगोमूत्रमुष्णं गोशकृतं तथा । दधिचन्दनसंमिश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत् ।
सौभाग्यारोग्यदं यस्मात् सदा च ललिता प्रियम् ॥६॥

प्रतिपक्षं तृतीयासु पुमानापीतवाससी । धारयेदथ रक्तानि नारी चेदथ संयता ॥७॥

विधवा धातुरक्तानि कुमारी शुक्लवाससी । देवीं तु पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम् ।
स्नापयेन्मधुना तद्वत् पुष्पगन्धोदकेन च ॥८॥

पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च फलैर्नानाविधैरपि । धान्यकाजाजिलवणैर्गुडक्षीरघृतान्वितैः ॥९॥

शुक्लाक्षततिलैरर्च्यान्ततो देवीं सदार्चयेत् । पादाद्यभ्यर्चनं कुर्य्यात् प्रतिपक्षं वरानने ॥

वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ नमःश्रियै । अशोकायैनमोजङ्घेपार्वत्यैजानुनी तथा ॥

ऊरू मङ्गलकारिण्यै वामदेव्यै तथा कटिम् । पद्मोदरायै जठरमुरः कामश्रियै नमः ॥१२

करौ सौभाग्यदायिन्यै बाहूदरमुखं श्रियै । मुखं दर्पणवासिन्यै स्मरदायै स्मितं नमः ॥

गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायैचलोचने। तुष्ट्यै ललाटमलकान्कात्यायन्यैशिरस्तथा॥

नमो गौर्यै नमो धिष्ण्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै।

रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमो नमः ॥१५॥

एवं संपूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत्। पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं कुङ्कुमेनसकर्णिकम् ॥१६॥

पूर्वेण विन्यसेद्गौरीमपर्णाञ्च ततः परम्। भवानीं दक्षिणे तद्वद्रुद्राणीञ्च ततःपरम् ॥१७॥

विन्यसेत् पश्चिमे सौम्यां सदा मदनवासिनीम्।

वायव्ये पाटलामुग्रामन्तरेण ततोऽप्युमाम् ॥१८॥

मध्ये यथा स्वन्मासाङ्गामङ्गलां कुमुदां सतीम्।

रुद्रञ्च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि। कुसुमैरक्षतैर्वाभिर्नमस्कारेण विन्यसेत्॥

गीतमङ्गलनिर्घोषान् कारयित्वा सुवासिनीः। पूजयेद्रक्तवासोभीरक्तमाल्यानुलेपनैः।

सिन्दूरं स्नानवर्णञ्च तासां शिरसि पातयेत् ॥२०॥

सिन्दूरकुङ्कुमस्नानमतीवेष्टतमं यतः। तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्यत्नतो गुरुम्।

न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥२१॥

नभस्ये पूजयेद् गौरीमुत्पलैरसितैः सदा। बन्धुजीवैराश्वयुजे कार्तिकेशतपत्रकैः ॥२२॥

जातीपुष्पैर्मार्गशीर्षे पौषे पीतैः कुरण्टकैः। कुन्दकुङ्कुमपुष्पैस्तु देवीं माघे तु पूजयेत्॥

सिन्दुरवारेण जात्या वा फाल्गुनेऽप्यर्चयेदुमाम् ॥२३॥

चैत्रे तु मल्लिकाशोकैर्वैशाखे गन्धपाटलैः। ज्यैष्ठे कमलमन्दारैराषाढे च नवाम्बुजैः॥

कदम्बैरथ मालत्या श्रावणे पूजयेत्सदा ॥ २४ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम्।

विल्वपत्रार्क पुष्पञ्च यवान् गोश्रृङ्गवारि च ॥२५॥

पञ्चगव्यञ्च बिल्वञ्च प्राशयेत् क्रमशस्तदा। एतद्भाद्रपदाद्यन्तु प्राशनं समुदाहृतम् ॥२६

प्रतिपक्षञ्च मिथुनं तृतीयायां वरानने। पूजयित्वाऽर्चयेद्भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः॥

पुंसः पीताम्बरे दद्यात् स्त्रियै कौसुम्भवाससी ॥२७॥

निष्पावाजाजिलवणमिक्षुदण्डगुडान्वितम्। तस्यै दद्यात्फलपुष्पसुवर्णोत्पलसंयुतम्॥

यथा न देवि ! देवेशस्त्वां परित्यज्यगच्छति । तथामामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥
कुमुदा विमलानन्ता भवानी च सुधाशिवा । ललिताकमलागौरीसतीरम्भाथपार्वती ॥
नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत् । व्रतान्ते शयनं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम् ॥
मिथुनानि चतुर्विंशद्दश द्वौ च समर्चयेत् । अष्टौ षड्वाप्यथ पुनश्चानुमासं समर्चयेत् ॥
पूर्वं दत्त्वा तु गुरवे शेषानप्यर्चयेत् बुधः । उक्तानन्ततृतीयैषा सदानन्तफलप्रदा ॥३३
सर्वपापहरां देवि ! सौभाग्यारोग्यवर्धिनीम् । नचैनांवित्तशाठ्येनकदाचिदपिलङ्घयेत्
नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठ्यात् पतत्यधः ॥३४॥
गर्भिणी सूतिकानक्तं कुमारी वाथ रोगिणी । यद्यशुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम्
इमामनन्तफलदां यस्तृतीयां समाचरेत् । कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते ॥
वित्तहीनोऽपि कुरुते वर्षत्रयमुपोषणैः । पुष्पमन्त्रविधानेन सोऽपितत्फलमाप्नुयात् ॥
नारी वा कुरुते यातु कुमारी विधवाथ वा । सापि तत्फलमाप्नोतिगौर्य्यनुग्रहलालिता
इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनया व्रतमिन्द्रवाससंस्थः ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनकिन्नरैश्च पूज्यः ॥३६॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे गौरीतृतीयाव्रतकथनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

रसकल्याणिनीतृतीयाव्रतकथनम् ।

अथान्यामपिवक्ष्यामितृतीयांपापनाशिनीम् । रसकल्याणिनीमेतांपुराकल्पविदो विदुः ॥
माघमासे तु संप्राप्ते तृतीयां शुक्लपक्षतः । प्रातर्गव्येन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥
स्नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन च । दक्षिणाङ्गानि संपूज्य ततो वामानि पूजयेत् ॥
ललितायै नमोदेव्याःपादौगुल्फौततोऽर्चयेत् । जङ्घाज्ञानुंतथाशान्त्यैतथैवोरुंश्रियै नमः ॥
मदालसायै तु कटिममलायै तथोदरम् । स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कन्धराम् ॥
भुजं भुजाग्रं माधव्यै कमलायै मुखस्मिते । भ्रूललाटे च रुद्राण्यै शङ्करायै तथालकान् ॥

मुकुटं विश्ववासिन्यै शिरः कान्त्यै तथार्चयेत् । मदनायै ललाटन्तु मोहनायै पुनर्भ्रुवौ ॥
नेत्रे चन्द्रार्द्धधारिण्यै तुष्ट्यै च वदनं पुनः । उत्कण्ठिन्यैनमःकण्ठममृतायैनमः स्तनौ ॥
रम्भायै वामकुक्षिञ्च विशोकायै नमः कटिम् । हृदयंमन्मथाधिष्ण्यैपाटलायैतथोदरम्॥
कटिं सुरतवासिन्यै तथोरूञ्चम्पकप्रिये । जानुजङ्घे नमोगौर्यै गायत्र्यै घुटिके नमः ॥१०
धराधरायै पादौ तु विश्वकायै नमःशिरः । नमोभवान्यैकामिन्यैकामदेव्यैजगत्प्रिये ॥
एवं संपूज्य विधिवत् द्विजदाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयित्वान्नपानेन मधुरेण विमत्सरः ॥
जलपूरितं तथा कुम्भं शुक्लाम्बरयुगद्वयम् । दत्त्वा सुवर्णकमलं गन्धमाल्यैः समर्चयेत्॥
प्रीयतामत्र कुमुदागृह्णीयाल्लवणव्रतम् । अनेन विधिना देवीं मासि मासि सदार्चयेत्॥
लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः । तैलं राजिं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधुमाधवे ॥
पानकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे चाथ जीरकम् । श्रावणे वर्जयेत् क्षीरं दधिभाद्रपदेतथा ॥
घृतमाश्वयुजे तद्वत् ऊर्जे वर्ज्यञ्च माक्षिकम् । धान्यकं मार्गशीर्षेतुपौषेवर्ज्याचशर्करा॥
व्रतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासि मासि च । दद्याद्द्विकालवेलायां पूर्णपात्रेणसंयुतम्॥
लड्डुकान् श्वेतवर्णांश्च संयावमथ पूरिकाः । घारिकानप्यपूपांश्च पिष्टापूपांश्चमण्डकान्
क्षीरं शाकञ्च दध्यन्नमिण्ड्यौं शोकवर्तिकाः । माघादि क्रमशो दद्यादेतानिकरकोपरि॥
कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा । उमारतिःसतीतद्वन्मङ्गलारतिलालसा ॥
क्रमान्माघादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्तयेत् । सर्वत्र पञ्चगव्येन प्राशनं समुदाहृतम्॥
उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते ॥२२॥
पुनर्माघे तु संप्राप्ते शर्करां करकोपरि । कृत्वा तु काञ्चनीं गौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम्॥
हैमीमङ्गुष्ठमात्राञ्च साक्षसूत्रकमण्डलुम् । चतुर्भुजामिन्दुयुतां सितनेत्रपटावृताम् ॥२४॥
तद्वद्गोमिथुनं शुक्लं सुवर्णास्यं सिताम्बरम् । सवस्त्रभाजनं दद्याद्भवानी प्रीयतामिति ॥
अनेन विधिनायस्तु रसकल्याणिनीव्रतम् । कुर्यात्स सर्वपापेभ्य स्तत्क्षणादेवमुच्यते॥
नवार्बुदसहस्रन्तु न दुःखी जायते नरः । सुवर्णकमलं गौरी मासि मासि ददन्नरः ।
अग्निष्टोमसहस्रस्य यत् फलं तदवाप्नुयात् ॥२७॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने ।

विधवा या तथा नारी सापि तत् फलमाप्नुयात् ।
सौभाग्यरोग्यसंपन्ना गौरी लोके महीयते ॥२८॥
इति पठति शृणोति यः प्रसङ्गात् । कलिकलुषविमुक्तः पार्वती लोकमेति ।
मतिमपि च नराणां यो ददाति प्रियार्थम् । विबुधपतिविमाने नायकःस्यादमोघः ॥२६

इति श्रीमत्स्यपुराणे रसकल्याणिनीतृतीयाव्रतकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

शुक्लतृतीयाव्रतकथनम् ।

ईश्वर उवाच ।

तथैवान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् ।
नाम्ना च लोके विख्यातां आर्द्रानन्दकरीमिमाम ॥१॥
यदा शुक्लतृतीयायामाषाढर्क्षं भवेत् क्वचित् । ब्रह्मर्क्षं वा मृगर्क्षंवाहस्तोमूलमथापि वा ।
दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक् समाचरेत् ॥२॥
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः । भवानीमर्चयेद्भक्त्या शुक्लपुष्पैः सुगन्धिभिः ।
महादेवेन सहितामुपविष्टां महासने ॥३॥
वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्कराय नमो हरम् । जङ्घे शोकविनाशिन्यै आनन्दायनमःप्रभो ॥
रम्भायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिनः । अदित्यै च कटिं देव्याःशूलिनःशूलपाणये ॥
माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवाय च । स्तनावानन्दकारिण्यैशङ्करस्येन्दुधारिणे ॥
उकण्ठिन्यै नमः कण्ठं नीलकण्ठाय वै हरम् । करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय च जगत्पते ।
वाहू च परिरम्भिण्यै त्रिशूलाय हराय च ॥ ७॥
देव्या मुखं विलासिन्यैवृषेशायपुनर्विभोः । स्मितंसस्मेरलीलायैविश्ववक्त्रायवैविभोः
नेत्रे मदनवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिनः । भ्रुवौ नित्यप्रियायैतुताण्डवेशायशूलिनः ॥

देव्या ललाटमिन्द्राण्यै हव्यवाहाय वै विभोः। स्वाहायैमुकुटंदेव्याविभोर्गङ्गाधरायवै॥
विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ। प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥
एवं संपूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः पुनः। पद्मोत्पलानि रजसा नानावर्णेन कारयेत्॥
शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकाङ्कुशचामरान्। यावन्तः पांसवस्तत्र रजसः पतिता भुवि।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥१३॥
चत्वारि घृतपात्राणि सहिरण्यानि शक्तितः। दत्त्वाद्विजायकरकमुदकान्नसमन्वितम्॥
प्रतिपक्षं चतुर्मासं यावदेतन्निवेदयत्॥१४॥
ततस्तु चतुरो मासान्पूर्ववत्करकोपरि। चत्वारिसक्तुपात्राणितिलपात्राण्यतः परम्॥
गन्धोदकं पुष्पवारि चन्दनं कुङ्कुमोदकम्। अपक्वं दधिदुग्धञ्च गोशृङ्गोदकमेवच॥१६॥
पिष्टोदकं तथा वारि कुष्ठचूर्णान्वितं पुनः। उशीरसलिलं तद्वद्यवचूर्णोदकं पुनः॥१७॥
तिलोदकञ्च संप्राश्य स्वपेन्मार्गशिरादिषु। मासेषु पक्षद्वितयं प्राशनं समुदाहृतम्॥१८
सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि सदार्चने। दानकाले च सर्वत्र मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥१९॥
गौरी मे प्रियतां नित्यमघनाशाय मङ्गला। सौभाग्यायास्तुललिताभवानीसर्वसिद्धये॥
संवत्सरान्ते लवणं गुडकुम्भञ्च सर्जिकाम्। चन्दनं नेत्रपट्टञ्चसहिरण्याम्बुजेन तु॥२१
उमामहेश्वरं हैमं तद्वदिक्षुफलैर्युतम्। सतूलावरणां शय्यां सविश्रामां निवेदयेत्।
सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति॥२२॥
आर्द्रानन्दकरी नाम्ना तृतीयैषा सनातनी। यामुपोष्यनरोयाति शम्भोर्यत्परमम्पदम्॥
इहलोके सदानन्दमाप्नोति धनसम्पदः। आयुरारोग्यसन्तप्तोनकश्चिच्छोकमाप्नुयात्॥
नारी वा कुरुते या तु कुमारीविधवाचया। सापितत्फलमाप्नोतिदेव्यनुग्रहलालिता॥
प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानवित्। रुद्राणी लोकमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयद्वापि मानवः। शक्रलोके सगन्धर्वैःपूज्यतेऽपि युगत्रयम्॥
आनन्ददां सकलदुःखहरां तृतीयां या स्त्री करोत्यविधवाऽविधवाथ वापि।
सा स्वे गृहे सुखशतान्यनुभूय भूयो गौरीपदं सदयिता दयिता प्रयाति॥२८

इति श्रीमत्स्यपुराणे शुक्लतृतीयाव्रतकथननाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अक्षयतृतीयाव्रतकथनं सरस्वतीव्रतकथनञ्च ।

ईश्वर उवाच ।

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम् । यस्यां दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम्
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यै रुपोषिता । अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ॥
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता । तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते ॥३ ॥
अक्षयासन्ततिस्तस्यास्तस्यांसुकृतमक्षयम् । अक्षतैस्तुनराःस्नाताविष्णोर्दत्त्वातथाक्षतान्
विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सक्तून् सुसंस्कृतान् । यथान्नभुक् महाभागः फलमक्षयमश्नुते
एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः । एतासामपि सर्वासांतृतीयानां फलंभवेत्
तृतीयायां समभ्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम् । राजसूयफलं प्राप्यगतिमग्र्याञ्च विन्दति

मनुरुवाच ।

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन !। तथैव जनसौभाग्यं मतिं विद्यासुकौशलम् ॥ ८ ॥
अभेदश्चापि दम्पत्यो स्तथा बन्धुजनेन च । आयुश्च विपुलं पुंसां तन्मे कथय माधव !

मत्स्य उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् ! शृणुसारस्वतंव्रतम् । यस्य संकीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती
यो यद्भक्तःपुमान् कुर्य्यात्एतद्व्रतमनुत्तमम् । तद्वासरादौसम्पूज्यविप्रानेतान्समाचरेत्
अथवादित्यवारेण ग्रहतारावलेन च । पायसं भोजयेद्विप्रान् कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥१२
शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तितः । गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः
यथा न देवि ! भगवान् ब्रह्मलोके पितामहः । त्वां परित्यज्य सन्तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा
वेदाःशास्त्राणिसर्वाणिगीतनृत्यादिकञ्चयत् । न विहीनंत्वयादेवि ! तथामेसन्तुसिद्धयः
लक्ष्मीर्मेधा धरापुष्टिर्गौरीतुष्टाप्रभामतिः । एताभिः पाहि अष्टाभि स्तनूभिर्मां सरस्वती
एवं सम्पूज्यगायत्रीं वाणींक्षयनिवारिणीम् । शुक्लपुष्पाक्षतैर्भक्त्यासकमण्डलुपुस्तकाम्
मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातस्तु धर्म्मवित् ॥ १७ ॥
पञ्चम्यां प्रतिपक्षञ्च पूजयेद्ब्रह्मवासिनीम् । तथैव तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ॥

क्षीरं दद्याद्धिरण्यञ्च गायत्री प्रीयतामिति ॥ १९ ॥

सन्ध्यायाञ्च तथा मौनमेतत्कुर्वन्समाचरेत् । नान्तराभोजनंकुर्याद्यावन्मासास्त्रयोदश

समाप्ते तु व्रते कुर्याद्भोजनं शुक्लतण्डुलैः । पूर्वं सवस्त्रयुग्मञ्च दद्याद्विप्राय भोजनम् ॥

देव्या वितानं घण्टाञ्च सितनेत्रे पयस्विनीम् । चन्दनं वस्त्रयुग्मञ्च दद्याच्च शिखरं पुनः

तथोपदेष्टारमपि भक्त्या संपूजयेत् गुरुम् । वित्तशाठ्येन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम् । विद्यावानर्थसंयुक्तो रक्तकण्ठश्च जायते ॥

सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके महीयते । नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलगामिनी

ब्रह्मलोके वसेद्राजन् ! यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥ २५ ॥

सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि यः पठेत् । विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत्कल्पायुतत्रयम्

इति श्रीमत्स्यपुराणेऽक्षयतृतीयाव्रतंसारस्वतव्रतकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

चन्द्रादित्योपरागे स्नानविधिकथनम् ।

मनुरुवाच ।

चन्द्रादित्योपरागेतु यत्स्नानमभिधीयते । तदहंश्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित् ॥

मत्स्य उवाच ।

यस्य राशिंसमासाद्य भवेद्ग्रहणसंप्लवः । तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः ॥

चन्द्रोपरागंसम्प्राप्य कृत्वाब्राह्मणवाचनम् । संपूज्यचतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥

पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानिति ॥

गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाक्षिपेत् ॥५

पञ्चगव्यञ्च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च । रोचनां पद्मशङ्खौच पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥६॥

स्फटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्षपम् । राजदन्तं सकुमुदं तथैवोशीरगुग्गुलम् ॥

एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत् सुरान् ॥७॥

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥

योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ।९

मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चन्द्रोपरागसम्भूतां अग्निः पीडां व्यपोहतु ॥

यः कर्मसाक्षी भूतानां धर्मो महिषवाहनः । यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ममपीडां व्यपोहतु ॥

नागपाशधरो देवः साक्षान्मकरवाहनः । स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रह पीडां व्यपोहतु ।१२॥

प्राणरूपेण यो लोकान् पाति कृष्ण मृगप्रियः ।

वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां पीडांमत्र व्यपोहतु ॥ १३ ॥

योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः । चन्द्रोपरागकलुषं धनदो मे व्यपोहतु १४॥

योऽसौ विन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागजां पीडां विनाशयतुशङ्करः॥

त्रैलोक्येयानिभूतानि स्थावराणिचराणिच । ब्रह्मविष्णवर्कयुक्तानि तानि पापंदहन्तुवै ॥

एवमामन्त्र्यतैः कुम्भैरभिषिक्तोगुणान्वितैः । ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।

पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ॥ १७ ॥

एतानेव ततोमन्त्रान् विलिखेत्करकान्वितान् ।

वस्त्रपट्टेऽथ वा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान् ॥ १८ ॥

यजमानस्य शिरसि निदध्युस्तेद्विजोत्तमाः । ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुगामिनीम् ॥

प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु नमस्यन्निष्टदेवताम् । चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतगोदानमङ्गलः ।

कृतस्नानायतं पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २० ॥

अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् । न तस्य ग्रहपीडा स्यान्नच बधुजनक्षयः ॥

परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् । सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ॥२२

अधिकाः पद्मरागाः स्युः कपिलाश्च सुशोभनाम् ।

प्रयच्छेच्च निशाम्पत्ये चन्द्रसूर्योपरागयोः ॥ २३ ॥

यइदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वाऽपि मानवः । सर्वपापविनिर्मुक्तो शक्रलोके महीयते ॥२४॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे चन्द्रादित्योपरागेस्नानविधिकथनंनाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

सप्तमीस्नपनव्रतकथनम् ।

नारद उवाच ।

किमुद्वेगाद्भुते कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते । मृतवत्साभिषेकादि कार्येषु च किमिष्यते ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधन । रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च ॥२॥
तद्विघाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम् । सप्तमीस्नपनंनाम जनपीडाविनाशनम् ।
बालानां मरणं यत्र क्षीरपानां प्रदृश्य तम् । तद्वत्तृद्धेतराणाञ्च यौवने चापिवर्तताम् ॥
शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम् । एतदेवाद्भुतोद्वेगचित्तभ्रमविनाशनम् ॥५॥
भविष्यतिच वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन ! । वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तमः ॥
भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिमं यदा । कृतं नामयुगं तत्र हैहयान्वयवर्द्धनः ॥
भविता नृपतिर्वीरः कृतवीर्यः प्रतापवान् ॥ ७ ॥
ससप्तद्विपमखिलं पालयिष्यति भूतलम् । यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्तति नारद ! ॥ ८ ॥
जातमात्रञ्च तस्यापि यावत् पुत्रशतं तथा । च्यवनस्यतु शापेन विनाशमुपयास्यति ॥
सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्यवै सुतः । कुरङ्गनयनः श्रीमान् सम्भृतो नृपलक्षणैः ॥१०
कृतवीर्य्यस्तदाराध्य सहस्रांशुं दिवाकरम् । उपवासैर्व्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च नारद ! ।
पुत्रस्य जीवनायालमेतत्स्नानमवाप्स्यति ॥११॥
कृतवीर्य्येण वै पृष्ट इदं वक्ष्यति भास्करः । अशेषदुष्टशमनं सदा कल्मषनाशनम् ॥१२॥

सूर्य्य उवाच ।

अलं क्लेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप ! । भविष्यति चिरञ्जीवो किन्तु कल्मषनाशनम् ॥
सप्तमी स्नपनं वक्ष्ये सर्वलोकहिताय वै । जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि नारद ! ॥
अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत् सर्वं प्रशस्यते ॥ १४ ॥
ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत्तां तिथिं बुधः । तद्वद्वृद्धेतराणाञ्च कृत्यंस्यादितरेषु च ॥१५
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत्तदा । तण्डुलैरक्तशालीयैश्चरुंगोक्षीरसंयुतम् ॥
निर्वपेत् सूर्य्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः ॥१६॥
कीर्तयेत् सूर्य्यदैवत्यं सप्तर्चिं च घृताहुतीः । जुहुयाद्रुद्रसूक्तेन तद्वद्रुद्राय नारद ! ॥१७॥
होतव्याः समिधश्चात्र तथैवार्कपलाशयोः । यवकृष्णतिलैर्होमः कर्त्तव्योऽष्टशतं पुनः ॥
व्याहृतीभिस्तथाज्येन तथैवाष्टशतं पुनः । हुत्वा स्नानञ्च कर्त्तव्यं मङ्गलं येन धीमता ॥
विप्रेण वेदविदुषा विधिवद्दर्भपाणिना । स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान्कोणेषु शोभनान्
पञ्चमञ्च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम् । स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्चेनाभिमन्त्रितम् ॥२१
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम् । सर्वान्सर्वौषधैर्युक्तान् पञ्चगव्यसमन्विताम्
पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्वासोभिः परिवेष्टयेत् ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् । संशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेवविनिक्षिपेत्
चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् । गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान्मन्त्रानुदीरयेत्
नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च । पूजिताभिर्यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः
सविप्राभिश्च कर्त्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ॥२५॥
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्राच भामिनी । आदित्यश्चन्द्रमा सार्द्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः
सशक्रा लोकपाला वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । एते चान्येच देवौघाः सदापान्तुकुमारकम्
मित्रोशनिर्वा हुतभुक् ये च बालग्रहाः क्वचित् । पीड़ां कुर्वन्तु बालस्यमामातुर्जनकस्यवै
ततः शुक्लाम्बरधरा कुमारपतिसंयुता । सप्तकं पूजयेद्भक्त्या स्त्रीणामथ गुरुं पुनः ।२६।
काञ्चनीञ्च ततः कुर्यात् ताम्रपात्रोपरि स्थिताम् । प्रतिमांधर्म्मराजस्यगुरवेविनिवेदयेत्
वस्त्रकाञ्चनरत्नोघैर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः । पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।३१।
भुक्त्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः । दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतंसुखी
यत् किञ्चिदस्यदुरितंतत् क्षिप्तंवडवानले । ब्रह्मारुद्रोवसुः स्कन्दोविष्णुःशक्रोहुताशनः
रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदाः सन्तु सर्वदा । एवमादीनि वाक्यानि वदन्तं पूजयेद्गुरुम्
शक्तितः कपिलां दद्यात् प्रणम्य च विसर्जयेत् । चरुञ्च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशङ्करौ ।

हुतशेषं तदाश्नीयादादित्याय नमोऽस्त्विति । इदमेवाद्भुतोद्वेगदुःस्वप्नेषु प्रशस्यते ॥३६॥
कर्तुर्जन्मदिनर्क्षञ्च त्यक्त्वा संपूजयेत् सदा । शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति ॥
सदानेन विधानेन दीर्घायुरभवन्नरः । सम्वत्सराणां प्रयुतं शशास पृथिवीमिमाम् ॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः । कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ ! तत्रैवान्तरधीयत ॥३९
एतत् सर्वं समाख्यातं सप्तमीस्नानमुत्तमम् । सर्वदुष्टोपशमनं बालानां परमं हितम् ॥

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् ।
ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥ ४१ ॥
एतन्महापातकनाशन स्यात्परं हितं बालविवर्द्धनञ्च ।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तमीस्नपनव्रतकथनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

भीमद्वादशीव्रतकथनम् ।

मत्स्य उवाच ।

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मनः । मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर ! । स्वल्पेन तपसा देव ! भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम् ॥
किमज्ञातं महादेव ! त्वत्प्रसादादधोक्षज ! स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम्

मत्स्य उवाच ।

एवं पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणो लोकभावनः । उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम्

ईश्वर उवाच ।

अस्माद्रथन्तरात्कल्पात् त्रयोविंशात्पुनर्यदा । वाराहो भविता कल्पस्तस्यमन्वन्तरे शुभे
वैवस्वताख्ये सञ्जाते सप्तमे सप्तलोककृत् । द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमञ्जगुः ॥६॥

तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः । भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति।
द्वैपायन ऋषिस्तद्वद्रौहिणेयोऽथ केशवः । कंसादिदर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ८ ॥
पुरीं द्वारवतीं नाम साम्प्रतं याकुशस्थली । दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः
त्वष्टा ममाज्ञया तद्वत् करिष्यति जगत्पतेः ॥ ६ ॥
तस्यां कदाचिदासीनः सभायाममितद्युतिः । भार्याभिर्वृष्णिभिश्चैव भूभृद्भिर्भूरिदक्षिणैः
कुरुभिर्देवगन्धर्वैरभितः कैटभार्दनः । प्रवृत्तासु पुराणासु धर्म्मसम्वर्धिनीषु च ॥११॥
कथान्ते भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान् । त्वया पृष्टस्य धर्म्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत्
भविता स तदाब्रह्मन्! कर्त्ताचैवनृकोदरः । प्रवर्तकोऽस्य धर्म्मस्य पाण्डुपुत्रोमहाबलः
यस्य तीक्ष्णो वृकोनामजठरे हव्यवाहनः । मया दत्तः स धर्म्मात्मा तेनचासौवृकोदरः
मतिमान्दानशीलश्च नागायुतबलोमहान् । भविष्यत्यरजाः श्रीमान् कन्दर्प इव रूपवान् ॥
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे । इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः ॥
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः । अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम् ।१७
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम् । पवित्राणां पवित्रञ्च मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ॥
भविष्यञ्च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम् ॥ १८ ॥

वासुदेव उवाच ।

यद्यष्टमी चतुर्दश्योर्द्वादशीष्वथ भारत! अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम् ॥
ततःपुण्यान्तिथिमिमां सर्वपापप्रणाशिनीम् । उपोष्यविधिनानेन गच्छविष्णोःपरम्पदम्
माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा । घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्
तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमोनारायणेति च । कृष्णाय पादौ संपूज्य शिरः सर्वात्मनेनमः
वैकुण्ठायेति वैकुण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे । शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय वै ॥
सर्वे नारायणस्यैव संपूज्याः बाहवः क्रमात् ॥२३॥
दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्च शराय वै । ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे ॥२४
नमो नीलायवैजङ्घेपादौ विश्वसृजे नमः । नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमोलक्ष्म्यैनमःश्रियै
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यैःनमोनमः । नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे॥

विषप्रमाथिने नित्यं गरुडञ्चाभिपूजयेत् ॥२६॥

एवं संपूज्य गोविन्दं उमापतिविनायकौ । गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥

गव्येन पयसा सिद्धङ्कृसरामथ वाग्यतः । सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वाशतपदं बुधः ॥

नैयग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः । गृहीत्वा धावयेद्दन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः ॥

ब्रूयात् सायन्तनीं कृत्वा सन्ध्यामस्तमिते रवौ । नमोनारायणायेति त्वामहं शरणङ्गतः

एकादश्यांनिराहारःसमभ्यर्च्यचकेशवम् । रात्रिञ्चशकलांस्थित्वास्नानञ्चपयसातथा ॥

सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः । सहैव पुण्डरीकाक्ष! द्वादश्यां क्षीरभोजनम्

करिष्यामि यतात्माऽहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे ॥३२॥

एवमुक्त्वा स्वपेद्भूमावितिहासकथां पुनः । श्रुत्वा प्रभाते सञ्जाते नदींगत्वा विशाम्पते!

स्नानं कृत्वा मृदा तद्वत् पाखण्डानभिवर्जयेत् ॥३३॥

उपास्य सन्ध्यांविधिवत् कृत्वा चपितृतर्पणम् । प्रणम्य च हृषीकेशंसत्तलोकैकमीश्वरम्

गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद् बुधः। दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद्विशाम्पते!

चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद्वेदीमरिनिषूदन! । चतुर्हस्तप्रमाणञ्च विन्यसेत्तत्र तोरणम् ॥

प्रणम्य कलशं तत्र माघ(ष)मात्रेण संयुतम् । छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः

तस्य धारां च शिरसा धारयेत् सकलान्निशम् ॥३७॥

तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत् । अरत्निमात्रं कुण्डञ्चकुर्यात्तत्र त्रिमेखलम्

योनिवक्त्रञ्च तत् कृत्वा ब्राह्मणैःपयसर्पिषी । तिलांश्च विष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत्तदा ॥

हुत्वा च वैष्णवंसम्यक्चरुंगोक्षीरसंयुतम् । निष्पावार्द्धप्रमाणांवैधारामाज्यस्यपातयेत्

जलकुम्भान् महावीर्य्य! स्थापयित्वा त्रयोदश ।भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलङ्कृतान्

युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितान् । चतुर्भिर्बह्वचैर्होमस्तत्र कार्य्य उदङ्मुखैः ॥

रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः । वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः ।

अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत् ॥४४॥

एवं द्वादश तान् विप्रान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । पूजयेदङ्गुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः ॥४५॥

वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः । एवं क्षपातिवाह्या च गीतमङ्गलनिस्वनैः ॥

उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु । ततः प्रभाते विमले समुत्थायत्रयोदश ॥४७॥
गावोदद्यात्कुरुश्रेष्ठ ! सौवर्णमुखसंयुताः । पयस्विन्यःशीलवत्यःकांस्यदोहसमन्विताः ॥
रौप्यखुराःसवस्त्राश्चचन्दनेनाभिषेचिताः । तास्तुतेषांततोभक्त्याभक्ष्यभोज्यान्नतर्पितान्

कृत्वा वै ब्राह्मणान् सर्वानन्नैर्नानाविधैस्तथा ।
भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः । प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥५१॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः । यथान्तरंनपश्यामितथामेस्वस्तिचायुषः ॥
एवमुच्चार्य तान् कुम्भान् गाश्चैवशयनानिच । वासांसिचैवसर्वेषांगृहाणिप्रापयेद्बुधः ॥
अभावेबहुशय्यानामेकामपिसुसंस्कृताम् । शय्यांदद्याद्द्विजातेश्चसर्वोपस्करसंयुताम् ॥
इतिहासपुराणानि वाचयित्वातिवाहयेत् । तद्दिनं नरशार्दूल ! य इच्छेद्विपुलां श्रियम् ॥
तस्मात्त्वं सत्वमालम्ब्यभीमसेन ! विमत्सरः । कुरुव्रतमिदंसम्यक्स्नेहात्तव मयेरितम् ॥
त्वया कृतमिदं वीर ! त्वन्नामाख्यं भविष्यति । साभीमद्वादशीह्येषासर्वपापहरा शुभा ।

या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते ॥५७॥
त्वमादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन् कल्पे महावीरवरप्रधान ।
यस्याः स्मरन् कीर्तनमप्यशेषं विनष्टपापस्त्रिदशाधिपः स्यात् ॥५८॥
कृत्वा च यामप्सरसामधीशा वेश्याकृता ह्यन्यभवान्तरेषु ।
आभीरकन्यातिकुतूहलेन सैवोर्वशी सम्प्रति नाकपृष्ठे ॥५९॥
जाताथवा वैश्यकुलोद्भवापि पुलोमकन्या पुरुहूतपत्नी ।
तत्रापि तस्याः परिचारिकेयं मम प्रिया सम्प्रति सत्यकामा ॥६०॥
स्नातः पुरा मण्डलमेष तद्वत्तेजोमयं वेदशरीरमाप ।
अस्याश्च कल्याणतिथौ विवस्वान् सहस्रधारेण सहस्ररश्मिः ॥६१॥
इदमेव कृतं महेन्द्रमुख्यैर्वसुभिर्देवसुरारिभिस्तथा तु ।
फलमस्य न शक्यतेऽभिवक्तुं यदि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः ।
कलिकलुषविदारिणीमनन्तामिति कथयिष्यति यादवेन्द्रसूनुः ॥६२॥

अपि नरकगतान् पितॄनशेषानलमुद्धर्तुमिहैव यः करोति ।
य इदमघविदारणं शृणोति भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः ।
तिथिमिहसकलार्थभाङ् नरेन्द्रस्तव चतुरानन ! साम्यतामुपैति ॥६३॥
कल्याणिनी नाम पूरा बभूव या द्वादशी माघदिनेषु पूज्या ।
सा पाण्डुपुत्रेण कृता भविष्यत्यनन्तपुण्यानघ ! भीमपूर्वा ॥६४॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे भीमद्वादशीव्रतकथनं नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

पुण्यस्त्रीणां सदाचारव्रतकथनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषुमयाश्रुतः । सदाचारस्यभगवन् ! धर्मशास्त्रविनिश्चयः ॥
पुण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

ईश्वर उवाच ।

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् ! सहस्राणितुषोडश । वासुदेवस्यनारीणांभविष्यन्त्यम्बुजोद्भव
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले । पुष्पिते पवनोत्फुल्लकल्हारसरसस्तटे ॥३॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलङ्कृतः । कुरङ्गनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥४॥
गच्छन् समीपमार्गेण साम्बः परपुरञ्जयः । साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥५॥
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः । प्रवृद्धोमन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥६
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा । शापं वक्ष्यतिताःसर्वावोहरिष्यन्तिदस्यवः
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥७॥
ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यतिशार्ङ्गभृत् । ताभिःशापाभितप्ताभिर्भगवान्भूतभावनः ॥
उत्तारभूतन्दासत्वंसमुद्राद्ब्राह्मणः प्रियः । उपदेक्ष्यत्यनन्तात्माभाविकल्याणकारकम् ॥

भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद्व्रतं कथयिष्यति ।
तदेवोच्चारणायालं दासत्वेऽपि भविष्यति ।
इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥१०॥
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते । निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥११॥
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने । हृतासु कृष्णपत्नीषु दासभोग्यासु चाम्बुधौ ॥
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसन्तप्तासु चतुर्मुख ! ।
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥१३॥
तास्तमर्घ्येण संपूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः । लालप्यमाना बहुशोबाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् ।
भर्तारञ्जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥१५॥
दिव्यभावान्ताश्च पुरींनानारत्नगृहाणिच । द्वारकावासिनःसर्वान्देवरूपान् कुमारकान् ।
प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥१६॥

स्त्रिय ऊचुः ।

दस्युभिर्भगवन्! सर्वाःपरिभुक्ता वयंबलात्। स्वधर्माच्च्यवतेऽस्माकमस्मिन्वःशरणम्भव
आदिष्टोऽसिपुराब्रह्मन् ! केशवेनच धीमता । कस्मादीशेनसंयोगंप्राप्यवेश्यात्वमागताः
वेश्यानामपि यो धर्म्मस्तन्नो ब्रूहि तपोधन ! ।
कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चैकितायनः ॥ १९ ॥

दाल्भ्य उवाच ।

जलक्रीड़ाविहारेषु पुरा सरसि मानसे । भवतीनाञ्च सर्वासां नारदोऽभ्यासमागतः ॥
हुताशनसुताः सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा । अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित्
कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश ॥ २१॥
तस्माद्वरप्रदानंवः शापश्चायमभूत् पुरा । शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः ॥ २२ ॥
सुवर्णोपस्करोत्सर्गा द्वादश्यां शुक्लपक्षतः । भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि
यदकृत्वा प्रणामंमे रूपसौभाग्यमत्सरात् । परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगोवो भविष्यति

चोरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥२४॥

एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः। वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः

इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः! ॥ २५ ॥

दाल्भ्य उवाच।

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः। दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः ॥ २६ ॥

तेषांव्रातसहस्राणिशतान्यपिच योषिताम्। परिणीतानियानिस्युर्बलाद्भुक्तानियानिवै ॥

तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदताम्वरः ॥ २७ ॥

इन्द्र उवाच।

वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे। भक्तिमत्योवरारोहास्तथा देवकूलेषु च ॥२८॥

राजानःस्वामिनस्तुल्यासुतावापिचतत्समाः। भविष्यतिचसौभाग्यंसर्वासामपिशक्तितः

यःकश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यतिवःसदा। निधनेनोपचार्योवःसतदान्यत्रदाम्भिकात् ॥

देवतानां पितॄणांच पुण्याहे समुपस्थिते। गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानिस्वशक्तितः।

ब्राह्मणानां वरारोहाः कार्याणि वचनानि च ॥ ३१ ॥

यच्चाप्यन्यद्‌ व्रतं सम्यगुपदेक्ष्याम्यहं ततः। अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत्पुनः ॥

संसारोत्तारणायालमेतद्वेदविदोविदुः। यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्योवाथ पुनर्वसुः ॥३३॥

भवेत्सर्वौषधीस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत्। तदा पञ्चशरस्यापि सन्निधात्रृत्वमेष्यति

अर्चयेत् पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यानुकीर्तनैः ॥ ३४ ॥

कामाय पादौ संपूज्य जङ्घे वै मोहकारिणे। मेढ्रं कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः ॥

नाभिं सौख्यसमुद्राय रामाय च तथोदरम्। हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे ॥

उत्कण्ठायेति वैकण्ठमास्यमानन्दकारिणे। वामाङ्गंपुष्पचापाय पुष्पवाणायदक्षिणम् ॥

मानसायेति वै मौलिं विलोलायेति मूर्द्धजम्। सर्वात्मनेच सर्वाङ्गं देवदेवस्य पूजयेत्।

नमः शिवाय शान्ताय पाशाङ्कुशधराय च। गदिने पीतवस्त्राय शङ्खचक्रधराय च ॥३६॥

नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः। सर्वशान्त्यै नमः प्रीत्यै नमोरत्यै नमःश्रियै।

नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसम्पदे। एवं सम्पूज्य देवेशमनङ्गात्मकमीश्वरम् ॥

गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्येन च कामिनी ॥ ४१
तत आहूय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम् । अव्यङ्गावयवं पूज्य गन्धपुष्पार्चनादिभिः ।४२
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ॥
यथेष्टाहारयुक्तं वै तमेव द्विजसत्तमम् । रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य तम् ॥
यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत् कुर्याद्विलासिनी । सर्वभावेनचात्मानमर्पयेत् स्मितभाषिणी
एवमादित्यवारेण सर्वमेतत्समाचरेत् । तण्डुलप्रस्थदानञ्च यावन्मासास्त्रयोदश ॥४६॥
ततस्त्रयोदशे मासि संप्राप्ते तस्य भामिनी । विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यांदद्याद्विलक्षणाम्
सोपधानकविश्रामां सास्तरावरणां शुभाम् । प्रदीपोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥
सपत्नीकमलङ्कृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः । सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ॥४९॥
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् । ताम्रपात्रासनगतं हैमनेत्रपटावृतम् ॥५०॥
स कांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् । दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम्
यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा । तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो! सदामम
यथा न कमला देहात् प्रयाति तव केशव ! । तथा ममापि देवेश! शरीरे स्वेकुरुप्रभो !
तथा च काञ्चनं देवं प्रतिगृह्णन् द्विजोत्तमः । क इदं कस्मादादिति वैदिकं मन्त्रमीरयेत्
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्ज्य द्विजपुङ्गवम् । शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत्
ततः प्रभृति यो विप्रोरत्यर्थं गृहमागतः । स मान्यः सूर्यवारे च स मन्तव्यो भवेत्तदा ॥
एवं त्रयोदशं यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान् । तर्पयेत यथाकामं प्रोषितेऽन्यं समाचरेत् ॥
तदनुज्ञया रूपवान्यो यावदभ्यागतोभवेत् । आत्मनोऽपियथाविघ्नं गर्भभूतिकरम्प्रियम्
दैवं वा मानुषं वा स्यादनुरागेण वा ततः । साचारानष्टपञ्चाशद्यथाशक्त्या समाचरेत् ॥
एतद्धि कथितं सम्यक् भवतीनां विशेषतः । अधर्मोऽयं ततो न स्याद्वेश्यानामिहसर्वदा
पुरुहूतेन यत् प्रोक्तं दानवीषु पुरा मया । तदिदं साम्प्रतं सर्वं भवतीष्वपि युज्यते ॥६१
सर्वपापप्रशमनमनन्तफलदायकम् । कल्याणीनां प्रकथितं तत् कुरुध्वं वराननाः ! ॥६२
करोति या शेषमखण्डमेतत् कल्याणिनीमाधवलोकसंस्था ।
सा पूजिता देवगणैरशेषैरानन्दकृत्स्थानमुपैति विष्णोः ॥६३॥

श्रीभगवानुवाच ।

तपोधनः सोऽप्यभिधाय चैवं तदा च तासां व्रतमङ्गनानाम् ।
स्वस्थानमेष्यन्ति समस्तमित्थं व्रतं करिष्यन्ति च देवयोने ! ॥६४॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पुण्यस्त्रीणांसदाचारव्रतकथनं नामोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

अशून्यशयनव्रतकथनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

भगवन् पुरुषस्येह स्त्रियाश्च विरहादिकम् । शोकव्याधिभयं दुःखं न भवेद्येन तद्वद ॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः । क्षीरार्णवे सपत्नीकः सदा वसति केशवः।
तस्यां संपूज्य गोविन्दंसर्वान् कामान् समश्नुते। गोभूहिरण्यदानादि सप्तकल्पशतानुगम्
अशून्यशयनं नाम द्वितीया सम्प्रकीर्त्तिता । तस्यां सम्पूजयेद्विष्णुमेभिर्मन्त्रैर्विधानतः ॥

श्रीवत्सधारिन् ! श्रीकान्त ! श्रीधामन् ! श्रीपतेऽव्यय ! ।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्म्मार्थकामदम् ॥ ५ ॥

अग्नयो मा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम ! पितरो मा प्रणश्यन्तु मास्तु दाम्पत्यभेदनम्
लक्ष्म्यावियुज्यतेदेव ! नकदाचिद्यथा भवान् । तथाकलत्रसम्बन्धोदेव! मामेवियुज्यताम्
लक्ष्म्या न शून्यो वरद! शय्यां त्वं शयनं गतः । शय्याममाप्यशून्यास्तु तथैवमधुसूदन!
गीतवादित्रनिर्घोषं देवदेवस्य कीर्त्तयेत् । घण्टाभवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः ॥ ६ ॥
एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात्तैलवर्जितम् । नक्तमक्षारलवणं यावत्तत्स्याच्चतुष्टयम् ॥
ततः प्रभाते सञ्जाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम् । दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यांदद्याद्विलक्षणाम्
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुताम् । अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम् ॥१२

सोपधानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युताम् । तथाभरणधान्यैश्च यथाशक्त्या समन्विताम्
अव्यङ्गाङ्गाय विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने । दातव्या वेदविदुषे भावेनापतिताय च ॥
तत्रोपविश्यदाम्पत्यमलङ्कृत्यविधानतः । पत्न्यास्तुभाजनं दद्याद्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम् । प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भांनिवेदयेत् ।
एवं यस्तु पुमान् कुर्य्यादशून्यशयनं हरेः । वित्तशाठ्येन रहितो नारायणपरायणः ॥१७
नारीवाविधवाब्रह्मन् ! यावच्चन्द्रार्कतारकम् । न विरूपौन शोकार्त्तौदम्पतीभवतःक्वचित्
न पुत्रपशुरत्नानि क्षयं यान्ति पितामह ! । सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च ॥
कुर्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणेऽशून्यशयनव्रतं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

अङ्गारकव्रतकथनम् ।

ईश्वर उवाच ।

श्रृणु चान्यद्भविष्यं यद्रूपसम्पद्विधायकम् । भविष्यति युगे तस्मिन् द्वापरान्तेपितामह ।
पिप्पलादस्य संवादो युधिष्ठिरपुरःसरैः ॥१॥
वसन्तं नैमिषारण्ये पिप्पलादं महामुनिम् । अधिगम्य तदा चैनं प्रश्नमेकं करिष्यति ।
युधिष्ठिरो धर्म्मपुत्रो धर्मयुक्तस्तपोधनम् ॥२॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कथमारोग्यमैश्वर्यंमतिर्धर्म्मेगतिस्तथा । अव्यङ्गता शिवे भक्तिर्वैष्णवोवाभवेत्कथम् ॥

ईश्वर उवाच ।

तस्योत्तरमिदं ब्रह्मन् ! पिप्पलादस्यधीमतः । श्रृणुष्व यद्वक्ष्यतिवैधर्म्मपुत्रायधार्मिकः ॥

पिप्पलाद उवाच ।

साधुपृष्टं त्वया भद्र ! इदानीं कथयामि ते । अङ्गारव्रतमित्येतत् स वक्ष्यतिमहीपतेः ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विरोचनस्य सम्वादं भार्गवस्य च धीमतः ॥
प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम् । रूपेणाप्रतिमं कान्त्या सोऽहसद्भृगुनन्दनः ॥७
साधु साधु महाबाहो ! विरोचन ! शिवं तव । तत्तथा हसितं तस्य पप्रच्छसुरसूदनः ॥
ब्रह्मन् ! किमर्थमेतत्तेहास्यमाकस्मिकंकृतम् । साधुसाध्वितिमामेवमुक्तवांस्त्वंवदस्वमे ॥
तमेवं वादिनं शुक्र उवाच वदताम्बरः । विस्मयाद्व्रतमाहात्म्याद्धास्यमेतत् कृतंमया ॥
पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य तु शूलिनः । अथ तद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः ॥
भित्वा स सप्तपातालानदहत्सप्त सागरान् । अनेकवक्त्रनयनोज्वलज्ज्वलनभीषणः॥१२
वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः । कृत्वासौ यज्ञमथनं पुनर्भूतलसम्भवः ।

त्रिजगन्निर्दहन् भूयः शिवेन विनिवारितः ॥१३॥

कृतं त्वया वीरभद्र ! दक्षयज्ञविनाशनम् । इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्म्मणा ।
शान्तिप्रदाता सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमोभव । प्रेक्षिष्यन्तेजनाःपूजांकरिष्यन्तिवरान्मम ॥
अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज । देवलोके द्वितीयञ्च तव रूपं भविष्यति ॥
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां त्वद्दिनेनराः । रूपमारोग्यमैश्वर्यंतेष्वनन्तंभविष्यति ॥
एवमुक्तस्तदा शान्तिमगमत्कामरूपधृक् । सञ्जातस्तत्क्षणाद्राजन् ! ग्रहत्वमगमत्पुनः ॥
स कदाचित्भवांस्तस्यपूजार्घादिकमुत्तमम् । दृष्टवान्क्रियमाणञ्चशूद्रेणचव्यवस्थितः ॥
तेन त्वं रूपवान् जातः सुरशत्रुकुलोद्वह । विविधा च रुचिर्जाता यस्मात्तव विदूरगा ॥
विरोचन इति प्राहुर्यस्मात् त्वां देवदानवाः । शूद्रेण क्रियमाणस्यव्रतस्यतव दर्शनात् ॥
ईदृशीं रूपसम्पत्तिं दृष्ट्वाविस्मितवानहम् । साधुसाध्वितितेनोक्तंमही माहात्म्यमुत्तमम् ॥

पश्यतोऽपि भवेद्रूपमैश्वर्यं किमु कुर्वतः ॥ २२ ॥
यस्माच्च भक्त्या धरणीसुतस्य विनिन्द्यमानेन गवादिदानम् ।
आलोकितन्तेन सुरारिगर्भे सम्भूतिरेषा तव दैत्य ! जाता ॥२३॥

ईश्वर उवाच ।

अथ तद्वचनं श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः । प्रह्लादनन्दनोवीरः पुनः पप्रच्छ विस्मितः ॥

विरोचन उवाच ।

भगवंस्तद्व्रतं सम्यक् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । दीयमानन्तु यद्दानंमयादृष्टं भवान्तरे ॥
माहात्म्यञ्च विधिं तस्य यथावद्वक्तुमर्हसि । इति तद्वचनं श्रुत्वापुनःप्रोवाचविस्तरात् ॥

शुक्र उवाच ।

चतुर्थ्यङ्गारकदिने यदा भवति दानव । मृदा स्नानं तदा कुर्यात्पद्मरागविभूषितः ॥२७
अग्निर्मूर्द्धादिवोमन्त्रंजपन्नास्तेउदङ्मुखः । शूद्रस्तूष्णींस्मरन्भौममास्तेभोगविवर्जितः ॥
तथास्तमित आदित्ये गोमयेनानुलेपयेत् । प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरक्षताभिः समन्ततः ॥
अभ्यर्च्याभिलिखेत् पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम् । कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते॥३०
चत्वारः करकाःकार्याभक्ष्यभोज्यसमन्विताः । तण्डुलैरक्तशालीयैःपद्मरागैश्च संयुताः ॥

चतुःकोणेषु तान् कृत्वा फलानि विधिनानि च ।
गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेदयेत् ॥३२॥
सुवर्णश्रृङ्गीं कपिलामथार्च्य रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्साम् ।
धुरन्धरं रक्तमतीव सौम्यं धान्यानि सप्तास्वरसंयुतानि ॥३३॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम् ।
चतुर्भुजं हेममये निविष्टं पात्रे गुडस्योपरि सर्पियुक्तम् ॥३४॥
समस्तयज्ञाय जितेन्द्रियाय पात्राय शीलान्वयसंयुताय ।
दातव्यमेतत् सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दाम्भिकाय ।
समर्पयेद्विप्रवराय भक्त्या कृताञ्जलिः पूर्वमुदीर्य मन्त्रम् ॥३५॥

भूमिपुत्र ! महाभाग! स्वेदोद्भव! पिनाकिनः । रूपार्थीत्वांप्रपन्नोऽहंगृहाणार्घ्यंनमोऽस्तुते
मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं रक्तचन्दनवारिणा । ततोऽर्चयेद्विप्रवरंरक्तमाल्याम्बरादिभिः ॥३७
दद्यात्तेनैवमन्त्रेणभौमङ्गोमिथुनान्वितम् । शय्यांचशक्तितोदद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् ॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद्गुणवते देयन्तदेवाक्षयमिच्छता ॥३६॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विसर्ज्य द्विजपुङ्गवम् । नक्तमक्षारलवणमश्नीयाद्घृतसंयुतम् ॥४०
भक्त्या यस्तु पुनः कुर्यादेवमङ्गारकाष्टकम् । चतुरो वाथवा तस्य यत्पुण्यंतद्वदामिते ॥

रूपसौभाग्यसम्पन्नः पुनर्जन्मनिजन्मनि । विष्णौवाऽथशिवेभक्तःसप्तद्वीपाधिपोभवेत्॥
सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । तस्मात्त्वमपि दैत्येन्द्र ! व्रतमेतत् समाचर ॥४३

पिप्पलाद उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भृगुनन्दनोऽपि जगाम दैत्यश्च चकार सर्वम् ।
त्वं चापि राजन् ! कुरु सर्वमेतद्यतोऽक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥ ४४ ॥

ईश्वर उवाच ।

तथेति संपूज्य स पिप्पलादं वाक्यञ्चकाराद्भुतवीर्यकर्मा ।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं भगवान् विधत्ते ॥ ४५ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे अङ्गारकचतुर्थीव्रतकथनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

शुक्रगुरुप्रशान्तिकथनम् ।

पिप्पलाद उवाच ।

अथातः शृणु भूपाल ! प्रति शुक्रं प्रशान्तये । यत्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये त्विह॥
राजतेवाथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथ वा पुनः । शुक्लपुष्पाम्बरयुते सिततण्डुलपूरिते ॥
विधाय राजतं शुक्रं शुचि मुक्ताफलान्वितम् । मन्त्रेणानेन तत्सर्वं सामगाय निवेदयेत्॥
नमस्ते सर्वलोकेश! नमस्ते भृगुनन्दन ! । कवे!सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तुते॥
एवमस्योदयेकुर्वन् यात्रादिषुच भारत !। सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकेमहीयते ॥
यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा सामाल्यकैः शुभैः। वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि।
तावदन्नं नचाश्नीयात् त्रिभिः कामार्थसिद्धये ॥६॥
तद्वद्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर ! । सुवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ॥७
पीतपुष्पाम्बरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः । पञ्चगव्यजलेन च ॥८॥

पीताङ्गरागवसनो घृतहोमन्तु कारयेत् । प्रणम्य च गवा सार्द्धं ब्रह्मणाय निवेदयेत् ॥६
नमस्तेऽङ्गिरसान्नाथ ! वाक्पते ! च वृहस्पते !। क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ॥
संक्रान्तावस्यकौन्तेय!यात्रास्वभ्युदयेषुच । कुर्वन्वृहस्पतेःपूजांसर्वान्कामान्समश्नुते ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे गुरुशुक्रप्रशान्तिकथनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

कल्याणसप्तमीव्रतकथनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

भगवन्! भव ! संसारसागरोत्तारकारक!। किञ्चिद्व्रतंसमाचक्ष्वस्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ॥

ईश्वर उवाच ।

सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ।
विशोकसप्तमीं तद्वत् फलाढ्यां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥

शर्करासप्तमीं पुण्यां तथा कमलसप्तमीम् । मन्दारसप्तमीं तद्वच्छुभदां शुभसप्तमीम् ॥३।
सर्वानन्तफलाः प्रोक्ताः सर्वा देवर्षिपूजिताः । विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः
यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् । सातु कल्याणिनी नामविजयाचनिगद्यते।
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् । ततः शुक्लाम्बरः पद्ममक्षताभिः प्रकल्पयेत् ॥

प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्वद् वृत्ताञ्च कर्णिकाम् ।
पुष्पाक्षताभिर्देवेशं विन्यसेत् सर्वतः क्रमात् ॥ ७ ॥

पूर्वेण तपनायेति मार्त्तण्डायेति चानले । याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते ॥
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले । सौम्ये वैकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले ॥६॥
आदावन्तेच मध्येच नमोऽस्तु परमात्मने । मन्त्रैरेभिः समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः
शुक्लवस्त्रैः फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः । स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च ॥११

ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसर्जेद्द्विजपुङ्गवान् । शक्तितः पूजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ।
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १२
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः । कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम् ॥
भुक्त्वा च वेदविदुषि विडालव्रतवर्जिते । घृतपात्रं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत् ॥१४॥
प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकरः । अनेन विधिना सर्वं मासिमासि व्रतंचरेत् ।
ततस्त्रयोदशे मासि गा वै दद्यात्त्रयोदश । वस्त्रालङ्कारसंयुक्ताः सुवर्णास्याः पयस्विनीः
एकामपिप्रदद्याद्वा वित्तहीनो विमत्सरः । न वित्तशाठ्यं कुर्वीतयतो मोहात् पतत्यधः ।
अनेन विधिनायस्तु कुर्यात् कल्याणसप्तमीम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्य्यलोके महीयते ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह जायते ॥ १८ ॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदैवतपूजिता । सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमी ॥ १९ ॥
इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम् । शृणोति पठते चेह सर्वपापैः प्रमुच्यते ।२०।
इति श्रीमत्स्यपुराणे कल्याणसप्तमीव्रतकथनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

विशोकसप्तमीव्रतकथनम् ।

ईश्वर उवाच ।

विशोकसप्तमीं तद्वद्वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ! यामुप्योष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते ॥
माघे कृष्णतिलैः स्नात्वा षष्ठ्यां वै शुक्लपक्षतः । कृताहारः कृसरया दन्तधावनपूर्वकम् ।
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि ।२।
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः । कृत्वातु काञ्चनं पद्ममर्कायेति च पूजयेत् ३
करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च । यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य ! सर्वदा ॥
तथा विशोकता मेऽस्तु त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च ।।५।।

एवं संपूज्यषष्ठ्यान्तुभक्त्यासंपूजयेद्द्विजान् । सुप्त्वासंप्राश्यगोमूत्रमुत्थायकृतनैत्यकः
संपूज्य विप्रानन्नेन गुडपात्रसमन्वितम् । तद्वस्त्रयुग्मं पद्मञ्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । ६ ।
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः । ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥७॥
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः । कृत्वा यावत् पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ॥८॥

व्रतान्ते कलशन्दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम् ।
शय्यां सोपस्करान्दद्यात् कपिलाञ्च पयस्विनीम् ॥९॥

अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः । विशोकसप्तमीं कुर्यात्सयातिपरमाङ्गतिम् ॥
यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतं भवेत् । तावन्नशोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ॥
यं यं प्रार्थयते कामं तन्तमाप्नोति पुष्कलम् । निष्कामःकुरुतेयस्तु स परं ब्रह्मगच्छति ॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि विशोकाख्याञ्च सप्तमीम् ।
सोऽपीन्द्रलोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित् ॥१३॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे विशोकसप्तमीव्रतकथनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

फलसप्तमीव्रतकथनम् ।

ईश्वर उवाच ।

अन्यामपिप्रवक्ष्यामिनाम्नातुफलसप्तमीम् । यामुपोष्य नरःपापाद्विमुक्तः स्वर्गभाग्भवेत्॥
मार्गशीर्षे शुभेमासिसप्तम्यां नियतव्रतः । तामुपोष्याथकमलंकारयित्वा तु काञ्चनम् ॥
शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । रविं कांञ्चनकं कृत्वापलस्यैकस्य धर्म्मवित्॥

दद्यात् द्विकालवेलायां भानुर्मे प्रीयतामिति ॥३॥
भक्त्या तु विप्रान् संपूज्य चाष्टम्यां क्षीरभोजनम् ।
दत्त्वा कुर्यात् फलयुतं यावत् स्यात् कृष्णसप्तमी ॥४॥

तामप्युपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु । तद्वद्धेमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम् ॥५
शर्करापात्रसंयुक्तंवस्त्रमाल्यसमन्वितम् । सम्वत्सरञ्च तेनैव विधिनोभयसप्तमीम् ॥६॥
उपोष्य दत्त्वा क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत् । भानुरर्कोरविर्ब्रह्मा सूर्यःशक्रो हरिः शिवः ॥
श्रीमान् विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति ॥७॥
प्रतिमासञ्च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्त्तयेत् । प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत् कुर्वन् समाचरेत् ॥
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः । शर्कराकलशं दद्याद्धेमपद्मदलान्वितम् ॥९॥
यथा न विफला कामास्त्वद्भक्तानां सदा रवे । तथाऽनन्तफलावाप्तिरस्तु मे सप्तजन्मसु
इमामनन्तफलदां यः कुर्य्यात् फलसप्तमीम् । सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्य्यलोके महीयते ॥
सुरापानादिकंकिञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वंनाशमायातियःकुर्य्यात्फलसप्तमीम् ।
कुर्वाणः सप्तमीञ्चेमां सततं रोगवर्जितः । भूतान् भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम् ।
यः शृणोति पठेद्वापि सोऽपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१३॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे फलसप्तमीव्रतकथनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शर्करासप्तमीव्रतकथनम् ।

ईश्वर उवाच ।

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये तद्वत्कल्मषनाशिनीम् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययाऽनन्तं प्रजायते ॥१
माघवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः । प्रातः स्नात्वा तिलैः शुक्लैःशुक्लमाल्यानुलेपनः ॥
स्थण्डिले पद्ममालिख्यकुङ्कुमेनसकर्णिकम् । तस्मिन्नमः सवित्रे तु गन्धधूपौ निवेदयेत् ॥
स्थापयेदुदकुम्भञ्च शर्करापात्रसंयुतम् । शुक्लवस्त्रैरलङ्कृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥

सुवर्णेन समायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥४॥

विश्ववेदमयोयस्माद्वेदवादीति पठ्यसे । सर्वस्यामृतमेवत्वमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥५॥
पञ्चगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत्तत् पार्श्वतः क्षितौ । सौरसूक्तं स्मरन्नास्ते पुराणश्रवणेन च
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः । तत्सर्वं विदुषे तद्वद्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७॥
भोजयेच्छक्तितो विप्रान् शर्कराघृतपायसैः । भुञ्जीतातैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः ॥
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् । संवत्सरान्ते शयनं शर्कराकलशान्वितम्
सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकाङ्गांपयस्विनीम् । गृहंचशक्तिमान्दद्यात्समस्तोपस्करान्वितम्
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा । दशभिर्वाथ निष्केण तदर्द्धेनापि शक्तितः
सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवादनम् । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन्दोषं समश्नुते ।
अमृतं पिबतो वक्त्रात्सूर्यस्यामृतबिन्दवः । निपेतुर्ये तदुत्थामी शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः
शर्करा तु परा तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान् । इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः
शर्करासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा । सर्वदुष्टप्रशमनी पुत्रपौत्रप्रवर्द्धिनी ॥ १५ ॥

यः कुर्यात् परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात् ।
कल्पमेकं वसेत् स्वर्गे ततो याति परम्पदम् ॥१६॥
इदमनघं यः शृणोति स्मरेद्वा परिपठतीह सुरेश्वरस्य लोके ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनमालयाऽभिपूज्यः ॥१७॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शर्करासप्तमीव्रतकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

कमलसप्तमीव्रतकथनम् ।

ईश्वर उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्वत् कमलसप्तमीम् । यस्याः सङ्कीर्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः ॥
वसन्तामलसप्तम्यां स्नातः सन् गौरसर्षपैः । तिलपात्रे च सौवर्णे विधाय कमलं शुभम्
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गन्धपुष्पैः समर्चयेत् । नमः कमलहस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥

दिवाकर ! नमस्तुभ्यं प्रभाकर ! नमोऽस्तुते । ततो द्विकालवेलायामुदकुम्भसमन्विताम्
विप्राय दद्यात् संपूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः । शक्त्या चकपिलांदद्यादलङ्कृत्यविधानतः
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद्द्विजान् । यथाशक्त्याऽथ भुञ्जीत मांसतैलविवर्जितम्
अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासि मासि च । सर्वं समाचरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः

व्रतान्ते शयनं दद्यात् सुवर्णं कमलान्वितम् ।
गाश्च दद्यात् स्वशक्त्या तु सुवर्णाढ्यां पयस्विनीम् ॥८॥

भाजनासनदीपादीन् दद्यादिष्टानुपस्करान् । अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कमलसप्तमीम्

लक्ष्मीमनन्तामभ्येति सूर्य्यलोके महीयते ॥ ९ ॥

कल्पेकल्पेततोलोकान्सप्त गत्वापृथक् पृथक् । अप्सरोभिःपरिवृतस्ततोयातिपराङ्गतिम्

यः पश्यतीदं शृणुयाच्च मर्त्यः पठेच्च भक्त्याऽथ मतिं ददाति ।
सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य गन्धर्वविद्याधरलोकभाक् स्यात् ॥११॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कमलसप्तमीव्रतकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

मन्दारसप्तमीव्रतकथनम् ।

ईश्वर उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् । सर्वकामप्रदां रम्यां नाम्ना मन्दारसप्तमीम्
माघस्यामलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ् नरः । दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद् बुधः॥
विप्रान् संपूजयित्वातुमन्दारंप्राशयेन्निशि । ततः प्रभात उत्थाय कृत्वा स्नानंपुनर्द्विजान्
भोजयेच्छक्तितः कृत्वा मन्दारकुसुमाष्टकम् । सौवर्णं पुरुषं तद्वत्पद्महस्तं सुशोभनम् ॥
पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेषु पत्रकम् । हैममन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः ॥५॥
नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यानलेदले । दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्यम्णेति नैर्ऋते ॥ ६ ॥

पश्चिमे वेदधाम्ने च वायव्ये चण्डभानवे । पूष्णेत्युत्तरतः पूज्यमानन्दायेत्यतः परम् ॥
कर्णिकायाञ्च पुरुषंस्थाप्यसर्वात्मनेति च । शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्यभक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः
एवमभ्यर्च्य तत्सर्वं दद्याद्वेदविदे पुनः । भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही ॥६
अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यांमासिमासि च । कुर्यात्सम्वत्सरं यावद्वित्तशाठ्यविवर्जितः
एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि । गोभिर्विभवतः सार्द्धं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥
नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च । त्वं रवे! तारयस्वास्मान्संसारभयसागरात् ॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्य्यान्मन्दारसप्तमीम् । विपाप्मा स सुखीमर्त्यः कल्पञ्चदिविमोदते
इमामघौघपटलभीषणध्वान्तदीपिकाम् । गच्छन् प्रगृह्य संसारे सर्वार्थांश्च लभेन्नरः ॥
मन्दारसप्तमीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।१५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मन्दारसप्तमीव्रतकथनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

ऊनाशीतितमोऽध्यायः

शुभसप्तमीव्रतकथनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

अथान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम् । यामुपोष्य नरो रोगशोकदुःखैःप्रमुच्यते
पुण्ये चाश्वयुजेमासिकृतस्नानजपः शुचिः । वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम्
कपिलां पूजयेद्भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः । नमामि सूर्य्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम् ॥
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये ॥ ३ ॥
अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम् । काञ्चनं वृषभं तद्वद्गन्धमाल्यगुडान्वितैः ॥
फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्घृतपायससंयुतैः । दद्याद्विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति ॥ ५ ॥
पञ्चगव्यञ्च संप्राश्य स्वपेद्भूमौ विमत्सरः । ततः प्रभाते सञ्जातेभक्त्यासंपूजयेद्द्विजान्
अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि यदा नरः । वाससी वृषभं हैमं तद्वद्गां काञ्चनोद्भवाम्

सम्वत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम् । सोपधानकविश्रामं भाजनासनसंयुतम् ॥८

ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा । दद्याद्वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥

अनेन विधिना विद्वान् कुर्य्याद्यः शुभसप्तमीम् । तस्य श्रीर्विपुला कीर्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि

अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरालये । वसेद् गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसंप्लवम् ।

कल्पादाववतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ ११ ॥

ब्रह्महत्यासहस्रस्य भ्रूणहत्याशतस्य च । नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमी ।१२॥

इमां पठेद्यः शृणुयान्मुहूर्तं पश्येत्प्रसङ्गादपि दीयमानम् ।

सोऽप्यत्र सर्वाघविमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम् ॥१३॥

यावत्समाः सप्त नरः करोति यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम् ।

स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं याति परं मुरारेः ॥१४॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शुभसप्तमीव्रतकथनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः ।

अशीतितमोऽध्यायः

विशोकद्वादशीव्रतकथनम् ।

मनुरुवाच ।

किमभीष्टवियोगशोकसङ्घादलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा ।

विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन् भवभीतेरपि सूदनञ्च पुंसः ॥१॥

मत्स्य उवाच ।

परिपृष्टमिदं जगत् प्रियन्ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात् ।

तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम् ॥२॥

पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम् । दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु ॥

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम् । एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्यंतुपूर्वकम्

श्रियं वाऽभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्यामि त्वपरेऽहनि ॥४॥

एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः । स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु ॥

शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ॥ ५ ॥

विशोकाय नमः पादौ जङ्घे च वरदाय वै । श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ॥

कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम् । दामोदरायेत्युदरम्पार्श्वे च विपुलाय वै ॥

नाभिश्च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै । श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुजिते नमः ॥८

चक्रिणे वामबाहुञ्च दक्षिणङ्गदिने नमः । वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै ॥६॥

नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी । ललाटं वामनायेति हरयेति पुनर्भ्रुवौ ॥१०॥

अलकान् माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे । नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत् ॥

एवं संपूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः । ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलंकारयेन्मृदा

चतुरस्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम् । श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो विप्रत्रयसमावृतम् ॥

अङ्गुलेनोच्छ्रिता विप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः ।

स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत् ॥१४॥

नदीवालुकयाशूर्पेलक्ष्म्याःप्रतिकृतिंन्यसेत् । स्थण्डिलेशूर्पमारोप्यलक्ष्मीमित्यर्चयेद्बुधः

नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमोलक्ष्म्यै नमःश्रियै । नमःपुष्ट्यैनमस्तुष्ट्यैवृष्ट्यैहृष्ट्यैनमोनमः

विशोकादुःखनाशायविशोकावरदास्तु मे । विशोकाचास्तुसम्पत्त्यै विशोकासर्वसिद्धये

ततः शुक्लाम्बरैः शूर्पं वेष्ट्य संपूजयेत्फलैः । वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् सुवर्णकमलेन च ॥

रजनीषु च सर्वासु पिबेद्दर्भोदकं बुधः । ततस्तु गीतनृत्यादि कारयेत् सकलान्निशाम्

यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वाप्युत्थाय मानवः । अभिगम्यचविप्राणांमिथुनानितदार्चयेत्

शक्तितस्त्रीणिचैकं वावस्त्रमाल्यानुलेपनैः । शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तुजलशायिने

ततस्तु गीतवाद्येन रात्रिजागरणे कृते । प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥

भोजनञ्च यथाशक्त्यावित्तशाठ्यविवर्जितः । भुक्त्वा श्रुत्वापुराणानि तद्दिनञ्चातिवाहयेत्

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् । व्रतान्ते शयनं दद्याद्गुडधेनुसमन्वितम्

सोपधानकविश्रामं सास्तरावरणं शुभम् ॥२४॥

यथा न लक्ष्मीर्देवेश! त्वां परित्यज्य गच्छति। तथा सुरूपतारोग्यमशोकश्चास्तुमेसदा
यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते क्वचित्। तथाविशोकितामेऽस्तु भक्तिरग्र्याचकेशवे
मन्त्रेणानेन शयनं गुड़धेनुसमन्वितम्। शूर्पञ्च लक्ष्म्या सहितं दातव्यं भूतिमिच्छता॥
उत्पलं करवीरञ्च वाणमम्लानकुङ्कमम्। केतकी सिन्दुवारञ्च मल्लिका गन्धपाटका॥
कदम्बं कुब्जकं जातिः शस्तान्येतानि सर्वदा ॥२८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे विशोकद्वादशीव्रकथनं नामाशीतितमोऽध्यायः।

एकाशीतितमोऽध्यायः

गुड़धेनुदानविधिवर्णनम्।

मनुरुवाच।

गुड़धेनुविधानं मे समाचक्ष्व जगत्पते!। किं रूपं केन मन्त्रेण दातव्यं तदिहोच्यताम्

मत्स्य उवाच।

गुड़धेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम्। तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम्॥२॥
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्रागग्रं विन्यसेद्भुवि। गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः।
लघ्वेणकाजिनं तद्वद्वत्सस्य परिकल्पयेत्।
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम्॥४॥
उत्तमागुड़धेनुःस्यात्सदाभारचतुष्टयम्। वत्सं भारेणकुर्वीतद्वाभ्यांवै मध्यमास्मृता॥
अर्द्धभारेणवत्सःस्यात् कनिष्ठाभारकेण तु। चतुर्थांशेनवत्सः स्याद्गृहवित्तानुसारतः॥
धेनुवत्सौघृतास्यौचसितसूक्ष्माम्बरावृतौ। शुक्तिकर्णाविक्षुपादौशुक्तिमुक्ताफलेक्षणौ॥
सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ। ताम्रगण्डकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ॥
विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनावुभौ। क्षौमपुच्छौ कांश्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ॥६॥
सुवर्णश्रृङ्गाभरणौ राजतैः खुरसंयुतौ। नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ॥

इत्येवं रचयित्वा तौ दीपधूपैस्थाऽर्चयेत् ॥१०॥

या लक्ष्मीःसर्वभूतानां याच देवेष्ववस्थिता। धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु

देहस्था याच रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः।

चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥ १३॥

चतुर्मुखस्यया लक्ष्मीर्यालक्ष्मीर्धनदस्यच। लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदाऽस्तुमे

स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजाञ्चया। सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिप्रयच्छमे

एवमामन्त्र्यतां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्। विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामपि पठ्यते ॥१६

यास्ताःपापविनाशिन्यः पठ्यन्तेदशधेनवः। तासांस्वरूपं वक्ष्यामिनामानिचनराधिप!।

प्रथमा गुडधेनुः स्यात् घृतधेनुस्तथापरा। तिलधेनुस्तृतीयातु चतुर्थी जलसंज्ञिता॥१८

क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथापरा। सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी।

रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात् स्वरूपतः ॥१६॥

कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासान्तु राशयः। सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः॥

नवनीतेन रत्नैश्च तथान्ये तु महर्षयः ॥ २१ ॥

एतदेव विधानं स्यात्तएवोपस्कराः स्मृताः। मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि

यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥ २२ ॥

गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तावन्मयोदिताः। अशेषयज्ञफलदाः सर्वाः पापहराः शुभाः ॥२३

व्रतानामुत्तमं यस्माद्विशोकद्वादशीव्रतम्। तदङ्गत्वेन चैवात्र गुडधेनुः प्रशस्यते ॥२४॥

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथवा पुनः। गुडधेन्वादयो देयास्तूपरागादिपर्वसु ॥२५॥

विशोकद्वादशीचैषा पुण्या पापहराशुभा। यामुपोष्यनरो याति तद्विष्णोः परमम्पदम्

इहलोकेच सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च। वैष्णवं पुरमाप्नोति मरणे च स्मरन् हरिम् ॥

नवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौच धर्मवित्। न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य सञ्जायते नृप ! ॥

नारी वा कुरुतेयातु विशोकद्वादशीव्रतम्। नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात्

तस्मादग्रे हरेर्नित्यमनन्तं गीतवादनम्। कर्त्तव्यं भूतिकामेन भक्त्या तु परया नृप ! ॥

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यक् मधुमुरनरकारेरर्चनं यश्च पश्येत् ।
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके वसति विबुधौघैः पूज्यते कल्पमेकम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे गुड़धेनुदानविधिवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

धान्यशैलदानविधिवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

भगवन्! श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम् ॥ १ ॥

उमापतिरुवाच ।

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिपुङ्गव । यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान् ॥ २ ॥
पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च । न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते ॥ ३ ॥
तस्माद्विधानंवक्ष्यामिपर्वतानामनुक्रमात् । प्रथमोधान्यशैलःस्याद्द्वितीयोलवणाचलः ॥ ४ ॥
गुड़ाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः । पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः ॥ ५ ॥
सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः । राजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः ॥ ६ ॥
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥ ७ ॥
शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये । विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथवा पुनः ॥ ८ ॥
शुक्लायांपञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षेवाविधानतः । धान्यशैलादयोदेया यथाशास्त्रंविधानतः ॥ ९ ॥
तीर्थेष्वायतनेवापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे । मण्डपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् ॥
प्रागुदक् प्रवणन्तद्वत् प्राङ्मुखञ्च विधानतः ॥१०॥
गोमयेनानुलिप्तायांभूमावास्तीर्यवैकुशान् । तन्मध्येपर्वतंकुर्यात् विष्कम्भपर्वतान्वितम् ॥
धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः । मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात्त्रिभिःशतैः

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतःस्यात् ।
पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तोयाम्येन गोमेदकपुष्परागैः ॥ १३ ॥
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैदूर्यसरोजरागैः ।
श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवालैर्लतान्वितः शुक्तिशिलातलःस्यात् ॥ १४ ॥
ब्रह्माऽथ विष्णुर्भगवान् पुरारिर्दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।
मूर्द्धन्यवस्थानममत्सरेण कार्यं त्वनेकैश्च पुनर्द्विजौघैः ॥ १५ ॥
चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि नितम्बभागेष्वपि राजतः स्यात् ।
तथेक्षुवंशावृतकन्दरस्तु घृतोदकप्रस्रवणैश्च दिक्षु ॥ १६ ॥
शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात् पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन ।
वासांसि पश्चादथकर्बुराणि रक्तानि चैवोत्तरतो घनाली ॥ १७ ॥
रौप्यान् महेन्द्रप्रमुखांस्तथाष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण ।
नानाफलाली च समन्ततः स्यान्मनोरमं माल्यविलेपनञ्च ।
वितानकञ्चोपरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितञ्च ॥ १८ ॥
इत्थं निवेश्यामरशैलमग्र्यं मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन् क्रमेण
तुरीयभागेन चतुर्दिशञ्च संस्थापयेत् पुष्पविलेपनाढ्यान् ॥ १९ ॥
पूर्वेण मन्दरमनेकफलावलीभिर्युक्तं यवैः कनकभद्रकदम्बचिह्नैः ।
कामेन काञ्चनमयेन विराजमानमाकारयेत् कुसुमवस्त्रविलेपनाढ्यम् ।
क्षीरारुणोदसरसाथ वनेन चैवं रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम् ॥२०॥
याम्येन गन्धमदनश्च निवेशनीयो गोधूमसञ्चयमयः कलधौतयुक्तः ।
हैमेन यज्ञपतिना घृतमानसेन वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात् ॥२१॥
पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्प-सौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम् ।
आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्वद्वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥ २२ ॥
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवस्त्रम् ।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरन्तमाकारयेत् कनकधेनुविराजमानम् ॥ २३ ॥

माक्षीकभद्रसरसाथ वनेन तद्वद्रौप्येण भास्वरवता च युतं निधाय ।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भिर्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥२४॥
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च ।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततुर्यैरावाहनञ्च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥२५॥
त्वं सर्वदेवगणधामनिधे ! विरुद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत ! नाशयाशु ।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमान्नः संपूजितःपरमभक्तिमता मया हि ।२६
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः । मूर्तामूर्तात्परं बीजमतः पाहि सनातन !॥
यस्मात्त्वंलोकापालानांविश्वमूर्तेश्चमन्दिरम् । रुद्रादित्यवसूनाञ्चतस्माच्छान्तिंप्रयच्छमे।
यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च शिवेन च । तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ।२९।
एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरञ्चाभिपूजयेत् । यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेन च वर्षतः ॥३०।
शोभसे मन्दर ! क्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव । यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन !।
गन्धर्ववनशोभावानतः कीर्त्तिर्दृढास्तु मे ।
यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ॥३२॥
हिरण्मयाश्वत्थशिरास्तस्मात्पुष्टिर्ध्रुवास्तुमे । उत्तरैःकुरुभिर्यस्मात्सावित्रेणवनेनच ॥
सुपार्श्व ! राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे ॥३३॥
एवमामन्त्र्य तान् सर्वान् प्रभाते विमले पुनः ।
स्नात्वाऽथ गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् ॥३४॥
विष्कम्भपर्वतान्दद्यादृत्विग्भ्यःक्रमशोमुने । गाश्च दद्याच्चतुर्विंशदथवा दश नारद ॥३५॥
नव सप्त तथाष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान् । एकापि गुरवे देया कपिला च पयस्विनी॥
पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः । तएव पूजने मन्त्रास्तएवोपस्करा मताः॥३७
ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनाञ्च सर्वदा । स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते ।
उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते ॥३८॥
विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु नारद । दानकाले च ये मन्त्राः पर्वतेषुचयत्फलम् ॥
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्त्तते ॥

अन्नमेव ततो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः । धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥४१॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् । मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोकेमहीयते ॥४२
अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णेन विराजता । विमानेन दिवः पृष्ठमायातिस्म निषेवितः ।
धर्म्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः ॥४३॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे धान्यशैलदानविधिवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

लवणाचलदानवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामिलवणाचलमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरोलोकानाप्नोतिशिवसंयुतान् ॥
उत्तमः षोड़शद्रोणैः कर्त्तव्यो लवणाचलः । मध्यमः स्यात्तदर्द्धेनचतुर्भिरधमः स्मृतः ॥
वित्तहीनोयथाशक्त्याद्रोणादूद्र्ध्वन्तुकारयेत् । चतुर्थांशेनविष्कम्भपर्वतान्कारयेत्पृथक्
विधानं पूर्ववत्कुर्य्याद् ब्रह्मादीनाञ्च सर्वदा ।
तद्वद्धेममयान् सर्व्वान् लोकपालान्निवेशयेत् ॥४॥
सरांसि कामदेवादींस्तद्वदत्रापि कारयेत् । कुर्य्याज्जागरणञ्चापि दानमन्त्रान्निबोधत ॥
सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणोरसः । तद्दानकर्तृकत्वेन त्वं मां पाहि नगोत्तम॥
यस्मादन्नरसाः सर्वेनोत्कटालवणंविना । प्रियश्चशिवयोर्नित्यंतस्माच्छान्तिप्रयच्छ मे ॥
विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्द्धनम् । तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥८
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम् । उमालोके वसेत्कल्पं ततो यातिपरांगतिम् ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे लवणाचलदानवर्णनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

गुडपर्वतदानवर्णनम् ।

ईश्वर उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि गुड़पर्वतमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरः स्वर्गमाप्नोति सुरपूजितम् ॥१॥
उत्तमो दशभिर्भारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः । त्रिभिर्भारैःकनिष्ठःस्यात्तदर्द्धेनाल्पवित्तवान् ॥
तद्वदामन्त्रणं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम् । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्सरांसि वनदेवताः ॥३॥
होमजागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम् । धान्यपर्वतवत् कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४॥
यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः । सामवेदस्तुवेदानांमहादेवस्तु योगिनाम् ॥
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा । तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसोमतः ॥६॥
मम तस्मात्परांलक्ष्मींगुडपर्वत ! देहिवै । यस्मात्सौभाग्यदायिन्याभ्रातात्वंगुडर्वत ॥
निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥७॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् । पूज्यमानः सगन्धर्वैर्गौरीलोके महीयते ॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपोभवेत् । आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे गुड़पर्वतदानवर्णनं नाम चतुरशीतिमोऽध्यायः ।

पंचाशीतितमोऽध्यायः

सुवर्णाचलदानवर्णनम् ।

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम् । यस्य प्रदानाद्भवनं वैरिञ्च्यं याति मानवः ।१॥
उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः । तदर्द्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः ।
दद्यादेकपलादूर्द्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः ॥२॥
धान्यपर्वतवत्सर्वंविदध्यान्मुनिपुङ्गवः । विष्कम्भशैलांस्तद्वच्चऋत्विग्भ्यःप्रतिपादयेत् ॥
नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः । यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय ॥४

यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात् पुण्यं जगत्पते । हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम !॥५
अनेन विधिना यस्तु दद्यात् कनकपर्वतम् । स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम् ।
तत्र कल्पशतं तिष्ठेत् ततो याति पराङ्गतिम् ॥६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सुवर्णाचलदानकथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

षडशीतितमोऽध्यायः

तिलपर्वतदानवर्णनम् ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः । यत् प्रदानान्नरोयातिविष्णुलोकंसनातनम् ॥
उत्तमोदशभिर्द्रोणैर्मध्यमःपञ्चभिःस्मृतः । त्रिभिःकनिष्ठोविप्रेन्द्र ! तिलशैलःप्रकीर्तितः ॥
पूर्ववच्चापरान्सर्वान्विष्कम्भानभितोगिरीन् । दानमन्त्रान्प्रवक्ष्यामियथावन्मुनिपुङ्गव
यस्मान्मधुवधेविष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः । तिलाःकुशाश्चमाषाश्चतस्माच्छन्नोभवत्विह ॥
हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिला एवाभिरक्षणम् ।
भवादुद्धर शैलेन्द्र ! तिलाचल ! नमोस्तुते ॥५॥
इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात् तिलाचलमनुत्तमम् ।
स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६॥
दीर्घायुष्यं समाप्नोति पुत्रपौत्रैश्च मोदते । पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे तिलपर्वतदानविधिवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

कार्पासपर्वतदानवर्णनम् ।

कार्पासपर्वतस्तद्वद्विंशद्भारैरिहोत्तमः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः ।
भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥१॥

धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्य मुनिपुङ्गव । प्रभातायान्तु शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयेत् ॥२॥

त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा । कार्पासाद्रे ! नमस्तुभ्यमघौघध्वंसनो भव ॥
इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसन्निधौ । रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥
इति श्री मत्स्यपुराणे कार्पासपर्वतदानवर्णनं नाम सप्ताशीतिमोऽध्यायः

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

घृताचलदानवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् । तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥१॥
विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमःस्याद्घृताचलः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तःपञ्चभिस्त्वधमःस्मृतः

अल्पवित्तोऽपियः कुर्य्याद् द्वाभ्यामिह विधानतः ।
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत् ॥३॥
शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् ।
कारयेत्संहतानुच्चान्यथाशोभं विधानतः ॥४॥

वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः । धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते ॥५॥
अधिवासनपूर्वञ्च तद्वद्धोमसुरार्चनम् । प्रभातायां तु शर्वर्य्यां गुरवे तन्निवेदयेत् ।

विष्कम्भपर्वतांस्तद्वद्वत्विग्भ्यः शान्तमानसः ॥६॥

संयोगाद्घृतमुत्पन्नंयस्मादमृततेजसोः । तस्माद्घृतार्चिर्विश्वात्माप्रीयतामत्र शङ्करः ॥
यस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते तद्विद्व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेणतस्मात्त्वं पाहिनोऽनिशम् ॥
अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमम् । महापातकयुक्तोऽपि लोकमाप्नोति शाङ्करम् ॥
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना । विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः ।

विहरेत् पितृभिः सार्द्धं यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे घृताचलदानवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

ऊननवतितमोऽध्यायः

रत्नाचलदानवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् । मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः ॥१॥
मध्यमः पञ्चशतकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः । चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताःस्युः समन्ततः ॥
पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः । पद्मरागयुतः कार्य्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः ॥३॥
वैदूर्य्यविद्रुमैः पश्चात्संमिश्रो विमलाचलः । पद्मरागैः ससौवर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत् ॥
धान्यपर्वतवत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत् । तद्वदावाहनं कुर्य्याद्वृक्षान्देवांश्चकाञ्चनान् ॥
पूजयेत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते च विमत्सरः । पूर्ववद्गुरुऋत्विग्भ्यइमान् मन्त्रानुदीरयेत्॥
यदा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः । त्वञ्च रत्नमयो नित्यं नमस्तेऽस्तुसदाचल ॥
यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिं प्रकुरुते हरिः । सदा रत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्वत !॥८॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् । स यातिविष्णुसालोक्यममरेश्वरपूजितः ॥
यावत्कल्पशतं साग्रं वसेच्चेह नराधिप । रूपारोग्यगुणोपेतःसप्तद्वीपाधिपोभवेत् ॥१०
ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे रत्नाचलदानवर्णनं नामोनवतितमोऽध्यायः ।

नवतितमोऽध्यायः

रौप्याचलदानवर्णनम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरो यातिसोमलोकमनुत्तमम् ॥
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः । पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धेनाधमः स्मृतः ॥२॥
अशक्तो विंशतेरूर्द्ध्वं कारयेच्छक्तितस्तदा । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥
पूर्ववद्राजतान् कुर्य्यान्मन्दरादीन् विधानतः । कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद् बुधः ॥

ब्रह्मविष्ण्वर्कवान् कार्यो नितम्बोऽत्र हिरण्मयः ।
राजतं स्याद्यदन्येषां सर्वं तदिह काञ्चनम् ॥५॥
शेषन्तु पूर्ववत् कुर्याद्धोमजागरणादिकम् । दद्यात्ततः प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥६
विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य वस्त्रविभूषणैः । इमंमन्त्रंपठन्दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥
पितॄणांवल्लभोयस्माद्धरीन्द्राणांशिवस्यच । पाहिराजत! तस्मात्त्वंशोकसंसारसागरात्
इत्थं निवेद्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम् । गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥६
सोमलोकेसगन्धर्वैः किन्नराप्सरसाङ्गणैः । पूज्यमानोवसेद्विद्वान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे रौप्याचलदानवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।

एकनवतितमोऽध्यायः
शर्कराशैलदानवर्णनम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराशैलमुत्तमम् । यस्य प्रदानाद्विष्णवर्करुद्रास्तुष्यन्तिसर्वदा॥
अष्टाभिः शर्कराभारैरुत्तमःस्यान्महाचलः । चतुर्भिर्मध्यमःप्रोक्तोभारास्याधमः स्मृतः ॥
भारेण वार्द्धभारेणकुर्याद्यःस्वल्पवित्तवान् । विष्कम्भपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेनमानवः ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्यामरसंयुतम् । मेरोरुपरि तद्वच्च स्थाप्य हेमतरुत्रयम् ॥ ४ ॥
मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः । एतद् वृक्षत्रयं मूर्ध्निसर्वेष्वपिनियोजयेत् ॥
हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपश्चिमभागयोः । निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले ॥६॥
मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत् । गन्धमादनशृङ्गे तु धनदःस्यादुदङ्मुखः॥
प्राङ्मुखो वेदमूर्तिस्तु हंसः स्याद्विपुलाचले । हैमी सुपार्श्वेसुरभिर्दक्षिणाभिमुखोभवेत्
धान्यपर्वतवत् सर्वमावाहनविधानकम् । कृत्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् ॥
ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान्मन्त्रानुदीरयन् ॥६॥
सौभाग्यामृतसारोऽयं पर्वतः शर्करायुतः । तस्मादानन्दकारीत्वंभवशैलेन्द्र ! सर्वदा ॥
अमृतं पिवतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः । देवानांतत्समुत्थस्त्वंपाहि नः शर्कराचल!॥

मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करायतः। तन्मयोऽसि महाशैल! पाहिसंसारसागरात्॥
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स याति परमम्पदम्॥१३
चन्द्रतारार्कसङ्काशमधिरुह्यानुजीविभिः। सह्वैव यानमातिष्ठेत्तत्र विष्णुप्रचोदितः॥१४
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपोभवेत्। आयुरारोग्यसम्पन्नोयावज्जन्मार्बुदत्रयम्॥
भोजनं शक्तितः कुर्यात् सर्वशैलेष्वमत्सरः। सर्वत्राक्षारलवणमश्नीयात्तदनुज्ञया।
पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद् ब्राह्मणालयम्॥१६॥

ईश्वर उवाच।

आसीत् पुरा बृहत्कल्पेधर्म्ममूर्त्तिर्जनाधिपः। सुहृच्छक्रस्यनिहतायेनदैत्याः सहस्रशः॥
सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः। भवन्ति शतशो येन शत्रवश्चापराजिताः।
यथेच्छारूपधारी च मनुष्योऽप्यपराजितः॥१८॥
तस्य भानुमती नाम भार्या त्रैलोक्यसुन्दरी। लक्ष्मीवद्दिव्यरूपेण निर्जितामरसुन्दरी॥
राज्ञस्तस्याग्रमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी। दशनारीसहस्राणां मध्येश्रीरिव राजते॥
नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित् समुच्यते। कदाचिदास्थानगतः पप्रच्छ स पुरोधसम्।
विस्मयेनावृतो राजा वसिष्ठमृषिसत्तमम्॥२१॥
भगवन्! केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा। कस्माच्च विपुलन्तेजोमच्छरीरेसदोत्तमम्॥

वसिष्ठ उवाच।

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा। तया दत्तश्चतुर्दश्याङ्गुरवे लवणाचलः।
हेमवृक्षादिभिः सार्द्धं यथावद्विधिपूर्वकम्॥२३॥
शूद्रः सुवर्णकारश्च नाम्नाशौण्डोऽभवत्तदा। भृत्योलीलावतीगेहेतेनहेम्ना विनिर्मिताः॥
तरवः सुरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव। अतिरूपेण संपन्ना घटयित्वाविनाभृतिम्।
धर्म्मकार्य्यमिति ज्ञात्वा न गृह्णाति कथञ्चन॥२५॥
उज्वालिताश्च तत्पत्न्यासौवर्णामरपादपाः। लीलावतीगिरेःपार्श्वेपरिचर्याश्च पार्थिव॥
कृत्वा ताभ्यामशाठ्येन गुरुशुश्रूषणादिकम्। सा च लीलावतीवेश्याकालेनमहतापि च
कालधर्म्ममनुप्राप्ता कर्म्मयोगेन नारद। सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम्॥२८

योऽसौ सुवर्णकारस्तु दरिद्रोऽप्यतिसत्त्ववान् ।
न मौल्यमादाद्द्वेश्यातः स भवानिह साम्प्रतम् ॥२९॥
सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः । यया सुवर्णकारस्य तरवो हेमनिर्मिताः ।
सम्यगुज्वालिताः पत्न्या सेयम्भानुमती तव ॥३०॥
उज्वालनादुज्वलरूपमस्याः सञ्जातमस्मिन् भुवनाधिपत्यम् ।
यस्मात् कृतं तत्परिकर्म्म रात्रावनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य ।
तस्माच्च लोकेष्वपराजितत्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः ॥३१॥
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन् दशधा कुरुष्व ।
तथेति सत्कृत्य स धर्म्ममूर्तिर्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान् ।
धान्याचलादीन् शतशो मुरारेर्लोकं जगामामरपूज्यमानः ॥३२॥
पश्येदपीमान्नधनोऽति भक्त्या स्पृशेन्मनुष्यैरपि दीयमानान् ।
शृणोति भक्त्याऽथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥ ३३ ॥
दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पठ्यमानैः शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यः ।
यः कुर्यात् किमु मुनिपुङ्गवेह सम्यक् शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसम्प्रदानम्
इति श्रीमत्स्यपुराणे शर्कराशैलदानवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

ग्रहशान्तिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा । सर्वकामाप्तयेनित्यंकथंशान्तिकपौष्टिकम् ॥

वैशम्पायन उवाच ।

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् । वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा, तथैवाभिचरन् पुनः
येन ब्रह्मन् ! विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ॥२॥

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्यसंक्षिप्यग्रन्थविस्तरम् । ग्रहशान्तिंप्रवक्ष्यामिपुराणश्रुतिनोदिताम् ॥
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । ग्रहान्ग्रहादिदेवांश्चस्थाप्यहोमं समारभेत्
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः । प्रथमोऽयुतहोमःस्याल्लक्षहोमस्ततःपरम् ॥
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः । अयुतेनाहुतीनाञ्च नवग्रहमखः स्मृतः ॥६॥
तस्य तावद्विधिं वक्ष्येपुराणश्रुतिभाषितम् । गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम् ॥
वप्रद्वयावृतांवेदिं वितस्त्युच्छ्रयसम्मिताम् । संस्थापनायदेवानाञ्चतुरस्रामुदङ्मुखाम् ॥
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान् । देवतानांततःस्थाप्याविंशतिर्द्वादशाधिका ॥

सूर्य्यः सोमस्तथा भौमोबुधजीवसितार्कजाः ।
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ॥१०॥

मध्येतु भास्करं विन्द्याल्लोहितं दक्षिणेन तु । उत्तरेण गुरुं विन्द्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ॥
पूर्वेण भार्गवं विन्द्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके । पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे ।

पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः ॥१२॥

भास्करस्येश्वरंविन्द्यादुमाञ्चशशिनस्तथा । स्कन्दमङ्गारकस्यापिबुधस्यचतथाहरिम् ॥
ब्रह्माणञ्च गुरोर्विन्द्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम् । शनैश्चरस्यतुयमं राहोःकालं तथैवच ॥
केतोर्वै चित्रगुप्तञ्च सर्वेषामधिदेवताः । अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्रीच देवताः ॥
प्रजापतिश्चसर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः । विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च ।

आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥ १६ ॥

संस्मरेद्रक्तकादित्यमङ्गारकसमन्वितम् । सोमशुक्रौतथाश्वेतौ बुधजीवौचपिङ्गलौ ॥

मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः ॥ १७ ॥

ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानिच । धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्टाद्वितानिकम् ।

शोभनं स्थापयेत्प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम् ॥ १८ ॥

गुड़ौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम् । अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिके ॥१९॥
दध्योदनञ्च जीवाय शुक्रायच गुड़ौदनम् । शनैश्चराय कृसरामजामांसञ्च राहवे ॥

चित्रौदनञ्च केतुभ्यः सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत् ॥ २० ॥

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम् । चूतपल्लवसंच्छन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥२१
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम् । स्थापयेदव्रणं कुम्भंवरुणं तत्र विन्यसेत् ॥२२॥
गङ्गाद्याःसरितःसर्वाः समुद्राश्चसरांसिच । गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ॥
मृदमानीयविप्रेन्द्र ! सर्वौषधिजलान्वितम् । स्नानार्थंविन्यसेत्तत्र यजमानस्यधर्म्मवित् ।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसिच नदास्तथा । आयान्तु यजमानस्यदुरितक्षयकारकाः ॥
एवमावाहयेदेतानमरान्मुनिसत्तम ! । होमं समारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना ॥२६॥
अर्कःपालाशखदिरावपामार्गोऽथपिप्पलः । औदुम्बरःशमीदूर्वाकुशाश्चसमिधःक्रमात् ॥
एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिमेव वा । होतव्यामधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥२८
प्रादेशमात्राअशिफा अशाखाअपलाशिनीः । समिधःकल्पयेत्प्राज्ञः सर्वकर्म्मसुसर्वदा ॥
देवानामपि सर्वेषामुपांशु परमार्थवित् । स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधःपृथक् ॥
होतव्यं च घृताभ्यक्तं चरु भक्षादिकं पुनः । मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्ततः।
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखावाकुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः । मन्त्रवन्तश्च कर्त्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम् ॥

हुत्वा च तांश्चरून् सम्यक् ततो होमं समाचरेत्
आकृष्णेति च सूर्य्याय होमः कार्यो द्विजन्मना ॥ ३३ ॥

आप्यायस्वेतिसोमायमन्त्रेणजुहुयात् पुनः । अग्निर्मूर्द्धादिवो मन्त्रइतिभौमायकीर्तयेत्
अग्ने ! विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै । बृहस्पते ! परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः ॥३५
शुक्रन्ते अन्यदितिच शुक्रस्यापि निगद्यते । शनैश्चरायेति पुनः शन्नो देवीति होमयेत् ॥

कयानश्चित्र आभुव इति राहोरुदाहृतः ॥ ३६ ॥

केतुं कृण्वन्नपि ब्रूयात् केतूनामपि शान्तये । आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत् ॥

आपोहिष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा ॥ ३७ ॥

विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः । इन्द्रमिद्देवतायेति इन्द्राय जुहुयात्ततः ।
तथा यमस्यचायं गौरिति होमः प्रकीर्त्तितः । कालस्यब्रह्मयज्ञानमिति मन्त्रविदो विदुः।
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः । अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः ॥
उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः । भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ॥

सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः ।
इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ॥ ४३ ॥

उत्तापर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत् । प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥४४
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते । एष ब्रह्माय ऋत्विज्यइतिब्रह्मण्युदाहृतः
विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः । जातवेदसे सुनवामितिदुर्गामन्त्रउच्यते
आदिप्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः । प्राणाशिशुर्महीनाञ्च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।
एषो उषा अपूर्व्यादित्यशिवनोर्मन्त्र उच्यते । पूर्णाहुतिस्तु मूर्द्धानं दिवइत्यभिपातयेत् ।
अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः । पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदङ्मुखम् ॥४६॥
अव्यंगावयवैर्ब्रह्मन् ! हेमस्रग्दामभूषितैः । यजमानस्य कर्त्तव्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः ॥
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥५१॥

आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै नैर्ऋतिस्तथा । वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथाशिवः
ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालास्त्वामवन्तु ते ॥ ५२ ॥

कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधापुष्टिःश्रद्धाक्रियामतिः । बुद्धिर्लज्जावपुःशान्तिस्तुष्टिकान्तिश्चमातरः
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्म्मपत्न्यः समागताः ॥५३॥

आदित्यश्चन्द्रमाभौमोबुधोजीवःसितोऽर्कजः । ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तुराहुःकेतुश्चतर्पिताः
देवदानवगन्धर्वाः यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥ ५५ ॥
देवपत्न्यो द्रुमानागादैत्याश्चाप्सरसाङ्गणाः । अस्त्राणिसर्वशस्त्राणिराजानोवाहनानिच
औषधानि च रत्नानिकालस्यावयवाश्च ये । सरितः सागराः शैलास्तीर्थानिजलदानदाः
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥५७॥

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः । सर्वौषधैः सर्वगन्धैः स्नापितो द्विजपुङ्गवैः ॥
यजमानः सपत्नीकः ऋत्विजः सुसमाहितान् । दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद्गतविस्मयः ।
सूर्य्याय कपिलां धेनुं शङ्खंदद्यात्तथेन्दवे । रक्तं धुरन्धरं दद्याद्भौमाय च ककुद्मिनम् ॥६०
बुधाय जातरूपन्तु गुरवे पीतवाससी । श्वेताश्वन्दैत्यगुरवे कृष्णाङ्गामर्कसूनवे ॥६१॥

आयसंराहवे दद्यात्केतुभ्यश्छागमुत्तमम् । सुवर्णेन समा कार्य्या यजमानेन दक्षिणा ॥
सर्वेषामथवा गावो दातव्या हेमभूषिताः । सुवर्णमथवादद्याद्गुरुर्वा येन तुष्यति ॥
समन्त्रेणैव दातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणाः ॥ ६३ ॥
पुण्यस्त्वंशङ्खपुण्यानांमङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतश्चासि ततःशान्तिंप्रयच्छमे
धर्म्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक ! । अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥६५॥
हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमवीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।६६
पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम् । प्रदानात्तस्य मे विष्णो! ह्यतःशान्तिंप्रयच्छमे
विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः । चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतःशान्तिंप्रयच्छ मे ॥
यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसन्निभा । सर्वपापहरा नित्यमतःशान्तिंप्रयच्छ मे ।
यस्मादायसकर्माणितवाधीनानि सर्वदा । लाङ्गलाद्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिंप्रयच्छमे
यस्मात्त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः । यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिंप्रयच्छमे
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छ्रियै मे स्यादिहलोके परत्र च ॥
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य च सर्वदा । शय्याममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनिजन्मनि।
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः । तथा रत्नानि यच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥
यथा भूमिप्रदानस्य कलान्नार्हन्ति षोड़शीम् ।
दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह ॥ ७५ ॥
एवं संपूजयेद्भक्त्या वित्तशाठ्येन वर्जितः । रक्तकाञ्चनवस्त्रौघैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ॥७६॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत् । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते
यस्तु पीड़ाकरो नित्यमल्पवित्तस्य वा ग्रहः । तञ्च यत्नेन संपूज्य शेषानप्यर्चयेद् बुधः
ग्रहा गावोनरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः । पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ॥
यथा वाणप्रहाराणां कवचम्भवति वारणम् । तद्वद्दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम्
तस्मान्नदक्षिणाहीनं कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता। संपूर्णया दक्षिणया यस्मादेकोऽपितुष्यति
सदैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखे स्थितः। विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्म्मसु ॥८२॥
निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ ! तथोद्वेगाद्भुतेषु च । कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु ॥

सर्वकामाप्तये यस्माल्लक्षहोमं विदुर्बुधाः । पितॄणां वल्लभं साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद् बुधः ॥
रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदङ्मुखम् । दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः ।८६।
प्रागुदक् प्लवनाम्भूमिं कारयेद्यत्नतो बुधः । प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु ।८७
शोभनं कारयेत्कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम् । चतुरस्रं समन्तात्तु योनिवक्त्रं समेखलम् ॥
चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता । प्रागुदक्प्लवना कार्या सर्वतः समवस्थिता ॥
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां नवग्रहमखः स्मृतः । मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदम्भवेत् ॥

यस्मात्तस्मात् सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥ ९० ॥

अस्माद्दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा ।आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः । लक्षहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रन्त्रिमेखलम् ।९२
तस्यचोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसंस्थितम् । प्रागुदक् प्रवणन्तच्च चतुरस्रं समन्ततः ॥९३

विष्कम्भार्द्धोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा ।
संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् ॥ ९४ ॥

द्व्यङ्गुलोह्युच्छ्रितो विप्रः प्रथमः सउदाहृतः । अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥९५
द्व्यङ्गुलस्यचविस्तारःसर्वेषांकथ्यतेबुधैः ।दशाङ्गुलोच्छ्रिताभित्तिःस्थण्डिलेस्यात्तथोपरि

तस्मिन्नावाहयेद्देवान् पूर्ववत् पुष्पतण्डुलैः ॥ ९६ ॥

आदित्याभिमुखाःसर्वाःसाधिप्रत्यधिदेवताः ।स्थापनीयामुनिश्रेष्ठ! नोत्तरेणपराङ्मुखाः
गरुत्मानधिकस्तत्र संपूज्यः श्रियमिच्छता । सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ॥

विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ९८ ॥
पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत् ।

सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्याधिकं पुनः । घृतकुम्भवसोर्धारां पातयेदनलोपरि ॥
औदुम्बरीं तथार्द्राञ्च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम् । बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा ततस्तम्भद्वयोपरि

घृतधारान्तया सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् ॥ १०० ॥

श्रावयेत् सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम् । महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च वाचयेत्॥

स्नानञ्च यजमानस्य पूर्ववत् स्वस्तिवाचनम् । दातव्या यजमानेन पूर्ववद्दक्षिणाः पृथक्
कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा । नवग्रहमखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः ॥
अथवा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव श्रुतिकोविदौ । कार्यावयुतहोमे तु न प्रसज्जेत विस्तरे
तद्वच्च दश चाष्टौ च लक्षहोमे तु ऋत्विजः । कर्त्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चतुरो वा विमत्सरः
नवग्रहमखात् सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम् । भक्ष्यान् दद्यान्मुनिश्रेष्ठ! भूषणान्यपिशक्तितः
शयनानि सवस्त्राणि हैमानिकटकानिच । कर्णाङ्गुलिपवित्राणि कण्ठसूत्राणिशक्तिमान्
न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः । अदद्न् लोभतो मोहात्कुलक्षयमवाप्नुते ॥
अन्नदानं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता । अन्नहीनः कृतो यस्माद्दुर्भिक्षफलदोभवेत्
अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः । यष्टारं दक्षिणाहीनं नास्ति यज्ञसमो रिपुः
नवाप्यल्पधनः कुर्याल्लक्षहोमं नरः क्वचित् । यस्मात्पीडाकरोनित्यं यज्ञे भवति विग्रहः
तमेव पूजयेद्भक्त्या द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि । एकमप्यर्चयेद्भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम्
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन न बहूनल्पवित्तवान् ॥ ११२ ॥

लक्षहोमस्तु कर्त्तव्यो यथावित्तंभवेद्गृहे । यतःसर्वानवाप्नोति कुर्वन्कामान्विधानतः
पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः । यावत्कल्पशतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात्
सकामोयस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि । स तं काममवाप्नोति पदमानन्त्यमश्नुते ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थीलभतेधनम् । भार्यार्थी शोभनांभार्य्यां कुमारीचशुभंपतिम्
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यंश्रीकामः श्रियमाप्नुयात् । यं यं प्रार्थयतेकामं सवैभवतिपुष्कलः
निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ॥ ११७ ॥

अस्माच्छतगुणः प्रोक्तःकोटिहोमःस्वयम्भुवा । आहुतीभिः प्रयत्नेनदक्षिणाभिःफलेनव
पूर्ववद् ग्रहदेवानामावाहनविसर्जने । होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च ॥
कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे ॥ ११९ ॥

कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रन्तु सर्वतः । योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम् ॥
द्व्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिताकार्याप्रथमामेखलाबुधैः । त्र्यङ्गुलाभ्युच्छ्रितातद्वद्द्वितीयापरिकीर्त्तिता
उच्छ्रायविस्तराभ्यां च तृतीया चतुरङ्गुला । द्व्यङ्गुलश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते

वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्सप्तांगुलविस्तृता।
कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चांगुलोच्छ्रिता॥ १२३॥
गजोष्ठसदृशी तद्वदायताच्छिद्रसंयुया। एतत् सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते॥
मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसन्निभम्॥ १२४॥
वेदी च कोटिहोमे स्याद्वितस्तीनां चतुष्टयम्। चतुरस्रा समन्ताच्च त्रिभिर्वप्रैस्तुसंयुता
वप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदीनाञ्च तथोच्छ्रयः॥ १२५॥
तथा षोड़शहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः। पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचंवेदपारगम्॥
यजुर्विदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्। अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद् बुधः॥
अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः। एवं द्वादश विप्राः स्युर्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः
पूर्ववत् पूजयेद्भक्त्या वस्त्राभरणभूषणैः॥ १२८॥
रात्रिसूक्तं च रौद्रञ्च पावमानं सुमङ्गलम्। पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्तेह्युदङ्मुखः
शान्तं शाक्रञ्च सौम्यञ्च कौष्माण्डं शान्तिमेव च। पाठयेद्दक्षिणद्वारियजुर्वेदिनमुत्तमम्
सुपर्णमथ वैराजमाग्नेयं रुद्रसंहिताम्। ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे जपेत्
शान्तिं सूक्तञ्च सौरञ्च तथाशाकुनकं शुभम्। पौष्टिकञ्च महाराज्यमुत्तरेणाप्यथर्ववित्
पञ्चभिः सप्तभिर्वापिहोमःकार्योऽत्रपूर्ववत्। स्नाने दाने च मन्त्राःस्युस्तएवमुनिसत्तम!
वसोर्धाराविधानञ्च लक्षहोमे विशिष्यते। अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत्
सर्वान् कामानवाप्नोति ततो विष्णुपदं व्रजेत्॥ १३४॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि ग्रहयज्ञत्रयं नरः। सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छति॥
अश्वमेधसहस्राणि दशचाष्टौच धर्म्मवित्। कृत्वा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते
ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्यार्बुदानि च। कोटिहोमेन नश्यन्ति यथावच्छिवभाषितम्
वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्। नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समाचरेत्॥
अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्। तस्मादयुतहोमस्य विधानं पूर्वमाचरेत्
वृत्तं वोच्चाटने कुण्डं तथा च वशकर्म्मणि। त्रिमेखलश्चैकवक्त्रमरत्निर्विस्तरेण तु॥
पलाशसमिधः शस्ता मधुरोचनान्विताः। चन्दनागुरुणा तद्वत् कुङ्कुमेनाभिषिञ्चिताः

होमयेन्मधुसर्पिभ्यां विल्वानि कमलानि च ।
सहस्राणि दशैवोक्तं सर्वदैव स्वयम्भुवा ॥ ४२ ॥

वश्यकर्मणि विल्वानां पद्मानां चैव धर्मवित्। सुमित्रियानआप औषधय इतिहोमयेत्।
न चात्र स्थापनंकार्यं नचकुम्भाभिषेचनम् । स्नानं सर्वौषधैः कृत्वाशुक्लपुष्पाम्वरोगृही।
कण्ठसूत्रैःसकनकैःविप्रान् समभिपूजयेत् । सूक्ष्मवस्त्राणि देयानि शुक्लागावःसकाञ्चनाः।
अवशानि वशीकुर्यात् सर्वशत्रुबलान्यपि । अमित्राण्यपिमित्राणिहोमोऽयं पापनाशनः॥
विद्वेषणेऽभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते । द्विमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रश्च सर्वशः।
होमंकुर्युस्ततोविप्रा रक्तमाल्यानुलेपनाः । निवीतलोहितोष्णीषा लोहिताम्वरधारिणः॥
नववायसरक्ताढ्यपात्रत्रयसमन्विताः । समिधो वामहस्तेन श्येनास्थिवलसंयुताः।
होतव्या मुक्तकेशैस्तु ध्यायद्भिरशिवं रिपौ ॥१४६॥

दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तु तथा हुम्फडितीतिच। श्येनाभिचारमन्त्रेणक्षुरं समभिमन्त्र्य च।
प्रतिरूपं रिपोः कृत्वा क्षुरेण परिकर्तयेत् । रिपुरूपस्य शकलान्यथैवाग्नौ विनिक्षिपेत्॥
ग्रहयज्ञविधानान्ते सदैवाभिचरन् पुनः । विद्वेषणं तथा कुर्वन्नेतदेव समाचरेत् ॥१५२॥
इहैव फलदं पुंसामेतन्नामुत्र शोभनम् । तस्माच्छान्तिकमेवात्र कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ॥
ग्रहयज्ञत्रयं कुर्य्याद्यस्त्वकाम्येनमानवः । सविष्णोः पदमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । न तस्य ग्रहपीडा स्यान्नच बन्धुजनक्षयः ॥
ग्रहयज्ञत्रयं गेहे लिखितं तत्र तिष्ठति । न पीडा तत्र वालानां न रोगो न च वन्धनम् ॥
अशेषयज्ञफलदं निःशेषाघविनाशनम् । कोटिहोमं विदुः प्राज्ञा भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥
अश्वमेधफलं प्राहुर्लक्षहोमं सुरोत्तमाः । द्वादशाहमखस्तद्वन्नवग्रहमखः स्मृतः ॥१५८॥

इति कथितमिदानीमुत्सवानन्दहेतोः सकलकलुषहारी देवयज्ञाभिषेकः ।
परिपठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गादभिभवति स शत्रूनायुरारोग्ययुक्तः ॥१५६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ग्रहशान्तिवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।

त्रिनवतितमोऽध्यायः

नवग्रहस्वरूपवर्णनम् ।

शिव उवाच ।

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युति । सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः ॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदःशशी ॥
रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः । चतुर्भुजः श्वेतरोमा वरदः स्याद्धरासुतः ॥३॥
पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्म्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥
देवदैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतो चतुर्भुजौ । दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥५॥
इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । वाणवाणासनधरः कर्त्तव्योऽर्कसुत स्तथा ॥६
नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते । धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥ ७ ॥
सर्वे किरीटिनः कार्य्या ग्रहलोकहितावहाः । ह्यङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे नवग्रहस्वरूपवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ।

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

शिवचतुर्दशीव्रतकथनम् ।

नारद ऊवाच ।

भगवन्! भूतभव्येश! तथान्यदपि यच्छ्रुतम् । भुक्तिमुक्तिफलायालं तत्पुनर्वक्तुमर्हसि ॥
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः । मत्समस्तपसा ब्रह्मन्! पुराणश्रुतिविस्तरैः ।२
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दीनाम गणाधिपः । धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृतिनारद? ।

मत्स्य उवाच ।

शृणुष्वावहितोब्रह्मन्! वक्ष्येमाहेश्वरंव्रतम् । त्रिषुलोकेषुविख्यातं नाम्नाशिवचतुर्दशी ।

मार्गशीर्षे त्रयोदश्यां सितायामेकभोजनः । प्रार्थयेद्देवदेवेश ! त्वामहं शरणं गतः ॥५॥
चतुर्दश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शङ्करम् । सुवर्णवृषभं दत्त्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनि॥
एवं नियमकृत् स्तुत्वा प्रातरुत्थाय मानवः । कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शङ्करम् ।
पूजयेत्कमलैः शुभ्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ ७ ॥
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः । त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः ॥
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेतिकन्धराम् । सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवायवैभुजौ ॥
अघोरहृदयायेति हृदयञ्चाभिपूजयेत् । स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम् ॥ १० ॥
पार्श्वे चानन्तधर्माय ज्ञानभूतायवै कटिम् । ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत् ॥
अनन्तैश्वर्य्यनाथाय जानुनीचार्चयेद्बुधः । प्रधानायनमोजङ्घे गुल्फौव्योमात्मनेनमः ॥
व्योमकेशात्मरूपायकेशान् पृष्ठञ्चपूजयेत् । नमःपुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीञ्चापिपूजयेत् ॥
ततस्तु वृषभं हैममुदकुम्भसमन्वितम् । शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १४ ॥
ततोविप्रान् समाहूय तर्पयेद्भक्तितः शुभान् । पृषदाज्यञ्च संप्राश्य स्वपेद्भूमावुदङ्मुखः।
पञ्चदश्यांततःपूज्य विप्रान् भुञ्जीतवाग्यतः । तद्वत् कृष्णचतुर्दश्यामेतत् सर्वंसमाचरेत् ॥
चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्य्यात् पूर्ववदर्चनम् । येतुमासेविशेषाः स्युस्तान्निबोधक्रमादिह।
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् ।
शङ्कराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक ! ॥ १८ ॥
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम् । नमस्तेऽस्तु महादेव ! स्थाणवेच ततःपरम्
नमः पशुपते नाथ ! नमस्ते शम्भवे पुनः । नमस्ते परमानन्द ! नमः सोमार्द्धधारिणे ॥
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम् ॥
पञ्चगव्यं ततोविल्वं कर्पूरञ्चागुरुंयवाः । तिलाः कृष्णाश्च विधिवत्प्राशनं क्रमशःस्मृतम्
प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥ २२ ॥
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि । सिन्दुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः ॥
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः । एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत्पार्वतीपतिम् ।२४

पुनश्च कार्तिके मासे प्राप्ते सन्तर्पयेद्द्विजान् । अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः । उमामहेश्वरं हैमं वृषभञ्च गवा सह ॥२६।
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृताम् । सर्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात् सकुम्भकाम्
ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतम् । स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च ॥
ज्येष्ठसामविदे देयं न वकव्रतिने क्वचित् । गुणज्ञे श्रोत्रिये दद्यादाचार्ये तत्त्ववेदिनि ॥२९
अव्यङ्गाङ्गाय सौम्याय सदाकल्याणकारिणे । सपत्नीकाय संपूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः
गुरौ सति गुरोर्देयं तदभावे द्विजातये । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषात्पतत्यधः ।
अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम् । सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः
ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् । पितृभिर्भ्रातृभिर्वापि तत्सर्वंनाशमाप्नुयात्

दीर्घायुरारोग्यकुलान्नवृद्धि रत्राक्षयामुत्र चतुर्भुजत्वम् ।
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटिशतान्युषित्वा पदमेति शम्भोः ॥ ३४ ॥
न बृहस्पतिरप्यनन्तमस्याः फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुम् ।
न च सिद्धगणोऽप्यलं न चाहं यदि जिह्वायुतकोटयोऽपि वक्त्रे ॥३५॥

भवत्यमरवल्लभः पठति यः स्मरेद्वासदा
शृणोत्यपि विमत्सरः सकलपापनिर्मोचनम् ।
इमां शिव चतुर्दशी ममरकामिनी कोटयः ।
स्तुवन्ति तमनिन्दितं किमुसमाचरेद्यः सदा ॥ ३६ ॥

या वाथ नारी कुरुतेति भक्त्या भर्तारमापृच्छ्य सुतान् गुरून् वा ।
सापि प्रसादात्परमेश्वरस्य परम्पदं याति पिनाकपाणेः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नन्दिनारदसंवादे शिवचतुर्दशीव्रतंनाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

फलत्यागमाहात्म्यकथनम् ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद्भवेच्छृणु नारद ! । यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने! व्रतम् । द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ २ ॥
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम!। सदक्षिणम्पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान्
अष्टादशानां धान्यानामवद्यं फलमूलकैः । वर्जयेदब्दमेकन्तु ऋते औषधकारणम् ॥
सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्म्मराजञ्च कारयेत् ॥ ४ ॥
कूष्माण्डं मातुलिङ्गञ्च वार्ताकम्पनसंतथा । आम्राम्रातकपित्थानि कलिङ्गमथवालुकम्
श्रीफलाश्वत्थबदरञ्जम्बीरं कदलीफलम् । काश्मरन्दाड़िमं शक्त्या कालधौतानिषोडश!
मूलकामलकं जम्बूतिन्तिड़ीकरमर्दकम् । कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीर कुटजं शमी ॥ ७ ॥
औदुम्बरं नालिकेरं द्राक्षाथ वृहतीद्वयम् । रौप्यानि कारयेच्छक्त्या फलानीमानिषोड़श
ताम्रं तालफलं कुर्य्यादगस्तिफलमेव च । पिण्डारकाश्मर्य्यफलं तथा सूरणकन्दकम् ॥
रक्तालुकाकन्दकञ्च कनकाह्वञ्च चिर्भिटम् । चित्रवल्लीफलं तद्वत्कूटशाल्मलिजम्फलम् ॥
आम्रनिष्पावमधुकवटमुद्गपटोलकम् । ताम्राणि षोड़शैतानि कारयेच्छक्तितोनरः ॥११
उदकुम्भद्वयंकुर्य्याद्धान्योपरि सवस्त्रकम् । ततश्च कारयेच्छय्या यथोपरि सुवाससी ॥
भक्ष्यपात्रत्रयोपेतं यमरुद्रवृषान्वितम् । धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने ॥
सपत्नीकाय संपूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत् ॥ १३ ॥
यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः । तथा सर्वफलत्यागव्रताद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे ।१४
यथा शिवश्च धर्म्मश्च सदानन्तफलप्रदौ । तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ ॥१५॥
यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा । तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥
यथा भेदंनपश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान् । तथा ममास्तु विश्वात्माशङ्करःशङ्करःसदा

इति दत्त्वा च तत्सर्वमलंकृत्य च भूषणैः । शक्तिश्चेच्छयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥
अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः । तथोदकुम्भसंयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ
विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम् ।
अन्यान्यपि यथा शक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ॥ २० ॥
एतद्भागवतानान्तु सौरवैष्णवयोगिनाम् । शुभं सर्वफलत्यागव्रतं वेदविदो विदुः ॥२१
नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्त्तव्यं द्विजपुङ्गव !। एतस्मान्नापरं किञ्चिदिहलोके परत्र च ॥
व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ ! यदनन्तफलप्रदम् ॥ २२ ॥
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावन्तः परमाणवः । भवन्तिचूर्ण्यमानेषु फलेषु मुनिसत्तम ! ॥
तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ २३ ॥
एतत्समस्त कलुषापहरं जनानामाजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात् ।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रवियोगदुःखमाप्नोति धाम च पुरन्दरलोकजुष्टम् ।२४
यो वा श्टणोति पुरुषोऽल्पधनः पठेद्वा देवालयेषु भुवनेषु च धार्मिकाणाम् ।
पापैर्वियुक्तवपुरत्र पुरं पुरारैरानन्दकृत्पदमुपैति मुनीन्द्र ! सोऽपि ॥ २५ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे फलत्यागमाहात्म्यकथनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।

षण्णवतितमोऽध्यायः

आदित्यवारव्रतकथनम् ।

नारद उवाच ।

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम् । यच्छान्तये च मर्त्यानां वद नन्दीश तद्व्रतम् ॥१

नन्दिकेश्वर उवाच ।

यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्मसनातनम् । सूर्य्याग्निचन्द्ररूपेण तत्त्रिधाजगति स्थितम्
तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोतिकुशलं सदा । तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनोभवेत्

यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम् । तदा शनिदिने कुर्य्यादेकभुक्तं विमत्सरः।
नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । पत्रैर्द्वादशसंयुक्तं रक्तचन्दनपङ्कजम् ॥५॥
विलिख्य विन्यसेत्सूर्य्यं नमस्कारेण पूर्वतः । दिवाकरं तथाग्नेय विवस्वन्तमतः परम्
भगन्तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले । महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यञ्च तथोत्तरे ॥ ७ ॥
शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेणविन्यसेत् । कर्णिका पूर्वपत्रेतु सूर्य्यस्यतुरगान्न्यसेत्
दक्षिणेऽर्यमनामानं मार्तण्डं पश्चिमे दले । उत्तरे तु रविं देवं कर्णिकायाञ्च भास्करम्
रक्तपुष्पोदकेनार्घ्यं सतिलारुणचन्दनम् । तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥
कालात्मा सर्वभूतात्मावेदात्मा विश्वतोमुखः । यस्मादग्नीन्द्ररूपस्त्वमतःपाहिदिवाकर!
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषेत्वोर्जेचभास्कर !। अग्न आयाहि वरद ! नमस्तेज्योतिषाम्पते!
अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथनिशितैलविवर्जितम् । भुञ्जीतवत्सरान्ते तु काञ्चनंकमलोत्तमम्
पुरुषञ्च यथाशक्त्या कारयेद्द्विभुजं तथा ॥ १३ ॥
सुवर्णश्रृङ्गीं कपिलां महार्घ्यां रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्साम् ।
पूर्णं गुडस्योपरि ताम्रपात्रे निधाय पद्मं पुरुषञ्च दद्यात् ॥ १४ ॥
संपूज्य रक्ताम्वरमाल्यधूपैर्द्विजञ्च रक्तैरथ हेमश्रृङ्गैः ।
संकल्पयित्वा पुरुषं सपद्मं दद्यादनेकव्रतदानकाय ॥
अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय कुटुम्बिने देयमनुद्धताय ॥ १५ ॥
नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने सप्ततुरङ्गमाय ।
सामर्ग्यजुर्द्धामनिधे ! विधात्र भवाब्धिपोताय जगत्सवित्रे ॥ १६ ॥
इत्यनेन विधिना समाचरेदब्दमेकमिह यस्तु मानवः ।
सोऽधिरोहति विनष्टकल्मषः सूर्य्यधामधुतचामरावलिः ॥ १७ ॥
धर्मसंक्षयमवाप्य भूपतिः शोकदुःखभयरोगवर्जितः ।
द्वीपसप्तकपतिः पुनः पुनर्द्धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः ॥ १८ ॥
या च भर्तृगुरुदेवतत्परा वेदमूर्त्तिदिननक्तमाचरेत् ।
सापि लोकममरेशवन्दिता याति नारद ! रवेर्नसंशयः ॥१९॥

यः पठेदपि शृणोति मानवः पठ्यमानमथवानुमोदते ।
सोऽपि शक्रभुवनस्थितोऽमरैः पूज्यते वसति चाक्षयं दिवि ॥२०॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे आदित्यवारव्रतवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ।

सप्तनवतितमोऽध्यायः

संक्रान्त्युद्यापनफलवर्णनम् ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथान्यदपि वक्ष्यामि संक्रान्त्युद्यापने फलम् । यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥
अयने विषुवे वापि संक्रान्तिव्रतमाचरेत् । पूर्वेद्युरेकभक्तेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥
संक्रान्तिवासरे प्रातस्तिलैः स्नानं विधीयते ॥ २ ॥

रविसंक्रमणे भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम् । पद्मं सकर्णिकं कुर्यात् तस्मिन्नावाहयेद्रविम् ॥
कर्णिकायां न्यसेत्सूर्य्यमादित्यंपूर्वतस्ततः । नमःउष्णार्चिषे याम्येनमोऋङ्मण्डलायच
नमः सवित्रे नैऋत्ये वारुणे तपनं पुनः । वायव्ये तु भगं न्यस्य पुनः पुनरथार्चयेत् ॥५
मार्त्तण्डमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेत्सदा । गन्धमाल्यफलैर्भक्ष्यैः स्थण्डिलेपूजयेत्ततः
द्विजाय सोदकुम्भञ्च घृतपात्रं हिरण्मयम् । कमलञ्च यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत
चन्दनोदकपुष्पैश्च देवायार्घ्यं न्यसेद् भुवि । विश्वाय विश्वरूपायविश्वधाम्नेस्वयम्भुवे
नमोऽनन्त ! नमो धात्रे ऋक्सामयजुषाम्पते ! ॥८॥

अनेन विधिना सर्वंमासिमासिसमाचरेत् । वत्सरान्तेऽथवा कुर्यात् सर्वंद्वादशधानरः
सम्वत्सरान्ते घृतपायसेन सन्तर्प्य वह्निं द्विजपुङ्गवांश्च ।
कुम्भान् पुनर्द्वादशधेनुयुक्तान् सरत्नहैरण्मयपद्मयुक्तान् ॥१०॥
पयस्विनीः शीलवतीश्च दद्याद्धैमैः शृङ्गैरौप्यखुरैश्च युक्ताः ।
गावोऽष्ट वा सप्त सकांस्यदोहा माल्याम्बरावाचतुरोऽप्यशक्तः॥

दौर्गत्ययुक्तः कपिलामथैकां निवेदयेद्ब्राह्मणपुङ्गवाय ॥ ११ ॥
हैमीञ्च दद्यात्पृथिवीं सशेषामाकार्यरूप्यामथ वा च ताम्रीम् ।
पैष्टीमशक्तः प्रतिमां विधाय सौवर्णसूर्येण समम्प्रदद्यात् ॥
न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात् कुर्वन्नधोयाति न संशयोऽत्र ॥१२॥
यावन्महेन्द्रप्रमुखैर्नगेन्द्रैः पृथ्वी च सप्ताब्धियुतेह तिष्ठेत् ।
तावत्सगन्धर्वगणैरशेषैः संपूज्यते नारद ! नाकपृष्ठे ॥१३॥
ततस्तु कर्म्मक्षयमाप्य सप्तद्वीपाधिपः स्यात् कुलशीलयुक्तः ।
सृष्टेर्मुखेऽव्यङ्गवपुः सभार्यः प्रभूतपुत्रान्वयवन्दिताङ्घ्रिः ॥ १४ ॥
इति पठति शृणोतिवाथभक्त्याविधिमखिलं रविसंक्रमस्य पुण्यम् ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरपतेर्भवने प्रपूज्यते च ॥१५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे संक्रान्त्युद्यापनफल-वर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।

अष्टनवतितमोऽध्यायः

विभूतिद्वादशीव्रतकथनम् ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

शृणु नारद ! वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम् । विभूतिद्वादशीनाम सर्वदेवनमस्कृतम् ॥
कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने ।
आषाढे वा दशम्यान्तु शुक्लायांलघुभुङ्नरः । कृत्वासायन्तनींसन्ध्यां गृह्णीयान्नियमंबुधः
एकादश्यां निराहारःसमभ्यर्च्य जनार्दनम् । द्वादश्यांद्विजसंयुक्तः करिष्येभोजनं विभो!
तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्याच्च केशव !। नमोनारायणायेति वाच्यश्च स्वपता निशि
ततः प्रभात उत्थायसाविन्त्र्यष्टशतञ्जपेत् । पूजयेत् पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥५॥
विभूतयेनमःपादावशोकायच जानुनी । नमः शिवायेत्यूरू च विश्वमूर्ते ! नमः कटिम् ॥६

कन्दर्पायनमोमेढ्रं फलं नारायणायच। दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ ॥ ७ ॥
माधवायेत्युरोविष्णोः कण्ठमुत्कण्ठिनेनमः। श्रीधरायमुखंकेशान् केशवायेतिनारद !।
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै । स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये।
शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन्! नमइत्यभिपूजयेत्।
मत्स्यमुत्पलसंयुक्तं हैमं कृत्वा तु शक्तितः। उदकुम्भसमायुक्तमग्रतः स्थापयेद् बुधः॥
गुडपात्रं तिलैर्युक्तंसितवस्त्राभिवेष्टितम्। रात्रौ जागरणं कुर्य्यादितिहासकथादिना॥
प्रभातायान्तु शर्वर्यां ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। सकाञ्चनोत्पलंदेवं सोदकुम्भं निवेदयेत्॥
यथा न मुच्यसे देव ! सदासर्वविभूतिभिः। तथामामुद्धराशेषदुःखसंसारकर्दमात्।२३।
दशावताररूपाणि प्रतिमासं क्रमान्मुने !। दत्तात्रेयंतथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम्॥
दद्यादेवं समा यावत्पाषण्डानभिवर्जयेत् ॥ १४ ॥
समाप्यैवं यथाशक्त्या द्वादश द्वादशीःपुनः। सम्वत्सरान्ते लवणपर्वतेन समन्विताम्।
शय्यां दद्यान्मुनिश्रेष्ठ ! गुरवे धेनुसंयुताम् ॥१५॥
ग्रामञ्च शक्तिमान्दद्यात् क्षेत्रंवा भवनान्वितम्। गुरुंसंपूज्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारभूषणैः
अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान्। तर्पयेद्वस्त्रगोदानै रत्नौघधनसञ्चयैः।
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत् ॥१७॥
यश्चाप्यतीवनिःस्वःस्याद्भक्तिमान्माधवंप्रति। पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्व्रतसरद्वयम्॥
अनेन विधिना यस्तुविभूतिद्वादशव्रतम्। कुर्यात् पापविनिर्मुक्तः पितॄणां तारयेच्छतम्।
जन्मनां शतसाहस्रंन शोकफलभाग्भवेत्। न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम्
वैष्णवोवाथ शैवोवा भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ २० ॥
यावद्युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत्। तावत्स्वर्गे वसेद्ब्रह्मन्! भूपतिश्च पुनर्भवेत्
इति मत्स्यपुराणे विभूतिद्वादशीव्रतोद्यापनवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः।

———

नवनवतितमोऽध्यायः

विभूतिद्वादशीव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच ।

पुरा रथन्तरे कल्पे राजासीत् पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषुविख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण नारद !। कमलं काञ्चनं दत्तं यथा कामगमं मुने ॥ २॥
लोकैः समस्तैर्नगरवासिभिः सहितो नृपः । द्वीपानि सुरलोकञ्च यथेष्टं व्यचरत्तदा ॥३
कल्पादौ सप्तमं द्वीपं तस्य पुष्करवासिनः । लोकेच पूजितं यस्मात् पुष्करद्वीपमुच्यते
देवेन ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतोऽम्बुजम् । पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात्तं देवदानवाः ॥

नागम्यमस्यास्ति जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात् ।
पत्नी च तस्याप्रतिमा मुनीन्द्र ! नारीसहस्रैरभितोऽभिनन्द्या ।
नाम्ना च लावण्यवती बभूव सा पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ॥ ६ ॥
तस्यात्मजा नामयुतम्बभूव धर्मात्मनामग्र्यधनुर्धराणाम् ।
तदात्मनः सर्वमवेक्ष्य राजा मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद ।
सोऽभ्यागतं वीक्ष्य मुनिप्रवीरं प्राचेतसं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ७॥

राजोवाच ।

कस्माद्विभूतिरमलामरमर्त्यपूज्या जाता च सा विजितामरसुन्दरीणाम् ।
भार्या ममाल्पतपसा परितोषितेन दत्तं ममाम्बुजगृहञ्च मुनीन्द्र ! धात्रा ॥८॥
यस्मिन् प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणाम् सामात्यकुञ्जररथौघजनावृतानाम् ।
नो लक्ष्यते क्व गतमम्बरमध्य इन्दुस्तारागणैरिव गतः परितः स्फुरद्भिः ॥९॥
तस्मात् किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषफलाप्तिहेतुः ।
भगवन् मयाऽथ तनयैरथवाऽनयापि भद्रं यदेतदखिलं कथय प्रचेतः ॥१०॥
मुनिरभ्यधादथ भवान्तरितं समीक्ष्य पृथ्वीपतेः प्रसभमद्भुतहेतुवृत्तम् ।

जन्माभवत्तव तु लुब्धकुलेति घोरे जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी ११।

वपुरप्यभूत्तव पुनः परुषाङ्गसन्धिदुर्गन्धिसत्वभुजगावरणं समन्तात्।

न च ते सुहृन्नसुतबन्धुजनो न तातस्त्वादृक् स्वसा न जननी च तदाभिशस्ता

अभिसङ्गतापरमभीष्टतमा विमुखी महीश ! तव योषिदियम् ॥ १२ ॥

अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचिदाहारनिमित्तमस्मिन्।

क्षुत्पीडितेनाथ तदा न किञ्चिदासादितं धान्यफलामिषञ्च ॥ १३ ॥

अथाभिदृष्टं महदम्बुजाढ्यं सरोवरं पङ्कपरीतरोधः।

पद्मान्यथादाय ततो बहूनि गतः पुरं वैदिशनामधेयम् ॥ १४ ॥

तन्मौल्यलाभाय पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वया शेषमहस्तादासीत्।

नेता न कश्चित् कमलेषु जातः श्रान्तो भृशं क्षुत्परिपीडितश्च ॥ १५ ॥

उपविष्टस्त्वमेकस्मिन् सभार्यो भवनाङ्गणे। अथ मङ्गलशब्दश्च त्वया रात्रौ महाञ्छ्रुतः

सभार्यस्तत्रगतवान् यत्रासौमङ्गलध्वनिः। तत्र मण्डपमध्यस्था विष्णोरर्चावलोकिता।

वेश्यानंगवती नाम विभूतिद्वादशीव्रतम्। समाप्तौ माघमासस्य लवणाचलमुत्तमम् ॥

निवेदयन्ति गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम्। अलङ्कृत्यहृषीकेशं सौवर्णामरपादपम् ॥

तान्तु दृष्ट्वा ततस्ताभ्यामिदं च परिकीर्तितम्। किमेभिःकमलैः कार्यं वरं विष्णुरलङ्कृतः

इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तुनराधिप !। तत्प्रसंगात् समभ्यर्च्यकेशवंलवणाचलम्

शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिता भूश्च सर्वतः ॥ २१ ॥

अथानंगवती तुष्टा तयोर्धनशतत्रयम्। दातुंत्वामाददे साथ कलधौतशतत्रयम् ॥२२॥

न गृहीतं ततस्ताभ्यां बहुसत्वावलम्बनात्। अनंगवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम्।

आनीय व्याहृतश्चात्र भुज्यतामिति भूपते ! ॥ २३ ॥

ताभ्यान्तु तदपि त्यक्तं भोक्ष्यावो वै वरानने!। प्रसंगादुपवासेन तवाद्य सुखमावयोः ॥

जन्म प्रभृति पापिष्ठौ कुकर्माणौ दृढव्रते !। तत्प्रसंगात्तयोर्मध्ये धर्मलेशस्तु तेऽनघ !॥

इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसंगादनुष्ठितम्। प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला।

ग्रामाश्च गुरवे भक्त्या विप्रेषु द्वादशैव तु। वस्त्रालङ्कारसंयुक्ता गावश्च करकान्विताः॥

भोजनञ्च सुहृन्मित्रदीनान्धकृपणैःसमम् । तच्च लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम् ॥
स भवान् लुब्धकोजातः सपत्नीकोनृपेश्वरः । पुष्करप्रकरात्तस्मात्केशवस्यच पूजनात् ॥
विनष्टाशेषपापस्य तव पुष्करमन्दिरम् । तस्य सत्वस्य माहात्म्यादल्पेन तपसा नृप !॥
यथाकामगमं जातं लोकनाथश्चतुर्मुखः । सन्तुष्टस्तव राजेन्द्र ! ब्रह्मरूपी जनार्दनः ॥३१॥
साप्यनङ्गवती वेश्या कामदेवस्य साम्प्रतम् । पत्नीसपत्नीसञ्जाता रत्याःप्रीतिरितिश्रुता॥
लोकेष्वानन्दजननी सकलामरपूजिता ॥ ३२ ॥
तस्मादुत्सृज्यराजेन्द्र ! पुष्करंतन्महीतले । गङ्गातटं समाश्रित्य विभूतिद्वादशीव्रतम् ॥
कुरु राजेन्द्र ! निर्वाणमवश्यं समवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा स मुनिर्ब्रह्मन् ! तत्रैवान्तरधीयत । राजा यथोक्तञ्च पुनरकरोत् पुष्पवाहनः ॥
इदमाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत् । यथाकथञ्चित्कमलैर्द्वादशद्वादशीर्मुने ! ॥३५॥
कर्तव्याःशक्तितो देयाविप्रेभ्योदक्षिणाऽनघ !। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत भक्त्यातुष्यतिकेशव
इति कलुषविदारणं जनानामपि पठति शृणोति चाथ भक्त्या ।
मतिमपि च ददाति देवलोके वसति स कोटिशतानि वत्सराणाम् ॥३७॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे विभूतिद्वादशीव्रतवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ।

शततमोऽध्यायः

षष्टि-व्रतवर्णनम् ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथातःसम्प्रवक्ष्यामि व्रतषष्टिमनुत्तमाम् । रुद्रेणाभिहितां दिव्यां महापातकनाशिनीम्॥
नक्तमब्दं चरित्वा तु गवा सार्द्धं कुटुम्बिने । हैमं चक्रं त्रिशूलञ्च दद्याद्द्विप्राय वाससी॥
शिवरूपस्ततोऽस्माभिः शिवलोके स मोदते । एतद्व्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥३॥

यस्त्वेकभक्तेन समां शिवं हैमवृषान्वितम् । धेनूं तिलमयीं दद्यात् सपदं यातिशाङ्करम्
एतद्रुद्रव्रतं नाम पापशोकविनाशनम् ॥४॥
यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम् । एकान्तरितनक्ताशी समान्ते वृषसंयुतम् ॥
स वैष्णवं पदं याति लीलाव्रतमिदंस्मृतम् ॥ ५ ॥
आषाढ़ादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः । भोजनोपस्करं दद्यात् स याति भवनं हरेः ॥
जने प्रीतिकरं नृणां प्रीतिव्रतमिहोच्यते ॥ ६ ॥
वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम् । दद्याद्वस्त्राणि सूक्ष्माणि रसपात्रैश्चसंयुतम् ॥
सम्पूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति । एतद्गौरीव्रतं नाम भवानी लोकदायकम् ॥
पुष्पादौ यस्त्रयोदश्यांकृत्वा नक्तं मधौपुनः । अशोकंकाञ्चनं दत्त्वाऽइक्षुयुक्तं दशाङ्गुलम् ॥
विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रद्युम्नःप्रीयतामिति । कल्पंविष्णुपदेस्थित्वाविशोकःस्यात् पुनर्नरः ॥
एतत् कामव्रतं नाम सदा शोकविनाशनम् ॥ १० ॥
आषाढ़ादिव्रतं यस्तु वर्जयेन्नखकर्तनम् । वार्ताकंच चतुर्मासं मधुसर्पिर्घटान्वितम् ॥
कार्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । स रुद्रलोकमाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ॥
वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणिहेमन्तशिशिरावृतू । पुष्पत्रयंच फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्या च काञ्चनम्
दद्याद्विकालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ । दत्त्वा परम्पदं याति सौम्यव्रतमिदंस्मृतम् ॥
फाल्गुनादितृतीयायां लवणंयस्तुवर्जयेत् । समाप्ते शयनंदद्यात् गृहञ्चोपस्कारान्वितम् ॥
संपूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति । गौरीलोके वसेत्कल्पं सौभाग्यव्रतमुच्यते ॥
सन्ध्या मौनं ततः कृत्वा समान्ते घृतकुम्भकम् ।
वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १७ ॥
सारस्वतं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकम् ॥१८॥
लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः । समान्ते हेमकमलं दद्याद्धेनुसमन्वितम् ॥
सवैष्णवंपदं यातिलक्ष्मीवान् जन्मजन्मनि । एतत्सम्पद्व्रतं नाम सदापापविनाशनम् ॥
कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्यच । यावदब्दं पुनर्दद्याद्धेनुञ्जलघटान्विताम् ॥२१॥

जन्मायुतं स राजा स्यात्ततः शिवपुरं व्रजेत् । एतदायुर्व्रतं नाम सर्वकामप्रदायकम् ॥

अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकत्र वाग्यतः । एकभक्तं नरः कुर्यादब्दमेकं विमत्सरः ॥
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यंधेनुत्रयान्वितम् । वृक्षंहिरण्मयं दद्यात् सोऽश्वमेधफलंलभेत्॥
एतत् कीर्त्तिव्रतं नाम भूतिकीर्त्तिफलप्रदम् ॥ २४ ॥
घृतेन स्नपनं कुर्याच्छम्भोर्वा केशवस्य च । अक्षताभिः सपुष्पाभिःकृत्वा गोमयमण्डलम्
तिलधेनुसमोपेतं समाप्ते हेमपङ्कजम् । शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते ॥
सामगाय ततश्चैतत् सामव्रतमिहोच्यते ॥ २६ ॥
नवम्यामेकभक्तन्तु कृत्वाकन्याश्चशक्तितः । भोजयित्वा समां दद्याद्धैमकञ्चुकवाससी
हैमं सिंहञ्च विप्राय दत्त्वा शिवपदं व्रजेत् । जन्मार्बुदंसुरूपः स्याच्छत्रुभिश्चापराजितः॥
एतद्वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम् ॥ २८ ॥
यावत् समाभवेद्यस्तु पञ्चदश्यांपयोव्रतः । समान्ते श्राद्धकृद्दद्यात् पञ्च गास्तु पयस्विनीः
वासांसि च पिशङ्गानि जलकुम्भयुतानिच । सयातिवैष्णवं लोकं पितॄणान्तारयेच्छतम्
कल्पान्ते राजराजः स्यात् पितृव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ३० ॥
चैत्रादिचतुरो मासाञ्जलं दद्यादयाचितम् । व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम् ॥
तिलपात्रं हिरण्यञ्च ब्रह्मलोके महीयते । कल्पान्ते भूपतिर्नूनमानन्दव्रतमुच्यते ॥ ३२ ॥
पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा संवत्सरं विभोः । वत्सरान्ते पुनर्दद्याद्धेनुं पञ्चामृतेन हि ॥
विप्राय दद्याच्छंङ्खञ्चस पदं याति शाङ्करम् । राजाभवति कल्पान्तेधृतिव्रतमिदं स्मृतम्
वर्जयित्वा पुनर्मासमब्दान्ते गोपदो भवेत् । तद्वद्धेममृगं दद्यात् सोऽश्वमेधफलंलभेत्॥
अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्पान्ते भूपतिर्भवेत् ॥ ३५ ॥
माघमास्युषसिस्नानंकृत्वादाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयित्वायथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः
सूर्य्यलोके वसेत् कल्पं सूर्य्यव्रतमिदं स्मृतम् ॥३६॥
आषाढादिचतुर्मासंप्रातःस्नायी भवेन्नरः । विप्रेषुभोजनं दद्यात् कार्तिक्यांगोप्रदोभवेत्॥
स वैष्णवं पदं याति विष्णुव्रतमिदं शुभम् ॥ ३७ ॥
अयनादयनं यावद्वर्जयेत् पुष्पसर्पिषी । तदन्ते पुष्पदामानि घृतधेन्वा सहैव तु ॥३८॥
दत्त्वा शिवपदं गच्छेद्विप्राय घृतपायसम् । एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम् ॥

सन्ध्यादीपप्रदोयस्तु समांतैलं विवर्जयेत् । समान्तेदीपिकां दद्यात् चक्रशूलेचकाञ्चने ॥
वस्त्रयुग्मञ्च विप्राय तेजस्वी स भवेदिह । रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतम् ४१
कार्त्तिकादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम् । नक्तञ्चरेदब्दमेकमब्दान्ते गोप्रदो भवेत्
गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । एतद्रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम् ॥
वर्जयेच्चैत्रमासे च यश्च गन्धानुलेपनम् । शुक्तिं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी ॥
वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम् ॥४४॥
वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयित्वाऽथ गोप्रदः । भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वा राजाभवेदिह
एतत्कान्तिव्रतं नाम कान्तिकीर्त्तिफलप्रदम् ॥४५॥
ब्रह्माण्डं काञ्चनंकृत्वा तिलराशिसमन्वितम् । त्र्यहं तिलप्रदो भूत्वावह्निंसंतर्प्यसद्विजम्
संपूज्यविप्रदाम्पत्यंमाल्यवस्त्रविभूषणैः । शक्तितस्त्रिपलादूर्द्ध्वंविश्वात्माप्रीयतामिति
पुण्येऽह्नि दद्यात् सपरं ब्रह्मयात्यपुनर्भवम् । एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणपददायकम् ४८॥
यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्विताम् । दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत् स याति परमम्पदम्
एतद्धेनुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥४९॥
त्र्यहं पयोव्रते स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम् । पलादूर्द्ध्वं यथाशक्त्यातण्डुलैस्तूपसंयुतम्
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पव्रतमिदं स्मृतम् ॥५०॥
मासोपवासी यो दद्याद्धेनुं विप्राय शोभनाम् । सवैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदंस्मृतम्
दद्याद्विंशत्पलादूर्द्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् । दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रलोके महीयते ॥
धराव्रतमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम् ॥५२॥
माघे मासेऽथवा चैत्रे गुडधेनुप्रदो भवेत् । गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीलोके महीयते ॥
महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम् ॥५३॥
पक्षोपवासी यो दद्याद् विप्राय कपिलाद्वयम् । ब्रह्मलोकमवाप्नोति देवासुरसुपूजितम्
कल्पान्ते राजराजः स्यात्प्रभाव्रतमिदं स्मृतम् ॥५४॥
वत्सरन्त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुम्भदः । शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम्
नक्ताशी चाष्टमीषु स्याद्वत्सरान्ते च धेनुदः । पौरन्दरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते ।५६

विप्रायेन्धनदो यस्तु वर्षादिचतुरो ऋतून् । घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति ॥
वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापविनाशनम् ॥५७॥
एकादश्याञ्च नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत् । समान्ते वैष्णवंहैमंसविष्णोःपदमाप्नुयात्
एतत्कृष्णव्रतं नाम कल्पान्ते राज्यभाग्भवेत् ॥५८॥
पायसाशी समान्ते तु दद्याद्विप्रायगोयुगम् । लक्ष्मीलोकमवाप्नोति ह्येतद्देवीव्रतंस्मृतम्
सप्तम्यान्नक्तभुग्दद्यात्समान्ते गाम्पयस्विनीम् । सूर्यलोकमवाप्नोतिभानुव्रतमिदंस्मृतम्
चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्यादब्दान्ते हेमवारणम् । व्रतं वैनायकं नाम शिवलोकफलप्रदम् ।६१
महाफलानि यस्त्यक्त्वा चतुर्मासं द्विजातये । हैमानि कार्त्तिके दद्याद्गोयुगेनसमन्वितम्
एतत्फलव्रतं नाम विष्णुलोकफलप्रदम् ॥६२॥
यश्चोपवासी सप्तम्यां समान्ते हैमपङ्कजम् । गावश्च शक्तितो दद्याद्धेमान्नघटसंयुताः ॥
एतत्सौरव्रतं नाम स्वर्गलोकफलप्रदम् ॥६३॥
द्वादश द्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणेन च । गोवस्त्रकाञ्चनैर्विप्रान् पूजयेच्छक्तितोनरः ॥
परमम्पदमवाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् ॥६४॥
कार्त्तिक्याञ्च वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवम्पदमवाप्नोति वार्षव्रतमिदंस्मृतम्
कृच्छ्रान्ते गोप्रदःकुर्याद्भोजनंशक्तितः पदम् । विप्राणां शाङ्करं याति प्राजापत्यमिदंव्रतम्
चतुर्दश्यान्तु नक्ताशी समान्ते गोधनप्रदः । शैवम्पदमवाप्नोति त्रैयम्बकमिदं व्रतम् ।६७
सप्तरात्रोषितो दद्याद्घृतकुम्भं द्विजातये । घृतव्रतमिदम्प्राहुर्ब्रह्मलोकफलप्रदम् ॥ ६८ ॥
आकाशशायी वर्षासु धेनुमन्ते पयस्विनीम् । शक्रलोके वसेन्नित्यमिन्द्रव्रतमिदं स्मृतम्
अनग्निपक्वमश्नाति तृतीयायान्तु यो नरः । गान्दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
इह चानन्दकृत् पुंसां श्रेयोव्रतमिदं स्मृतम् ॥७०॥
हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम् । ददन् कृतोपवासः स्याद्दिवि कल्पशतं वसेत्
कल्पान्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम् ॥७१॥
तद्वद्धेमरथं दद्यात्करिभ्यां संयुतं नरः । सत्यलोके वसेत्कल्पं सहस्रमथ भूपतिः ॥७२॥
उपवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदो भवेत् । यक्षाधिपत्यमाप्नोति वारुणं व्रतमुच्यते

निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत् । वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमुच्यते
चान्द्रायणञ्च यः कुर्य्याद्धेमचन्द्रं निवेदयेत् । चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकफलप्रदम् ॥
ज्यैष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवम् । यात्यष्टमी चतुर्दश्यो रुद्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥
सकृद्वितानकं कुर्य्यात्तृतीयायां शिवालये । समान्ते धेनुदो याति भवानी व्रतमुच्यते ॥

माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात् सप्तम्यां गोप्रदो भवेत् ।
दिवि कल्पमुषित्वेह राजा स्यात् पवनं व्रतम् ॥ ७८ ॥

त्रिरात्रोपोषितोदद्यात्फाल्गुन्यांभवनंशुभम् । आदित्यलोकमाप्नोतिधामव्रतमिदंस्मृतम्
त्रिसन्ध्यं पूज्य दाम्पत्यमुपवासी विभूषणैः । अन्नं गावः समाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह
दत्वा सितद्वितीयायामिन्दोर्लवणभाजनम् । समान्ते गोप्रदोयातिविप्रायशिवमन्दिरम्

कल्पान्ते राजराजः स्यात् सोमव्रतमिदं स्मृतम् ॥८१॥

प्रतिपद्येकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः । वैश्वानरपदं याति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ॥८२
दशम्यामेकभक्ताशी समान्ते दशधेनुदः । दिशश्च काञ्चनैर्दद्यात् ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत्

एतद्विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥८३॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि व्रतषष्टिमनुत्तमाम् । मन्वन्तरशतं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत् ॥

षष्टिव्रतं नारद ! पुण्यमेतत्तवोदितं विश्वजनीनमन्यत् ।
श्रोतुन्तवेच्छा तदुदीरयामि प्रियेषु किं वा कथनीयमस्ति ॥८५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे षष्टिव्रतादिवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ।

एकाधिकशततमोऽध्यायः

स्नानमहत्त्ववर्णनम् ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं नविद्यते । तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते
अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत् । तीर्थञ्च कल्पयेद्विद्वान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्

नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः ॥ २ ॥

दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः । चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥

प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

विष्णोःपादप्रसूतासिवैष्णवीविष्णुदेवता । त्राहिनस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्

तिस्रःकोट्योऽर्द्धकोटीचतीर्थानांवायुरब्रवीत् । दिविभूम्यन्तरिक्षेचतानितेसन्तुजाह्नवि॥

नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषुनलिनीति च । दक्षा पृथ्वी चविहगा विश्वकायाऽमृताशिवा

विद्याधरी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी। क्षेमा च जाह्नवीचैव शान्ताशान्तिप्रदायिनी

एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् । भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी

सप्तवाराभिजप्तेन करसंपुटयोजितः । मूर्द्धिन कुर्य्याज्जलं भूयस्त्रिचतुः पञ्चसप्तकम् ॥

स्नानं कुर्य्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः ॥६॥

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके ! हर मे पापं यन्मयादुष्कृतंकृतम्

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते ! ॥

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः । उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधायवै

ततस्तु तर्पणं कुर्य्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै ॥१२॥

देवायक्षास्तथानागागन्धर्वाप्सरसः सुराः । क्रूराः सर्पाःसुपर्णाश्चतरवोजम्बुकाःखगाः

वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः । निराधाराश्च ये जीवा येतु धर्म्मरतास्तथा

तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया । कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः ॥

मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१६॥

कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुनासदा ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वशिष्ठश्च भृगुन्नारदमेव च ।

देवब्रह्मऋषीन् सर्वांस्तर्पयेदक्षतोदकैः ॥१८॥

अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले ।

अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः ॥१९॥

सुकालिनो बर्हिषदस्तथान्ये वाज्यपाः पुनः । सन्तर्प्य पितरो भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥२१॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।
दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन् सन्तर्पयेद् बुधः ॥२२॥
पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि ।
सन्तर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२३॥
ये बान्धवा बान्धवेया येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ॥२४॥
ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममग्रतः । अक्षताभिः सपुष्पाभिः सजलारुणचन्दनम् ।
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानि कीर्तयेत् ॥२५॥
नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै । सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे २६।
नमस्तेशिव ! सर्वेश ! नमस्तेसर्ववत्सल। जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ॥
पद्मासन ! नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित । नमस्ते सर्वलोकेश ! जगत्सर्वं विबोधसे॥
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वग । सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर॥
दिवाकर ! नमस्तेऽस्तुप्रभाकर ! नमोऽस्तुते । एवंसूर्यंनमस्कृत्यत्रिःकृत्वाथप्रदक्षिणम्
द्विजङ्गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ॥३०॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे स्नानादितर्पणसूर्य्यार्घ्यनिरूपणं नाम एकाधिकशततमोऽध्यायः ।

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यवर्णनम् ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रयागस्योपवर्णनम् । मार्कण्डेयेन कथितं यत् पुरा पाण्डुसूनवे।१॥
भारते तु यदा वृत्ते प्राप्तराज्ये पृथासुते । एतस्मिन्नन्तरे राजा कुन्तिपुत्रोयुधिष्ठिरः॥२॥

भ्रातृशोकेन सन्तप्तश्चिन्तयन् स पुनःपुनः । आसीत्सुयोधनोराजा एकादशचमूपतिः ॥

अस्मान् सन्ताप्य बहुशः सर्वे ते निधनं गताः ।

वासुदेवं समाश्रित्य पञ्चशेषास्तु पाण्डवाः ॥४॥

हत्वा भीष्मं च द्रोणञ्च कर्णं चैव महाबलम् । दुर्योधनं च राजानं पुत्रभ्रातृसमन्वितम्
राजानो निहताःसर्वे येचान्येशूरमानिनः । किन्नोराज्येनगोविन्द ! किम्भोगैर्जीवितेनवा
धिक्कष्टमितिसञ्चिन्त्यराजावैक्लव्यमागतः । निर्विचेष्टोनिरुत्साहः किञ्चित्तिष्ठत्यधोमुखः
लब्धसंज्ञो यदा राजा चिन्तयन् स पुनः पुनः । कतरो विनियोगो वानियमं तीर्थमेव च

येनाहं शीघ्रमामुञ्चे महापातककिल्बिषात् ।

यत्र स्थित्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥९॥

कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदङ्कारितोऽस्म्यहम् ।

धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं हतम् ॥१०॥

एवं वैक्लव्यमापन्नो धर्म्मराजो युधिष्ठिरः । रुदन्तिपाण्डवाःसर्वेभ्रातृशोकपरिप्लुताः॥
ये च तत्रमहात्मानःसमेताःपाण्डवाःस्मृताः । कुन्तीचद्रौपदीचैव ये च तत्र समागताः

भूमौ निपतिताः सर्वे रुदन्तस्तु समन्ततः ॥१२॥

वाराणस्यां मार्कण्डेयस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः । यथावैक्लव्यमापन्नोरुदमानस्तुदुःखितः॥
अचिरेणैव कालेन मार्कण्डेयो महातपाः । संप्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे ह्यतिष्ठत॥१४

द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम् ।

त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारि तिष्ठत्यसौ मुनिः ।

त्वरितो धर्म्मपुत्रस्तु द्वारमागादतः परम् ॥१५॥

युधिष्ठिर उवाच ।

स्वागतं ते महाभाग ! स्वागतं ते महामुने । अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्
अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि दृष्टे महामुने । अद्याहं पूतदेहोऽस्मि यत्त्वया सहदर्शनम्॥१७

नन्दिकेश्वर उवाच ।

सिंहासनेसमास्थाप्यपादशौचार्चनादिभिः । युधिष्ठिरोमहात्मा वै पूजयामास तंमुनिम्

ततःसतुष्टोमार्कण्डःपूजितश्चाहतंनृपम् । आख्याहित्वरितंराजन् ! किमर्थंरुदितं त्वया ।
केनवा विक्लवीभूतः का बाधा ते किमप्रियम् ॥१६॥

युधिष्ठिर उवाच ।

अस्माकंचैवयद्वृत्तं राज्यस्यार्थे महामुने । एतत् सर्वं विदित्वा तु चिन्तावशमुपागतः ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणुराजन् ! महाबाहो ! क्षत्रधर्मव्यवस्थितम् । नैव दृष्टंरणे पापंयुद्ध्मानस्य धीमतः ॥
किम्पुना राजधर्मेण क्षत्रियस्य विशेषतः । तदेवं हृदयं कृत्वा तस्मात्पापंन चिन्तयेत् ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसामुनिम् । पप्रच्छविनयोपेतःसर्वपातकनाशनम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

पृच्छामित्वांमहाप्राज्ञ ! नित्यंत्रैलोक्यदर्शिनम् । कथयत्वंसमासेनयेनमुच्येतकिल्विषात्

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणुराजन् ! महाबाहो सर्वपातकनाशम् । प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणांपुण्यकर्म्मणाम् ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामिपुराकल्पेयथास्थितम् । ब्रह्मणादेवमुख्येनयथावत्कथितंमुने ॥
कथं प्रयागे गमनं नराणां तत्र कीदृशम् । मृतानांकागतिस्तत्रस्नातानांतत्रकिंफलम् ॥
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किम्फलम् ॥२॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कथयिष्यामितेवत्स ! यच्छ्रेष्ठंतत्रयत्फलम् । पुराहिसर्वविप्राणांकथ्यमानंमयाश्रुतम्

आप्रयागप्रतिष्ठानादापुराद्वासुकेर्ह्रदात् । कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः ॥३॥

एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥४॥

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ।

ततो ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः ॥५॥

अन्ये च वहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः शुभाः । न शक्याःकथितुंराजन् ! बहुवर्षशतैरपि ।

संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम् ॥६॥

षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् । यमुनां रक्षति सदा सवितासप्तवाहनः ॥

प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः । मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह संगतः ॥८॥

तं वटं रक्षतिसदा शूलपाणिर्महेश्वरः । स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ॥९॥

अधर्मेणावृतो लोकेनैव गच्छति तत्पदम् । स्वल्पमल्पतरं पापं यदा ते स्यान्नराधिप ।

प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥१०॥

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम संङ्कीर्त्तनादपि । मृत्तिका लम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥

पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र ! तेषां मध्ये तु जाह्नवी । प्रयागस्यप्रवेशेतुपापंनश्यतितत्क्षणात् ॥

योजनानां सहस्रेषु गंगायाः स्मरणान्नरः । अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमांगतिम् ॥

कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वाभद्राणिपश्यति । अवगाह्यचपीत्वातुपुनात्यासप्तमङ्कुलम् ॥

सत्यवादी जितक्रोधी अहिंसायांव्यवस्थितः । धर्मानुसारीतत्वज्ञोगोब्राह्मणहितेरतः ॥

गंगायमुनयोर्मध्येस्नातोमुच्येतकिल्बिषात् । मनसाचिन्तयन्कामानवाप्नोतिसुपुष्कलान्

ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम् । ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितॄन्देवांश्चतर्पयेत् ॥

ईप्सितान् लभते कामान् यत्र यत्राभिजायते ॥१७॥

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता । समागता महाभागा यमुना तत्रनिम्नगा ।

तत्र सन्निहितो नित्यं साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥१८॥

दुष्प्राप्यं मानुषैः पुण्यं प्रयागन्तु युधिष्ठिर । देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥

तदुपस्पृश्य राजेन्द्र ! स्वर्गलोकमुपासते ॥ १९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रयागस्यमाहात्म्यंपुनरेव तु । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः
आर्तानां हि दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम् । स्थानमुक्तं प्रयागन्तुनाख्येयन्तुकदाचन
व्याधितो यदिवादीनो वृद्धोवापि भवेन्नरः । गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तुप्राणान्परित्यजेत्
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सूर्य्यसन्निभैः । गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे क्रीड़ति मानवः
ईप्सितान् लभते कामान् वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥ ४ ॥
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः । वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः ॥ ५ ॥
गीतवाद्यविनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिवुध्यते । यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते ॥६
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः । हिरण्यरत्नसंपूर्णे समृद्धे जायते कुले ।
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात्तत्र गच्छति ॥ ७ ॥
देशस्थोयदिवाऽरण्येविदेशस्थोऽथवागृहे । प्रयागंस्मरमाणोऽपियस्तुप्राणान्परित्यजेत्
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥ ८ ॥
सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी । ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति
स्त्रीसहस्रावृते रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे । मोदते ऋषिभिः सार्द्धं सुकृतेनेह कर्म्मणा
सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः । ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ॥
ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः । गुणवान् वित्तसम्पन्नो भवतीह नसंशयः
कर्म्मणा मनसा वाचा धर्मसत्यप्रतिष्ठितः । गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां सम्प्रयच्छति
सुवर्णमणिमुक्ताश्च यदिवान्यत् परिग्रहम् । स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा
सफलं तस्य तत्तीर्थं यथावत् पुण्यमाप्नुयात् ॥ १४ ॥
एवं तीर्थे न गृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु च । निमित्तेषु च सर्वेषु ह्यप्रमत्तो भवेद्द्विजः॥

कपिलांपाटलावर्णां यस्तुधेनुंप्रयच्छति । स्वर्णश्रृङ्गीं रौप्यखुरांकांस्यदोहांपयस्विनीम्
प्रयागे श्रोत्रियं सन्तं ग्राहयित्वा यथाविधि । शुक्लाम्बरधरं शान्तं धर्मज्ञं वेदपारगम् ॥
सा गौस्तस्मै प्रदातव्या गङ्गायमुनसङ्गमे । वासांसि च महार्हाणि रत्नानिविविधानिच
यावद्रोमाणि तस्यागोः सन्तिगात्रेषु सत्तम ! । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते
यत्राऽसौ लभते जन्म सा गौस्तस्याभिजायते । नच पश्यति तं घोरंनरकं तेन कर्मणा
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मोदते कालमक्षयम् ॥ २० ॥
गवां शतसहस्रेभ्योदद्यादेकांपयस्विनीम् । पुत्रान् दारांस्तथाभृत्यान्गौरेकाप्रतितारयेत्
तस्मात् सर्वेषु दानेषु गोदानन्तु विशिष्यते । दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसम्भवे ॥
गौरेव रक्षां कुरुते तस्माद्देया द्विजोत्तमे ॥ २२ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

यथा यथा प्रयागस्य माहात्म्यं कथ्यते त्वया । तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्नसंशयः
भगवन् ! केनविधिना गन्तव्यंधर्म्मनिश्चयैः । प्रयागे योविधिः प्रोक्तस्तन्मेब्रूहिमहामुने!

मार्कण्डेय उवाच ।

कथयिष्यामि ते राजन् ! तीर्थयात्राविधिक्रमम् । आर्षेणविधिनानेन यथादृष्टंयथाश्रुतम्
प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित् । बलीवर्दसमारूढः श्रृणु तस्यापि यत्फलम्
नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारुणे । सलिलं न च गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः ॥५
यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत्पाययेत्तया । यथात्मना तथ सर्वं दानं विप्रेषु दापयेत्
ऐश्वर्यलोभमोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः । निष्फलं तस्य तत्सर्वं तस्माद्यानं विवर्जयेत्

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति। आर्षेणैव विवाहेन यथाविभवसम्भवम् ॥८
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्म्मणा। उत्तरान्सकुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम्
पुत्रान्दारांश्च लभते धार्मिकान् रूपसंयुतान् ॥ ९ ॥
तत्र दानं प्रकर्त्तव्यं यथा विभवसम्भवम्। तेन तीर्थफलञ्चैव वर्धते नात्र संशयः ॥
स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र ! यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १० ॥
वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुञ्चति। सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति
तत्र ते द्वादशादित्यास्तपन्ति रुद्रसंश्रिताः। निर्दहन्ति जगत्सर्वं वटमूलं न दह्यते ॥१२॥
नष्टचन्द्रार्कभुवनं यदा चैकार्णवं जगत्। स्थीयते तत्र वै विष्णुर्यजमानः पुनः पुनः ॥
देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः। सदा सेवन्ति तत्तीर्थं गङ्गायमुनसङ्गमम् ।१४
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! प्रयागं संस्तुवंश्च यत्। यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयःसिद्धचारणाः
लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसंमताः। सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयः परे। तथा नागाः सुपर्णाश्च सिद्धाश्चक्रधरास्तथा।
सागराः सरितः शैला नागा विद्याधराश्च ये। हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरःसरः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राजशार्दूल ! त्रिषु लोकेषु भारत !
श्रवणात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्त्तनादपि। मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते
तत्राभिषेकं यः कुर्यात् सङ्गमे शंसितव्रतः। तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥
न देववचनात्तात ! न लोकवचनात्तथा। मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनम्प्रति ॥२२॥
दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः। तेषां सान्निध्यमत्रैव ततस्तु कुरुनन्दन !॥२३
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्यस्थस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ २४ ॥
नतेजीवन्तिलोकेऽस्मिन्तत्रतत्र युधिष्ठिर। ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषुलोकेषु वञ्चिताः ॥
एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागं परमम्पदम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो शशाङ्क इव राहुणा ॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ विपुले यमुनातटे। तत्र स्नात्वाचपीत्वाच सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥
तत्र गत्वाच संस्थानं महादेवस्य धीमतः। नरस्तारयते सर्वान् दशपूर्वान् दशापरान् ॥

कृत्वाभिषेकन्तु नरःसोऽश्वमेधफलं लभेत् । स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥
पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रिषु लोकेषु भारत । कूपञ्चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानञ्च विश्रुतम् ॥
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रंयदितिष्ठति । सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
उत्तरेण प्रतिष्ठानात् भागीरथ्यास्तु पूर्वतः । हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥
अश्वमेधफलं तस्मिन् स्नानमात्रेण भारत । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते ॥
उर्वशीरमणे पुण्ये विपुले हंसपाण्डुरे । परित्यजतियःप्राणान्शृणु तस्यापियत् फलम् ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । सेव्यते पितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोके नराधिप ! ॥
उर्वशीन्तु सदा पश्येत् स्वर्गलोके नरोत्तम !। पूज्यतेसततं पुत्र ! ऋषिगन्धर्वकिन्नरैः ॥
ततःस्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः । उर्वशीसदृशीनान्तुकन्यानांलभतेशतम्॥
मध्ये नारीसहस्राणां बह्वनाञ्च पतिर्भवेत् । दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिपः ॥
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुद्ध्यते । भुक्त्वातुविपुलान्भोगान् तत्तीर्थंभजतेपुनः
शुक्लाम्बरधरो नित्यं नियतः संयतेन्द्रियः । एकं कालन्तु भुञ्जानोमासंभूमिपतिर्भवेत् ॥
सुवर्णालङ्कृतानान्तु नारीणां लभते शतम् । पृथिव्यामासमुद्रायां महाभूमिपतिर्भवेत्॥
धनधान्यसमायुक्तोदाताभवति नित्यशः । भुक्त्वातुविपुलान्भोगान् तत्तीर्थंलभतेपुनः॥
अथ सन्ध्यावटेरम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । उपवासीशुचिः सन्ध्यांब्रह्मलोकमवाप्नुयात्
कोटितीर्थं समासाद्य यस्तुप्राणान् परित्यजेत् । कोटिवर्षसहस्राणांस्वर्गलोके महीयते
ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः । सुवर्णमणिमुक्ताढ्यकुले जायेत रूपवान्
ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु । दशाश्वमेधिकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत् ॥
कृताभिषेकस्तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत् । धनाढ्योरूपवान्दक्षोदाताभवतिधार्मिकः
चतुर्वेदेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं सत्यवादिषु । अहिंसायान्तुयोधर्मोगमनादेवतत् फलम्॥
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र यत्रावगाह्यते । कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र विन्ध्येन सङ्गता ॥४६॥
यत्र गङ्गा महाभागा वहुतीर्था तपोधना । सिद्धक्षेत्रंहि तज्ज्ञेयंनात्र कार्य्याविचारणा ॥
क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः । दिवितारयतेदेवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥
यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति हि शरीरिणः । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

तीर्थानान्तुपरं तीर्थं नदीनां तु महानदी। मोक्षदा सर्वभूतानांमहापातकिनामपि ॥५३॥

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ॥५४॥

सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिमन्विष्यमाणानां नास्ति गङ्गासमागतिः॥

पवित्राणां पवित्रञ्च मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्। महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥५६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः।

षड्धिकशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम्।

मार्कण्डेय उवाच।

शृणु राजन्! प्रयागस्यमहात्म्यं पुनरेव तु। यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्रसंशयः

मानसं नाम तत्तीर्थं गङ्गाया उत्तरे तटे। त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा सर्वकामानवाप्नुयात्

गोभूहिरण्यदानेन यत् फलं प्राप्नुयान्नरः। स तत् फलमवाप्नोति तत्तीर्थं स्मरते पुनः॥

अकामो वा सकामो वा गङ्गायां योऽभिपद्यते। मृतस्तु लभते स्वर्गं नरकञ्च न पश्यति

अप्सरोगणसङ्गीतैः सुप्तोऽसौ प्रतिवुद्ध्यते।
हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥
बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गं राजेन्द्र! भुञ्जति ॥ ५ ॥

ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः। सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये जायते विपुलेकुले

षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापगाः। माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसङ्गमम्॥

गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम्।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नानात्तु तत् फलम् ॥८॥

गङ्गायमुनयोर्मध्येकर्षाग्निं यस्तु साधयेत्। अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः॥
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु देहिनः। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्। सभुक्त्वाविपुलान् भोगांस्तत्तीर्थंस्मरतेपुनः
जलप्रवेशं यः कुर्यात् सङ्गमे लोकविश्रुते। राहुग्रस्ते तथा सोमे विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते। षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥१३॥

स्वर्गे च शक्रलोकेऽस्मिन् ऋषिगन्धर्वसेविते।
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र! समृद्धे जायते कुले॥१४॥

अधःशिरस्तु यो ज्वालामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः। शतवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र! सोऽग्निहोत्रीभवेन्नरः। भुक्त्वातुविपुलान्भोगान् तत्तीर्थंभजतेपुनः
यः स्वदेहन्तुकर्तित्वाशकुनिभ्यःप्रयच्छति। विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापियत् फलम्
शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते। तस्मादपि परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः॥

गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वांश्च प्रियवाचकः।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥ १६॥

यामुने चोत्तरेकूले प्रयागस्य तु दक्षिणे। ऋणप्रमोचनं नाम तत्तीर्थं परमं स्मृतम्॥
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैः सर्वैः प्रमुच्यते। स्वर्गलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदाभवेत्

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्ये ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णनं नाम
षड्धिकशततमोऽध्यायः।

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम्।

युधिष्ठिर उवाच।

एतच्छ्रुत्वा प्रयागस्य यत्त्वया परिकीर्तितम्। विशुद्धं मेऽद्य हृदयंप्रयागस्यतु कीर्तनात्
अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीदृशम्। यश्च लोकमवाप्नोतिविशुद्धः सर्वकिल्विषैः

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रयागेतुअनाशकफलंविभो । प्राप्नोतिपुरुषोधीमान्श्रद्धधानो जितेन्द्रियः
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः । अश्वमेधफलंतस्य गच्छतस्तु पदे पदे ॥
कुलानि तारयेद्राजन् ! दशपूर्वान् दशापरान् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेत्तुपरमंपदम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

महाभाग्यंहि धर्म्मस्य यत्त्वं वदसि मे प्रभो ! । अल्पेनैव प्रयत्नेन बहून्धर्मानवाप्नुते ॥
अश्वमेधैस्तुबहुभिः प्राप्यते सुव्रतैरिह । इमंमे संशयं छिन्धिपरं कौतूहलं हि मे ॥७॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणुराजन् ! महावीर ! यदुक्तं ब्रह्मयोनिना । ऋषीणां सन्निधौ पूर्वंकथ्यमानंमयाश्रुतम्
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम् । प्रविष्टमात्रेतद्भूमावश्वमेधः पदे पदे ॥६॥

व्यतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश ।
नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥ १० ॥

एवं ज्ञात्वा तु राजेन्द्र ! सदा सेवापरो भवेत् । अश्रद्दधानाः पुरुषाः पापोऽपहतचेतसः
न प्राप्नुवन्ति तत्स्थानं प्रयागं देवरक्षितम् ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

स्नेहाद्वा द्रव्यलोभाद्वा ये तु कामवशङ्गताः । कथं तीर्थफलं तेषां कथं पुण्यफलं भवेत्
विक्रयः सर्वभाण्डानां कार्य्याकार्य्यमजानतः । प्रयागेकागतिस्तस्यतन्मे ब्रूहि पितामह !

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणुराजन् ! महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
मासमेकन्तु यः स्नायात् प्रयागे नियतेन्द्रियः ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स गच्छेत् परमं पदम् ॥ १४ ॥

विश्रम्भघातकानान्तु प्रयागे शृणु यत् फलम् । त्रिकालमेवस्नायीत आहारंभैक्ष्यमाचरेत्
त्रिभिर्मासैः स मुच्येत प्रयागे तु न संशयः ॥१५॥

अज्ञानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत् । सर्वकामसमृद्धे तु स्वर्गलोके महीयते ॥

स्थानञ्च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम् ॥ १६ ॥

एवं ज्ञानेन संपूर्णः सदा भवति भोगवान् । तारिताः पितरस्तेन नरकात् प्रपितामहाः

धर्मानुसारितत्वज्ञ ! पृच्छतस्ते पुनःपुनः । त्वत्प्रियार्थंसमाख्यातं गुह्यमेतत् सनातनम्

युधिष्ठिर उवाच ।

अद्यमे सफलं जन्म अद्यमे तारितं कुलम् । प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनाद्देवतेमुने !

त्वद्दर्शनात्तु धर्मात्मन् ! मुक्तोहऽश्चाद्य किल्विषात् ।

इदानीं वेद्मि चात्मानं भगवन् ! गतकल्मषम् ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

दिष्ट्या ते सफलं जन्म दिष्ट्या ते तारितं कुलम् ।

कीर्तनाद्वर्धते पुण्यं श्रुतात्पापप्रणाशनम् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

यमुनायान्तु किं पुण्यं किं फलन्तु महामुने !। एतन्मेसर्वमाख्याहियथाद्दृष्टंयथा श्रुतम् ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

तपनस्य सुतादेवी त्रिषुलोकेषु विश्रुता । समाख्याता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा ॥

येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुनागता । योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी ॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर ! ।

कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥ २५ ॥

अवगाह्यचपीत्वाच पुनात्यासप्तमंकुलम् । प्राणांस्त्यजतियस्तत्र स यातिपरमाङ्गतिम् ॥

अग्नितीर्थमितिख्यातं यमुनादक्षिणे तटे । पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थन्तु नरकं स्मृतम् ॥

तत्र स्नात्वा दिवंयान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः । एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणे तटे ॥

उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः । तीर्थं निरञ्जनं नाम यत्र देवाः सवासवाः ॥

उपासतेस्म सन्ध्यां ये त्रिकालं हि युधिष्ठिर ! देवाःसेवन्तितत्तीर्थंयेचान्येविबुधाजनाः

श्रद्दधानपरो भूत्वा कुरु तीर्थाभिषेचनम् । अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः स्मृताः ॥

तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ॥ ३१ ॥

गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते । केवलं ज्येष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते ॥
एवं कुरुष्व कौन्तेय ! सर्वतीर्थाभिषेचनम् । यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
यस्त्विमं कल्प(ल्य)उत्थायपठतेचश्रृणोतिच । मुच्यतेसर्वपापेभ्यःस्वर्गलोकं सगच्छति॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्ये सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टोत्तरशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणेब्रह्मसम्भवे । तीर्थानान्तु सहस्राणि शतानि नियुतानि च ॥
सर्वे पुण्याः पवित्राश्च गतिश्च परमा स्मृता ॥ १ ॥
सोमतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम् । स्नानमात्रेण राजेन्द्र ! पुरुषांस्तारयेच्छतान् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरीक्षेच पुष्करम् । त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते
सर्वाणि तानि सन्त्यज्य कथमेकं प्रशंससि । अप्रमाणन्तु तत्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम्
गतिश्च परमां दिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान् । किमर्थमल्पेयोगेन बहु धर्मं प्रशंससि ॥
एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपियद् भवेत् । नरस्याश्रद्दधानस्य पापोपहतचेतसः ॥ ६ ॥
अश्रद्दधानोह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः । एते पातकिनः सर्वे तेनेदं भाषितं त्वया ॥७॥
श्रृणु प्रयागमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम् । प्रत्यक्षश्च परोक्षश्च यथान्यस्तं भविष्यति॥
यथौवान्यदद्दृष्टश्च यथादृष्टं यथाश्रुतम् । शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा च युज्यते योगमात्मनः ॥

क्लिश्यते चापरस्तत्र नैव योगमवाप्नुयात् । जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत मानवैः॥
यथा योगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः । यस्तुसर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति
तेन दानेन दत्तेन योगं नाभ्येति मानवः। प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा॥१२
प्रधानहेतुं वक्ष्यामि श्रद्दधत्स्व च भारत! यथा सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र दृश्यते ॥
ब्रह्माणे वास्ति यत् किञ्चिदब्राह्ममितिवोच्यते। एवं सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र पूज्यते॥
यथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पूजयेद्बुधः । पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधिष्ठिर ! ॥
ब्रह्मापि स्मरते नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम् । तीर्थराजमनुप्राप्य न चान्यत् किञ्चिदर्हति
कोहि देवत्वमासाद्य मनुष्यत्वं चिकीर्षति । अनेनैवोपमानेन त्वं ज्ञास्यसि युधिष्ठिर
यथा पुण्यतमं चास्ति तथैव कथितं मया ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं चेदंत्वयाप्रोक्तं विस्मितोऽहंपुनः पुनः। कथं योगेन तत्प्राप्तिः स्वर्गवासस्तुकर्मणा
दाता वै लभते भोगान् गां च यत्कर्मणः फलम् ।
तानि कर्माणि पृच्छामि पुनस्तैः प्राप्यते मही ॥ १६ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन्महाबाहो! यथोक्तकरणं महीम् । गामग्निं ब्राह्मणंशास्त्रं काञ्चनं सलिलंस्त्रियः
मातरं पितरञ्चैव ये निन्दन्ति नराधमाः । न तेषामूर्द्ध्वगमनमिदमाह प्रजापतिः ॥२१॥
एवं योगस्य सम्प्राप्तिस्थानं परमदुर्लभम् । गच्छन्ति नरकं घोरं ये नराः पापकर्मिणः
हस्त्यश्वङ्गामनड्वाहं मणिमुक्तादिकाञ्चनम् । परोक्षं हरते यस्तु यश्च दानं प्रयच्छति ॥
न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः। अनेककर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरकेपुनः
एवं योगश्चधर्मश्च दातारश्चयुधिष्ठिर !। यथा सत्यमसत्यंवा अस्ति नास्तीतियत्फलम्
निरुक्तन्तु प्रवक्ष्यामि यथाह स्वयमंशुमान् ॥ २५ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्येऽष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ।

नवोत्तरशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रयागस्य महात्म्यं पुनरेव तु । नैमिषं पुष्करञ्चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम्
गया च चैत्रकं चैव गङ्गासागरमेव च । एते चान्ये च बहवोये च पुण्याः शिलोच्चयाः
दशतीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः । प्रयागेसंस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः ॥
त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषांमध्येतुजाह्नवी । प्रयागादभिनिष्क्रान्ता सर्वतीर्थनमस्कृता
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता । यमुना गङ्गया सार्द्धं सङ्गता लोकभाविनी ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्याजघनं स्मृतम् । प्रयागंराजशार्दूल ! कलां नार्हन्तिषोड़शीम्

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥ ७ ॥

प्रयागं समधिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः ।८॥
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्त्तिमन्तो युधिष्ठिर! । प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः ॥९
यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः । ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ॥

प्रभावात् सर्वतीर्थेभ्यः प्रभवत्यधिकं विभो ! ।
दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः ॥ ११ ॥

यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत्तपोधनम् । सिद्धक्षेत्रञ्च विज्ञेयं गङ्गातीरसमन्वितम् ॥
इदं सत्यं विजानीयात् साधूनामात्मनश्च वै । सुहृदश्च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्यच
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सत्यमिदं सुखम् । इदं पुण्यमिदं धर्म्यं पावनं धर्ममुत्तमम् ॥
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् । अधीत्यच द्विजोऽप्येतन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्
य इदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः । जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठेच मोदते ॥

प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः ।

स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य ! न च वक्रमतिर्भवेत् ॥ १७ ॥

त्वयाच सम्यक् पृष्टेन कथितं वै मया विभो !। पितरस्तारिताःसर्वे तथैवच पितामहाः

प्रयागस्य तु सर्वे ते कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ १८ ॥

एवं ज्ञानञ्च योगञ्च तीर्थं चैव युधिष्ठिर !। बहुक्लेशेन युज्यन्ते तेन यान्ति पराङ्गतिम्।

त्रिकालं जायते ज्ञानं स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥ १९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्ये नवोत्तरशततमोऽध्यायः ।

दशोत्तरशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं सर्वमिदं प्रोक्तं प्रयागस्य महामुने !। एतन्नः सर्वमाख्याहि यथा हि मम तारयेत्

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणुराजन् ! प्रयागेतु प्रोक्तं सर्वमिदं जपेत् । ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानो देवताः प्रभुरव्ययः

ब्रह्मा सृजतिभूतानि स्थावरं जङ्गमञ्च यत् । तान्येतानि परंलोके विष्णुः सम्वर्द्धतेप्रजाः

कल्पान्ते तत्समग्रं हि रुद्रः संहरते जगत् । तदा प्रयागतीर्थञ्च न कदाचिद्विनश्यति ॥४

ईश्वरः सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति । यत्नेनानेन तिष्ठन्तिते यान्ति परमाङ्गतिम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

आख्याहि मे यथातथ्यं यथैषातिष्ठति श्रुतिः । केनवा कारणेनैव तिष्ठन्ते लोकसत्तमाः

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रयागे निवसन्ते ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । कारणं तत्प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर !

पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम् । तिष्ठन्ति रक्षणायात्र पापकर्मनिवारणात्

उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति । वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति ॥

माहेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः । ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात् ॥ १० ॥
यस्मिन् जुह्वन् स्वकं पापं नरकञ्च न पश्यति । एवं ब्रह्माच विष्णुश्च प्रयागे समहेश्वरः
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च महीतले । रक्षमाणाश्च तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥१२
येचान्ये बहवः सर्वे तिष्ठन्ति युधिष्ठिर ! । पृथिवी तत्समाश्रित्यनिर्मिता दैवतैस्त्रिभिः
प्रजापतेरिन्द्र(दं)क्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम् । एतत् पुण्यं पवित्रं वै प्रयागञ्च युधिष्ठिर!
स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र ! भ्रातृभिः सहितोऽनघ ! ॥ १४ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्ये दशोत्तरशततमोऽध्यायः ।

एकादशोत्तरशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यम् ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

भ्रातृभिः सहितः सर्वे द्रौपद्या सह भार्यया । ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य गुरून् देवानतर्पयत्
वासुदेवोऽपितत्रैवक्षणेनाभ्यागतस्तदा । पाण्डवैः सहितैः सर्वे(र्वैः)पूज्यमानस्तुमाधवः
कृष्णेन सहितैः सर्वैः पुनरेव महात्मभिः । अभिषिक्तः स्वराज्येच धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः
एतस्मिन्नन्तरेचैव मार्कण्डेयोमहामुनिः । ततः स्वस्तीति चोक्त्वातु क्षणादाश्रममागमत्
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितोऽवसत् ।
महादानं ततो दत्त्वा धर्मपुत्रो महामनाः ॥ ५ ॥
यस्त्विदं कल्प(ल्य)उत्थाय माहात्म्यंपठतेनरः । प्रयागंस्मरते नित्यं स याति परमंपदम्
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ६ ॥

वासुदेव उवाच ।

मम वाक्यञ्च कर्त्तव्यं महाराज ! ब्रवीम्यहम् । नित्यं जपस्व जुहुस्व प्रयागे विगतज्वरः

प्रयागं स्मर वै नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर !
स्वयं प्राप्स्यसि राजेन्द्र ! स्वर्गलोकं न संशयः ॥ ८ ॥

प्रयागमनुगच्छेद्वा वसते वापि यो नरः । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः । अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१०॥
अक्रोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥११।

ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम्
न हि शक्त्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीयते ॥ १२ ॥

बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः । प्राप्यन्ते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् ॥
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर !। तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोधयुधिष्ठिर
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम !। तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते ॥१५
दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापगाः । माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायां भरतर्षभ!।

स्वस्थो भव महाराज ! भुंक्ष्व राज्यमकण्टकम् ।
पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र ! यजमानो विशेषतः ॥ १७ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच ।

इत्युक्त्वा स महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः । युधिष्ठिरस्य नृपतेस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततस्तत्र समाप्लाव्य गात्राणि सगणो नृपः । यथोक्तेनाथ विधिनापरां निर्वृतिमागमत्
तथा त्वमपि देवर्षे ! प्रयागाभिमुखोभव । अभिषेकन्तु कृत्वाद्य कृतकृत्यो भविष्यसि

सूत उवाच ।

एवमुक्त्वाऽथ नन्दीशस्तत्रैवान्तरधीयत ।·नारदोऽपि जगामाशु प्रयागाभिमुखस्तदा ॥

तत्र स्नात्वा च जप्त्वाच विधिदृष्टेन कर्मणा ।
दानन्दत्त्वा द्विजाग्र्येभ्यो गतः स्वभवनं तदा ॥ २२ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागमाहात्म्यसमाप्तिवर्णनं नामैकादशोत्तरशततमोऽध्यायः ।

द्वादशोत्तरशततमोऽध्यायः

द्वीपसमुद्रपर्वतानां वर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कति द्वीपाः समुद्रावापर्वतावा कतिप्रभो !। कियन्तिचैव वर्षाणितेषु नद्यश्चकाःस्मृताः
महाभूमिप्रमाणञ्च लोकालोकस्तथैव च । पर्याप्ति म्परिमाणञ्च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा॥
एतद् ब्रवीहिनःसर्वं विस्तरेण यथार्थवित् । त्वदुक्तमेतत् सकलं श्रोतुमिच्छामहे वयम्

सूत उवाच ।

द्वीपभेदसहस्राणि सप्तचान्तर्गतानिच । न शक्यन्ते क्रमेणेह वक्तुं वै सकलं जगत् ॥४॥
सप्तैव तु प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह । तेषां मनुष्यतर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥५॥

अचिन्त्याः खलु ये भावास्तांस्तु तर्केण साधयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥६॥

सप्तवर्षाणि वक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथाविधम् । विस्तरं मण्डलं यच्च योजनैस्तंनिबोधत
योजनानां सहस्राणि शतं द्वीपस्य विस्तरः । नानाजनपदाकीर्णं पुरैश्च विवधैः शुभैः ॥
सिद्धचारणसंकीर्णं पर्वतैरुपशोभितम् । सर्वधातुपिनद्धैस्तैः शिलाजालसमुद्गतैः ॥६॥
पर्वतप्रसवाभिश्च नदीभिस्तु समन्ततः । प्रागायता महापार्श्वाः षड़िमे वर्षपर्वताः ॥१०
अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ । हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ॥११।
चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णोमेरुश्चोल्वमयःस्मृतः । चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णश्चचतुर्दिशम्
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समाहितः । नानावर्णैः समः पार्श्वैः प्रजापतिगुणान्वितः
नाभिबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणो व्यक्तजन्मनः । पर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मण्यं तस्य तेन वै ।
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते । भृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः ॥

तेनास्य शूद्रता सिद्धा मेरोर्नामार्थकर्म्मतः ॥ १५ ॥

पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः । तेनास्य क्षत्रभावः स्यादितिवर्णाः प्रकीर्त्तिताः

नलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः पीतो हिरण्मयः । मयूरबर्हवर्णश्च शातकौम्भः स शृङ्गवान् ॥
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः । तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमुच्यते ॥१८॥

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समन्ततः ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः ॥ १९ ॥

मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः । वेद्यर्द्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्द्धं तथोत्तरम् ॥ २०॥
वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वै वर्षपर्वताः । द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनैर्दक्षिणोत्तरम्
जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते । नीलश्च निषधश्चैव तेषां हीनाश्च ये परे ॥
श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवान् शृङ्गवांश्च यः । जम्बूद्वीपप्रमाणेन ऋषभः परिकीर्त्यते ॥२३
तस्माद्द्वादशभागेन हेमकूटोऽपि हीयते । हिमवान् विंशभागेन तस्मादेव प्रहीयते ॥

अष्टाशीतिसहस्राणि हेमकूटो महागिरिः ॥ २४ ॥

अशीतिर्हिमवांश्छैल आयतः पूर्वपश्चिमे । द्वीपस्य मण्डलीभावाद्ध्रासवृद्धी प्रकीर्त्तिते॥
वर्षाणां पर्वतानाञ्च यथाभेदं तथोत्तरम् । तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै ॥
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु । सप्त तानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ॥ २७ ॥
वसन्ति तेषु सत्वानि नानाजातीनि सर्वशः । इमं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ॥
हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किं पुरुषं स्मृतम् । हेमकूटाच्च निषधं हरिवर्षं तदुच्यते ॥२९
हरिवर्षात्परश्चापि मेरोस्तु तदिलावृतम् । इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ॥
रम्यकादपरं श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्यकम् । हिरण्यकात्परञ्चैव शृङ्गशाकं कुरं स्मृतम् ॥
धनुः संस्थे तु विज्ञेयो देवर्षे ! दक्षिणोत्तरे । दीर्घाणि तस्यचत्वारि मध्यमंतदिलावृतम्
पूर्वतो निषधस्येदं वेद्यर्द्धं दक्षिणं स्मृतम् । परन्त्विलावृतं पश्चाद्वेद्यर्द्धन्तु तदुत्तरम् ॥३३
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्यत्र त्विलावृतम् । दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।

उदगायतो महाशैलो माल्यवान् नाम पर्वतः ।
द्वात्रिंशता सहस्रेण प्रतीच्यां सागरानुगः ॥ ३५ ॥

माल्यवान् वै सहस्रैक आनील निषधायतः । द्वात्रिंशत्त्वेवमप्युक्तः पर्वतो गन्धमादनः॥
परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः । चातुर्वर्ण्यसमोवर्णैश्चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥३७ ॥

नानावर्णः सपार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते । पीतन्तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभम्परम् ।
उत्तरं तस्य रक्तं वै इति वर्णसमन्वितः ॥ ३८ ॥

मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत्स तु वेष्टितः । आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः
योजनानां सहस्राणि चतुराशीति उच्छ्रितः । प्रविष्टः षोड़शाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः
विस्तराद्द्विगुणश्चास्य परीणाहःसमन्ततः । स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः
भुवनैरावृतः सर्वैर्जातरूपपरिष्कृतैः । तत्र देवगणाश्चैव गन्धर्वासुरराक्षसाः ॥
शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसाङ्गणैः ॥ ४२ ॥

स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः । यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः ॥
भद्राश्वं भारतञ्चैव केतुमालश्च पश्चिमे । उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥४४॥
विष्कम्भपर्वतास्तद्वन्मन्दरो गन्धमादनः । विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषितः ॥४५
अरुणोदं मानसञ्च सितोदं भद्रसंज्ञितम् । तेषामुपरि चत्वारि सरांसि च वनानि च ॥
तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्धमादने । जम्बूवृक्षस्तथाश्वत्थो विपुलेऽथ वटः परम्
गन्धमादनपार्श्वे तु पश्चिमेऽमरगण्डिकः । द्वात्रिंशति सहस्राणि योजनैः सर्वतः समः
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः परिश्रुताः । तत्र कालानलाः सर्वे महासत्वा महाबलाः
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः । तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः पत्रभासुरः॥
तस्य पीत्वा फलरसं संजीवन्ति समायुतम् । तस्यमाल्यवतःपार्श्वे पूर्वे पूर्वातुगण्डिका
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि तत्रापि शतमुच्यते ॥ ५१ ॥

भद्रश्च तत्र विज्ञेयो नित्यं मुदितमानसः । भद्रमालवनं तत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥५२॥
तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्वा महाबलाः । स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यःप्रियदर्शनाः
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रशीतलगात्राश्च स्त्रियोह्युत्पलगन्धिकाः
दशवर्षसहस्राणि आयुस्तेषामनामयम् । कालाम्रस्य रसं पीत्वा ते सर्वे स्थिरयौवनाः

सूत उवाच ।

इत्युक्तवान् ऋषीन् ब्रह्मा वर्षाणिच निसर्गतः । पूर्वं ममानुग्रहकृद्भूयः किं वर्णयामि वः
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेतु ऋषयःसंशितव्रताः । जातकौतूहलाः सर्वे प्रत्यूचुस्ते मुदान्विताः

ऋषय ऊचुः ।

पूर्वापरौ समाख्यातौ यौ देशौ तौ त्वया मुने! । उत्तराणाञ्च वर्षाणांपर्वतानाञ्चसर्वशः
आख्याहिनोयथातथ्यंयेचपर्वतवासिनः । एवमुक्तस्तु ऋषिभिस्तेभ्यस्त्वाख्यातवान्पुनः

सूत उवाच ।

श्रृणुध्वं यानि वर्षाणि पूर्वोक्तानि च वै मया । दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेणतु
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते यत्र वै प्रजाः । रतिप्रधाना विमला जायन्ते यत्र मानवाः ॥
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः ॥ ६१ ॥

तत्रापि च महावृक्षोन्यग्रोधो रोहिणो महान् । तस्यापि ते फलरसंपिबन्तो वर्तयन्तिहि
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः ॥
उत्तरेण तु श्वेतस्य पार्श्वे श्रृङ्गस्य दक्षिणे । वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥
महाबला महासत्वा नित्यं मुदितमानसाः । शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः ।
एकादशसहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः । आयुः प्रमाणं जीवन्ति शतानि दशपञ्च च
तस्मिन् वर्षे महावृक्षो लकुचः पत्रसंश्रयः । तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः
श्रृङ्गसाह्वस्य श्रृङ्गाणि त्रीणि तानि महान्ति वै । एकं मणियुतंतत्रएकन्तु कनकान्वितम्
सर्वरत्नमयं चैकं भुवनैरुपशोभितम् ॥ ६८ ॥

उत्तरे चास्य श्रृङ्गस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे । कुरवस्तत्रतद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ॥
तत्र वृक्षा मधुफला दिव्यामृतमयापगाः । वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलैश्चाभरणानि च ।
सर्वकामप्रदातारः केचिद् वृक्षा मनोरमाः । अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः ॥
ये रक्षन्ति सदा क्षीरं षट्पञ्चामृतोपमम् ॥ ७१ ॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मा काञ्चनवालुका ।
सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निःशब्दाः पवनाः शुभाः ॥ ७२ ॥

देवलोकच्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः । शुक्लाभिजनसम्पन्नाःसर्वेते स्थिरयौवनाः
मिथुनानि प्रजायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।:तेषान्तेक्षीरिणांक्षीरं पिबन्तिह्यमृतोपमम्
एकाहाज्जायते युग्मं समञ्चैव विवर्द्धते । समं रूपं च शीलञ्च समञ्चैव म्रियन्तिवै ॥

एकैकमनुरक्ताश्च चक्रवाकमिव ध्रुवम् । अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः ॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जीवन्ति च महासत्वा न चान्या स्त्री प्रवर्त्तते ॥

सूत उवाच ।

एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते युगे । दृष्टः परमधर्मज्ञाः किम्भूयः कथयामि वः ॥
आख्यातास्त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता । उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुः सूतनन्दनम् ॥
इति श्री मत्स्यमहापुराणे द्वीपसमुद्रपर्वतानां वर्णनं नाम द्वादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥

त्रयोदशोत्तरशततमोऽध्यायः

भारतवर्षवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

यदिदं भारतंवर्ष यस्मिन् स्वायम्भुवादयः । चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्गं ससर्जिरे ॥१ ॥
एतद्वेदितुमिच्छामः सकाशात्तव सुव्रत ! उत्तरश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदतां वर ! ॥ २ ॥

एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लोमहर्षणिः ।
पौराणिकस्तदासूत ! ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ३ ॥

बुद्ध्या विचार्य्य बहुधा विमृश्य च पुनःपुनः । तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा

सूत उवाच ।

अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः । भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते ॥
निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् । यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौकर्मविधिः स्मृतः । भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निबोधत
इन्द्रद्वीपः केसरश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्योगन्धर्वस्त्वथवारुणः
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः । योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः । तिर्यगूर्ध्वन्तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ॥

द्वीपोह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः। यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुतवणिज्यादि वर्तयन्तो व्यवस्थिताः॥ १२॥

तेषां सव्यवहारोऽयं वर्तनन्तु परस्परम्। धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानान्तु स्वकर्मसु॥

सङ्कल्पपञ्चमानान्तु आश्रमाणां यथाविधि। इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे॥१४

यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्त्तितः।
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्त्तितः॥ १५॥
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितां स्मृतः।
स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात्॥ १६॥
सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुताः कुलपर्वताः।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान् ऋक्षवानपि॥१७॥

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः। तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपतः॥

अभिज्ञातस्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्र सानवः। अन्येतेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः

तैर्विमिश्रा जानपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः।
पिवन्ति वहुला नद्यो गङ्गासिन्धुः सरस्वती॥२०॥

शतद्रूश्चन्द्रभागा च यमुना सरयू तथा। ऐरावती वितस्ता च विशाला देविका कुहूः

गोमती धौतपापा च वाहुदा च दृषद्वती। कौशिकी तु तृतीयाचनिश्चलागण्डकी तथा

इक्षुर्लौहितमित्येता हिमवत्पार्श्वनिःसृताः॥२२॥

वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च। पर्णाशा नर्मदा चैव कावेरी महती तथा॥२३

पारा च धन्वतीरूपा विदुषावेणुमत्यपि। शिप्राह्यवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिताःस्मृताः

मन्दाकिनीदशार्णा च चित्रकूटा तथैव च। तमसापिप्पलीश्येनी तथा चित्रोत्पलापि च

विमला चञ्चलाचैव तथा च धूतवाहिनी। शुक्तिमन्ती शुनी लज्जामुकुटाह्रदिकापि च॥

ऋष्यवन्तप्रसूतास्तानथामलजलाः शुभाः॥ २६॥

तापीपयोष्णी निर्विन्ध्याक्षिप्रा च ऋषभा नदी। वेणा वैतरणी चैव विश्वमालाकुमुद्वती

तोया चैव महागौरीदुर्गमातुशिला तथा । विन्ध्यपादप्रसूतास्ताः सर्वाःशीतजलाःशुभाः
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी च वञ्जुला । तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा बाह्याकावेरी चैव तु
दक्षिणापथनद्यस्ताः सह्यपादाद्विनिःसृताः ॥ २६ ॥
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा ह्युत्पलावती । मलयप्रसूता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः॥
त्रिभागा ऋषिकुल्या च इक्षुदा त्रिदिवाचला । ताम्रपर्णी तथा मूली शरवाविमला तथा
महेन्द्रतनयाः सर्वाः प्रख्याताः शुभगामिनीः ॥ ३१ ॥
काशिकासुकुमारी च मन्दगामन्दवाहिनी । कृपा च पाशिनीचैव शुक्तिमन्तात्मजास्तुताः
सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वगाश्च समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः ॥ ३३ ॥
तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥ ३४ ॥
शूरसेना भद्रकारा बाह्याः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥ ३५ ॥
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह । मध्यदेशाजनपदाःप्रायशः परिकीर्त्तिताः
सह्यस्यानन्तरे चैते तत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः । रामप्रियार्थं स्वर्गीयावृक्षादिव्यास्तथौषधीः
भरद्वाजेन मुनिना प्रियार्थमवतारिताः । ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥३९॥
बाल्हीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
पुरन्ध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः ॥ ४० ॥
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः । शका द्रुह्याःपुलिन्दाश्चपारदाहारमूर्त्तिकाः
रामठाःकण्टकाराश्च कैकेया दशनामकाः । क्षत्रियोपनिवेश्याश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च
अत्रयोऽथ भरद्वाजाः प्रस्थलाः सदसेरकाः ।
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः ॥
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोधतः ॥ ४३ ॥

अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिबहिर्गिरी । सुह्मोत्तराः प्रविजयाः मार्गवागेयमालवाः ॥

प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।

शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥ ४५ ॥

तेषां परे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।

पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च ॥ ४६ ॥

सेतुकाःसूतिकाश्चैव कुपथावाजिवासिकाः । नवराष्ट्रामाहिषिकाःकलिङ्गाश्चैवसर्वशः कारूषाश्चसहैषीका आटव्याःशवरास्तथा । पुलिन्दाविन्ध्यपुषिका वैदर्भा दण्डकैःसह कुलीयाश्च सिरालाश्च रूपसास्तापसैःसह । तथातैत्तिरिकाश्चैव सर्वे कारस्करास्तथा। वासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्म्मदाः । भारुकच्छाःसमाहेयाःसह सारस्वतैस्तथा काच्छीकाश्चैवसौराष्ट्रा आनर्ताअर्बुदैःसह । इत्येतेअपरान्तांस्तुशृणु ये विन्ध्यवासिनः मालवाश्चकरूषाश्चमेकलाश्चोत्कलैःसह। औण्ड्रामाषादशार्णाश्चभोजाःकिष्किन्धकैः सह स्तोशलाःकोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा । तुमुरास्तुम्बराश्चैव पद्गमा नैषधैः सह अरूपाःशौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तयः । एते जनपदाःख्यातविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये । निराहाराः सर्वगाश्चकुपथा अपथास्तथा॥ कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्वा समुद्गकाः । त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरैः सह ॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन् ।

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥

तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च कृत्स्नशः ॥ ५७ ॥

मत्स्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वातु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते । शुश्रूषवस्तमूचुस्ते प्रकामं लौमहर्षणिम् ॥५८॥

ऋषय ऊचुः ।

यच्च किम्पुरुषंवर्षं हरिवर्षं तथैव च । आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वया ॥ जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषांविदाम्वर !। द्वीपानां वासिनांतेषांवृक्षाणां प्रब्रवीहि नः पृष्टस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः । उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं यथा ६१

सूत उवाच ।

शुश्रूषवस्तु यद्विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः । जम्बूवर्षःकिंपुरुषः सुमहान्नन्दनोपमः ॥६२॥
दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता । जायन्ते मानवास्तत्र सुतप्तकनकप्रभाः ॥
वर्षे किंपुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः । तस्य किंपुरुषाः सर्वे पिवन्तो रसमुत्तमम् ॥
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः । सुवर्णवर्णाश्चनराः स्त्रियश्चाप्सरसःस्मृताः
ततः परं किम्पुरुषात् हरिवर्षं प्रचक्षते । महारजतसङ्काशा जायन्ते यत्र मानवाः ॥६६॥
देवलोकच्युताः सर्वे वहुरूपाश्च सर्वशः । हरिवर्षे नराः सर्वे पिवन्तीक्षुरसं शुभम् ६७
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम् । एकादशसहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम्
मध्यमं तन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम् । न तत्र सूर्यस्तपति नच जीवन्ति मानवाः॥
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते । पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥७०॥
पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः । जम्बूफलरसाहाराःअनिष्पन्दाः सुगन्धिनः
देवलोकच्युताः सर्वे महारजतवाससः । त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणान्ते नरोत्तमाः॥७२॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षइलावृते । मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा ॥
सुदर्शनो नाम महान् जम्बूवृक्षः सनातनः । नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः । योजनानांसहस्रञ्च शतधाचमहान्पुनः
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति । तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति ॥
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः । तं पिवन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते॥७७

जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान् ।
न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखञ्च तथाविधम् ॥ ७८ ॥

तत्र जाबूनदं नाम कनकं देवभूषणम् । इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भासुरञ्च यत् ॥७६ ॥
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः । स्कन्नन्तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम् ॥
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः । ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृ तांश्च ग्रसतेतु तान्॥
रक्षः पिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते । हेमकूटेतु विज्ञेया गन्धर्वाःसाप्सरोगणाः
सर्वेनागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः । महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाःशुभाः

नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धाब्रह्मर्षयोऽवसन् । दैत्यानां दानवानाञ्च श्वेतः पर्वत उच्यते
शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठः पितृणां प्रतिसञ्चरः । इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते ॥
भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च । तेषां बुद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः ॥
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया च विभूषता ॥ ८६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नानावर्षाणास्वर्णनं नाम त्रयोदशोत्तरशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशोत्तरशततमोऽध्यायः

पुरूरवसः पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

चरितं बुधपुत्रस्य जनार्दन ! मया श्रुतम् । श्रुतः श्राद्धविधिः पुण्यः सर्वपापप्रणाशनः ॥
धेन्वाः प्रसूतमानायाः फलं दानस्य मे श्रुतम् । कृष्णाजिनप्रदानञ्च वृषोत्सर्गस्तथैव च
श्रुत्वा रूपं नरेन्द्रस्य बुधपुत्रस्य केशव ! । कौतूहलं समुत्पन्नं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥
केन कर्म्मविपाकेन स तु राजा पुरूरवाः । अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम् ॥
देवांस्त्रिभुवनश्रेष्ठान् गन्धर्वांश्च मनोरमान् । उर्वशीसङ्गता त्यक्त्वा सर्वभावेन तं नृपम्

मत्स्य उवाच ।

शृणु कर्म्मविपाकेन येन राजा पुरूरवाः । अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम् ॥
अतीते जन्मनि पुरा योऽयं राजा पुरूरवाः । पुरूरवा इति ख्यातो मद्रदेशाधिपोहि सः
चाक्षुषस्यान्वये राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । स वै नृपगुणैर्युक्तः केवलं रूपवर्जितः ॥

ऋषय ऊचुः ।

पुरूरवा मद्रपतिः कर्म्मणा केन पार्थिवः । बभूव कर्म्मणा केन रूपवांश्चैव सूतज ! ॥ ६ ॥

सूत उवाच ।

द्विजग्रामे द्विजश्रेष्ठो नामनासीत् पुरूरवाः । तदा मूले महाराजः पूर्वजन्मनिपार्थिवः

स तु मद्रपती राजायस्तुनाम्ना पुरूरवाः। तस्मिन् जन्मन्यसौ विप्रो द्वादश्यान्तुसदानघ!
उपोष्य पूजयामास राज्यकामो जनार्दनम् । चकार सोपवासश्च स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
उपवासफलात्प्राप्तं राज्यं मद्रेशकण्टकम् । उपोषितस्तथाभ्यङ्गाद्रूपहीनो व्यजायत ॥
उपोषितैर्नरैस्तस्मात् स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप !॥१४॥
एतद्वः कथितं सर्वं यद्वृत्तं पूर्वजन्मनि । मद्रेश्वरस्यचरितं श‍ृणु तस्य महीपतेः ॥ १५॥
तस्य राजगुणैः सर्वैः समुपेतस्य भूपतेः । जनानुरागो नैवासीद्रूपहीनस्य तस्य वै ॥
रूपकामः स मद्रेशस्तपसे कृतनिश्चयः । राज्यं मन्त्रिगतं कृत्वा जगाम हिमपर्वतम् ॥
व्यवसायद्वितीयस्तु पद्भ्यामेव महायशाः । द्रष्टुं स तीर्थसदनं विषयान्ते स्वके नदीम् ॥

ऐरावतीति विख्यातान्ददर्शातिमनोरमाम् ॥ १८ ॥
तुहिनगिरिमहौघवेगान्तुहिनगभस्तिसमानशीतलोदाम् ।
तुहिनसदृशहैमवर्णपुञ्जान्तुहिनयशाः सरितन्ददर्श राजा ॥ १९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पुरूरवसःपूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनं नाम चतुर्दशोत्तरशततमोऽध्यायः ।

पंञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः

हैमवतीनदीमाहात्म्यवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

स ददर्शनदीं पुण्यांदिव्यांहैमवतीं शुभाम् । गन्धर्वैश्च समाकीर्णां नित्यंशक्रेणसेविताम्
सुरेभमदसंसिक्तां समन्तात्तु विराजिताम् । मध्येन शक्रचापाभां तस्मिन्नहनि सर्वदा ॥
तपस्विशरणोपेतां महाब्राह्मणसेविताम् । ददर्श तपनीयाभां महाराजः पुरूरवाः ॥ ३ ॥
सितहंसावलिच्छन्नाङ्काशचामरराजिताम् । साभिषिक्तामिव सतां पश्यन्प्रीतिं परांययौ
पुण्यां सुशीतलां हृद्यांमनसः प्रतिवर्द्धिनीम् । क्षयवृद्धियुतां रम्यां सोममूर्त्तिमिवापराम्
सुशीतशीघ्रपानीयां द्विजसङ्घनिषेविताम् । सुतां हिमवतः श्रेष्ठां चञ्चद्वीचिविराजिताम्
अमृतस्वादुसलिलान्तापसैरुपशोभिताम् । स्वर्गारोहणनिःश्रेणीं सर्वकल्मषनाशिनीम् ॥

अग्र्यां समुद्रमहिषीं महर्षिगणसेविताम् । सर्वलोकस्य चौत्सुक्यकारिणीं सुमनोहराम् ॥
हितांसर्वस्यलोकस्यनाकमार्गप्रदायिकाम् । गोकुलाकुलतीरान्तां रम्यां शैवालवर्जिताम् ॥
हंससारससंघुष्टां जलजैरुपशोभिताम् । आवर्तनाभिगम्भीरां द्वीपोरुजघनस्थलीम् ॥१०
नीलनीरजनेत्राभां उत्फुल्लकमलाननाम् । हिमाभफेनवसनाञ्चक्रवाकाधरां शुभाम् ॥
बलाकापङ्क्तिदशनाञ्चलन्मत्स्यावलिभ्रुवम् ॥ ११ ॥
स्वजलोद्भूतमातङ्गरम्यकुम्भपयोधराम् । हंसनूपुरसंघुष्टां मृणालवलयावलीम् ॥ १२ ॥
तस्यां रूपमहोन्मत्तागन्धर्वानुगताः सदा । मध्याह्नसमये राजन्! क्रीडन्त्यप्सरसाङ्गणाः
तामप्सरोविनिर्मुक्तं वहन्तीं कुङ्कुमं शुभम् । स्वतीरद्रुमसम्भूतनानावर्णसुगन्धिनीम् ॥
तरङ्गव्रातसंक्रान्तसूर्य्यमण्डलदुर्द्दशम् । सुरेभजनिताघातविकूलद्वयभूषिताम् ॥ १५ ॥
शक्रेभगण्डसलिलैर्देवस्त्रीकुलचन्दनैः । संयुतं सलिलं तस्याः षट्पदैरुपसेव्यते ॥ १६ ॥
तस्यास्तीरभवा वृक्षाः सुगन्धकुसुमाञ्चिताः । तथापकृष्टसम्भ्रान्तभ्रमरस्तनिताकुलाः ॥
यस्यास्तीरे रतिं यान्तिसदाकामवशा मृगाः । तपोधनाश्च ऋषयस्तथा देवाःसहाप्सराः
लभन्ते यत्र पूताङ्गा देवेभ्यः प्रतिमानिताः । स्त्रियश्च नाकबहुलाः पद्मेन्दुप्रतिमाननाः
या विभर्ति सदा तोयं देवसंघैरपीड़ितम् । पुलिन्दैर्नृपसङ्घैश्च व्याघ्रवृन्दैरपीड़ितम् ॥
सतामरसपानीयां सतारगगनामलाम् । सतां पश्यन् ययौ राजा सतामीप्सितकामदाम्
यस्यास्तीररुहैः काशैः पूर्णैश्चन्द्रांशुसन्निभैः । राजते विविधाकारैः रम्यं तीरं महाद्रुमैः
या सदा विविधैर्विप्रैर्देवैश्चापि निषेव्यते ॥ २२ ॥
या च सदा सकलौघविनाशं भक्तजनस्य करोत्यचिरेण ।
यानुगता सरितां हि कदम्बैर्यानुगता सततं हि मुनीन्द्रैः ॥ २३ ॥
या हि सुतानिव पाति मनुष्यान् या च युता सततं हिमसंघैः ।
या च युता सततं सुरवृन्दैर्या च जनैः स्वहिताय श्रिता वै ॥ २४ ॥
युक्ता च केसरिगणैः करिवृन्दजुष्टा सन्तानयुक्तसलिलापि सुवर्णयुक्ता ।
सूर्यांशुतापपरिवृद्धिविवृद्धशीता शीतांशुतुल्ययशसा ददृशे नृपेण ॥ २५ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे महेश्वरस्य ऐरावतीदर्शनं नाम पञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ।

षोड़शोत्तरशततमोऽध्यायः

हिमवद्वर्णनम् ।

सूत उवाच ।

आलोकयन्नदीं पुण्यान्तत्समीपहृतश्रमः । स गच्छन्नेव दहशे हिमवन्तं महागिरिम् ।१
खमुल्लिङ्गिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गैस्तु पाण्डुरैः । पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभम् ॥२
नदीप्रवाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः । असंश्रुतान्यशब्दन्तं शीततोयं मनोरमम् ॥ ३ ॥
देवदारुवनैर्नीलैः कृताधोवसनं शुभम् । मेघोत्तरीयकं शैलं ददृशे स नराधिपः ॥ ४ ॥
श्वेतमेघकृतोष्णीषं चन्द्रार्कमुकुटं क्वचित् । हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद्धातुविमिश्रितम् ॥
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा । शीतप्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कटम् ॥

सालक्तकैरप्सरसां मुद्रितं चरणैः क्वचित् ॥ ६ ॥

क्वचित्संपृष्टसूर्यांशुं क्वचिच्च तमसावृतम् । दरीमुखैः क्वचिद्भीमैः पिबन्तं सलिलं महत्
क्वचिद्विद्याधरगणैः क्रीड़द्भिरुपशोभितम् । उपगीतं तथा मुख्यैः किन्नराणाङ्गणैःक्वचित्

आपानभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित् ।
पुष्पैः सन्तानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम् ॥ ६ ॥
सुप्तोत्थिताभिः शय्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित् ।
मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम् ॥ १० ॥

निरुद्धपवनैर्देशैर्नीलशाद्वलमण्डितैः । क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम् ॥ ११॥
तपस्विशरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम् । मृगैर्यथानुचरितन्दन्तिभिन्नमहाद्रुमम् ॥१२॥
यत्र सिंहनिनादेन त्रस्तानां भैरवं रवम् । दृश्यते न च संभ्रान्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥
तटाश्च तापसैर्यत्र कुञ्जदेशैरलङ्कृताः । रत्नैर्यस्यसमुत्पन्नैस्त्रैलोक्यंसमलङ्कृतम् ॥१४
अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम् । अहीनः पश्यति गिरिं महीनं रत्नसम्पदा ॥१५॥
अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्मषनाशनम्

महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभिः । वायुनीतैः सदा तृप्तिकृतदेशं क्वचित् क्वचित् ॥
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितैः । नित्यर्कतापविषमैरगम्यैर्मनसा युतम् ॥
देवदारुमहावृक्षव्रजशाखानिरन्तरैः । वंशस्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरुपशोभितम् ॥ १९ ॥
हिमच्छत्रमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्झरम् । शब्दलभ्याम्बुविषमं हिमसंरुद्धकन्दरम् ॥२०॥

दृष्ट्वैव तं चारुनितम्बभूमिं महानुभावः स तु मद्रनाथः ।
बभ्राम तत्रैव मुदा समेतस्थानं तदा किञ्चिदथाससाद ॥ २१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मद्रराजस्यहिमवद्गमनं नाम षोड़शोत्तरशततमोऽध्यायः ।

सप्तदशोत्तरशततमोऽध्यायः

हिमवत्प्रदेशवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

तस्यैव पर्वतेन्द्रस्य प्रदेशं सुमनोरमम् । अगम्यं मानुषैरन्यैर्दैवयोगादुपागतः ॥ १ ॥
ऐरावती सरिच्छ्रेष्ठा यस्माद्देशाद्विनिर्गता । मेघश्यामञ्च तं देशन्द्रुमखण्डैरनेकशः ॥२॥
शालैस्तालैस्तमालैश्चकर्णिकारैःसशामलैः । न्यग्रोधैश्चतथाश्वत्थैः शिरीषैःशिंशपाद्रुमैः
महानिम्बैस्तथा निम्बैर्निगुण्डीभिर्हरिद्रुमैः । देवदारुमहावृक्षैस्तथा कालेयकद्रुमैः ॥४॥
पद्मकैश्चन्दनैर्बिल्वैः कपित्थैः रक्तचन्दनैः । वाताम्रारिष्टकाक्षोटैरब्दकैश्च तथार्जुनैः ॥५॥
हस्तिकर्णैः सुमनसैः कोविदारैः सुपुष्पितैः । प्राचीनामलकैश्चापि धनकैः समराटकैः ॥
खर्जूरैर्नारिकेलैश्च प्रियालवाम्रातकेङ्गुदैः । तन्तुमालैर्धवैर्भव्यैः काश्मीरीपर्णिभिस्तथा ॥७

जातीफलैः पूगफलैः कट्फलैलावलीफलैः ।
मन्दारैः कोविदारैश्च किंशुकैः कुसुमांशुकैः ॥ ८ ॥

यवासैः शमिपर्णासैर्वेतसैरम्बुवेतसैः । रक्तातिरङ्गनारङ्गैर्हिङ्गुभिः सप्रियङ्गुभिः ॥ ९ ॥
रक्ताशोकैस्तथाशोकैराकल्लैरविचारकैः । मुचकुन्दैस्तथा कुन्दैराटरूषपरूषकैः ॥१० ॥
किरातैः किङ्किरातैश्च केतकैः श्वेतकेतकैः । सौभाञ्जनैरञ्जनैश्च सुकालिङ्गनिकोटकैः ॥

सुवर्णचारुवसनैर्द्रुमश्रेष्ठैस्तथासनैः । मन्मथस्य शराकारैः सहकारैर्मनोरमैः ॥ १२ ॥
पीतयूथिकया चैव श्वेतयूथिकया तथा । जात्या चम्पकजात्या च तुम्बरैश्चाप्यतुम्बरैः ।
मोचैर्लोचैस्तु लकुचैस्तिलपुष्पकुशेशयैः । तथा सुपुष्पावरणैः चव्यकैः कामिवल्लभैः ॥
पुष्पाङ्कुरैश्च वकुलैः पारिभद्रहरिद्रकैः । धाराकदम्बैः कुटजैः कदम्बैर्गिरिकूटजैः ॥१५ ॥
आदित्यमुस्तकैः कुम्भैः कुङ्कुमैः कामवल्लभैः । कट्फलैर्वदरैर्नीपैर्दीपैरिव महोज्ज्वलैः ॥
रक्तैः पालीवनैः श्वेतैर्दाडिमैश्चम्पकद्रुमैः । बन्धूकैश्च सुबन्धूकैः कुब्जकानान्तु जातिभिः
कुसुमैः पाटलाभिश्च मल्लिकाकरवीरकैः । कुरवकैर्हिमवरैर्जम्बुभिर्नृपजम्बुभिः ॥ १८ ॥
बीजपूरैः सकर्पूरैर्गुरुभिश्चागुरुद्रुमैः । विम्बैश्च प्रतिविम्बैश्च सन्तानकवितानकैः ॥१९॥
तथा गुग्गुलवृक्षैश्च हिन्तालधवलेक्षुभिः । तृणशून्यैः करवीरैरशोकैश्चक्रमर्दनैः ॥ २० ॥
पीलुभिर्धातकीभिश्च खिरिबिल्वैःसमाकुलैः । तिन्तिड़ीकैस्तथालोध्रैर्विडङ्गैःक्षीरिकाद्रुमैः
अश्मन्तकैस्तथा कालैर्जम्बीरैः श्वेतकद्रुमैः । भल्लातकैरिन्द्रियवैर्वल्गुजैः सिद्धिसाधकैः
करमर्दैः कासमर्दैररिष्टकवरिष्टकैः । रुद्राक्षैर्द्राक्षसम्भूतैः सप्ताह्वैः पुत्रजीवकैः ॥२३॥
कङ्कोलैर्लवङ्गैश्च त्वग्द्रुमैः पारिजातकैः । प्रतानैः पिप्पलीनाञ्च नागवल्यश्चभागशः ॥
मरीचस्य तथा गुल्मैर्नवमल्लिकया तथा । मृद्वीकामण्डपैर्मुख्यैरतिमुक्तकमण्डपैः ॥२५॥
त्रपुसैर्नर्तिकानाञ्च प्रतानैः सफलैः शुभैः । कूष्माण्डानां प्रतानैश्च अलावूनां तथाक्वचित्
चिर्भिटस्य प्रतानैश्च पटोलीकारवल्लिकैः । कर्कोटकीवितानैश्च वार्ताकैर्बृहतीफलैः ॥२७
कण्टकैर्मूलकैर्मूलशाकैस्तु विविधैस्तथा । कह्लारैश्च विदार्या चरूरुटैः स्वादुकण्टकैः ॥
सभण्डीरविदूसारराजजम्बुकवालुकैः । सुवर्चलाभिः सर्वाभिः सर्षपाभिस्तथैव च ॥

काकोलीक्षीरकाकोलीच्छत्रया चातिच्छत्रया ।
कासमर्दीसहासद्भिः शकन्दलसकाण्डकैः ॥३०॥

तथा क्षीरकशाकेन कालशाकेन चाप्यथ । शिम्बिधान्यैस्तथाधान्यै सर्वैर्निरवशेषितः ॥
औषधीभिर्विचित्राभिर्दीप्यमानाभिरेव च । आयुष्याभिर्यशस्याभिर्वल्याभिश्च नराधिप
जरामृत्युभयघ्नीभिः क्षुद्भयघ्नीभिरेव च । सौभाग्यजननीभिश्च कृत्स्नाभिश्चाप्यनेकशः
तत्र वेणुलताभिश्च तथा कीचकवेणुभिः । काशैः शशाङ्ककाशैश्च शरगुल्मैस्तथैव च ॥

कुशगुल्मैस्तथा रम्यैर्गुल्मैश्चेक्षोर्मनोरमैः । कार्पासजातिवर्गेण दुर्लभेन शुभेन च ॥३५॥
तथा च कदलीखण्डैर्मनोहारिभिरुत्तमैः । तथा मरकतप्रख्यैः प्रदेशैः शाद्वलान्वितैः ॥
इरापुष्पसमायुक्तैः कुङ्कुमस्य च भागशः । तगरातिविषामांसीग्रन्थकैस्तु सुरागदैः ॥

सुवर्णपुष्पैश्च तथा भूमिपुष्पैस्तथापरैः ।
जम्बीरकैर्भूस्तृणकैः सरसैः सशुकैस्तथा ॥३८॥

शृङ्गवेराजमोदाभिः कुबेरकप्रियालकैः । जलजैश्च तथा वर्णैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः ॥
उदयादित्यसङ्काशैः सूर्य्यचन्द्रनिभैस्तथा । तपनीयसवर्णैश्च अतसीपुष्पसन्निभैः ॥४०॥
शुकपत्रनिभैश्चान्यैः स्थलपत्रैश्च भागशः । पञ्चवर्णैः समाकीर्णैर्बहुवर्णैस्तथैव च ॥४१॥
द्रष्टुर्दृष्ट्या हितमुदैः कुमुदैश्चन्द्रसन्निभैः । तथा वह्निशिखाकारैर्गजवक्त्रोत्पलैः शुभैः ॥
नीलोत्पलैः सकर्पूरैर्गुञ्जातककसेरुकैः । शृङ्गाटकमृणालैश्च करटै राजतोत्पलैः ॥४३॥
जलजैः स्थलजैर्मूलैः फलैः पुष्पैर्विशेषतः । विविधैश्चैव नीवारैर्मुनिभोज्यैर्नराधिप ॥

न तद् धान्यं न तच्छस्यं न तच्छाकं न तत् फलम् ।
न तन्मूलं न तत् कन्दं न तत् पुष्पं नराधिप ॥४५॥

नागलोकोद्भवं दिव्यं नरलोकभवञ्च यत् । अनूपोत्थं वनोत्थञ्च तत्र यन्नास्ति पार्थिव
सदा पुष्पफलं सर्वमजर्यमृतुयोगतः । मद्रेश्वरः स ददृशे तपसा ह्यतियोगतः ॥४७॥
ददृशे च तथा तत्र नानारूपान् पतत्त्रिणः । मयूरान् शतपत्रांश्चकलविङ्कांश्च कोकिलान्

तदा कादम्बकान् हंसान् कोयष्टीन् खञ्जरीटकान् ।
कुररान् कालकूटांश्च खट्वाङ्गान् लुब्धकांस्तथा ॥४६॥
गोक्ष्वेडकान् तथा कुम्भान् धार्तराष्ट्रान् शुकान् बकान् ।
धातुकांश्चक्रवाकांश्च कटुकान् टिट्टिभान् भटान् ॥५०॥

पुत्रप्रियान् लोहपृष्ठान्गोचर्मगिरिवर्तकान् । पारावतांश्चकमलान्सारिकाजीवजीवकान्

लाववर्तकवार्ताकान् रक्तवर्त्म प्रभद्रकान् ।
ताम्रचूडान् स्वर्णचूडान् कुक्कुटान् काष्ठकुक्कुटान् ॥५२॥
कपिञ्जलान् कलविङ्कान् तथा कुङ्कुमचूडकान् ।

भृङ्गराजान् सीरपादान् भुलिङ्गान् डिण्डिमान् नवान् ॥५३॥

मञ्जुलीतकदात्यूहान्भारद्वाजांस्तथाचषान् । एतांश्चान्यांश्चसुबहून्पक्षिसङ्घान्मनोहरान्

श्वापदान् विविधाकारान् मृगांश्चैव महामृगान् ।
व्याघ्रान् केसरिणः सिंहान् द्वीपिनः शरभान् वृकान् ॥ ५५ ॥

ऋक्षांस्तरक्षूंश्च बहून् गोलाङ्गूलान् सवानरान् ।
शशलोमान् सकादम्बान् मार्जारान् वायुवेगिनः ॥५६॥

तथा मत्तांश्च मातङ्गान् महिषान् गवयान् वृषान् ।
चमरान् सृमरांश्चैव तथा गौरखरानपि ॥५७॥

उरभ्रांश्च तथा मेषान् सारङ्गानथ कूकुरान् ।
नीलांश्चैव महानीलान् करालान् मृगमातृकान् ॥५८॥

सदंष्ट्रा रामसरभान्कौञ्चाकारकशम्बरान् । करालान्कृतमालांश्चकालपुच्छांश्चतोरणान्
दंष्ट्रान् खड्गान् वराहांश्चतुरङ्गान् खरगर्दभान् । एतानद्विष्टान् मद्रेशोविरुद्धांश्च परस्परम्
अविरुद्धान् वने दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ । तच्चाश्रमपदं पुण्यं बभूवात्रेः पुरा नृप ।
तत्प्रसादात् प्रभायुक्तं स्थावरैर्जङ्गमैस्तथा । हिंसन्ति हि नचान्योन्यंहिंसकास्तुपरस्परम्
क्रव्यादाः प्राणिनस्तत्र सर्वेक्षीरफलाशनाः । निर्मितास्तत्र चात्यर्थमत्रिणा सुमहात्मना
शैलान् नितम्बदेशेषु न्यवसच्च स्वयं नृपः । पयः रक्षन्ति ते दिव्यममृतस्वादुकण्टकम्
क्वचिद्राजन् ! महिष्यश्चक्वचिदाजाश्चसर्वशः । शिलाःक्षीरेणसंपूर्णादध्नाचान्यत्रवांवहिः
सम्पश्यन् परमां प्रीतिमवाप वसुधाधिपः । सरांसि तत्रदिव्यानिनद्यश्चविमलोदकाः

प्रणालिकानि चोष्णानि शीतलानि च भागशः ।
कन्दराणि च शैलस्य सुसेव्यानि पदे पदे ॥६७॥

हिमपातो न तत्रास्ति समन्तात् पञ्च योजनम् ।
उपत्यका सुशैलस्य शिखरस्य न विद्यते ॥६८॥

तत्रास्ति राजन् ! शिखरं पर्वतेन्द्रस्य पाण्डुरम् । हिमपातङ्गनायत्र कुर्वन्तिसहिताःसदा
तत्रास्ति चापरं शृङ्गं यत्र तोयघनाघनाः । नित्यमेवाभिवर्षन्ति शिलाभिःशिखरं वरम्

तदाश्रमं मनोहारि यत्र कामधरा धरा।
सुरमुख्योपयोगित्वात् शाखिनां सफलाः फलाः ॥७१॥
सदोपगीतभ्रमरं सुरस्त्रीसेवितं परम्। सर्वपापक्षयकरं शैलस्येव प्रहारकम् ॥७२॥
वानरैः क्रीडमानैश्च देशाद्देशान्नराधिप। हिमपुञ्जाः कृतास्तत्र चन्द्रबिम्बसमप्रभाः॥
तदाश्रमं समन्ताच्च हिमसंरुद्धकन्दरैः। शैलवाटैः परिवृतमगस्त्यमनुजैः सदा ॥७४॥
पूर्वाराधितभावोऽसौ महाराजः पुरूरवाः। तदाश्रमपदं प्राप्तो देवदेवप्रसादतः ॥७५॥
तदाश्रमं श्रमशमनं मनोहरं मनोहरैः कुसुमशतैरलङ्कृतम्।
कृतं स्वयं रुचिरमथात्रिणा शुभं शुभावहं हि ददृशे स मद्रराट् ॥७६॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे मद्रेश्वरस्यात्रेराश्रमगमनं नाम सप्तदशोत्तरशततमोऽध्यायः।

अष्टादशोत्तरशततमोऽध्यायः

हिमवत्प्रदेशवर्णनम्।

सूत उवाच।

तत्र यौ तौ महाशृङ्गौ महावर्णौ महाहिमौ। तृतीयन्तु तयोर्मध्ये शृङ्गमत्यन्तमुच्छ्रितम्
नित्यातप्तशिलाजालं सदाभ्रपरिवर्जितम्। तस्याधस्ताद्वृक्षगणो दिशा भागेचपश्चिमे
जातीलतापरिक्षिप्तं विवरं चारुदर्शनम्। दृष्ट्वैव कौतुकाविष्टस्तं विवेश महीपतिः॥३॥
तमसा चातिनिविडं नल्वमात्रं सुसङ्कटम्। नल्वमात्रमतिक्रम्य स्वप्रभाभरणोज्ज्वलम्
तमुच्छ्रितमथात्यन्तं गम्भीरं परिवर्तुलम्। न तत्र सूर्य्यस्तपति न विराजति चन्द्रमाः
तथापि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्निशम्। क्रोशाधिकपरीमाणं सरसाच विराजितम्॥
समन्तात्सरसस्तस्य शैललग्ना तु वेदिका। सौवर्णै राजतैर्वृक्षैर्विद्रुमैरुपशोभितम्॥
नानामाणिक्यकुसुमैः सुप्रभाभरणोज्ज्वलैः। तस्मिन् सरसि पद्मानिपद्मरागच्छदानितु
वज्रकेसरजालानि सुगन्धीनि तथा युतम्। पत्रैर्मरकतैर्नीलवैदूर्य्यस्य महीपते ॥ ६ ॥

कर्णिकाश्च तथा तेषां जातरूपस्य पार्थिव ।
तस्मिन् सरसि या भूमिर्न सा वज्रसमाकुला ॥१०॥
नानारत्नैरुपचिता जलजानां समाश्रया । कपर्दिकानां शुक्तीनां शङ्खानाञ्च महीपते !॥११
मकराणाञ्च मत्स्यानां चण्डानां कच्छपैः सह ।
तत्र मरकतखण्डानि वज्राणाञ्च सहस्रशः ॥१२॥
पद्मरागेन्द्रनीलानि महानीलानि पार्थिव ।
पुष्परागाणि सर्वाणि तथा कर्कोटकानि च ॥१३॥
तुत्थकस्य तु खण्डानि तथाशेषस्यभागशः । राजावर्तस्यमुख्यस्यरुचिराक्षस्यचाप्यथ
सूर्य्येन्दुकान्तयश्चैव नीलो वर्णान्तिमश्च यः ।
ज्योतीरसस्य रम्यस्य स्यमन्तस्य च भागशः ॥१५॥
सुरोरगवलक्षाणां स्फटिकस्य तथैव च । गोमेदपित्तकानाञ्च धूलीमरकतस्य च ।
वैदूर्यसौगन्धिकयस्तथा राजमणेर्नृप । वज्रस्यैव च मुख्यस्य तथा ब्रह्ममणेरपि ।
मुक्ताफलानि मुक्तानान्ताराविग्रहधारिणाम् ॥१८॥
सुखोष्णश्चैव तत्तोयं स्नानाच्छीतविनाशनम् । वैदूर्यस्य शिलामध्ये सरसस्तस्य शोभना
प्रमाणेन तथा सा च द्वे च राजन् ! धनुःशते ।
चतुरस्रा तथा रम्या तपसा निर्मिताऽत्रिणा ॥ २० ॥
बिलद्वारसमो देशो यत्र तत्र हिरण्मयः ।
प्रदेशः स तु राजेन्द्र ! द्वीपे तस्मिन् मनोहरे ॥२१॥
तथा पुष्करिणी रम्या तस्मिन् राजन् ! शिलातले ।
सुशीतामलपानीया जलजैश्च विराजिता ॥२२॥
आकाशप्रतिमा राजन् ! चतुरस्रा मनोहरा । तस्यास्तदुदकं स्वादुलघुशीतंसुगन्धिकम्
न क्षिणोति यथा कण्ठं कुक्षिन्नापूरत्यपि । तृप्तिं विधत्ते परमां शरीरे च महत् सुखम्
मध्ये तु तस्याः प्रासादं निर्मितं तपसात्रिणा । रुक्मसेतुप्रवेशान्तं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥
शशाङ्करश्मेः सङ्काशं प्रासादं राजितं हितम् । रम्यवैदूर्यसोपानं विद्रुमामलसारकम् ॥

इन्द्रनीलमहास्तम्भं मरकतासक्तवेदिकम् । वज्रांशुजालैः स्फुरितं रम्यं दृष्टिमनोरमम् ॥
प्रासादे तत्र भगवान् देवदेवो जनार्दनः । भोगिभोगावलीसुप्तः सर्वालङ्कारभूषितः ।२८
जान्वाचकुञ्चितस्त्वेकोदेवदेवस्यचक्रिणः । फणीन्द्रसन्निविष्टोऽङ्घ्रिर्द्वितीयश्चतथानघ
लक्ष्म्युत्सङ्गतोऽङ्घ्रिस्तु शेषभोगप्रशायिनः । फणीन्द्रभोगसन्यस्तबाहुः केयूरभूषणः
अङ्गुलीपृष्ठविन्यस्तदेवशीर्षधरम्भुजम् । एकं वै देवदेवस्य द्वितीयन्तु प्रसारितम् ॥३१

समाकुञ्चितजानुस्थमणिवन्धेन शोभितम् ।
किञ्चिदाकुञ्चितं चैव नाभिदेशकरस्थितम् ॥३२॥

तृतीयन्तु भुजं तस्य चतुर्थन्तु तथा शृणु । आत्तसन्तानकुसुमं घ्राणदेशानुसर्पिणम् ॥
लक्ष्म्या संवाह्यमानाङ्घ्रिः पद्मपत्रनिभैः करैः । सन्तानमालामुकुटं हारकेयूरभूषितम् ॥
भूषितञ्च तथा देवमङ्गदैरङ्गुलीयकैः । फणीन्द्रफणविन्यस्तचारुरत्नशिरोज्ज्वलम् ॥३५॥
अज्ञातवस्तुचरितं प्रतिष्ठितमथात्रिणा । सिद्धानुपूज्यं सततं सन्तानकुसुमार्चितम् ॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यधूपेन धूपितम् । सुरसैः सुफलैर्हृद्यैः सिद्धैरुपहृतैःसदा ॥
शोभितोत्तमपार्श्वन्तं देवमुत्पलशीर्षकम् । ततः सन्मुखमुद्वीक्ष्य ववन्दे स नराधिपः

जानुभ्यां शिरसा चैव गत्वा भूमिं यथाविधि ।
नाम्नां सहस्रेण तदा तुष्टाव मधुसूदनम् ॥३६॥

प्रदक्षिणमथो चक्रे स तूत्थाय पुनः पुनः । रम्यमायतनं दृष्ट्वा तत्रोवासाश्रमे पुनः ॥४०
जलाद्वहिर्गुहां काञ्चिदाश्रित्य सुमनोहराम् । तपश्चकार तत्रैव पूजयन्मधुसूदनम् ॥
नानाविधैस्तथा पुष्पैः फलमूलैः सगोरसैः । नित्यं त्रिषवणस्नायी वह्निपूजापरायणः ॥
देववापीजलैः कुर्वन् सततं प्राणधारणम् । सर्वाहारपरित्यागं कृत्वा तु मनुजेश्वरः ॥
अनास्तृतगुहाशायी कालं नयति पार्थिवः । त्यक्ताहारक्रियश्चैव केवलं तोयतो नृपः ॥

न तस्य ग्लानिमायाति शरीरञ्च तदद्भुतम् ।
एवं स राजा तपसि प्रसक्तः संपूजयन् देववरं सदैव ।
तत्राश्रमे कालमुवास कञ्चित् स्वर्गोपमे दुःखमविन्दमानः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मत्स्येश्वरतपश्चर्यावर्णनं नामाष्टादशोत्तरशततमोऽध्यायः ।

ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मद्रेश्वरस्य क्रीडाविहारवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

स त्वाश्रमपदे रम्ये त्यक्ताहारपरिच्छदः । क्रीडाविहारं गन्धर्वैः पश्यत्यप्सरसां सह ॥

कृत्वा पुष्पोच्चयं भूरि ग्रथयित्वा तथा स्रजः । अग्रं निवेद्य देवाय गन्धर्वेभ्यस्तदा ददौ

पुष्पोच्चयप्रसक्तानां क्रीडन्तीनां यथा सुखम् ।

चेष्टा नानाविधाकाराः पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ३ ॥

काचित् पुष्पोच्चयेसक्तालताजालेनवेष्टिता । सखीजनेनसन्त्यक्ताकान्तेनाभिसमुज्झिता

काचित्कमलगन्धाभा निश्वासपवनाहृतैः । मधुपैराकुलमुखी कान्तेन परिमोचिता ॥

मकरन्दसमाक्रान्तनयना काचिदङ्गना । कान्तनिश्वासवातेन नीरजस्ककृतेक्षणा ॥ ६ ॥

काचिदुच्चीय पुष्पाणि ददौ कान्तस्य भामिनी ।

कान्तसंग्रथितैः पुष्पै रराज कृतशेखरा ॥ ७ ॥

उच्चीयस्वयमुद्ग्रथ्य कान्तेन कृतशेखरा । कृतकृत्यमिवात्मानं मेने मन्मथवर्धिनी ॥८॥

अस्त्यस्मिनाहने कुञ्जे विशिष्टकुसुमा लता । काचिदेवं रहो नीता रमणेन रिरंसुना॥९॥

कान्तसन्नामितलता कुसुमानि विचिन्वती । सर्वाभ्यःकाचिदात्मानंमेनेसर्वगुणाधिकम्

काश्चित् पश्यन्तिभूपालंनलिनीषु पृथक्पृथक् । क्रीडमानास्तुगन्धर्वैरममाणामनोरमाः

काचिदाताडयत्कान्तमुदकेन शुचिस्मिता ।

ताड्यमानाथ कान्तेन प्रीतिं काचिदुपाययौ ॥ १२ ॥

कान्तश्च ताडयामास जातखेदा वराङ्गना । अदृश्यत वरारोहा श्वासनृत्यत्पयोधरा ॥

कान्ताम्बुताडनोद्घृष्टकेशपाशनिबन्धना । केशाकुलमुखी भाति मधुपैरिव पद्मिनी ।१४।

स्वचक्षुःसदृशैः पुष्पैः संच्छन्ने नलिनीवने ।

छन्ना काचिच्चिरात् प्राप्ता कान्तेनान्विष्य यत्नतः ॥१५॥

स्नाता शीतापदेशेन काचित् प्राहाङ्गना भृशम् ।
रमणालिङ्गनं चक्रे मनोऽभिलषितश्चिरम् ॥ १६ ॥

जलार्द्रवसनं सूक्ष्ममङ्गलीनं शुचिस्मिता । धारयन्ती जनं चक्रे काचित्तत्र समन्मथम् ॥
कण्ठमाल्यगुणैःकाचित् कान्तेनाकृष्यताम्भसि । त्रुट्यत्स्रग्दामपतितंरमणंप्राहसच्चिरम्

काचिद्भग्ना सखीदत्तजानुदेशे नखक्षता ।
संभ्रान्ता कान्तशरणं मग्ना काचिद्गता चिरम् ॥ १९ ॥

काचित् पृष्ठकृतादित्या केशनिस्तोयकारिणी । शिलातलगता भर्त्रा दृष्टा कामार्तचक्षुषा
कृतमाल्यं विलुलितं संक्रान्तकुचकुङ्कुमम् । रतिक्रीडितकान्तेव रराज तत् सरोदकम्
सुस्नातदेवगन्धर्वदेवरामागणेन च । पूज्यमानञ्च ददृशे देवदेवं जनार्दनम् ॥ २२ ॥
क्वचिच्च ददृशेराजा लतागृहगताः स्त्रियः । मण्डयन्तीः स्वगात्राणि कान्तसंन्यस्तमानसाः
काचिदादर्शनकरा व्यग्रा दूतीमुखोद्गतम् । शृण्वन्ती कान्तवचनमधिका तु तथाबभौ ॥
काचित् सत्वरिता दूत्या भूषणानां विपर्ययम् । कुर्वाणा नैव बुबुधे मन्मथाविष्टचेतना
वायुनुन्नातिसुरभिकुसुमोत्करमण्डिते । काश्चित् पिबन्ती ददृशे मैरेयं नीलशाद्वले ॥२६
पाययामास रमणं स्वयं काचिद्वराङ्गना । काचित् पपौ वरारोहा कान्तपाणिसमर्पितम्
काचित् स्वनेत्रचपलनीलोत्पलयुतम्पयः । पीत्वा पप्रच्छ रमणं क्व गतौ तौ ममोत्पलौ

त्वयैव पीतौ तौ नूनमित्युक्ता रमणेन सा ।
तथा विदित्वा मुग्धत्वाद् बभूव व्रीडिता भृशम् ॥ २९ ॥
काचित् कान्तार्पितं सुभ्रूः कान्तपीतावशेषितम् ।
सविशेषरसं पानं पपौ मन्मथवर्धनम् ॥ ३० ॥

अपानगोष्ठीषु तथा तासां स नरपुङ्गवः । शुश्राव विविधङ्गीतं तन्त्रीस्वरविमिश्रितम् ॥
प्रदोषसमये ताश्च देवदेवं जनार्दनम् । राजन् ! सदोपनृत्यन्ति नानावाद्यपुरः सराः ॥

याममात्रे गते रात्रौ विनिर्गत्य गुहामुखात् ।
आवसन् संयुताः कान्तैः परर्धिरचिताङ्गृहाम् ॥ ३३ ॥

नानागन्धान्वितलतांनानागन्धसुगन्धिनीम् । नानाविचित्रशयनांकुसुमोत्करमण्डिताम्

एवमप्सरसां पश्यन् क्रीडितानि स पर्वते। तपस्तेपे महाराजन्! केशवार्पितमानसः
तमूचुर्नृपतिङ्गत्वा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः। राजन्! स्वर्गोपमन्देशमिमं प्राप्तोऽस्यरिन्दम!
वयंहि प्रदास्यामो मनसः कांक्षितान्वरान्। तानादाय गृहङ्गच्छ तिष्ठेह यदि वा पुनः॥

राजोवाच।

अमोघदर्शनाः सर्वे भवन्तस्त्वमितौजसः। वरं वितरताद्यैव प्रसादं मधुसूदनात् ॥३८॥
एवमस्त्वित्यथोक्तस्तैःस तु राजा पुरूरवाः। तत्रोवास सुखीमासं पूजयानो जनार्दनम्
प्रिय एव सदैवासीद्गन्धर्वाप्सरसां नृपः। तुतोष स जनो राज्ञस्तस्या लौल्येन कर्म्मणा

मासस्य मध्ये स नृपः प्रविष्टस्तदाश्रमं रत्नसहस्रचित्रम्।
तोयाशनस्तत्र उवास मासं यावत् सितान्तो नृप! फाल्गुनस्य ॥ ४१ ॥

फाल्गुनामलपक्षान्ते राजा स्वप्ने पुरूरवाः। तस्यैव देवदेवस्य श्रुतवान् गदितं शुभम् ॥

रात्र्यामस्यां व्यतीतायामत्रिणा त्वं समेष्यसि।
तेन राजन्! समागम्य कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ४३ ॥

स्वप्नमेवं स राजर्षिर्दृष्ट्वा देवेन्द्रविक्रमः। प्रत्यूषकाले विधिवत् स्नातः स प्रयतेन्द्रियः
कृतकृत्यो यथाकामं पूजयित्वा जनार्दनम्। ददर्शात्रि मुनिंराजा प्रत्यक्षं तपसां निधिम्
स्वप्नन्तु देवदेवस्य न्यवेदयत धार्मिकः। ततः शुश्राव वचनं देवतानां समीरितम् ।४६।
एवमेतन् महीपाल! नात्र कार्य्या विचारणा। एवं प्रसादं संप्राप्य देवदेवाज्जनार्दनात्।
कृतदेवार्चनो राजा तथा हुतहुताशनः। सर्वान् कामानवाप्तोऽसौ वरदानेन केशवात् ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मद्रेश्वरचरित्रवर्णनं नामोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कैलासवर्णनम्।

सूत उवाच।

तस्याश्रमस्योत्तरतस्त्रिपुरारिनिषेवितः। नानारत्नमयैः शृङ्गैः कल्पद्रुमसमन्वितैः ॥ १॥

मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः । तस्मिन्निवसति श्रीमान् कुबेरः सह गुह्यकैः
अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः । कैलासपादसम्भूतं रम्यं शीतजलं शुभम् ।
मन्दारपुष्परजसा पूरितं देवसन्निभम् । तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा॥
दिव्यश्च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम् । प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यं सौगन्धिकंगिरिम्
सर्वधातुमयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति । चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुभ्रो रत्नसन्निभः ॥६

तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम् ।
तस्मात् प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदिका शुभा ॥ ७ ॥

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम् । तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः

यक्षसेनापतिः क्रूरो . गुह्यकैः परिवारितः ।
पुण्या मन्दकिनी नाम नदी ह्यच्छोदिका शुभा ॥६॥
महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महोदधिम् ।
कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम् ॥ १० ॥

मनःशिलामयं दिव्यं सुवेलंपर्वतं प्रति । लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ॥
तस्यपादे महद्दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः । तस्मात् प्रभवते पुण्यो लौहित्यश्च नदोमहान्
दिव्यारण्यं विशोकश्चतस्य तीरे महद्वनम् । तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षोमणिधरोवशी

सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः ।
कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधी गिरिः ॥१४॥

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः । तदजनन्त्रैः ककुदं शैलन्त्रिककुदं प्रति ॥१५।
सर्वधातुमयस्तत्रसुमहान् वैद्युतो गिरिः । तस्य पादे महद्दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम्
तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी । तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नामविश्रुतम्

कुवेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी ।
ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥ १८ ॥

कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यःसर्वौषधिर्गिरिः । अरुणःपर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः
भवस्य दयितःश्रीमान्पर्वतोहेमसन्निभः । शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैःसमाचितः

शतसंख्यैस्तापनीयैः श्रृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् । शृङ्गवान् सुमहादिव्यो दुर्गः शैलोमहाचितः

गि तस्मिन् श्चिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः ।

तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ॥ २२ ॥

तस्मात् प्रभवतेपुण्या नदीशैलोदकाशुभा । सा चक्षुसी तयोर्मध्ये प्रविष्टापश्चिमोदधिम्

अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधोगिरिः । गौरन्तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति ॥

हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः । तस्यपादे महद्दिव्यं सरःकाञ्चनवालुकम्

रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः । गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास वहुलाः समाः॥

दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गंगातोयाप्लुतास्थिकाः ।

तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥

सोमपादात् प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते । यूपामणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्मयाः

तत्रेष्ट्वा क्रतुभिः सिद्धः शक्रः सुरगणैःसह । दिव्यच्छायापथस्तत्रनक्षत्राणान्तुमण्डलम्

दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा । अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वाभुवंगता

भवोत्तमांगे पतिता संरुद्धा योगमायया । तस्या ये विन्दवःकेचित्क्रुद्धायाःपतिताभुवि

कृतन्तु तैर्बहुसरस्ततो विन्दुसरः स्मृतम् । ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा रुषा ॥

ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ।

भित्वा विशामि पातालं श्रोतसा गृह्य शङ्करम् ॥३३ ॥

अथावलेपतं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धन्तु शङ्करः । तिरोभावयितुं वुद्धिरासीदङ्गेषुतां नदीम् ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः । धमनीसन्ततंक्षीणं क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम् ॥

अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थे पूर्वमेव तु । वुध्वास्य वरदानन्तु ततः कोपं न यच्छत ॥३६॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा यदुक्तं धारयन्नदीम् । ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा

नदी भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः । ततो विसर्जयामास सप्तस्रोतांसि गङ्गया ॥

त्रीणि प्राचीमभिमुखं प्रतीचीन्त्रीण्यथैव तु । स्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्तसप्तधा

नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगा ।

सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्रस्ता वै प्रतीच्यगाः ॥४० ॥

सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम् ।
तस्मात् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ४१ ॥
सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्षन्तु हिमसाह्वयम् । प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा विन्दुसरोद्भवाः
तान्देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः ।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान् ॥ ४३ ॥
पुलिकांश्च कुलत्थांश्च अङ्गलोक्यान्वरांश्च यान् ।
कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ४४ ॥
अथ वीरमरूंश्चैव कालिकांश्चैवशूलिकान् । तुषारान् बर्बरानङ्गान्यगृह्णात्पारदान्शकान्
एतान् जनपदांश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिङ्गता । दरदोर्जगुण्डांश्चैव गान्धारानौरसान्कुहून्
शिवपौरानिन्द्रमरून् वसतीन् समतेजसम् ।
सैन्धवानुर्वसान् वर्वान् कुपथान् भीमरोमकान् ॥ ४७ ॥
शुनामुखांश्चोर्दमरून् सिन्धुरेतान्निषेवते ।
गन्धर्वान् किन्नरान्यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ॥ ४८ ॥
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान्नरान् ।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् वै भारतानपि ॥ ४९ ॥
पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च ।
ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च ॥ ५० ॥
एतान् जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभा । ततः प्रतिहता विन्ध्येप्रविष्टादक्षिणोदधिम्
ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखा ययौ । प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानपि सर्वशः
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि । केकरानेककर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥
कालिन्दगतिकांश्चैव कुशिकान्स्वर्गभौमकान् । सामण्डले समुद्रस्यतीरेभूत्वातुसर्वशः
ततस्तु नलिनीचापि प्राचीमेव दिशं ययौ । कुपथान् प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युम्नसरांस्यपि
तथा खरपथान् देशान् वेत्रशङ्कुपथानपि । मध्येनोज्जानकमरून् कुथप्रावरणान् ययौ ॥
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम् । ततस्तु पावनी प्रायात् प्राचीमाशाञ्जवेन तु॥

तोमरान्प्लावयन्तीचहंसमार्गान्समूहकान् । पूर्वान्देशांश्चसेवन्तीभित्वासाबहुधागिरिम्

कर्णप्रावरणान् प्राप्य गता साश्वमुखानपि ॥ ५८ ॥

सिक्त्वा पर्वतमेरुं सा गत्वा विद्याधरानपि । शैमिमण्डलकोष्ठन्तु सा प्रविष्टा महत्सरः॥

तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः । उपगच्छन्तिता नद्यो यतोवर्षति वासवः

तीरे वंशौकसारायाः सुरभिर्नाम तद्वनम् । हिरण्यश्रृङ्गो वसतिविद्वान् कौवरको वशी

यज्ञादपेतः सुमहानमितौजाः सुविक्रमः । तत्रागस्त्यैः परिवृता विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः ॥

कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः । एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिः पर्वतवासिनाम्

परस्परेण द्विगुणा धर्म्मतः कामतोऽर्थतः । हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरःस्मृतम्

सरस्वती प्रभवति तस्माज् ज्योतिष्मती तु या ।

अवगाढ़े ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ६५ ॥

सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे । यस्माद्ग्रे प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते ॥६६॥

मेरोः पार्श्वात् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान् ।

जम्बूश्चैव नदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं स्मृतम् ॥ ६७ ॥

पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभः पुण्डरीकवान् ।

पुण्डरीकात् पयोदाच्च तस्माद् वै सम्प्रसूयताम् ॥६८ ॥

सरसस्तुसरस्त्वेतत् स्मृतमुत्तरमानसम् । मृग्याच मृगकान्ताच तस्माद्द्वेसम्प्रसूयताम्

ह्रदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः । नाम्ना वै वैजयानाम द्वादशोदधिसन्निभाः

तेभ्यः शान्तीच मध्वीच द्वेनद्यौ सम्प्रसूयताम् । किंपुरुषाद्यानि यान्यष्टौतेषुदेवोनवर्षति

उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः । बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च ॥

विनिविष्टाःप्रतिदिशं निमग्नालवणाम्बुधिम् । चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्चशिलोच्चयः

उद्गायता उदीच्यान्तु अवगाढा महोदधिम् । चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वतः ॥७४

प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम् । जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः ॥

आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणम्प्रति । चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि संदक्षिणापथे ॥

तत्रसंवर्तको नामसोऽग्निःपिबति तज्जलम् । अग्निः समुद्रवासस्तु औवोंऽसौवड़वामुखः

इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम् । छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात्
तेषान्तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः । ते भारतस्य वर्षस्य भेदा ये न प्रकीर्त्तिताः
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः । उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ॥
आरोग्यायुः प्रमाणाभ्यां धर्म्मतःकामतोऽर्थकः । समन्वितानि भूतानितेषु वर्षेषुभागशः
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै । इत्येतद्धारयद्विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नानानदीपर्वतानां वर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

शाकद्वीपवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

शाकद्वीपस्य वक्ष्यामि यथावदिहनिश्चयम् । कथ्यमानंनिबोधध्वंशाकंद्वीपंद्विजोत्तमाः!

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणस्तस्य विस्तरः ।
विस्तारात् त्रिगुणाश्चापि परीणाहः समन्ततः ॥ २ ॥

तेनावृतः समुद्रोऽयं द्वितीयो लवणोदकः । तत्र पुण्या जनपदा चिराच्च म्रियते जनः ॥
कुत एव च दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुतेष्विह । तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषिताः ॥
शाकद्वीपादिषु त्वेषु सप्त सप्त नगास्त्रिषु । ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टाः पर्वतोत्तमाः
रत्नाकाराद्रिनामानः सानुमन्तो महाचिताः । समोदिताः प्रतिदिशं द्वीपविस्तारमानतः ॥
उभयत्रावगाढौ च लवणक्षीरसागरौ । शाकद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्तदिव्यान् महाचलान्
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते । प्रागायतः स सौवर्ण उदयो नाम पर्वतः ॥ ८ ॥
तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्त्यपयान्ति च । तस्यापरेण सुमहान् जलधारो महागिरिः
स वै चन्द्रः समाख्यातः सर्वौषधिसमन्वितः । तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमञ्जलम्
नारदो नाम चैवोक्तो दुर्गशैलो महाचितः । तत्राचलौ समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ ॥११

तस्यापरेण सुमहान् श्यामो नाम महागिरिः।
यत्र श्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल ॥ १२ ॥
स एव दुन्दुभिर्नाम श्यामपर्वतसन्निभः। शब्दमृत्युःपुरातस्मिन् दुन्दुभिस्ताड़ितःसुरैः
रत्नमालान्तरमयः शाल्मलश्चान्तरालकृत्। तस्यापरेण रजतो महानस्तोगिरिः स्मृतः ॥
स वै सोमक इत्युक्तो देवैर्यत्रामृतं पुरा। संभृतश्च हृतञ्चैव मातुरर्थे गरुत्मता ॥१५॥
तस्यापरे चाम्बिकेयः सुमनाश्चैव स स्मृतः। हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिन्शैलेनिषूदितः
आम्बिकेयात् परो रम्यः सर्वौषधिनिषेवितः।
विभ्राजस्तु समाख्यातः स्फाटिकस्तु महान् गिरिः ॥ १७ ॥
यस्माद्विभ्राजते वह्निर्विभ्राजस्तेन स स्मृतः। सैवेह केशवेत्युक्तो यतो वायुः प्रवातिच
तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि पर्वतानां द्विजोत्तमाः!। शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्वशः
द्विनामान्येव वर्षाणि यथैव गिरयस्तथा। उदयस्योदयं वर्षं जलधारेति विश्रुतम् ॥२०
नाम्नागतभयं नाम वर्षं तत् प्रथमं स्मृतम्। द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति स्मृतम्
तदेव शैशिरं नाम वर्षं तत् परिकीर्त्तितम्। नारदस्य च कौमारन्तदेव च सुखोदयम् ॥
श्यामपर्वतवर्षं तदनीचकमिति स्मृतम्। आनन्दकमितिप्रोक्तं तदेव मुनिभिः शुभम् ॥
सोमकस्य शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्करम्। तदेवासितमित्युक्तं वर्षं सोमकसंज्ञितम् ॥
आंविकेयस्य मैनाकं क्षेमकञ्चैव तत् स्मृतम्।
तदेव ध्रुवमित्युक्तं वर्षं विभ्राजसंज्ञितम् ॥ २५ ॥
द्वीपस्य परिणाहश्च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च। जम्बूद्वीपेन संख्यातं तस्य मध्ये वनस्पतिम्।
शाको नाम महावृक्षः प्रजास्तस्य महानुगाः। एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः
विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह। तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः ॥
तेषु नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः। द्विनाम्ना चैव ताः सर्वा गङ्गा सप्तविधा स्मृता
प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला शुभा।
मुनितप्ता च नाम्नैषा नदी सम्परिकीर्त्तिता ॥ ३० ॥
सुकुमारी तपःसिद्धा द्वितीया नामतः सती। नन्दाच पावनी चैव तृतीया परिकीर्त्तिता

शिविका च चतुर्थी स्यात् द्विविधा च पुनः स्मृता ।
इक्षुश्च पञ्चमी ज्ञेया तथैव च पुनः कुहूः ॥ ३२ ॥
वेणुका चामृता चैव षष्ठी सम्परिकीर्त्तिता । सुकृताच गभस्ती च सप्तमी परिकीर्त्तिता
एताः सप्त महाभागाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः । भावयन्ति जनं सर्वं शाकद्वीपनिवासिनम्
अभिगच्छन्ति ताश्चान्या नदनद्यः सरांसि च । बहूदकपरिस्रावा यतो वर्षति वासवः ॥
तासान्तु नामधेयानि परिमाणं तथैव च । न शक्यं परिसंख्यातुं पुण्यास्ताःसरिदुत्तमाः
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ।
एते शान्तभयाः प्रोक्ताः प्रमोदा ये च वै शिवाः ॥ ३७ ॥
आनन्दाश्च सुखाश्चैव क्षेमकाश्च नवैः सह । वर्णाश्रमाचारयुता देशास्ते सप्त विश्रुताः॥
आरोग्या बलिनश्चैव सर्वे मरणवर्जिताः । अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी पुनः
न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित् । त्रेतायुगसमः कालस्तथा तत्र प्रवर्त्तते ॥
शाकद्वीपादिषु ज्ञेयं पञ्चस्वेतेषु सर्वशः । देशस्य तु विचारेण कालः स्वाभाविकःस्मृतः
न तेषु सङ्करः कश्चित् वर्णाश्रमकृतः क्वचित् ।
धर्म्मस्य चाव्यभीचारादेकान्तसुखिनः प्रजाः ॥ ४२ ॥
न तेषु माया लोभो वा ईर्ष्यासूया भयं कुतः ।
विपर्ययो न तेष्वस्ति तद्वै स्वाभाविकं स्मृतम् ॥ ४३ ॥
कालो नैव च तेष्वस्ति न दण्डो न च दाण्डिकः ।
स्वधर्मेण च धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ ४४ ॥
परिमण्डलस्तु सुमहान् दीपो वै कुशसंज्ञकः । नदीजलैः परिवृतः पर्वतैश्चाभ्रसन्निभैः ।
सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्रुमभूषितैः । अन्यैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥४६॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सर्वतो धनधान्यवान् । नित्यं पुष्पफलोपेतः सर्वरत्नसमावृतः ॥
आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्रामारण्यैश्च सर्वशः । आनुपूर्व्यात् समासेन कुशद्वीपं निबोधत ॥
अथ तृतीयं वक्ष्यामि कुशद्वीपञ्च कृत्स्नशः । कुशद्वीपेन क्षीरोदः सर्वतः परिवारितः ॥
शाकद्वीपस्य विस्तारो द्विगुणेन समन्वितः । तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ॥

रत्नाकारस्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे श्रृणु। द्विनामानश्च ते सर्वे शाकद्वीपे यथा तथा॥
प्रथमः सूर्य्यसङ्काशः कुमुदो नाम पर्वतः। विद्रुमोच्चय इत्युक्तः स एव च महीधरः॥
सर्वधातुमयैः श्रृङ्गैः शिलाजालसमन्वितैः। द्वितीय पर्वतस्तत्र उन्नतो नाम विश्रुतः॥
हेमपर्वत इत्युक्तः स एव च महीधरः। हरितालमयैः श्रृङ्गै द्वींपमावृत्य सर्वशः॥५४॥
बलाहकस्तृतीयस्तु जात्यञ्जनमयो गिरिः। द्युतिमान्नामतः प्रोक्तः स एव च महीधरः॥
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महागिरौ। विशल्यकरणी चैव मृतसञ्जीवनी तथा॥
पुष्पवान्नाम सैवोक्तः पर्वतः सुमहाचितः। कङ्कस्तु पञ्चमस्तेषां पर्वतो नाम सारवान्॥
कुशेशय इति प्रोक्तः पुनः स पृथिवीधरः। दिव्यपुष्पफलोपेतो दिव्यवीरुत्समन्वितः॥
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसन्निभः। स एव तु पुनः प्रोक्तो हरिरित्यभिविश्रुतः॥

तस्मिन् सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम योऽप्सुजः।
सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्मान् स हि भाषते॥६०॥

मन्दरः सैव विज्ञेयः सर्वधातुमयः शुभः। मन्द इत्येष यो धातुरपामर्थे प्रकाशकः॥६१
अपां विदारणाच्चैव मन्दरः स निगद्यते। तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः॥६२
प्रजापतिमुपादाय प्रजाभ्यो विदधत् स्वयम्। तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः समुदाहृतः
इत्येते पर्वताः सप्त कुशद्वीपे प्रभाषिताः। तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु विभागशः॥
कुमुदस्य स्मृतः श्वेत उन्नतश्चैव स स्मृतः। उन्नतस्य तु विज्ञेयं वर्षं लोहितसंज्ञकम्॥
वेणुमण्डलकञ्चैव तथैव परिकीर्त्तितम्। बलाहकस्य जीमूतः स्वैरथाकारमित्यपि॥६६॥

द्रोणस्य हरिकं नाम लवणञ्च पुनः स्मृतम्।
कङ्कस्यापि ककुन्नाम धृतिमच्चैव तत् स्मृतम्॥६७॥

महिषं महिषस्यापि पुनश्चापि प्रभाकरम्। ककुद्मिनस्तु यद्वर्षं कपिलं नाम विश्रुतम्॥
एतान्यपि विशिष्टानि सप्त सप्त पृथक् पृथक्। वर्षाणि पर्वताश्चैव नदीस्तेषु निबोधत॥

तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं हि ताः स्मृताः।
द्विनामवत्यस्ताः सर्वाः सर्वाः पुण्यजलाः स्मृताः॥७०॥
धूतपापा नदी नाम योनिश्चैव पुनः स्मृता।

सीता द्वितीया विज्ञेया सा चैव हि निशा स्मृता ॥ ७१ ॥
पवित्रा तृतीया ज्ञेया वितृष्णापि च या पुनः ।
चतुर्थी ह्लादिनीत्युक्ता चन्द्रभा इति च स्मृता ॥ ७२ ॥
विद्युच्च पञ्चमी प्रोक्ता शुक्ला चैव विभाव्यते। पुण्ड्रा षष्ठी तु विज्ञेया पुनश्चैव विभावती
महती सप्तमी प्रोक्ता पुनश्चैषा धृतिः स्मृता ।
अन्यास्ताभ्योऽपि सञ्जाताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७४ ॥
अभिगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः । इत्येष सन्निवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः
शाकद्वीपेन विस्तारः प्रोक्तस्तस्य सनातनः । कुशद्वीपः समुद्रेण घृतमण्डोदकेन च ॥७६
सर्वतः सुमहान् द्वीपश्चन्द्रवत् परिवेष्टितः। विस्तारान्मण्डलाच्चैव क्षीरोदाद्द्विगुणो मतः
ततः परं प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चद्वीपं यथा तथा ।
कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः ॥ ७८ ॥
घृतोदकः समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः । चक्रनेमिप्रमाणेन वृतो वृत्तेन सर्वशः ॥७९॥
तस्मिन् द्वीपे नराः श्रेष्ठा देवनो गिरिरुच्यते । देवनात्परतश्चापि गोविन्दो नाम पर्वतः
गोविन्दात् परतश्चापि क्रौञ्चस्तु प्रथमो गिरिः। क्रौञ्चात्परे पावनकः पावनादन्धकारकः
अन्धकारात्परे चापि देवावृन्नाम पर्वतः । देवावृतः परेणापि पुण्डरीको महान् गिरिः
एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः । परस्परस्य द्विगुणो विष्कम्भो वर्षपर्वतः॥
वर्षाणि तस्य वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत ।
क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः ॥ ८४ ॥
मनोऽनुगात्परे चोष्णस्तृतीयोऽपि स उच्यते। उष्णात्परे पावनकः पावनादन्धकारकः
अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशस्तथापरः । मुनिदेशात् परे चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः॥
सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरप्रायः शुचिर्जनः । श्रुतास्तत्रैव नद्यस्तु प्रतिवर्षङ्गताः शुभाः॥
नारी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ।
ख्याती च पुण्डरीका च गङ्गाः सप्तविधाः स्मृताः ॥८८ ॥
तासां सहस्रशश्चान्या नद्यः पार्श्वसमीपगाः । अभिगच्छन्ति ता नद्यो बहुलाश्च बहूदकाः

तेषां निसर्गो देशानामानुपूर्वेण सर्वशः। न शक्यो विस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥६०॥
सर्गायश्च प्रजानान्तु संहारो यश्च तेषु वै। अत ऊद्ध्र्वं प्रवक्ष्यामि शाल्मलस्यनिबोधत

शाल्मलो द्विगुणो द्वीपः क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तरात्।
परिवार्य्य समुद्रन्तु दधिमण्डोदकं स्थितम् ॥ ६२ ॥

तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः। कुत एव तु दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते ॥
प्रथमःसूर्य्यसङ्काशःसुमना नाम पर्वतः। पीतस्तु मध्यमश्चासीत्ततः कुम्भमयो गिरिः ॥
नाम्ना सर्वसुखो नाम दिव्यौषधिसमन्वितः। तृतीयश्चैव सौवर्णोभृङ्गपत्रनिभो गिरिः

सुमहान् रोहितो नाम दिव्यो गिरिवरो हि सः।
सुमनाः कुशलो देशः सुखोदर्कः सुखोदयः ॥ ९६ ॥

रोहितो यस्तृतीयस्तु रोहिणो नाम विश्रुतः। तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः
प्रजापतिमुपादाय प्रसन्नो विदधत् स्वयम्। न तत्र मेघा वर्षन्ति शीतोष्णञ्च न तद्विधम्

वर्णाश्रमाणां वार्ता वा त्रिषु द्वीपेषु विद्यते।
न ग्रहो न च चन्द्रोऽस्ति ईर्ष्याऽसूया भयं तथा ॥९९॥

उद्भिदान्युदकान्यत्र गिरिप्रस्रवणानि च। भोजनं षड्रसं तत्र तेषां स्वयमुपस्थितम् ॥
अधमोत्तमं न तेष्वस्ति न लोभो न परिग्रहः। आरोग्यबलवन्तश्च एकान्तसुखिनो नराः

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
सुखमायुश्च रूपञ्च धर्मैश्वर्य्यन्तथैव च ॥ १०२ ॥
शाल्मलान्तेषु विज्ञेयं द्वीपेषु त्रिषु सर्वतः।
व्याख्यातः शाल्मलान्तानां द्वीपानान्तु विधिः शुभः ॥ १०३ ॥
परिमण्डलस्तु द्वीपस्य चक्रवत् परिवेष्टितः।
सुरोदेन समुद्रेण द्विगुणेन समन्वितः ॥ १०४ ॥

इति श्री मत्स्यमहापुराणे क्रौञ्चशाल्मलद्वीप वर्णनंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

———

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोमेदकपुष्करद्वीपयोर्वर्णनम् ।

सूत उवाच ।

गोमेदकं प्रवक्ष्यामि षष्ठं द्वीपं तपोधनाः ! । सुरोदकसमुद्रस्तु गोमेदेन समावृतः ॥१॥
शाल्मलस्यतु विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः । तस्मिन्द्वीपे तु विज्ञेयौ पर्वतौ द्वौ समाहितौ
प्रथमः सुमना नाम जात्यञ्जनमयो गिरिः । द्वितीयः कुमुदो नाम सर्वौषधिसमन्वितः ॥
शातकौम्भमयः श्रीमान् विज्ञेयः सुमहाचितः । समुद्रेक्षुरसोदेन वृतो गोमेदकश्च सः ॥
षष्ठेन तु समुद्रेण सुरोदाद् द्विगुणेन च । धातकी कुमुदश्चैव हव्यपुत्रौ सुविस्तृतौ ॥
सौमनं प्रथमं वर्षं धातकीखण्डमुच्यते । धातकिनः स्मृतं तद्वै प्रथमं प्रथमस्य तु ॥

गोमेदं यत् स्मृतं वर्षं नाम्ना सर्वसुखन्तु तत् ।
कुमुदस्य द्वितीयस्य द्वितीयं कुमुदं ततः ॥ ७ ॥
एतौ द्वौ पर्वतौ वृत्तौ शेषौ सर्वसमुच्छ्रितौ ।
पूर्वेण तस्य द्वीपस्य सुमनाः पर्वतः स्थितः ॥ ८ ॥

प्राक्पश्चिमायतैः पादैरासमुद्रादिति स्थितः । पश्चार्द्धे कुमुदस्तस्य एवमेव स्थितस्तु वै ॥
एतैः पर्वतपादैस्तु स देशो वै द्विधाकृतः । दक्षिणार्द्धे तु द्वीपस्य धातकीखण्डमुच्यते ॥
कुमुदन्तूत्तरे तस्य द्वितीयं वर्षमुत्तमम् । एतौ जनपदौ द्वौ तु गोमेदस्य तु विस्तृतौ ॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि सप्तमं द्वीपमुत्तमम् । समुद्रेक्षुरसं चैव गोमेदाद्द्विगुणं हि सः ॥

आवृत्य तिष्ठति द्वीपः पुष्करः पुष्करैर्वृतः ।
पुष्करेण वृतः श्रीमांश्चित्रसानुर्महागिरिः ॥ १३ ॥
कूटैश्चित्रैर्मणिमयैः शिलाजालसमुद्भवैः ।
द्वीपस्यैव तु पूर्वार्द्धे चित्रसानुः स्थितो महान् ॥ १४ ॥

परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः पञ्चविंशतिः । ऊर्द्ध्वंस वै चतुर्विंशद्योजनानां महाबलः

द्वीपार्द्धस्य परिक्षिप्तःपश्चिमे मानसो गिरिः । स्थितो वेलासमीपे तु पूर्णचन्द्र इवोदितः

योजनानां सहस्राणि सार्द्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः ।

तस्य पुत्रो महावीतः पश्चिमार्द्धस्य रक्षिता ॥ १७ ॥

पूर्वार्द्धे पर्वतस्यापि द्विधा देशस्तु स स्मृतः । स्वादूदकेनोदधिनापुष्करः परिवारितः ॥

विस्तारान्मण्डलाच्चैव गोमेदाद्द्विगुणेन तु । त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः

विपर्ययो न तेष्वस्ति एतत् स्वाभाविकं स्मृतम् ।

आरोग्यं सुखबाहुल्यं मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥ २० ॥

सुखमायुश्च रूपञ्च त्रिषु द्वीपेषु सर्वशः । अधमोत्तमौ न तेष्वास्तांतुल्यास्तेवीर्य्यरूपतः

न तत्र वध्यवधकौ नेर्ष्यासूया भयं तथा । न लोभो न च दम्भो वा न च द्वेषः परिग्रहः

सत्यानृतेन तेष्वास्तां धर्माधर्मौ तथैव च । वर्णाश्रमाणांवार्ताचपाशुपाल्यं वणिक्कृषिः

त्रयीविद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा दण्डएवच । न तत्र वर्षं नद्योवा शीतोष्णञ्च न विद्यते ॥

उद्भिदान्युदकानि स्युर्गिरिप्रस्रवणानि च ।

तुल्योत्तरकुरूणान्तु कालस्तत्र तु सर्वदा ॥ २५ ॥

सर्वतः सुखकालोऽसौ जराक्लेशविवर्जितः ।

सर्गस्तु धातकीखण्डे महावीते तथैव च ॥ २६ ॥

एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः । द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तत्समस्तु वै ॥

एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम् । अपाञ्चैव समुद्रेकात् समुद्र इति संज्ञितः ॥

ऋषद्वसन्त्यो वर्षेषु प्रजा यत्र चतुर्विधाः । ऋषिरित्येव रमणे वर्षन्त्वेतेन तेषु वै ॥२६॥

उदयतीन्दौ पूर्वे तु समुद्रः पूर्यते सदा । प्रक्षीयमाणे वहुले क्षीयतेऽस्तमिते च वै ॥३०॥

आपूर्यमाणो ह्युदधिरात्मनैवापि पूर्यते ।

ततो वै क्षीयमाणे तु स्वात्मन्येव ह्यपां क्षयः ॥ ३१ ॥

उदयात् पयसां योगात् पुष्णन्त्यापो यथा स्वयम् ।

तथा स तु समुद्रोऽपि वर्द्धते शशिनोदये ॥ ३२ ॥

अन्यूनानतिरिक्तात्मा वर्द्धन्त्यापोह्रसन्ति च । उदयेऽस्तमये चेन्दोःपक्षयोःशुक्लकृष्णयोः

क्षयवृद्धी समुद्रस्य शशिवृद्धिक्षये तथा। दशोत्तराणि पञ्चाहुरङ्गुलानां शतानि च॥
अपांवृद्धिःक्षयोदृष्टःसमुद्राणान्तु पर्वसु। द्विरापत्वात् स्मृतोद्वीपोदधनाच्चोदधिःस्मृतः
अपशीर्णात्तु गिरयो पर्वबन्धाच्च पर्वताः। शाकद्वीपे तु वैशाकः पर्वतस्तेन चोच्यते॥

कुशद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य तु।
क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चस्तस्य नाम्ना निगद्यते॥ ३७॥

शाल्मलिः शाल्मलद्वीपे पूज्यते स महाद्रुमः। गोमेदके तु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते॥
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे पद्मवत्तेन सः स्मृतः। पूज्यतेस महादेवैर्ब्रह्मांशो व्यक्तसम्भवः॥

तस्मिन् स वसति ब्रह्मा साध्यैः सार्द्धं प्रजापतिः।
तत्र देवा उपासन्ते त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः॥ ४०॥
स तत्र पूज्यते देवो देवैर्महर्षिसत्तमैः।
जम्बूद्वीपात्प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च॥ ४१॥

द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमशस्तु वै। आर्जवात् ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च॥४२॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणंद्विगुणं ततः। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु यथोक्तं वर्षकेषु च॥
गोपायन्ते प्रजास्तत्र सर्वैः सहजपण्डितैः। भोजनञ्चाप्रयत्नेन सदा स्वयमुपस्थितम्॥
षड्रसं तन्महावीर्यं तत्र ते भुञ्जते जनाः। परेण पुष्करस्याथ आवृत्यावस्थितो महान्॥
स्वादूदकसमुद्रस्तु स समन्तादवेष्टयत्। स्वादूदकस्य परितः शैलस्तु परिमण्डलः॥

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते।
आलोकस्तत्र चार्वाक् च निरालोकस्ततः परम्॥ ४७॥
लोकविस्तारमात्रन्तु पृथिव्यार्द्धन्तु वाह्यतः।
प्रतिच्छन्नं समन्तात्तु उदकेनावृतं महत्॥ ४८॥
भूमेर्दशगुणाश्चापः समन्तात् पालयन्ति गाम्।
अद्भ्यो दशगुणश्चाग्निः सर्वतो धारयत्यपः॥ ४९॥

अग्नेर्दशगुणोवायुर्धारयन्ज्योतिरास्थितः। तिर्यक्चमंडलोवायुर्भूतान्यावेष्ट्यधारयन्
दशाधिकं तथाकाशं वायोर्भूतान्यधारयत्। भूतादिधारयन् व्योम तस्माद्दशगुणस्तु वै

भूतादितो दशगुणं महद्भूतान्यधारयत् । महत्तत्वं ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते ५२॥

आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिणाम् ॥५३॥

पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम् । परस्पराधिकाश्चैवप्रविष्टाश्चपरस्परम्

एवं परस्परोत्पन्नाधार्यन्तेचपरस्परम् । यस्मात्प्रविष्टास्तेऽन्योन्यंतस्मात्ते स्थिरतांगताः

आसंस्ते ह्यविशेषाश्च विशेषा अन्यवेशनात् ॥ ५५ ॥

पृथ्व्याद्यस्तु वाय्व्यन्ताः परिच्छिन्नास्तु तत्र ते ।

भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यलोकः सर्वतः स्मृतः ॥ ५६ ॥

तथा ह्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्वशः ।

पात्रे महति पत्राणि यथा ह्यन्तगतानि च ॥ ५७ ॥

भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्रयात् ।

तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गता गताः ॥५८॥

कृतान्येतानि तत्त्वानि अन्योन्यस्याधिकानि तु ।

यावदेतानि तत्त्वानि तावदुत्पत्तिरुच्यते ॥५९॥

जन्तूनामिह संस्कारो भूतेष्वन्तर्गतेषु वै । प्रत्याख्यायेह भूतानि कार्य्योत्पत्तिर्न विद्यते

तस्मात्परिमिताभेदाःस्मृताःकार्य्यात्मकास्तुवै । तेकारणात्मकाश्चैवस्युर्भेदामहदादयः

इत्येवं सन्निवेशोऽयं पृथ्व्याक्रान्तस्तु भागशः । सप्तद्वीपसमुद्राणां याथातथ्येनवै मया

विस्तारान् मण्डलाच्चैव प्रसंख्यानेन चैव हि । विश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिनः

एतावत्सन्निवेशस्तु मया सम्यक् प्रकाशितः ॥६४॥

एतावदेव श्रोतव्यं सन्निवेशस्य पार्थिव । अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामिसूर्य्याचन्द्रमसोर्गतिम्

इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तद्वीप समुद्र वर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पृथिवीपरिमाणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्य्याचन्द्रमसोर्गतिम् । सूर्य्याचन्द्रमसावेतौ भ्राजन्तौयावदेवतु
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः । विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र वाह्यतः

पर्यासपरिमाणञ्च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः ।
पर्यासपारिमाण्यात्तु बुधैस्तुल्यं दिवः स्मृतम् ॥३॥
त्रीन् लोकान् प्रतिसामान्यात् सूर्य्यो यात्यविलम्बतः ।
अचिरात्तु प्रकाशेन अवनात्तु रविः स्मृतः ॥४॥

भूयो भूयः प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्य्ययोः । महितत्वान्महच्छब्दोह्यस्मिन्नर्थेनिगद्यते
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भात्तुल्यविस्तृतम् । मण्डलंभास्करस्याथयोजनैस्तन्निबोधत
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो मण्डलस्य तु । विस्तारत्रिगुणश्चापिपरिणाहोऽत्र मण्डले

विष्कम्भान् मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी ।
अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः ॥८॥

सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु । इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः ॥

तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतञ्चाभिमानिभिः ।
अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैस्त्विह ॥१०॥

देवदेवैरतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च । तस्माद्वै साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम् ॥११॥
दिव्यस्य सन्निवेशोवै साम्प्रतैरेवकृत्स्नशः । शतार्द्धकोटिविस्तारापृथिवीकृत्स्नशःस्मृता
तस्याश्चार्द्धप्रमाणञ्च मेरोश्चैवोत्तरोत्तरम् । मेरोर्मध्ये प्रतिदिशं कोटिरेकातु सा स्मृता
तथा शतसहस्राणामेकोननवतिं पुनः । पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्यर्द्धस्य विस्तरः
पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।

तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारात् संख्यातास्तु चतुर्दिशम् ॥१५॥
तथा शतसहस्राणामेकोनाशीतिरुच्यते । सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्याः स तु विस्तरः
विस्तारंत्रिगुणञ्चैवपृथिव्यन्तरमण्डलम् । गणितंयोजनानान्तुकोट्यस्त्वेकादशस्मृताः
तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः । इत्येतद्वैप्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम्

तारकासन्निवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम् ।
पर्याप्तसन्निवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ॥१८॥

पर्याप्तपरिमाणञ्च भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम् । मेरोःप्राच्यांदिशायान्तुमानसोत्तरमूर्द्धनि
वस्त्वेकसाराम्माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता । दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य तु पृष्ठतः ॥२०
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे । प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्य तु मूर्द्धनि ॥
सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः । दिश्युत्तरायां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि
तुल्या महेन्द्रपुर्य्यापि सोमस्यापि विभावरी । मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम्
स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च । लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतोदक्षिणायने ॥
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिस्तत्र निबोधत । दक्षिणोपक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति
ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति । मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ॥
वैवस्वते संयमने उद्यन् सूर्य्यः प्रदृश्यते । सुषायामर्द्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमेति च ॥

वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा ।
सुषायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥२८॥

विभावर्यामर्द्धरात्रं माहेन्द्र्यामस्तमेव च । सुषायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा ॥

विभावर्य्यां सोमपुर्य्यां उत्तिष्ठति विभावसुः ।
महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः ॥३०॥

अर्द्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च । स शीघ्रमेव पर्येति भानुरलातचक्रवत् ॥३१॥

भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः ।
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणां तेषु सर्पति ॥३२॥
उदयास्तमये चाऽसावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।

पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ॥३३॥
पतत्येकन्तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः ।
उदितो वर्द्धमानाभिर्मध्याह्ने तपते रविः ॥३४॥
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ।
उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै ॥३५॥

यादृक् पुरस्तात्तपति यादृक् पृष्ठे तु पार्श्वयोः । यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषांसउदयःस्मृतः प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते । सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्य दक्षिणे ॥ विदूरभावादर्कस्य भूमेरेषा गतस्य च । श्रयन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥ ऊद्ध्र्वं शतसहस्रांशुः स्थितस्तत्र प्रदृश्यते । एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः त्रिंशद्भागश्च मेदिन्या मुहूर्त्तेन स गच्छति । योजनानां सहस्रस्य इमांसंख्यां निबोधत पूर्णं शतसहस्राणां एकत्रिंशच्च सास्मृता । पञ्चाशच्चसहस्राणितथान्यान्यधिकानिच मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्य्यस्य तु विधीयते । एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम्

परिगच्छति सूर्य्योऽसौ मासं काष्ठामुदक् दिनात् ।
मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने ॥४३॥

मानसोत्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम् । सर्वतो दक्षिणायान्तुकाष्ठायांतन्निबोधत नवकोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् । तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च अहोरात्रात् पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते । दक्षिणादिङ्निवृत्तोऽसौ विषुवस्थोयदारविः क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतोऽपि दिशं चरन् । मण्डलं विषुवच्चापियोजनैस्तन्निबोधत

तिस्रः कोट्यस्तु सम्पूर्णा विषुवस्यापि मण्डलम् ।
तथा शतसहस्राणि विंशत्येकाधिकानि तु ॥४८॥

श्रावणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत् । गोमेदस्य परद्वीपे उत्तराञ्च दिशं चरन्

उत्तरायाः प्रमाणन्तु काष्ठाया मण्डलस्य तु ।
दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विन्द्याद्यथाक्रमम् ॥५०॥

स्थानं जरद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम् । वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ॥५१॥

नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा। उभे आषाढ़मूलन्तु अजवीथ्यादयस्त्रयः

अभिजित् पूर्वतः स्वातिन्नागवीथ्युत्तरास्त्रयः।

अश्विनीकृत्तिकायाम्यानागवीथ्यस्त्रयः स्मृताः ॥५३॥

रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो नागवीथिरिति स्मृता।

पुष्याश्लेषा पुनर्वस्वोर्वीथी चैरावती स्मृता ॥५४॥

त्रिस्त्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरामार्ग उच्यते। पूर्वउत्तरफल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी भवेत्

पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रैवती स्मृता। श्रवणश्च धनिष्ठा च वारुणश्च जरद्गवम् ॥

एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमोमार्गउच्यते। हस्तचित्रातथास्वातीह्यजवीथिरितिस्मृता

जेष्ठा विशाखा मैत्रश्च मृगवीथी तथोच्यते। मूलं पूर्वोत्तराषाढ़े वीथीवैश्वानरी भवेत्

स्मृतास्तिस्रस्तु वीथयस्ता मार्गे वै दक्षिणेपुनः। काष्ठयोरन्तरञ्चैतद्वक्ष्येयोजनैःपुनः ॥

एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत्तुवै स्मृतम्। शतानि त्रीणि चान्यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च

काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनानां प्रकीर्त्तितम्। काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे ॥

ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत। एकैकमन्तरं तद्वयुक्तान्येतानि सप्तभिः

सहस्रेणातिरिक्ता च ततोऽन्या पञ्चविंशतिः।

लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन् ॥६३॥

अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे। बाह्यतो दक्षिणेनैव सततं सूर्यमण्डलम् ॥

चरन्नसावुदीच्याञ्च ह्यशीत्या मण्डलान् शतम्।

अभ्यन्तरं स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु ॥६५॥

प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानान्निबोधत।

योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम् ॥६६॥

अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः।

विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते ॥ ६७ ॥

अहस्तु चरतेनाभेः सूर्यो वै मण्डलंक्रमात्। कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा

दक्षिणे चक्रवत् सूर्यस्तथाशीघ्रं निवर्तते। तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेनगच्छति

सूर्य्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणायने । त्रयोदशार्द्धमृक्षाणां मध्ये चरति मण्डलम्
मुहूर्त्तैस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् । कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति ॥
उदग्याने तथा सूर्य्यः सर्पते मन्दविक्रमः । तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिं सोऽल्पां प्रसर्पति

सूर्य्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्त्तैरुदगायने ॥ ७२ ॥
त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ॥ ७३ ॥

ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रन्तु भ्रमते पुनः । मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौध्रुवस्तथा
मुहूर्त्तैस्त्रिशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् । उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु ॥
उत्तरक्रमणेऽर्कस्य दिवा मन्दगतिः स्मृता । तस्यैव तु पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्य्यस्य वै गतिः
दक्षिणप्रक्रमे चापि दिवा शीघ्रं विधीयते । गतिः सूर्यस्य वै नक्तं मन्दा चापि विधीयते

एवं गतिविशेषेण विभजन् राज्यहानि तु ।
अजवीथ्यां दक्षिणायां लोकालोकस्य चोत्तरम् ॥ ७८ ॥

लोकसन्तानतोह्येष वैश्वानरपथाद्वहिः । व्युष्टिर्यावत् प्रभा सौरी पुष्करात् संप्रवर्त्तते

पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः ।
योजनानां सहस्राणि दशोदुर्ध्वं चोच्छ्रितो गिरिः ॥ ८० ॥

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः । नक्षत्रचन्द्रसूर्य्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥८१
अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः । एतावानेवलोकस्तु निरालोकस्ततःपरम्

लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता ।
लोकालोकौ तु संधत्ते तस्मात् सूर्य्यः परिभ्रमन् ॥ ८३ ॥

तस्मात्सन्ध्येतितामाहुरुषाव्युष्टैर्यथान्तरम् । उषारात्रिःस्मृताविप्रैर्व्युष्टिश्चापिअहःस्मृतम्
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहस्ते दशपञ्च च । ह्रासो वृद्धिरहर्भागैर्दिवसानां यथा तु वै ॥
सन्ध्या मुहूर्तमात्रायां ह्रासवृद्धी तु ते स्मृते । लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै
प्रातःस्मृतस्ततःकालोभागांश्चाहुश्च पञ्चच । तस्मात् प्रातर्गतात्कालान्मुहूर्ताःसङ्गवस्त्रयः

मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तुतस्मात्कालादनन्तरम् । तस्मान्मध्यन्दिनात्कालादपराह्णइतिस्मृतः

त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एषस्मृतो बुधैः । अपराह्णव्यतीताच्च कालः सायं स उच्यते ॥
दशपञ्च मुहूर्ताहो मुहूर्तास्त्रय एव च । दशपञ्च मुहूर्तं वै अहस्तु विषुवे स्मृतम् ॥ ६०॥
वर्धत्यतो ह्रसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे । अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः ॥
शरद्वसन्तयोर्मध्यं विषुवन्तु विधीयते । आलोकान्तःस्मृतोलोको लोकाश्चालोकउच्यते

लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम् ॥ ६३ ॥

सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः । हिरण्यरोमापर्जन्यः केतुमान् राजसश्च सः

निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥ ६५ ॥

उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं देवर्षिसेवितम् । पितृयानः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः॥
तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः । लोकस्य सन्तानकराःपितृयानेपथिस्थिताः
भूतारम्भकृतं कर्म आशिषश्चविशाम्पते ! । प्रारभन्ते लोककामास्तेषांपन्थाःसदक्षिणः
चलितन्ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे । सन्तप्ततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥६६॥
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु ते । पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥
एवमावर्तमानास्ते वर्तन्त्याभूतसंप्लवम् । अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम्
सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याभूतसंप्लवम् । क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेजिरे
लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च । इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै ॥ १०३ ॥
तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च । इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे॥
प्रजैषिणः सप्तऋषयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।सन्ततिन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम् । उदक् पन्थानपर्यन्तमाश्रित्याभूतसंप्लवम्
ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात् । ईर्ष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात्
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे । आभूतसंप्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते

त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मारगामिनाम् ।
भ्रूणहत्याश्वमेधादि पापपुण्यनिमैः परम् ॥ १०६ ॥

आभूतसंप्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरेतसः । ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः
एतद्विष्णुपदं दिव्यंतृतीयंव्योम्नि भास्वरम् । यत्रगत्वा नशोचन्तितद्विष्णोःपरमम्पदम्
धर्मे ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये तु लोमस्य काङ्क्षिणः ॥ १११ ॥ (क)

इति श्रीमत्स्यपुराणे सूर्यचन्द्रादिग्रहाणांगतिवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ज्यौतिषचक्रवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामब्रुवन् लोमहर्षणिम् । सूर्याश्चन्द्रमसोचारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः
भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि रविमण्डले । अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासङ्करेण वा।
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् । एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो निगदसत्तम!

सूत उवाच ।

भूतसंमोहनं ह्येतद्ब्रुवतो मे निबोध तम् । प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत् संमोहयति वै प्रजाः।
योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः । उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवोदिवि
सैष भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह । भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्
ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषाङ्गणः । वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवेबद्धः प्रसर्पति ॥
तेषां भेदश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः । अस्तोदयास्तथोत्पाता अयनेदक्षिणोत्तरे
विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम् । जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः ॥
द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः । इतोयोजनमात्राच्च अध्यर्द्धविकृताअपि
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धाराधारःप्रकीर्तिताः । पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वतानां महौजसा ।

कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम् ॥ १२ ॥

पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः । पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः॥
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते । कल्पान्तवृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्नेर्नियामकाः ॥

वाय्वाधारा वहन्ते वै साम्प्रताः कल्पसाधकाः ।
यान्यस्याण्डस्य भिन्नस्य प्राकृतान्यभवंस्तदा ॥ १५ ॥
यस्मिन् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः ।
तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः ॥१६ ॥

तेषामप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः । तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥१७
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिःसह । कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम्
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवम् । तुषारवर्षं वर्षन्ति वृद्ध्या ह्यन्नविवृद्धये ॥

षष्ठः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः ।
योऽसौ बिभर्ति भगवन् ! गङ्गामाकाशगोचराम् ॥ २० ॥
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम् ।
तस्या विस्पन्दितन्तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ॥ २१ ॥
शीकरान् सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ।
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ॥ २२ ॥

उदग्हिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे । पुण्ड्रं नाम समाख्यातं सम्यग्वृष्टिविवृद्धये ॥
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम् । ततो हिमवतो वायुर्हिमं तत्र समुद्भवम् ॥२४॥
आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चयानो महागिरिम् । हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ॥
इमास्येचततः पश्चादिदम्भूतविवृद्धये । वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग् वृष्टिविवृद्धये ॥२६॥
मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् । सूर्य्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ॥
वर्षं घर्मं हिमं रात्रिं सन्ध्ये चैव दिनं तथा । शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्त्तते ॥
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चापः सूर्य्यो वै गृह्य तिष्ठति । सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यानुश्रिताश्चयाः
दह्यमानेषु तेष्वेह जङ्गमस्थावरेषु च । धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ॥

तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम् ।

तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥ ३१ ॥

समुद्राद्वायुसंयोगात् वहन्त्यापो गभस्तयः । ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्त्तन् दिवाकरः
नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्लाःशुक्लैस्तुरश्मिभिः । अभ्रस्थाःप्रपतन्त्यापोवायुनासमुदीरिताः
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये । वायुभिस्तनितंचैव विद्युतस्त्वग्निजाःस्मृताः
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च । न भ्रश्यन्ते ततोह्यापस्तस्मादभ्रस्यवैस्थितिः

स्रष्टाऽसौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ॥ ३५ ॥

ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः । ग्रहान्निवृत्या सूर्य्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम् ॥
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम् । अतः सूर्य्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते ।
स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना । हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना ॥

चक्रेण भास्वता सूर्य्यः स्यन्दनेन प्रसर्पिणा ॥ ३८ ॥

शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते । द्विगुणा च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथोह्यर्थवशेन तु । असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पर्वतगैर्हयैः ॥
च्छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः । वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः
तेनासौचरतिव्योम्निभास्वाननुदिनन्दिवि । अथाङ्गानितु सूर्य्यस्यप्रत्यङ्गानिरथस्यच ॥

सम्वत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् ॥ ४२ ॥

अहर्नाभिस्तु सूर्य्यस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः ।
अरात् सम्वत्सरास्तस्य नेम्यः षड् ऋतवः स्मृताः ॥४३॥

रात्रिर्वरूथोधर्म्मश्चध्वजऊर्ध्वंव्यवस्थितः । अक्षकोट्योर्युगान्यस्यअर्तवाहाःकलाःस्मृताः

तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै ।
निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता ॥ ४५ ॥

युगाक्षकोटी ते तस्यअर्थकामावुभौस्मृतौ । सप्ता(मा)श्वरूपाश्छन्दांसिवहन्तेवायुरंहसा
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप् तथैव च । पङ्क्तिश्च वृहतीचैव उष्णिगेवतुसप्तमः
चक्रमक्षे निबद्धन्तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः । सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षोभ्रमति ध्रुवम् ॥
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ॥४६॥

:तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः । तेनाऽसौ तरणिर्मध्ये नभसःसर्पतेदिवम्
:युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु । भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौचक्रयुगयोस्तुवै
:मण्डलानि भ्रमे तेऽस्य खेचरस्य रथस्य तु । कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशम्
:युगाक्षकोटि ते तस्य वातोर्मीस्यन्दनस्य तु । संक्रमे ते ध्रुवमहो मण्डले पर्वतोदिशम्
:भ्रमतस्तस्यरश्मी ते मण्डले तूत्तरायणे । वर्द्धते दक्षिणेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि तु ॥
:युगाक्षकोटीसम्बद्धौ द्वे रश्मीस्यन्दनस्य ते । ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी धारयतारविम्
आकृष्यते यदा ते तु ध्रुवेण समधिष्ठिते । तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्य्यो भ्रमते मण्डलानि तु
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् । ध्रुवेण मुच्यमाने न पुनारश्मियुगेन च ॥ ५७
:तथैव बाह्यतः सूर्य्यो भ्रमते मण्डलानि तु । उद्वेष्टयन्वैवेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे ज्यौतिषचक्रवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततोऽध्यायः ।

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यरथवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

स रथोऽधिष्ठितो देवैर्मासि मासियथाक्रमम् । ततो वहत्यथादित्यं बहुभिर्ऋषिभिःसह
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सर्पग्रामणि राक्षसैः । एते वसन्ति वै सूर्य्ये मासौद्वौ द्वौ क्रमेण च
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापती । उरगौ वासुकिश्चैव सङ्कीर्णश्चैव तावुभौ ॥
तुम्बरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायताम्बरौ । कृतस्थलाप्सराश्कैव या च सा पुञ्जिकस्थली
ग्रामण्यौ रथकृत्तस्य रथौजाश्चैव तावुभौ । रक्षोहेतिः प्रहेतिश्च यातुधानादुभौस्मृतौ
मधुमाधवयोर्ह्येष गणो वसति भास्करे । वसन् ग्रीष्मे तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्चवै
ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च नागौ तक्षकरम्भकौ । मेनका सहधन्या च हाहा हूहूश्च गायकौ ।
रथन्तरश्च ग्रामण्यौ रथकृच्चैव तावुभौ । पौरुषेयो बधश्चैव यातुधानौ तु तौ स्मृतौ ॥

एते वसन्ति वै सूर्य्येमासयोःशुचिशुक्रयोः । ततः सूर्य्ये पुनश्चान्या निवसन्तिस्मदेवताः
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च । एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगः ॥१०
विश्वावसुसुसेनौ च प्रातश्चैव रथश्च हि । प्रम्लोचेत्यप्सराश्चैवनिम्लोचन्तीचतेउभे ॥
यातुधानस्तथा हेतिर्व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ । नभस्य नभसोरेतैर्वसन्तश्च दिवाकरे ॥१२॥
मासौ द्वौ देवताः सूर्य्ये वसन्ति च शरद्वतौ । पर्यन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजः सगौतमः
चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वा सुरुचिश्च यः । विश्वाची च घृताची च उभेते पुण्यलक्षणे
नागश्चैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः । सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानी ग्रामणीस्तथा ॥१५

चारोवातश्च द्वावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्त्ये ते च वै सूर्य्ये मासयोश्च त्विषोर्जयोः ॥ १६ ॥

हेमन्तिकौ च द्वौ मासौ निवसन्ति दिवाकरे । अंशोभगश्च द्वावेतौ कश्यपश्चक्रतुश्चत
भुजङ्गश्च महापत्यसर्पः कर्कोटकस्तथा । चित्रसेनश्च गन्धर्वः पूर्णायुश्चैव गायनौ ॥
अप्सराः पूर्वचित्तिश्च गन्धर्वाह्युर्वशी च या । तक्षा वारिष्ठनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ

विद्युत् सूर्य्यश्च तावुग्रौ यातुधानौ तु तौ स्मृतौ ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्ये ते दिवाकरे ॥ २० ॥

ततस्तु शिशिरे चापि मासयोर्निवसन्ति ते । त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च॥
काद्रवेयौ यथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ । गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ ॥
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा । ग्रामणीर्ऋतजिच्चैव सत्यजिच्च महाबलः ॥
ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञोपेतस्तथैव च । इत्येते निवसन्तिस्म द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादशसप्तकाः ।
सूर्यमापादयत्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥ २५ ॥

ग्रथितैस्तु वचोभिश्च स्तुवन्ति ऋषयो रविम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥
विद्याग्रामणिनो यक्षाःकुर्वन्त्याभीषु संग्रहम् । सर्पाःसर्पन्तिवै सूर्योयातुधानानुयान्तिच
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम् । एतेषामेव देवानां यथावीर्य्यं यथा तपः
यथायोगं यथाधर्मं यथातत्त्वं यथाबलम् । तथा तपत्यसौ सूर्य्यस्तेषामिद्धस्तु तेजसा॥

भूतानामशुभं सर्वं व्यपोहति स्वतेजसा । मानवानां शुभैर्ह्येतैर्ह्रियते दुरितन्तु वै ॥३०॥
दुरितं शुभचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् । एते सहैवसूर्य्येण भ्रमन्ति सानुगा दिवि
तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः । गोपायन्तिस्म भूतानि ईहन्ते ह्यनुकम्पया ॥
स्थानाभिमानिनां ह्येतत् स्थानंमन्वन्तरेषु वै । अतीतानागतानाञ्च वर्तन्ते साम्प्रतञ्च ये
एवं वसन्ति वै सूर्य्ये सप्तकास्ते चतुर्दश । चतुर्दशेषु वर्त्तन्ते गणा मन्वन्तरेषु वै ॥३४॥

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु च मुञ्चमानो घर्मं हिमञ्च वर्षञ्च निशां दिनञ्च ।
गच्छत्यसावनुदिनं परिवृत्य रश्मीन् देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च सुतर्पयन्वै ॥
शुक्ले च कृष्णे तदहः क्रमेण कालक्षये चैव सुराः पिबन्ति ।
मासेन तच्चामृतमस्य मृष्टं सुवृष्टये रश्मिषु रक्षितं तु ॥३६॥
सर्वेऽमृतं तत् पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव काव्याः ।
सूर्य्येण गोभिर्हविवर्द्धिताभिरद्भिः पुनश्चैव समुच्छ्रिताभिः ॥३७॥
वृष्ट्याभिवृष्टाभिरथौषधीभिर्मर्त्या अथान्नेन क्षुधं जयन्ति ।
तृप्तिश्चाप्यमृतेनार्द्धमासं सुराणां मासे स्वाहाभिः स्वधया पितॄणाम् ॥
अनेन जीवन्त्यनिशं मनुष्याः सूर्य्यः श्रितन्तद्धि बिभर्ति गोभिः ॥३८॥

इत्येष एकचक्रेण सूर्य्यस्तूर्णं प्रसर्पति । तत्र तैरक्रमैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिनक्षये ॥ ३९ ॥

हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ।
पुनः प्रमुञ्चत्यथ ताश्च यो हरिः समुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमैः ॥ ४० ॥
अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन् ।
सप्तद्वीपसमुद्रांस्तु सप्तभिः सप्तभिर्द्रुतम् ॥ ४१ ॥
च्छन्दोरूपैश्च तैरश्वैर्यतश्चक्रं ततः स्थितिः ।
कामरूपैः सकृद्युक्तैः कामगैस्तैर्मनोजवैः ॥ ४२ ॥

हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः । वाह्यतोऽनन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसः क्रमात् ॥
कल्पादौ सम्प्रयुक्ताश्च वहन्त्याभूतसंप्लवम् । आवृतो वालखिल्यैश्च भ्रमते रात्र्यहानि तु
ग्रथितैः स्ववचोभिश्च स्तूयमानो महर्षिभिः । सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः

पतङ्गैः पतगैरश्वैर्भ्राम्यमाणो दिवस्पतिः । वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी

हासवृद्धी तथैवास्य रश्मयः सूर्यवत् स्मृताः ।

त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयः शशिनो रथः ॥ ४७ ॥

अपाङ्गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः । सहारैस्तै स्त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः

दशभिस्तुरगैर्दिव्यैरसङ्गैस्तन्मनोजवैः । सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्तस्त्वायुगक्षयम् ॥

संग्रहीता रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षुःश्रवाश्च वै । अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसः

अजश्च त्रिपथश्चैव वृषो वाजी नरो हयः ।

अंशुमान् सप्तधातुश्च हंसो व्योम मृगस्तथा ॥ ५१ ॥

इत्येते नामभिश्चैव दश चन्द्रमसो हयाः । एवं चन्द्रमसं देवं वहन्ति स्मायुगक्षयम् ॥

देवैः परिवृतः सोमः पितृभिःसह गच्छति । सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे परतः स्थिते

आपूर्यते परो भागः सोमस्य तु अहःक्रमात् । ततः पीतक्षयं सोमं युगपद्व्यापयन् रविः

पीतं पञ्चदशाहञ्च रश्मिनैकेन भास्करः । आपूरयन् ददौ तेन भागं भागमहःक्रमात् ॥

सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ले वर्द्धन्ति वै कलाः ।

तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ले ह्याप्याययन्ति च ॥ ५६ ॥

इयेवं सूर्य्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायते तनुः । पूर्णमास्यां प्रदृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ॥

एवमाप्यायते सोमः शुक्लपक्षेष्वहःक्रमात् । ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ॥

अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च । पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधुसौम्यं तथामृतम्

संभृतन्त्वर्द्धमासेन अमृतं सूर्य्यतेजसा । भक्षार्थमागतं सोमं पौर्णमास्यामुपासते ॥६०

एकरात्रं सुराः सार्द्धं पितृभिर्ऋषिभिश्च वै ।

सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य वै ॥ ६१ ॥

प्रक्षीयते परे ह्यात्मा पीयमानकलाक्रमात् । त्रयश्च त्रिशता सार्द्धं त्रतस्त्रिशच्छतानि तु

त्रयस्त्रिशत् सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै ।

इत्येवं पीयमानस्य कृष्णे वर्द्धन्ति ताः कलाः ॥ ६२ ॥

क्षीयन्ते च ततः शुक्लाः कृष्णा ह्याप्याययन्ति च ।

एवं दिनक्रमात् पीते देवैश्चापि निशाकरे ॥ ६४ ॥
पीत्वार्द्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुराश्च ते।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम् ॥ ६५ ॥
ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छेषे निशाकरे। ततोऽपराह्णे पितरो यदन्यदिवसे पुनः ॥
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टास्तास्तु कलास्तु याः।
विनिस्सृष्टं त्वमावास्यां गभस्तिभ्यस्तदामृतम् ॥६७ ॥
अर्द्धमाससमाप्तौ तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम्।
सौम्या वर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये स्मृताः ॥ ६८ ॥
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते।
सम्वत्सराश्च ये काव्या पञ्चाद्वा वै द्विजाः स्मृताः ॥ ६९ ॥
सौम्याः सुतपसो ज्ञेया सौम्या बर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्तास्त्रयश्चैव पितृसर्गस्थिता द्विजाः ॥ ७० ॥
पितृभिः पीयमानायां पञ्चदश्यान्तु वै कलाम्।
यावच्च क्षीयते तस्माद् भागः पञ्चदशस्तु सः ॥ ७१ ॥
अमावास्यां तथा तस्य अन्तरा पूर्यतेपर.। वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोड़श्यांशशिनःस्मृतौ
एवं सूर्य्यनिमित्ते ते क्षयवृद्धी निशाकरे ॥ ७२ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे सूर्याचन्द्रमसोर्गतिवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहाणांगतिवर्णनम्।

सूत उवाच।

ताराग्रहाणांवक्ष्यामि स्वर्भानोस्तु रथं पुनः। अथ तेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वैरथः
युक्तोहयैः पिशङ्गैस्तु दशभिर्वातरंहसैः। श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गोनीलःश्यामो विलोहितः

श्वेतश्च हरितश्चैव पृषतो वृष्णिरेव च। दशभिस्तु महाभागैरुत्तमैर्वातसम्भवैः॥ ३॥
ततो भौमरथश्चापि अष्टाङ्गः काञ्चनः स्मृतः। अष्टभिर्लोहितैरश्वैः सध्वजैरग्निसम्भवैः
सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः। अतश्चाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः
गौराश्वेन तु रौप्येण स्यन्दनेन विसर्पति। युक्तेनाष्टाभिरश्वैश्च ध्वजैरग्निसमुद्भवैः॥६॥
अब्दं वसति यो राशौ स्वदिशन्तेन गच्छति। ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः सबलैर्वातरंहसैः॥

काष्र्णायसं समारुह्य स्यन्दनं यात्यसौ शनिः।
स्वर्भानोस्तु तथाष्टाश्वाः कृष्णा वै वातरंहसः॥ ८॥

रथन्तमोमयं तस्य वहन्तिस्म सुदंशिताः। आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु
आदित्यमेति सोमाच्च तमसां तेषु पर्वसु। ततः केतुमतस्त्वश्वा अष्टौ ते वातरंहसः॥
पलालधूमवर्णाभाः क्षामदेहाः सुदारुणाः। एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह
सर्वे ध्रुवे निबद्धास्तेनिबद्धा वातरश्मिभिः। एते वै भ्राम्यमाणास्ते यथायोगं वहन्तिवै
वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः। परिभ्रमन्ति तद्वद्ध्वाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि
यावत्तमनुपर्येति ध्रुवं वै ज्योतिषाङ्गणः। यथा नद्युदके नौस्तु उदकेन सहोह्यते॥१४॥
तथा देवगृहाणि स्युरुह्यन्ते वातरंहसा। तस्माद्यानि प्रगृह्यन्ते व्योम्नि देवगृहा इति॥

यावन्त्यश्चैव ताराः स्युस्तावन्तोऽस्य मरीचयः।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति च॥ १६॥

तैलपीडं यथा चक्रं भ्रामते भ्रामयन्ति वै। तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वाताबद्धानि सर्वशः
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु। यस्मात् प्रवहते तानि प्रवहस्तेन स स्मृतः॥

एवं ध्रुवे नियुक्तोऽसौ भ्रमते ज्योतिषाङ्गणः।
एष तारामयः प्रोक्तः शिशुमारे ध्रुवा दिवि॥ १९॥

यदह्ना कुरुते पापन्तं दृष्ट्वा निशि मुञ्चतः। शिशुमारशरीरस्था यावन्त्यस्तारकास्तु ताः॥
वर्षाणि दृष्ट्वा जीवेत तावदेवाधिकानि तु। शिशुमाराकृतिं ज्ञात्वा प्रविभागेत सर्वशः॥
उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयः सोत्तरा हनुः। यज्ञोधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्द्धानमाश्रितः॥
हृदि नारायणःसाध्या अश्विनीपूर्वपादयोः। वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्यसक्थिनी

शिश्नेसम्वत्सरोज्ञेयो मित्रश्चापानमाश्रितः। पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिःकश्यपोध्रुवः
एष तारामयः स्तम्भो नास्तमेति नचोदयम्। नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह॥
तन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूता दिवि स्थिताः। ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्
परियान्ति सुरश्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि। आग्नीध्रकाश्यपानान्तु तेषां स परमो ध्रुवः॥
एकएव भ्रमत्येष मेरोरन्तरमूर्द्धनि। ज्योतिषाञ्चक्रमादाय आकर्षंस्तमधोमुखः॥२८॥
मेरुमालोकयन्नेव प्रति याति प्रदक्षिणम्।
इति श्रीमत्स्यपुराणे ताराग्रहाणांगतिवर्णनं नाम षडविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहाणांगतिवर्णनम्।

ऋषय ऊचुः।

यदेतद्भवता प्रोक्तं श्रुतं सर्वमशेषतः। कथं देवगृहाणि स्युः पुनर्ज्योतींषि वर्णय॥ १॥

सूत उवाच।

एतत्सर्वंप्रवक्ष्यामि सूर्य्याचन्द्रमसोर्गतिम्। यथा देवगृहाणिस्युः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा
अग्नेर्व्युष्टौ रजन्यां वै ब्रह्मणा व्यक्तयोनिना। अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसावृतम्
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् ब्रह्मणा समधिष्ठिते। स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र लोकतत्त्वार्थसाधकः
खद्योतरूपी विचरन्नाविर्भावं व्यचिन्तयत्।
ज्ञात्वाग्निं कल्पकालादावपः पृथ्वीञ्च संश्रिताः॥५॥
स सम्भृत्य प्रकाशार्थन्त्रिधातुल्योऽभवत् पुनः।
पाचको यस्तु लोकेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते॥६॥
यत्रासौ तपरे सूर्ये शुचिरग्निश्च स स्मृतः। वैद्युतो जठरः सौम्यो वैद्युतश्चाप्यनिन्धनः
तेजोभिश्चाप्यतेकश्चित्कश्चिदेवाप्यनिन्धनः।काष्ठेन्धनस्तुनिर्मथ्यःसोऽद्भिःशाम्यतिपावकः

अर्चिष्मान् पचनोऽग्निस्तु निष्प्रभः सौम्यलक्षणः ।
यश्चासौ मण्डले शुक्ले निरूष्मा न प्रकाशते ॥ ६ ॥

प्रभा सौरी तु पादेन अस्तं याति दिवाकरे। अग्निमाविशते रात्रौ तस्मादग्निः प्रकाशते

उदिते तु पुनः सूर्य्ये ऊष्माग्नेस्तु समाविशत् ।
पादेन तेजसश्चाग्नेस्तस्मात् सन्तपते दिवा ॥११॥

प्राकाश्यश्च तथोष्णञ्च सौर्याग्नेये तु तेजसी । परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्

उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा ह्यस्मिंस्तु दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुनः सूर्य्ये रात्रिमाविशते ह्यपः ॥१३॥
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।
अस्तङ्गते पुनः सूर्य्ये अहो वै प्रविशत्यपः ॥१४॥
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला ह्यापो दृश्यन्ति भासुराः ।
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ॥१५॥
उदयास्तमये ह्यत्र अहोरात्रं विशत्यपः ।
यश्चासौ तपते सूर्य्यः सोऽपः पिबति रश्मिभिः ॥१६॥

सहस्रपादस्त्वेषोऽग्नी रक्तकुम्भनिभस्तु सः । आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेणसमन्ततः
आपो नदीसमुद्रेभ्यो ह्रदकूपेभ्य एव च । तस्य रश्मिसहस्रेण शीतवर्षोष्णनिःस्रवः ॥
तासाञ्चतुःशतं नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः । चन्दनाश्चैव मेध्याश्च केतनाश्चेतनास्तथा
अमृता जीवनाः सर्वा रश्मयोवृष्टिसर्जनाः । हिमोद्वहाश्चतान्योन्यंरश्मयस्त्रिशतःस्मृताः

चन्द्रताराग्रहैः सर्वैः पीता भानोर्गभस्तयः ॥२१॥
एता मध्यास्तथान्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः ।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वसृतश्च याः ॥२२॥
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशत्या धर्म्मसर्जनाः ।
सम्बिभ्रति हि ताः सर्वाः मनुष्यान्देवताः पितॄन् ॥२३॥

मनुष्यानौषधीभिश्च स्वधया च पितॄनपि । अमृतेन सुरान् सर्वान् सन्ततस्परि तर्पयन्

वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शनैः सन्तपते त्रिभिः। वर्षासु च शरद्यवं चतुर्भिः संप्रवर्षति ॥
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गस्त्रिभिः पुनः।
औषधीषु बलन्धत्ते सुधाञ्च स्वधया पुनः ॥२६॥
सूर्योऽमरत्वमस्मृते त्रयस्त्रिषु नियच्छति। एवं रश्मिसहस्रन्तु सौरं लोकार्द्धसाधनम्
भिद्यतेऽऋतुमासाद्य सहस्रं बहुधा पुनः। इत्येवं मण्डलं शुक्लं भास्वरं लोकसंज्ञितम् ॥
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च। चन्द्रऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ॥
सुषुम्ना सूर्यरश्मिर्या क्षीणं शशिनमेधते। हरिकेशः पुरस्तात्तु योवै नक्षत्रयोनिकृत् ॥
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिराप्याययद् बुधम्।
विश्वावसुश्च यः पश्चाच्छुक्रयोनिश्च स स्मृतः ॥ ३१ ॥
सम्बर्द्धनस्तु यो रश्मिः सयोनिर्लोहितस्य च।
षष्ठस्तु ह्यश्वभूरश्मिर्योनिः स हि बृहस्पतेः ॥ ३२ ॥
शनैश्चरंपुनश्चापि रश्मिराप्यायते सुराट्। न क्षीयते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रतास्मृता ॥
क्षेत्राण्येतानि वै सूर्यमापतन्ति गभस्तिभिः। क्षेत्राणि तेषामादत्ते सूर्योनक्षत्रता ततः ॥
अस्माल्लोकादमुं लोकं तीर्णानां सुकृतात्मनाम्।
तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव शुक्लिकाः ॥ ३५ ॥
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च वंशानाञ्चैव सर्वशः।
तपसस्तेजसो योगादादित्य इति गद्यते ॥ ३६ ॥
स्रवतिः स्यन्दनार्थे धातुरेष निगद्यते।
स्रवणात्तेजसश्चैव तेनासौ सविता स्मृतः ॥३७॥
बह्वर्थश्चन्द इत्येष प्रधानो धातुरुच्यते। शुक्लत्वे ह्यमृतत्वे च शीतत्वे ह्रादनेऽपि च ॥
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे। जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥
वसन्ति कर्म्मदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋषिसूर्यग्रहादयः ॥४०
तानि देवगृहाणि स्युः स्थानाख्यानि भवन्ति हि।
सौरं सूर्योऽविशत् स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥४१॥

शौक्रं शुक्राऽविशत् स्थानं षोडशारं प्रभास्वरम् ।
बृहस्पतिर्बृ हत्वञ्च लोहितश्चापि लोहितः ॥४२॥

शनैश्चरोऽविशत् स्थानमेवं शानैश्चरं तथा । बुधोऽपि वै बुधस्थानं भानुंस्वर्भानुरेवच नक्षत्राणि च सर्वाणि नाक्षत्राण्यविशन्ति च । ज्योतींषि सुकृतामेते ज्ञेया देवगृहास्तुवे स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम् । मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै अभिमानेन तिष्ठन्ति तानि देवाः पुनः पुनः । अतीतास्तुसहातीतैर्भाव्याभाव्यैःसुरैः सह वर्तन्ते वर्तमानैश्च सुरैः सार्द्धन्तु स्थानिनः । सूर्योदेवो विवस्वांश्च अष्टमस्त्वदितेःसुतः

द्युतिमान् धर्म्मयुक्तश्च सोमो देवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो दैत्यस्तु विज्ञेयो भार्गवो सुरयाजकः ॥४८॥

बृहस्पतिर्बृ हत्तेजा देवाचार्योऽङ्गिरःसुतः । बुधोमनोहरश्चैव शशिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥

शनैश्चरो विरूपश्च संज्ञापुत्रो विवस्वतः ।
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवाऽसौ लोहिताधिपः ॥५०॥
नक्षत्रनाम्न्यः क्षेत्रेषु दाक्षायण्यः सुताः स्मृताः ।
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंसाधनोसुरः ॥५१॥
चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रेष्वभिमानी प्रकीर्त्तितः ।
स्थानान्येतानि चोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ॥५२॥

शुक्लमग्निसमं दिव्यं सहस्रांशोर्विवस्वतः । सहस्रांशुत्विषः स्थानमन्मयन्तेजसं तथा ॥

आशास्थानं मनोज्ञस्य रविरश्मिगृहे स्थितम् ।
शुक्रः षोडशरश्मिस्तु यस्तु देवो ह्यपोमयः ॥५४॥

लोहितो नवरश्मिस्तु स्थानमापन्तु तस्य वै । बृहद्द्वादशरश्मीकं हरिद्राभन्तु वेधसः ॥ अष्टरश्मिशनेस्तत्तु कृष्णं वृद्धमयस्मयम् । स्वर्भानोस्त्वायसं स्थानं भूतसन्तापनालयम् सुकृतामाश्रयास्तारा रश्मयस्तु हिरण्मयाः । तारणात्तारकाह्येताःशुक्लत्वाच्चैव तारकाः नवयोजनसाहस्रोविष्कम्भःसवितुःस्मृतः । मण्डलंद्विगुणंचास्यविस्तारोभास्करस्य तु द्विगुणःसूर्यविस्ताराद्विस्तारःशशिनःस्मृतः । त्रिगुणंमण्डलंचास्यवैपुल्याच्छशिनःस्मृतम्

सर्वोपरिनिष्टानि मण्डलानि तु तारकाः। योजनार्द्धप्रमाणानि ताभ्योऽन्यानिगणानि तु
तल्पोभूत्वातुस्वर्भानुस्तदधस्तात्प्रसर्पति। उद्धृत्यपार्थिवींच्छायांनिर्मितांमण्डलाकृतिम्
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तृतीयन्तुतमोमयम्। आदित्यात्सतुनिष्क्रम्यसोमंगच्छतिपर्वसु
आदित्यमेति सोमाच्चपुनःसौरेषुपर्वसु। स्वभासातुदतेयस्मात्स्वर्भानुरितिसस्मृतः॥
चन्द्रतःषोडशोभागोभार्गवस्यविधीयते। विष्कम्भान्मण्डलाच्चैवयोजनानान्तुसस्मृतः
भार्गवात्पादहीनश्च विज्ञेयोवैवृहस्पतिः। वृहस्पतेः पादहीनौ केतुवक्रावुभौ स्मृतौ॥
विस्तारमण्डलाभ्यान्तु पादहीनस्तयोर्वुधः। तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै॥
वुधेन समरूपाणि विस्तारान्मण्डलात्तु वै। तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्॥
शतानि पञ्चचत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव च। सर्वोपरिनिसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः
योजनार्द्धप्रमाणानि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते। उपरिष्टात्तु ये तेषां गृहा ये क्रूरसात्विकाः
सौरश्चाङ्गिरसोवक्रो विज्ञेयामन्दचारिणः। तेभ्योऽधस्तात्तुचत्वारःपुनश्चान्ये महाग्रहाः

सोमः सूर्य्यो बुधश्चैव भार्गवश्चेति शीघ्रगाः।
यावन्ति चैव ऋक्षाणि कोट्यस्तावन्ति तारकाः॥७१॥
सर्वेषान्तु ग्रहाणां वै सूर्य्योऽधस्तात्प्रसर्पति।
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्ध्वं चरते शशी॥७२॥

नक्षत्रमण्डलञ्चापि सोमादूर्द्ध्वंप्रसर्पति। नक्षत्रेभ्योवुधश्चोर्द्ध्वंवुधाच्चोर्द्ध्वन्तुभार्गवः
वक्रस्तु भार्गवादूर्द्ध्वंवक्रादूर्ध्वंवृहस्पतिः। तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वंदेवाचार्योपरिस्थितः

शनैश्चरात्तथा चोर्ध्वं ज्ञेयं सप्तर्षिमण्डलम्।
सप्तर्षिभ्यो ध्रुवश्चोर्ध्वं समस्तं त्रिदिवं ध्रुवे॥७५॥

द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च। गृहान्तरमथैकैकमूर्द्ध्वं नक्षत्रमण्डलात्॥७६॥
ताराग्रहान्तराणिस्युरुपर्युपर्य्यधिष्ठितम्। ग्रहाश्चन्द्रसूर्य्यौ च दिवि दिव्येन तेजसा॥
नक्षत्रेषु च युज्यन्ते गच्छन्तो नियतक्रमात्। चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रानीचोच्चगृहमाश्रिताः॥
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः। परस्परं स्थिता ह्येवं युज्यन्तेच परस्परम्॥
असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः। इत्येवं सन्निवेशो वैपृथिव्या ज्योतिषाश्रयः

द्वीपानामुदधीनाञ्च पर्वतानां तथैव च । वर्षाणाञ्च नदीनाञ्च ये च तेषु वसन्ति वै॥८१
इत्येषोऽर्कवशेनैवसन्निवेशस्तुज्योतिषाम् । आवर्तःसान्तरोमध्येसंक्षिप्तश्चध्रुवात्तु सः
सर्वतस्तेषु विस्तीर्णो वृत्ताकार इवोच्छ्रितः । लोकसम्व्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः
कल्पादौ बुद्धिपूर्वन्तु स्थापितोऽसौ स्वयम्भुवा ।
इत्येष सन्निवेशो वै सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ॥ ८४ ॥
वैश्वरूपं प्रधानस्यपरिणाहोऽस्ययःस्मृतः । तेषां शक्यं न संख्यातुंयाथातथ्येन केनचित्
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मां-स चक्षुषा ॥ ८५ ॥
इति श्रीमत्स्यमहापुराणे ज्यौतिषचक्रवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मयासुराख्यानवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कथं जगाम भगवन् पुरारित्वं महेश्वरः । ददाह च कथं देवस्तन्नो विस्तरतो वद॥
पृच्छामस्त्वां वयं सर्वे बहुमानात् पुनः पुनः । त्रिपुरन्तद्यथादुर्गं मयमायाविनिर्मितम् ।
देवेनैकेषुणा दग्धं तथा नो वद मानद ! ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

शृणुध्वं त्रिपुरं देवो यथा दारितवान् भवः ।मयोनाम महामायो मायानांजनकोऽसुरः
निर्जितः स तु संग्रामे तताप परमन्तपः । तपस्यन्तन्तु तं विप्रा दैत्यावन्यावनुग्रहात्॥
तस्यैव कृत्यमुद्दिश्य तेपतुः परमन्तपः । विद्युन्माली च बलवान् तारकाख्यश्चवीर्यवान्
मयतेजःसमाक्रान्तौ तेपतुर्मयपार्श्वगौ । लोका इव यथामूर्तास्त्रयस्त्रय इवाग्नयः॥
लोकत्रयं तापयन्तस्ते तेपुर्दानवास्तपः । हेमन्ते जलशय्यासु ग्रीष्मे पञ्चतपे तथा ॥७॥
वर्षासु च तथाकाशे क्षपयन्तस्तनूः प्रियाः ।

सेवानाः फलमूलानि पुष्पाणि च जलानि च ॥८॥

अन्यदाचरिताहाराः पङ्केनाचितवल्कलाः । मग्नाः शैवालपङ्केषु विमला विमलेषु च ॥
निर्मांसाश्च ततो जाताः कृशाधमनिसन्तताः । तेषां तपःप्रभावेन प्रभावविधुतं यथा ॥
निष्प्रभन्तु जगत् सर्वं मन्दमेवाभिभाषितम् । दह्यमानेषु लोकेषु तैस्त्रिभिर्दानवाग्निभिः
तेषामग्रे जगद् बन्धुः प्रादुर्भूतः पितामहः । ततः साहसकर्तारःप्राहुस्तेसहसागतम् ॥
स्वकम्पितामहं दैत्यास्तंवैतुष्टुवुरेव च । अथ तान् दानवान् ब्रह्मा तपसा तपनप्रभान् ॥
उवाच हर्षपूर्णाक्षो हर्षपूर्णमुखस्तदा । वरदोऽहं हि वो वत्सास्तपस्तोषित आगतः ॥

व्रीयताभीप्सितं यच्चसाभिलाषं तदुच्यताम् ।

इत्येवमुच्यमानन्तु प्रतिपन्नं पितामहम् ॥ १५ ॥

विश्वकर्मा मयः प्राह प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः । देवदैत्याः पुरा देवैः संग्रामे तारकामये ॥
निर्जितास्ताडिताश्चैव हताश्चाप्यायुधैरपि । देवैर्वैरानुबन्धाच्च धावन्तो भयवेपिताः ॥
शरणन्नैव जानीमः शर्म्म वा शरणार्थिनः । सोऽहं तपः प्रभावेण तव भक्त्या तथैव च ॥
इच्छामि कर्त्तुं तद्दुर्गं यद्देवैरपि दुस्तरम् । तस्मिंश्च त्रिपुरे दुर्गे मत्कृते कृतिनां वरः ॥

भूम्यानां जलजानाञ्च शापानां मुनितेजसाम् ।

देवप्रहरणानाञ्च देवानाञ्च प्रजापते ! ॥ २० ॥

अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम् । विश्वकर्मा इतीवोक्तः स तदा विश्वकर्मणा॥
उवाच प्रहसन् वाक्यं मयं दैत्यगणाधिपम् । सर्वामरत्वं नैवास्ति असद्वृत्तस्य दानव॥
तस्माद्दुर्गविधानं हि तृणादपि विधीयताम् । पितामहवचः श्रुत्वा तदैवं दानवो मयः
प्राञ्जलिः पुनरप्याह ब्रह्माणं पद्मसम्भवम् । शम्भुरेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत् ॥
समं स संयुगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत् । एवमस्त्विति चाप्युक्त्वामयं देवः पितामहः
स्वप्ने लब्धो यथार्थो वै तत्रैवादर्शनं ययौ । गते पितामहे दैत्या गता मयरविप्रभाः ॥
वरदानाद्विरेजुस्ते तपसा च महाबलाः ।समयस्तु महाबुद्धिर्दानवो वृषसत्तमः ॥ २७ ॥
दुर्गं व्यवसितः कर्त्तुमिति चाचिन्तयत्तदा । कथं नाम भवेद्दुर्गं तन्मया त्रिपुरं कृतम् ॥

वत्स्यं हि तत् पुरं दिव्यं मत्तो नान्यैर्न संशयः ।

यथा चैकेषुणा तेन तत्पुरं न हि हन्यते ॥ २९ ॥
देवैस्तथा विधातव्यं मया मतिविचारणम् ।
विस्तारो योजनशतमेकैकस्य पुरस्य तु ॥ ३० ॥
कार्यस्तेषाञ्च विष्कम्भश्चैकैकशतयोजनम् । पुष्पयोगेन निर्माणं पुराणञ्च भविष्यति॥
पुष्पयोगेन च दिवि समेष्यन्ति परस्परम् । पुष्पयोगेन युक्तानि यस्तान्यासादयिष्यति
पुराण्येकप्रहारेण शतानि निहनिष्यति । आयसन्तु क्षितितले राजतन्तु नभस्तले॥
राजतस्योपरिष्टात्तु सौवर्णं भविता पुरम् । एवं त्रिभिः पुरैर्युक्तं त्रिपुरं तद्भविष्यति॥
शतयोजनविष्कम्भैरन्तरैस्तद्दुरासदम् ॥ ३४ ॥
अट्टालकैर्यन्त्रशतघ्निभिश्च सचक्रशूलोपलकम्पनैश्च ।
द्वारैर्महामन्दरमेरुकल्पैः प्राकारशृङ्गैः सुविराजमानम् ॥ ३५ ॥
सतारकाख्येन मयेन गुप्तं स्वस्थञ्च गुप्तं तडिन्मालिनापि ।
को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम् ॥३६ ॥
इति श्री मत्स्यमहापुराणे त्रिपुराख्यानवर्णनं नामाष्टविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मयस्यत्रिपुरनिर्माणम् ।

सूत उवाच ।

इति चिन्त्य मयो दैत्यो दिव्योपायप्रभावजम् । चकार त्रिपुरं दुर्गंमनःसञ्चारचारितम्
प्रकारोऽनेन मार्गेण इह वामुत्र गोपुरम् । इह चाट्टालकद्वारमिह चाट्टालगोपुरम् ॥२॥
राजमार्गं इतश्चापि विपुलो भवतामिति । रथ्योपरथ्याः सत्रिका इहचत्वर एवच ॥३॥
इदमन्तःपुरस्थानं रुद्रायतनमत्र च । सवटानि तड़ागानि ह्यत्र वाप्यः सरांसि च ॥४॥
आरामाश्च सभाश्चात्र उद्यानान्यत्र वा तथा । उपनिर्गमो दानवानां भवत्यत्र मनोहरः॥

इत्येवं मानसं तत्राकल्पयत् पुरकल्पवित् । मयेन तत्पुरं सृष्टं त्रिपुरं त्विति नः श्रुतम् ॥
कार्ष्णायसमयं यत्तु मयेन विहितं पुरम् । तारकाख्योऽधिपस्तत्रकृतस्थानाधिपोऽवसत् ।
यत्तु पूर्णेन्दुसङ्काशं राजतं निर्मितं पुरम् । विद्युन्माली प्रभुस्तत्र विद्युन्मालीत्विवाम्बुदः
सुवर्णाविकृतं यत्र मयेन विहितं पुरम् । स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः ॥ ६ ॥
तारकस्य पुरं तत्र शतयोजनमन्तरम् । विद्युन्मालिपुरञ्चापि शतयोजनकेऽन्तरम् ॥१०।
मेरुपर्वतसङ्काशं मयस्यापि पुरं महत् । पुष्पसंयोगमात्रेण कालेन समयः पुरा ॥ ११ ॥
कृतवांस्त्रिपुरं दैत्यस्त्रिनेत्रः पुष्पकं यथा । येन येन मयो याति प्रकुर्वाणः पुरं पुरात् ॥

प्रशास्तास्तत्र तत्रैव वारुण्यामालयाः स्वयम् ।
रुक्मरूप्यायसानाञ्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १३ ॥

रत्नाचितानि शोभन्ते पुराण्यमरविद्विषाम् । प्रासादशतजुष्टानि कूटागारोत्कटानि च ॥
सर्वेषां कामगानि स्युः सर्वलोकातिगानि च । सोद्यानवापीकूपानि सपद्मसरवन्ति च
अशोकवनभूतानि कोकिलारुतवन्ति च । चित्रशालाविशालानि चतुःशालोत्तमानि च
सप्ताष्टदशभौमानि सत्कृतानि मयेन च । बहुध्वजपताकानि स्रग्दामालङ्कृतानि च ॥
किङ्किणीजालशब्दानि गन्धवन्ति महान्ति च । सुसंयुक्तोपलिप्तानि पुष्पनैवेद्यवन्ति च
यज्ञधूमान्धकाराणि संपूर्णकलशानि च । गगनावरणाभानि हंसपङ्क्तिनिभानि च ॥
पङ्क्तीकृतानि राजन्ते गृहाणि त्रिपुरे पुरे । मुक्ताकलापैर्लम्बद्भिर्हसन्तीव शशिश्रियम् ॥
मल्लिकाजातिपुष्पाद्यैर्गन्धधूपाधिवासितैः । पञ्चेन्द्रियसुखैर्नित्यं समैः सत्पुरुषैरिव ॥
हेमराजतलोहाद्यमणिरत्नाञ्जनाङ्किताः । प्राकारास्त्रिपुरे तस्मिन् गिरिप्राकारसन्निभाः ॥

एकैकस्मिन् पुरे तस्मिन् गोपुराणां शतं शतम् ।
सपताका ध्वजवतीर्दृश्यन्ते गिरिशृङ्गवत् ॥ २३ ॥
नूपुरारावरम्याणि त्रिपुरे तत् पुराण्यपि ।
स्वर्गातिरिक्तश्रीकाणि तत्र कन्यापुराणि च ॥ २४ ॥

आरामैश्च विहारैश्च तडागवटचत्वरैः । सरोभिश्च सरिद्भिश्च वनैश्चोपवनैरपि ॥ २५ ॥
दिव्यभोगोपभोगानि नानारत्नयुतानि च । पुष्पोत्करैश्च सुभगास्त्रि पुरस्योपनिर्गमाः॥

परिखाशतगम्भीराः कृता मायानिवारणैः ।
निशम्य तद्दुर्गविधानमुत्तमं कृतं मयेनाद्भुतवीर्यकर्मणा ।
दितेःसुता दैवतराजवैरिणः सहस्रशः प्रापुरनन्तविक्रमाः ॥ २७ ॥
तदासुरैर्दर्पितवैरिमर्दनैर्जनार्दनैः शैलकरीन्द्रसन्निभैः ।
बभूव पूर्णं त्रिपुरं तथा पुरा यथाम्बरं भूरिजलैर्जलप्रदैः ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्स्यमहापुराणे मयस्यत्रिपुरनिर्माणवर्णनं नामोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मयाख्यानवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

निर्मिते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना । तद्दुर्गं दुर्गतां प्राप बद्धवैरैः सुरासुरैः ॥ १॥
सकलत्राः सुपुत्राश्च शस्त्रवन्तोऽथ कोपमाः । मयादिष्टानि विविशुर्गृहाणि हृषिताश्च ते
सिंहा वनमिवानेके मकरा इव सागरम् । रोषैश्चैवातिपारुष्यैः शरीरमिव संहतैः ॥३॥
तद्वद्बलिभिरभ्यस्तं तत् पुरं देवतारिभिः । त्रिपुरं संकुलं जातं दैत्यकोटिशताकुलम् ॥
सुतलादपि निष्पत्य पातालाद्दानवालयात् ।
उपतस्थुः पयोदाभा ये च गिर्युपजीविनः ॥ ५ ॥
योऽयं प्रार्थयते कामं संप्राप्तस्त्रिपुरात् त्रयात् ।
तस्य तस्य मयस्तत्र मायया विदधाति सः ॥ ६ ॥
सचन्द्रेषु च दोषेषु साम्बुजेषु सरःसु च । आरामेषु स चूतेषु तपोधन वनेषु च ॥ ७।
स्वङ्गाश्चन्दनदिग्धाङ्गा मातङ्गाः समदा इव । मृष्टाभरणवस्त्राश्च मृष्टस्रगनुलेपनाः ॥८॥
प्रियाभिः प्रियकामाभिर्हावभावप्रसूतिभिः । नारीभिः सततं रेमुर्मुदिताश्चैव दानवाः ॥९
मयेन निर्मिते स्थाने मोदमाना महासुराः । अर्थं धर्मं च कामं च निदधुस्ते मतिःस्वयम्

तेषां त्रिपुरयुक्तानां त्रिपुरे त्रिदशारिणाम्।
व्रजतिस्म सुखं कालः स्वर्गस्थानां यथा तथा ॥ ११ ॥

शुश्रूषन्तो पितॄन् पुत्रा पत्न्यश्चापि पतींस्तथा। विमुक्तकलहाश्चापि प्रीतयः प्रचुराभवन्
नाधर्मस्त्रिपुरस्थानां बाधते वीर्य्यवानपि। अर्चयन्तो दितेः पुत्रास्त्रिपुरायतने हरम् ॥
पुण्याहशब्दानुच्चैरुराशीर्वादांश्च वेदवान्। स्वनूपुररवोन्मिश्रान् वेणुवीणारवानपि ॥
हासश्च वरनारीणां चित्तव्याकुलकारकः। त्रिपुरे दानवेन्द्राणां रमतां श्रूयते सदा।१५॥
तेषामर्चयतांदेवान् ब्राह्मणांश्चनमस्यताम्। धर्मार्थकामतन्त्राणां महान् कालोऽभ्यवर्तत
अथालक्ष्मीरसूया च तृड्बुभुक्षे तथैव च। कलिश्च कलहश्चैव त्रिपुरं विविशुः सह ॥

सन्ध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरञ्च भयावहाः।
समभ्यासुः समं घोराः शरीराणि यथामयाः ॥ १८ ॥

सर्वे एते विशन्तस्तु मयेन त्रिपुरान्तरम्। स्वप्ने भयवहा दृष्टा आविशन्तस्तु दानवान्
उदिते च सहस्रांशौ शुभभासाकरे रवौ। मयः सभामाविवेश भास्कराभ्यामिवाम्बुदः
मेरुकूटनिभे रम्ये आसने स्वर्णमण्डिते। आसीनाः काञ्चनगिरेः शृङ्गे तोयमुचो यथा
पार्श्वयोस्तारकाख्यश्च विद्युन्मालीच दानवः। उपविष्टोमयस्यान्तेहस्तिनःकलभाविव
ततः सुरारयः सर्वे शेषकोपारणाजिरे। उपविष्टा दृढं बद्धा दानवा देवशत्रवः ॥ २३ ॥
तेष्वासीनेषु सर्वेषु सुखासनगतेषु च। मयो मायाविजनक इत्युवाच स दानवान् २४

खेचराः खेचराराषा भो भो दाक्षायणीसुताः!।
निशामयध्वं स्वप्नोऽयं मया दृष्टो भयावहः ॥२५॥

चतस्रः प्रमदास्तत्र त्रयोमर्त्या भयावहाः। कोपानला दीप्तमुखाः प्रविष्टास्त्रिपुरार्दिनः।
प्रविश्य रुषितास्ते च पुराण्यतुलविक्रमाः। प्रविष्टास्तच्छरीराणि भूत्वा बहुशरीरिणः॥
नगरं त्रिपुरञ्चेदं तमसा समवस्थितम्। सगृहं सह युष्माभिः सागराम्भसिमज्जितम्
उलूकं रुचिरा नारी नाम्ना रूढ़ा खरं तथा। पुरुषः सिन्दुतिलकश्चतुरङ्घ्रिस्त्रिलोचनः॥
येन सा प्रमदा नुन्ना अहञ्चैव विबोधितः। ईदृशी प्रमदा दृष्टा मया चाति भयावहा

एष ईदृशिकः स्वप्नो दृष्टो वै दितिनन्दनाः!।

दृष्टः कथं हि कष्टाय असुराणां भविष्यति ॥ ३१ ॥

यदि वोऽहं क्षमो राजा यदिदं वेत्थ चेङ्गितम् । निबोधध्वं सुमनसो नचासूयितुमर्हथ
कामं चेर्ष्याञ्च कोपञ्च असूयां संविहाय च । सत्येदमे च धर्मे च मुनिवादे च तिष्ठत।
शान्तयश्च प्रयुज्यन्तां पूज्यताञ्च महेश्वरः। यदि नामास्य स्वप्नस्य ह्येवञ्चोपरमोभवेत्
कुप्येत नो ध्रुवं रुद्रो देवदेवस्त्रिलोचनः । भविष्याणि च दृश्यन्ते यतोनस्त्रिपुरे सुराः
कलहं वर्जयन्तश्च अर्जयन्तस्तथार्जवम् । स्वप्नोदयं प्रतीक्षध्वं कालोदयमथापि च ॥३६
श्रुत्वा दाक्षायणीपुत्राइत्येवंमयभाषितम् । क्रोधेर्ष्यावस्थया युक्ता दृश्यन्तेचविनाशगाः
विनाशमुपपश्यन्तो ह्यलक्ष्म्याध्यापितासुराः । तत्रैव दृष्टातेन्योऽन्यंसंक्रोधापूरितेक्षणाः

अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालयाः ।
हित्वा सत्यञ्च धर्म्मञ्च अकार्य्याण्यपि चक्रमुः ॥ ३९ ॥

द्विषन्तिब्राह्मणान् पुण्यान्नचार्चन्ति हि देवताः । गुरुं चैवनमन्यन्तेह्यन्योन्यञ्चापिचुक्रुधुः
कलहेषु च सज्जन्ते स्वधर्मेषु हसन्ति च । परस्परञ्च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः॥
उच्चैर्गुरून् प्रभाषन्तनाभिभाषतिपूजिताः । अकस्मात्साश्रुनयना जायन्ते च समुत्सुकाः
दधिसक्तून् पयश्चैव कपित्थानिच रात्रिषु । भक्ष्यन्ति च शेरन्त उच्छिष्टाःसंवृतास्तथा
मूत्रं कृत्वोपस्पृशन्तिचाकृत्वापादधावनम् । संविशन्तिचशय्यासु शौचाचारविवर्जिताः

सङ्कुचन्ति भयाच्चैव मार्जाराणां यथाखुकः ।
भार्य्यां गत्वा न शुध्यन्ति रहोवृत्तिषु निस्त्रपाः ॥ ४५ ॥

पुरा सुशीला भूत्वा च दुःशीलत्वमुपागताः । देवांस्तपोधनांश्चैवबाधन्ते त्रिपुरालयाः
मयेन वार्यमाणापि ते विनाशमुपस्थिताः । विप्रियाण्येवविप्राणां कुर्व्वाणाःकलहैषिणः
वैभ्राजं नन्दनं चैव तथा चैत्ररथं वनम् । अशोकं च वराशोकं सर्वर्त्तुकमथापिच॥४८॥
स्वर्गं च देवतावासं पूर्वदेववशानुगाः । विध्वंसयन्ति संक्रुद्धास्तपोधनवनानि च ॥४९

विध्वस्तदेवायतनाश्रमं च संभग्नदेवद्विजपूजकं तु ।
जगद्बभूवामरराजदुष्टैरभिद्रुतं सस्यमिवालिवृन्दैः ॥ ५० ॥

इति श्री मत्स्यमहापुराणे मयाख्यानवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दानवानामुपद्रवं दृष्ट्वा देवैः ब्रह्मसमीपे गमनम् ।

सूत उवाच ।

अशीलेषु प्रदुष्टेषु दानवेषु दुरात्मसु । लोकेषूत्साद्यमानेषु तपोधनवनेषु च ॥ १ ॥
सिंहनादे व्योमगानान्तेषु भीतेषु जन्तुषु । त्रैलोक्ये भयसंमूढे तमोन्धत्वमुपागते ॥२
आदित्या वसवःसाध्याः पितरो मरुताङ्गणाः । भीताः शरणमाजग्मुर्ब्रह्माणं प्रपितामहम्
ते तं स्वर्णोत्पलासीनं ब्रह्माणं समुपागताः । नेमुरूचुश्च सहिताः पञ्चास्यं चतुराननम्
वरगुप्तास्तवैवेह दानवास्त्रिपुरालयाः । बाधन्तेऽस्मान्यथाप्रेष्याननुशाधि ततोऽनघ !॥
मेघागमे यथा हंसा मृगाः सिंहभयादिव । दानवानां भयात्तद्वद्वभ्रामः प्रपितामहः ॥
पुत्राणां नामधेयानि कलत्राणां तथैव च । दानवैर्भ्राम्यमाणानां विस्मृतानि ततोऽनघ
देववेश्मप्रभङ्गाश्च आश्रमभ्रंशनानि च । दानवैर्लोभमोहान्धैः क्रियन्ते च भ्रमन्ति च ॥
यदि न त्रायसे लोकं दानवैर्विद्रुतं द्रुतम् । धर्षेणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत् ॥६॥
इत्येवं त्रिदशैरुक्तः पद्मयोनिः पितामहः । प्रत्याह त्रिदशान् सेन्द्रानिन्दुतुल्याननः प्रभुः

मयस्य यो वरो दत्तो मया मतिमताम्वराः !।
तस्यान्त एष संप्राप्तो यः पुरोक्तो मया सुराः ॥ ११ ॥

तच्च तेषामधिष्ठानं त्रिपुरं त्रिदशर्षभाः । एतेषु पातमोक्षेण हन्तव्यं नेषु वृष्टिभिः ॥१२
भवताञ्च न पश्यामि कमप्यत्र सुरर्षभाः । यस्तु चैकप्रहारेण पुरं हन्यात् सदानवम्
त्रिपुरं नाल्पवीर्येण शक्यं हन्तुं शरेण तु । एकं मुक्त्वा महादेवं महेशानं प्रजापतिम् ॥
ते यूयं यदि अन्ये च क्रतुविध्वंसकं हरम् । याचामः सहितादेवं त्रिपुरं स हनिष्यति
कृतः पुराणां विष्कम्भो योजनानां शतं शतम् । यथा चैकप्रहारेण हन्यते वैभवेन तु

पुष्पयोगेन युक्तानि तानि चैकक्षणेन तु ॥ १६ ॥

ततो देवैश्च संप्रोक्तो यास्याम इति दुःखितैः । पितामहश्च तैः सार्द्धं भवसंसदमागतः ॥

तं भवं भूतभव्येशं गिरिशं शूलपाणिनम् । पश्यन्ति चोमया सार्द्धन्नन्दिना च महात्मना
अग्निवर्णमजन्देवमग्निकुण्डनिभेक्षणम् । अग्न्यादित्यसहस्राभमग्निवर्णविभूषितम् ॥
चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रसौम्यवराननम् । आगम्य तमजन्देवमथ तं नीललोहितम् ॥
स्तुवन्तो वरदं शम्भुं गोपतिं पार्वतीपतिम् ॥ २१ ॥

देवा ऊचुः ।

नमो भगवतेशाय रुद्राय वरदाय च । पशूनाम्पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ २२ ॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये । ईशानाय भयघ्नाय नमस्त्वन्धकघातिने ॥
नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसास्तुते । कुमारशत्रुनिघ्नाय कुमारजनकाय च ॥२४
विलोहिताय धूम्राय वराय क्रथनाय च । नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने॥
उरगाय त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे । अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥२६॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे । तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते । नमोऽस्तु दिव्यरूपाय प्रभवे दिव्यशम्भवे
अभिगम्याय काम्याय स्तुत्यायार्च्याय सर्वदा ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं दिशते यन्मनोगतम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमत्स्यमहापुराणे देवैः शङ्करस्तुतिकरणं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवेभ्यो महादेवस्य वरदानम् ।

सूत उवाच ।

ब्रह्माद्यैस्तूयमानस्तु देवैर्देवो महेश्वरः । प्रजापतिमुवाचेदं देवानां क भयं महत् ॥१॥
भो ! देवाः ! स्वागतं वोऽस्तु ब्रूत यद्वो मनोगतम् ।
तावदेव प्रयच्छामि नास्त्यदेयं मया हि वः ॥ २ ॥

युष्माकं नितरां शं वै कर्ताऽहं विबुधर्षभाः ! । चरामि महदत्युग्रं यच्चापि परमं तपः॥
विद्विष्टा वो मम द्विष्टाः कष्टाः कष्टपराक्रमाः । तेषामभावःसम्पाद्यो युस्माकं भवएवच
एवमुक्तास्तु देवेन प्रेम्णा सब्रह्मकाः सुराः । रुद्रमाहुर्महाभागं भागार्हाः सर्व एव ते ॥
भगवंस्तैस्तपस्तप्तं रौद्रं रौद्रपराक्रमैः । असुरैर्बध्यमानाः स्म वयं त्वां शरणं गताः ॥
मयो नाम दितेः पुत्रस्त्रिनेत्रकलहप्रियः । त्रिपुरं येन तद्दुर्गं कृतं पाण्डुरगोपुरम् ॥ ७ ॥
तदाश्रित्य पुरं दुर्गं दानवा वरनिर्भयाः । बाधन्तेऽस्मान् महादेव प्रेष्यमस्वामिनं यथा॥
उद्यानानि च भग्नानि नन्दनादीनि यानि च । वराश्चाप्सरसः सर्वा रम्भाद्या दनुजैर्हृताः
इन्द्रस्य वाह्याश्च गजाः कुमुदाञ्जनवामनाः । ऐरावताद्यापहृता देवतानां महेश्वर !॥१०॥
ये चेन्द्ररथमुख्याश्च हरयोऽपहृतासुरैः । जाताश्च दानवानान्ते रथयोग्यास्तुरङ्गमाः ॥

ये रथा ये गजाश्चैव याः स्त्रियो वसु यच्च न ।
तन्नो व्यपहृतं दैत्यैः संशयो जीविते पुनः ॥ १२ ॥

त्रिनेत्र एव मुक्तस्तु देवैः शक्रपुरोगमैः । उवाच देवान् देवेशो वरदो वृषवाहनः ॥१३॥
व्यपगच्छतु वो देवा महद्दानवजम्भयम् । तदहं त्रिपुरन्धक्ष्ये क्रियतां यद्ब्रवीमि तत् ॥
यदीच्छथ मया दग्धुं तत्पुरं सह दानवम् । रथमौपयिकं मह्यं सज्जयध्वं किलास्यते ॥
दिग्वाससा तथोक्तास्ते सपितामहकाः सुराः । तथेत्युक्त्वा महादेवश्चक्रुस्ते रथमुत्तमम्॥
धरां कूवरकौ तु द्वौ रुद्रपार्श्वचरावुभौ । अधिष्ठानं शिरो मेरो रक्षो मन्दर एव च ॥
चक्रुश्चन्द्रश्च सूर्य्यश्च चक्रे काञ्चनराजते । कृष्णपक्षं शुक्लपक्षं पक्षद्वयमपीश्वराः ॥१८॥
रथनेमिद्वयं चक्रुर्देवा ब्रह्मपुरःसराः । आदिद्वयं पक्षयन्त्रं यन्त्रमेताश्च देवताः ॥ १९ ॥

कम्बलाश्वतराभ्याञ्च नागाभ्यां समवेष्टितम् ।
भार्गवश्चाङ्गिराश्चैव बुधोऽङ्गारक एव च ॥ २० ॥

शनैश्चरस्तथा चात्र सर्वे ते देवसत्तमाः । वरूथं गगनं चक्रुश्चारुरूपं रथस्य ते ॥ २१ ॥
कृतं द्विजिह्वनयनं त्रिवेणुं शातकौम्भिकम् । मणिमुक्तेन्द्रनीलैश्च वृतं हृष्टमुखैः सुरैः ॥२२
गङ्गा सिन्धुःशतद्रुश्च चन्द्रभागा सरस्वती । वितस्ता च पिपाशाचयमुना गण्डकी तथा
सरस्वती देविका च तथा च स(स)रयूरपि । एताः सरिद्वराः सर्वा वेणुसंज्ञाःकृता रथे

धृतराष्ट्राश्च ये नागास्ते च वेश्यात्मकाः कृताः । वासुकेकुलजा ये च ये च रैवतवंशजाः
ते सर्पा दर्पसम्पूर्णाश्चापतूणेष्वनूनगाः । अवतस्थुः शरा भूत्वा नानाजातिशुभाननाः ॥
सुरसा सरमा कद्रुर्विनता शुचिरेवच । तृषा बुभुक्षा सर्वोग्रा मृत्युः सर्वशमस्तथा ॥

ब्रह्मवध्या च गोवध्या बालवध्याः प्रजाभयाः ।
गदा भूत्वा शक्तयश्च तदा देवरथेऽभ्ययुः ॥ २८ ॥
युगं कृतयुगश्चात्र चातुर्होत्रप्रयोजकाः ।
चतुर्वर्णाः सलीलाश्च बभूवुः स्वर्णकुण्डलाः ॥ २९ ॥

तद्युगं युगसङ्काशं रथशीर्षे प्रतिष्ठितम् । धृतराष्ट्रेण नागेन बद्धं बलवता महत् ॥३०॥
ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथापरः । वेदाश्चत्वार एवैते चत्वारस्तुरगा भवन् ॥

अन्नदानपुरोगाणि यानि दानानि कानिचित् ।
तान्यासन्वाजिनां तेषां भूषणानि सहस्रशः ॥ ३२ ॥

पद्मद्वयं तक्षकश्च कर्कोटकधनञ्जयौ । नागा बभूवुरेवैते हयानां वालबन्धनाः ॥ ३३ ॥
ओङ्कारप्रभवास्ता वा मन्त्रयज्ञक्रतुक्रियाः । उपद्रवाः प्रतीकाराः पशुबन्धेष्टयस्तथा ॥३४
यज्ञोपवाहान्येतानि तस्मिन् लोकरथे शुभे । मणिमुक्ताप्रवालैस्तु भूषितानि सहस्रशः ॥
प्रतोदोङ्कार एवासीत्तदग्रश्च वषट्कृतम् । सिनीबाली कुहूराका तथा चानुमती शुभा ॥

योक्त्राण्यासंस्तुरङ्गाणामपसर्पणविग्रहाः ॥ ३७ ॥
कृष्णान्यथ च पीतानि श्वेतमाञ्जिष्ठकानि च ।
अवदाताः पताकास्तु बभूवुः पवनेरिताः ॥ ३८ ॥
ऋतुभिश्च कृतः षड्भिर्धनुः सम्वत्सरोऽभवत् ।
अजराज्याभवच्चापि साम्बिका धनुषो दृढा ॥ ३९ ॥

कालो हि भगवान्रुद्रस्तञ्चसम्वत्सरं विदुः । तस्मादुमाकालरात्रिर्धनुषोज्या जराभवत्.
सगर्भं त्रिपुरं येन दग्धवान् स त्रिलोचनः । स इषुर्विष्णुसोमाग्नित्रिदैवतमयोऽभवत् ॥
आननं ह्यग्निरभवच्छल्यं सोमस्तमोनुदः । तेजसः समवायोऽथ चेषोस्तेजो रथाङ्गधृत
तस्मिंश्च वीर्यवृद्ध्यर्थं वासुकिर्नागपार्थिवः ।

तेजः सम्वसनार्थं वै मुमोचातिविषोविषम् ॥ ४३॥

कृत्वा देवा रथञ्चापि दिव्यं दिव्यप्रभावतः। लोकाधिपतिमभ्येत्य इदं वचनमब्रुवन् ॥
संस्कृतोऽयं रथोऽस्माभिस्तव दानवशत्रुजित्। इदमापत्परित्राणं देवान् सेन्द्रपुरोगमान्
तं मेरुशिखराकारं त्रैलोक्यरथमुत्तमम्। प्रशस्यदेवान् साध्विति रथं पश्यति शङ्करः ॥
मुहुर्दृष्ट्वा रथं साधु साध्वित्युक्त्वा मुहुर्मुहुः। उवाच सेन्द्रानमरानमराधिपतिः स्वयम्
यादृशोऽयं रथः क्लृप्तो युष्माभिर्ममसत्तमाः। ईदृशो रथसम्पत्त्या यन्ता शीघ्रं विधीयताम्
इत्युक्त्वा देवदेवेन देवाविद्धा इवेषुभिः। अवापुर्महतीं चिन्तां कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥

महादेवस्य देवोऽन्यः को नाम सदृशो भवेत्।
मुक्त्वा चक्रायुधं देवं सोपास्य इषुमाश्रितः ॥ ५० ॥

धुरि युक्ता इवोक्षाणो घटन्त इव पर्वतैः। निःश्वसन्तः सुराः सर्वे कथमेतदिति ब्रुवन्

देवोऽदृश्यत देवांस्तु लोकनाथस्य धूर्गतान्।
अहं सारथिरित्युक्त्वा जग्राहाश्वांस्ततोऽग्रजः ॥ ५२ ॥

ततो देवैः सगन्धर्वैः सिंहनादो महान् कृतः। प्रतोदहस्तं संप्रेक्ष्य ब्रह्माणं सूततां गतम्
भगवानपि विश्वेशो रथस्थे वै पितामहे। सदृशः सूत इत्युक्त्वा चारुरोह रथं हरः ॥
आरोहति रथं देवे ह्यश्वा हरभरातुराः। जानुभिः पतिता भूमौ रजोग्रासश्च ग्रासितः।
देवो दृष्ट्वाथ वेदांस्तानभीरुग्रहयान् भयात्। उज्जहार पितॄनार्तान् सुपुत्र इव दुःखितान्
ततः सिंहरवो भूयो बभूव रथभैरवः। जयशब्दश्च देवानां संबभूवार्णवोपमः ॥ ५७ ॥
तदोङ्कारमयं गृह्य प्रतोदं वरदः प्रभुः। स्वयम्भूः प्रययौ वाहाननुमन्त्र्य यथाजवम् ॥
ग्रसमाना इवाकाशं मुष्णन्त इवमेदिनीम्। मुखेभ्यःससृजुःश्वासानुच्छ्वसन्त इवोरगाः
स्वयम्भुवा चोद्यमानाश्चोदितेन कपर्दिना। व्रजन्ति तेऽश्वा जवनाःक्षयकाल इवानिलाः

ध्वजोच्छ्रयविनिर्माणे ध्वजयष्टिमनुत्तमाम्।
आक्रम्य नन्दीवृषभं तस्थौ तस्मिञ्शिवेच्छया ॥ ६१॥

भार्गवाङ्गिरसौ देवौ दण्डहस्तौ रविप्रभौ। रथचक्रे तु रक्षेते रुद्रस्य प्रियकाङ्क्षिणौ
शेषश्च भगवान्नागः अनन्तोऽन्तकरोऽरिणाम्। शरहस्तो रथम्पाति शयनं ब्रह्मणस्तदा

यमस्तूर्णंसमास्थाय महिषञ्चातिदारुणम्। द्रविणाधिपतिर्व्यालं सुराणामधिपो द्विपम्
अरक्षत मयूरं निकूजन्तं किन्नरं यथा। गुह आस्थाय वरदो युगोपमरथं पितुः॥६५॥
नन्दीश्वरश्चभगवान् शूलमादाय दीप्तिमान्। पृष्ठतश्चापि पार्श्वाभ्यां लोकस्यक्षयकृद्यथा
प्रमथाश्चाग्निवर्णाभाःसाग्निज्वाला इवाचलाः। अनुजग्मू रथं शार्वं नक्रा इव महार्णवम्

भृगुर्भरद्वाजवसिष्ठगौतमाः क्रतुः पुलस्त्यः पुलहस्तपोधनाः।
मरीचिरत्रिर्भगवानथाङ्गिराः पराशरागस्त्यमुखा महर्षयः॥ ६८॥
हरमजितमजं प्रतुष्टुवुर्वचनविषैर्विचित्रभूषणैः।
रथस्त्रिपुरे सकाञ्चनाचलो व्रजति सपक्ष इवाद्रिरम्बरे॥६९॥
करिगिरिरविमेघसन्निभाः सजलपयोदनिनादनादिनः।
प्रमथगणाः परिवार्य्य देवगुप्तं रथममरापि ययुःस्म दर्पयुक्ताः॥ ७०॥
मकरतिमितिमिङ्गिलावृतः प्रलय इवातिसमुद्धतोऽर्णवः।
व्रजति रथवरोऽति भास्वरो ह्यशनिनिपातपयोदनिःस्वनः॥७१॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शङ्करप्रतिदेवानामनुरोधवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुरे नारदागमनम्।

सूत उवाच।

पूज्यमाने रथे तस्मिन् लोकैर्देवे रथे स्थिते। प्रमथेषु नदत्सूग्रं प्रवदत्सु च साध्विति॥
ईश्वरस्वरघोषेण नर्दमाने महावृषे। जयत्सु विप्रेषु तथा गर्ज्जत्सु तुरगेषु च॥ २॥
रणाङ्गणात् समुत्पत्य देवर्षिर्नारदः प्रभुः। कान्त्या चन्द्रोपमस्तूर्णं त्रिपुरं पुरमागतः॥
औत्पातिकन्तु दैत्यानां त्रिपुरे वर्त्तते ध्रुवम्। नारदश्चात्र भगवान् प्रादुर्भूतस्तपोधनः
आगतं जलदाभासं समेताः सर्वदानवाः। उत्तस्थुर्नारदं दृष्ट्वा अभिवादनवादिनः॥ ५॥

तमर्घ्येण च पाद्येन मधुपर्केण चेश्वराः। नारदं पूजयामासुर्ब्रह्माणमिव वासवः ॥ ६ ॥
तेषां स पूजां पूजार्हः प्रतिगृह्य तपोधनः। नारदः सुखमासीनः काञ्चने परमासने ॥७॥
मयस्तु सुखमासीने नारदे नारदोद्भवे। यथार्हं दानवैः सार्द्धमासीनो दानवाधिपः ॥८॥
आसीनं नारदं प्रेक्ष्य मयस्त्वथ महासुरः। अब्रवीद्वचनं तुष्टो हृष्टरोमाननेक्षणः ॥ ६ ॥

औत्पातिकं पुरेऽस्माकं यथा नान्यत्र कुत्रचित्।
वर्त्तते वर्तमानज्ञ! वद त्वं हि च नारद! ॥ १० ॥
दृश्यन्ते भयदाः स्वप्ना भज्यन्ते च ध्वजाः परम्।
विना च वायुना केतुः पतते च तथा भुवि ॥ ११ ॥

अट्टालकाश्च नृत्यन्ते सपताकाः सगोपुराः। हिंस हिंसेति श्रूयन्ते गिरश्च भयदाः पुरे।
नाहं बिभेमि देवानां सेन्द्राणामपि नारद!। मुक्त्वैकवरदं स्थाणुं भक्ताभयकरं हरम्
भगवन्नास्त्यविदितमुत्पातेषु तवानघ!। अनागतमतीतञ्च भवान् जानाति तत्त्वतः ॥
तदेतन्नोभयस्थानमुत्पाताभिनिवेदितम्। कथयस्व मुनिश्रेष्ठ! प्रपन्नस्य तु नारद! ॥

इत्युक्त्वा नारदस्तेन मयेनामयवर्जितः।

नारद उवाच।

शृणु दानव! तत्त्वेन भवन्त्यौत्पातिका यथा ॥ १६ ॥

धर्मेति धारणे धातुर्माहात्म्ये चैव पठ्यते। धारणाच्च महत्त्वेन धर्म एव निरुच्यते॥१७
स इष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते। इतरश्चानिष्टफल आचार्यैर्नोपदिश्यते ॥ १८ ॥
उत्पथान् मार्गमागच्छेन्मार्गाच्चैव विमार्गताम्। विनाशस्तस्य निर्देश्यइतिवेदविदो विदुः
सस्वधर्म रथारूढः सहैभिर्मत्तदानवैः। अपकारिषु देवानां कुरुषे त्वं सहायताम् ॥२०॥
तदेतान्येवमादीनि उत्पातावेदितानि च। वैनाशिकानि दृश्यन्ते दानवानां तथैव च ॥
एष रुद्रः समास्थाय महालोकमयं रथम्। आयाति त्रिपुरं हन्तुं मय! त्वामसुरानपि
स त्वं महौजसं नित्यं प्रपद्यस्व महेश्वरम्। यास्यसे सह पुत्रेण दानवैः सह मानद!।
इत्येव मावेद्यभयं दानवोपस्थितं महत्। दानवानां पुनर्देवो देवेशपदमागतः ॥ २४ ॥
नारदे तु मुनौ याते मयो दानवनायकः। शूरसंमतमित्येवं दानवानाह दानवः ॥ २५॥

शूराः स्थ जात पुत्राः स्थ कृतकृत्याः स्थ दानवाः ।
युध्यध्वं दैवतैः सार्द्धं कर्तव्यं चापिनो भयम् ॥ २६ ॥
जित्वा वयं भविष्यामः सर्वेऽमरसभासदः ।
देवांश्च सेन्द्रकान् हत्वा लोकान् भोक्ष्या महेसुराः ॥ २७ ॥
अट्टालकेषु च तथा तिष्ठध्वं शस्त्रपाणयः । दंशिता युद्धसज्जाश्च तिष्ठध्वं प्रोद्यतायुधाः
पुराणि त्रीणि चैतानि यथास्थानेषु दानवाः ।
तिष्ठध्वं लङ्घनीयानि भविष्यन्ति पुराणि च ॥ २९ ॥
न भोगतास्तथा शूरा देवता विदिता हि वः । ताःप्रयत्नेन वार्याश्च विदार्याश्चैव सायकैः
इति दनुतनयान्मयस्तथोक्त्वा सुरगणवारणवारणे वचांसि ।
युवतिजनविषण्णा मानसं तत् त्रिपुरपुरं सहसा विवेश राजा ॥३१॥
अथ रजतविशुद्धभावभावो भवमभिपूज्य दिगम्बरं सुगीर्भिः ।
शरणमुपजगाम देवदेवं मदनार्यन्धकयज्ञदेहघातम् ॥ ३२ ॥
मयमभयपदैषिणं प्रपन्नं न किल बुबोध तृतीयदीप्तनेत्रः ।
तदभिमतमदात्ततः शशाङ्की स च किल निर्भय एव दानवोऽभूत् ॥ ३३ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे मयस्य दानवोद्बोधनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

इलावृतवर्षवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

ततो रणे देवबलं नारदोऽभ्यगमत् पुनः। आगत्य चैव त्रिपुरात्सभायामास्थितःस्वयम्
इलावृतमितिख्यातं तद्वर्षं विस्तृतायतम् । यत्र यज्ञोबलेर्वृत्तोबलिर्यत्र च संयतः ॥२॥
देवानां जन्मभूमिर्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता। विवाहाः क्रतवश्चैव जातकर्मादिकाःक्रियाः

देवानां यत्र वृत्तानि कन्यादानानि यानि च। रेमे नित्यं भवो यत्र सहायैः पार्षदैर्गणैः
लोकपालाः सदा यत्र तस्थुर्मेरुगिरौ यथा। मधुपिङ्गलनेत्रस्तु चन्द्रावयवभूषणः॥
देवानामधिपं प्राह गणपांश्च महेश्वरः॥ ५॥
वासवैतद्दरीणां ते त्रिपुरं परिदृश्यते। विमानैश्च पताकाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृतम्॥६॥
इदं वृत्रमिदं ख्यातं वह्निवद्भृशतापनम्। एते जना गिरिप्रख्याः सकुण्डलकिरीटिनः॥
प्राकारगोपुराट्टेषु कक्षान्ते दानवाः स्थिताः। इमे च तोयदाभासा दनुजा विकृताननाः
निर्गच्छन्ति पुरोदैत्याः सायुधाविजयैषिणः। स त्वं शरशतैः सार्द्धंससहायोवरायुधः
सहद्भिर्भामकैर्भृत्यैर्व्यापादय महासुरान्॥ १०॥
अहं च रथवर्येण निश्चलाचलवत्स्थितः। पुरः पुरस्य रन्ध्रार्थी स्थास्यामि विजयाय वः
यदा तु पुष्पयोगेन एकत्वं स्थास्यते परम्। तदेतन्निर्दहस्यामि शरेणैकेन वासव !॥
इत्युक्तो वै भगवता रुद्रेणेह सुरेश्वरः। ययौ तत्त्रिपुरं जेतुं तेन सैन्येन संवृतः॥१३॥
प्रक्रान्तरथभीमैस्तैः स देवैः पार्षदाङ्गणैः। कृतसिंहरवोपेतैरुद्गच्छद्भिरिवाम्बुदैः॥१४॥
तेन नादेन त्रिपुराद्दानवा युद्धलालसाः।
उत्पत्य दुद्रुवुश्चेलुः सायुधाः खे गणेश्वरान्॥१५॥
अन्ये पयोधराराावाः पयोधरसमा बभुः। ससिंहनादं वादित्रं वादयामासुरुद्धताः॥१६
देवानां सिंहनादश्च सर्वतूर्यरवो महान्। ग्रस्तोऽभूद्दैत्यनादैश्च चन्द्रस्तोयधरैरिव॥१७
चन्द्रोदयात् समुद्भूतः पौर्णमास इवार्णवः। त्रिपुरं प्रभवत्तद्धीमरूपो महासुरैः॥१८॥
प्राकारेषु पुरे तत्र गोपुरेष्वपि चापरे। अट्टालकान् समारुह्य केचिच्चलितवादिनः॥१६॥
स्वर्णमालाधराः शूराः प्रभासितकराम्बराः। केचिन्नदन्ति दनुजास्तोयमुक्ता इवाम्बुदाः
इतश्चेतश्च धावन्तः केचिदुद्धूतवाससः। किमेतदिति पप्रच्छुरन्योन्यंगृहमाश्रिताः॥२१॥
किमेतन्नैव जानामि ज्ञानमन्तर्हितं हि मे।
ज्ञास्यसे नान्तरेणेति कालो विस्तारतो महान्॥ २२॥
सोऽप्यसौपृथ्वीसारं सिंहश्चरथमास्थितः। तिष्ठते त्रिपुरं पीड्य देहं व्याधिरवोच्छ्रितः
यएषोऽस्तिस एषोऽस्तुकाचिन्तासम्भ्रमे सति। एहिमायुधमादाय क्व मेपृच्छाभविष्यति

इति तेऽन्योन्यमाविद्धाउत्तरोत्तरभाषिणः । आसाद्य पृच्छन्तितदा दानवास्त्रिपुरालयाः
तारकाक्षपुरे दैत्यास्तारकाक्षपुरःसराः । निर्गताः कुपितास्तूर्णं विलादिवमहोरगाः ॥
निर्द्धावन्तस्तु ते दैत्याः प्रमथाधिपयूथपैः । निरुद्धा गजराजानो यथा केसरियूथपैः ॥
दर्पितानांततश्चैषां दर्पितानामिवाग्निनाम् । रूपाणि जज्वलुस्तेषामग्नीनामिव धम्यताम्
ततो बृहन्ति चापानिभीमनादानिसर्वशः । निकृष्य जघ्नुरन्योन्यमिषुभिः प्राणभोजनैः
मार्जारमृगभीमास्यान् पार्षदान्विकृताननान् । दृष्ट्वा दृष्ट्वा हसन्त्युच्चैर्दानवा रूपसम्पदा ॥
बाहुभिः परिघाकारैः कृष्यतां धनुषां शराः । भटवर्मेषु विविशुस्तड़ागानीव पक्षिणः ॥

मृताः स्थ क नु यास्येथ हनिष्यामो निवर्त्तताम् ।
इत्येवं परुषाण्युक्त्वा दानवाः पार्षदर्षभान् ॥ ३२ ॥
बिभिदुः सायकैस्तीक्ष्णैः सूर्य्यपादा इवाम्बुदान् ।
प्रमथा अपि सिंहाक्षाः सिंहविक्रान्तविक्रमाः ॥
खण्डशैलशिलावृक्षैर्विभिदुर्दैत्यदानवान् ॥ ३३ ॥

अम्बुदैराकुलमिव हंसाकुलमिवाम्बरम् । दानवाकुलमत्यर्थं तत्पुरं सकलं बभौ ॥३४॥
विकृष्टचापा दैत्येन्द्राः सृजन्ति शरदुर्दिनम् । इन्द्रचापाङ्कितोरस्का जलदा इव दुर्दिनम्
इषुभिस्ताड्यमानास्ते भूयोभूयो गणेश्वराः । चक्रुस्ते देहनिर्यासं स्वर्णधातुमिवाचलाः
तथा वृक्षशिला वज्रशूलपट्टिपरश्वधैः । चूर्ण्यन्तेऽभिहता दैत्याः काचाष्टङ्कहता इव ॥
चन्द्रोदयात् समुद्भूतः पौर्णमास इवार्णवः । त्रिपुरं प्रभवत्तद्धीमरूपमहासुरैः ॥३८॥
तारकाक्षो जयत्येष इति दैत्या व्यघोषयन् । जयतीन्द्रश्च रुद्रश्च इत्येव च गणेश्वराः ॥
वारितादारितावाणैर्योधास्तस्मिन्बलोभये । निःस्वनन्तोऽम्बुसमयेजलगर्भाइवाम्बुदाः
करैश्छिन्नैः शिरोभिश्च ध्वजैश्छत्रैश्च पाण्डुरैः । युद्धभूमिर्भयवती मांसशोणितपूरिता
व्योम्नि चोत्प्लुत्य सहसा तालमात्रं वरायुधैः । दृढाहताःपतन्पूर्वं दानवाःप्रमथास्तथा
सिद्धाश्चाप्सरसश्चैव चारणाश्च नभोगताः । दृढप्रहारहृषिताः साधु साध्विति चुक्रुशुः
अनाहताश्च वियति देवदुन्दुभयस्तथा । नदन्तो मेघशब्देन सरमा इव रोषिताः ॥४४॥
त तस्मिंस्त्रिपुरे दैत्यानयः सिन्धुपतानिव । विशन्ति कुद्धवक्त्रा वल्मीकमिवपन्नगाः ॥

तारकाक्षपुरे तस्मिन् सुराः शूराः समन्ततः । सशस्त्रा निपतन्तिस्म सपक्षाइव भूधराः
योधयन्ति त्रिभागेन त्रिपुरैस्तु गणेश्वराः । विद्युन्माली मयश्चैव भग्नौ च द्रुमवद्रणे ॥
विद्युन्माली स दैत्येन्द्रो गिरीन्द्रसदृशद्युतिः । आदाय परिघं घोरं ताड़यामास नन्दिनम्
स नन्दी दानवेन्द्रेण परिघेण दृढ़ाहतः । भ्रमते मधुना व्यक्तः पुरा नारायणो यथा ॥४६
नन्दीश्वरे गते तत्र गणपाख्यातविक्रमाः । दुद्रुवुर्जातसंरम्भा विद्युन्मालिनमासुरम् ॥
घण्टाकर्णः शङ्कुकर्णो महाकालश्च पार्षदाः ॥ ५१ ॥
ततश्च सायकैःसर्वान् गणपान्गणपाकृतीन् । भूयो भूयः स विव्याध गणेश्वरमहत्तमान्
भित्वा भित्वा रुरावोच्चैर्नभस्यम्बुधरो यथा । तस्यारम्भित शब्देन नन्दी दिनकरप्रभः ॥
संज्ञां लभ्य ततः सोऽपि विद्युन्मालिनमाद्रवत् ॥ ५३ ॥
रुद्रदत्तं तदा दीप्तं दीप्तानलसमप्रभम् । वज्रं वज्रनिभाङ्गस्य दानवस्य ससर्ज ह ॥ ५४॥
तन्नन्दिभुजनिर्मुक्तं मुक्ताफलविभूषितम् । पपात वक्षसि तदा वज्रं दैत्यस्य भीषणम् ॥
स वज्रं निहतो दैत्यो वज्रसंहननोपमः । पपात वज्राभिहतः शक्रेणाद्रिरिवाहतः ॥५६॥
दैत्येश्वरं विनिहतं नन्दिना कुलनन्दिना । चुक्रुशुर्दानवाः प्रेक्ष्य दुद्रुवुश्च गणाधिपाः ॥
दुःखामर्षितरोषास्ते विद्युन्मालिनिपातिते । द्रुमशैलमहावृष्टिं पयोदाःससृजुर्यथा ॥५८॥
ते पीड्यमाना गुरुभिर्गिरिभिश्च गणेश्वराः । कर्त्तव्यं न विदुः किञ्चिद्धन्यमाधार्मिकाइव
ततोऽसुरवरः श्रीमांस्तारकाक्षः प्रतापवान् । स तरूणां गिरीणां वै तुल्यरूपधरो बभौ
भिन्नोत्तमाङ्गा गणपा भिन्नपादाङ्कितानना: । विरेजुर्भुजगा मन्त्रैर्वार्यमाणा यथा तथा
मयेन मायावीर्येण वध्यमाना गणेश्वराः । भ्रमन्ति बहुशब्दालाः पञ्जरे शकुना इव ॥
तथा सुरवरः श्रीमांस्तारकाक्षः प्रतापवान् । ददाह च बलं सर्वं शुष्केन्धनमिवानलः ॥
तारकाक्षेण वार्यन्ते शरवर्षैस्तदा गणाः । मयेन मायानिहतास्तारकाख्येण चेषुभिः ॥
गणेशा विधुरा जाता जीर्णमूला यथा द्रुमाः ॥ ६५ ॥
भूयः सम्पतते चाग्निर्ग्रहान् ग्राहान् भुजङ्गमान् ।
गिरीन्द्रांश्च हरीन् व्याघ्रान् वृक्षान् सृमरवर्णकान् ॥ ६६ ॥
शरभानष्टपादांश्च आपः पवनमेव च । मयो मायाबलेनैव पातयत्येव शत्रुषु ॥ ६७ ॥

ते तारकाक्षेण मयेन मायया संमुह्यमाना विवशा गणेश्वराः ।
न शक्नुवंस्ते मनसापि चेष्टितुं यथेन्द्रियार्था मुनिनाभिसंयताः ॥ ६८ ॥
महाजलाग्न्यादि सकुञ्जरोरगैर्हरीन्द्रव्याघ्रर्क्षतरक्षुराक्षसैः ।
विबाध्यमानास्तमसा विमोहिताः समुद्रमध्येष्विव गाधकाङ्क्षिणः ॥६९॥
संमर्द्यमानेषु गणेश्वरेषु सन्नर्दमानेषु सुरेतरेषु ।
ततः सुराणां प्रवराभिरक्षितुं रिपोर्बलं सन्निविशुः सहायुधाः ॥७०॥
यमोगदास्त्रो वरुणश्च भास्करस्तथा कुमारोऽमरकोटिसंयुतः ।
स्वयं च शक्रः सितनागवाहनः कुलीशपाणिः सुरलोकपुङ्गवः ॥७१॥
स चोडुनाथः ससुतो दिवाकरः सलान्तकस्त्र्यक्षपतिर्महाद्युतिः ।
एते रिपूणां प्रबलाभिरक्षितं तदा बलं सन्निविशुर्मदोद्धताः ॥७२॥
यथा वनं दर्पितकुञ्जराधिपा यथा नभः साम्बुधरं दिवाकरः ।
यथा च सिंहैर्विजनेषु गोकुलं तथा बलं तत्त्रिदशैरभिद्रुतम् ॥७३॥
कृतप्रहारातुरदीनदानवं ततस्त्वभज्यन्त बलं हि पार्षदाः ।
स्वज्योतिषां ज्योतिरिवोष्मवान् हरिर्यथा तमो घोरतरं नराणाम् ॥७४॥
विशान्तयामास यथा सदैव निशाकरः सञ्चितशार्वरन्तमः ।
ततोऽपकृष्टे च तमः प्रभावे अस्त्रप्रभावे च विवर्द्धमाने ॥७५॥
दिग्लोकपालैर्गणनायकैश्च कृतो महान् सिंहरवो मुहूर्त्तम् ।
संख्ये विभग्ना विकरा विपादाश्छिन्नोत्तमाङ्गाः शरपूरिताङ्गाः ॥७६॥
देवेतरा देववरैर्विभिन्नाः सीदन्ति पङ्केषु यथा गजेन्द्राः ।
वज्रेण भीमेन च वज्रपाणिः शक्त्या च शक्त्या च मयूरकेतुः ॥७७॥
दण्डेन चोग्रेण च धर्मराजः पाशेन चोग्रेण च वारिगोप्ता ।
शूलेन कालेन च यक्षराजो वीर्येण तेजस्वितया सुकेशः ॥७८॥
गणेश्वरास्ते सुरसन्निकाशाः पूर्णाहुतीसिक्तशिखिप्रकाशाः ।
उत्सादयन्ते दनुपुत्रवृन्दं यथैव [illegible] ॥७९॥

मयस्तु देवान् परिरक्षितारमुमात्मजं देववरं कुमारम् ।
शरेण भित्वा स हि तारकासुतं स तारकाख्यसुरमावभाषे ॥८०॥
कृत्वा प्रहारं प्रविशामि वीरं पुरं हि दैत्येन्द्र बलेन युक्तः ।
विश्राममूर्जस्करमप्यवाप्य पुनः करिष्यामि रणं प्रपन्नैः ॥८१॥
वयं हि शस्त्रक्षतवीक्षिताङ्गा विशीर्णशस्त्रध्वजवर्मवाहाः ।
जयैषिणस्ते जयकाशिनश्च गणेश्वरा लोकवराधिपाश्च ॥८२॥
मयस्य श्रुत्वा दिवि तारकाख्यो वचोभिकाङ्क्षन् क्षतजोपमाक्षः ।
विवेश तूर्णं त्रिपुरन्दितेः सुतैः सुतैरदित्या युधि वृद्धहर्षैः ॥८३॥
ततः सशङ्खानकभेरिभीमं ससिंहनादं हरसैन्यमाबभौ ।
मयानुगन्धोरगभीरगह्वरं यथा हिमाद्रेर्गजसिंहनादितम् ॥८४॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवदानवयुद्धवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मयस्य महेश्वररूपस्य कालस्य प्रशंसावर्णनम् ।

सूत उवाच ।

मयः प्रहारं कृत्वा तु मायावी दानवर्षभः । विवेश तूर्णं त्रिपुरमभ्रं नीलमिवाम्बरम् ॥१॥
सदीर्घमुष्णंनिःश्वस्य दानवान्वीक्ष्य मध्यगान् । दध्यौ लोकक्षये प्राप्तेकालंकालइवापरः

इन्द्रोऽपि बिभ्यते यस्य स्थितो युद्धेप्सुरग्रतः ।
स चापि निधनं प्राप्तो विद्युन्माली महायशाः ॥ ३ ॥

दुर्गं वै त्रिपुरस्यास्य न समं विद्यते पुरम् । तस्याप्येषो नयःप्राप्तो न दुर्गंकारणं क्वचित्
कालस्यैव वशे सर्वं दुर्गं दुर्गतरञ्च यत् । काले क्रुद्धे कथं कालात्त्राणं नोऽद्यभविष्यति

लोकेषु त्रिषु यत् किञ्चिद्बलं वै सर्वजन्तुषु ।

कालस्य तद्वशं सर्वमिति पैतामहो विधिः ॥ ६ ॥

अस्मिन् कःप्रभवोद्योगोह्यसन्धार्ये मितात्मनि । लङ्घने कः समर्थः स्याद्दृते देवं महेश्वरम्
बिभेमि नेन्द्राद्धि यमाद्वरुणान्न च वित्तपात् । स्वामी चैषान्तु देवानां दुर्जयःस महेश्वरः
ऐश्वर्यस्य फलं यत्तत् प्रभुत्वस्य च यत् फलम् । तदद्य दर्शयिष्यामि यावद्वीराः समन्ततः
वापीममृततोयेन पूर्णां स्रक्ष्ये वरौषधीः । जीविष्यन्ति तदादैत्याःसञ्जीवनवरौषधीः ॥
इति सञ्चिन्त्य बलवान् मयो मायाविनांवरः । मायया ससृजे वापीं रम्भामिव पितामहः
द्वियोजनायतां दीर्घां पूर्णयोजनविस्तृताम् । आरोहसंक्रमवतीं चित्ररूपां तथैव च ॥
इन्दोः किरणकल्पेन मृष्टेनामृतगन्धिना । पूर्णां परमतोयेन गुणपूर्णामिवाङ्गनाम् ॥
उत्पलैः कुमुदैः पद्मैर्वृतां कादम्बकैस्तथा । चन्द्रभास्करवर्णाभैर्भीमैरावरणैर्वृताम् ॥
खगैर्मधुररावैश्च चारुचामीकरप्रभैः । कामैर्षिभिरिवाकीर्णां जीवानामरणीमिव ॥१५

तां वापीं सृज्य स मयो गङ्गामिव महेश्वरः ।
तस्यामप्रक्षापयामास विद्युन्मालिनमादितः ॥ १६ ॥

स वाप्यां मज्जितो दैत्यो देवशत्रुर्महाबलः । उत्तस्थाविन्धनैरिद्धः सद्यो हुत इवानलः ॥

मयस्य चाञ्जलिं कृत्वा तारकाख्योऽभिवादितः ।
विद्युन्मालीति वचनं मयमुत्थाय चाब्रवीत् ॥ १८ ॥

क्व नन्दी सह रुद्रेण वृतः प्रथकजम्बुकैः । युद्ध्यामो नन्दिनं पीड्य दयादेहेषु का हि नः
अन्वास्यैव च रुद्रस्य भवामः प्रभविष्णवः । तैर्वा विनिहतायुद्धे भविष्यामो यमाशनाः
विद्युन्मालेर्निशम्यैतन्मयोवचनमूर्जितम् । तं परिष्वज्य साद्रांक्ष इदमाह महासुरः ॥

विद्युन्मालिन्न मे राज्यमभिप्रेतन्न जीवितम् ।
त्वया विना महाबाहो ! किमन्येन महासुर ! ॥ २२ ॥

महामृतमयी वापी ह्येषा मायाभिरीश्वर ! । सृष्टा दानवदैत्यानां हतानां जीववर्द्धिनी ॥

दिष्ट्या त्वां दैत्य ! पश्यामि यमलोकादिहागतम् ।
दुर्गतावनयग्रस्तं भोक्ष्यामोऽद्य महानिधिम् ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा च तां वापीं मायया मयनिर्मिताम् । हृष्टाननाक्षा दैत्येन्द्रा इदं वचनमब्रुवन् ॥

दानवा ! युद्ध्यतेदानीं प्रमथैः सहनिर्भयाः। मयेन निर्मितावापी हतान् सञ्जीवयिष्यति
ततः क्षुब्धाम्बुनिधिभा भेरीसानुभयङ्करी। वाद्यमाना ननादोच्चै रौरवी सा पुनः पुनः
श्रुत्वा भेरीरवं घोरं मेघारम्भित सन्निभम् । न्यपतन्नसुरास्तूर्णं त्रिपुराद्यु द्धलालसाः॥
लोहरायतसौवर्णैः कटकैर्मणिराजितैः। आमुक्तैः कुण्डलैर्हारैर्मुकुटैरपि चोत्कटैः॥

धूमायिता ह्यविरमा ज्वलन्त इव पावकाः।
आयुधानि समादाय काशिनो दृढविक्रमाः॥ ३०॥

नृत्यमाना इव नटा गर्जन्त इव तोयदा। करोच्छ्राया इव गजा सिंहा इव च निर्भयाः॥
ह्रदा इव च गम्भीराः सूर्य्या इव प्रतापिताः। द्रुमा इव च दैत्येन्द्रा त्रासयन्ते बलंमहत्
प्रमथा अपिसोत्साहागरुड़ोत्पातपातिनः। युयुत्सवोऽभिधावन्ति दानवान् दानवारयः

नन्दीश्वरेण प्रमथा स्तारकाख्येण दानवाः।
चक्रुः संहत्य संग्रामञ्चोद्यमाना बलेन च॥ ३४॥

तेऽसिभिश्चन्द्रसङ्काशैः शूलैश्चानलपिंगलैः। बाणैश्च दृढनिर्मुक्तैरभिजघ्नुः परस्परम्॥

शराणां सृज्यमानानामसीनाञ्च निपात्यताम्।
रूपाण्यासन्महोल्कानां पातन्तीनामिवाम्बरात्॥ १६॥

शक्तिभिर्भिन्नहृदया निर्दया इव पातिताः। निरयेष्विव निर्मग्नाः कूजन्ते प्रमथासुराः॥
हेमकुण्डलयुक्तानि किरीटोत्कटवन्तिच। शिरांस्युर्व्यां पतन्तिस्म गिरिकूटानिवात्यये
परश्वधैः पट्टिशैश्च खड्गैश्च परिघै स्तथा। छिन्नाः करिवराकारा निपेस्तुस्ते धरातले॥
गर्जन्ति सहसा हृष्टाः प्रमथा भीमगर्जनाः। साधयन्त्वपरे सिद्धा युद्धगान्धर्वमद्भुतम्

बलवान्भासि प्रमथदर्पितो भासि दानव!।
इति चोच्चारयन्वाचं वारणा रणधूर्गताः॥ ४१॥

परिघैराहता केचिद्दानवैः शङ्करानुगाः। वमन्ते रुधिरं वक्त्रैः स्वर्णधातुमिवाचलाः॥
प्रमथैरपि नाराचैरसुराः सुरशत्रवः। द्रुमैश्च गिरिशृङ्गैश्च गाढमेवाहवे हताः॥ ४३॥
सूदितानथ तान् दैत्यानन्ये दानवपुङ्गवाः। उत्क्षिप्य चिक्षिपुर्वाप्यां मयदानवनोदिताः
ते चापि भास्वरैर्देहैः स्वर्गलोक इवामराः। उत्तस्थुर्वापीमासाद्य सद्रूपा भरणाम्बराः

अथैके दानवाः प्राप्य वापीप्रक्षेपणादसून् ।
आस्फोट्य सिंहनादञ्च कृत्वा धावंस्तथा सुराः ॥ ४६ ॥

दानवाः प्रमथानेतान् प्रसर्पत किमासथ । हतानपि हि वो वापी पुनरुज्जीवयिष्यति ॥
एवं श्रुत्वा शङ्कुकर्णो वचोऽग्रग्रहसन्निभः । द्रुतमेवेत्य देवेशमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥
सूदिताः सूदिता देव ! प्रमथैरसुरा ह्यमी । उत्तिष्ठन्ति पुनर्भीमाः सस्याइव जलोक्षिताः ॥

अस्मिन् किल पुरे वापी पूर्णामृतरसाम्भसा ।
निहतानिहता यत्र क्षिप्ता जीवन्ति दानवाः ॥ ५० ॥

इति विज्ञापयद्देवं शङ्कुकर्णो महेश्वरम् । अभवन् दानवबलउत्पाता वै सुदारुणाः ॥५१॥
तारकाख्यः सुभीमाक्षो दारितास्यो हरिर्यथा । अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो महादेवरथं प्रति
त्रिपुरे तु महान्घोरो भेरीशङ्खरवो बभौ । दानवा निःसृता दृष्ट्वा देवदेवरथे सुरम् ॥
भूकम्पश्चाभवत्तत्र शताङ्गो भूगतोऽभवत् । दृष्ट्वा क्षोभमगाद्रुद्रः स्वयम्भूश्च पितामहः ॥

ताभ्यां देववरिष्ठाभ्यामन्वितः स रथोत्तमः ।
अनायतनमासाद्य सीदते गुणवानिव ॥५५॥
धातुक्षये देह इव ग्रीष्मे चाल्पमिवोदकम् ।
शैथिल्यं याति स रथः स्नेहो विप्रकृतो यथा ॥५६॥

रथादुत्पत्यात्मभूर्वै सीदन्तं तु रथोत्तमम् । उज्जहार महाप्राणो रथं त्रैलोक्यरूपिणम्
तदा शराद्विनिष्पत्य पीतवासा जनार्दनः । वृषरूपं महत् कृत्वा रथं जग्राह दुर्धरम् ॥
सविषाणाभ्यां त्रैलोक्यं रथमेव महारथः । प्रगृह्योद्वहते सज्जं कुलं कुलवहो यथा ॥५९

तारकाख्योऽपि दैत्येन्द्रो गिरीन्द्र इव पक्षवान् ।
अभ्यद्रवत्तदा देवं ब्रह्माणं हतवांश्च सः ॥६०॥
स तारकाख्याभिहतः प्रतोदं न्यस्य कूबरे ।
विजज्वाल मुहुर्ब्रह्मा श्वासं वक्त्रात् समुद्गिरन् ॥६१॥

तत्र दैत्यैर्महानादो दानवैरपि भैरवः । तारकाख्यस्य पूजार्थं कृतो जलधरोपमः ॥६२॥

रथचरणकरोऽथ महामृधे वृषभवपुर्वृषभेन्द्रपूजितः ।

दितितनयबलं विमर्द्य सर्वं त्रिपुरपुरं प्रविवेश केशवः ॥६३॥
सजलजलदराजितां समस्तां कुमुदवरोत्पलफुल्लपङ्कजाढ्याम् ।
सुरगुरुरपिबत्पयोऽमृतन्तद्रविरिव सञ्चितशार्वरन्तमोऽन्धम् ॥६४॥
वापीं पीत्वा सुरेन्द्राणां पीतवासाजनार्दनः । नर्दमानोमहाबाहुः प्रविवेश श(स)रन्ततः
ततोऽसुरा भीमगणेश्वरैर्हताः प्रहारसम्वर्द्धितशोणितापगाः ।
पराङ्मुखाभीममुखैः कृतारणे यथा नयाभ्युद्यततत्परैर्नरः ॥६६॥
स तारकाख्यस्तडिमालिरेव च मयेन सार्द्धं प्रमथैरभिद्रुता ।
पुरं परावृत्यनुतेशरार्दिता यथा शरीरं पवनोदये गता ॥६७॥
गणेश्वराभ्युद्यतदर्पकाशिनो महेन्द्रनन्दीश्वरषण्मुखायुधि ।
विनेदुरुच्चैर्जहसुश्च दुर्मदाजयेमचन्द्रादि दिगीश्वरैः सह ॥६८॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे वापीपानकथनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वापीपालेन मयसमीपे वापीपानकथनम् ।

सूत उवाच ।

प्रमथैः समरेभिन्नास्त्रैपुरास्तेसुरारयः । पुरं प्रविविशुर्भीताः प्रमथैर्भग्नगोपुरम् ॥१॥
शीर्णदंष्ट्रा यथा नागा भग्नश्रृङ्गा यथा वृषाः ।
यथा विपक्षाः शकुना नद्यः क्षीणोदका यथा ॥२॥
मृतप्रायास्तथा दैत्या दैवतैर्विकृताननाः । बभूवुस्ते विमनसः कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥
अथ तान् ग्लानमनसस्तदा तामरसाननः । उवाच दैत्यो दैत्यानां परमाधिपतिर्मयः ॥
कृत्वा युद्धानि घोराणि प्रमथैः सहसामरैः । तोषयित्वा तथा युद्धे प्रमथानमरैः सह ॥
यूयं यत् प्रथमं दैत्याः पश्चाच्च त्वपीडिताः ।

प्रविष्टा नगरन्त्रासात् प्रमथैर्भृशमर्दिताः ॥६॥

अप्रियं क्रियते व्यक्तं देवैर्नास्त्यत्र संशयः। यत्र नाम महाभागाः प्रविशन्ति गिरेर्वनम्

अहो हि कालस्य वलमहो कालो हि दुर्जयः।

यत्रेदृशस्य दुर्गस्य उपरोधोऽयमागतः ॥८॥

मये विवदमाने तु नर्दमान इवाम्बुदे। बभूवुर्निष्प्रभा दैत्या ग्रहा इन्दूदये यथा ॥९॥

वापीपालास्ततोऽभ्येत्य नभःकाल इवाम्बुदाः।

मयमाहुर्यमप्रख्यं साञ्जलिप्रग्रहाः स्थिताः ॥१०॥

या साम्रृतरसा गूढा वापी वै निर्मिता त्वया।

समाकुलोत्पलवना समीनाकुलपङ्कजा ॥११॥

पीता सा वृषरूपेण केनचिद्दैत्यनायक। वापी सा साम्प्रतं दृष्टाभृतसंज्ञा इवाङ्गना ॥१२

वापीपालवचःश्रुत्वा मयोऽसौदानवप्रभुः। कष्टमित्यसकृत्प्रोच्य दितिजानिदमब्रवीत्

मया मायाबलकृता वापी पीता त्वियं यदि।

विनष्टाः स्म न सन्देहस्त्रिपुरं दानवागतम् ॥१४॥

निहतान्निहतान् दैत्यानाजीवयति दैवतैः। पीता वा यदि वा वापी पीतावैपीतवाससा

कोऽन्योमन्मायया गुप्तांवापीममृततोयिनीम्। पास्यतेविष्णुमजितंवर्जयित्वा गदाधरम्

सुगुह्यमपि दैत्यानां नास्त्यस्याविदितम्भुवि। यत्रमद्वरकौशल्यं विज्ञानं न वृतं बुधैः।

समोऽयं रुचिरो देशो निर्द्रुमो निर्द्रुमाचलः।

लभेमन्दूरतः कृत्वा बाधन्तेऽस्मान् गणामराः ॥१८॥

ते यूयं यदि मन्यध्वं सागरोपरिधिष्ठिताः। प्रमथानां महावेगं सहामः श्वसनोपमम्

एतेषाञ्च समारम्भास्तस्मिन् सागरसंप्लवे। निरुत्साहा भविष्यन्ति एतद्रथपथावृताः

युध्यतां निघ्नतां शत्रून्भीतानाञ्चद्रविष्यताम्। सागरोऽम्बरसङ्काशःशरणन्नो भविष्यति

इत्युक्त्वा स मयो दैत्यो दैत्यानामधिपस्तदा। त्रिपुरेण ययौतूर्णंसागरंसिन्धुबान्धवम्

सागरे जलगम्भीर उत्पपात पुरं वरम्। अवतस्थुः पुराण्येव गोपुराभरणानि च ॥२३

अपक्रान्ते तु त्रिपुरे त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। पितामहमुवाचेदं वेदवादविशारदम् ॥२४॥

पितामह ! दृढं भीता भगवन् ! दानवा हि नः ।
विपुलं सागरन्ते तु दानवाः समुपाश्रिताः ॥२५॥
यतएव हि ते यातास्त्रिपुरेण तु दानवाः । ततएव रथं तूर्णं प्रापयस्व पितामह ॥२६॥
सिंहनादं ततः कृत्वा देवा देवरथञ्च तम् । परिवार्य ययुर्हृष्टाः सायुधाः पश्चिमोदधिम्
ततोऽमरामरगुरुं परिवार्य भवं हरम् । नर्दयन्तो ययुस्तूर्णं सागरं दानवालयम् ॥२८॥
अथ चारुपताकभूषितं पटहाडम्बरशङ्खनादितम् ।
त्रिपुरमभिसमीक्ष्य देवता विविधबला ननदुर्यथा घनाः ॥ २९ ॥
असुरवरपुरेऽपि दारुणोजलधरारवमृदङ्गगह्वरः ।
दनुतनयनिनादमिश्रितः प्रतिनिधिसंक्षुभितार्णवोपमः ॥३०॥
अथ भुवनपतिर्गतिः सुराणामरिम्‍गयां प्रददात् सुलब्धबुद्धिः ।
त्रिदशगणापतिर्ह्युवा च शक्रम् त्रिपुरगतं सहसा निरीक्ष्य शत्रुम् ॥३१॥
त्रिदशगणपते ! निशामयैतत् त्रिपुरनिकेतनमुत्तमं सुरेन्द्र ।
यमवरुणकुवेरषण्मुखैस्तत् सह गणपैरपि हन्मितावदेव ॥३२॥
विहितपरबलाभिघातभूतम् व्रज जलधेस्तु यतः पुराणि तस्थुः ।
स रथवरगतोभवः समर्थो ह्युदधिमगात् त्रिपुरं पुनर्निहन्तुम् ॥३३॥
इति परिगणयन्तोदितेः सुता ह्यवतस्थुर्लवणार्णवोपरिष्टात् ।
अभिभवत् त्रिपुरं स दानवेन्द्रं शरवर्षैर्मुसलैश्च वज्रमिश्रैः ॥३४॥
अहमपि रथवर्यमास्थितः सुरवरवर्य्य ! भवेय पृष्ठतः ।
असुरवरवधार्थमुद्यतानाम् प्रतिविदधामि सुखयतेऽनघ ॥३५॥
इति भववचनप्रचोदितो दशशतनयनवपुःसमुद्यतः ।
त्रिपुरपुरजिघांसया हरिः प्रविकसिताम्बुजलोचनो ययौ ॥३६॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे हरे मयपुरगमनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुरे देवदानवयुद्धम् ।

सूत उवाच ।

मघवा तु निहन्तुं तानसुरानमरेश्वरः । लोकपाला ययुः सर्वे गणपालाश्च सर्वशः ॥१॥
ईश्वरामोदिताः सर्वे उत्पेतुश्चाम्बरे तदा । खगतास्तु विरेजुस्ते पक्षवन्त इवाचलाः ॥
प्रययुस्तत्पुरं हन्तुं शरीरमिव व्याधयः । शङ्खाडम्बरनिर्घोषैः पणवान् पटहानपि ।
नादयन्तः पुरो देवा दृष्टास्त्रिपुरवासिभिः ॥३॥
हरः प्राप्त इतीवोक्त्वा बलिनस्ते महासुराः । आजग्मुः परमं क्षोभमत्यये ष्विवसागराः
सुरतूर्य्यरवं श्रुत्वा दानवा भीमदर्शनाः । निनेदुर्वादयन्तश्च नानावाद्यान्यनेकशः ॥५॥
भूयोदीरितवीर्य्यास्ते परस्परकृतागसः । पूर्वदेवाश्च देवाश्च सूदयन्तः परस्परम् ॥६॥
आक्रोशेऽपि समप्रख्ये तेषां देहनिकृन्तनम् । प्रवृत्तं युद्धमतुलं प्रहारकृतनिस्वनम् ॥७॥
श्वसन्त इव नागेन्द्रा भ्रमन्त इव पक्षिणः । गिरीन्द्रा इव कम्पन्तो गर्जन्तइवतोयदाः ॥
जृम्भन्त इव शार्दूलाः प्रवान्त इव वायवः । प्रवृद्धोर्मितरङ्गालाः क्षुभ्यन्त इव सागराः ॥
प्रमथाश्च महाशूरा दानवाश्च महाबलाः । युयुधुर्निश्चला भूत्वा वज्रा इव महाचलैः ॥
कार्मुकाणां निकृष्टानां बभूवुर्दारुणा रवाः । कालानुगानां मेघानां यथा वियति वायुना
आहुश्च युद्धे मा भैषीः क यास्यसिमृतोह्यसि । प्रहराशुस्थितोऽस्म्यत्रएहिदर्शयपौरुषम्
गृहाण च्छिन्धि भिन्धीति खादमारयदारय । इत्यन्योऽन्यमनूच्चार्य्य प्रययुर्यमसादनम्
खड्गापवर्जिताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः । केचिन्मुद्गरचूर्णाश्चकेचिद्बाहुभिराहताः
पट्टिशैः सूदिताः केचित्केचिच्छूलविदारिताः । दानवाः शरपुष्पाभाः सवनाइवपर्वताः ।
निपतन्त्यर्णवजले भीमनक्रतिमिङ्गिले ॥१५॥
व्यसुभिः सुनिबद्धाङ्गैः पतमानैः सुरेतरैः । सम्बभूवार्णवे शब्दः सजलाम्बुदनिस्वनः ॥
तेन शब्देन मकरा नक्रास्तिमितिमिङ्गिलाः । मत्तालोहित गन्धेन क्षोभयन्तो महार्णवम्

परस्परेण कलहं कुर्वाणा भीममूर्त्तयः। भ्रमन्ते भक्षयन्तश्च दानवानाञ्च लोहितम् ॥
सरथान् सायुधान् साश्वान् सवस्त्राभरणावृतान्।
जग्रसुस्तिमयो दैत्यान् द्रावयन्तो जलेचरान् ॥ १६ ॥
मृधं यथा सुराणाञ्च प्रमथानां प्रवर्त्तते। अम्बरेऽम्भसि च तथा युद्धं चक्रु र्जलेचराः ॥
यथा भ्रमन्ति प्रमथाः सदैत्यास्तथा भ्रमन्ते तिमयः सनक्राः।
यथैव छिन्दन्ति परस्परन्तु तथैव क्रन्दन्ति विभिन्नदेहाः ॥२१॥
व्रणाननैरङ्गरसं स्रवद्भिः सुरासुरैर्नक्रतिमिङ्गिलैश्च।
कृतो मुहूर्त्तेन समुद्रदेशः सरक्ततोयः समुदीर्णतोयः ॥२२॥
पूर्वं महाम्भोधरपर्वताभं द्वारं महान्तं त्रिपुरस्य शक्रः।
निपीड्य तस्थौ महता बलेन युक्तोऽमराणां महता बलेन ॥२३॥
तथोत्तरं सस्तनुजो हरस्य बालार्कजाम्बूनदतुल्यवर्णः।
स्कन्दः पुरद्वारमथारुरोह वृद्धोऽस्तशृङ्गं प्रपतन्निवार्कः ॥२४॥
यमश्च वित्ताधिपतिश्च देवो दण्डान्वितः पाशवरायुधश्च।
देवारिणस्तस्य पुरस्य द्वारं ताभ्यां तु तत्पश्चिमतो निरुद्धम् ॥२५॥
दक्षारिरुद्रस्तपनायुताभः स भास्वता देवरथेन देवः।
तद्दक्षिणद्वारमरैः पुरस्य रुद्ध्वावतस्थौ भगवांस्त्रिनेत्रः ॥२६॥
तुङ्गानि वेश्यानि सगोपुराणि स्वर्णानि कैलासशशिप्रभाणि।
प्रह्लादरूपाः प्रमथावरुद्धा ज्योतींषि मेघा इव चाश्मवर्षाः ॥२७॥
उत्पाट्य चोत्पाट्य गृहाणि तेषाम् सशैलमालासमवेदिकानि।
प्रक्षिप्य प्रक्षिप्य समुद्रमध्ये कालाम्बुदाभाः प्रमथा विनेदुः ॥२८॥
रक्तानि चाशेषवनैर्युतानि साशोकखण्डानि सकोकिलानि।
गृहाणि हे नाथ ! पितः ! सुतेति भ्रातेति कान्तेति प्रियेति चापि।
उत्पाट्यमानेषु गृहेषु नार्य अनार्यशब्दान्विविधान् प्रचक्रुः ॥२९॥
कलत्रपुत्रक्षयप्राणनाशे तस्मिन् पुरे युद्धमति प्रवृत्ते।

महासुराः सागरतुल्यवेगा गणेश्वराः कोपवृताः प्रतीयुः ॥ ३० ॥
परश्वधैस्तत्र शिलोपलैश्च त्रिशूलवज्रोत्तमकम्पनैश्च ।
शरीरसङ्घक्षपणं सुघोरं युद्धं प्रवृत्तं दृढवैरबद्धम् ॥ ३१
अन्योन्यमुद्दिश्य विमर्दता च प्रधावतां चैव विनिघ्नताञ्च ।
शब्दो बभूवामरदानवानां युगान्तकालेष्विव सागरान्तः ॥ ३२ ॥
मार्गाः पुरे लोहितकर्दमालाः स्वर्णकास्फाटिकभिन्नचित्राः ।
कृता मुहूर्त्तेन सुखेन गन्तुं छिन्नोत्तमाङ्गाङ्घ्रिकराः करालाः ॥ ३३ ॥
कोपावृताक्षः स तु तारकाख्यः संख्ये सवृक्षः सगिरिर्निलीनः ।
तस्मिन् क्षणे द्वारवरं रिरक्षो रुद्धं भवेनाद्भुतविक्रमेण ॥ ३४ ॥
स तत्र प्राकारगतांश्च भूतांश्छातनमहानद्भुतवीर्य्यसत्वः ।
चचार चात्तेन्द्रियगर्वदृप्तः पुराद्विनिष्क्रम्य ररास घोरम् ॥ ३५ ॥
ततः स दैत्योत्तम पर्वताभो यथाञ्जसा नाग इवाभिमत्तः ।
निवारितो रुद्ररथं जिघृक्षुर्यथार्णवः सर्पति चातिवेलः ॥ ३६ ॥
शेषःसुधन्वा गिरिशश्च देवश्चतुर्मुखो यः सत्रिलोचनश्च ।
ते तारकाख्याभिगता गताजौ क्षोभं यथा वायुवशात् समुद्राः ॥ ३७ ॥
शेषो गिरीशः सपितामहेशश्चोत्क्षुभ्यमाणः स रथेऽम्बरस्थः ।
त्रिभेद सन्धीषु बलाभिपन्नःकूजन्निनादांश्च करोति घोरान् ॥ ३८ ॥
एकन्तु ऋग्वेदतुरङ्गमस्य पृष्ठे पदं न्यस्य वृषस्य चैकम् ।
तस्थौ भवः सोद्यतबाणचापः पुरस्य तत्सङ्गमभीक्षमाणः ॥ ३९ ॥

तदा भवपदन्यासाद्धयस्य वृषभस्य च । पेतुस्स्तनाश्च दन्ताश्च पीडिताभ्यां त्रिशूलिना
ततःप्रभृतिचाश्वानां स्तनादन्ता गवान्तथा । गूढाः समभवंस्तेन चादृश्यत्वमुपागताः
तारकाख्यस्तु भीमाख्यो रौद्ररक्तान्तरेक्षणः । रुद्रान्तिके सुसंरुद्धो नन्दिना कुलनन्दिना
परश्वधेन तीक्ष्णेन स नन्दी दानवेश्वरम् । तक्षयामास वै तक्षा चन्दनं गन्धदो यथा॥
परश्वधहतः शूरः शैलादिः शरभो यथा । दुद्राव खड्गं निष्कृष्य तारकाख्यो गणेश्वरम्

यज्ञोपवीतमादाय चिच्छेद च निनाद च। ततःसिंहरवो घोरः शङ्खशब्दश्च भैरवः॥
गणेश्वरैः कृतस्तत्र तारकाख्ये निषूदिते॥ ४५॥
प्रमथा रसितं श्रुत्वा वादित्रस्वनमेव च।
पार्श्वस्थः सुमहापार्श्वं विद्युन्मालिं मयोऽब्रवीत्॥ ४६॥
बहुवदनवतां किमेव शब्दो नदतां श्रूयते भिन्नसागराभः।
वद वचनन्तडिमालिन् किन्त्विमे तद्गणपाला युयुधुर्युर्गजेन्द्राः॥ ४७॥
इति मयवचनाङ्कुशार्दितस्तन्तडिमाली रविरिवांशुमाली।
रणशिरसि समागतः सुराणां निजगादेदमरिन्दमोऽतिहर्षात्॥ ४८॥
यमवरुणमहेन्द्ररुद्रवीर्यस्तवयशसो निधिर्धीरतारकाख्यः।
सकलसमरशीर्षपर्वतेन्द्रो युद्धवा यस्तपति हि तारको गणेन्द्रैः॥४९॥
सूदितमुपनिशम्य तारकाख्यम् रविदीप्तानलभीषणायताक्षम्।
हृषितसकलनेत्रलोमसत्वाः प्रमथास्तोयमुचो यथा नदन्ति॥ ५०॥
इति सुहृदो वचनं निशम्य तत्वं तडिमालेः स मयस्तु वर्णमाली।
रणशिरस्यसिताञ्जनाचलाभो जगदे वाक्यमिदं नवेन्दुमालिम्॥ ५१॥
विद्युन्मालिन्न नः कालः साधितुं ह्यवहेलया। करोमि विक्रमेणैतत् पुरं व्यसनवर्जितम्
विद्युन्माली ततःक्रुद्धोमयश्चत्रिपुरेश्वरः। गणान् जघ्नुस्तु द्राघिष्ठाः सहितास्तैर्महासुरैः
येन येन ततो विद्युन्माली याति मयश्च सः। तेन तेन पुरं शून्यं प्रमथोपहृतङ्कृतम्॥
अथ यमवरुणमृदङ्गघोषैः पणवडिण्डिमज्यास्वनप्रघोषैः।
सकरतलपुटैश्च सिंहनादैर्भवमभिपूज्य सुरावतस्थुः॥ ५५॥
संपूज्यमानो दितिजैर्महात्मभिः सहस्ररश्मिप्रतिमौजसैर्विभुः।
अभिष्टुतः सत्यरतैस्तपोधनैर्यथास्तशृङ्गाभिगतो दिवाकरः॥ ५६॥
इति श्री मत्स्यपुराणे तारकवधवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मयस्य-युद्धार्थं दानवान्प्रति प्रोत्साहनम् ।

सूत उवाच ।

तारकाख्ये हते युद्धे उत्सार्य प्रमथान् मयः । उवाच दानवान् भूयोभूयः सतु भयावृतान्
भोः सुरेन्द्राधुना सर्वे निबोधध्वं प्रभाषितम् ।
यत् कर्त्तव्यं मया चैव युष्माभिश्च महाबलैः ॥ २ ॥
पुष्यं समेष्यते काले चन्द्रःचन्द्रश्च निभाननाः । यदैकं त्रिपुरं सर्वं क्षणमेकं भविष्यति
कुरुध्वं निर्भया ! काले कोकिलाशंसितेन च । सकालःपुष्ययोगस्य पुरस्यच मयाकृतः
काले तस्मिन् पुरे यस्तु सम्भावयति संहतिम् । सएनं कारयेच्चूर्णं बलिनैकेषुणा सुरः॥
योधां प्राणोबलं यच्च याच वोवैरिता सुराः !। तत् कृत्वा हृदयेचैव पालयध्वमिदंपुरम्
महेश्वररथं ह्येकं सर्वप्राणेन भीषणम् । विमुखीकुर्वतात्यर्थं यथा नोत्सृजते शरम् ॥
तत एवं कृतेऽस्माभिस्त्रिपुरस्यापिरक्षणे । प्रतीक्षिष्यन्ति विवशाःपुष्ययोगं दिवौकसः
निशम्य तन्मयस्यैवं दानवास्त्रिपुरालयाः । मुहुः सिंहरवं कृत्वा मयमूचुर्यमोपमाः ॥६
प्रयत्नेन वयं सर्वे कुर्मस्तव प्रभाषितम् । तथाकुर्मो यथा रुद्रो न मोक्ष्यति पुरेशरम् ॥
अद्य यास्यामः संग्रामे तद्रुद्रस्य जिघांसवः । कथयन्ति दितेः पुत्रा हृष्टा भिन्नतनूरुहाः
कल्पंस्थास्यन्ति वा स्वस्थं त्रिपुरंशाश्वतंध्रुवम् । अदानवंवा भविता नारायणपदत्रयम्
वयंनधर्मंहास्यामो यस्मिन्प्रोक्ष्यतिनो भवान् । अदैवतमदैत्यंवालोकं द्रक्ष्यन्तिमानवाः
इति संमन्त्र्य हृष्टास्ते पुरान्तर्विबुधारयः । प्रदोषे मुदिता भूत्वा चेरुर्मन्मथचारताम् ॥
मुहुर्मुक्तोदयो भ्रान्त उदयाग्रंमहामणिः । तमांस्युत्सार्यभगवांश्चंद्रो जृम्भति सोऽम्बरम्
कुमुदालङ्कृते हंसो यथा सरसि विस्तृते । सिंहो यथा चोपविष्टोवैदूर्यशिखरेमहान् ॥
विष्णोर्यथा च विस्तीर्णे हारश्चोरसि संस्थितः ।
तथावगाढे नभसि चन्द्रो त्रिनयनोद्भवः ।

भ्राजते भ्राजयन् लोकान् सृजत् ज्योत्स्नारसं बलात् ॥ १७ ॥

शीतांशावुदिते चन्द्रे ज्यत्स्नापूर्णे पुरे सुराः । प्रदोषे ललितं चक्रुर्गृहमात्मनमेव च ॥

रथ्यासु राजमार्गेषु प्रासादेषु गृहेषु च ।

दीपाश्चरूपकपुष्पाभा नाल्पस्नेहप्रदीपिताः ।

तदा मठेषु ते दीपाः स्नेहपूर्णाः प्रदीपिताः ।

गृहाणि वसुमन्त्येषां सर्वरत्नमयानि च । ज्वलतो दीपयन्दीपान् चन्द्रोदयमिव ग्रहाः ॥

चन्द्रांशुभिर्भासमानमन्तर्दीपैः सुदीपितम् । उपद्रवैः कुलमिव पीयते त्रिपुरे तमः ॥२१॥

तस्मिन् पुरे वै तरुणप्रदोषे चन्द्राट्टहासे तरुणप्रदोषे ।

रत्यर्थिनो वै दनुजा गृहेषु सहाङ्गनाभिः सुचिरं विरेमुः ॥ २२ ॥

विनोदिता ये तु वृषध्वजस्य पञ्चेषवस्ते मकरध्वजेन ।

तत्रासुरेष्वासुरपुङ्गवेषु स्वाङ्गाङ्गनाः स्वेदयुता बभूवुः ॥ २३ ॥

कलप्रलापेषु च दानवीनां वीणाप्रलापेषु च मूर्च्छितांस्तु ।

मत्तप्रलापेषु च कोकिलानां स चापबाणो मदनो ममन्थ ॥२४॥

तमांसि नैशानि द्रुतं निहत्य ज्योत्स्नावितानेन जगद्वितत्य ।

खे रोहिणीं ताञ्च प्रियां समेत्य चन्द्रः प्रभाभिः कुरुतेऽधिराज्यम् ॥ २५ ॥

स्थित्वैव कान्तस्य तु पादमूले काचिद्वरस्त्रीस्वकपोलमूले ।

धत्ते विशोकं रुदती करोति तेनाननं स्वं समलङ्करोति ॥ २६ ॥

दृष्ट्वाननं मण्डलदर्पणस्थं महाप्रभा मे मुखजेति जप्त्वा ।

स्मृत्वा वराङ्गीरमणेरितानि तेनैव भावेन रतीमवाप ॥ २७ ॥

रोमाञ्चितैर्गात्रवरैर्युवभ्योरतानुरागाद्रमणेन चान्याः ।

स्वयं द्रुतं यान्ति मदाभिभूताः क्षपा यथा चार्कदिनावसाने ॥ २८ ॥

पेपीयते चातिरसानुविद्धा विमार्गितान् या च प्रियं प्रसन्ना ।

काचित्प्रियस्यातिचिरात्प्रसन्ना आसीत्प्रलापेषु च सम्प्रसन्ना ॥ २९ ॥

गोशीर्षयुक्तैर्हरिचन्दनैश्च पङ्काङ्किताक्षीरधरा सुरीणाम् ।

मनोज्ञरूपा रुचिरा बभूवुः पूर्णामृतस्येव सुवर्णकुम्भाः ॥ ३० ॥
क्षताधरोष्ठा द्रुतदोषरक्ता ललन्ति दैत्या दयितासु रक्ताः ।
तन्त्रीप्रलापा त्रिपुरेषु रक्ताः स्त्रीणां प्रलापेषु पुनर्विरक्ताः ॥ ३१ ॥
क्वचित् प्रवृत्तं मधुराभिगानं कामस्य वाणैः सुकृतं निधानम् ।
आपानभूमीषु सुखप्रमेयं गेयं प्रवृत्तन्त्वथ साधयन्ति ॥ ३२ ॥
गेयं प्रवृत्तं त्वथ शोधयन्ति केचित् प्रियां तत्र च साधयन्ति ।
केचित्प्रियां सम्प्रति बोधयन्ति सम्बुध्य सम्बुध्य च रामयन्ति ॥ ३३ ॥
चूतप्रसूनप्रभवः सुगन्धः सूर्ये गते वै त्रिपुरे बभूव ।
समर्मरी नूपुरमेखलानां शब्दश्च संम्बाधति कोकिलानाम् ॥ ३४ ॥
प्रियावगूढा दयितोपगूढा काचित्प्ररूढाङ्कुरुहापि नारी ।
सुचारुबाष्पाङ्कुरपल्लवानां नवाम्बुसिक्ता इव भूमिरासीत् ॥ ३५ ॥
शशाङ्कपादैरुपशोभितेषु प्रासादवर्येषु वराङ्गनानाम् ।
पानेन खिन्नादयितातिवेलङ्कपोलमाघ्रासि च किं ममेदम् ॥३६॥
आरोह मे श्रोणिमिमां विशालां पीनोन्नताङ्काञ्चनमेखलाढ्याम् ॥ ३७ ॥
रथ्यासु चन्द्रोदयभासितासु सुरेन्द्रमार्गेषु च विस्तृतेषु ।
दैत्याङ्गना यूथगता विभान्ति तारा यथा चन्द्रमसो दिवान्ते ॥ ३८ ॥
घण्टाट्टहासेषु च चामरेषु प्रेङ्खासु चान्यामदलोलभावात् ।
सन्दोलयन्ते कलसम्प्रहासाः प्रोवाच काञ्चीगुणसूक्ष्मनादा ॥ ३९ ॥
अम्लानमालान्वितसुन्दरीणाम् पर्याय एषोऽस्ति च हर्षितानाम् ।
श्रूयन्ति वाचः कलधौतकल्पा वापीषु चान्ये कलहंसशब्दाः ॥ ४० ॥
काञ्चीकलापश्च सहाङ्गरागः प्रेङ्खासुतद्रासक्तताश्च भावाः ।
छिन्दन्ति तासामसुराङ्गनानाम् प्रियालयान्मनमथमार्गणानाम् ॥ ४१ ॥
चित्राम्बरश्चोद्धृतकेशपाशः सन्दोल्यमानः शुशुभेऽसुरीणाम् ।
सुचारुवेषाभरणैरुपेतस्तारागणैर्ज्योतिरिवास चन्द्रः ॥ ४२ ॥

सन्दोलनादुच्छसितैश्छिन्नसूत्रैः कालीभ्रष्टैर्मणिभिर्विप्रकीर्णैः
दोलाभूमिस्तैर्विचित्रा विभाति चन्द्रस्य पार्श्वोपगतैर्विचित्रा ॥ ४३ ॥
सचन्द्रिके सोपवने प्रदोषे रुतेषु वृन्देषु च कोकिलानाम् ।
शरव्ययं प्राप्य पुरेऽसुराणां प्रक्षीणवाणो मदनश्चचार ॥ ४४ ॥
इति तत्र पुरेऽमरद्विषाणां सपदि हि पश्चिमकौमुदी तदासीत् ।
रणशिरसि पराभविष्यतां वै भवतुरगैः कृतसङ्क्षया अरीणाम् ॥ ४५ ॥
चन्द्रोऽथकुन्दकुसुमाकरहारवर्णो ज्योत्स्नावितानरहितोऽभ्रसमानवर्णः ।
विच्छायतां हि समुपेत्य न भाति तद्वद्भाग्यक्षये धनपतिश्च नरो विवर्णः ॥
चन्द्रप्रभामरुणसारथिनाभिभूय सन्तप्तकाञ्चनरथाङ्गसमानविम्वः ।
स्थित्वोदयाग्रमुकुटे वहुरेव सूर्य्यो भात्यम्बरे तिमिरतोयवहान्तरिष्यन् ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रदोषवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवदानवयुद्धवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

उदिते तु सहस्रांशौ मेरौ भासाकरे रवौ । नदद्वै व कुलं कृत्स्नं युगान्त इव सागराः ॥
सहस्रनयनो देवस्ततः शक्रः पुरन्दरः । सवित्तदः सवरुण स्त्रिपुरं प्रययौ हरः ॥ २ ॥
ते नानाविधरूपाश्च प्रमथातिप्रमाथिनः । ययुः सिंहरवैर्घोरैर्वादित्रनिनदैरपि ॥ ३ ॥
ततोवादितवादित्रैश्छातपत्रैर्महाद्रुमैः । बभूव तद्बलं दिव्यं वनं प्रचलितं यथा ॥ ४ ॥

तदा पतन्तं संप्रेक्ष्य रौद्रं रुद्रबलं महत् ।
सङ्क्षोभो दानवेन्द्राणां समुद्रप्रतिमो वभौ ॥ ५ ॥
तेचासीन् पट्टिशानच्छक्तीः शूलदण्डपरश्वधान् ।

शरासनानि वज्राणि गुरूणि मुसलानि च ॥ ६ ॥

प्रगृह्य कोपरक्ताक्षाः सपक्षा इव पर्वताः । निजघ्नुः पर्वतप्राय घना इव तपात्यये ॥७॥
स विद्युन्मालिनस्ते वै समयादिति नन्दनाः । मोदमानाः समासेदु र्देवदेवैः सुरारयः ॥
मर्तव्यकृतबुद्धीनां जये चानिश्चितात्मनाम् । अबलानाञ्चमू ह्यासीद्बलाचयवा इव ॥९॥
विगर्जन्त इवाम्भोदा अम्भोदसदृशत्विषः । प्रयुद्धा युद्धकुशलाः परस्परकृतागसः ॥

धूमायन्तो ज्वलद्भिश्च आयुधैश्चन्द्रवर्चसैः ।
कोपाद्धा युद्धलुब्धाश्च कुट्टयन्ते परस्परम् ॥ ११ ॥
वज्राहताः पतन्त्यन्ये बाणैरन्ये विदारिताः ।
अन्ये विदारिताश्चक्रैः पतन्ति ह्युदधेर्जले ॥ १२ ॥

छिन्नस्रग्दामहाराश्च प्रमृष्टाम्बरभूषणाः । तिमिनक्रगणे चैव पतन्ति प्रमथाः सुराः ॥
गदानां मुसलानाञ्च तोमराणां परश्वधाम् । वज्रशूलर्ष्टिपातानां पट्टिशानाञ्च सर्वतः ॥
गिरिश्टङ्गोपलानाञ्च प्रेरितानां प्रमन्युभिः । सजवानां दानवानां सधूमानां रवित्विषाम्

आयुधानो महानोघः सागरौघे पतत्यपि ॥ १५ ॥

प्रवृद्धवेगैस्तैस्तत्र सुरासुरकरेरितैः । आयुधैस्त्रस्तनक्षत्रः क्रियते सङ्क्षयो महान् ॥१६
क्षुद्राणाङ्गजयोर्युद्धे यथा भवति सङ्क्षयः । देवासुरगणैस्तद्वत्तिमिनक्रक्षयोऽभवत् ॥१७
विद्युन्माली च वेगेन विद्यु न्माली इवाम्बुदः । विद्युन्माल घनोन्नादो नन्दीश्वरमभिद्रुतः
स तन्तमोऽरिवदनं प्रनदन् वदताम्वरः । उवाच युधि शैलादिन्दानवोऽम्बुधिनिस्वनः ॥

युद्धाकाङ्क्षी तु बलवान् विद्यु न्माल्यहमागतः ।
यदि त्विदानीं मे जीवन्मुच्यसे नन्दिकेश्वर ! ।
न विद्यु न्मालि हननं वचोभिर्युधि दानवः ॥ २० ॥
तमेवं वादिनं दैत्यं नन्दीशस्तपताम्वरैः ।
उवाच प्रहरंस्तत्र वाद्यलङ्कारवद्वचः ॥ २१ ॥
दानवाः ! धर्म्मकामानां नैषोऽवसर इत्यतः ।
शक्तो हन्तुं किमात्मानं जातिदोषाद्विवं हसि ॥ २२ ॥

यदि तावन्मया पूर्वं हतोऽसि पशुवद्यथा। इदानीं वा कथं नाम न हिंस्ये क्रतुदूषणम् ॥
सागरं तरते दोर्भ्यां पातयेद्यो दिवाकरम्।
सोऽपि मां शक्नुयान्नैव चक्षुर्भ्यां समवीक्षितुम् ॥ २४ ॥
इत्येवं वादिनं तत्र नन्दिनं तन्निभोवले। बिभेदैकेषुणा दैत्यः करणार्क इवाम्बुदम् ॥
वक्षसः सशरस्तस्य पपौ रुधिरमुत्तमम्। सूर्यस्त्वात्मप्रभावेण नद्यर्णवजलं यथा ॥
स तेन सुप्रहारेण प्रथमञ्चाति रोषितः। हस्तेन वृक्षमुत्पाट्य चिक्षेप गजराडिव ॥२७॥
वायुनुन्नः स च तरुः शीर्णपुष्पो महारवः। विद्युन्मालिशरैश्छिन्नः पपात पतगेशवत्
वृक्षमालोक्य तं छिन्नं दानवेन वरेषुभिः। रोषमाहारयत्तीव्रं नन्दीश्वर सुविग्रहः ॥२६
सोद्यम्य करमारावे रविशक्रकरप्रभम्। दुद्राव हन्तुं स क्रूरं महिषं गजराडिव ॥ ३० ॥
तमापतन्तं वेगेन वेगवान् प्रसभं वलात्। विद्युन्माली शरशतैः पूरयामास नन्दिनम् ॥
शरकण्टकिताङ्गो वै शैलादिः सोऽभवत् पुनः। अरेर्गुह्यरथं तस्य महतः प्रययौ जवात्
विलम्बिताश्वोविशिरो भ्रमितश्च रणे रथः। पपात मुनिशापेन सादित्योऽर्करथो यथा
अन्तपान्निर्गतश्चैव मायया स दितेः सुतः। आजघान तदा शक्त्याशैलादिं समवस्थितम्
तामेव तु विनिष्क्रम्यरशक्तिशोणितभूषिताम्। विद्युन्मालिं समुद्दिश्यचिक्षेपप्रमथाग्रणीः
तया भिन्नतनुत्राणो विभिन्न हृदयस्त्वपि। विद्युन्माल्यपतद्भूमौ वज्राहतइवाचलः
विद्युन्मालिनिनिहतेसिद्धचारणकिन्नराः। साधुसाध्वीतिचोक्त्वा ते पूजयन्तउमापतिम्
नन्दिना सादिते दैत्ये विद्युन्मालौ हते मयः। ददाह प्रमथानीकं वनमग्निरिवोद्धतः ॥
शूलनिर्दारितोरस्का गदाचूर्णितमस्तकाः। इषुभिर्गाढविद्धाश्च पतन्ति प्रमथार्णवे ॥
अथ वज्रधरो यमोऽर्थदः स च नन्दी स च षण्मुखो गुहः।
मयमसुरवीरसम्प्रवृत्तं विविधुः शस्त्रवरैर्हतारयः ॥४०॥
नागन्तु नागाधिपतेः शताक्षं मयो विदार्येषु वरेण तूर्णम्।
मयश्च वित्ताधिपतिश्च विद्ध्वा ररास मत्ताम्बुदवत्तदानीम् ॥४१॥
ततः शरैः प्रमथगणैश्च दानवा दृढाहताश्वोत्तमवेगविक्रमाः।
भृशानुविद्धास्त्रिपुरं प्रवेशिता यथा शिवश्चक्रधरेण संयुगे ॥४२॥

ततस्तु शङ्खानकभेरिमर्दलाः ससिंहनादादनुपुत्रभङ्गदाः ।
कपर्दिसैन्ये प्रबभुः समन्ततो निपात्यमाना युधि वज्रसन्निभाः ॥४३॥

अथ दैत्यपुराभावे पुष्ययोगो बभूव ह । बभूव चापि संयुक्तं तद्योगेन पुरत्रयम् ॥४४॥
ततो बाणं त्रिधा देवस्त्रिदैवतमयं हरः । मुमोच त्रिपुरे तूर्णं त्रिनेत्रस्त्रिपदाधिपः ॥४५॥
तेन मुक्तेन बाणेन बाणपुष्पसमप्रभम् । आकाशं स्वर्णसङ्काशं कृतं सूर्य्येण रञ्जितम् ॥
मुक्त्वा त्रिदैवतमयं त्रिपुरे त्रिदशः शरम् । धिग्धिङ्मामिति चक्रन्दकष्टंकष्टमिति ब्रुवन् ॥
वैधुर्यं दैवतं दृष्ट्वा शैलादिर्गजवद्गतः । किमिदन्त्विवति पप्रच्छ शूलपाणिं महेश्वरम् ॥४८॥
ततः शशाङ्कतिलकः कपर्दी परमार्तवत् । उवाच नन्दिनं भक्तः स मयोऽद्य विनंक्ष्यति
अथ नन्दीश्वरस्तूर्णं मनोमारुतमङ्गली । शरे त्रिपुरमायाति त्रिपुरं प्रविवेश सः ॥५०॥
स मयम्प्रेक्ष्य गणपः प्राहकाञ्चनसन्निभः । विनाशस्त्रिपुरस्यास्य प्राप्तो मय! सुदारुणः
अनेनैव गृहेण त्वमपक्राम ब्रवीम्यहम् । श्रुत्वा तन्नन्दिवचनं दृढभक्तो महेश्वरे ॥
तेनैव गृहमुख्येन त्रिपुरादपसर्पितः ॥ ५२ ॥

सोऽपीषुः पत्रपुटवद्दग्ध्वा तन्नगरत्रयम् । त्रिधा इव हुताशश्च सोमो नारायणस्तथा ।
शरतेजःपरीतानि पुराणि द्विजपुङ्गवाः ! । दुष्पुत्रदोषाद्दह्यन्ते कुलान्यूर्ध्वं यथा तथा ॥
मेरुकैलासकल्पानि मन्दराग्रनिभानि च । सकपाटगवाक्षाणि वलिभिः शोभितानि च
सप्रासादानि रम्याणिकूटागारोत्कटानि च । सजलानिसमाख्यानिसावलोकनकानिच
बद्धध्वजपताकानि स्वर्णरौप्यमयानि च । गृहाणि तस्मिंस्त्रिपुरे दानवानामुपद्रवे ॥
दह्यन्ते दहनाभानि दहनेन सहस्रशः ॥ ५७ ॥

प्रासादाग्रेषु रम्येषु वनेषूपवनेषु च । वातायनगताश्चान्याश्चाकाशस्य तलेषु च ॥५८॥
रमणैरुपगूढाश्च रमन्त्यो रमणैः सह । दह्यन्ते दानवेन्द्राणामग्निना ह्यपि ताःस्त्रियः ॥
काचित् प्रियं परित्यज्य अशक्ता गन्तुमन्यतः । पुरः प्रियस्यपञ्चत्वङ्गताग्नि वदनेक्षयम्
उवाच शतपत्राक्षी सास्राक्षीव कृताञ्जलिः । हव्यवाहन ! भार्याहं परस्य परतापन ! ॥
धर्म्मसाक्षी त्रिलोकस्य न मां स्प्रष्टुमिहार्हसि ॥ ६१ ॥

शायितश्च मया देव ! शिवया च शिवप्रभ ! । परेण प्रेहि मुक्त्वेदं गृहञ्च दयितं हि मे

एका पुत्रमुपादाय बालकं दानवाङ्गना। हुताशनसमीपस्था इत्युवाच हुताशनम् ॥६३
बालोऽयं दुःखलब्धश्च मया पावक! पुत्रक। नार्हस्येनमुपादातुं दयितं षण्मुखप्रिय!
काश्चित् प्रियान्परित्यज्य पीड़िता दानवाङ्गनाः। निपतन्त्यर्णवजले शिञ्जमानविभूषणाः
तात पुत्रेति मातेति मातुलेति च विह्वलम्। चक्रन्दुस्त्रिपुरेनार्यः पावकज्वालवेपिताः
यथा दहति शैलाग्निःसाम्बुजं जलजाकरम्। तथा स्त्रीवक्त्रपद्मानि चादहत्त्रिपुरेऽनलः

तुषारराशिः कमलाकराणां यथा दहत्यम्बुजकानि शीते।
तथैव सोऽग्निस्त्रिपुराङ्गनानां ददाह वक्त्रेक्षणपङ्कजानि ॥६८॥
शराग्निपातात् समभिद्रुतानां तत्राङ्गनानामतिकोमलानाम्।
बभूव काञ्चीगुणनूपुराणामाक्रन्दितानाञ्च रवोऽतिमिश्रः ॥६९॥
दग्धार्द्धचन्द्राणि स वेदिकानि विशीर्णहर्म्याणि सतोरणानि।
दग्धानि दग्धानि गृहाणि तत्र पतन्ति रक्षार्थमिवार्णवौघे ॥७०॥
गृहैः पतद्भिर्ज्वलनावलीढैरासीत्समुद्रे ललिलं प्रतप्तम्।
कुपुत्रदोषैः प्रहतानुविद्धं यथा कुलं याति धनान्वितस्य ॥७१॥
गृहप्रतापैः क्वथितं समन्तात्तदार्णवे तोयमुदीर्णवेगम्।
वित्रासयामास तिमीन् सनक्रां स्तिमिङ्गिलांस्तत्क्वथितांस्तथान्यान् ॥७२॥
सगोपुरो मन्दरपादकल्पः प्राकारवर्यस्त्रिपुरे च सोऽथ।
तैरेव सार्द्धं भवनैः पपात शब्दं महान्तं जनयन् समुद्रे ॥ ७३ ॥
सहस्रशृङ्गैर्भवनैर्यदासीत् सहस्रशृङ्गः स इवाचलेशः।
नामावशेषं त्रिपुरं प्रजज्ञे हुताशनाहारबलिप्रयुक्तम् ॥ ७४ ॥
प्रदह्यमानेन पुरेण तेन जगत्सपातालदिवं प्रतप्तम्।
दुःखं महत्प्राप्य जलावमग्नं यस्मिन् महान् सौधवरो मयस्य ॥ ७५ ॥

शोषचः श्रुत्वा इन्द्रो वज्रधरस्तदा। शशाप तद्गृहञ्चापि मयस्यादितिनन्दनः ॥
असेव्यमप्रतिष्ठञ्च भयेन च समावृतम्। भविष्यति मयगृहं नित्यमेव यथाऽनलः ॥
यस्य यस्य तु देशस्य भविष्यति पराभवः। द्रक्ष्यन्ति त्रिपुरं खण्डं तत्रेदं नाशगा जनाः।

तदेतदद्यापि गृहं मयस्यामयवर्जितम् ॥ ७८ ॥

ऋषय ऊचुः ।

भगवन् ! स मयो येन गृहेण प्रपलायितः । तस्य नो गतिमाख्याहि मयस्य चमसोद्भव।

सूत उवाच ।

दृश्यते दृश्यते यत्र ध्रुवस्तत्र मयास्पदम् । देवद्विड् तु मयश्चातः स तदाखिन्नमानसः।

ततश्च्युतोऽन्यलोकेऽस्मिंस्त्राणार्थं वै चकार सः ॥ ८० ॥

तत्रापि देवताः सन्ति आप्तोर्यामाः सुरोत्तमाः। तत्राशक्तं ततो गन्तुं तच्चैकं पुरमुत्तमम्

शिवः सृष्ट्वा गृहं प्रादान् मयश्चैव गृहार्थिनम् । विरराम सहस्राक्षः पूजयामास चेश्वरम्

पूज्यमानश्च भूतेशं सर्वे तुष्टुवुरीश्वरम् ॥ ८२ ॥

संपूज्यमानं त्रिदशैः समीक्ष्य गणैर्गणेशाधिपतिन्तु मुख्यम् ।

हर्षाद्ववल्गुर्जहसुश्च देवा जग्मुर्ननर्दुस्तु विषाक्तहस्ताः ॥ ८३ ॥

पितामहं वन्द्य ततो महेशं प्रगृह्य चापं प्रविसृज्य:भूतान् ।

रथाच्च सम्पत्य हरेषु दग्धं क्षिप्तं पुरं तन्मकरालये च ॥ ८४ ॥

य इमं रुद्र विजयं पठते विजयावहम् । विजयन्तस्य कृत्येषु ददाति वृषभध्वजः ॥८५॥

पितॄणां वापि श्राद्धेषु य इमं श्रावयिष्यति । अनन्तं तस्य पुण्यंस्यात् सर्वयज्ञफलप्रदम्

इदं स्वस्त्ययनं पुण्यमिदं पुंसवनं महत् । इदं श्रुत्वा पठित्वा च यान्ति रुद्रसलोकताम्

इति श्री मत्स्यपुराणे शङ्करविजयवर्णनं नामोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अमावास्यामहत्त्ववर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कथं गच्छत्यमावास्यां मासिमासि दिवं नृप । ऐलः पुरूरवाःसूत ! तर्पयेत कथं पितॄन्

एतमिच्छामहे श्रोतुं प्रभावन्तस्य धीमतः ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं विस्तरेण तु । ऐलस्य दिवि संयोगं सोमेन सह धीमता

सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितॄणां तर्पणं तथा ।

सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥ ३ ॥

यदाचन्द्रश्च सूर्य्यश्च नक्षत्राणां समागतौ । अमावास्यां निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले

तदा स गच्छति द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ । अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ

अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तिष्ठति । प्रचस्कन्द ततःसोममर्चयित्वा परिश्रमात्

ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि श्राद्धचिकीर्षया । ततः स दिवि सोमंवै ह्युपतस्थे पितॄनपि

द्विलवङ्कुहुमात्रञ्च तावुभौ तु निधाय सः । सिनीवाली प्रमाणाल्पकुहुमात्रव्रतोदये ॥

कुहूमात्रं पितृदेशं ज्ञात्वा कुहूमुपासते । तमुपास्य ततः सोमं कलापेक्षी प्रतीक्षते ॥८॥

स्वधा मृतन्तु सोमाद्वैवसंस्तेषाञ्च तृप्तये । दशभिः पञ्चभिश्चैव स्वधाऽमृतपरिस्रवैः ॥

कृष्णपक्षभुजां प्रीतिर्दुह्यते परमांशुभिः ॥ १० ॥

सद्योभिक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः । निवापेष्वथ दत्तेषु पित्र्येण विधिना तु वै॥

स्वधा मृतेन सौम्येन तर्पयामास वै पितॄन् ।

सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥ १२ ॥

ऋतुरग्निःस्मृतो विप्रैर्ऋतुं सम्वत्सरंविदुः । जज्ञिरे ऋतवस्तस्माद्दतुभ्यो ह्यार्त्तवाभवन्

पितरोऽर्त्तवोऽर्द्धमासा विज्ञेया ऋतुसूनवः । पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याब्दसूनवः ॥

प्रपितामहाः स्मृता देवाः पञ्चाब्दं ब्रह्मणः सुताः ॥ १४ ॥

सौम्याबर्हिषदःकाव्या अग्निष्वात्ताइतित्रिधा । गृहस्थायेतु यज्वानो हविर्यज्ञार्त्तवाश्चये

स्मृता बर्हिषदस्ते वै पुराणे निश्चयं गताः ॥१५॥

गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्त्तवाः स्मृताः ।

अष्टका पतयः काव्याः पञ्चाब्दांस्तु निबोधत ॥ १६ ॥

तेषुसम्वत्सरोह्यग्निःसूर्य्यस्तु परिवत्सरः । सोमस्त्विड्वत्सरश्चैववायुश्चैवानुवत्सरः

रुद्रस्तुवत्सरस्तेषां पञ्चाब्दाये युगात्मकाः । कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमाःस्रवते सुधाम्

एते स्मृता देवकृत्याः सोमपाश्चोष्मपा ये। तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः
यस्मात्प्रसूयतेसोमो मासिमासिविशेषतः। ततः स्वधामृतंतद्वै पितॄणां सोमपायिनाम्
एतत्तदमृतं सोममवाप मधु चैव हि ॥ २० ॥
ततः पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना। आप्यायते सुषुम्णेन सोमन्तु सोमपायिनम्
निःशेषावैकलाःपूर्वायुगपद्व्यापयन्पुरा। सुषुम्णाप्यायमानस्य भागं भागमहःक्रमात्
कलाः क्षीयन्ति कृष्णास्ताः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च।
एवं सा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥ २३ ॥
पौर्णमास्यां सदृश्येत शुक्लःसम्पूर्णमण्डलः। एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षेप्यहःक्रमात्
देवैः पीतसुधं सोमं पुरापश्चात्पिवेद्रविः ॥ २४ ॥
पीतं पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेनभास्करः। आप्याय यत् सुषुम्णेन भागं भागमहः क्रमात्
सुषुम्णाप्यायमानस्य शुक्लावर्द्धन्तिवैकलाः। तस्माद्ध्रसन्तिवैकृष्णाःशुक्लाप्याययन्तिच
एवमाप्यायते सोमः क्षीयते च पुनः पुनः।
समृद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥२७॥
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृतस्तद्वत् सुधात्मकः। कान्तःपञ्चदशैःसार्द्धंसुधामृतपरिस्रवैः
अतःपरं प्रवक्ष्यामि पर्वाणां सन्धयश्च याः। यथा ग्रथ्नन्ति पर्वाणि आवृत्तादिक्षुवेणुवत्
तथाब्दमासाः पक्षाश्च शुक्लाःकृ ष्णास्तु वै स्मृताः।
पौर्णमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः सन्धयस्तथा ॥३०॥
अर्द्धमासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च। अग्न्याधानक्रिया यस्मान्नीयन्ते पर्वसन्धिषु
तस्मात्तु पर्वणोह्यादौ प्रतिपद्यादिसन्धिषु। सायाह्ने अनुमत्याश्च द्वौलवौ कालउच्यते
लवौ द्वावेव राकायाः कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः ॥३२॥
प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णिके। सायाह्ने प्रतिपद्येष स कालः पौर्णमासिकः
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखादूद्र्ध्वं युगान्तरम्। युगान्तरोदिते चैवचन्द्रे लेखोपरिस्थिते
पूर्णमासव्यतीपातौ यदा पश्येत्परस्परम्। तौ तु वैप्रतिपद्यावत्तस्मिन्काले व्यवस्थितौ
तत्कालं सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा संख्यातुमर्हसि। सचैव सत्क्रियाकालः पर्वकालोऽभिधीयते

पूर्णेन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा । तस्मादाप्यायते नक्तंपौर्णमास्यां निशाकरः

यदान्योन्यवतीं पाते पूर्णिमां प्रेक्षते दिवा ।
चन्द्रादित्योऽपराह्णे तु पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥३८॥
यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥३९॥
अत्यर्थं राजते यस्मात् पौर्णमास्यां निशाकरः ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥४०॥

अमावसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ । एका पञ्चदशी रात्रिरमावस्या ततः स्मृता ॥

उद्दिश्य साममावास्यां यदा दर्शं समागतौ ।
अन्योऽन्यं चन्द्रसूर्य्यौ तु दर्शनाद्दर्श उच्यते ॥४२॥
द्वौ द्वौ लवावमावास्यां स कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्यक्षरः कुहूमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः ॥४३॥

दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतीह वै। दिवा तदूर्ध्वं रात्र्यान्तु सूर्ये प्राप्ते तुचन्द्रमाः

सूर्येण सहसोद्गच्छेत्ततः प्रातस्तनात्तु वै ॥४५॥

समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नान्निपतन्रविः । प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाःसूर्य्यमण्डलात्
विमुच्यमानयोर्मध्येतयोर्मण्डलयोस्तु वै । स तदान्वाहुतेः कालोदर्शस्यच वषट्क्रियाः

एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यान्तु पार्वणम् ॥४७॥
दिवा पर्व त्वमावास्यां क्षीणेन्दौ धवले तु वै ।
तस्माद्दिवा त्वमावास्यां गृह्यते यो दिवाकरः ॥४८॥
कुहेति कोकिलेनोक्तं यस्मात् कालात् समाप्यते ।
तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहूः स्मृता ॥४९॥
सिनीवालीप्रमाणन्तु क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली तदा स्मृता ॥५०॥
अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा ।

एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृता ॥५१॥

इत्येष पर्वसन्धीनां कालोवैद्विलवःस्मृतः । पर्वाणान्तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवषट्क्रियाः

चद्रसूर्य्यव्यतीपाते समे वै पूर्णिमे उभे । प्रतिपत्प्रतिपन्नस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः ॥

कालः कुहूसिनीवाल्योः समुद्धो द्विलवः स्मृतः ।

अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकालः कलाः स्मृताः ॥५४॥

यस्मादपूर्यते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णमा । दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात्

तस्मात् पञ्चदशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी ।

तस्मात् सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्यां मया क्षयः ॥५६॥

इत्येते पितरोदेवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ।

आर्त्तवा ऋतवोऽथाब्दा देवास्तान् भावयन्ति हि ॥५७॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि पितॄन् श्राद्धभुजस्तु ये । तेषां गतिञ्चसत्त्वंप्राप्तिंश्राद्धस्यचैव हि

न मृतानाङ्गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः । तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मां सचक्षुषा

अत्र देवान् पितॄंश्चैते पितरो लौकिकाः स्मृताः ।

तेषान्ते धर्म्मसामर्थ्यात् स्मृताः सायुज्यगा द्विजैः ॥६०॥

यदि वाश्रमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान् । अन्येचात्र प्रसीदन्ति श्राद्धयुक्तेषु कर्मसु ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि ।

श्राद्धेन विद्यया चैव चान्नदानेन सप्तधा ॥ ६२ ॥

कर्म्मस्वेतेषु ये सक्तावर्त्तन्त्या देहपातनात् । देवैस्ते पितृभिः सार्द्धमूष्मपैःसोमपैस्तथा

स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्त उपासते ॥ ॥ ६३ ॥

प्रजावतां प्रसिद्धैषा उक्ताश्राद्धकृताञ्च वै । तेषां निवापे दत्तं हि तत् कुलीनैस्तु बान्धवैः

मासश्राद्धं हि भुञ्जानास्तेऽप्येते सोमलौकिकाः ।

एते मनुष्याः पितरो मासश्राद्धभुजस्तु वै ॥ ६५ ॥

तेभ्योऽपरे तु येत्वन्ये सङ्कीर्णाःकर्मयोनिषु । भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेषुस्वधास्वाहाविवर्जिताः

भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये । स्वकर्माण्यनुशोचन्तो यातनास्थानमागताः ॥

दीर्घाश्चैवातिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवाससः ।
क्षुत्पिपासाभिभूतास्ते विद्रवन्ति त्वितस्ततः ॥ ६८ ॥

सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्च सर्वशः । परान्नान्यभिकाङ्क्षन्तः काल्यमाना इतस्ततः स्थानेषु पात्यमाना ये यातनास्थेषु तेषु वै । शाल्मल्यां वैतरिण्यां च कुम्भीपाके द्ववालुके असिपत्रवने चैव यात्यमानाः स्वकर्मभिः । तत्रस्थानान्तु तेषां वै दुःखितानामशायिनाम् तेषां लोकान्तरस्थानां वान्धवैर्नामगोत्रतः । भूमावसव्यं दर्भेषु दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै प्राप्तांस्तु तर्पयन्त्येव प्रेतस्थानेष्वधिष्ठितान् । अप्राप्ता यातनास्थानं प्रभ्रष्टा ये च पञ्चधा पश्चाद्ये स्थावरान्ते वै भूतानीके स्वकर्मभिः । नानारूपासु जातीनां तिर्यग्योनिषु मूर्त्तिषु यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु । तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारे श्राद्धं दत्तन्तु प्रीणयेत् काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम् । प्राप्नुवन्त्यन्नमादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठति

यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धेषु दृष्टान्तो मन्त्रः प्रापयते तु तम् ॥ ७६ ॥

एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं मनुरब्रवीत् । सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा गतागतज्ञः प्रेतानां प्राप्ति श्राद्धस्य चैव हि । कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै । अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरो दिवि ॥ एते तु पितरो देवा मनुष्याः पितरश्च ये । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ८० इत्येष विषयः प्रोक्तः पितॄणां सोमपायिनाम् । एतत् पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयं गतम् इत्येष सोमसूर्य्याभ्यामैलस्य च समागमः । अवाप्तिं श्रद्धया चैवं पितॄणाञ्चैव तर्पणम् पर्वणाञ्चैव यः कालो यातनास्थानमेव च । समासात् कीर्तितस्तुभ्यं सर्ग एष सनातनः वैरूप्यं येन तत्सर्वं कथितन्त्वेकदेशिकम् । अशक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सर्गो मयेरितः । विस्तरेणानुपूर्व्याच्च भूयः किं कथयामि वः

इति श्रीमत्स्यमहापुराणे पितृमहत्त्ववर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्युगमानवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

चतुर्युगानि यानि स्युः पूर्वे स्वायम्भवेऽन्तरे ।
एषां निसर्गं संख्याञ्च श्रोतुमिच्छाम विस्तरात् ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

एतच्चतुर्युगं त्वेवं तद्वक्ष्यामि निबोधत । तत्प्रमाणं प्रसंख्याय विस्तराच्चैव कृत्स्नशः
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दन्तु मानुषम् । तेनापीह प्रसंख्यायवक्ष्यामि तु चतुर्युगम्

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठाङ्गणयेत् कलान्तु ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥ ४ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके । रात्रिः स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्म्मणामहः ॥
पित्र्ये रात्र्यहनी मासःप्रविभागस्तयोः पुनः । कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लःस्वप्नाय शर्वरी

त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पैत्रो मासः स उच्यते ।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाभ्यधिकानि तु ।
पैत्रः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥ ७ ॥
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितॄणां तानि वर्षाणि संख्यातानि तु त्रीणि वै ।
दश च ह्यधिका मासाः पितृसंख्येह कीर्तिताः ॥ ८ ॥

लौकिकेन प्रमाणेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः । एतद्दिव्यमहोरात्रमित्येषा वैदिकी श्रुतिः
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तु यदुदक् चैव रात्रिर्या दक्षिणायनम्

एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः ॥ १० ॥
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।

मानुषाणां शतं यच्च दिव्या मासास्त्रयस्तु वै।

तथैव सह संख्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

त्रीणि वर्षशतान्येवं षष्टिवर्षस्तथैव च। दिव्यः सम्वत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ॥

त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः। त्रिंशदन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः ॥

नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च। वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसम्वत्सरःस्मृतः

षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च।

षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया।

दिव्यं वर्षसहस्रन्तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥ १५ ॥

इत्येतदृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः। दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रकल्पिता ॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन्। कृतत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैवं चतुर्युगम् ॥

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेताभिधीयते। द्वापरञ्च कलिश्चैव युगानि परिकल्पयेत् ॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम्।

तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ १९ ॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु। एकपादे निवर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥

त्रेता त्रीणि सहस्राणि युगसंख्याविदो विदुः।

तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥ २१ ॥

द्वे सहस्रे द्वापरन्तु सन्ध्यांशौ तु चतुःशतम्। सहस्रमेकं वर्षाणां कलिरेव प्रकीर्तितः।

द्वे शते च तथान्ये च सन्ध्या सन्ध्यांशयोः स्मृते ॥२२ ॥

एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या तु संज्ञिका। कृतत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ॥

तत्र सम्वत्सराः सृष्टा मानुषास्तान्निबोधत। नियुतानि दश द्वे च पञ्च चैवात्र संख्यया

अष्टाविंशत्सहस्राणि कृतं युगमथोच्यते ॥ २४ ॥

प्रयुतन्तु तथा पूर्णं द्वे चान्ये नियुते पुनः। षण्णवतिसहस्राणिसंख्या तानिच संख्यया

त्रेतायुगस्य संख्यैषा मानुषेण तु संज्ञिता। अष्टौ शतसहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥

चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां द्वापरं युगम् ॥ २६ ॥

चत्वारि नियुतानि स्युर्वर्षाणि तु कलिर्युगम् ।
द्वात्रिंशच्च तथान्यानि सहस्राणि तु संख्यया ।
एतत्कलियुगं प्रोक्तं मानुषेण प्रमाणतः ॥ २७ ॥

एषा चतुर्युगावस्था मानुषेण प्रकीर्तिता। चतुर्युगस्य संख्याता सन्ध्या सन्ध्यांशकैः सह
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका त्वेकसप्ततिः । कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते॥
मन्वन्तरस्यसंख्या तु मानुषेण निबोधत । एकत्रिंशत्तथाकोट्यः संख्याताःसंख्ययाद्विजैः
तथा शतसहस्राणिदशचान्यानि भागशः । सहस्राणि तु द्वात्रिंशच्छतान्यष्टाधिकानि च
अशोतिश्चैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तुषट्। मन्वन्तरस्यसंख्यैषामानुषेण प्रकीर्तिता
दिव्येन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याम्यन्तरं मनोः । सहस्राणां शतान्याहुः सच वै परिसंख्यया
चत्वारिंशत् सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते । मन्वन्तरस्य कालस्तु युगैः सह प्रकीर्तितः
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः । क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥
एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुस्तु तद्विदः । ततस्तु प्रलयः कृत्स्नः स तु संप्रलयो महान् ॥
कल्पप्रमाणो द्विगुणो यथा भवति संख्यया। चतुर्युगाख्या व्याख्याता कृतंत्रेतायुगञ्चवै
त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च । युगपत्समवेतौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते ॥
क्रमागतं मयाप्येतत्तुभ्यं नोक्तं युगद्वयम् । ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथा क्रमात् ॥
नोक्तं त्रेतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत । अथ त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये।
श्रौतस्मार्तं ब्रुवन्धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः ॥ ४० ॥

दाराग्निहोत्रसम्बन्धं ऋग्यजुःसामसंहिताः । इत्यादिबहुलं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥
परम्परागतं धर्मं स्मार्तत्वाचारलक्षणम् । वर्णाश्रमाचारयुक्तं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा । तेषां सुतप्ततपसा मार्गेणानुक्रमेण ह ॥ ४३ ॥
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः । अबुद्धिपूर्वकं तेन सकृत् पूर्वकमेव च ४४॥
अभिवृत्तास्तु ते मन्त्रा दर्शनैस्तारकादिभिः । आदिकल्पेतुदेवानां प्रादुर्भूतास्तुतेस्वयम्
प्रमाणेष्वथ सिद्धानामन्येषाञ्च प्रवर्तते ।

मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रशः ।

ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिमायामुपस्थिताः ॥ ४६ ॥

ऋचो यजूंषिसामानिमन्त्राश्चाथर्वणास्तु ये । सप्तर्षिभिश्चयेप्रोक्ताःस्मार्त्तन्तु मनुरब्रवीत्

त्रेतादौ संहता वेदाः केवलं धर्म्मसेतवः । संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च ते ॥

ऋषयस्तपसा वेदानहोरात्रमधीयत ॥ ४८ ॥

अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ।

स्वधर्म्मसंवृताः साङ्गा यथा धर्मं युगे युगे ।

विक्रियन्ते स्वधर्म्मन्तु वेदवादाद्यथायुगम् ॥ ४९ ॥

आरम्भयज्ञः क्षत्रहविर्यज्ञा विशः स्मृताः । परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञाश्च ब्राह्मणाः

ततः समुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्म्मशालिनः । क्रियावन्तःप्रजावन्तः समृद्धिसुखिनश्च वै

ब्राह्मणैश्च विधीयन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियैर्विशः । वैश्यान् शूद्रानुवर्तन्ते शूद्रान् परमनुग्रहात्

शुभाः प्रकृतयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमाश्रयाः । सङ्कल्पितेन मनसा वाचा वा हस्तकर्म्मणा

त्रेतायुगे ह्यविकले कर्मारम्भः प्रसिध्यति ॥ ५३ ॥

आयूरूपं बलं मेधा आरोग्यं धर्म्मशीलता । सर्वसाधारणं ह्येतदासीत्त्रेतायुगे तु वै ॥

वर्णाश्रमव्यवस्थानमेषां ब्रह्मा तथाकरोत् । संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यंधर्मशीलता

संहिताश्च तथा मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः । यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः ।

यामैः शुक्रैर्जयैश्चैव सर्वसाधनसंभृतैः । विश्वसृड्भिस्तथा सार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा ॥

स्वायम्भुवेन्तरे देवैस्ते यज्ञाः प्राक्प्रवर्तिताः ॥ ५७ ॥

सत्यं जपस्तपोदानं पूर्वं धर्मोऽयमुच्यते । यदा धर्म्मस्य ह्रसते शाखा धर्म्मस्य वर्द्धते ।

जायन्ते च तदा शूराआयुष्मन्तो महाबलाः । न्यस्तदण्डा महायोगायज्वानोब्रह्मवादिनः

पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्त्राः सुसंहताः । सिंहोरस्का महासत्वा मत्तमातङ्गगामिनः

महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्त्तिनः । सर्वलक्षणपूर्णास्ते न्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥६१।

न्यग्रोधौ तु स्मृतौबाहू व्यामोन्यग्रोधउच्यते । व्यामेन तूच्छ्रयोयस्यअतऊर्ध्वन्तुदेहिनः

समुच्छ्रयो परीणाहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥६२॥

चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गजस्तथा । प्रोक्तानि सप्तरत्नानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे

विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै ॥६४॥
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च । त्रेतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ॥
भद्राणामानि तेषाञ्च विभाव्यन्ते महीक्षिताम् ।अत्यद्भुतानि चत्वारि बलंधर्मंसुखं धनम्
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम् । अर्थोधर्म्मश्च कामश्च यशोविजयएव च
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिबलान्विताः । श्रुतेन तपसा चैव ऋषींस्तेऽभिभवन्ति हि
बलेनाभिभवन्त्येते तेन दानवमानवान् । लक्षणैश्चैव जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ॥६९॥

केशास्थिता ललाटेन जिह्वा च परिमार्जनी ।
श्यामप्रभाश्चतुर्दंष्ट्राः श्रवसाश्चोर्द्ध्वरेतसः ॥ ७० ॥

आजानुबाहवश्चैव तालहस्तौ वृषाकृती । परिणाहप्रमाणाभ्यां सिंहस्कन्धाश्च मेधिनः ।
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मे च हस्तयोः । पञ्चाशीति सहस्राणि जीवन्तिह्यजरामयाः
असङ्गा गतयस्तेषां चतस्रश्चक्रवर्तिनाम् । अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च ॥७३॥
इज्यादानन्तपः सत्यन्त्रेताधर्मास्तु वै स्मृताः । तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ॥
मर्यादास्थापनार्थश्च दण्डनीतिः प्रवर्तते । हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे आरोगाः पूर्णमानसाः ॥
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायान्तु विधिः स्मृतः । त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवन्तेतत्रताःप्रजाः
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण ताः । एते त्रेतायुगे भावस्त्रेतासंख्यां निबोधत
त्रेतायुगस्वभावेन सन्ध्यापादेन वर्तते । सन्ध्यापादः स्वभावाच्च योंऽशः पादेनतिष्ठति
इति श्रीमत्स्यपुराणे त्रेतायुगनिवरणवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रेतायुगे यज्ञविधिप्रवृत्तिः ।

ऋषय ऊचुः ।

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्तनम् । पूर्वे स्वायम्भुवे स्वर्गे यथावत् प्रब्रवीहि नः
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन हि । कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्तेत्रेतायुगेतथा

औषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने । प्रतिष्ठितायां वार्तायां ग्रामेषु च परेषु च ॥३
वर्णाश्रमप्रतिष्ठान्नं कृत्वा मन्त्रैश्च तैः पुनः । संहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञः प्रवर्त्तितः
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत् सूतः श्रूयतां तत्प्रचोदितम् ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

मन्त्रान्वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्म्मसु । तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्त्तयत्प्रभुः
दैवतैः सह संहृत्य सर्वसाधनसंवृतः । तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ॥ ६ ॥
यज्ञकर्म्मण्यवर्त्तन्त कर्म्मण्यग्रेतथर्त्विजः । हूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः ॥७॥
सम्प्रतीतेषु देवेषु सामगेषु च सुस्वरम् । परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च ॥ ८ ॥
आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगुणेषु वै । आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा ॥ ९ ॥
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते । तान्यजन्ति तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये
अध्वर्युप्रैषकाले तु व्युत्थिता ऋषयस्तथा । महर्षयश्च तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणांस्तदा
विश्वभुजन्तेत्वपृच्छन् कथं यज्ञविधिस्तव ॥ ११ ॥
अधर्मो बलवानेष हिंसा धर्मेप्सया तव । नवः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम ! ॥
अधर्मा धर्म्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया । नायंधर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसाधर्म्मउच्यते
आगमेन भवान् धर्मं प्रकरोतु यदीच्छति ॥ १३ ॥
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यसनेन तु । यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ ! त्रिवर्गपरिमोषितैः ॥ १४ ॥
एषयज्ञो महानिन्द्रः स्वयम्भुविहितःपुरा । एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः
उक्तो न प्रति जग्राह मानमोहसमन्वितः ॥ १५ ॥
तेषां विवादः सुमहान् जज्ञे इन्द्रमहर्षिणाम् । जङ्गमैः स्थावरैः केनयष्टव्यमिति चोच्यते
ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः । सन्धाय सममिन्द्रेण पप्रच्छुःखचरंवसुम्

ऋषय ऊचुः ।

महाप्राज्ञ ! त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप ! । औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं नस्तुद प्रभो !

सूत उवाच ।

श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्यबलाबलम् । वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥

यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः । यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ मूलफलैरपि ॥ २० ॥
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः । तथैते भविता मन्त्रा हिंसालिङ्गामहर्षिभिः
दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शिभिः । तत्प्रमाणं मया चोक्तं तस्माच्छमितुमर्हथ ।

यदि प्रमाणं स्वान्येव मन्त्रवाक्यानि वो द्विजाः ! ।
तथा प्रवर्त्ततां यज्ञो ह्यन्यथा मा नृतं वचः ॥ २३ ॥

एवं कृतोत्तरास्ते तु युञ्ज्यात्मानं ततोधिया । अवश्यम्भाविनं दृष्ट्वा तमधोह्यशपंस्तदा
इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम् । ऊर्द्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोऽभवत्
वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् । धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुधरोगतः
तस्मान्नवाच्यो ह्येकेन वहुज्ञेनापि संशयः । वहुधारस्य धर्म्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगागतिः ॥
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्म्मः शक्तो हि केनचित् । देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृतेमनुम्
तस्मान्न हिंसा यज्ञेस्याद्यदुक्तमृषिभिःपुरा । ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवङ्गताः
तस्मान्न हिंसायज्ञश्च प्रशंसन्ति महर्षयः । उञ्छो मूलं फलं शाकमुदपात्रे तपोधनाः
एतद्दत्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः । अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमोभूतदया शमः ॥३१
ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः । सनातनस्य धर्म्मस्य मूलमेव दुरासदम् ॥३२
द्रव्यमन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्च समतात्मकम् । यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पुनः ॥

ब्रह्मणः कर्म्मसंन्यासाद् वैराग्यात्प्रकृतेर्लयम् ।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः ॥ ३४ ॥

एवं विवादः सुमहान् यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तते । ऋषीणां देवतानाञ्च पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हृतं धर्मं वलेन ते । वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागतम् ॥
गतेषु ऋषिसङ्घेषु देवायज्ञमवाप्नुयुः । श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपाः ॥३७
प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः । सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपाद्राजसस्तथा ॥
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः । एते चान्ये च बहवस्ते तपोभिर्दिवङ्गताः
राजर्षयो महात्मानोयेषांकीर्त्तिः प्रतिष्ठिताः । तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपःसर्वैस्तुकारणैः
ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा । तस्मान्नाप्नोति तद्यज्ञात्तपो मूलमिदं स्मृतम्

यज्ञप्रवर्तनं ह्येवमासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे । तदा प्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सार्द्धं प्रवर्तितः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मन्वन्तरानुकल्पे देवर्षि संवादे त्रेतायुगेयज्ञप्रवृत्तिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

द्वापरयुग विवरणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः । तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या । परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सावैप्रणश्यति
ततः प्रवर्त्तिते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः । लोभोधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः
प्रध्वंसश्चैव वर्णानां कर्म्मणान्तु विपर्ययः । यात्रा वधःपरोदण्डोमानोदर्पोऽक्षमाबलम्
तथा रजस्तोमोभूयः प्रवृत्ते द्वापरे पुनः । आद्येकृतेनाधर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तितः ॥
द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलौ पुनः । वर्णानां द्वापरेधर्माःसङ्कीर्यन्ते तथाश्रमाः
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन्श्रुतिस्मृतौ । द्विधाश्रुतिःस्मृतिश्चैवनिश्चयो नाधिगम्यते
अनिश्चयावगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते । धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते ॥८॥

परस्परं विभिन्नास्ते दृष्टीनां विभ्रमेण तु ।
अतो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतमत्याकुलन्त्विदम् ॥९॥

एको वेदश्चतुष्पादः संहृत्य तु पुनः पुनः । संक्षेपादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेष्विह ॥
वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु । ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ॥

ते तु ब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः ।
संहृता ऋग्यजुःसाम्नां संहितास्तैर्महर्षिभिः ॥१२॥
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित् क्वचित् ।

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ॥१३॥
अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ।
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः ॥१४॥

एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधन्तु तत् पुनः । सामान्यविपरीतार्थैः कृतंशास्त्राकुलन्त्विदम्
आध्वर्यवश्च प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतम् । तथैवाथर्वणां साम्नां विकल्पैःस्वस्यसंक्षयैः
व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः क्रियते भिन्नदर्शनैः । द्वापरे सन्निवृत्ते ते वेदा नश्यन्ति वै कलौ
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः । अदृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥१८
वाङ्मनःकर्मभिर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः । निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा॥
विचारणायां वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् । दोषाणां दर्शनाच्चैव ज्ञानोत्पत्तिस्तुजायते
तेषां मेधाविनां पूर्वं मर्त्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे । उत्पत्स्यन्तीहशास्त्राणांद्वापरे परिपन्थिनः
आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानांज्योतिषस्यच । अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम्
प्रक्रियाकल्पसूत्राणांभाष्यविद्याविकत्थनम् । स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्चप्रस्थानानिपृथक्पृथक्

द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ।
मनसा कर्म्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्त्ता प्रसिध्यति ॥२४॥

द्वापरे सर्वभूतानां कालः क्लेशपरः स्मृतः । लोभो धृतिर्वणिग्युद्धन्तत्त्वानामविनिश्चयः
वेदशास्त्रप्रणयनं वर्णानां सङ्करस्तथा । वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥२६॥
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तदा नृणाम् । निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य सन्ध्या तु पादतः
गुणहीनास्तु तिष्ठन्ति धर्म्मस्य द्वापरस्य तु । तथैव सन्ध्या पादेनअंशस्तस्यांप्रतिष्ठितः
द्वापरस्य तु पर्येषा पुष्यस्य च निबोधत । द्वापरस्यांशशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेरथ ॥२९

हिंसास्तेयानृतं माया दम्भश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावाः पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः ॥३०॥

एष धर्म्मःस्मृतःकृत्स्नोधर्म्मश्चपरिहीयते । मनसाकर्मणावाचावार्त्ताःसिद्ध्यन्ति वानवा
कलिः प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भयम् । अनावृष्टिभयञ्चैव देशानाञ्च विपर्ययः ॥
न प्रमाणे स्थितिं ह्यस्तिपुष्येघोरेयुगेकलौ । गर्भस्थोम्रियतेकश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः

स्थावर्यं मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः ।
अल्पतेजोबलाः पापा महाकोपा ह्यधार्मिकाः ॥३४॥
अनृतव्रतलुब्धाश्च पुष्ये चैव प्रजाः स्थिताः । दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ॥३५
विप्राणां कर्म्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ।
हिंसा मानस्तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽधृतिः ॥३६॥
पुष्ये भवन्तिजन्तूनांलोभोमोहश्चसर्वशः । सङ्क्षोभोजायतेऽत्यर्थंकलिमासाद्यवैयुगम्
नाधीयन्ते तथा वेदान्यजन्ते वै द्विजातयः । उत्सीदन्तियथाचेववैश्यैःसार्द्धन्तुक्षत्रियाः
शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह । भवतीहकलौ तस्मिन्शयनासनभोजनैः
राजानः शूद्रभूयिष्ठाःपाषण्डानांप्रवृत्तयः । काषायिणश्चनिष्कच्छास्तथाकापालिनश्चह
ये चान्ये देवव्रतिनस्तथा ये धर्म्मदूषकाः । दिव्यवृत्ताश्च ये केचिद्वृत्त्यर्थं श्रुतिलिङ्गिनः
एवम्विधाश्च ये केचिद्भवन्तीह कलौ युगे । अधीयते तदा वेदान् शूद्राधर्मार्थकोविदाः
यजन्ति ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः । स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्
उपहृत्य तथान्योन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः । दुःखप्रचुरताल्पायुर्देशोत्सादःसरोगता ॥
अधर्माभिनिवृत्तत्वं कलौवृत्तं कलौस्मृतम् । भ्रूणहत्या प्रजानाञ्च तथा ह्येवं प्रवर्त्तते ॥
तस्मादायुर्बलं रूपं प्रहीयन्ते कलौयुगे । दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुःशतं नृणाम् ॥
भूत्वा च न भवन्तीह वेदाःकलियुगेऽखिलाः । उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलं धर्महेतवः
एषाकलियुगावस्थासन्ध्यांशौतु निबोधत । युगेयुगे तु हीयन्तेत्रींस्त्रीन् पादांश्चसिद्धयः
युगस्वभावाःसन्ध्यासुअवतिष्ठन्ति पादतः । सन्ध्यास्वभावाःस्वांशेषुपादेनैवावतस्थिरे
एवं सन्ध्यांशकेकाले सम्प्राप्ते युगान्तिके । तेषामधर्मिणां शास्ता भृगुणाञ्च कुले स्थितः
गोत्रेण वै चन्द्रमसे नाम्नाप्रमतिरुच्यते । कलिसन्ध्यांशभागेषु मनोःस्वायम्भुवेऽन्तरे
समास्त्रिंशत्तुसम्पूर्णाःपर्यटन्वैवसुन्धराम् । अस्त्रकर्मा स वै सेनांहस्त्यश्वरथसङ्कुलाम्
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः । स तदातैःपरिवृतोम्लेच्छान् सर्वान्निजघ्निवान्
स हत्वा सर्वशश्चैव राजानः शूद्रयोनयः ॥ ५४ ॥
पाषण्डान् स तदा सर्वान्निःशेषानकरोत् प्रभुः ॥ ५५ ॥

अधार्मिकाश्चयेकेचित्तान्सर्वान् हन्तिसर्वशः । औदीच्यान्मध्यदेशांश्चपार्वतीयांस्तथैवच

प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ॥ ५७ ॥
गन्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनान् शकान् ।
तुषारान् बर्वशान् श्वेतान् पुलिन्दान् बर्वरान् श्वसान् ॥ ५८ ॥

लम्पकानान्ध्रकांश्चापि चोरजातींस्तथैव च । प्रवृत्तचक्रो बलवान्शूद्राणामन्तकृद् वभौ
विद्राव्य सर्वभूतानि चचार वसुधामिमाम् । मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येहजज्ञिवान्॥
पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान् । स्वतः स वै चन्द्रमसः पूर्वं कलियुगे प्रभुः
द्वात्रिंशेऽभ्युदितेवर्षे प्रकान्तो विंशतिसमाः । निजघ्नेसर्वभूतानिमानुषाण्येवसर्वशः॥
कृत्वाबीजावशिष्टान्तांपृथ्वींक्रूरेणकर्मणा । परस्परनिमित्तेन कालेनाकस्मिकेन च ॥६३
संस्थिता सह सायासे सेना प्रमतिना सह । गङ्गायमुनयोर्मध्येसिद्धिंप्राप्ताःसमाधिना
ततस्तेषु प्रनष्टेषु सन्ध्यांशे क्रूरकर्म्मसु । उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् तेष्वतीतेषु वै तदा

ततः सन्ध्यांशके काले संप्राप्ते च युगान्तके ।
स्थिताः स्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह कचित् कचित् ॥ ६६ ॥

स्वाप्रदानास्तथातेवै लोभाविष्टास्तुवृन्दशः । उपहिंसन्ति चान्योन्यंप्रलुम्पन्तिपरस्परम्
अराजके युगांशे तु सङ्क्षये समुपस्थिते । प्रजास्ता वै तदा सर्वाः परस्परभयार्दिताः॥

व्याकुलास्ताः परावृत्तास्त्यज्य देवगृहाणि तु ।
स्वान् स्वान् प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात् सुदुःखिताः ॥ ६६ ॥

नष्टे श्रौतस्मृते धर्मे कामक्रोधवशानुगाः । निर्मर्यादा निरानन्दा निःस्नेहानिरपत्रपाः॥
नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः । हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलप्रजाः
अनावृष्टिहतास्तेवै वार्त्तामुत्सृज्यदुःखिताः । चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रुद्धानिष्परिग्रहाः
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करङ्घोरमास्थिताः । एवं कष्टमनुप्राप्ता ह्यल्पशेषाः प्रजास्ततः॥
जन्तवश्च क्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन् । संश्रयन्तिच देशांस्तांश्चक्रवत् परिवर्त्तनाः॥

ततः प्रजास्तु ताः सर्वा मांसाहारा भवन्ति हि

मृगान् वराहान् वृषभान्ये चान्ये वनचारिणः ॥ ७५ ॥
भक्ष्यांश्चैवाप्यभक्ष्यांश्च सर्वांस्तान् भक्षयन्ति ताः ।
समुद्रं संश्रिता यास्तु नदींश्चैव प्रजास्तु ताः ॥ ७६ ॥

तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वशः । अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगता प्रजाः यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत्किल । तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूताः प्रजास्तथा ॥ एवं वर्षशतं पूर्णं दिव्यं तेषां न्यवर्त्तत । षट्त्रिंशच्च सहस्राणि मानुषाणि तु तानि वै ॥ अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा । मत्स्याश्चैव हताः सर्वैः क्षुधाविष्टैश्चसर्वशः निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ । सन्ध्यांशे प्रतिपन्नेतु निःशेषास्तु तदा कृताः ॥ ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् । फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ॥ वल्कलान्यथ वासांसि अधःशय्याश्च सर्वशः । परिग्रहो न तेष्वस्ति धनशुद्धिमवाप्नुयुः एवंक्षयंगमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाःप्रजास्तदा । तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते एवं वर्षशतं दिव्यं सन्ध्यांशस्तस्य वर्त्तते । ततो वर्षसहस्रान्ते अल्पशिष्टाः स्त्रियःसुताः मिथुनानितुताः सर्वा ह्यन्योन्यंसंप्रजज्ञिरे । ततस्तास्तु म्रियन्तेवै पूर्वोत्पन्नाःप्रजास्तुयाः जातमात्रेष्वपत्येषु ततः कृतमवर्त्तत । यथा स्वर्गे शरीराणि नरके चैव देहिनाम् ॥८७॥ उपभोगसमर्थानि एवं कृतयुगादिषु । एवं कृतस्य सन्तानः कलेश्चैव क्षयस्तथा ॥८८॥

विचारणात्तु निर्वेदः साम्यावस्थात्मना तथा ।
ततश्चैवात्मसम्बोधः सम्बोधाद्धर्म्मशीलता ॥ ८६ ॥

कलिशिष्टेषु तेष्वेवं जायन्ते पूर्ववत् प्रजाः । भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत ॥ अतीतानागतानि स्युर्य्यानि मन्वन्तरेष्विह ।। एतेयुगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासतः विस्तरेणानुपूर्व्याच्च नमस्कृत्य स्वयम्भुवे । प्रवृत्तेतु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै ॥ उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्त्तयुगास्तथा । तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्तिच सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः । ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च । वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्त्तविधानतः ॥

एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्त्तन्तीह वै कृते ॥ ६६ ॥

श्रौतस्मार्त्तस्थितानान्तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते। ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते। यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापनक्षितौ ९८ वनानां प्रथमं दृष्ट्वा तेषां मूलेषु सम्भवः। एवं युगाद्युगानां वै सन्तानस्तु परस्परम्॥ प्रवर्त्तते ह्यविच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः। सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च॥१००

युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रयः पादाः क्रमेण तु।
इत्येषः प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः!॥ १०१ ॥
चतुर्युगाणां सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम्।
एषां चतुर्युगाणान्तु गणिता ह्येकसप्ततिः॥ १०२ ॥

क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते। युगाख्यासु तु सर्वासु भवतीह यदा च यत्॥ तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्वै यथाक्रमम्। सर्गे सर्गे यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च १०४ चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह। आसुरी यातुधानी च पैशाची यक्षराक्षसी॥

युगे युगे तदा काले प्रजा जायन्ति ताःशृणु।
यथाकल्पं युगैः सार्द्धं भवन्ते तुल्यलक्षणा।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै यथाक्रमम्॥ १०६ ॥
मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तातियुगस्वभावात्।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः॥ १०७॥
एते युगस्वभावा वः परिक्रान्ता यथाक्रमम्।
मन्वन्तराणि यान्यस्मिन् कल्पे वक्ष्यामि तानि च॥ १०८॥

इति श्री मत्स्यमहापुराणे मन्वन्तरानुकीर्त्तनो नाम
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

विस्तारान्मन्वन्तरस्थितिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

मन्वन्तराणि यानि स्युः कल्पे कल्पे चतुर्दश ।
व्यतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह ॥ १ ॥
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च स्थितिं वक्ष्ये युगे युगे ।
तस्मिन् युगे च सम्भूतिर्यासां यावच्च जीवितम् ॥ २ ॥

युगमात्रन्तु जीवन्ति न्यूनं तस्माद्द्वयेन च । चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह ३।
मनुष्याणां पशूनाञ्च पक्षिणां स्थावरैः सह । तेषामायुरुपक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः ॥४॥
तथैवायुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः । अस्थितिश्च कलौ दृष्ट्वा भूतानां मानुषे तथा ॥
परमायुः शतन्त्वेतन्मानुषाणां कलौ स्मृतम् । देवासुरमनुष्याश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ॥

परिणाहोच्छ्रये तुल्या जायन्तेह कृते युगे ।
षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधो अष्टानां देवयोनिनाम् ॥ ७ ॥

नवाङ्गुलप्रमाणेन निष्पन्नेन तथाष्टकम् । एतत् स्वाभाविकं तेषां प्रमाणमधिकुर्वताम् ॥
मनुष्या वर्त्तमानास्तु युगसन्ध्यांशकेष्विह । देवासुरप्रमाणन्तु सप्तसप्ताङ्गुलं क्रमात् ॥६।
चतुराशीतिकैश्चैव कलिजैरङ्गुलैः स्मृतम् । आपादतलमस्तको नवतालो भवेत्तु यः ॥१०

संहत्याजानुबाहुश्च दैवतैरभिपूज्यते ।
गवाञ्च हस्तिनाञ्चैव महिषस्थावरात्मनाम् ॥ ११ ॥

क्रमेणैतेन विज्ञेये ह्रासवृद्धी युगे युगे । षट्सप्तत्यङ्गुलोत्सेधः पशुराककुदो भवेत् ॥१२॥
अङ्गुलानामष्टशतमुत्सेधो हस्तिनां स्मृतः । अङ्गुलानां सहस्रन्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम् ॥
शतार्द्धमङ्गुलानान्तु ह्युत्सेधः शाखिनाम्परः । मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु यादृशः ।
तल्लक्षणन्तु देवानां दृश्यतेऽन्वयदर्शनात् । बुद्ध्यातिशयसंयुक्तो देवानां काय उच्यते ॥

तथा नातिशयश्चैव मानुषःकाय उच्यते। इत्येव हि परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः

पशूनां पक्षिणाञ्चैव स्थावराणां च सर्वशः।

गावोऽजाश्वाश्च विज्ञेया हस्तिनः पक्षिणो मृगाः ॥ १७ ॥

उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्त्विह सर्वशः। यथाक्रमोपभोगाश्च देवानां पशुमूर्त्तयः।

तेषां रूपानुरूपैश्च प्रमाणैः स्थिरजङ्गमाः। मनोज्ञैस्तत्र तैर्भोगैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥१९

अथ सन्तः प्रवक्ष्यामि साधूनथ ततश्च वै। ब्राह्मणाः श्रुतिशब्दाश्च देवानां पशुमूर्त्तयः॥

संपूज्य ब्रह्मणा ह्यन्तस्तेन सन्तः प्रचक्षते। सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च॥

ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ताः श्रौतस्मार्तेन कर्म्मणा। वर्णाश्रमेषु युक्तस्य सुखोदर्कस्य स्वर्गतौ

श्रौतस्मार्त्तो हि यो धर्मो ज्ञानधर्मः स उच्यते।

दिव्यानां साधनात् साधुर्ब्रह्मचारीगुरोर्हितः ॥ २३ ॥

कारणात् साधनाच्चैव गृहस्थःसाधुरुच्यते। तपसश्च तथाऽरण्येसाधुर्वैखानसः स्मृतः

यतमानो यतिः साधुः स्मृतोयोगस्य साधनात्।

धर्मो धर्मगतिः प्रोक्तः शब्दो ह्येष क्रियात्मकः ॥ २५ ॥

कुशलाकुशलौ चैव धर्माधर्मौ ब्रवीत् प्रभुः। अथ देवाश्च पितरः ऋषयश्चैव मानुषाः॥

अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवते मौनमूर्त्तिना। धर्मेति धारणे धातुर्महत्वे.चैव उच्यते ॥२७

आधारणे महत्त्वे वा धर्म्मः सतु निरुच्यते। तत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्य्यैरुपदिश्यते॥

अधर्म्मश्चानिष्टफल आचार्य्यैर्नोपदिश्यते। वृद्धाश्च लोलुपाश्चैवआत्मवन्तोह्यदाम्भिकाः

सम्यग्विनीतामृदवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते। धर्मज्ञैर्विहितोधर्म्मःश्रौतस्मार्त्तोद्विजातिभिः

दाराग्निहोत्रसम्बन्धमिज्या श्रौतस्य लक्षणम्। स्मार्त्तोवर्णाश्रमाचारो यमैश्चनियमैर्युतः

पूर्वेभ्यो वेदयित्वेहश्रौतंसप्तर्षयोऽब्रुवन्। ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानिवैश्रुतिः

मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वा तन्मनुरब्रवीत्।

तस्मात् स्मार्तः स्मृतो धर्म्मो वर्णाश्रमविभागशः ॥ ३३ ॥

एवं वै द्विविधो धर्म्मः शिष्टाचारः सउच्यते। शिषेर्धातोश्च निष्ठन्ताच्छिष्टशब्दंप्रचक्षते

मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः। मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारिणः।

तिष्ठन्तीहच धर्मार्थं ताञ्छिष्टान्सम्प्रचक्षते। तैः शिष्टैश्चलितो धर्मःस्थाप्यते वै युगेयुगे त्रयीवार्त्ता दण्डनीतिः प्रजा वर्णाश्रमेप्सया। शिष्टैराचर्य्यते यस्मात् पुनश्चैवमनुक्षये पूर्वैः पूर्वैर्मतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः। दानं सत्यं तपोलोको विद्येज्या पूजनन्दमः अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम्। शिष्टायस्माचरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च ह मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततःस्मृतः। विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात्स्मार्त्त उच्यते

इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्त्तो वर्णाश्रमात्मकः।

प्रत्यङ्गानि प्रवक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम्॥ ४१ ॥

दृष्टानुभूतमर्थञ्च यः पृष्टो न विगूहते। यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतद्धर्मलक्षणम्॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपो मौनं निराहारत्वमेव च। इत्येतत्तपसो रूपं सुघोरन्तु दुरासदम् ॥४३॥ पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा। ऋत्विजां दक्षिणायाश्च संयोगो यज्ञ उच्यते आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय शुभाय च। वर्त्तते सततं हृष्टः क्रिया श्रेष्ठा दया स्मृता आक्रुष्टोऽभिहतो यस्तु नाक्रोशेत्प्रहरेदपि। अदुष्टोवाङ्मनःकायैस्तितिक्षुःसाक्षमास्मृता स्वामिना रक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च सम्भ्रमे। परस्वानामनादानमलोभ इति संज्ञितः॥ मैथुनस्यासमाचारो जल्पनाच्चिन्तनात्तथा। निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यञ्च तदेतच्छमलक्षणम् ॥४८॥ आत्मार्थे वा परार्थे वा इन्द्रियाणीह यस्य वै। विषये न प्रवर्त्तन्ते दमस्यैतत्तु लक्षणम्। पञ्चात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे। न क्रुद्ध्येत प्रतिहतः स जितात्मा भविष्यति यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतञ्च यत्। तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम्॥ ५१ ॥

श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः।

शिष्टाचारप्रवृद्धश्च धर्मोऽयं साधुसम्मतः ॥ ५२ ॥

अप्रद्वेष्यो ह्यनिष्टेषु इष्टं वै नाभिनन्दति। प्रीतितापविषादानां विनिवृत्तिर्विरक्तता॥ सन्न्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह। कुशलाकुशलाभ्यांतु प्रहाणंन्यासउच्यते अव्यक्तादिविशेषान्तविकारेऽस्मिन्निवर्त्तते। चेतनाचेतनं ज्ञात्वा ज्ञाने ज्ञानी स उच्यते प्रत्यङ्गानि तु धर्मस्य चेत्येतल्लक्षणं स्मृतम्। ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे अत्र वो वर्णयिष्यामि विधिं मन्वन्तरस्य तु। तथैव चातुर्होत्रस्य चातुर्वर्ण्यस्य चैव हि

प्रति मन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्याविधीयते। ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम्॥
विधिस्तोत्रं तथा होत्रं पूर्ववत् सम्प्रवर्त्तते। द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्म्मस्तोत्रं तथैव च
तथैवाभिजनस्तोत्रं स्तोत्रमेवं चतुर्विधम्। मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा वेदाद्भवन्ति हि॥
प्रवर्तयन्ति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं पुनः पुनः। एवं मन्त्रगुणानान्तु समुत्पत्तिश्चतुर्विधा॥
अथर्वऋग्यजुःसाम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक्। ऋषीणां तप्यतां तेषां तपः परमदुश्चरम्
मन्त्राःप्रादुर्भवन्त्यादौपूर्वमन्वन्तरस्य ह। असन्तोषाद्भयाद्दुःखान्मोहाच्छोकाच्चपञ्चधा

ऋषीणां तारका येन लक्षणेन यदृच्छया।
ऋषीणां यादृशत्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणम्॥ ६४॥
अतीतानागतानाञ्च पञ्चधा ह्यार्षकं स्मृतम्।
तथा ऋषीणां वक्ष्यामि आर्षस्येह समुद्भवम्॥ ६५॥

गुणसाम्येन वर्त्तन्ते सर्वसम्प्रलये तदा। अविभागेन वेदानामनिर्देश्यतमोमये॥ ६६॥
अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्तते। तेनार्षं बुद्धिपूर्वन्तु चेतनेनाप्यधिष्ठितम्॥ ६७॥
प्रवर्तते यथा ते तु यथा मत्स्योदकावुभौ। चेतनाधिकृतं सर्वं प्रावर्तत गुणात्मकम्॥

कार्यकारणभावेन तथा तस्य प्रवर्तते॥ ६८॥

विषयो विषयित्वञ्च तदा ह्यर्थपदात्मकौ। कालेन प्रापणीयेन भेदाश्च कारणात्मकाः॥
सांसिद्धिकास्तदावृत्ताः क्रमेण महदादयः। महतोऽसावहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च
भूतभेदाश्च भूतेभ्यो जज्ञिरे तु परस्परम्। संसिद्धिकारणं कार्य्यं सद्य एव निवर्त्तते॥
यथोल्मुकात्तु विटपा एककालाद्भवन्ति हि। तथा प्रवृत्ताः क्षेत्रज्ञाः कालेनैकेनकारणात्
यथान्धकारे खद्योतः सहसा सम्प्रदृश्यते। तथा निवृत्तो ह्यव्यक्तःखद्योत इव सञ्ज्वलन्
स महात्मा शरीरस्थस्तत्रैवेह प्रवर्त्तते। महतस्तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते॥७४॥
तत्रैव संस्थितो विद्वान् तपसान्त इति श्रुतम्। बुद्धिर्विवर्द्धतस्तस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम्। सांसिद्धिकान्यथैतानि अप्रतीतानि तस्य वै
महात्मनः शरीरस्य चैतन्यात् सिद्धिरुच्यते। पुरि शेते यतः पूर्वं क्षेत्रज्ञानं तथापि च
पुरे शयनात् पुरुषः क्षेत्रज्ञानात् क्षेत्रज्ञ उच्यते।

यस्माद्धर्मात् प्रसूते हि तस्माद्वै धार्मिकस्तु सः ॥ ७८ ॥

सांसिद्धिके शरीरे च बुद्ध्याव्यक्तस्तु चेतनः। एवं विवृत्तः क्षेत्रज्ञःक्षेत्रं ह्यनभिसन्धितः निवृत्तिसमकाले तु पुराणन्तदचेतनम्। क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातं भोग्योऽयं विषयो मम ॥८०

ऋषिर्हिंसागतौ धातुर्विद्या सत्यं तपः श्रुतम्।

एष सन्निचयो यस्माद् ब्रह्मणस्तु ततस्त्वृषिः ॥ ८१ ॥

निवृत्तिसमकालाच्च बुद्ध्याव्यक्तऋषिस्त्वयम्। ऋषतेपरमं यस्मात्परमर्षिस्ततः स्मृतः गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नामनिर्वृत्तिकारणम्। यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्च ऋषिता मता। सेश्वराः स्वयमुद्भूता ब्रह्मणो मानसाः सुताः। निवर्तमानैस्तैर्बुद्ध्या महान्परिगतः परः यस्मादृषिपरत्वेन सह तस्मान्महर्षयः। ईश्वराणां सुतास्तेषां मानसाश्चौरसाश्च वै॥ ऋषिस्तस्मात्परत्वेन भूतादिर्ऋषयस्ततः। ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद् गर्भसम्भवाः परत्वेन ऋषन्ते वै भूतादीनृषिकास्ततः। ऋषिकाणां सुता ये तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः श्रुत्वा ऋषं परत्वेन श्रुतास्तस्माच्छ्रुतर्षयः। अव्यक्तात्मा महात्मावाहङ्कारात्मातथैव च

भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते।

इत्येवमृषिजातिस्तु पञ्चधा नाम विश्रुता ॥ ८६ ॥

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः। मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चापि ते दश॥ ब्रह्मणो मानसा ह्येते उत्पन्नाः स्वयमीश्वराः। परत्वेनर्षयो यस्मान्मतास्तस्मान्महर्षयः ईश्वराणां सुतास्त्वेषामृषयस्तान्निबोधत। काव्यो वृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा उतथ्यो वामदेवश्चअगस्त्यः कौशिकस्तथा। कर्दमो वालखिल्याश्चविश्रवाःशक्तिवर्द्धनः इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसाऋषिताङ्गताः। तेषां पुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजश्च वीर्यवान्। ऋषिर्दीर्घतमाचैव वृहद्वक्षाः शरद्वतः ॥९५॥ वाजिश्रवाः सुचिन्तश्च शावश्च सपराशरः। श्रृङ्गी च शङ्खपाच्चैव राजा वैश्रवणस्तथा इत्येते ऋषिकाः सर्वे सत्येन ऋषिताङ्गताः। ईश्वरा ऋषयश्चैव ऋषीका ये च विश्रुताः॥

एवं मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशश्च निबोधत।

भृगुः काश्यपः प्राचेताः दधीचो ह्यात्मवानपि ॥ ९८ ॥

ऊर्वोऽथ जमदग्निश्च वेदःसारस्वतस्तथा। आर्ष्टिषेणश्च्यवनश्च पीतहव्यः स वेधसः॥

वैण्यः पृथुर्दिवोदासो ब्रह्मवान् गृत्सशौनकौ।
एकोनविंशतिर्ह्येते भृगवो मन्त्रकृत्तमाः॥ १००॥

अङ्गिराश्चैव त्रितश्च भरद्वाजोऽथ लक्ष्मणः। कृतवाचस्तथा गर्गः स्मृतिसंकृतिरेव च
गुरुवीतश्च मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च। युवनाश्वः पुरुकुत्सः स्वश्रवस्तुसदस्यवान्॥
अजमीढो स्वहार्यश्च ह्युत्कलः कविरेव च। पृषदश्वो विरूपश्च काव्यश्चैवाथ मुद्गलः॥
उतथ्यश्च शरद्वांश्च तथा वाजिश्रवा अपि। अपस्यौषः सुचित्तिश्च वामदेवस्तथैव च॥

ऋषिजो बृहच्छुल्कश्च ऋषिर्दीर्घतमा अपि।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत् स्मृता ह्यङ्गिरसां वराः॥ १०५॥

एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत।
कश्यपः सहवत्सारो नैध्रुवो नित्य एव च॥ १०६॥

असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः। अत्रिरर्द्धस्वनश्चैव शावास्योऽथ गविष्ठिरः॥

कर्णकश्च ऋषिः सिद्धस्तथा पूर्वातिथिश्च यः॥ १०८॥

इत्येते त्वत्रयः प्रोक्ता मन्त्रकृत् षण्महर्षयः। वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तृतीयश्च पराशरः॥
ततस्तु इन्द्रप्रतिमः पञ्चमस्तु भरद्वसुः। षष्ठस्तु मित्रावरुणः सप्तमः कुण्डिनस्तथा॥
इत्येते सप्त विज्ञेया वासिष्ठा ब्रह्मवादिनः। विश्वामित्रश्च गाधेयो देवरातस्तथा बलः॥
तथा विद्वन्मधुच्छन्दा ऋषिश्चान्योऽघमर्षणः। अष्टको लोहितश्चैव भृतकीलश्चमाम्बुधिः
देवश्रवा देवरतः पुराणश्च धनञ्जयः। शिशिरश्च महातेजाः शालङ्कायन एव च॥११३॥

त्रयोदशैते विज्ञेया ब्रह्मिष्ठाः कौशिका वराः।
अगस्त्योऽथ दृढद्युम्नो इन्द्रबाहुस्तथैव च॥ ११४॥

ब्रह्मिष्ठागस्तयो ह्येते त्रयः परमकीर्त्तयः।
मनुर्वैवस्वतश्चैव ऐलो राजा पुरूरवाः॥ ११५॥

क्षत्रियाणां वरौ ह्येतौ विज्ञेयौ मन्त्रवादिनौ।
भलन्दकश्च वास्यश्च सङ्कीलश्चैव ते त्रयः॥ ११६॥

एते मन्त्रकृतो ज्ञेया वैश्यानां प्रवराः सदा ।
इति द्विनवतिः प्रोक्ता मन्त्रा यैश्च वहिष्कृताः ॥ ११७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषिपुत्रान्निवोधत ।
ऋषीकाणां सुता ह्येते ऋषिपुत्राः श्रुतर्षयः ॥ ११८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मन्वन्तरकल्पवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकाख्यानवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कथं मत्स्येन कथितस्तारकस्य बधोमहान् । कस्मिन् कालेविनिर्वृत्ताकथेयं सूतनन्दन!
त्वन्मुखक्षीरसिन्धूत्था कथेयममृतात्मिका । कर्णाभ्यां पिबतां तृप्तिरस्माकं न प्रजायते
इदं मुने ! समाख्याहि महाबुद्धे ! मनोगतम् ।

सूत उवाच ।

पृष्टस्तु मनुना देवो मत्स्यरूपी जनार्दनः ॥ ३ ॥
कथं शरवने जातो देवः षड्वदनो विभो ! । एतत्तु वचनं श्रुत्वा पार्थिवस्यामितौजसः
उवाच भगवान् प्रीतो ब्रह्मसूनुर्महामतिम् ।

मत्स्य उवाच ।

वज्राङ्गो नाम दैत्योऽभूत्तस्य पुत्रस्तु तारकः ॥ ५ ॥
सुरानुद्वासयामास पुरेभ्यः स महावलः । ततस्ते ब्रह्मणेऽभ्यासं जग्मुर्भयनिपीडिताः ॥
भीतांश्च त्रिदशान् दृष्ट्वा ब्रह्मा तेषामुवाच ह ।
सन्त्यज्यध्वं भयं देवाः ! शङ्करस्यात्मजः शिशुः ॥ ७ ॥
तुहिनाचलदौहित्रस्तं हनिष्यति दानवम् । ततः कालेतु कस्मिंश्चिद्दृष्ट्वा वै शैलजां शिवः

स्वरेतो वह्निवदने व्यसृजत्कारणान्तरे। तत्प्राप्तं वह्निवदने रेतोदेवानतर्पयत् ॥ ९ ॥
विदार्य जठराण्येषामजीर्णं निर्गतं मुने !। पतितं तत्सरिद्वरे ततस्तु शरकानने ॥१०॥
तस्मात्तु स समुद्भूतो गुहो दिनकरप्रभः। स सप्तदिवसो बालो निजघ्नेतारकासुरम्

एवं श्रुत्वा ततो वाक्यं तमूचुर्ऋषिसत्तमाः।

ऋषय ऊचुः।

अत्याश्चर्यवती रम्या कथेयं पापनाशिनी ॥ १२ ॥
विस्तरेण हि नो ब्रूहि यथातथ्येन शृण्वताम्।
वज्राङ्गोनाम दैत्येन्द्रः कस्य वंशोद्भवः पुरा ॥ १३ ॥
तस्याभूत्तारकः पुत्रः सुरप्रमथनो बली।
निर्मितः को वधे चाभूत्तस्यःदैत्येश्वरस्य तु ॥ १४ ॥
गुहजन्म तु कात्स्न्र्येन अस्माकं ब्रूहि मानद !।

सूत उवाच।

मानसो ब्रह्मणः पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ १५ ॥
षष्टिंसोऽजनयत्कन्या वैरिण्यामेव नः श्रुतम्। ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये। द्वे वै बाहुकपुत्राय द्वे चान्येऽङ्गिरसे तथा॥
द्वे कृशाश्वाय विदुषे प्रजापतिसुतःप्रभुः। अदितिर्दितिर्दनुर्विश्वा ह्यरिष्टा सुरसा तथा॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रूर्मुनिश्च लोकस्य मातरो गोषु मातरः॥

तासां सकाशाल्लोकानां जङ्गमस्थावरात्मनाम्।
जन्म नानाप्रकाराणां ताभ्योऽन्ये देहिनः स्मृताः ॥ २० ॥

देवेन्द्रोपेन्द्रपूजाद्याःसर्वेते दितिजा मताः। दितेः सकाशाल्लोकास्तु हिरण्यकशिपादयः
दानवाश्च दनोः पुत्रा गावश्च सुरभीसुताः। पक्षिणो विनतापुंत्रागरुड़प्रमुखाः सुताः॥

नागाः कद्रूसुता ज्ञेयाः शेषाश्चान्येऽपि जन्तवः।
त्रैलोक्यनाथं शक्रन्तु सर्वामरगणप्रभुम् ॥ २३ ॥

हिरण्यकशिपुश्चक्रे जीत्वा राज्यं महाबलः। ततः केनापि कालेन हिरण्यकशिपादयः॥

निहता विष्णुना सङ्ख्ये शेषाश्चेन्द्रेण दानवाः ।
ततो निहतपुत्राभूद्दितिर्वरमयाचत ॥ २५ ॥

भर्त्तारं कश्यपं देवं पुत्रमन्यं महाबलम् । समरे शक्रहन्तारं स तस्या अददात् प्रभुः ॥
नियमे वर्त हे देवि ! सहस्रं शुचिमानसा । वर्षाणां लप्स्यसे पुत्रमित्युक्तासातथाकरोत्

वर्त्तन्त्या नियमे तस्याः सहस्राक्षः समाहितः ।
उपासामाचरत्तस्याः सा चैनमन्वमन्यत ॥ २८ ॥

दशसम्वत्सरशेषस्य सहस्रस्य तदादितिः । उवाच शक्रं सुप्रीता वरदा तपसि स्थिता

दितिरुवाच ।

पुत्रोत्तीर्णव्रतां प्रायः विद्धि मां पाकशासन ! ।
भविष्यति च ते भ्राता तेन सार्द्धमिमां श्रियम् ॥ ३० ॥
भुङ्क्ष्व वत्स ! यथाकामं त्रैलोक्यं हतकण्टकम् ।
इत्युक्त्वा निद्रयाविष्टा चरणाक्रान्तमूर्द्धजा ॥ ३१ ॥

स्वयं सुष्वापानियताभाविनोऽर्थस्यगौरवात् । तत्तु रन्ध्रं समासाद्य जठरं पाकशासनः
चकार सप्तधा गर्भं कुलिशेन तु देवराट् । एकैकन्तु पुनः खण्डं चकार मघवा ततः ॥
सप्तधासप्तधाकोपात् प्रबुध्यततोऽदितिः । विबुध्योवाच मा शक्र ! घातयेथाःप्रजांमम
तच्छ्रुत्वा निःर्गतःशक्रः स्थित्वाप्राञ्जलिरग्रतः । उवाचवाक्यं सन्त्रस्तोमातुर्वै वदनेरितम्

शक्र उवाच ।

दिवास्वप्नपरा मातः ! पादाक्रान्तशिरोरुहा । सप्त सप्तभिरेवातस्तव गर्भः कृतो मया ॥
एकोनपञ्चाशत्कृता भागा वज्रेण ते सुताः । दास्यामितेषां स्थानानि दिवि दैवतपूजिते
इत्युक्ता सा तदा देवी सैवमस्त्वित्यभाषत । पुनश्च देवी भर्तारमुवाचासितलोचना ॥
पुत्रं प्रजापते ! देहिशक्रजेतारमूर्जितम् । यो नास्त्रशस्त्रैर्वध्यत्वंगच्छेत्त्रिदिववासिनाम्
इत्युक्तः स तथोवाचतां पत्नीमतिदुःखिताम् । दशवर्षसहस्राणि तपः कृत्वा तु लप्स्यसे
वज्रसारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसैर्दृढैः । वज्राङ्गो नाम पुत्रस्ते भविता पुत्रवत्सले ! ॥४१॥
सा तु लब्धवरा देवी जगाम तपसे वनम् । दशवर्षसहस्राणि सा तपो घोरमाचरत् ॥

तपसोऽन्ते भगवती जनयामास दुर्जयम्। पुत्रमप्रतिकर्माणमजेयं वज्रदुश्छिदम् ॥४३॥
सजातस्तत्र एवाभूत् सर्वशस्त्रास्त्रपारगः। उवाच मातरं भक्त्या मातः! किङ्करवाण्यहम्
तमुवाच ततो हृष्टा दितिर्दैत्याधिपश्च सा। बहवो मे हताःपुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक!॥
तेषां त्वं प्रतिकर्तुं वै गच्छ शक्रवधाय च। बाढमित्येव तामुक्त्वा जगाम त्रिदिवं बली
बद्ध्वा ततः सहस्राक्षं पाशेनामोघवर्चसा। मातुरन्तिकमागच्छद्व्याघ्रः क्षुद्रमृगं यथा
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः। आगतो तत्र यत्रास्तां मातापुत्रावभीतकौ॥
दृष्ट्वा तु तमुवाचेदं ब्रह्मा कश्यपश्च एव च। मुञ्चैनं पुत्र! देवेन्द्रं किमनेन प्रयोजनम्॥
अपमानो वधः प्रोक्तःपुत्रसम्भावितस्य च। अस्मद्वाक्येन यो मुक्तो विद्धि तं मृतमेवच
परस्य गौरवान्मुक्तः शत्रूणां भारमावहेत्। जीवन्नेव मृतो वत्स! दिवसेदिवसे स तु
महतां वशयामाते वैरं नैवास्ति वैरिणि। एतच्छ्रुत्वा तु वज्राङ्गः प्रणतो वाक्यमब्रवीत्
न मे कृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञा कृता मया। त्वं सुरासुरनाथो वै मम च प्रपितामहः॥
करिष्ये त्वद्वचो देव! एष मुक्तः शतक्रतुः। तपसे मे रतिर्देव! निर्विघ्नं चैव मे भवेत्

त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्त्वा विरराम सः।
तस्मिंस्तूष्णीं स्थिते दैत्ये प्रोवाचेदं पितामहः ॥ ५५ ॥

ब्रह्मोवाच।

तपस्त्वं क्रूरमापन्नो अस्मच्छासनसंस्थितः। अनयाचित्तशुद्ध्या ते पर्याप्तं जन्मनःफलम्
इत्युक्त्वा पद्मजः कन्यां ससर्जायतलोचनाम्। तामस्मै प्रददौ देवः पत्न्यर्थं पद्मसम्भवः
वराङ्गेतिच नामास्याः कृत्वा यातः पितामहः। वज्राङ्गोऽपि तयासार्द्धं जगामतपसेवनम्
ऊर्ध्वबाहुः स दैत्येन्द्रोऽचरदब्दसहस्रकम्। कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः॥
तावच्चावाङ्मुखः कालं तावत् पञ्चाग्निमध्यगः। निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत
ततः सोऽन्तर्जले चक्रे कालं वर्षसहस्रकम्। जलान्तरं प्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाव्रता॥
तस्यैव तीरे सरसस्तपस्यन्ती मौनमास्थिता। निराहारा तपो घोरं प्रविवेश महाद्युतिः
तस्यां तपसि वर्त्तन्त्यामिन्द्रश्चक्रे विभीषिकाम्। भूत्वातु मर्कटस्तत्र तदाश्रमपदंमहान्
चक्रे विलोलं निःशेषं [illegible] ततस्तु मेषरूपेण कम्पं तस्याकरोन्महान्॥

ततो भुजङ्गरूपेण बध्वा च चरणद्वयम्। अपकृष्टा ततो दूरं भ्रमंस्तस्या महीमिमाम् ॥
तपोबलाढ्या सा तस्य न वध्यत्वं जगाम ह। ततो गोमायुरूपेण तस्या दूषयदाश्रमम्
ततस्तु मेघरूपेण तस्याःक्लेदयदाश्रमम्। भीषिकाभिरनेकाभिस्तां क्लिश्यन् पाकशासनः
विरराम यदा नैवं वज्राङ्गमहिषी तदा। शैलस्य दुष्टतां मत्वा शापन्दातुं व्यवस्थिता ॥
स शापाभिमुखां दृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः। उवाच तां वरारोहां वराङ्गीं भीरुचेतनः ॥
नाहं वराङ्गने! दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम्। विभ्रमन्तु करोत्येष रुषितः पाकशासनः
एतस्मिन्नन्तरे जातःकालवर्षसहस्रिकः। तस्मिन् गतेतु भगवान् काले कमलसम्भवः
तुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तमागम्य जलाश्रयम् ॥ ७१ ॥

ब्रह्मोवाच।

ददामि सर्वकामांस्ते उत्तिष्ठ दितिनन्दन!। एवमुक्तस्तदोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसांनिधिः
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम् ॥ ७२ ॥

वज्राङ्ग उवाच।

आसुरो मास्तु मे भावः सन्तु लोका ममाक्षयाः।
तपस्येव रतिर्मेऽस्तु शरीरस्यास्तु वर्तनम् ॥ ७३ ॥

एवमस्त्विति तन्देवो जगाम स्वकमालयम्। वज्राङ्गोऽपि समाप्ते तु तपसिस्थिरसंयमः
आहारमिच्छन् भार्यां स्वान्न ददर्शाश्रमे स्वके। क्षुधाविष्टः स शैलस्य गहनम्प्रविवेश ह
आदातुं फलमूलानि स च तस्मिन् व्यलोकयत्।
रुदन्तीं तां प्रियान्दीनां तनुप्रच्छादिताननाम् ॥ ७६ ॥
तां विलोक्य स दैत्येन्द्रः प्रोवाच परिसान्त्वयन्।

वज्राङ्ग उवाच।

केन तेऽपकृतं भीरु! यमलोकं यियासुना ॥ ७७ ॥
कस्वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं मे ब्रूहि मानिनि! ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे तारकासुरोपाख्याने पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकासुरोपाख्यानवर्णनम् ।

वराङ्ग्युवाच ।

त्रासितास्म्यपविद्धास्मि ताडिता पीडितास्मिच । रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः॥
दुःखपारमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता । पुत्रंमे तारकं देहि दुःखशोकमहार्णवात्
एवमुक्तः स दैत्येन्द्रः कोपव्याकुललोचनः । शक्तोऽपि देवराजस्य प्रतिकर्तुं महासुरः॥
तपः कर्तुं पुनर्दैत्यो व्यवस्यत महाबलः । ज्ञात्वा तु तस्य संकल्पं ब्रह्मा क्रूरतरं पुनः॥
आजगाम तदा तत्र यत्रासौ दितिनन्दनः । उवाच तस्मै भगवान् प्रभुर्मधुरया गिरा॥५

ब्रह्मोवाच ।

किमर्थं पुत्रभूयस्त्वं नियमं क्रूरमिच्छसि । आहाराभिमुखो दैत्यस्तन्नो ब्रूहि महाव्रत॥
यावदब्दसहस्रेण निराहारस्य यत् फलम् । क्षणेनैकेन तल्लब्धा त्यक्त्वाहारमुपस्थितम्॥
त्यागो ह्यप्राप्तकामानां कामेभ्यो न तथा गुरुः । यथाप्राप्तंपरित्यज्य कामं कमललोचन
श्रुत्वैतद्ब्रह्मणो वाक्यं दैत्यः प्राञ्जलिरब्रवीत् । चिन्तयंस्तपसायुक्तो हृदि ब्रह्ममुखेरितम्

वज्राङ्ग उवाच ।

उत्थितेन मया दृष्टा समाधानात्त्वदाज्ञया । महिषी भीषिता दीना रुदन्ती शाखिनस्तले
सा मयोक्ता तु तन्वङ्गी दूयमानेन चेतसा । किमेवं वर्त्तसे भीरु ! वद त्वं किञ्चिकीर्षसि

इत्युक्ता सा मया देव ! प्रोवाच स्खलिताक्षरम् ।
वाक्यं वाचस्पते ! भीता तन्वङ्गा हेतुसंहितम् ॥ १२ ॥

वराङ्ग्युवाच ।

त्रासितास्म्यपविद्धास्मि कर्षिता पीडितास्मि च । रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः

दुःखस्यान्तमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता ।
पुत्रं मे तारकं देहि ह्यस्माद्दुःखमहार्णवात् ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तु संक्षुब्धस्तस्याः पुत्रार्थमुद्यतः। तपोघोरं करिष्यामिजयाय त्रिदिवौकसाम्
एतच्छ्रुत्वा वचो देवः पद्मगर्भोद्भवस्तदा। उवाच दैत्यराजानं प्रसन्नश्चतुराननः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच।

अलन्ते तपसा वत्स! मा क्लेशे दुस्तरे विश। पुत्रस्तेतारको नाम भविष्यति महाबलः
देवसीमन्तिनीकान्त धम्मिल्लस्यविमोक्षण। इत्युक्तोदैत्यनाथस्तु प्रणिपत्य पितामहम्
आगत्यानन्दयामास महिषीं हर्षिताननः। तौ दम्पती कृतार्थौ तु जग्मतुः स्वाश्रमं मुदा
वज्राङ्गनाहितं गर्भं वराङ्गा वरवर्णिनी। पूर्णं वर्षसहस्रञ्च दधारोदर एव हि ॥ २० ॥
ततो वर्षसहस्रान्ते वराङ्गी सुषुवे सुतम्। जायमाने तु दैत्येन्द्रे तस्मिन् लोकभयङ्करे

चचाल सकला पृथ्वी समुद्राश्च चकम्पिरे।

चेलुर्महीधराः सर्वे ववुर्वाताश्च भीषणाः ॥२२॥

जेपुर्जप्यं मुनिवरा नेदुर्व्यालमृगा अपि। चन्द्रसूर्यौ जहुः कान्ति सनीहारादिशोऽभवन्
जाते महासुरे तस्मिन् सर्वे चापि महासुराः। आजग्मुर्हर्षितास्तत्र तथाचासुरयोषितः
जग्मुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चासुराङ्गनाः। ततो महोत्सवो जातो दानवानां द्विजोत्तमाः
विषण्णमनसो देवाः समहेन्द्रास्तदाभवन्। वराङ्गी स्वसुतं दृष्ट्वा हर्षेणापूरिता तदा ॥२६
बहुमेने न दैत्येन्द्रविजयन्तु तदैव सा। जातमात्रस्तु दैत्येन्द्रस्तारकश्चण्डविक्रमः॥२७॥
अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैः कुजम्भमहिषादिभिः। सर्वासुरमहाराज्ये पृथिवीतुलनक्षमैः ॥
सतु प्राप्य महाराज्यं तारको मुनिसत्तमाः। उवाच दानवश्रेष्ठान् युक्तियुक्तमिदं वचः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे तारकासुरोपाख्याने षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकासुरोपाख्यानम्।

तारक उवाच।

शृणुध्वमसुराः! सर्वे वाक्यं मममहाबलाः। श्रेयसेक्रियतांबुद्धिःसर्वःकृत्यस्य सन्विधौ

वंशक्षयकरा देवाः सर्वेषामेव दानवाः। अस्माकं जातिधर्मो वै विरूढं वैरमक्षयम्॥२॥
वयमद्य गमिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु। स्वबाहुबलमाश्रित्य सर्व एवमसंशयः॥३॥

किन्तु ना तपसा युक्तो मन्येऽहं सुरसङ्गमम्।
अहमादौ करिष्यामि तपो घोरन्दितेः सुताः॥४॥
ततः सुरान् विजेष्यामो भोक्ष्यामोऽथ जगत्त्रयम्।
स्थिरोपायो हि पुरुषः स्थिरश्रीरपि जायते॥५॥

रक्षितुं नैव शक्नोति चपलश्चपलाः श्रियः। तच्छ्रुत्वा दानवाःसर्वेवाक्यंतस्यासुरस्यतु

साधु साध्वित्यवोचंस्ते तत्र दैत्याः सविस्मयाः।
सोऽगच्छत्पारियात्रस्य गिरेः कन्दरमुत्तमम्॥७॥

सर्वर्तुकुसुमाकीर्णं नानौषधिविदीपितम्। नानाधातुरसस्रावचित्रं नानागुहागृहम्॥८॥
गहनैः सर्वतो गूढं चित्रकल्पद्रुमाश्रयम्। अनेकाकारबहुलं पृथक् पक्षिकुलाकुलम्॥९॥
नानाप्रस्रवणोपेतं नानाविधजलाशयम्। प्राप्य तत् कन्दरं दैत्यश्चचार विपुलं तपः॥

निराहारः पञ्चतपा पत्रभुग्वारिभोजनः।
शतं शतं समानान्तु तपांस्येतानि सोऽकरोत्॥११॥
ततः स्वदेहादुत्कृत्य कर्षं कर्षं दिने दिने।
मांसस्याग्नौ जुहावासौःततो निर्मांसताङ्गतः॥१२॥

तस्मिन्निर्मांसतां याते तपोराशित्वमागते। जज्वलुः सर्वभूतानि तेजसा तस्य सर्वतः
उद्विग्नाश्च सुराः सर्वे तपसा तस्य भीषिताः। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा परमं तोषमागतः॥
तारकस्य वरं दातुं जगाम त्रिदशालयात्। प्राप्य तं शैलराजानं स गिरेःकन्दरस्थितम्

उवाच तारकं देवो गिरा मधुरया युतः।

ब्रह्मोवाच।

पुत्रालं तपसा तेऽस्तु नास्त्यसाध्यं तवाऽधुना॥१६॥

वरं वृणीष्व रुचिरं यत्ते मनसि वर्त्तते। इत्युक्तस्तारको दैत्यः प्रणम्यात्मभुवं विभुम्

उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणतः पृथुविक्रमः।

तारक उवाच ।

देव ! भूतमनोवास ! वेत्सि जन्तुविचेष्टितम् ॥१८॥

कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी जिगीषुः प्रायशो जनः । वयञ्च जातिधर्मेण कृतवैराः सहामरैः ॥

तैश्च निःशेषिता दैत्याः क्रूरैः सन्त्यज्य धर्मिताम् ।

तेषामहं समुद्धर्त्ता भवेयमिति मे मतिः ॥२०॥

अवध्यं सर्वभूतानामस्त्राणाञ्च महौजसाम् । स्यामहं परमो ह्येष वरो मम हृदि स्थितः

एतन्मे देहि देवेश ! नान्यो मे रोचते वरः । तमुवाच ततो दैत्यं विरिञ्चिः सुरनायकः

न युज्यन्ते विना मृत्युं देहिनो दैत्यसत्तम । यतस्ततोऽपि वरय मृत्युं यस्मान्न शङ्कसे

ततः सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः शिशोर्वै सप्तवासरात् । वव्रे महासुरो मृत्युमवलेपनमोहितः

ब्रह्मा चास्मै वरं दत्वा यत्किञ्चिन्मनसेप्सितम् ।

जगाम त्रिदिवं देवो दैत्योऽपि स्वकमालयम् ॥२५॥

उत्तीर्णं तपसस्तं तु दैत्यं दैत्येश्वरास्तथा । परिवव्रुः सहस्राक्षं दिवि देवगणा यथा ॥

तस्मिन् महति राज्यस्य तारके दैत्यनन्दने । ऋतवो मूर्त्तिमन्तश्च स्वकालगुणबृंहिताः

अभवन् किङ्करास्तस्य लोकपालाश्च सर्वशः ।

कान्तिद्युतिधृति मेधाः श्रीरवेक्ष्य च दानवम् ॥२८॥

परिवव्रुर्गुणा कीर्णा निश्छिद्राः सर्व एव हि । कालागुरुविलिप्ताङ्गं महामुकुटभूषणम् ॥

रुचिराङ्गदनद्धाङ्गं महासिंहासने स्थितम् । वीजयन्त्यप्सरः श्रेष्ठाः भृशं मुञ्चन्ति नैव ताः

चन्द्रार्कौ दीपमार्गेषु व्यजनेषु च मारुतः । कृतान्तोऽग्रेसरस्तस्य बभूवुर्मुनिसत्तमाः ॥

एवं प्रयाति काले-तु वितते तारकासुरः । बभाषे सचिवान् दैत्यः प्रभूतवरदर्पितः ॥

तारक उवाच ।

राज्येन कारणं किं मे त्वनाक्रम्य त्रिविष्टिपम् । अनिर्याप्य सुरैर्वैरं का शान्तिर्हृदयेमम

भुञ्जतेऽद्यापि यज्ञांशानमरा नाक एव हि । विष्णुः श्रियं न जहति तिष्ठते च गतभ्रमः

स्वस्थाभिःस्वर्गनारीभिःपीड्यन्तेऽमरवल्लभाः । सोत्पलामदिरामोदादिविक्रीड़ायनेषु च

लब्ध्वा जन्म नयः कश्चिद्वासरे पौरुषंनरः । जन्म तस्य वृथा भूतमजन्मता तु विशिष्यते

माता पितृभ्यां न करोति कामान् बन्धूनशोकान् न करोति यो वा।
कीर्त्तिं हि वानार्जयते हिमाभां पुमान् स जातोऽपि मृतो मतं मे ॥ ३७ ॥
तस्माज् जयायामरपुङ्गवानां त्रैलोक्यलक्ष्मीहरणाय शीघ्रम् ।
संयोज्यतां मे रथमष्टचक्रं बलञ्च मे दुर्जयदैत्यचक्रम् ।
ध्वजञ्च मे काञ्चनपट्टनद्धं च्छत्रञ्च मे मौक्तिकजालबद्धम् ॥३८॥

तारकस्य वचः श्रुत्वा ग्रसनो नाम दानवः । सेनानीर्दैत्यराजस्य तथा चक्रे बलान्वितः
आहत्य भेरीं गम्भीरां दैत्यानाहूय सत्वरः । तुरगाणां सहस्रेण चक्राष्टकविभूषितम् ॥
शुक्लाम्बरपरिष्कारं चतुर्योजनविस्तृतम् । नानाक्रीडागृहयुतं गीतवाद्यमनोहरम् ॥४१॥
विमानमिव देवस्य सुरभर्त्तुः शतक्रतोः । दशकोटीश्वरा दैत्या दैत्यास्ते चण्डविक्रमाः
तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरस्ततः । महिषः कुञ्जरो मेघः कालनेमिर्निमिस्तथा॥
मथनो जम्भकः शुम्भो दैत्येन्द्रा दश नायकाः । अन्येऽपिशतशस्तस्यपृथिवीदलनक्षमाः
दैत्येन्द्रा गिरिवर्ष्माणः सन्ति चण्डपराक्रमाः । नानायुधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः
तारकस्याभवत् केतूरौद्रः कनकभूषणः । केतुना मकरेणापि सेनानीर्ग्रसनोऽरिहा ॥४६
पैशाचं यस्य वदनं जम्भस्यासीदयोमयम् । खरं विधूतलाङ्गूलं कुजम्भस्याभवद् ध्वजे
महिषस्य तु गोमायुर्केतोर्हैमंतदाभवत् । ध्वाङ्क्षंध्वजेतुशुम्भस्यकृष्णायोमयमुच्छ्रितम्

अनेकाकारविन्यासाश्चान्येषान्तु ध्वजास्तथा ।
शतेन शीघ्रवेगानां व्याघ्राणां हेममालिनाम् ॥ ४६ ॥
ग्रसनस्य रथो युक्तो किङ्किणीजालमालिनाम् ।
शतेनापि च सिंहानां रथो जम्भस्य दुर्जयः ॥५०॥

कुजम्भस्य रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः । रथस्तु महिषस्योष्ट्रैर्गजस्य तु तुरङ्गमैः ॥
मेघस्य द्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जरैः कालनेमिनः । पर्वताभैः समारूढो निमिर्मत्तैर्महागजैः ॥
चतुर्दन्तैर्गन्धवद्भिः शिक्षितैर्मेघभैरवैः । शतहस्तायते कृष्णे तुरङ्गैर्हेमभूषणैः ॥ ५३ ॥
सितचामरजालेन शोभिते दक्षिणां दिशम् । सितचन्दनचार्वङ्गो नानापुष्पस्रजोज्ज्वलः
मथनो नाम दैत्येन्द्रः पाशहस्तोऽभ्यराजत । जम्भकः किङ्किणीजालमालमुष्ट्रं समास्थितः

कालशुक्लमहामेषमारूढः शुम्भदानवः । अन्येऽपि दानवा वीरा नानावाहनगामिनः ॥५६
प्रचण्डचित्रकर्माणः कुण्डलोष्णीषभूषणाः । नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः

नानासुगन्धिगन्धाढ्या नानावन्दिजनस्तुताः ।
नानावाद्यपरिष्पन्दाश्चाग्रेसरमहारथाः ॥५८॥
नानाशौर्यकथासक्तास्तस्मिन् सैन्ये महासुराः ।
तद्बलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यजायत ॥५९॥
प्रमत्तचण्डमातङ्गतुरङ्ग रथसङ्कुलम् । प्रतस्थेऽमरयुद्धाय बहुपत्तिपताकिनम्
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्देवदूतोऽम्बरालये ।
दृष्ट्वा स दानवबलं जगामेन्द्रस्य शंसितुम् ॥ ६१ ॥

स गत्वा तु सभां दिव्यां महेन्द्रस्य महात्मनः । शशंसमध्ये देवानांतत्कार्यंसमुपस्थितम्
तच्छ्रुत्वा देवराजस्तु निमीलितविलोचनः । वृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं काले महाभुजः

इन्द्र उवाच ।

संप्राप्नोति विमर्दोऽयं देवानांदानवैःसह । कार्यं किमिति तद्ब्रूहि नीत्युपायसमन्वितम्
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रस्य गिरां पतिः । इत्युवाच महाभागो वृहस्पतिरुदारधीः
सामपूर्वा स्मृता नीतिश्चतुरङ्गास्पताकिनीम् । जिगीषतां सुरश्रेष्ठ ! स्थितिरेषासनातनी
सामभेदस्तथा दानं दण्डश्चाङ्गचतुष्टयम् । नीतौ क्रमाद्देशकालरिपुयोग्यक्रमादिदम् ॥
सामदैत्येषु नैवास्ति यतस्ते लब्धसंश्रयाः । जातिधर्मेण वा भेद्या दानंप्राप्तश्रियेचकिम्
एकोऽभ्युपायो दण्डोऽत्र भवता यदि रोचते । दुर्जनेषु कृतंसाम महद्यातिचवन्ध्यताम्
भयादिति व्यवस्यन्तिक्रूराःसाममहात्मनाम् । ऋजुतामार्य्यबुद्धित्वंदयानीतिव्यतिक्रमम्

मन्यन्ते दुर्जना नित्यं साम चापि भयोदयात् ।
तस्माद् दुर्जनमाक्रान्तुं श्रेयान् पौरुषसंश्रयः ॥ ७१ ॥

आक्रान्ते तु क्रिया युक्ता सतामेतन्महाव्रतम् । दुर्जनः सुजनत्वाय कल्पते न कदाचन ।
सुजनोऽपिस्वभावस्यत्यागंवाञ्छेत् कदाचन । एवंमेवुद्ध्यते बुद्धिर्भवन्तोऽत्रव्यवस्यताम्
एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेवेत्युवाच तम् । कर्त्तव्यतां स सञ्चिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि ॥

इन्द्र उवाच ।

सावधानेन मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः ! ।
भवन्तो यज्ञभोक्तारस्तुष्टात्मानोऽतिसात्त्विकाः ॥ ७५ ॥

स्वे महिम्नि स्थिता नित्यं जगतः परिपालकाः । भवतश्चानिमित्तेन बाधन्तेदानवेश्वराः
तेषां सामादि नैवास्ति दण्डएवविधीयताम् । क्रियतां समरोद्योगः सैन्यंसंयुज्यतांम
आद्रियन्तां च शस्त्राणिपूज्यन्तामस्त्रदेवताः । वाहनानि च यानानि योजयन्तुसहामराः
यमं सेनापतिं कृत्वा शीघ्रमेवं दिवौकसः । इत्युक्ताः समनह्यन्त देवानां ये प्रधानतः ।
वाजिनामयुतेनाजौहे मघण्टापरिष्कृतम् । नानाश्चर्यगुणोपेतं संप्राप्तं सर्वदैवतैः ॥८०॥
रथं मातलिना क्लृप्तं देवराजस्य दुर्जयम् । यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्त्तत ॥८१॥
चण्डकिङ्करवृन्देन सर्वतः परिवारितः । कल्पकालोद्धतज्वालापूरिताम्बरलोचनः ॥८२॥
हुताशनश्छागरूढः शक्तिहस्तो व्यवस्थितः । पवनोऽङ्कुशपाणिस्तु विस्तारितमहाजवः ।
भुजगेन्द्रसमारूढो जलेशो भगवान् स्वयम् । नरयुक्तरथे देवो राक्षसेशो वियच्चरः ॥

तीक्ष्णखड्गयुतो भीमः समरे समवस्थितः ।
महासिंहरवो देवो धनाध्यक्षो गदायुधः ॥ ८५ ॥

चन्द्रादित्यावश्विनौ च चतुरङ्गबलान्वितौ । राजभिः सहितास्तस्थुर्गन्धर्वा हेमभूषणाः
हेमपीठोत्तरासङ्गाश्चित्रवर्मरथायुधाः । नाकपृष्ठशिखण्डास्तु वैदूर्यमकरध्वजाः ॥८७॥
जपारक्तोत्तरासङ्गा राक्षसा रक्तमूर्द्धजाः । गृध्रध्वजा महावीर्या निर्मलायोविभूषणाः ।
मुसलासिगदहस्ता रथे चोष्णीषदंशिताः । महामेघरवा नागा भीमोल्काशनिहेतयः ।
यक्षाः कृष्णाम्बरभृतो भीमबाणधनुर्द्धराः । ताम्रोलूकध्वजा रौद्रा हेमरत्नविभूषणाः ॥
द्वीपिचर्मोत्तरासङ्गं निशाचरबलं बभौ । गार्ध्रपत्रध्वजप्रायमस्थिभूषणभूषितम् ॥ ९१ ॥
मुसलायुधदुष्प्रेक्ष्यं नानाप्राणिमहारवम् । किन्नराः श्वेतवसनाः सितपत्रिपताकिनः ॥
मत्तेभवाहनप्रायास्तीक्ष्णतोमरहेतयः । मुक्ताजालपरिष्कारो हंसो रजतनिर्मितः ॥९३॥
केतुर्जलाधिनाथस्य भीमधूमध्वजानिलः । पद्मरागमहारत्नविटपं धनदस्य तु ॥ ९४ ॥

ध्वजं समुच्छ्रितं भाति [illegible]

वृकेण काष्ठलोहेन यमस्यासीन्महाध्वजः ॥ ९५ ॥
राक्षसेशस्य केतोर्वै प्रेतस्य मुखमावभौ । हेमसिंहध्वजौ देवौ चन्द्रार्कावमितद्युती ॥
कुम्भेन रत्नचित्रेण केतुरश्विनयोरभूत् । हेममातङ्गरचितं चित्ररत्नपरिष्कृतम् ॥ ९७ ॥
ध्वजं शतक्रतोरासीत् सितचामरमण्डितम् । सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचरा ॥९८॥
सेना सा देवराजस्य दुर्जया भुवनत्रये । कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंशद्दैवे देवनिकायिनाम् ॥

हिमाचलाभे सितकर्णचामरे सुवर्णपद्मामलसुन्दरस्रजि ।
कृताभिरागोज्ज्वलकुङ्कुमाङ्कुरे कपोललीलालिकदम्बसङ्कुले ॥ १००॥
स्थितस्तदैरावतनामकुञ्जरे महाबलश्चित्रविभूषणाम्बरः ।
विशालवस्त्रांशुवितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः ॥
सहस्रदृक् वन्दिसहस्रसंस्तुतस्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः ॥१०१॥
तुरङ्गमातङ्गबलौघसङ्कुला सितातपत्रध्वजराजिशालिनी ।
चमूश्च सा दुर्जयपत्रिसन्तता विभाति नानायुधयोधदुस्तरा ॥१०२॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे तारकोपाख्याने सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकोपाख्याने देवदानवयुद्धवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

सुरासुराणां सम्मर्दस्तस्मिन्नत्यन्तदारुणे । तुमुलोऽतिमहानासीत् सेनयोरुभयोरपि ॥
गर्जतां देवदैत्यानां शङ्खभेरीरवेण च । तूर्याणाञ्चैव निर्घोषैर्मातङ्गानाञ्च बृंहितैः ॥२॥
ह्रेषतां हयवृन्दानां रथनेमिस्वनेन च । ज्याघोषेण च शूराणान्तुमुलोऽतिमहानभूत् ॥३
समासाद्योभये सेने परस्परजयैषिणाम् । रोषेणातिपरीतानान्त्यक्तजीवितचेतसाम् ॥४
समासाद्य तु तेऽन्योन्यं प्रक्रमेण विलोमतः । रथेनासक्तपादातो रथेन चतुरङ्गमः ॥५॥

हस्ती पादातिसंयुक्तो रथिना च क्वचिद्रथी। मातङ्गेनापरो हस्ती तुरङ्गैर्बहुभिर्गजः ॥६॥
पदातिरेको बहुभिर्गजैर्मत्तैश्च युज्यते। ततः प्रासाशनिगदाभिन्दिपालपरश्वधैः ॥७॥
शक्तिभिः पट्टिशैः शूलैर्मुद्गरैः कड़पैर्गडैः। चक्रैश्च शङ्कुभिश्चैव तोमरैरङ्कुशैः स्थितैः ॥८॥
कर्णिकालीकनाराचवत्सदन्तार्द्धचन्द्रकैः। भल्लैश्च शतपत्रैश्च शुकतुण्डैश्च निर्मलैः ॥९॥
वृष्टिरत्यद्भुताकारा गगने समदृश्यत। संप्रच्छाद्य दिशः सर्वास्तमोमयमिवाकरोत्॥
न प्राज्ञायत ते ऽन्योऽन्यं तस्मिंस्तमसि सङ्कुले। अलक्ष्यं विसृजन्तस्ते हेतिसङ्घातमुद्धतम्
पतितं सेनयोर्मध्ये निरीक्षन्ते परस्परम्। ततो ध्वजैर्भुजैश्छत्रैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
गजैस्तुरङ्गैः पादातैः पतद्भिः पतितैरपि। आकाशसरसोभ्रष्टैः पङ्कजैरिव भूस्तृता ॥१३॥
भग्नदन्ता भिन्नकुम्भाश्छिन्नदीर्घमहाकराः। गजाः शैलनिभाः पेतुर्धरण्यां रुधिरस्रवाः
भग्नेषा दण्डचक्राक्षा रथाश्च शकलीकृता। पेतुः शकलतां यातास्तुरङ्गाश्च सहस्रशः॥
ततोऽसृक् ह्रददुस्तारा पृथिवी समजायत। नद्यश्च रुधिरावर्ता हर्षदाः पिशिताशिनाम्

वेतालाक्रीड़मभवत्तत् सङ्कुलरणाजिरम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धेऽष्टचत्वारिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः।

ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकोपाख्याने देवासुरयुद्धवर्णनम्।

सूत उवाच।

अथ ग्रसनमालोक्य यमः क्रोधविमूर्च्छितः। ववर्ष शरवर्षेण विशेषेणाग्निवर्चसाम्॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्ग्रसनोऽतिपराक्रमः। कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी धनुरानम्य भैरवम्॥

शतैः पञ्चभिरत्युग्रैः शराणां यममर्दयन्।
स विचिन्त्य यमो बाणान् ग्रसनस्यातिपौरुषम् ॥ ३ ॥

बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमोग्रसनमर्दयन् । कृतान्तशरवृष्टिन्तां वियति प्रतिसर्पिणीम् ॥४॥
चिच्छेद शरवर्षेण ग्रसनो दानवेश्वरः । विफलां तां समालोक्य यमस्तां शरसन्ततिम्
स विचिन्त्य शरव्रातं ग्रसनस्य रथं प्रति । चिक्षेप मुद्गरं घोरन्तरसा तस्य चान्तकः ॥
स तं मुद्गरमायान्तमुत्प्लुत्य गगनस्थितम् । जग्राह वामहस्तेन याम्यं दानवनन्दनः ॥
तमेव मुद्गरं गृह्य यमस्य महिषं रुषा । पातयामास वेगेन स पपात महीतले ॥ ८ ॥

उत्प्लुत्याथ यमस्तस्मान् महिषान्निष्पतिष्यतः ।
प्रासेन ताडयामास ग्रसनं वदने दृढम् ॥ ९ ॥

स तु प्रासप्रहारेण मूर्च्छितोऽन्यपतद्भुवि । ग्रसनं पतितं दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमः ॥
यमस्य भिन्दिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि । यमस्तेन प्रहारेण सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥
कृतान्तमर्दितं दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः । वृतो यक्षायुतशतैर्जम्भं प्रत्युद्ययौ रुषा ॥१२॥
जम्भो रुषा तमायान्तं दानवानीकसंवृतः । उवाचप्राज्ञोवाक्यन्तु यथा स्निग्धेनभाषितम्

ग्रसनो लब्धसंज्ञोऽथ यमस्य प्राहिणोद्गदाम् ।
मणिहेमपरिष्कारां गुर्वीमरिविमर्दिनीम् ॥ १४ ॥

तामप्रतर्क्यां संप्रेक्ष्य गदां महिषवाहनः । गदायाः प्रतिघातार्थं जगद्दलनभैरवम् ॥१५
दण्डं मुमोच कोपेन ज्वालामालासमाकुलम् । सगदां वियतिप्राप्य रसासाम्बुधरो यथा
सङ्घट्टमभवत्ताभ्यां शैलाभ्यामिव दुःसहम् । ताभ्यां निष्पेषनिर्ह्रादजडीकृतदिगन्तरम् ॥
जगद्व्याकुलतां गतं प्रलयागमशङ्कया । क्षणात् प्रशान्तनिह्रादं ज्वलदुल्कासमाचितम्
निष्पेषेण तयोर्भीममभूद्गगनगोचरम् । निहत्याथ गदां दण्डस्ततोग्रसनमूर्द्धनि ॥१९॥

हत्वा श्रियमिवानर्थो दुर्वृत्तस्यापतद्दृढः ।
स तु तेन प्रहारेण दृष्ट्वा सतिमिरादिशः ॥ २० ॥

पपात भूमौ निःसंज्ञो भूमिरेणुविभूषितः । ततो हाहारवो घोरः सेनयोरुभयोरभूत् २१

ततो मुहूर्त्तमात्रेण ग्रसनः प्राप्य चेतनाम् ।
अपश्यत् स्वान्तनुं ध्वस्तां विलोलाभरणाम्बराम् ॥ २२ ॥

स चापि चिन्तयामास कृते प्रतिकृतिक्रियाम् ।मद्विधे वस्तुनिपुंसि प्रभोःपरिभवोदयात्

मय्याश्रितानि सैन्यानि जिते मयि विनाशिता ।
असम्भावित एवास्तु मनः स्वच्छन्दचेष्टितः ॥ २४ ॥
न तु व्यर्थशतोद्घुष्टसम्भावितधनो नरः । एवं सञ्चिन्त्य वेगेन समुत्तस्थौ महाबलः॥
मुद्गरं कालदण्डाभं गृहीत्वा गिरिसन्निभः । ग्रसनो घोरसङ्कल्पः सन्दष्टौष्ठपुटच्छदः ॥
रथेन त्वरितो गच्छन्नाससादान्तकं रणे । समासाद्य यमं युद्धे ग्रसनो भ्राम्य मुद्गरम्॥
वेगेन महता रौद्रश्चिक्षेप यममूर्द्धनि । विलोक्य मुद्गरं दीप्तं यमः सम्भ्रान्तलोचनः ॥२८
वञ्चयामास दुर्द्धर्षं मुद्गरं स महाबलः । तस्मिन्नपसृते दूरं चण्डानां भीमकर्मणाम्॥
याम्यानां किङ्कराणान्तु सहस्रं निष्पिपेष ह ।
ततस्तां निहतां दृष्ट्वा घोरां किङ्करवाहिनीम् ॥ ३० ॥
अगमत् परमं क्षोभं नानाप्रहरणोद्यतः । ग्रसनस्तु समालोक्य तां किङ्करमयीश्चमूम् ॥
मेने यमसहस्राणि सृष्टानि यममायया । निग्राह्य ग्रसनः सेनां विसृजन्नस्त्रवृष्टयः ॥३२॥
कल्पान्तघोरसङ्काशो बभूव क्रोधमूर्च्छितः ।
कांश्चिद्विभेद शूलानि कांश्चिद्बाणैरजिह्मगैः ॥ ३३ ॥
कांश्चित्पिपेष गदया कांश्च मुद्गरवृष्टिभिः । केचित्प्रासप्रहारैश्च दारुणैस्ताडितास्तदा॥
अपरे बहुशस्तस्य ललम्बुर्बाहुमण्डले । शिलाभिरपरे जघ्नुर्द्रुमैरन्यैर्महोच्छ्रयैः ॥३५॥
तस्यापरे तु गात्रेषु दशनैरपि दंशयन् । अपरे मुष्टिभिः पृष्ठं किङ्कराः प्रहरन्ति च ॥३६॥
अभिद्रुतस्तथा घोरैर्ग्रसनः क्रोधमूर्च्छितः । उत्सृज्य गात्रं भूपृष्ठे निष्पिपेष सहस्रशः॥
कांश्चिदुत्थाय मुष्टीभिर्जघ्ने किङ्करसंश्रयान् । स तु किङ्करयुद्धेन ग्रसनः श्रममाप्तवान्
तमालोक्य यमः श्रान्तं निहतांश्च स्ववाहिनीम् ।
आजगाम समुद्यम्य दण्डं महिषवाहनः ॥ ३९ ॥
ग्रसनस्तु समायान्तमाजघ्ने गदयोरसि । अचिन्तयित्वा तत्कर्म ग्रसनस्यान्तकोऽरिहा
जघ्ने रथस्य मूर्द्धन्यात् व्याघ्रान् दण्डेन कोपनः ।
स रथो दण्डमथितैर्व्याघ्रैरर्द्धैर्विकृष्यते ॥ ४१ ॥
संशयः पुरुषस्येव चित्तं दैत्यस्य तद्रथम् । समुत्सृज्य रथं दैत्यः पदातिर्धरणींगतः ॥

यमं भुजाभ्यामादाय योधयामास दानवः। यमोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धेष्ववर्त्तत
ग्रसनः कटिवस्त्रैस्तु यमं गृह्य बलोद्धतः। भ्रामयामास वेगेन प्रचित्तमिव संभ्रमन् ॥
यमोऽपि कण्ठेऽवष्टभ्य दैत्यं बाहुयुगेन तु। वेगेन भ्रामयामास समुत्क्षिप्य महीतलात्
ततो मुष्टिभिराजघ्नतुरर्दयन्तौ परस्परम्। दैत्येन्द्रस्यातिकायत्वात्ततः श्रान्तभुजो यमः

स्कन्धे निधाय दैत्यस्य मुखं विश्रान्तिमैच्छत ।
तमालक्ष्य ततो दैत्यः श्रान्तमन्तकमोजसा ॥ ४७ ॥

निष्पिपेष महीपृष्ठे बहुशः पार्ष्णिपाणिभिः। यावद्यमस्य वदनात् सुस्राव रुधिरं बहु ॥
निर्जीवितं यमं दृष्ट्वा ततः सन्त्यज्य दानवः। जयं प्राप्योद्धतं दैत्यो नादंमुक्त्वामहास्वनः

स्वयं सैन्यं समासाद्य तस्थौ गिरिरिवाचलः ।
धनाधिपस्य जम्भेन सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ५० ॥
दिशोऽवरुद्धाः क्रुद्धेन सैन्यं चास्य निकृन्तितम्।
ततः क्रोधपरीतस्तु धनेशो जम्भदानवम् ॥ ५१ ॥

हृदि विव्याध बाणानां सहस्रेणाग्निवर्चसाम्। सारथिञ्च शतेनाजौ ध्वजं दशभिरेव च
हस्तौ च पञ्चसप्तत्या मार्गणैर्दशभिर्धनुः। मार्गणैर्बर्हिपत्राङ्कैस्तैलधौतैरजिह्मगैः ॥
सिंहमेकेन तं तीक्ष्णैर्विव्याध दशभिः शरैः। जम्भस्तु कर्मतद्दृष्ट्वा धनेशस्यातिदुष्करम्

हृदि धैर्यं समालम्ब्य किञ्चित् सन्त्रस्तमानसः ।
जग्राह निशितान् बाणान् शत्रुमर्मविभेदिनः ॥ ५५ ॥

आकर्णाकृष्टचापस्तु जम्भःक्रोधपरिप्लुतः। विव्याध धनदं तीक्ष्णैःशरैर्वक्षसि दानवः॥

सारथिं चास्य बाणेन दृढेनाभ्यहनद्धृदि ।
चिच्छेद ज्यामथैकेन तैलधौतेन दानवः ॥ ५७ ॥

ततस्तु निशितैर्बाणैर्दारुणैर्मर्मभेदिभिः। विव्याधोरसि वित्तेशं दशभिः क्रूरकर्म्मभिः ॥
मोहं परमतो गच्छन् दृढविद्धो हि वित्तपः। स क्षणाद्धैर्यमालम्ब्य धनुराकृष्य भैरवम्
किरन् बाणसहस्राणि निशितानि धनाधिपः। दिशःखंविदिशो भूमीरनीकान्यसुरस्यच
पूरयामास वेगेन संच्छाद्य रविमण्डलम्। जम्भोऽपि परमेकैकं शरैर्बहुभिराहवे ॥६१॥

चिच्छेद लघुसन्धानो धनेशस्यातिपौरुषात् । ततो धनेशः संक्रुद्धो दानवेन्द्रस्य कर्मणा
व्यधमत्तस्य सैन्यानि नानासायकवृष्टिभिः । तद्दृष्ट्वा दुष्कृतं कर्म्म धनाध्यक्षस्यदानवः
गृहीत्वा मुद्गरं भीममायसं हेमभूषितम् । धनदानुचरान्यक्षान् निष्पिपेष सहस्रशः॥६४॥
ते वध्यमाना दैत्येन मुञ्चन्तो भैरवान् रवान् । रथं धनपतेः सर्वे परिवार्य व्यवस्थिताः
दृष्ट्वा तानर्दितान् देवः शूलं जग्राह दारुणम् । तेन दैत्यसहस्राणि सूदयामास सत्वरः॥
क्षीयमाणेषु दैत्येषु दानवः क्रोधमूर्च्छितः । जग्राह परशुं दैत्यो मर्द्दनं दैत्यविद्विषाम्॥

स तेन सितधारेण धनभर्तुर्महारथम् ।
चिच्छेद तिलशो दैत्यो ह्याखुः स्निग्धमिवाम्बरम् ॥ ६८ ॥

पदातिरथ वित्तेशो गदामादाय भैरवीम् । महाहवविमर्देषु दृष्टशत्रुविनाशिनीम् ॥६९॥
अधृष्यां सर्वभूतानां बहुवर्षगणार्चिताम् । नानाचन्दनदिग्धाङ्गीं दिव्यपुष्पविवासिताम्
निर्मलायोमयीं गुर्वीममोघां हेमभूषणाम् । चिक्षेप मूर्ध्नि संक्रुद्धो जम्भस्य तु धनाधिपः

आयान्तीं तां समालोक्य तडित्सङ्घातमण्डिताम् ।
दैत्यो गदाभिघातार्थं शस्त्रवृष्टिं मुमोच ह ॥ ७२ ॥

चक्राणिकोणपः प्रासान्भुशुण्डी पट्टिशानपि । हेमकेयूरनद्धाभ्यां बाहुभ्यां चण्डविक्रमः
व्यर्थीकृत्यतुतान् सर्वानायुधान् दैत्यवक्षसि । प्रस्फुरन्तीपपातोग्रो महोल्केवाद्रिकन्दरे
गदयाभिहतो गाढं पपात रथकूवरे । स्रोतोभिश्चास्य रुधिरं सुस्राव गतचेतसः ॥७५॥
जम्भन्तु निहतं मत्वा कुजम्भो भैरवस्वनः । धनाधिपस्य संक्रुद्धो वाक्येनातीव कोपितः
चक्रे वाणमयं जालं दिक्षु यक्षाधिपस्य तु । चिच्छेद वाणजालं तदर्धचन्द्रैः शितैस्ततः
मुमोच शरवृष्टिन्तु तस्य यक्षाधिपो बली । स तं दैत्यः शरव्रातं चिच्छेद निशितैःशरैः
व्यर्थीकृतान्तु तां दृष्ट्वा शरवृष्टिं धनाधिपः । शक्तिं जग्राह दुर्द्धर्षां हेमघण्टाट्टहासिनीम्॥
बाहुना रत्नकेयूरकान्तिसन्तानहासिना । स तां निरूप्य वेगेन कुजम्भाय मुमोच ह॥
स कुजम्भस्य हृदयं दारयामास दारुणा । वित्तेशः स्वल्पसत्वस्य पुरुषस्यातिभाविता
अथास्य हृदयं भित्वा जगाम धरणीतलम् । ततो मुहूर्तादस्वस्थो दानवो दारुणाकृतिः
जग्राह पट्टिशं दैत्यः प्रांशु शितशिलीमुखम् । स तेन पट्टिशनाजौ धनदस्य स्थानान्तरम्॥

वाक्येन तीक्ष्णरूपेण मर्मान्तरविसर्पिणा। निर्विभेदाभिजातस्य हृदयं दुर्जनो यथा ॥
तेन पट्टिशघातेन धनेशः परिमूर्च्छितः। निपपात रथोपस्थे जर्जरो धूर्वहो यथा ॥८५॥
तथागतन्तु तं दृष्ट्वा धनेशं नरवाहनम्। खड्गास्त्रो निर्ऋतिर्देवो निशाचारबलानुगः ॥८६
अभिदुद्राव वेगेन कुजम्भं भीमविक्रमम्। अथ दृष्ट्वा तु दुर्द्धर्षं कुजम्भो राक्षसेश्वरम् ॥
चोदयामास सैन्यानि राक्षसेन्द्रवधं प्रति। स दृष्ट्वा चोदितां सेनां भल्लनानास्त्रभीषणाम्
रथादाप्लुत्य वेगेन भूषणद्युतिभास्वरः। खड्गेन कमलानीव विकोशेनाम्बरत्विषा॥८६
चिच्छेद रिपुवक्त्राणि विचित्राणि समन्ततः। तिर्यक् पृष्ठमधश्चोद्र्ध्वं दीर्घबाहुर्महासिना
सन्दष्टौष्ठपुटाटोप भ्रूकुटीविकटाननः। प्रचण्डकोपरक्ताक्षो न्यकृन्तद्दानवान् रणे ॥६१॥

ततो निःशेषितप्रायां विलोक्य स्वामनीकिनीम्।
मुक्त्वा कुजम्भो धनदं राक्षसेन्द्रमभिद्रवत् ॥ ६२ ॥

लब्धसंज्ञोऽथ जम्भस्तु धनाध्यक्षपदानुगान्। जीवग्राहान् स जग्राह बध्वापाशैःसहस्रशः
मूर्तिमन्ति तु रत्नानि विविधानि च दानवाः। वाहनानिच दिव्यानि विमानानिसहस्रशः

धनेशो लब्धसंज्ञोऽथ तामवस्थां विलोक्य तु।
निश्वसन् दीर्घमुष्णञ्च रोषात् ताम्रविलोचनः ॥ ६५ ॥

ध्यात्वास्त्रं गारुडन्दिव्यंबाणं सन्धाय कार्मुके। मुमोचदानवानीके तं बाणं शत्रुदारणम्
प्रथमङ्कार्मुकात्तस्य निश्चेरुर्धूमराजयः। अनन्तरं स्फुलिङ्गानां कोटयो दीप्तवर्चसाम् ॥
ततो ज्वालाकुलं व्योम चकारास्त्रं समन्ततः। ततःक्रमेण दुर्वारं नानारूपं तदाभवत् ॥
अमूर्तश्चाभवल्लोको ह्यन्धकारसमावृतः। ततोऽन्तरिक्षे शंसन्ति तेजस्तेतु परिष्कृतम् ॥
कुजम्भस्तत्समालोच्य दानवोऽतिपराक्रमः। अभिदुद्राव वेगेन पदातिर्धनदं नदन् ॥
अथाभिमुखमायान्तं दैत्यं दृष्ट्वा धनाधिपः। बभूव संभ्रमाविष्टः पलायनपरायणः ।१०१
ततः पलायतस्तस्य मुकुटं रत्नमण्डितम्। पपात भूतले दीप्तं रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥
शूराणामभिजातानां भर्तर्यपसृते रणात्। भर्तुः संग्रामशिरसि युक्तन्तद्भूषणाग्रतः ॥
इति व्यवस्य दुर्धर्षा नानाशस्त्रास्त्रपाणयः। युयुत्सवः स्थिता यक्षामुकुटं परिवार्य तम्
अभिमानधना वीरा धनदस्य पदानुगाः। तानपश्च संप्रेक्ष्य दानवाश्चण्डपौरुषाः ॥

भृ (भु) शुण्डीं भैरवाकारां गृहीत्वा शैलगौरवाम् ।
रक्षिणो मुकुटस्याथ निष्पिपेष निशाचरान् ॥ १०६ ॥

तान् प्रमथ्याथ दनुजो मुकुटन्तत् स्वके रथे । समारोप्यामररिपुर्जित्वा धनदमाहवे ॥

धनानि रत्नानि च मूर्तिमन्ति तथा निधानानि शरीरिणश्च ।
आदाय सर्वाणि जगाम दैत्यो जम्भः स्वसैन्यन्दनुजेन्द्रसिंहः ।
धनाधिपो वै विनिकीर्णमूर्धजो जगाम दीनः सुरभर्तुरन्तिकम् ॥१०८॥

कुजम्भेनाथ संसक्तो रजनीचरनन्दनः । मायाममोघामाश्रित्य तामसीं राक्षसेश्वरः ॥
मोहयामास दैत्येन्द्रं जगत् कृत्वा तमोमयम् । ततो विफलनेत्राणि दानवानां बलानि तु
नशेकुश्चलितुन्तत्र पदादपि पदन्तदा । ततो नानास्त्रवर्षेण दानवानां महाचमूम् ॥१११॥
जघान घननोहारतिमिरातुरवाहनाम् । वध्यमानेषु दैत्येषु कुजम्भे मूढचेतसि ॥ ११२ ॥

महिषो दानवेन्द्रस्तु कल्पान्ताम्भोदसन्निभः ।
अस्त्रञ्चकार सावित्रमुल्कासङ्घातमण्डितम् ॥ ११३ ॥

विजृम्भत्यथ सावित्रे परमास्त्रे प्रतापिनि । प्रणाशमगमत्तीव्रं तमो घोरमनन्तरम् ॥११४
ततोऽस्त्रं विस्फुलिङ्गाङ्कं तमः कृत्स्नं व्यनाशयत् । प्रफुल्लारुणपद्माभं शरदीवामलं सरः
ततस्तमसि संभ्रान्ता दैत्येन्द्राः प्राप्तचक्षुषः । चक्रुः क्रूरेण मनसा देवानीकैः सहाद्भुतम् ॥
शस्त्रैरमर्षान्निर्मुक्तैर्भुजङ्गास्त्रं विनोदितम् । अथादाय धनुर्घोरमिषूंश्चाशीविषोपमान् ॥
कुजम्भोऽधावत क्षिप्रं रक्षोराजबलम्प्रति । राक्षसेन्द्रस्तमायान्तं विलोक्य स पदानुगः
विव्याध निशितैर्बाणैः क्रूराशोविषभीषणैः । तदादानञ्च सन्धानं न मोक्षश्चापि लक्ष्यते
चिच्छेदास्य शरव्रातान् स्वशरैरतिलाघवात् । ध्वजं परमतीक्ष्णेन चित्रकर्मामरद्विषः ॥
सारथिश्चास्य भल्लेन रथनीडादपातयात् । कुजम्भः कर्मतद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य संयुगे
रोषरक्तेक्षणयुतो रथादाप्लुत्य दानवः । खड्गं जग्राह वेगेन शरदम्बरनिर्मलम् ॥ १२२ ॥
चर्म चोदयखण्डेन्दुदशकेन विभूषितम् । अभ्यद्रवद्रणे दैत्यो रक्षोऽधिपतिमोजसा ॥
तं रक्षोऽधिपतिः प्राप्तं मुद्गरेणाहनद्धृदि । स तु तेन प्रहारेण क्षीणः संभ्रान्तमानसः ॥
तस्थावचेष्टो दनुजो यथा धीरो धराधरः । समुहूर्त समाश्वस्तो दानवेन्द्रोऽतिदुर्जयः ॥

रथमारुह्य जग्राह रक्षो वामकरेण तु। केशेषु निर्ऋतिं दैत्यो जानुनाक्रम्यधिष्ठितम् ॥
ततः खड्गेन च शिरश्छेत्तुमैच्छदमर्षणः। तस्मिन् तदन्तरे देवो वरुणोऽपांपतिर्द्रुतम् ॥
पाशेन दानवेन्द्रस्य बबन्ध च भुजद्वयम्। ततो बद्धभुजं दैत्यं विफलीकृतपौरुषम् ॥
ताडयामास गदया दयामुत्सृज्य पाशधृक्। स तु तेन प्रहारेण स्रोतोभिःक्षतजं वमन्
दधार रूपं मेघस्य विद्युन्मालालतावृतम्। तदवस्थागतं दृष्ट्वा कुजम्भं महिषासुरः ॥१३०
व्यावृत्तवदने गाधे ग्रस्तुमैच्छत् सुरावुभौ। निर्ऋतिं वरुणञ्चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः
तावभिप्रायमालक्ष्य तस्य दैत्यस्य दूषितम्। त्यक्त्वारथपथं भीतौ महिषस्यातिरंहसा

भृशं द्रुतौ जवाद्दिग्भ्यामुभाभ्यां भयविह्वलौ।
जगाम निर्ऋतिः क्षिप्रं शरणं पाकशासनम् ॥१३३॥

क्रुद्धस्तु महिषो दैत्यो वरुणं समभिद्रुतः। तमन्तकमुखासक्तमालोक्य हिमवद्द्युतिः ॥

चक्रे सोमास्त्रनिसृष्टं हिमसङ्घातकण्टकम्।
वायव्यं चास्त्रमतुलं चन्द्रश्चक्रे द्वितीयकम् ॥१३५॥
वायुना तेन चन्द्रेण संशुष्केण हिमेन च।
व्यथिता दानवाः सर्वे शीतोच्छिन्ना विपौरुषाः ॥१३६॥

न शेकुश्चलितुं पद्भ्यां नास्त्राण्यादातुमेव च। महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रचोदितैः॥
गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्त समन्ततः। महिषो निष्प्रयत्नस्तु शीतेनाकम्पिताननः ॥
वक्षोवालम्भ्य पाणिभ्यामुपविष्टो ह्यधोमुखः। सर्वे तेनिष्प्रतीकारादैत्याश्चन्द्रमसा जिताः
रणेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा तस्थुस्तेजीवितार्थिनः। तत्राब्रवीत्कालनेमिर्दैत्यान्कोपेन दीपितः

भो भोः शृङ्गारिणः शूराः ! सर्वे ! शस्त्रास्त्रपारगाः।
एकैकोऽपि जगत्सर्वं शक्तस्तुलयितुं भुजैः ॥१४१॥

एकैकोऽपि क्षमो ग्रस्तुं जगत्सर्वं चराचरम्। एकैकस्यापि पर्याप्तानसर्वेऽपिदिवौकसः
कलां पूरयितुं यत्नात् षोडशीमतिविक्रमाः। किं प्रयाताश्च तिष्ठध्वं समरेऽमरनिर्जिताः
न युक्तमेतच्छूराणांविशेषादैत्यजन्मनाम्। राजाचान्तरितोऽस्माकंतारको लोकमारकः
विरतानां रणादस्मात् क्रुद्धः प्राणान् हरिष्यति। शीतेन नष्टश्रुतयोभ्रष्टवाक्पाटवास्तथा

मूकास्तदाऽभवन् दैत्या रणद्दशनपङ्क्तयः ।
तान् दृष्ट्वा नष्टचेतस्कान् दैत्यान् शीतेन सादितान् ॥१४६॥
मत्वा कालक्षमं कार्यं कालनेमिर्महासुरः । आश्रित्य दानवीं मायां वितत्य स्वं महावपुः
पूरयामास गगनं दिशो विदिश एव च । निर्ममे दानवेन्द्रेशः शरीरे भास्करायुतम् ॥
दिशश्च मायया चण्डैःपूरयामास पावकैः । ततोज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात्
तेन ज्वालासमूहेन हिमांशुरगमच्छमम् । ततः क्रमेण विभ्रष्टशीतदुर्दिनमावभौ ॥१५०॥
तद्बलं दानवेन्द्राणां मायया कालनेमिनः । तद्दृष्ट्वा दानवानीकं लब्धसंज्ञं दिवाकरः ॥
उवाचारुणमुद्भ्रान्तकोपाल्लोकैकलोचनः ।

दिवाकर उवाच ।

नयारुणरथं शीघ्रं कालनेमिरथोयतः ॥१५२॥
विमर्दस्तत्र विषमो भविता शूरसंक्षयः । एषोऽजितः शशाङ्कोऽत्र तद्बलं बलमाश्रितम्
इत्युक्तश्चोदयामास रथं गरुडपूर्वजः । प्रयत्नविधृतैरश्वैः सितचामरमालिभिः ॥१५४॥
जगद्दीपोऽथ भगवान् जग्राह विततं धनुः ।
शरौ च द्वौ महाभागो दिव्यावाशीविषद्युती ॥१५५॥
सञ्चारास्त्रेण सन्धाय बाणमेकं ससर्ज सः । द्वितीयमिन्द्रजालेन योजितं प्रमुमोच ह
सञ्चारास्त्रेण रूपाणां क्षणाच्चक्रे विपर्ययम् । देवानां दानवं रूपं दानवानाञ्च दैविकम्
मत्वा सुरान् स्वकानेव जघ्ने घोरास्त्रलाघवात् ।
कालनेमीरुषाविष्टः कृतान्त इव संक्षये ॥१५८॥
कांश्चित् खड्गेन तीक्ष्णेन कांश्चिन्नाराचवृष्टिभिः ।
कांश्चिद् गदाभिर्घोराभिः कांश्चिद् घोरैः परश्वधैः ॥१५९॥
शिरांसि केषांञ्चिदपातयच्च भुजान् रथान् सारथींश्चोग्रवेगः ।
कांश्चित् पिपेषाथ रथस्य वेगात् कांश्चित् क्रुधा चोद्धतमुष्टिपातैः ॥१६०॥
रणे विनिहतान् दृष्ट्वा नेमिः स्वान् दानवाधिपः ।
रूपं स्वनं प्रपद्यन्त ह्यसुराः सुरधर्षिताः ॥१६१॥

कालनेमी रुषाविष्टस्तेषां रूपं न बुद्धवान्। नेमिर्दैत्यस्तु तान् दृष्ट्वा कालनेमिमुवाच ह

अहं नेमिः सुरो नैव कालनेमे ! विदस्व माम्।
भवता मोहितेनाजौ निहता भूरिविक्रमाः ॥१६३॥

दैत्यानां दशलक्षाणि दुर्जयानां सुरैरिह। सर्वास्त्रवारणं मुञ्च ब्राह्ममस्त्रं त्वरान्वितः ॥
स तेन बोधितो दैत्यः सम्भ्रमाकुलचेतनः। योजयामास बाणं हि ब्रह्मास्त्रविहितेन तु
मुमोच चापि दैत्येन्द्रः सस्वयंसुरकण्टकः। ततोऽस्त्रतेजसाव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम्
देवानां चाभवत् सैन्यं सर्वमेव भयान्वितम्। सञ्चरास्त्रञ्च संशान्तं स्वयमायोधने बभौ
तस्मिन् प्रतिहते ह्यस्त्रे भ्रष्टतेजा दिवाकरः। महेन्द्रजालमाश्रित्यचक्रेस्वां कोटिशस्तनुम्
विस्फूर्जत्करसम्पातसमाक्रान्तजगत्त्रयम्। ततापं दानवानीकं गतमज्जौघशोणितम् ॥
ततश्चावर्षदनलं समन्त(न्ता)दतिसंहतम्। चक्षूंषि दानवेन्द्राणां चकारान्धानि च प्रभुः
गजानामगलन्मेदः पेतुश्चाप्यरवा भुवि। तुरगा निश्वसन्तश्च घर्मार्त्ता रथिनोऽपि च ॥
इतश्चेतश्च सलिलं प्रार्थयन्तस्तृषातुराः। प्रच्छायविटपांश्चैव गिरीणां गह्वराणि च ॥
दावाग्निः प्रज्वलंश्चैव घोरार्चिर्दग्धपादपः। तोयार्थिनःपुरो दृष्ट्वा तोयं कल्लोलमालितम्
पुरस्थितमपि प्राप्तुं न शुकेरवमर्दिताः। अप्राप्य सलिलं भूमौ व्यात्तास्यागतचेतसः ॥
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त मृता दैत्येश्वरा भुवि। रथे गजाश्च पतितास्तुरगाश्च समापिताः ॥
स्थिता वमन्तो धावन्तो गलद्रक्तवसासृजः। दानवानां सहस्राणि व्यदृश्यन्त मृतानितु
सङ्क्षये दानवेन्द्राणां तस्मिन्महति वर्तिते। प्रकोपोद्धूतताम्राक्षः कालनेमीरुषातुरः ॥
अभवत्कल्पमेघाभः स्फुरद्भूरिशतह्रदः। गम्भीरास्फोटनिह्रादजगद्धृदयघट्टकः ॥१७८॥

प्रच्छाद्य गगनाभोगं रविमायां व्यनाशयत्।
शीतं ववर्ष सलिलं दानवेन्द्रबलं प्रति ॥१७६॥
दैत्यास्तां वृष्टिमासाद्य समाश्वस्तास्ततः क्रमात्।
बीजाङ्कुरा इवाम्लानाः प्राप्य वृष्टिं धरातले ॥१८०॥

ततः स मेघरूपी तु कालनेमिर्महासुरः। शस्त्रवृष्टिं ववर्षोग्रां देवानीकेषु दुर्जयः ॥१८१

तया वृष्ट्या बाध्यमाना दैत्येन्द्राणां महौजसाम्।

गतिं काञ्चन पश्यन्तो गावः शीतार्दिता इव ॥१८२॥

परस्परं व्यलीयन्त पृष्ठेषु व्यस्त्रपाणयः । स्वेषु बाधे व्यलीयन्त गजेषु तुरगेषु च॥
रथेषु त्वमरास्त्रस्तास्तत्र तत्र निलिल्यिरे । अपरे कुञ्चितैर्गात्रैः स्वहस्तपिहिताननाः
इतश्चेतश्च सम्भ्रान्ता बभ्रमुर्वै दिशोदश । एवं विधेतु संग्रामे तु मुले देवसंक्षये ॥१८५
दृश्यन्ते पतिता भूमौ शस्त्रभिन्नाङ्गसन्धयः । विभुजाभिन्नमूर्धानस्तथाच्छिन्नोरुजानवः
विपर्य्यस्तरथाः सङ्गा निष्पिष्टध्वजपंक्तयः । निभिन्नाङ्गैस्तुरङ्गैस्तु गजैश्चाचलसन्निभैः
श्रुतरक्तह्रदैर्भूमिर्विकृताऽविकृता बभौ । एवमाजौ बली दैत्यः कालनेमिर्महासुरः ॥१८८॥
जघ्ने मुहूर्तमात्रेण गन्धर्वाणां दशायुतम् । यक्षाणां पञ्चलक्षाणि रक्षसामयुतानि षट्॥

त्रीणि लक्षाणि जघ्ने स किन्नराणां तरस्विनाम् ।
जघ्ने पिशाचमुख्यानां सप्तलक्षाणि निर्भयः ॥१९०॥
इतरेषामसंख्याताः सुरजातिनिकायिनाम् ।
जघ्ने स कोटीः संक्रुद्धश्चित्रास्त्रैरस्त्रकोविदः ॥१९१ ॥

एवं परिभवे भीमे तदा त्वमरसङ्क्षये । संक्रुद्धावश्विनौ चित्रास्त्रकवचोज्वलौ॥१९२॥
जघ्नतुः समरे दैत्यं कृतान्तानलसन्निभम् । तमासाद्य रणे घोरमेकैकः षष्टिभिःशरैः
जघ्ने मर्मसु तीक्ष्णाग्रैरसुरम्भीमदर्शनम् । ताभ्यां बाणप्रहारैः स किञ्चिदायस्तचेतनः ॥
जग्राह चक्रमष्टारन्तैलधौतं रणान्तकम् । तेन चक्रेण सोऽश्विभ्याश्चिच्छेद रथकूवरम्
जग्राहाथ धनुर्दैत्यःशरांश्चाशीविषोपमान् । ववर्ष भिषजोर्मूर्द्धिघनसंच्छाद्याकाशगोचरम्
तावप्यस्त्रैश्चिच्छिदतुःशितैस्तैर्दैत्यसायकान् । तच्चकर्मतयोर्दृष्ट्वाविस्मितःकोपमाविशत्
महता स तु कोपेन सर्वायोमयसादनम् । जग्राह मुद्गरम्भीमं कालदण्डविभीषणम् ॥
स ततो भ्राम्य वेगेन चिक्षेपाश्विरथं प्रति । तन्तु मुद्गरमायान्तमालोक्याम्बरगोचरौ ।

त्यक्त्वा रथौ तु तौ वेगादाप्लुतौ तरसाश्विनौ ।
तौ रथौ स तु निष्पिष्य मुद्गरोऽचलसन्निभः ॥ २०० ॥

दारयामास धरणीं हेमजालपरिष्कृतः । तस्य कर्माश्विनौ दृष्ट्वा भिषजौ चित्रयोधिनौ
वज्रास्त्रन्तु प्रकुर्वाते दानवेन्द्रनिवारणम् । ततो वज्रमयं वर्षम्प्रावर्तदतिदारुणम् ॥२०२

घोरवज्रप्रहारैस्तु दैत्येन्द्रः स परिष्कृतः। रथो ध्वजो धनुश्चक्रं कवचं चापि काञ्चनम्
क्षणेन तिलशो जातंसर्वसैन्यस्य पश्यतः। तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्मसोऽश्विभ्यांभीमविक्रमः
नारायणास्त्रं बलवान् मुमोच रणमूर्द्धनि। वज्रास्त्रं शमयामास दानवेन्द्रोऽस्त्रतेजसा

तस्मिन् प्रशान्ते वज्रास्त्रे कालनेमिरनन्तरम्।
जीवग्राहं ग्राहयितुमश्विनौ तु प्रचक्रमे ॥ २०६ ॥

तावश्विनौ रणाद्गीतौ सहस्राक्षरथं प्रति। प्रयातौ वेपमानौ तु यदा शस्त्रविवर्जितौ ॥
तयोरनुगतो दैत्यः कालनेमिर्महाबलः। प्राप्येन्द्रस्य रथं क्रूरो दैत्यानीकपदानुगः ॥
तं दृष्ट्वा सर्वभूतानि चित्रेसुर्विह्वलानि तु। दृष्ट्वा दैत्यस्य तत्क्रौर्यं सर्वभूतानि मेनिरे ॥
पराजयं महेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयावहम्। चेलुःशिखरिणो मुख्याः पेतुरुल्का नभस्तलात्
जगर्जुर्जलदा दिक्षु क्षुद्भूताश्च महार्णवाः। तां भूतविकृतिं दृष्ट्वा भगवान् गरुड़ध्वजः ॥
व्यबुध्यता हि पर्यङ्के योगनिद्रां विहाय तु। लक्ष्मीकरयुगाजस्रलालिताङ्घ्रिसरोरुहः ॥
शरदम्बरनीलाब्जकान्तदेहच्छविर्विभुः। कौस्तुभोद्भासितोरस्को कान्तकेयूरभास्करः।
विमृश्य सुरसंक्षोभं वैनतेयं समाह्वयत्। आहूतेऽवस्थिते तस्मिन्नागावस्थितवर्ष्मणि ॥

दिव्यनानास्त्रतीक्ष्णार्चिरारुह्यागात् सुरान् स्वयम्।
तत्रापश्यत देवेन्द्रमभिद्रुतमभिप्लुतैः ॥ २१५ ॥

दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैः पौरुषोत्कटैः। प्रयात्वा पुरुषैर्घोरैरभाग्यैर्धनशालिभिः ॥
परित्राणायाशुकृतं सुक्षेत्रे कर्म्म निर्मलम्। अथापश्यन्त दैतेयावियति ज्योतिमण्डलम्
स्फुरन्तमुदयाद्रिस्थं सूर्यमुष्णत्विषा इव। प्रभावं ज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्यतेजसः
गरुत्मन्तमपश्यन्त कल्पान्तानलसन्निभम्। तमास्थितश्च मेघौघद्युतिमक्षयमच्युतम् ॥
तमालोक्यासुरेन्द्रास्तु हर्षसम्पूर्णमानसाः। अयंवैदेव! सर्वस्वञ्जितेऽस्मिन्निर्जिताःसुराः

अयं स दैत्यचक्राणां कृतान्तः केशवोऽरिहा।
एनमाश्रित्य लोकेषु यज्ञभागभुजोऽमराः ॥ २२१ ॥

इत्युक्त्वा दानवाः सर्वे परिवार्य समन्ततः। निजघ्नुर्विविधैरस्त्रैस्ते तमायान्तमाहवे ॥
कालनेमिप्रभृतयो दशदैत्या महारथाः। षष्ट्या विव्याध बाणानां कालनेमिर्जनार्दनम्

निमिः शतेन बाणानां मथनोऽशीतिभिःशरैः। जम्भकश्चैव सप्तत्या शुम्भो दशभिरेव च॥
शेषा दैत्येश्वराः सर्वे विष्णुमेकैकशः शरैः। दशभिश्चैव यत्तास्ते जघ्नुः सगरुडं रणे॥
तेषाममृष्य तत् कर्म्म विष्णुर्दानवसूदनः। एकैकं दानवं जघ्ने षड्भिः षड्भिरजिह्मगैः
आकर्णकृष्टैर्भूयश्च कालनेमिस्त्रिभिःशरैः। विष्णुं विव्याध हृदये क्रोधाद्रक्तविलोचनः
तस्याशोभन्त ते बाणाहृदये तप्तकाञ्चनाः। मयूखानीव दीप्तानि कौस्तुभस्यस्फुटत्विषः
तैर्बाणैः किञ्चिदायस्तो हरिर्जग्राह मुद्गरम्। सततं भ्राम्य वेगेन दानवाय व्यसर्जयत्
दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं वियत्येव शितैः शरैः। चिच्छेद तिलशःक्रुद्धो दर्शयन् पाणिलाघवम्
ततो विष्णुः प्रकुपितः प्रासञ्जग्राह भैरवम्। तेन दैत्यस्य हृदयं ताड़यामास गाढ़तः॥
क्षणेन लब्धसंज्ञस्तु कालनेमिर्महासुरः। शक्तिञ्जग्राह तीक्ष्णाग्रां हेमघण्टाट्टहासिनीम्

तया वामभुजं विष्णोर्बिभेद दितिनन्दनः।
भिन्नः शक्त्या भुजस्तस्य स्रुतशोणित आबभौ ॥ २३३ ॥

पद्मरागमयेनेव केयूरेण विभूषितः। ततो विष्णुः प्रकुपितो जग्राह विपुलन्धनुः ॥२३४॥
सप्तदशचनाराचांस्तीक्ष्णान् मर्मविभेदिनः। दैत्यस्य हृदयं षड्भिर्विव्याधचत्रिभिःशरैः
चतुर्भिः सारथिञ्चास्यध्वजञ्चैकेनपत्रिणा। द्वाभ्यांज्याधनुषीचापि भुजंसव्यञ्चपत्रिणा
स विद्धो हृदये गाढ़ं दैत्यो हरिशिलीमुखैः। स्रुतरक्तारुणप्रांशुः पीड़ाकुलितमानसः॥
चकम्पे मारुतेनेव नोदितः किंशुकद्रुमः। तमाकम्पितमालक्ष्य गदां जग्राह केशवः॥
ताञ्च वेगेन चिक्षेप कालनेमिरथं प्रति। सा पपात शिरस्युग्रा विपुला कालनेमिनः॥
सञ्चूर्णितोत्तमाङ्गस्तु निष्पिष्टमुकुटोऽसुरः। स्रुतरक्तौघरन्ध्रस्तु स्रुतधातुरिवाचलः॥
प्रापतत्स्वे रथेभग्ने विसंज्ञः शिष्टजीवितः। पतितस्य रथोपस्थे दानवस्याच्युतोऽरिहा
स्मितपूर्वमुवाचेदं वाक्यं चक्रायुधःप्रभुः। गच्छासुर! विमुक्तोऽसि साम्प्रतंजीवनिर्भयः
ततः स्वल्पेन कालेन अहमेव तवान्तकः। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सारथिः कालनेमिनः

अपवाह्य रथं दूरमनयत् कालनेमिनः ॥ २४३ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवासुरसंग्रामे कालनेमिपराजयो नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः। १४९

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धे ग्रसनवधवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

तं दृष्ट्वा दानवाः क्रुद्धाश्चेरुः स्वैस्स्वैर्बलैर्वृताः । सरघा इव माक्षीकहरणे सर्वतो दिशम्
कृष्णचामरजालाढ्ये सुधाविरचिताङ्कुरे । चित्रपञ्चपताके तु प्रभिन्नकरटामुखे ॥ २ ॥
पर्वताभे गजे भीमे मदस्राविणि दुर्द्धरे । आरुह्याजौ निमिर्दैत्यो हरिं प्रत्युद्ययौ वली ॥
तस्यासन् दानवा रौद्रा गजस्य पदरक्षिणः । सप्तविंशतिसाहस्राः किरीटकवचोज्वलाः
अश्वारूढश्च मथनो जम्भकश्चोष्ट्रवाहनः । शुम्भोऽपि विपुलं मेषं समारुह्याव्रजद्रणम् ॥
अपरे दानवेन्द्रास्तु यत्तानानास्त्रपाणयः । आजघ्नुः समरे क्रुद्धा विष्णुमक्लिष्टकारिणम्
परिघेण निमिर्दैत्यो मथनो मुद्गरेण तु । शुम्भः शूलेन तीक्ष्णेन प्रासेन ग्रसनस्तथा ॥

चक्रेण महिषः क्रुद्धो जम्भः शक्त्या महारणे ।
जघ्नुर्नारायणं सर्वे शेषास्तीक्ष्णैश्च मार्गणैः ॥ ८ ॥

तान्यस्त्राणि प्रयुक्तानि शरीरं विविशुर्हरेः । गुरूक्तानुपदिष्टान्वै सच्छिष्यस्य श्रुतानिव
असम्भ्रान्तोरणेविष्णुरथ जग्राह कार्मुकम् । शरांश्चाशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्मगान्
ततोऽभिसन्धय दैत्यांस्तानाकर्णाकृष्टकार्मुकः । अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो दैत्यानीकेतुपौरुषान्
निमिं विव्याध विंशत्या बाणानामग्निवर्चसाम् । मथनं दशभिर्बाणैः शुम्भं पञ्चभिरेवच

एकेन महिषं क्रुद्धो विव्याधोरसि पत्रिणा ।
जम्भं द्वादशभिस्तीक्ष्णैः सर्वांश्चैकैकशोऽष्टभिः ॥ १३ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा दानवाः क्रोधमूर्च्छिताः । नर्दमानाः प्रयत्नेन चक्रुरत्यद्भुतं रणम् ॥
चिच्छेदाथ धनुर्विष्णोर्निमिर्भल्लेन दानवः । सन्धयमानं शरं हस्ते चिच्छेद महिषासुरः
पीड़यामास गरुड़ं जम्भस्तीक्ष्णैस्तु सायकैः । भुजं तस्याहनद्गाढ़ं शुम्भोभूधरसन्निभः
छिन्ने धनुषि गोविन्दो गदां जग्राह भीषणाम् । तां प्रहिणोत्स वेगेन मथनायमहाहवे

तामप्राप्तां निमिर्बाणैश्चिच्छेद तिलशो रणे। तां नाशमागतां दृष्ट्वा हीनाग्रे प्रार्थनामिव।
जग्राह मुद्गरं घोरं दिव्यरत्नपरिष्कृतम्। तं मुमोचाथ वेगेन निमिमुद्दिश्य दानवम्॥
तमायान्तं वियत्येव त्रयो दैत्या न्यवारयन्। गदया जम्भदैत्यस्तु ग्रसनः पट्टिशेन तु
शक्त्या च महिषो दैत्यः स्वपक्षजयकाङ्क्षया। निराकृतं तमालोक्य दुर्जने प्रणयं यथा
जग्राह शक्तिमुग्राग्रामष्टघण्टोत्कटस्वनाम्। जम्भाय तां समुद्दिश्य प्राहिणोद्रणभीषणः

तामम्बरस्थां जग्राह गजो दानवनन्दनः।
गृहीतां तां समालोक्य शिक्षामिव विवेकिभिः॥ २३॥

दृढं भारसहं सारमन्यदादाय कार्मुकम्। रौद्रास्त्रमभिसन्धाय तस्मिन् बाणं मुमोच ह
ततोऽस्त्रतेजसा सर्वं व्याप्तं लोकं चराचरम्। ततो बाणमयं सर्वमाकाशं समदृश्यत।
भूर्दिशो विदिशश्चैव बाणजालमया बभुः। दृष्ट्वा तदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोऽसुरः
ब्राह्ममस्त्रञ्चचारासौ सर्वास्त्रं विनिवारणम्। तेन तत्प्रशमंयातं रौद्रास्त्रं लोकघस्मरम्
अस्त्रे प्रतिहते तस्मिन् विष्णुर्दानवसूदनः। कालदण्डास्त्रमकरोत् सर्वलोकभयङ्करम्।
सन्धीयमाने तस्मिंस्तु मारुतःपरुषोववौ। चकम्पे च मही देवी दैत्याभिन्नधियोऽभवन्
तदस्त्रमुग्रं दृष्ट्वा तु दानवा युद्धदुर्मदाः। चक्रुरस्त्राणि दिव्यानि नानारूपाणि संयुगे॥

नारायणास्त्रं ग्रसनो गृहीत्वा चक्रं निमिः स्वास्त्रवरं मुमोच।
एकैकमस्त्रञ्च चकार जम्भस्तत्कालदण्डास्त्रनिवारणाय॥३१॥
यावन्न सन्धानदशां प्रयान्ति दैत्येश्वराश्चास्त्रनिवारणाय।
तावत् क्षणेनैव जघान कोटीर्दैत्येश्वराणां सगजान् सहाश्वान्॥३२॥
अनन्तरं शान्तमभूत्तदस्त्रं दैत्यास्त्रयोगेन तु कालदण्डम्।
शान्तं तदालोक्य हरिः स्वशस्त्रं स्वविक्रमे मन्युपरीतमूर्तिः॥३३॥
जग्राह चक्रं तपनायुताभमुग्रारमात्मानमिव द्वितीयम्।
चिक्षेप सेनापतयेऽभिसन्ध्य कण्ठस्थलं वज्रकठोरमुग्रम्॥३४॥
चक्रं तदकाशगतं विलोक्य सर्वात्मना दैत्यवराः स्ववीर्य्यैः।
नाशक्नुवन् वारयितुं प्रचण्डं दैवं यथा कर्म्म मुधा प्रपन्नम्॥३५॥

तमप्रतर्क्यं जनयन्नजय्यं चक्रं पपात ग्रसनस्य कण्ठे ।
द्विधा तु कृत्वा ग्रसनस्य कण्ठं तद्रक्तधारारुणघोरनाभिः ।
जगाम भूयोऽपि जनार्दनस्य पाणिं प्रवृद्धानलतुल्यदीप्ति ॥३६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवासुरसंग्रामे ग्रसनवधोनाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५०

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

तस्मिन् विनिहते दैत्ये ग्रसने लोकनायके । निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणा सह दानवाः ॥
पट्टिशैर्मुशलैः पाशैर्गदाभिः कुशलैरपि । तीक्ष्णाननैश्च नाराचैश्चक्रैः शक्तिभिरेव च ॥२
तानस्त्रान् दानवैर्मुक्तान् चित्रयोधी जनार्दनः । एकैकं शतशश्चक्रे बाणैरग्निद्विजोपमैः
ततः क्षीणायुधप्राया दानवा भ्रान्तचेतसः । अस्त्राण्यादातुमभवन्न समर्था यदा रणे
तदा मृतैर्गजैरश्वैर्जनार्दनमयोधयन् । समन्तात् कोटिशो दैत्याःसर्वतः प्रत्ययोधयन्
बहु कृत्वा वपुर्विष्णुः किञ्चिच्छ्रान्तभुजोऽभवत् । उवाचचगरुत्मन्तं तस्मिन्सुतुमुलेरणे
गरुत्मन् ! कच्चिदश्रान्तस्त्वमस्मिन्नपि साम्प्रतम् ।
यद्यश्रान्तोऽसि तद्याहि मथनस्य रथम्प्रति ॥ ७ ॥
श्रान्तोऽस्यथ मुहूर्तन्त्वं रणादपसृतोभव । इत्युक्तो गरुडस्तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥
आससाद रणे दैत्यं मथनं घोरदर्शनम् । दैत्यस्त्वभिमुखं दृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम् ॥९॥
जघान भिन्दिपालेन शितबाणेन वक्षसि ।
तत् प्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन् महाहवे ॥ १० ॥
जघान पञ्चभिर्बाणैर्मार्जितैश्च शिलाशितैः । पुनर्दशभिराकृष्टैस्तत्रताड स्तनान्तरे ॥११॥
विद्धो मर्मसु दैत्येन्द्रो हरिबाणैरकम्पत । स मुहूर्तं समाश्वास्य जग्राह परिघन्तदा ॥

जघ्ने जनार्दने चापि परिघेणाग्निवर्चसा । विष्णुस्तेन प्रहारेण किञ्चिदाघूर्णितोऽभवत्
ततः क्रोधविवृत्ताक्षो गदाञ्जग्राह माधवः । मथनं सरथं रोषान्निष्पिपेषाथ रोषितः ॥
स पपाताथ दैत्येन्द्रः क्षयकालेऽचलो यथा । यस्मिन्निपतिते भूमौ दानवे वीर्यशालिनि
अवसादं ययुर्दैत्याः कर्दमे करिणो यथा । ततस्तेषु विपन्नेषु दानवेष्वतिमानिषु ॥१६
कोपरक्ततया नाम महिषो दानवेश्वरः । प्रत्युद्ययौ हरिं रौद्रः स्वबाहुबलमास्थितः ॥
तीक्ष्णधारेण शूलेन महिषो हरिमर्दयन् । शक्त्या च गरुडं वीरो महिषोऽभ्यहनद्धृदि ॥
ततो व्यावृत्तवदनं महाचलगुहानिभम् । यस्तु मैच्छद्रणे दैत्यः स गरुत्मन्तमच्युतम्

अथाच्युतोऽपि विज्ञाय दानवस्य चिकीर्षितम् ।
वदनं पूरयामास दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ २० ॥

महिषस्याथ ससृजे बाणौघं गरुडध्वजः । पिधाय वदनं दिव्यैर्दिव्यास्त्रपरिमन्त्रितैः ॥
स तैर्बाणैरभिहतो महिषोऽचलसन्निभः । परिवर्तितकायोऽधः पपात न ममार च ॥
महिषं पतितं दृष्ट्वा भूमौ प्रोवाच केशवः । महिषासुर ! मत्तस्त्वं वधन्नास्त्रैरिहार्हसि॥

योषिद्वध्यः पुरोक्तोऽसि साक्षात् कमलयोनिना
उत्तिष्ठ जीवितं रक्ष गच्छास्मात् सङ्गराद्द्रुतम् ॥ २४ ॥

तस्मिन् पराङ्मुखे दैत्ये महिषे शुम्भदानवः । सन्दष्टौष्ठपुटः कोपाद्भ्रुकुटीकुटिलाननः
निर्मथ्य पाणिना पाणिं धनुरादाय भैरवम् । सज्जश्चकार स धनुः शरांश्चाशीविषोपमान्

स चित्रयोधी दृढमुष्टिपातस्ततस्तु विष्णुं गरुडञ्च दैत्यः ।
बाणैर्ज्वलद्वह्निशिखानिकाशैः क्षिप्तैरसंख्यैः परिघातहीनैः ॥ २७ ॥
विष्णुश्च दैत्येन्द्रशराहतोऽपि भुशुण्डिमादाय कृतान्ततुल्याम् ।
तया भुशुण्ड्या च पिपेष मेषं शुम्भस्य पत्रं धरणीधराभम् ॥ २८ ॥
तस्मादवप्लुत्य हताच्च मेषाद्भूमौ पदातिः स तु दैत्यनाथः ।
ततो महीस्थस्य हरिः शरौघान् मुमोच कालानलतुल्यभासः ॥ २६ ॥
शरैस्त्रिभिस्तस्य भुजं बिभेद षड्भिश्च शीर्षं दशभिश्च केतुम् ।
विष्णुर्विकृष्टैः श्रवणावसानं दैत्यस्य विव्याध विकृत्तनेत्रः ॥ ३० ॥

स तेन विद्धो व्यथितो बभूव दैत्येश्वरो विस्रुतशोणितौघः ।
ततोऽस्य किञ्चिच्चलितस्य धैर्यादुवाच शङ्खाम्बुजशार्ङ्गपाणिः ॥ ३१ ॥
कुमारवध्योऽसि रणं विमुञ्च शुम्भासुर ! स्वल्पतरैरहोभिः ।
वध्यं न मत्तोऽर्हसि चेह मूढ ! वृथैव किं युद्धसमुत्सुकोऽसि ॥ ३२ ॥
शुम्भो वचो विष्णुमुखान्निशम्य निमिश्च निष्पेष्टुमियेष विष्णुम् ।
गदामथोद्यम्य निमिः प्रचण्डां जघान गाढां गरुडं शिरस्तः ॥ ३३ ॥
जम्भोऽपि विष्णुं परिघेण मूर्द्धिन प्ररुष्टरत्नौघविचित्रभासा ।
तौ दानवाभ्यां विषमैः प्रहारैर्निपेतुरुर्व्यां घनपावकाभौ ॥ ३४ ॥
तत्कर्म दृष्ट्वा दितिजास्तु सर्वे जगर्जुरुच्चैः कृतसिंहनादाः ।
धनूंषि चास्फोट्य खुराभिघातैर्व्यदारयन् भूमिमपि प्रचण्डाः ।
वासांसि चैवादुधुवुः परे तु दध्मुश्च शङ्खानकगोमुखौघान् ॥ ३५ ॥
अथ संज्ञामवाप्याशु गरुडोऽपि सकेशवः । पराङ्मुखो रणात्तस्मात् पलायतमहाजवः

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवासुरसंग्रामे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

तमालोक्य पलायन्तं विभ्रष्टध्वजकार्मुकम् । हरिं देवः सहस्राक्षो मेने भग्नं दुराहवे ॥१
दैत्यांश्च मुदितान् दृष्ट्वा कर्तव्यं नाध्यगच्छत ।
अथायान्निकटे विष्णोः सुरेशः पाकशासनः ॥ २ ॥
उवाच चैनं मधुरं प्रोत्साहपरिबृंहकम् । किमेभिः क्रीडसे देव ! दानवैर्दुष्टमानसैः ॥३
दुर्जनैर्लब्धरन्ध्रस्य पुरुषस्य कुतः क्रियाः । शक्तेनोपेक्षितो नीचो मन्यते बलमात्मनः ॥

तस्मान्न नीचं मतिमान् दुर्गहीनंहि सन्त्यजेत् । अथाग्रेसरसपत्न्या रथिनो जयमाप्नुयुः
कस्ते सखाभवच्चाग्रे हिरण्याक्षवधे विभो !। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वीर्यशाली मदोद्धतः॥
त्वां प्राप्यापश्यदसुरो विषमंस्मृतिविभ्रमम् । पूर्वेऽप्यतिबलायेच दैत्येन्द्राः सुरविद्विषः
विनाशमागताः प्राप्य शलभाइव पावकम् । युगे युगे च दैत्यानां त्वमेवान्तकरोहरे !॥
तथैवाद्येह मग्नानां भव विष्णो ! सुराश्रयः । एवमुक्तस्ततो विष्णु र्व्यवर्द्धत महाभुजः
ऋद्ध्या परमया युक्तः सर्वभूताश्रयोऽरिहा। अथोवाच सहस्राक्षं कालक्षममधोक्षजः॥

दैत्येन्द्राः स्वर्वधोपायैः शक्त्या हन्तुं हि नान्यतः ।
दुर्जयस्तारको दैत्यो मुक्त्वा सप्तदिनं शिशुम् ॥ ११ ॥
कश्चित् स्त्रीवध्यतां प्राप्तो वधेऽन्यस्य कुमारिका ।
जम्भस्तु वध्यतां प्राप्तो दानवः क्रूरविक्रमः ॥ १२ ॥

तस्माद्वीर्येण दिव्येन जहि जम्भं जगद्वरम् । अवध्यःसर्वभूतानां त्वां विना स तु दानवः
मया गुप्तो रणे जम्भं जगत्कण्टकमुद्धर । तद्वैकुण्ठवचः श्रुत्वा सहस्राक्षोऽमरारिहा॥

समादिशत् सुरान् सर्वान् सैन्यस्य रचनां प्रति ।
यत्सारं सर्वलोकेषु वीर्य्यस्य तपसोऽपि च ॥१५ ॥

तदेकादशरुद्रांस्तु चकाराग्रेसरान् हरिः । व्यालभोगाङ्गसन्नद्धा बलिनो नीलकन्धराः॥
चन्द्रलेखनचूडालामण्डितानुशिखण्डिनः । शूलज्वालीभिषङ्गाढ्या भुजमण्डलभैरवाः॥
पिङ्गोत्तुङ्गजटाजूटाः सिंहचर्मानुषङ्गिनः । कपालीशादयो रुद्रा विद्रावितमहासुराः ॥

कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः ।
अजेशः शासनः शास्ता शम्भुः खण्डो ध्रुवस्तथा ॥ १६ ॥

एते एकादशानन्तबला रुद्राः प्रभाविनः । पालयन्तो बलस्याग्रे दारयन्तश्च दानवान्॥

आप्यcraययन्तस्त्रिदशान् गर्जन्त इव चाम्बुदाः ।
हिमाचलाभे महति काञ्चनाम्बुरुहस्रजि ॥ २१ ॥

प्रचलच्चामरे हेमघण्टासङ्घातमण्डिते। ऐरावते चतुर्दन्ते मातङ्गेऽचलसंस्थिते ॥ २२॥

महामदजलस्रावे कामरूपे शतक्रतुः ।

तस्थौ हिमगिरेः शृङ्गे भानुमानिव दीप्तिमान् ॥ २३ ॥

ब्रह्यारक्षत् पदं सव्यं मारुतोऽमितविक्रमः । जुगोपापरमग्निस्तु ज्वालापूरितदिङ्मुखः

पृष्ठरक्षोऽभवद्विष्णुः ससैन्यस्य शतक्रतोः । आदित्या वसवो विश्वेमरुतश्चाश्विनावपि

गन्धर्वा राक्षसा यक्षाः सकिन्नरमहोरगाः । नानाविधायुधाश्चित्रा दधाना हेमभूषणम्

कोटिशः कोटिशः कृत्वा वृन्दं चिह्नोपलक्षितम् ।

विश्रावयन्तः स्वाङ्कीर्तिं वन्दिवृन्दपुरःसरा ।

चेरुर्दैत्यवधे हृष्टाः सहेन्द्राः सुरजातयः ॥ २७ ॥

शतक्रतोरमरनिकायपालिता पताकिनी गजशतवाजिनादिता ।

सितातपत्रध्वजपटकोटिमण्डिता बभूव सा दितिसुतशोकवर्धिनी ॥ २८ ॥

आयान्तीमवलोक्याथ सुरसेनाङ्गजासुरः । गजरूपी महाम्भोदसङ्घातो भाति भैरवः ॥

परश्वधायुधोदैत्यो दंशितोष्ठकसंपुटः । ममर्दचरणे देवांश्चिक्षेपान्यान् करेण तु ॥३०॥

परान् परशुना जघ्ने दैत्येन्द्रो रौद्रविक्रमः । तस्य पातयतः सेनां यक्षगन्धर्वकिन्नराः

मुमुचुः संहताः सर्वे चित्रशस्त्रास्त्रसंहतिम् ।

पाशान् परश्वधांश्चक्रान् भिन्दिपालान् समुद्गरान् ॥ ३२ ॥

कुन्तान् प्रसानसींस्तीक्ष्णान् मुद्गरांश्चापि दुःसहान् ।

तान् सर्वान् सोऽग्रसद्दैत्यः कवलानिव यूथपः ॥ ३३ ॥

कोपास्फालितदीर्घाग्रकरास्फोटेन पातयन् । विचचार रणे देवान् दुष्प्रेक्ष्यो गजदानवः

यस्मिन् यस्मिन्निपतति सुरवृन्दे गजासुरः ।

तस्मिन् तस्मिन् महाशब्दो हाहाकारकृतोऽभवत् ॥ ३५ ॥

अथ विद्रवमाणं तद्बलं प्रेक्ष्य समन्ततः । रुद्राः परस्परं प्रोचुरहङ्कारोत्थितार्चिषः ॥३६

भो ! भो ! गृह्णीत दैत्येन्द्रं मर्दतैनं हताश्रयम् ।

कर्षतैनं शितैः शूलैर्भञ्जतैनञ्च मर्म्मसु ॥ ३७ ॥

कपाली वाक्यमाकर्ण्य शूलं शितशिखामुखम् । सम्माज्य वामहस्तेन संरम्भविवृतेक्षणः

अधावद् भ्रुकुटीवक्त्रो दैत्येन्द्राभिमुखो रणे । दृढेन मुष्टिबन्धेन शूलं विष्टभ्य निर्मलम्

जघान कुम्भदेशे तु कपाली गजदानवम् । ततो दशापि ते रुद्रा निर्म्मलायोमयै रणे ॥
जघ्नुः शूलैश्च दैत्येन्द्रं शैलवर्ष्माणमाहवे । स्रुतशोणितरन्ध्रस्तु शितशूलमुखार्दितः ॥
बभौ कृष्णच्छविर्दैत्यः शरदीवामलं सरः । प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जसङ्घातः सर्वतोदिशम् ॥
भस्मशुभ्रतनुच्छायै रुद्रैर्हंसैरिवावृतः । उपस्थितार्तिर्दैत्योऽथ प्रचलत्कर्णपल्लवः ॥४३॥
शम्भुं बिभेद दशनैर्नाभिदेशे गजासुरः । दृष्ट्वा सक्तन्तु रुद्राभ्यां नवरुद्रास्ततोऽद्भुतम् ॥
ततक्षुर्विविधैः शस्त्रैः शरीरममरद्विषः । निर्भया बलिनो युद्धे रणभूमौ व्यवस्थिताः ॥
मृतं महिषमासाद्य वने गोमायवो यथा । कपालिनौ परित्यज्य गजश्चासुरपुङ्गवः ॥४५॥
वेगेन कुपितो दैत्यो नवरुद्रानुपाद्रवत् । ममर्द चरणाघातैर्दन्तैश्चापि करेण च ॥ ४६ ॥
स तैस्तुमुलयुद्धेन श्रममासादितो यदा । तदा कपाली जग्राह करन्तस्यामरद्विषः ॥४७
भ्रामयामास वेगेन ह्यतीव च गजासुरम् । दृष्ट्वाश्रमातुरं दैत्यं किञ्चित्स्फुरितजीवितम्

निरुत्साहं रणे तस्मिन् गतयुद्धोत्सवोद्यमम् ।
ततः पतत एवास्य चर्म चोत्कृत्य भैरवम् ॥ ४९ ॥

स्रवत्सर्वाङ्गरक्तौघं चकाराम्बरमात्मनः । दृष्ट्वा विनिहतं दैत्यं दानवेन्द्रा महाबलाः ॥
वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जग्मुर्निपेतुश्च सहस्रशः । दृष्ट्वा कपालिनो रूपं गजचर्माम्बरावृतम् ॥५१॥

दिक्षु भूमौ तमेवोग्रं रुद्रं दैत्या व्यलोकयन् ।
एवं विलुलिते तस्मिन् दानवेन्द्रे महाबले ॥ ५२ ॥

द्विपाधिरूढोदैत्येन्द्रो हतदुन्दुभिना ततः । कल्पान्ताम्बुधराभेन दुर्द्धरेणापि दानवः ॥
निमिरभ्यपतत्तूर्णं सुरसैन्यानि लोडयन् । यां यां निमिगजो याति दिशंतांतांसवाहनाः
सन्त्यज्य दुद्रुवुर्देवा भयार्तास्त्यक्तहेतवः । गन्धेन सुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्य हस्तिनः ॥
पलायितेषु सैन्येषु सुराणां पाकशासनः । तस्थौ दिक्पालकैः सार्द्धमष्टभिः केशवेन च

संप्राप्तो निमिमातङ्गो यावच्छक्रगजं प्रति ।
तावच्छक्रगजो यातो मुक्त्वा नादं स भैरवम् ॥ ५७ ॥

ध्रियमाणोऽपि यत्नेन न स्वकैरवतिष्ठति । पलायिते गजे तस्मिन्नारूढः पाकशासनः ॥
विपरीतमुखो युद्ध्यद्दानवेन्द्रबलं प्रति । शतक्रतुस्तु वज्रेण निमिं वक्षस्यताडयत् ॥

गदया दन्तिनश्चास्य गण्डदेशेऽहनद् दृढम् ।
तत्प्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः ॥ ६० ॥

ऐरावतं कटोदेशे मुद्गरेणाभ्यताडयत् । स हतो मुद्गरेणाथ शक्रकुञ्जर आहवे ॥ ६१॥
जगाम पश्चाच्चरणैर्धरणीं भूधराकृतिः । लाघवात् क्षिप्रमुत्थाय ततोऽमरमहागजः ॥६२
रणादपससर्पाशु भीषितो निमिहस्तिना । ततो वायुर्ववौ रूक्षो बहुशर्करपांसुलः ॥६३
सम्मुखो निमिमातङ्गो जवनाचलकम्पनः । स्रुतरक्तो बभौ शैलो घनचारुह्रदो यथा ॥
धनेशोऽपि गदां गुर्वीन्तस्य दानवहस्तिनः । चिक्षेप वेगाद्दैत्येन्द्रो निपपातास्य मूर्द्धनि
गजो गदानिपातेन स तेन परिमूर्च्छितः । दन्तैर्भित्वा धरां वेगात् पपाताचलसन्निभः
पतिते तु गजे तस्मिन् सिंहनादो महानभूत् । सर्वतः सुरसैन्यानां गजबृंहितबृंहितैः ॥

ह्रेषारवेण चाश्वानां गुणास्फोटैश्च धन्विनाम् ।
गजन्तं निहतं दृष्ट्वा निमिश्चापि पराङ्मुखः ॥ ६८ ॥

श्रुत्वा च सिंहनादश्च सुराणामतिकोपनः । जम्भो जज्वाल कोपेन पीताज्य इव पावकः
स सुरान्कोपरक्ताक्षोधनुष्यारोप्यसायकम् । तिष्ठतेत्यब्रवीत्तावत्सारथिंचाप्यचोदयत्
वेगेन चलतस्तस्य तद्रथस्याभवद्द्युतिः । यथादित्यसहस्रस्याभ्युदितस्योदयाचले ॥७१
पताकिना रथेनाजौ किङ्किणोजालमालिना । शशिशुभ्रातपत्रेण स तेन स्यन्दनेन तु ॥
घट्टयन् सुरसैन्यानां हृदयं समदृश्यत । तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्याहितसायकम् ॥७३
शतक्रतुरदीनात्मा दृढमाधत्त कार्मुकम् । बाणश्च तैलधौताग्रमर्द्धचन्द्रमजिह्मगम् ॥७४॥
तेनास्य सशरश्चापं रणे चिच्छेद वृत्रहा । क्षिप्रं सन्त्यज्यतच्चापं जम्भो दानवनन्दनः ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय वेगवद्भारसाधनम् । शरांश्चाशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्मगान्
शक्रं विव्याधदशभिर्जत्रुदेशे तु पत्रिभिः । हृदये च त्रिभिश्चापिद्वाभ्याञ्चस्कन्धयोर्द्वयोः
शक्रोऽपिदानवेन्द्राय बाणजालमपीदृशम् । अप्राप्तान् दानवेन्द्रस्तु शरान् शक्रभुजेरितान्
चिच्छेद दशधाकाशे शरैरग्निशिखोपमैः । ततस्तु शरजालेन देवेन्द्रो दानवेश्वरम् ॥
आच्छादयत यत्नेन वर्षास्विव घनैर्नभः । दैत्योऽपि बाणजालन्तद्व्यधमत्सायकैःशितैः
यथा वायुर्घनाटोपं परिवार्य दिशोमुखे । शक्रोऽथ क्रोधसंरम्भान्न विशेषयते यदा ॥

दानवेन्द्रं तदा चक्रे गन्धर्वास्त्रं महाद्भुतम्। तदुत्थतेजसा व्याप्तमभूद्गगनगोचरम्॥
गन्धर्वनगरैश्चापि नानाप्राकारतोरणैः। अश्नद्भिरद्भुताकारैरस्त्रवृष्टिः समन्ततः॥८३॥
अथास्त्रवृष्ट्या दैत्यानां हन्यमाना महाचमूः। जम्भं शरणमागच्छदप्रमेयपराक्रमम्॥

व्याकुलोऽपि स्वयं दैत्यः सहस्राक्षास्त्रपीडितः।
स्मरन् साधुसमाचारं भीतत्राणपरोऽभवत्॥८५॥

अथास्त्रं मौसलं नाम मुमोच दितिनन्दनः। ततो यो मुसलैः सर्वमभवत् पूरितं जगत्
एकप्रहारकरणैरप्रधृष्यैः समन्ततः। गन्धर्वनगरन्तेषु गन्धर्वास्त्रविनिर्मितान्॥८७॥
गान्धर्वमस्त्रं सन्धाय सुरसैन्येषु चापरम्। एकैकेन प्रहारेण गजानश्वान्महारथान्॥
रथाश्वान् सोऽहनत् क्षिप्रंशतशोऽथसहस्रशः। ततःसुराधिपस्त्वाष्ट्रमस्त्रञ्च समुदीरयन्
सन्धयमानेततस्त्वाष्ट्रे निश्चेरुःपावकार्चिषः। ततोयन्त्रमयान्दिव्यानायुधान्दुष्प्रधर्षिणः
तैर्यन्त्रैरभवद्द्वन्द्वमन्तरिक्षे वितानकम्। वितानकेन तेनाथ प्रथमं मौसले गते॥९१॥
शैलास्त्रं मुमुचे जम्भो यन्त्रसङ्घातताडनम्। व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततोवर्षमवर्तत॥९२

त्वाष्ट्रस्य निर्मितान्याशु यन्त्राणि तदनन्तरम्।
तेनोपलनिपातेन गतानि तिलशस्ततः॥९३॥
यन्त्राणि तिलशः कृत्वा शैलास्त्रं परिमूर्धसु।
निपपातातिवेगेनादारयत् पृथिवीं ततः॥९४॥

ततो वज्रास्त्रमकरोत् सहस्राक्षः पुरन्दरः। तदोपलमहावर्षं व्यशीर्यत समन्ततः॥९५
ततः प्रशान्ते शैलास्त्रे जम्भो भूधरसन्निभः। ऐषीकमस्त्रमकरोद्भीतोऽतिपराक्रमः॥
ऐषीकेनागमन्नाशं वज्रास्त्रं शक्रवल्लभम्। विजृम्भत्यथ चैषीके परमास्त्रेति दुर्धरे॥
जज्वलुर्देवसैन्यानि सस्यन्दनगजानि तु। दह्यमानेष्वनीकेषु तेजसा सुरसत्तमः॥९८
आग्नेयमस्त्रमकरोद्बलवान् पाकशासनः। तेनास्त्रेण ततस्त्वैन्द्रमग्रसत्तदनन्तरम्॥
तस्मिन् प्रतिहते चास्त्रेपावकास्त्रंव्यजृम्भत। जज्वालकायंजम्भस्यसरथश्च ससारथिम्
ततः प्रतिहतः सोऽथ दैत्येन्द्रः प्रतिभानवान्। वारुणास्त्रंमुमोचाथशमनंपावकार्चिषाम्
ततो जलधरैर्व्योमस्फुरद्विद्युल्लताकुलैः। गम्भीरमुरजध्वानैरापूरितमिवाम्बरम्॥१०२

करीन्द्रकरतुल्याभिर्जलधाराभिरम्बरम् । पतन्तीभिर्जगत् सर्वं क्षणेनापूरितं बभौ ॥
शान्तमाग्नेयमस्त्रं तत् प्रविलोक्य सुराधिपः । वायव्यमस्त्रमकरोन्मेघसङ्घातनाशनम् ॥
वायव्यास्त्रबलेनाथ निर्धूते मेघमण्डले । बभूव विमलं व्योमनीलोत्पलदलप्रभम् ॥

वायुना चातिघोरेण कम्पितास्ते तु दानवाः ।
न शेकुस्तत्र ते स्थातुं रणेऽतिबलिनोऽपि ये ॥ १०६ ॥

तदा जम्भोऽभवच्छैलो दशयोजनविस्तृतः । मारुतप्रतिघातार्थं दानवानां भयापहः ॥
मुक्तनानायुधोदग्रतेजोऽभिज्वलितद्रुमः । ततः प्रशमिते वायौ दैत्येन्द्रे पर्वताकृतौ ॥
महाशनीं वज्रमयीं मुमोचाशु शतक्रतुः । तयाशन्या पतितया दैत्यस्याचलरूपिणः ॥
कन्दराणि व्यशीर्यन्त समन्तान्निर्झराणि तु । ततः सा दानवेन्द्रस्य शैलमाया न्यवर्तत
निवृत्तशैलमायोऽथ दानवेन्द्रो महोत्कटः । बभूव कुञ्जरो भीमो महाशैलसमाकृतिः ॥
स ममर्द सुरानीकं दन्तैश्चाप्यहनत् सुरान् । बभञ्ज पृष्ठतः कांश्चित्करेणावेष्ट्य दानवः ॥
ततः क्षपयतस्तस्य सुरसैन्यानि वृत्रहा । अस्त्रं त्रैलोक्यदुर्धर्षं नारसिंहं मुमोच ह ॥
ततः सिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेजसः । कृष्णदंष्ट्राट्टहासानि क्रकचाभनखानि च ॥
तैर्विपादितगात्रोऽसौ गजमायां व्यपोथयत् । ततश्चासौ विषो घोरोऽभवत्फणशताकुलः
विषनिश्वासनिर्दग्धं सुरसैन्यं महारथः । ततोऽस्त्रं गारुडं चक्रे शक्रश्चारुभुजस्तदा ॥
ततो गरुत्मतस्तस्मात् सहस्राणि विनिर्ययुः । तैर्गरुत्मभिरासाद्य जम्भं भुजगरूपिणम्

कृतन्तु खण्डशो दैत्यं सास्यमाया व्यनश्यत ।
प्रनष्टायान्तु मायायां ततो जम्भो महासुरः ॥ ११८ ॥

चकार रूपमतुलं चन्द्रादित्यपथानुगम् । विवृत्तवदनो ग्रस्तुमियेष सुरपुङ्गवान् ॥ ११९ ॥
ततोऽस्य विविशुर्वक्त्रं समहारथकुञ्जराः । सुरसेना विशत् भीमं पातालोत्तानतालुकम्
सैन्येषु ग्रस्यमानेषु दानवेन बलीयसा । शक्रो दैन्यं समापन्नः श्रान्तबाहुः सवाहनः ॥
कर्तव्यतां नाध्यगच्छत् प्रोवाचेदं जनार्दनम् । किमनन्तरमत्रास्ति कर्तव्यस्यावशेषितम्
यदाश्रित्य घटामोऽस्य दानवस्य युयुत्सवः । ततो हरिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः ॥

न साम्प्रतं रणस्त्याज्यस्त्वया कातरभैरवः ।

वर्द्धस्वाशु महामायां पुरन्दर ! रिपुस्प्रति ॥ १२४ ॥

मयैष लक्षितोदैत्योऽधिष्ठितःप्राप्तपौरुषः । मा शक्र ! मोहमागच्छ क्षिप्रमस्त्रं स्मरप्रभो !

ततः शक्र प्रकुपितो दानवं प्रति देवराट् । नारायणास्त्रं प्रयतो मुमोचासुरवक्षसि ॥

एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो विवृतास्योऽग्रसत् क्षणात् ।

त्रीणि लक्षाणि गन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसान् ॥ १२७ ॥

ततो नारायणास्त्रं तत् पपातासुरवक्षसि । महास्त्रभिन्नहृदयः सुस्राव रुधिरञ्च सः ॥

रणागारमिवोद्गारं तत्याजासुरनन्दनः । तदस्त्रतेजसा तस्य रूपं दैत्यस्य नाशितम् ॥

तत एवान्तर्दधे दैत्यो वियत्यनुपलक्षितः । गगनस्थःसदैत्येन्द्रः शस्त्रासनमतीन्द्रियम्

मुमोच सुरसैन्यानां संहारे कारणस्परम् ।

प्रासान् परश्वधांश्चक्रान् बाणान् वज्रान् समुद्गरान् ॥ १३१ ॥

कुठारान् सह खड्गैश्च भिन्दिपालानयोगुडान् । ववर्ष दानवो रौद्रो ह्यवन्ध्यानक्षयानपि

तैरस्त्रैर्दानवैर्मुक्तैर्देवानीकेषु भीषणैः । बाहुभिर्द्धरणिः पूर्णा शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥

ऊरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैर्वाचलोपमैः । भग्नेषादण्डचक्राक्षै रथैः सारथिभिः सह ॥

दुःसञ्चाराभवत् पृथ्वी मांसशोणितकर्दमा । रुधिरौघह्रदावर्ता शवराशिशिलोच्चयैः ॥

कबन्धनृत्यसङ्कुले स्रवद्वसास्रकर्दमे । जगत्त्रयोपसंहृतौ समे समस्तदेहिनाम् ॥ १३६ ॥

शृगालगृध्रवायसाः परं प्रमोदमादधुः । क्वचिद्विकृष्टलोचनः शवस्य रौति वायसः ॥

विकृष्टपीवरान्त्रकाः प्रयान्ति जम्बुकाः क्वचित् ।

क्वचित् स्थितोऽतिभीषणः स्वतुण्डनिहितौरसः ॥ १३८ ॥

मृतस्य मांसमादाय श्वजातयश्च संस्थिताः ।

क्वचिद् वृको गजासृजम्पपौ निलीयतान्त्रतः ॥ १३९ ॥

क्वचित्तुरङ्गमण्डलीर्विकृष्यते श्वजातिभिः । क्वचित् पिशाचजातकैः प्रपीतशोणितासवैः

स्वकामिनीयुतैर्द्रुतं प्रमोदमत्तसम्भ्रमैः । ममैतदानयाननं खुरो यमस्तु मे प्रियः॥१४१॥

करोऽयमज्वमन्निभो (?) ममास्तु कर्णपूरकः । सरोषमीक्षते परावपां विना प्रियं तदा

परा प्रिया ह्यवापयत् धृतोष्णशोणितासवम् । विकृष्य शावचर्म तत्प्रवद्धसान्द्रपल्लवम्

चकार यक्षकामिनीतरुं कुठारपाटितम् ।
गजस्य दन्तमासृजं प्रगृह्य कुम्भसम्पुटम् ॥ १४४ ॥
विपाट्य मौक्तिकं परं प्रियाप्रसादमिच्छते ।
समांसशोणितासवं पपुश्च यक्षराक्षसाः ॥ १४५ ॥
मृताश्च केशवासितं रसं प्रगृह्य पाणिना । प्रियाविमुक्तजीवितं समानयामृगासवम् ॥
न पथ्यतां प्रयाति मे गतं श्मशानगोचरम् । नरस्य तज्जहात्यसौ प्रशस्य किन्नराननम्
सनाग एष नोभयं दधाति मुक्तजीवितः । तदानतस्य शक्यते मया तदेकयाननम् ॥
इति प्रियाय वल्लभा वदन्ति यक्षयोषितः । परे कपालपाणयः पिशाचयक्षराक्षसाः ॥
वदन्ति देहि मे मम ममातिभक्ष्यचारिणः । परेऽवतीर्य शोणितापगासु धौतमूर्तयः ॥
पितॄन् प्रतर्प्य देवताः समर्चयन्ति चामिषैः ।
गजोडुपे सुसंस्थितास्तरन्ति शोणितं ह्रदम् १५१ ॥
इति प्रगाढसङ्कटे सुरासुरे सुसङ्गरे ।
भयं समुज्भ्य दुर्जया भटाः स्फुटन्ति मानिनः ॥१५२ ॥
ततः शक्रो धनेशश्च वरुणः पवनोऽनलः ।
यमोऽपि निर्ऋतिश्चापि दिव्यास्त्राणि महाबलाः ॥ १५३ ॥
आकाशे मुमुचुः सर्वे दानवानभिसन्धय ते ।
अस्त्राणि व्यर्थतां जग्मुर्देवानां दानवान् प्रति ॥ १५४ ॥
संरम्भेणाप्ययुद्ध्यन्त संहतास्तुमुलेन च । गतिं न विविदुश्चापि श्रान्ता दैत्यस्य देवताः
दैत्यास्त्रभिन्नसर्वाङ्गा ह्यकिञ्चित्करताङ्गताः । परस्परं व्यलीयन्त गावः शीतार्दिता इव
तदवस्थान् हरिर्दृष्ट्वा देवान् शक्रमुवाच ह । ब्रह्मास्त्रं स्मर देवेन्द्र ! यस्यावद्ध्योन विद्यते
विष्णुना चोदितः शक्रः सस्मारास्त्रं महौजसम् ॥ १५७ ॥
संपूजितं नित्यमरातिनाशनं समाहितं बाणममित्रघातने ।
धनुष्यजय्ये विनियोज्य बुद्धिमानभूत्ततो मन्त्रसमाधिमानसः ॥१५८॥
स मन्त्रमुच्चार्य यथाक्रमशयो वधाय दैत्यस्य धियाभिसन्ध्य तु ।

विकृष्य कर्णान्तमकुण्ठदीधितिम् मुमोच वीक्ष्याम्बरमार्गमुन्मुखः ॥१५९॥
अथासुरः प्रेक्ष्य महास्त्रमाहितं विहाय मायामवनौ व्यतिष्ठत।
प्रवेपमानेन मुखेन शुष्यता बलेन गात्रेण च सम्भ्रमाकुलः ॥१६०॥
ततस्तु तस्यास्त्रवराभिमन्त्रितः शरोऽर्द्धचन्द्रप्रतिमो महारणे।
पुरन्दरस्यासनबन्धुताङ्गतो नवार्कबिम्बं वपुषा विडम्बयन् ॥१६१॥
किरीटकोटिस्फुटकान्तिसङ्कटं सुगन्धिनानाकुसुमाधिवासितम्।
प्रकीर्णधूमज्वलनाभमूर्द्धजम् पपात जम्भस्य शिरः सकुण्डलम् ॥१६२॥

तस्मिन् विनिहते जम्भे दानवेन्द्राःपराङ्मुखाः। ततस्ते भग्नसंकल्पाः प्रययुर्यत्रतारकः
तांस्तु त्रस्तान् समालोक्य श्रुत्वा रोषमगात्परम्। सजम्भदानवेन्द्रन्तु सुरैरणमुखेहतम्
सावलेपं ससंरम्भं सगर्वं सपराक्रमम्। साविष्कारमनाकारं तारको भावमाविशत्॥
स जैत्रं रथमास्थाय सहस्रेण गरुत्मताम्। स कोपाद्दानवेन्द्राणां सुरै रणमुखे गतः१६६
सर्वायुधपरिष्कारः सर्वास्त्रपरिरक्षितः। त्रैलोक्य ऋद्धिसंपन्नः सुविस्तृतमहाननः॥
रणायाभ्यपतत्तूर्णं सैन्येन महता वृतः। जम्भास्त्रक्षतसर्वाङ्गं त्यक्तैरावतदन्तिनम्॥
सज्जं मातलिना गुप्तं रथमिन्द्रस्य तेजसा। तप्तहेमपरिष्कारं महारत्नसमन्वितम् ॥१६९
चतुर्योजनविस्तीर्णं सिद्धसङ्घपरिष्कृतम्। गन्धर्वकिन्नरोद्गीतमप्सरोनृत्यसङ्कुलम् १७०
सर्वायुधमसम्बाधं विचित्ररचनोज्वलम्। तं रथं देवराजस्य परिवार्य समन्ततः॥१७१॥

दंशिता लोकपालास्तु तस्थुः सगरुडध्वजाः।
ततश्चचाल वसुधा ततो रूक्षो मरुद्ववौ ॥ १७२ ॥

ततोऽम्बुधय उद्भूतास्ततो नष्टा रविप्रभा। ततस्तमःसमुद्भूतं नातोऽदृश्यन्त तारकाः॥
ततो जज्वलुरस्त्राणि ततोऽकम्पत वाहिनी। एकतस्तारको दैत्यः सुरसङ्घास्तु चैकतः
लोकावसादमेकत्र जगत्पालनमेकतः। चराचराणि भूतानि सुरासुरविभेदतः।१७५॥
तद्द्विधाप्येकतां यातं ददृशुः प्रेक्षका इव। यद्वस्तु किञ्चिल्लोकेषु त्रिषु सत्तास्वरूपकम्

तत्त्वत्राद्दृश्यदखिलं खिलीभूतविभूतिकम् ॥ १७६ ॥

अस्त्राणि तेजांसि धनानि धैर्यं सेनाबलं वीर्य्यपराक्रमौ च।

सत्त्वौजसां तन्निकरं बभूव सुरासुराणां तपसो बलेन ॥ १७७ ॥

अथाभिमुखमायान्तं नवभिर्नतपर्वभिः । बाणैरनलकल्पाग्रैर्विभिदुस्तारकं हृदि ॥१७८॥

स तानचिन्त्य दैत्येन्द्रः सुरबाणान् गतान् हृदि ।

नवभिर्नवभिर्बाणैः सुरान् विव्याध दानवः ॥ १७९ ॥

जगद्धरणसम्भूतैः शल्यैरिव पुरःसरै । ततश्छिन्नं शरव्रातं संग्रामे मुमुचुः सुराः १८०

अनन्तरं च कान्तानामश्रुपातमिवानिशम् । तदप्राप्तं वियत्येव नाशयामास दानवः ॥

शरैर्यथा कुचरितैः प्रख्यातं परमागतम् । सुनिर्मलं क्रमायातं कुपुत्रः स्वं महाकुलम् ॥

ततो निवार्य तद्बाणजालं सुरभुजेरितम् । बाणैर्व्योम दिशः पृथ्वीं पूरयामास दानवः ॥

चिच्छेद पुङ्खदेशेषु स्वकैः स्थाने च लाघवात् ।

बाणजालैः सुतीक्ष्णाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ १८४ ॥

कर्णान्तकृष्टैर्विमलैः सुवर्णरजतोज्ज्वलैः । शास्त्रार्थैःसंशयप्राप्तानयथार्थान् वै विकल्पितैः

ततः शतेन बाणानां शक्रं विव्याध दानवः ।

नारायणं च सप्तत्या नवत्या च हुताशनम् ॥ १८६ ॥

दशभिर्मारुतं मूर्ध्नि यमं दशभिरेव च । धनदञ्चैव सप्तत्या वरुणञ्च तथाष्टभिः ॥१८७ ॥

विंशत्या निर्ऋतिं दैत्यः पुनश्चाष्टाभिरेव च । विव्याध पुनरेकैकं दशभिर्दशभिः शरैः ॥

तथा च मातलिं दैत्यो विव्याध त्रिभिराशुगैः ।

गरुडं दशभिश्चैव स विव्याध पतत्रिभिः ॥ १८९ ॥

पुनश्च दैत्यो देवानां तिलशो नतपर्वभिः ।

चकार वर्मजातानि चिच्छेद च धनूंषि तु ।

ततो विकवचा देवा विधानुष्काः शरैः कृताः ॥ १९० ॥

अथान्यानि चापानि तस्मिन् सरोषा रणे लोकपाला गृहीत्वा समन्तात् ।

शरैरक्षयैर्दानवेन्द्रं ततस्तु तदा दानवोऽमर्षसंरक्तनेत्रः ॥ १९१ ॥

शरानग्निकल्पान् ववर्षामराणाम् ततो बाणमादाय कल्पानलाभम् ।

जघानोरसि क्षिप्रमिन्द्रं सुबाहुम् महेन्द्रोऽप्यकम्पद्रथोपस्थ एव ॥ १९२ ॥

विलोक्यान्तरिक्षे सहस्रार्कबिम्बम् पुनर्दानवो विष्णुमुद्भूतवीर्य्यम् ।
शराभ्यां जघानांसमूले सलीलम् ततः केशवस्यापतच्छार्ङ्गमग्रे ॥१६३॥
ततस्तारकः प्रेतनाथं पृषत्कैर्वसुं तस्य सव्ये स्मरन् क्षुद्रभावम् ।
शरैरग्निकल्पैर्जलेशस्य कायम् रणे शोषयद् दुर्जयो दैत्यराजः ॥१६४॥
शरैरग्निकल्पैश्चकाराशु दैत्यस्तथा राक्षसान् भीतभीतान् दिशासु ।
पृषत्कैश्च रूक्षैर्विकारप्रयुक्तं चकारानिलं लीलयैवासुरेशः ॥ १६५ ॥
क्षणाल्लुब्धचित्ताः स्वयं विष्णुशक्रानलाद्याः सुसंहत्य तीक्ष्णैः पृषत्कैः ।
प्रचक्रुः प्रचण्डेन दैत्येन सार्द्धम् महासङ्गरं सङ्गरग्रासकल्पम् ॥१६६॥
अथानम्य चापं हरिस्तीक्ष्णबाणैर्हनत् सारथिं दैत्यराजस्य हृद्यम् ॥
ध्वजं धूमकेतुः किरीटं महेन्द्रो धनेशो धनुः काञ्चनानद्धपृष्ठम् ।
यमो बाहुदण्डं रथाङ्गानि वायुर्निशाचारिणामीश्वरस्यापि वर्म्म ॥१६७॥
दृष्ट्वा तद्युद्धममरैरकृत्रिमपराक्रमम् । दैत्यनाथः कृतं संख्ये स्वबाहुयुगबान्धवः ॥१६८॥
मुमोच मुद्गरं भीमं सहस्राक्षाय सङ्गरे । दृष्ट्वा मुद्गरमायान्तमनिवार्यमथाम्बरे ॥१६६॥
रथादाप्लुत्य धरणीमगमत् पाकशासनः । मुद्गरोऽपि रथोपस्थे पपात परुषस्वनः ॥
स रथं चूर्णयामास न ममार च मातलिः ।
गृहीत्वा पट्टिशं दैत्यो जघानोरसि केशवम् ॥ २०१ ॥
स्कन्धे गरुत्मतः सोऽपि निषसाद विचेतनः । खड्गेन राक्षसेन्द्रश्च चकर्त्त नरवाहनम् ॥
यमश्च पातयामास भूमौ दैत्यो भुशुण्डिना । वह्निश्च भिन्दिपालेन ताडयामास मूर्द्धनि
वायुश्च दोर्भ्यामुत्क्षिप्य पातयामास भूतले । जलेशश्च धनुष्कोट्याकुट्टयामासकोपनः
ततो देवनिकायानामेकैकं समरे ततः । जघानास्त्रैरसंख्येयैर्दैत्येन्द्रोऽमितविक्रमः ॥
लब्धसंज्ञः क्षणाद्विष्णुश्चक्रं जग्राह दुर्द्धरम् । दानवेन्द्रवसासिक्तं पिशिताशनकोन्मुखम्
मुमोच दानवेन्द्रस्य दृढं वक्षसि केशवः । पपात चक्रं दैत्यस्य हृदये भास्करद्युति २०७
व्यशीर्यत ततः काये नीलोत्पलमिवाश्मनि । ततो वज्रं महेन्द्रस्तु प्रमुमोचार्चितश्चिरम्
यस्मिन् जयाशा शक्रस्य दानवेन्द्ररणे ह्यभूत् ।

तारकस्य सुसंप्राप्य शरीरं शौर्यशालिनः ॥ २०६ ॥

व्यशीर्यत विकीर्णार्चिः शतधा खण्डताङ्गतम्। विनाशमगमन्मुक्तं वायुना सुरवक्षसि॥
ज्वलितं ज्वलनाभासमङ्कुशं कुलिशं यथा। विनाशमागतं दृष्ट्वा वायुश्चाङ्कुशमाहवे॥२११
रुष्टः शैलेन्द्रमुत्पाट्य पुष्पितद्रुमकन्दरम्। चिक्षेप दानवेन्द्राय पञ्चयोजनविस्तृतम् ॥
महीधरं तमायान्तं दैत्यः स्मितमुखस्तदा। जग्राह वामहस्तेन शैलं कन्दुकलीलया ॥
ततो दण्डं समुद्यम्य कृतान्तः क्रोधमूर्च्छितः। दैत्येन्द्रं मूर्ध्नि चिक्षेपभ्राम्य वेगेनदुर्जयः
सोऽसुरस्यापतन्मूर्ध्नि दैत्यस्तञ्च न बुद्धवान्। कल्पान्तदहनालोक्यामजय्यांज्वलनस्ततः
शक्तिं चिक्षेप दुर्द्धर्षां दानवेन्द्राय संयुगे। न वा शिरीषमालेव सास्य वक्षस्यराजत ॥

ततः खड्गं समाकृष्य कोशादाकाशनिर्मलम्।
भासितासितदिग्भागं लोकपालोपि निर्ऋतिः ॥ २१७ ॥

चिक्षेप दानवेन्द्राय तस्य मूर्ध्नि पपात च। पतितश्चागमत् खड्गः स शीघ्रं शतखण्डताम्
जलेशस्तूग्रदुर्द्धर्षं विषपावकभैरवम्। मुमोच पाशं दैत्यस्य भुजवन्धाभिलाषकः ॥
सदैत्यभुजमायाद्य सर्पः सद्यो व्यपद्यत। स्फुटितक्रूरविक्रूरदशनाहिमहाहनुः ॥ २२० ॥
ततोऽश्विनौ समरुतःससाध्याः समहोरगाः। यक्षराक्षसगन्धर्वा दिव्यनानास्त्रपाणयः
जघ्नुर्दैत्येश्वरं सर्वे संभूय सुमहाबलाः। न चास्त्राण्यस्य सज्जन्त गात्रे वज्राचलोपमे
ततो रथादवप्लुत्य तारको दानवाधिपः। जघान कोटिशो देवान् करपार्ष्णिभिरेव च
हतशेषानि सैन्यानि देवानां विप्रदुद्रुवुः। दिशोभीतानि सन्त्यज्य रणोपकरणानि तु
लोकपालांस्ततो दैत्यो ववन्धेन्द्रमुखान् रणे। सकेशवान् दृढैः पाशैः पशुमारः पशूनिव
स भूयो रथमास्थाय जगाम स्वकमालयम्। सिद्धगन्धर्वसंघुष्टविपुलाचलमस्तकम् ॥
स्तूयमानो दितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः। त्रैलोक्यलक्ष्मीस्तद्देशे प्राविशत् स्वपुरंयथा
निषसादासने पद्मरागरत्नविनिर्मिते। ततः किन्नरगन्धर्वनागनारीविनोदितैः ॥

क्षणं विनोद्यमानस्तु प्रचलन्मणिकुण्डलः ॥ २२८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवासुरसंग्रामे तारकजयलाभो नाम द्विपञ्चाशद-
धिकशततमोऽध्यायः।

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

तारकपीडितैर्देवैः ब्रह्मस्तुतिकरणम् ।

सूत उवाच ।

प्राद्रुरासीत् प्रतीहारः शुभ्रनीलांशुकाम्बरः ।
स जानुभ्यां महीं गत्वा पिहितास्यःस्वपाणिना ॥ १ ॥

उवाचानाविलं वाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम् । दैत्येन्द्रमर्कवृन्दानां विभ्रन्तं भास्वरं वपुः॥
कालनेमिः सुरान् बद्धांश्चादायद्वारि तिष्ठति । सविज्ञापयति स्थेयंक वन्दिभिरितिप्रभो!
तन्निशम्याब्रवीद् दैत्यः प्रतीहारस्य भाषितम् । यथेष्टं स्थीयतामेभिर्गृहं मे भुवनत्रयम्
केवलं पाशबन्धेन विमुक्तैरविलम्बितम् । एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा ॥ ५॥
जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवम् । निवेदितास्ते शक्राद्याः शिरोभिर्धरणिङ्गताः
तुष्टुवुः स्पष्टवर्णार्थैर्वचोभिः कमलासनम् ॥ ६ ॥

देवा ऊचुः ।

त्वमोङ्कारोऽस्यङ्कुराय प्रसूतो विश्वस्यात्मानन्तभेदस्य पूर्वम् ।
सम्भूतस्यानन्तरं सत्वमूर्त्ते ! संहारेच्छोस्ते नमो रुद्रमूर्त्ते ! ॥ ७ ॥
व्यक्तिं नीत्वा त्वं वपुः स्वं महिम्ना तस्मादण्डात् स्वाभिधानादचिन्त्यः ।
द्यावापृथिव्योरूदुर्ध्वखण्डावराभ्याम् ह्यण्डादस्मात्त्वं विभागङ्करोषि ॥ ८ ॥
व्यक्तं मेरौ यज्ञनायुस्तवाभूदेवं विद्मस्त्वत्प्रणीतश्चकास्ति ।
व्यक्तं देवा जन्मनः शाश्वतस्य द्यौस्ते मूर्द्धा लोचने चन्द्रसूर्यौ ॥९॥
व्यालाः केशाः श्रोत्ररन्ध्रा दिशस्ते पादौ भूमिर्नाभिरन्ध्रे समुद्राः ।
मायाकारः कारणस्त्वं प्रसिद्धो वेदैः शान्तो ज्योतिषा त्वं विमुक्तः ॥१०॥
वेदार्थेषु त्वां विवृण्वन्ति बुद्ध्वा हृत्पद्मान्तः सन्निविष्टं पुराणम् ।
त्वामात्मानं लब्धयोगा गृणन्ति साङ्ख्यैर्यास्ताः सप्त सूक्ष्माः प्रणीताः॥११

तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता तस्यां तस्याङ्गीयसे वै त्वमन्तम् ।
दृष्ट्वा मूर्तिं स्थूलसूक्ष्माञ्चकार देवैर्भावाः कारणैः कैश्चिदुक्ताः ॥१२॥
सम्भूतास्ते त्वत्त एवादिसर्गे भूयस्तां तां वासनान्तेऽभ्युपेयुः ।
त्वत्सङ्कल्पेनान्तमायान्निगूढः कालोमेघोध्वस्तसंख्याविकल्पः ॥१३॥
भावाभावव्यक्तिसंहारहेतुस्त्वं सोऽनन्तस्तस्य कर्त्तासि चात्मन् ।
येऽन्ये सूक्ष्माः सन्ति तेभ्योऽभिगीतः स्थूला भावाश्चावृतास्ते तेषाम् ॥१४॥
तेभ्यः स्थूलैस्तैः पुराणैः प्रतीतोभूतं भव्यं चैवमुद्भूतिभाजाम् ।
भावे भावे भावितं त्वा युनक्ति युक्तं युक्तं व्यक्तिभावान्निरस्य ।
इत्थं देवो भक्तिभाजां शरण्यस्त्राता गोप्ता नो भवानन्तमूर्त्तिः ॥१५॥

विरिञ्चिममराः स्तुत्वा ब्रह्माणमविकारिणम् । तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थसम्प्राप्तिप्रार्थनास्ततः
एवं स्तुतो विरिञ्चिस्तु प्रसादं परमं गतः । अमरान्वरदेनाह वामहस्तेन निर्दिशन् ।१७।

ब्रह्मोवाच ।

नारी याऽभर्तृकाऽकस्मात् तनुस्ते त्यक्तभूषणा ।
न राजते तथा शक्र ! म्लानवक्त्रशिरोरुहा ॥ १८ ॥

हुताशन ! विमुक्तोऽपि न धूमेन विराजसे । भस्मनेव प्रतिच्छन्नो दग्धदावश्चिरोषितः ॥
यमामयमयेनैव शरीरे त्वं विराजसे । दण्डस्यालम्बनेनैव ह्यक्रच्छुस्तु पदे पदे ॥२०॥
रजनीचरनाथोऽपि किं भीत इव भाषसे । राक्षसेन्द्रक्षताराते त्वमरातिक्षतो यथा ॥
तनुस्ते वरुणीच्छुष्का परीतस्येव वह्निना । विमुक्तरुधिरं पाशं फणिभिः प्रविलोकयन्

वायो ! भवान् विचेतस्कस्त्वं स्निग्धैरिव निर्जितः ।
किन्त्वं बिभेषि धनद ! संन्यस्तैव कुबेरताम् ॥ २३ ॥

रुद्रास्त्रिशूलिनः सन्तो वदध्वं बहुशूलताम् । भवन्तः केन तत् क्षिप्तं तेजस्तु भवतामपि
अकिञ्चित्करतां यातः करस्तेन विभासते । अलं नीलोत्पलाभेन चक्रेण मधुसूदन ! ॥
किं त्वयानुदरालोनभुवनं प्रविलोकनम् । क्रियते स्तिमिताक्षेण भवता विश्वतोमुख !॥
एवमुक्ताः सुरास्तेन ब्रह्मणा ब्रह्ममूर्तिना । वाचां प्रधानभूतत्वान्मरुतं तमचोदयन् ॥२७

अथ विष्णुमुखैर्देवैः श्वसनः प्रतिबोधितः। चतुर्मुखं तदा प्राह चराचर गुरुं विभुम्॥

न तु वेत्सि चराचरभूतगतं भवभावमतीव महानुच्छ्रितः प्रभवः।
पुनरर्थिवचोविस्तृतश्रवणोपमकौतुकभावकृतः॥ २९॥

त्वमनन्त करोषि जगद्भवताम् स चराचरगर्भविभिन्नगुणाम्।
अमरासुरमेतदशेषमपि त्वयि तुल्यमहोजनकोऽसि यतः।
पितुरस्ति तथापि मनोविकृतिः सगुणो विगुणो बलवानबलः॥३०॥

भवतो वरलाभनिवृत्तभयः कुलिशाङ्गसुतो दितिजोऽतिबलः।
सचराचरनिर्मथने किमिति कितवस्तु कृतोविहितो भवता॥ ३१॥

किल देव त्वया स्थितये जगताम् महदद्भुतचित्रविचित्रगुणाः।
अपि तुष्टिकृतः श्रुतकामफला विहिता द्विजनायक देवगणाः॥३२॥

अपि नाकभभूत्किलयज्ञभुजाम् भवतो विनियोगवशात्सततम्।
अपहृत्य विमानगणं स कृतो दितिजेन महामरुभूमिसमः॥३३॥

कृतवानसि सर्वगुणातिशयं यमशेषमहीधरराजतया।
सममिङ्गितभावविधिः स च गिरिर्गगनेन सदोच्छ्रयतां हि गतः॥३४॥

अधिवासविहारविधावुचितो दितिजेन पविक्षतशृङ्गतटः।
परिलुण्ठितरत्नगुहानिवहो बहुदैत्यसमाश्रयताङ्गमितः॥३५॥

सुरराज! स तस्य भयेन गतं व्यदधादशरीर इतोऽपि वृथा।
उपयोग्यतया विवृतं सुचिरं विमलद्युतिपूरितदिग्वदनम्॥३६॥

भवतैव विनिर्मितमादियुगे सुरहेतिसमूहमनुत्थमिदम्।
दितिजस्य शरीरमवाप्य गतं शतधा मतिभेदमिवाल्पमनाः॥३७॥

आसारधूलिध्वस्ताङ्गा द्वारस्थाः स्थ कदर्थिनः। लब्धप्रवेशाः कृच्छ्रेणवयं तस्यामरद्विषः
सभायाममरा देव! निकृष्टेऽप्युपवेशिताः। वेत्रहस्तैरजल्पन्तस्ततोऽपहसितास्तु तैः॥

महार्याः सिद्धसर्वार्था भवन्तः स्वल्पभाषिणः।
चाटुयुक्तमथो कर्म ह्यमत्र बहुभाषत॥४०॥

सभयं दैत्यसिंहस्य सशक्रस्य तु संस्थिताः।
वदतेति च दैत्यस्य प्रेष्यैर्विहसिता बहु ॥४१॥
ऋतवो मूर्तिमन्तस्तमुपासन्ते ह्यहर्निशम्।
कृतापराधसन्त्रासं न त्यजन्ति कदाचन ॥४२॥

तन्त्रीत्रयलयोपेतं सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः। सुरागमुपधानित्यं गीयते तस्य वेश्मसु ॥४३॥
हन्ताकृतोपकरणैर्मित्राणि गुरुलाघवैः। शरणागतसन्त्यागी त्यक्तसत्यपरिश्रयः ॥४४॥
इति निःशेषमथवा निःशेषं वै न शक्यते। तस्याविनयमाख्यातुं स्रष्टा तत्र परायणम् ॥
इत्युक्तः स्वात्मभूर्देवः सुरैर्दैत्यविचेष्टिते। सुरानुवाच भगवांस्ततः स्मितमुखाम्बुजः ॥

ब्रह्मोवाच।

अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः।
यस्य वध्यः स नाद्यापि जातस्त्रिभुवने पुमान् ॥४७॥

मया स वरदानेन छन्दयित्वा निवारितः। तपसः साम्प्रतंराजात्रैलोक्यदहनात्मकात् ॥
सच वव्रे वधं दैत्यः शिशुतः सप्तवासरात्। स सप्तदिवसो बालः शङ्कराद्यो भविष्यति
तारकस्य निहन्ता स भास्कराभोभविष्यति। साम्प्रतंचाप्यपत्नीकःशङ्करोभगवान् प्रभुः
यच्चाह मुक्तवान् यस्या ह्युत्तानकरता सदा। उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु ॥

हिमाचलस्य दुहिता सा तु देवी भविष्यति।
तस्याः सकाशाद्यः शर्वस्त्वरण्यां पावको यथा ॥५२॥

जनयिष्यति तं प्राप्य तारकोऽभिभविष्यति। मयाप्युपायः सकृतो यथैवंहि भविष्यति
शेषश्चाप्यस्य विभवो विनश्येत्तदनन्तरम्। स्तोककालं प्रतीक्षध्वन्निर्विशङ्केन चेतसा ॥
इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात् कमलजन्मना। जग्मुस्तंप्रणिपत्येशंयथायोगं दिवौकसः
ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः। निशां सस्मार भगवान् स्वतनोःपूर्वसम्भवाम्
ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम्। तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाचविभावरीम्

ब्रह्मोवाच।

विभावरि! महत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम्।

तत्कर्तव्यं त्वया देवि ! शृणु कार्य्यस्य निश्चयम् ॥५८॥

तारको नाम दैत्येन्द्रः सुरकेतुरनिर्जितः । तस्याभावाय भगवान् जनयिष्यति चेश्वरः सुतं स भविता तस्य तारकस्यान्तकारकः । शङ्करस्याभवत् पत्नी सती दक्षसुता तु या सा मृता कुपिता देवी कस्मिंश्चित्कारणान्तरे । भविताहिमशैलस्यदुहिता लोकभावनी विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम् । तपस्यन् हिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते॥ प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म कञ्चित्कालं निवत्स्यति । तयोः सुतस्तपसोर्भविता यो महाबलः स भविष्यति दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः । जातमात्रातुसादेवीस्वल्पसंज्ञाचभामिनी विरहोत्कण्ठिता गाढं हरसङ्गमलालसा । तयोः सुतस्तपसोः संयोगः स्याच्छुभानने॥ ततस्ताभ्यान्तु जनितःस्वल्पो वाक्कलहोऽभवत् । ततोऽपिसंशयोभूयस्तारकंप्रतिदृश्यते तयोःसंयुक्तयोस्तस्मात्सुरतासक्तिकारणे । विघ्नस्त्वयाविधातव्योयथाताभ्यांतथाशृणु गर्भस्थाने च तन्मातुः स्वेन रूपेण रञ्जय । ततो विहाय शर्वस्तां विश्रान्तो नर्मपूर्वकम् भर्त्सयिष्यति तां देवीं ततः सा कुपिता सती । प्रयास्यति तपश्चर्तुं तत्तस्मात्तपसेपुनः जनयिष्यति यं शर्वादमितद्युतिमण्डितम् । स भविष्यति हन्ता वै सुरारीणामसंशयम् त्वयापि दानवा देवि ! हन्तव्यालोकदुर्जयाः । यावच्च न सती देहसंक्रान्तगुणसञ्चया तत् सङ्गमेन तावत्त्वं दैत्यान् हन्तुं न शक्ष्यसे । एवं कृतेतपस्तप्त्वासृष्टिसंहारकारिणी समाप्तनियमा देवी यदा चोमा भविष्यति । तदा स्वमेव तद्रूपं शैलजा प्रतिपत्स्यते॥ तनुस्तवापि सहजा सैकानंशा भविष्यति । रूपांशेन तु संयुक्ता त्वमुमायां भविष्यसि

एकानंशेति लोकस्त्वां वरदे ! पूजयिष्यति ।
भेदैर्बहुविधाकारैः सर्वगा कामसाधिनी ॥७५॥
ओङ्कारवक्त्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः ।
आक्रान्तिरूर्जिताकारा राजभिश्च महाभुजैः ॥७६॥
त्वं भूरिति विशां माता शूद्रैः शैवीति पूजिता ।
क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्या दया नियमिनामिति ॥७७॥

त्वंमहोपायसन्दोहानीतिर्नयविसर्पिणाम् । परिच्छित्तिस्त्वमर्थानांत्वंमही प्राणिहृच्छया

त्वं मुक्तिःसर्वभूतानांत्वंगतिःसर्वदेहिनाम् । त्वञ्चकीर्तिमतांकीर्तिस्त्वंमूर्तिःसर्वदेहिनाम्

रतिस्त्वं रक्तचित्तानां प्रीतिस्त्वं हृष्टदर्शिनाम् ।
त्वं कान्तिः कृतभूषाणां त्वं शान्तिर्दुःखकर्म्मणाम् ॥८०॥
त्वं भ्रान्तिः सर्वबोधानां त्वं गतिः क्रतुयाजिनाम् ।
जलधीनां महावेला त्वञ्च लीला विलासिनाम् ॥८१॥
सम्भूतिस्त्वं पदार्थानां स्थितिस्त्वं लोकपालिनी ।
त्वं कालरात्रिर्निःशेषभुवनावलिनाशिनी ॥८२॥

प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वं विभावरी । इत्यनेकविधैर्देवि ! रूपैर्लोकेत्वमर्चिता ॥८३

ये त्वां स्तोष्यन्ति वरदे ! पूजयिष्यन्ति चापि ये ।
ते सर्वकामानाप्स्यन्ति नियता नात्र संशयः ॥८४॥

इत्युक्ता तु निशा देवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः । जगाम त्वरिता तूर्णं गृहंहिमगिरेःपरम्
तत्रासीनां महाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रयाम् । ददर्श मेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम्

किञ्चिच्छ्यामसुखोदग्रस्तनभारावनामिताम् ।
महौषधिगणाबद्धमन्त्रराजनिषेविताम् ॥८७॥

उद्वहत्कनकोन्नद्धजीवरक्षामहोरगाम् । मणिदीपगणज्योतिर्महालोकप्रकाशिते ॥ ८८ ॥
प्रकीर्णबहुसिद्धार्थे मनोजपरिवारके । शुचिन्यंशुकसच्छन्नभूशय्यास्तरणोज्वले ॥८९॥
धूपामोदमनोरम्ये सज्जसर्वोपयोगिके । ततः क्रमेण दिवसे गते दूरं विभावरी ॥९०॥
व्यजृम्भत सुखोदर्के ततो मेनामहागृहे । प्रसुप्तप्रायपुरुषे निद्राभूतोपचारिके ॥९१॥
स्फुटालोके शशभृति भ्रान्तिरात्रिविहङ्गमे । रजनीचरभूतानां सङ्घैरावृतचत्वरे ॥९२॥
गाढकण्ठग्रहालग्नसुभगेष्टजने ततः । किञ्चिदाकुलतां प्राप्ते मेनानेत्राम्बुजद्वये ॥ ९३ ॥
आविवेश मुखे रात्रिः सुचिरस्फुटसङ्गमा । जन्मदाया जगन्मातुः क्रमेण जठरान्तरे ॥
आविवेशान्तरं जन्म मन्यमाना क्षपा तु वै । अरञ्जयच्छविन्देव्या गुहारण्ये विभावरी॥
ततो जगत्पतिप्राणहेतुर्हिमगिरिप्रिया । ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे व्यसूयत गुहारणिम् ॥९६॥

तस्यान्तु जायमानायां जन्तवः स्थाणुजङ्गमाः ।

अभवन् सुखिनः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः ॥९७॥

नारकाणामपि तदा सुखं स्वर्गसमं महत् । अभवत् क्रूरसत्वानां चेतः शान्तंचदेहिनाम्
ज्योतिषामपि तेजस्त्वमभवत् सुरतोन्नता । वनाश्रिताश्चौषधयः स्वादुवन्तिफलानिच
गन्धवन्ति च माल्यानि विमलश्च नभोऽभवत् । मारुतश्चसुखस्पर्शोदिशाश्चसुमनोहराः
तेन चोद्भूतफलितपरिपाकगुणोज्ज्वलाः । अभवत् पृथिवी देवी शालिमालाकुलापिच

तपांसि दीर्घचीर्णानि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
तस्मिन् गतानि साफल्यं काले निर्मलचेतसाम् ॥१०२॥
विस्मृतानि च शस्त्राणि प्रादुर्भावं प्रपेदिरे ।
प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदा पुण्यतमोऽभवत् ॥१०३॥

अन्तरिक्षे सुराश्चासन् विमानेषु सहस्रशः । समहेन्द्रहरिब्रह्मवायुवह्निपुरोगमाः ॥१०४
पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिंस्तु हिमभूधरे । जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥१०५
मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तो महाबलाः । तस्मिन् महोत्सवे प्राप्ते दिव्यप्रभृतपाणयः॥
सरितः सागराश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः । हिमशैलोऽभवल्लोके तथा सर्वैश्चराचरैः॥
सेव्यश्चाप्यभिगम्यश्च सश्रेयांश्चाचलोत्तमः । अनुभूयोत्सवंदेवाजग्मुःस्वानालयान्मुदा
देवगन्धर्वनागेन्द्रशैलशीलावनीगुणैः । हिमशैलसुता देवी स्वयं पूर्विकया ततः ॥१०६
क्रमेण वृद्धिमानीता लक्ष्मीं वानलसैर्बुधैः । क्रमेण रूपसौभाग्यप्रबोधैर्भुवनत्रयम्॥
अजयद्भूषयच्चाति निःसाधारैर्नगात्मजा । एतस्मिन्नन्तरे शक्रो नारदं देवसम्मतम्॥

देवर्षिमथ सस्मार कार्य्यसाधनसत्वरम् ।
स्मृतिं शक्रस्य विज्ञाय जातान्तु भगवांस्तदा ॥ ११२ ॥
आजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम् ।
तं सुदृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात् ॥ ११३ ॥

यथार्हेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः । शक्रप्रणीतान्तां पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि॥

नारदः कुशलं देवमपृच्छत् पाकशासनम् ।
पृष्टे च कुशले शक्रः प्रोवाच वचनं प्रभुः ॥ ११५ ॥

इन्द्र उवाच ।

कुशलस्याङ्कुरे तावत् सम्भूते भुवनत्रये । तत्फलोद्भवसम्पत्तौ त्वं भवातन्द्रितो मुने !
वेत्सि चैतत् समस्तं त्वं तथापि परिचोदकः । निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थंसुहृज्जने
तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात् पिनाकिना । शीघ्रंतदुद्यमः सर्वैरस्मत्पक्षैर्विधीयताम्
अवगम्यार्थमखिलन्तत आमन्त्र्य नारदः । शक्रं जगाम भगवान् हिमशैलनिवेशनम् ॥
तत्र द्वारे स विप्रेन्द्रश्चित्रवेत्रलताकुले । वन्दितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरोमुनिः ॥
सह प्रविश्य भवनं भुवोभूषणतां्गतम् । निवेदितेस्वयं हैमे हिमशैलेन विस्तृते ॥१२१॥
महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः । यथार्हं चार्घ्यपाद्यञ्च शैलस्तस्मै न्यवेदयत् ॥
मुनिस्तु प्रतिजग्राह तमर्घं विधिवत्तदा । गृहीतार्घं मुनिवरमपृच्छच्छ्लक्ष्णया गिरा ॥
कुशलं तपसः शैलः शनैःस्फुल्लाननाम्बुजः । मुनिरप्यद्रिराजानमपृच्छत् कुशलं तदा ॥

नारद उवाच ।

अहोऽवतारिताः सर्वे सन्निवेशे महागिरे ! । पृथुत्वं मनसा तुल्यं कन्दराणां तथाचल !
गुरुत्वन्ते गुणौघानां स्थावरादतिरिच्यते । प्रसन्नता च तोयस्य मनसोऽप्यधिकाचते
न लक्षयामः शैलेन्द्र ! शिष्यतेकन्दरोदरात् । नचलक्ष्मीस्तथा स्वर्गेकुत्राधिकतयास्थिता
नानातपोभिर्मुनिभिः ज्वलनार्कसमप्रभैः । पावनैः पावितो नित्यं त्वत्कन्दरसमाश्रितैः
अवमत्य विमानानि स्वर्गवासविरागिणः । पितुर्गृह इवासन्ना देवगन्धर्वकिन्नराः ॥

अहो ! धन्योऽसि शैलेन्द्र ! यस्य ते कन्दरं हरः ।
अध्यास्ते लोकनाथोऽपि समाधानपरायणः ॥ १३० ॥

इत्युक्तवति देवर्षौ नारदे सादरङ्गिरा । हिमशैलस्य महिषी मेना मुनिदिदृक्षया ॥१३१॥
अनुयाता दुहित्रा तु स्वल्पालिपरिचारिका । लज्जाप्रणयनम्राङ्गी प्रविवेश निवेशनम् ॥
तत्र स्थितो मुनिवरः शैलेन सहितो वशी । दृष्ट्वा तु तेजसोराशिं मुनिं शैलप्रिया तदा
ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः । तां विलोक्य महाभागो महर्षिरमितद्युतिः॥१३४
आशीर्भिरमृतोद्गाररूपाभिस्तां व्यवर्धय । ततो विस्मितचित्ता तु हिमवद्गिरिपुत्रिका

उदैक्षन्नारदं देवी मुनिमद्भुतरूपिणम् ।

एहि वत्सेति चाप्युक्ता ऋषिणा स्निग्धया गिरा ॥१३५॥

कण्ठे गृहीत्वा पितरमुत्सङ्गेसमुपाविशत् । उवाच माता तां देवीमभिवन्दय पुत्रिके! भगवन्तंततो धन्यंपतिमाप्स्यसि सम्मतम् । इत्युक्त्वातु ततो मात्रा वस्त्रान्तपिहितानना किञ्चित् कम्पितमूर्द्धा तु वाक्यं नोवाच किञ्चन । ततःपुनरुवाचेदं वाक्यंमातासुतान्तदा वत्से! वन्दय देवर्षिं ततो दास्यामि ते शुभम् । रत्नक्रीड़नकं रम्यं स्थापितंयच्चिरंमया इत्युक्त्वा तु ततो वेगादुद्धृत्य चरणौ तदा । ववन्दे मूर्द्धिन्सन्धाय करपङ्कजकुड्मलम्

कृते तु वन्दने तस्या माता सखीमुखेन तु ।
चोदयामास शनकैस्तस्याः सौभाग्यशंसिनाम् ॥ १४१ ॥
शरीरलक्षणानान्तु विज्ञानाय तु कौतुकात् ।
स्त्रीस्वभावाद्यद्दुहितुश्चिन्तां हृदि समुद्वहन् ॥ १४२ ॥

ज्ञात्वा तदिङ्गितं शैलो महिष्या हृदयेन तु । अनुद्गीर्णोक्षतिर्मेने रम्यमेतदुपस्थितम्॥ चोदितः शैलमहिषी सख्या मुनिवरस्तदा । स्मिताननो महाभागो वाक्यंप्रोवाचनारदः न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे! लक्षणैश्च विवर्जिता । उत्तानहस्ता सततं चरणैर्व्यभिचारिभिः स्वच्छायया भविष्येयंकिमन्यद्बहुभाष्यते । श्रुत्वैतत्सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तधैर्योमहाबलः

नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकण्ठो महागिरिः ।

हिमवानुवाच ।

संसारस्यातिदोषस्य दुर्विज्ञेया गतिर्यतः ॥ १४७ ॥
सृष्ट्यां चावश्यभाविन्यां केनाप्यतिशयात्मना ।
कर्त्रा प्रणीता मर्य्यादा स्थिता संसारिणामियम् ॥ १४८ ॥

यो जायतेहियद्वीजोजनितुः सह्यसार्थकः । जनिताचापिजातस्य नकश्चिदितियत्स्फुटम् स्वकर्मणैव जायन्ते विविधा भूतजातयः । अण्डजो ह्यण्डजाज्जातः पुनर्जायेत मानवः मानुषाच्च सरीसृप्यां मनुष्यत्वेन जायते । तत्रापि जातौ श्रेष्ठायां धर्म्मस्योत्कर्षणेनतु अपुत्रजन्मिनः शेषाः प्राणिनः समवस्थिताः । मनुजास्तत्र जायन्ते यतो न गृहधर्मिणः क्रमेणाश्रमसंप्राप्तिर्ब्रह्मचारिव्रतादनु । तस्य कर्तुर्नियोगेन संसारो येन वर्द्धितः ॥१५३॥

संसारस्य कुतो वृद्धिः सर्वेस्युर्य्यदतिग्रहाः। अतः कर्त्रा तु शास्त्रेषु सुतलाभःप्रशंसितः
प्राणिनां मोहनार्थाय नरकत्राणसंश्रयात्। स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जन्तूनां नोपपद्यते ॥
स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपणा दैन्यभाषिणी। शास्त्रालोचनसामर्थ्यामुज्भितंतासुवेधसा
शास्त्रेषूक्तमसन्दिग्धं बहुवारं महाफलम्। दशपुत्रसमा कन्या्या नस्याच्छीलवर्जिता

वाक्यमेतत् फलभ्रष्टं पुंसि ग्लानिकरम्परम्।
कन्या हि कृपणाऽशोच्या पितुर्दुःखविवर्द्धिनी ॥ १५८ ॥

यापि स्यात् पूर्णसर्वाढ्या पतिपुत्रधनादिभिः। किंपुनर्दुर्भगा हीना पतिपुत्रधनादिभिः
त्वंचोक्तवान् सुतायामेशरीरेदोषसंग्रहम्। अहो! मुह्यामिशुष्यामिग्लामिसीदामिनारद!
अयुक्तमथ वक्तव्यमप्राप्यमपि साम्प्रतम्। अनुग्रहेण मे च्छिन्धि दुःखंकन्याश्रयं मुने!

परिच्छिन्नेऽप्यसन्दिग्धे मनः परिभवाश्रयम्।
तृष्णा मुष्णाति निष्णाता फललोभाश्रया शुभा ॥ १६२ ॥

स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम्। इहामुत्रसुखायोक्तं सत्पतिप्राप्तिसंज्ञितम्
दुर्लभः सत्पतिःस्त्रीणांविगुणोऽपि पतिःकिल। नप्राप्यते विनापुण्यैःपतिर्नार्याकदाचन
यतो निःसाधनोधर्म्मःपरिमाणोज्भिता रतिः। धनं जीवितपर्याप्तंप तौनार्याःप्रतिष्ठितम्
निर्धनो दुर्भगो मूर्खः सर्वलक्षणवर्जितः। दैवतं परमं नार्याः पतिरुक्तः सदैव हि ॥
त्वयाचोक्तंहिदेवर्षे! न जातोऽस्याः पतिः किल। एतद्दौर्भाग्यमतुलमसंख्यंगुरुदुःसहम्
चराचरे भूतसर्गे यद्यापि च नो मुने। न स जात इति ब्रूषे तेन मे व्याकुलं मनः ॥
मनुष्यदेवजातीनां शुभाशुभनिवेदकम्। लक्षणं हस्तपादादौ विहितैर्लक्षणैः किल ॥
सेयमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुङ्गव!। उत्तानहस्तता प्रोक्ता यावतामेव नित्यदा ॥

शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित् प्रयच्छताम्।
स्वच्छाययास्याश्चरणौ त्वयोक्तौ व्यभिचारिणौ ॥ १७१ ॥

तत्रापि श्रेयतां ह्याशा मुने! तु प्रतिभाति नः। शरीरलक्षणाश्चान्ये पृथक्फलनिवेदिनः
सौभाग्यधनपुत्रायुःपतिलाभानुशंसनम्। तैश्च सर्वैर्विहीनेयं त्वमात्थ मुनिपुङ्गव! ॥
त्वं मे सर्वं विजानासि सत्यवागसि नारद। मुह्यामि मुनिशार्दूल! हृदयंदीर्यतीव मे

इत्युक्त्वा विरतःशैलो महादुःखविचारणात् । श्रुत्वैतदखिलं तस्माच्छैलराजमुखाम्बुजात्

स्मितपूर्वमुवाचेदं नारदो देवचोदितः ।

नारद उवाच ।

हर्षस्थानेऽपि महति त्वया दुःखं निरूप्यते ॥ १७६ ॥

अपरिच्छिन्नवाक्यार्थे मोहंयासिमहागिरे ! । इमां शृणु गिरंमत्तो रहस्यपरिनिष्ठिताम्

समाहितोमहाशैल ! मयोक्तस्यविचारणे । न जातोऽस्याःपतिर्दिव्यायन्मयोक्तंमहाचल!

न स जातो महादेव भूतभव्यभवोद्भवः । शरण्यः शाश्वतः शास्ता शङ्करः परमेश्वरः॥

ब्रह्मविष्णिवन्द्रमुनयो जन्ममृत्युजरार्दिताः । तस्यैते परमेशस्य सर्वे क्रीड़नका गिरे!।

आस्ते ब्रह्मा तदिच्छातः संभूतो भुवनप्रभुः । विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः

मन्यसे मायया जातं विष्णुञ्चापि युगे युगे ।

आत्मनो न विनाशोऽस्ति स्थावरान्तेऽपि भूधर ! ॥ १८२ ॥

संसारे जायमानस्य म्रियमाणस्य देहिनः । नश्यते देह एवात्र नात्मनो नाश उच्यते।

ब्रह्मादिस्थावरान्तोऽयं संसारोयःप्रकीर्त्तितः । स जन्ममृत्युदुःखार्त्तो ह्यवशःपरिवर्त्तते

महादेवोऽचलः स्थाणुर्न जातो जनकोऽजरः ।

भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथो निरामयः ॥ १८५ ॥

यदुक्तञ्च मया देवीलक्षणैर्वर्जिता तव । शृणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यक्त्वेनविचारणम्

लक्षणं दैविको ह्यङ्कः शरीरावयवाश्रयः । सर्वायुर्द्धनसौभाग्यपरिमाणप्रकाशकः।

अनन्तस्याप्रमेयस्य सौभाग्यस्यास्य भूधर ! । नैवाङ्को लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते

अतोऽस्या लक्षणं गात्रे शैल! नास्ति महामते!। यथाहमुक्तवानस्याह्युत्तानकरतां सदा

उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु । सुरासुरमुनिव्रातवरदेयं भविष्यति ॥१९०॥

यथा प्रोक्तं तदा पादौ स्वच्छाया व्यभिचारिणौ ।

अस्याः शृणु ममात्रापि वाग्युक्तिं शैलसत्तम ! ॥ १९१ ॥

चरणौ पद्मशङ्काशावस्याःस्वच्छनखोज्वलौ । सुरासुराणांनमतांकिरीटमणिकान्तिभिः

विचित्रवर्णैर्भासन्तौ स्वच्छायाप्रतिबिम्बितौ । भार्याजगद्गुरोह्येषा वृषाङ्कस्यमहीधर!

जननी लोकधर्म्मस्य सम्भूता भूतभावनी।

शिवेयं पावनायैव त्वत्क्षेत्रे पावकद्युतिः ॥ १९४ ॥

तद्यथा शीघ्रमेवैषा योगं यायात् पिनाकिना।

तथा विधेयं विधिवत्त्वया शैलेन्द्रसत्तम! ॥ १९५ ॥

अत्यन्तं हि महत्कार्यं देवानां हिमभूधर!।

सूत उवाच।

एवं श्रुत्वा तु शैलेन्द्रो नारदात् सर्वमेव हि ॥ १९६ ॥

आत्मानं स पुनर्जातं मेने मेनापतिस्तदा। नमस्कृत्य वृषाङ्काय तदा देवाय धीमते ॥

उवाच सोऽपि संहृष्टो नारदन्तु हिमाचलः।

हिमवानुवाच।

दुस्तरान्नरकात् घोरादुद्धृतोऽस्मि त्वया मुने! ॥ १९८ ॥

पातालादहमुद्धृत्यसप्तलोकाधिपः कृतः। हिमाचलोऽस्मिविख्यातस्त्वया मुनिवराधुना

हिमाचले चलगुणां प्रापितोऽस्मि समुन्नतिम्। आनन्दविवसाहारि हृदयं मेऽधुना मुने!

नाव्यवस्यति कृत्यानां प्रविभागविचारणम्।

यदि वाचामधीशः स्यान्त्वद्गुणानां विचारणे ॥ २०१ ॥

भवद्विधानां नियतममोघं दर्शनं मुने!। तवास्मान्प्रति चापल्यं व्यक्तं मम महामुने!

भवद्भिरेव कृत्योऽहं निवासायात्मरूपिणम्। मुनीनां देवतानांच स्वयं कर्तापि कल्मषम्

तथापि वस्तुन्येकस्मिन्नाज्ञा मे सम्प्रदीयताम्। इत्युक्तवति शैलेन्द्रे स तदा हर्षनिर्भरे॥

तथाच नारदो वाक्यं कृतं सर्वमिति प्रभो!। सुरकार्ये य एवार्थस्तवापि सुमहत्तरः ॥

इत्युक्त्वा नारदः शीघ्रं जगाम त्रिदिवं प्रति। स गत्वा शक्रभवनममरं सन्ददर्श ह ॥

ततोऽभिरूपे स मुनिरुपविष्टो महासने। पृष्टः शक्रेण प्रोवाच हिमजासंश्रयांकथाम्॥

नारद उवाच।

समूह्य यत्तु कर्तव्यं तन्मया कृतमेव हि। किन्तु पञ्चशरस्यैव समयोऽयमुपस्थितः ॥

इत्युक्तो देवराजस्तु मुनिना कार्यदर्शिना। चूताङ्कुरास्त्रं सस्मार भगवान् पाकशासनः

संस्मृतस्तु तदा क्षिप्रं सहस्राक्षेण धीमता। उपतस्थे रतियुतः सविलासोझषध्वजः॥

प्रादुर्भूतन्तु तं दृष्ट्वा शक्रः प्रोवाच सादरम्।

शक्र उवाच।

उपदेशेन बहुना किन्त्वां प्रतिवदे प्रियम्॥ २११॥

मनोभवासि तेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम्। तद्यथार्थकमेवत्त्वं कुरु नाकसदां प्रियम्

शङ्करं योजय क्षिप्रं गिरिपुत्र्या मनोभव!। संयुतो मधुना चैव ऋतुराजेन दुर्जय! २१३

इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये।

काम उवाच।

अनया देवसामग्र्या मुनिदानवभीमया॥ २१४॥

दुःसाध्यः शङ्करो देवः किं न वेत्सि जगत्प्रभो!।

तस्य देवस्य वेत्थ त्वं कारणन्तु यदव्ययम्॥ २१५॥

प्रायः प्रसादः कोपोऽपि सर्वो हि महतां महान्।

सर्वोपभोगसारा हि सुन्दर्यः स्वर्गसम्भवाः॥ २१६॥

अध्याश्रितश्चयत्सौख्यं भवता नष्टचेष्टितम्। प्रमादादथ विभ्रश्येदीशम्प्रति विचिन्त्यताम्

प्रागेव चेह दृश्यन्ते भूतानां कार्यसम्भवाः।

विशेषं काङ्क्षतां शक्र! सामान्याद् भ्रंशनं फलम्॥ २१८॥

श्रुत्वैतद्वचनं शक्रस्तमुवाचामरैर्युतः।

शक्र उवाच।

वयं प्रमाणास्ते ह्यत्र रतिकान्त! न संशयः॥ २१९॥

सन्देशेन विना शक्तिरपकारस्य नेष्यते। कस्यचिच्च कचिद्दृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वतः॥

इत्युक्तः प्रययौ कामः सखायं मधुमाश्रितः। रतियुक्तो जगामाशु प्रस्थन्तु हिमभूभृतः॥

स तु तत्राकरोच्चिन्तां कार्यस्योपायपूर्विकाम्।

महार्था ये हि निष्कम्पा मनस्तेषां सुदुर्जयम्॥ २२२॥

तदादावेव संक्षोभ्य नियतं सुजयो भवेत्। संसिद्धिं प्राप्नुयुश्चैवपूर्वं संशोध्यमानसम्

कथञ्च विविधैर्भावैर्द्वेषानुगमनं विना। क्रोधः क्रूरतरासङ्गाद्द्रावणेर्ष्यां महासखीम् ॥
चापल्यमूर्ध्नि विध्वस्तधैर्याधारां महाबलाम्।
तामस्य विनियोक्ष्यामि मनसो विकृतिम्पराम् ॥ २२५ ॥
पिधाय धैर्यद्वाराणि सन्तोषमपकृष्य च। अवगन्तुं हि मां तत्र न कश्चिदतिपण्डितः
विकल्पमात्रावस्थाने वैरूप्यं मनसो भवेत्। पश्चान्मूलक्रियारम्भगम्भीरावर्तदुस्तरः ॥
हरिष्यामि हरस्याहं तपस्तस्य स्थिरात्मनः। इन्द्रियग्राममावृत्य रम्यसाधनसंविधिः ॥
चिन्तयित्वेतिमदनोभूतभर्तुस्तदाश्रमम्। जगाम जगतीसारं सरलद्रुमवेदिकम् ॥२२९॥
शान्तसत्वसमाकीर्णमचलप्राणसङ्कुलम्। नानापुष्पलताजालं गगनस्थगणेश्वरम् २३०
निर्व्यग्रवृषभाभ्युक्षनीलशाद्वलसानुकम्। तत्रापश्यत् त्रिनेत्रस्य रम्यं कश्चिद्द्वितीयकम् ॥
वीरकं लोकवीरेशमीशानसदृशद्युतिम्। यक्षकुङ्कुमकिञ्जल्कपुञ्जपिङ्गजटासटम् ॥ २३२॥
वेत्रपाणिनमव्यग्रमुग्रभोगीन्द्रभूषणम्। ततो निमीलितोन्निद्रपद्मपत्राभलोचनम् २३३
प्रेक्षमाणमृजुस्थानस्थितनासाग्रलोचनम्। श्रवस्तरलसिंहेन्द्रचर्मलम्बोत्तरीयकम्॥२३४
श्रवणाहिफलन्मुक्तनिःश्वासानलपिङ्गलम्।
प्रेङ्खत्कपालपर्य्यन्ततुम्बिलं विजटाचयम् ॥ २३५ ॥
कृतवासुकिपर्यङ्कनाभिमूलनिवेशितम्। ब्रह्माञ्जलिस्थपुच्छाग्रनिबद्धोरगभूषणम् ॥२३६॥
ददर्श शङ्करं कामः क्रमप्राप्तान्तिकं शनैः। ततो भ्रमरझङ्कारमालम्बिद्रुमसानुकम् ॥
प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण भवस्य मदनो मनः। शङ्करस्तमथाकर्ण्य मधुरं मदनाश्रयम् २३८
सस्मार दक्षदुहितान्दयितां रक्तमानसः। ततः सा तस्य शनकैस्तिरोभूयाति निर्मला ॥
समाधिभावना तस्थौ लक्ष्यप्रत्यक्षरूपिणी। ततस्तन्मयतां यातः प्रत्यूहपिहिताशयः ॥
वशित्वेन बुबोधेशो विकृतिं मदनात्मिकम्। ईषत्कोपसमाविष्टो धैर्यमालम्ब्य धूर्जटिः॥
निरासे मदनस्थित्या योगमायासमावृतः। स तया माययाविष्टो जज्वाल मदनस्ततः
इच्छाशरीरो दुर्जेयो रोषदोषमहाश्रयः। हृदयान्निर्गतः सोऽथ वासनाव्यसनात्मकः॥
बहिस्थलं समालम्ब्य ह्युपतस्थौ झषध्वजः। अनुयातोऽथ हृद्येन मित्रेण मधुना सह॥
सहकारतरौ दृष्ट्वा मृदुमारुतनिर्धुतम्। स्तबकं मदनोरम्यं हरवक्षसि सत्वरम् ॥२४५॥

मुमोच मोहनं नाम मार्गणं मकरध्वजः। शिवस्य हृदये शुद्धे नाशशाली महाशरः॥ पपात परुषप्रांशुः पुष्पबाणो विमोहनः। ततः करणसन्देहोविद्धस्तु हृदयेऽभवः॥२४७॥ बभूव भूधरौपम्यधैर्योऽपि मदनोन्मुखः। ततः प्रभुत्वाद्भावानां संक्षोभं समपद्यत॥ बाह्यं बहु समासाद्य प्रत्यूहप्रसवात्मकम्। ततः कोपानलोद्भूतघोरहुङ्कारभीषणे॥ बभूव वदने नेत्रं तृतीयमनलाकुलम्। रुद्रस्य रौद्रवपुषो जगत्संहारभैरवम्॥ २५०॥ तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत धूर्जटिः। तं नेत्रविस्फुलिङ्गेन क्रोशतान्नाकवासिनाम् गमितोभस्मसात्तूर्णं कन्दर्पः कामिदर्पकः। सतुतं भस्मसात् कृत्वा हरनेत्रोद्भवोऽनलः व्यजृम्भत जगद् दग्धुं ज्वालाहुङ्कारघस्मरः। ततो भवो जगद्धेतोर्व्यभजज्ज्ञातवेदसम्॥ सहकारे मधौ चन्द्रसुमनःसुपरेष्वपि। भृङ्गेषु कोकिलास्येषु विभागेन स्मरानलम् स 'बाह्यान्तरविद्धेन हरेण स्मरमार्गणः। रागस्नेहसमिद्धान्तर्धावन् तीव्रहुताशनः॥ विभक्तलोकसंक्षोभकरोदुर्वारजृम्भितः। संप्राप्य स्नेहसंपृक्तं कामिनां हृदयंकिल॥२५६

ज्वलत्यहर्निशं भीमो दुश्चिकित्स्यमुखात्मकः।
विलोक्य हरहुङ्कारज्वालाभस्मकृतं स्मरम्॥ २५७॥
विललाप रतिः क्रूरं बन्धुना मधुना सह।
ततो विलप्य बहुशो मधुना परिसान्त्विता॥ २५८॥

जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम्। भृङ्गानुयातां संगृह्य पुष्पितां सहकारजाम् लतां पवित्रकस्थाने पाणौ परभृतां सखीम्। निर्बध्य तु जटाजूटं कुटिलैरलकै रतिः॥ उद्धूल्य गात्रं शुभ्रेण हृद्येन स्मरभस्मना। जानुभ्यामवनिङ्गत्वा प्रोवाचेन्दुविभूषणम्

रतिरुवाच।

नमः शिवायास्तु निरामयाय नमः शिवायास्तु मनोमयाय।
नमः शिवायास्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय॥ २६२॥
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय।
नमोऽस्तु ते गूढमहाव्रताय नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय॥ २६३॥
नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय।

नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय नमोस्तु ते ज्ञानवरप्रदाय ॥ २६४ ॥
नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय नमो निसर्गामलभूषणाय।
नमोऽस्त्वमेयान्धकमर्दकाय नमः शरण्याय नमोऽगुणाय ॥ २६५ ॥
नमोऽस्तु ते भीमगणानुगाय नमोऽस्तु नानाभुवनादिकर्त्रे ।
नमोऽस्तु नानाजगतां विधात्रे नमोऽस्तु ते चित्रफलप्रयोक्त्रे ॥ २६६ ॥
सर्वावसाने ह्यविनाशनेत्रे नमोऽस्तु चित्राध्वरभागभोक्त्रे ।
नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे नमः सदा ते भवसङ्गहर्त्रे ॥ २६७ ॥
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यमसह्यकोपाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ।
शशाङ्कचिह्नाय सदैव तुभ्यममेयमानाय नमः स्तुताय ॥ २६८ ॥
वृषेन्द्रयानाय पुरान्तकाय नमः प्रसिद्धाय महौषधाय ।
नमोऽस्तु भक्त्याभिमतप्रदाय नमोऽस्तु सर्वार्तिहराय तुभ्यम् ॥ २६९ ॥
चराचराचारविचारवर्यमाचार्यमुत्प्रेक्षितभूतसर्गम् ।
त्वामिन्दुमौलिं शरणं प्रपन्ना प्रिया प्रमेयं महतां महेशम् ॥ २७० ॥
प्रयच्छ मे कामयशः समृद्धिं पुनः प्रभो ! जीवतु कामदेवः ।
प्रियं विना त्वां प्रियजीवितेषु त्वत्तोऽपरः को भुवनेष्विहास्ति ॥२७१॥
प्रभुः प्रियायाः प्रसवः प्रियाणां प्रणीतपर्यायपरापरार्थः ।
त्वमेवमेको भुवनस्य नाथो दयालुरुन्मूलितभक्तभीतिः ॥२७२॥
इत्थं स्तुतः शङ्कर ईड्य ईशो वृषाकपिर्मन्मथकान्तया तु ।
तुतोष दोषाकरखण्डधारी उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य ॥२७३॥

शङ्कर उवाच ।

भवितेति च कामोऽयं कालात् कान्तोऽचिरादपि ।
अनङ्ग इति लोकेषु स विख्यातिं गमिष्यति ॥ २७४ ॥

इत्युक्त्वा शिरसा वन्द्य गिरिशङ्कामवल्लभा । जगामोपवनं रम्यं रतिस्तु हिमभूभृतः ॥
रुरोद चापि बहुशो दीना रम्ये स्थले तु सा । मरणव्यवसायात्तु निवृत्ता सा हराज्ञया

अथ नारदवाक्येन चोदितो हिमभूधरः। कृताभरणसंस्कारां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥
स्वर्गपुष्पकृतापीडांशुभ्रचीनांशुकाम्बराम्। सखीभ्यां संयुतांशैलो गृहीत्वास्वसुतान्ततः
जगाम शुभयोगेन तदा संपूर्णमानसः। सकाननान्युपाक्रम्य वनान्युपवनानि च २७९
ददर्श रुदतीं नारीमप्रतर्क्यमहौजसम्। रूपेणासदृशीं लोके रम्येषु वनसानुषु ॥२८०॥
कौतुकेन परामृश्य तां दृष्ट्वा रुदतीं गिरिः। उपसर्प्य ततस्तस्या निकटे सोऽभ्यगच्छत

हिमवानुवाच।

कासि कस्यासि कल्याणि ! किमर्थञ्चापि रोदिषि।
नैतदल्पं महासत्वे कारणं लोकसुन्दरि ! ॥ २८२ ॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा उवाच मधुना सह। रुदती शोकजननं श्वसती दैन्यवर्द्धनम् ॥

रतिरुवाच।

कामस्य दयितां भार्यां रतिं मां विद्धि सुव्रत !।
गिरावस्मिन्महाभाग ! गिरिशस्तपसि स्थितः ॥ २८४ ॥

तेन प्रत्यूहदृष्टेनविस्फार्यालोक्य लोचनम्। दग्धोऽसौ झषकेतुस्तुममकान्तोऽतिवल्लभः
अहन्तु शरणं याता तं देवं भयविह्वला। स्तुतवत्यथ संस्तुत्या ततो मां गिरिशोऽब्रवीत्

तुष्टोऽहं कामदयिते ! कामोऽयन्ते भविष्यति।
त्वत्स्तुतिं चाप्यधीयानो नरो भक्त्या मदाश्रयः ॥ २८७ ॥
लप्स्यते काङ्क्षितं कामं निवर्त्य मरणादितः।
प्रतीक्ष्यती च तद्वाक्यमाशावेशादिभिर्ह्यहम् ॥ २८८ ॥
शरीरं परिरक्षिष्ये कञ्चित् कालं महाद्युते !।
इत्युक्तस्तु तदा रत्या शैलः सम्भ्रमभीषितः ॥ २८९ ॥

पाणावादायहिसुतां गन्तुमैच्छत्स्वकम्पुरम्। भाविनोऽवश्यभावित्वाद्भवित्रीभूतभाविनी

लज्जमाना सखीमुखैरुवाच पितरङ्गिरिम्।

शैलदुहितोवाच।

दुर्भाग्येन शरीरेण किं ममानेन कारणम् ॥ २९१ ॥

कथं च तादृशं प्राप्तं सुखं मे स पतिर्भवेत्। तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं हि तपस्यतः
दुर्भगत्वं वृथा लोको वहते सति साधने। जीविताद्दुर्भगाच्छ्रेयो मरणं ह्यतपस्यतः ॥
भविष्यामि न सन्देहो नियमैः शोषये तनुम्। तपसि भ्रष्टसन्देहेऽद्यमोऽर्थं जिगीषया ॥
साहन्तपः करिष्यामि यदहं प्राप्य दुर्लभा। इत्युक्तः शैलराजस्तु दुहित्रा स्नेहविक्लवः।
उवाच वाचा शैलेन्द्रो स्नेहगद्गदवर्णया।

हिमवानुवाच।

उमेति चपले ! पुत्रि ! नक्षमं तावकं वपुः ॥ २६६ ॥

ततः स चिन्तयाविष्टो दुहितां प्रशशंस च। ततोऽन्तरिक्षे दिव्या वागभूद्भुवनभूतले ॥
उमेति चपले ! पुत्रि ! त्वयोक्ता तनया ततः। उमेति नाम तेनास्या भुवनेषु भविष्यति
सिद्धिंचमूर्तिमत्येषासाधयिष्यति चिन्तिताम्। इतिश्रुत्वातुवचनमाकाशात्काशपाण्डुरः
अनुज्ञाय सुतां शैलो जगामाशु स्वमन्दिरम्।

सूत उवाच।

शैलजापि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः ॥३०० ॥

सखीभ्यामनुयातानु नियता नगराजजा। शृङ्गं हिमवतः पुण्यं नानाधातुविभूषितम् ॥
दिव्यपुष्पलताकीर्णं सिद्धगन्धर्वसेवितम्। नानामृगगणाकीर्णं भ्रमराभ्युष्टपादपम् ॥
दिव्यप्रस्रवणोपेतं दीर्घिकाभिरलङ्कृतम्। नानापक्षिगणाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥
जलजस्थलजैः पुष्पैः प्रोत्फुल्लैरुपशोभितम्। चित्रकन्दरसंस्थानं गुहागृहमनोहरम् ॥
विहङ्गसङ्घसंजुष्टं कल्पपादपसङ्कटम्। तत्रापश्यन्महाशाखं शाखिनं हरितच्छदम् ॥
सर्वर्तुकुसुमोपेतं मनोरथशतोज्वलम्। नानापुष्पसमाकीर्णं नानाविधफलान्वितम् ॥
नतं सूर्यस्य रुचिभिर्भिन्नसंहतपल्लवम्। तत्राम्बराणि सन्त्यज्य भूषणानि च शैलजा ॥
संवीता वल्कलैर्दिव्यैर्दर्भनिर्मितमेखला।
त्रिः स्नातपाटलाहारा बभूव शरदां शतम् ॥ ३०८ ॥

शतमेकेन शीर्णेन पर्णेनावर्त्तयत्तदा। निराहारा शतं साभूत्सा नानातपसान्निधिः॥३०९॥
तत उद्वेजिताः सर्वे प्राणिनस्तत्तपोऽग्निना। ततः सस्मार भगवान् मुनीन्सप्तशतक्रतुः

ते समागम्य मुनयः सर्वे समुदितास्ततः । पूजिताश्च महेन्द्रेण पप्रच्छुस्तं प्रयोजनम् ॥
किमर्थन्तु सुरश्रेष्ठ ! संस्मृतास्तुवयन्त्वया । शक्रःप्रोवाचशृण्वन्तु भगवन्तः ! प्रयोजनम्
हिमाचले तपो घोरं तप्यते भूधरात्मजा । तस्या ह्यभिमतं कामं भवन्तः कर्तुमर्हथ ॥
ततः समापतन् देव्या जगदर्थं त्वरान्विताः । तथेत्युक्त्वातु शैलेन्द्रं सिद्धसङ्घातसेवितम्
ऊचुरागत्य मुनयस्तामथो मधुराक्षरम् । पुत्रि ! किन्ते व्यवसितः कामःकमललोचने!

तानुवाच ततो देवी सलज्जा चित्रवाङ्मुखी ।
तपस्यतो महाभागाः प्राप्य मौनं भवाद्दृशान् ॥ ३१६ ॥

वन्दनाय नियुक्ता धीः पावयत्यविकल्पितम् । प्रश्नोन्मुखत्वाद्भवतां युक्तमासनमादितः ।
उपविष्टाः श्रमोन्मुक्तास्ततः प्रक्ष्यथ मामतः । इत्युक्त्वा सा ततश्चक्रे कृतासनपरिग्रहान्

सा तु तान् विधिवत्पूज्यान् पूजयित्वा विधानतः ।
उवाचादित्यसंकाशान् मुनीन् सप्त सती शनैः ॥ ३१९ ॥

त्यक्त्वा व्रतात्मकंमौनंमौनंजग्राहह्रीमयम् । भावंतस्यास्तुमौनान्तं तस्याः सप्तर्षयोयथा
गौरवाधीनतां प्राप्ताः पप्रच्छुस्तां पुनस्तथा । सापि गौरवगर्भेण मनसा चारुहासिनी

मुनीन् शान्तकथालापान् प्रोवाच प्रोज्झ्य वाग्यमम् ।
भगवन्तो विजानन्ति प्राणिनां मानसं हितम् ॥३२२ ॥

मनोवागभिरत्यर्थं कन्दर्पं ते हि देहिनः । केचित्तु निपुणास्तत्र घटन्ते विबुधोद्यमैः ॥
उपायैर्दुर्लभान्भावान् प्राप्नुवन्तिह्यतन्द्रिताः । अपरेतु परिच्छिन्नानानाकाराभ्युपक्रमाः
देहान्तरार्थमारम्भमापतन्ति हितप्रदम् । मम त्वाकाशसम्भूतपुष्पदामविभूषितम् ॥३२५
वन्ध्यासुतं प्राप्तुकामा मनः प्रसरते मुहुः । अहं किल भवं देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यता ॥
प्रकृत्यैव दुराधर्षं तपस्यन्तं तु संप्रति । सुरासुरैरनिर्णीतपरमार्थक्रियाश्रयम् ॥ ३२७ ॥
साम्प्रतं चापि निर्दग्धमदनं वीतरागिणम् । कथमाराधयेदीशं मादृशी तादृशं शिवम् ॥
इत्युक्ता मुनयस्तेतु स्थिरतां मनसस्ततः । ज्ञातुमस्या वचः प्रोचुः प्रक्रमात्प्रकृतार्थकम्

मुनय ऊचुः ।

द्विविधन्तुसुखन्तावत्पुत्रि ! लोकेषुभाव्यते । शरीरस्यास्यसम्भोगैश्चेतसश्चापिनिर्वृतिः

प्रकृत्यासतु दिग्वासा भीमः पितृवनेशयः । कपाली भिक्षुकोनग्नो विरूपाक्षःस्थिरक्रियः
प्रमत्तोन्मत्तकाकारो बीभत्संस्कृतसंग्रहः । यतिनानेन कः स्वार्थो मूर्त्तानर्थेन काङ्क्षितः

यदि ह्यस्य शरीरस्य भोगमिच्छसि साम्प्रतम् ।
तत् कथन्ते महादेवात् भयभाजो जुगुप्सिताम् ॥ ३३३ ॥

स्रवद्रक्तवसाभ्यक्तकपालकृतभूषणात् । श्वसदुग्रभुजङ्गेन्द्र कृतभूषणभीषणात् ॥ ३३४ ॥
श्मशानवासिनो रौद्रप्रमथानुगतात् सति ! । सुरेन्द्रमुकुटव्रातनिघृष्टचरणोऽरिहा ॥

हरिरस्ति जगद्धाता श्रीकान्तोऽनन्तमूर्त्तिमान् ।
नाथो यज्ञभुजामस्ति तथेन्द्रः पाकशासनः ॥ ३३६॥

देवतानांनिधिश्चास्तिज्वलनः सर्वकामकृत् । वायुरस्ति जगद्धातायः प्राणःसर्वदेहिनाम्
तथा वैश्रवणोराजासर्वार्थमतिमान् विभुः । एभ्यएकतमंकस्मात् नत्वंसम्प्राप्तुमिच्छसि
उत्तानदेहसम्प्राप्त्या सुखं मनसेप्सितम् । एवमेतत्तवाप्यत्र प्रभवो नाकसम्पदाम् ॥
अस्मिन्नेह परत्रापि कल्याणप्राप्तयस्तव । पितुरेवास्ति तत् सर्वं सुरेभ्यो यन्न विद्यते ।
अतस्तत्प्राप्तये क्लेशः स चाप्यत्राफलस्तव । प्रायेण प्रार्थितो भद्रे ! सुस्वल्पोह्यतिदुर्लभः

अस्य ते विधियोगस्य धाता कर्तात्र चैव हि ।

सूत उवाच ।

इत्युक्ता सा तु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा ॥ ३४२ ॥
उवाच कोपरक्ताक्षी स्फुरद्भिर्दशनच्छदैः ।

देव्युवाच ।

असद्ग्रहस्य का प्रीतिर्व्यसनस्य क्व यन्त्रणा ॥ ३४३ ॥

विपरीतार्थबोद्धारःसत्पथे केन योजिताः । एवं मां वेत्थदुष्प्रज्ञां ह्यस्थानासद्ग्रहप्रियाम्
न मां प्रति विचारोऽस्ति यत्रेहासद्ग्रहावितौ । प्रजापतिसमाःसर्वे भवन्तः सर्वदर्शिनः
नूनं न वेत्थ तं देवं शाश्वतं जगतः प्रभुम् । अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदयम् ॥
आस्तान्तद्धर्म्मसद्भावसम्बोधस्तावदद्भुतः । विदुर्यन्न हरिब्रह्मप्रमुखाहि सुरेश्वराः ॥३४७
यत्तस्य विभवात्स्फोरथंभुवनेषु विजृम्भितम् । प्रकटं सर्वभूतानां तदप्यत्र नवेत्थकिम्

कस्यैतद्गगनं मूर्त्तिः कस्याग्निःकस्यमारुतः। कस्यभूःकस्य वरुणः कश्चन्द्रार्कविलोचनः
कस्यार्चयन्ति लोकेषु लिङ्गंभक्त्या सुरासुराः। यं ब्रुवन्तीश्वरं देवा विधीन्द्राद्यामहर्षयः

प्रभावं प्रभवञ्चैव तेषामपि न वेत्थ किम्।
अदितिः कस्य मातेयं कस्माज्जातो जनार्दनः॥ ३५१॥

अदितेः कश्यपाज्जाता देवा नारायणादयः। मरीचेः कश्यपः पुत्रो ह्यदितिर्दक्षपुत्रिका॥
मरीचिश्चापि दक्षश्चपुत्रौतौब्रह्मणःकिल। ब्रह्मा हिरण्मयात्त्वण्डाद्दिव्यसिद्धिविभूषितात्
कस्यप्रादुरभूद्ध्यानात् प्रक्षुब्धाः प्राकृतांशकाः। प्रकृतौतुतृतीयायां मधुद्विड्जननक्रिया

जाता ससर्ज षड्वर्गान् बुद्धिपूर्वान् स्वकर्म्मजान्।
अजातकोऽभवद्वेधा ब्रह्मणोऽव्यक्तजस्मनः॥ ३५५॥

यः स्वयोगेन संक्षोभ्य प्राकृतं कृतवानिदम्। ब्रह्मणः सिद्धिसर्वार्थमैश्वर्यलोककर्तृताम्
विदुर्विष्ण्वादयो यच्च स्वमहिम्नासदैव हि। कृत्वान्यंदेहमन्याद्दृक्ताद्दृक् कृत्वापुनर्हरिः
कुरुते जगतः कृत्यमुत्तमाधममध्यमम्। एवमेव हि संसारो यो जन्ममरणात्मकः॥
कर्म्मणश्च फलं ह्येतत् नानारूपसमुद्भवम्। अथ नारायणोदेवः स्वकांच्छायांसमाश्रयत्
तत्प्रेरितः प्रकुरुते जन्म नानाप्रकारकम्। सापि कर्म्मण एवोक्ता प्रेरणी विवशात्मनाम्
यथोन्मादादिजुष्टस्य मतिरेव हि सा भवेत्। इष्टान्येव यथार्थानि विपरीतानि मन्यते॥
लोकस्य व्यवहारेषु सृष्टेषु सहते सदा। धर्माधर्म्मफलावाप्तौ विष्णुरेव निबोधितः॥

अथानादित्वमस्यास्ति सामान्यात्तु तदात्मना।
न ह्यस्य जीवितं दीर्घदृष्टं देहे तु कुत्रचित्॥ ३६३॥

भवद्भिर्यस्य नोदृष्टमन्तमग्रमथापि वा। देहिनां धर्म्म एवैष क्वचिज्जायेत् क्वचिन् म्रियेत्
क्वचिद्गर्भगतो नश्येत् क्वचिज्जीवेज्जरामयः। क्वचित्समाः शतं जीवेत् क्वचिद्बाल्येविपद्यते
शतायुःपुरुषो यस्तुसोऽनन्तःस्वल्पजन्मनः। जीवितोनम्रियत्यग्रे तस्मात्सोऽमरउच्यते
अदृष्टजन्मनिधना ह्येवं विष्ण्वादयो मताः। एतत् संशुद्धमैश्वर्यं संसारे को लभेदिह॥

तत्र क्षयादियोगात्तु नानाश्चर्य्यस्वरूपिणी।
तस्माद्दिवश्वरान् सर्वान् मलिनान् स्वल्पभूतिकान्॥ ३६८॥

नाहं भद्राः ! किलेच्छामि ऋते शर्वात् पिनाकिनः ।
स्थितश्च तारतम्येन प्राणिनां परमन्त्विदम् ॥ ३६६ ॥

धीबलैश्वर्यकार्यादिप्रमाणं महतां महत् । यस्मान्न किञ्चिदपरं सर्वं यस्मात् प्रवर्त्तते ॥
यस्यैश्वर्यमनाद्यन्तं तमहं शरणं गता । एष मे व्यवसायश्च दीर्घोऽतिविपरीतकः ॥३७१
यात वा तिष्ठतैवाथ मुनयो ! मद्विधायकाः ! । एवं निशम्य वचनं देव्यामुनिवरास्तदा
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सस्वजुस्तां तपस्विनीम् । ऊचुश्च परमप्रीताः शैलजां मधुरं वचः

ऋषय उचुः ।

अत्यद्भुतास्यहो देवि ! ज्ञानमूर्तिरिवामला । प्रसादयति नो भावं भवभावप्रतिश्रयात् ।
न तु विद्मो वयन्तस्य देवस्यैश्वर्यमद्भुतम् । त्वन्निश्चयस्य दृढ़तां वेत्तु वयमिहागताः ॥
अचिरादेव तन्वङ्गि ! कामस्तेयंभविष्यति । क्वादित्यस्यप्रभायाति रत्नेभ्यःक्वद्युतिःपृथक्
कोऽर्थोवर्णालिका व्यक्तःकथंत्वंगिरिशं विना । यामोनैकाभ्युपायेन तमभ्यर्थयितुंवयम्
अस्माकमपि वै सोऽर्थः सुतरां हृदि वर्त्तते । अतस्त्वमेव सा बुद्धिर्यतो नीतिस्त्वमेवहि
अतोनिःसंशयं कार्यंशङ्करोऽपिविधास्यति । इत्युक्ताः पूजितायाता मुनयोगिरिकन्यया
प्रययुर्गिरिशं द्रष्टुं प्रस्थं हिमवतो महत् । गङ्गाम्बुप्लावितात्मानं पिङ्गबद्धजटासटम् ॥
भृङ्गानुयातपाणिस्थमन्दारकुसुमस्रजम् । गिरेः संप्राप्य ते प्रस्थं ददृशुः शङ्कराश्रमम् ॥
प्रशान्ताशेषसत्त्वौघं नवस्तिमितकाननम् । निःशब्दाक्षोभसलिलप्रपातं सर्वतो दिशम् ॥

तत्रापश्यंस्ततो द्वारि वीरकं वेत्रपाणिनम् ।
सप्त ते मुनयः पूज्या विनीताः कार्य्यगौरवात् ॥ ३८३ ॥

ऊचुर्मधुरभाषिण्या वाचा ते वाग्मिनाम्वराः । द्रष्टुं वयमिहायाताः शरण्यंगणनायकम्
त्रिलोचनं विजानीहि सुरकार्य्यप्रचोदिताः । त्वमेव नोगतिस्तत्त्वं यथाकालानतिक्रमः
सत्कारितैष प्रायेण प्रतीहारमयः प्रभुः । इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात्तानुवाच सः
समन्वास्यापरां सन्ध्यां स्नातुं मन्दाकिनीजले । क्षणेन भविता विप्रास्तत्रद्रक्ष्यथशूलिनम्
इत्युक्ता मुनयस्तस्थुस्ते तत्कालप्रतीक्षिणः । गम्भीराम्बुधरं प्रावृट् तृषिताश्चातकायथा
ततः क्षणेन निष्पन्नसमाधानक्रियाविधिः । वीरासनं विभेदेशो मृगचर्मनिवासितम् ॥

ततो विनीतो जानुभ्यामवलम्ब्य महीस्थितिम् । उवाच वीरकोदेवं प्रणामैकसमाश्रयः
संप्राप्ता मुनयः सप्त त्वां द्रष्टुं दीप्तचेतसः । विभो ! समादिश द्रष्टुमवगन्तुमिहार्हसि ॥
इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन वीरकेण महात्मना । भ्रूभङ्गसंज्ञया तेषां प्रवेशाज्ञां ददौ तदा ॥

मूर्द्धकम्पेन तान् सर्वान् वीरकोऽपि महामुनीन् ।
आजुहाव विदूरस्थान् दर्शनाय पिनाकिनः ॥ ३९३ ॥

त्वराबद्धार्द्धचूड़ास्ते लम्बमानाजिनाम्बराः । विविशुर्वेदिकांसिद्धांगिरिशस्यविभूतिभिः
बद्धपाणिपुटाक्षिप्तनाकपुष्पोत्करास्ततः । पिनाकिपादयुगलं यथा नाकनिवासिनः ॥

ततः स्निग्धेक्षिताः शान्ता मुनयः शूलपाणिना ।
मन्मथारिं ततो हृष्टाः सम्यक् तुष्टुवुराहृताः ॥३९६ ॥

मुनय ऊचुः ।

अहो कृतार्था वयमेव साम्प्रतं सुरेश्वरोऽप्यत्र पुरो भविष्यति ।
भवत्प्रसादामलवारि सेकतः फलेन काचित्तपसा नियुज्यते ॥३९७॥
जयत्यसौ धन्यतरो हिमाचलस्तदाश्रयं यस्य सुता तपस्यति ।
सदैत्यराजोऽपि महाफलोदयो विमूलिताशेषसुरो हि तारकः ॥३९८॥
त्वदीयमंशम्प्रविलोक्य कल्मषात् स्वकं शरीरं परिमोक्ष्यते हि यः ।
स धन्यधीर्लोकपिता चतुर्मुखो हरिश्च यत्सम्भ्रमवह्निदीपितः ॥३९९॥
त्वदङ्घ्रियुग्मं हृदयेन बिभ्रतो महाभितापप्रशमैकहेतुकम् ।
त्वमेव चैको विविधकृतक्रियः किलेति वाचा विधुरैर्विभाष्यते ॥४००॥
अथाद्य एकस्त्वमवैषि नान्यथा जगत्तथा निर्घृणतान्तव स्पृशेत् ।
न वेत्सि वा दुःखमिदं भवात्मिकं विहन्यते ते खलु सर्वनिष्क्रिया ॥४०१॥
उपेक्षसे चेज्जगतामुपद्रवं दयामयत्वं तव केन कथ्यते ।
स्वयोगमायामहिमागुहाश्रयं न विद्यते निर्मलभूतिगौरवम् ॥४०२॥
वयं च ते धन्यतराः शरीरिणां यदीदृशं त्वं प्रविलोकयामहे ।
अदर्शनं तेन मनोरथो यथा प्रयाति साफल्यतया मनोगतम् ॥४०३॥

जगद्विधानैकविधौ जगन्मुखे करिष्यसेतो वलभिच्चरा वयम् ।
विनेमुरित्थं मुनयो विसृज्य तां गिरं गिरीशश्रुतिभूमिसन्निधौ ।
उत्कृष्टकेदार इवावनीतले सुवीजमुष्टिं सुफलाय कर्षकाः ॥ ४०४ ॥

तेषां श्रुत्वा ततोरम्यां प्रक्रमोपक्रमक्रियाम् । वाचं वाचस्पतिरिव प्रोवाच स्मितसुन्दरः

शर्व उवाच ।

जाने लोकविधानस्य कन्यासत्कार्य्यमुत्तमम् । जाता प्रलेयशैलस्य सङ्केतकनिरूपणाः
सत्यमुत्कण्ठिताः सर्वे देवकार्यार्थमुद्यताः । तेषां त्वरन्तिचेतांसि किन्तुकार्यंविचक्षितम्

लोकयात्रानुगन्तव्या विशेषेण विचक्षणैः ।
सेवन्ते ते यतो धर्मं तत्प्रामाण्यात्परे स्थिताः ॥ ४०८ ॥
इत्युक्त्वा मुनयो जग्मुस्त्वरितास्तु हिमाचलम् ।
तत्र ते पूजितास्तेन हिमशैलेन सादरम् ॥ ४०६ ॥
ऊचुर्मुनिवराःप्रीताः स्वल्पवर्णन्त्वरान्विताः ।

मुनय ऊचुः ।

देवो दुहितरं साक्षात् पिनाकी तव मार्गते ॥४१०॥

तच्छीघ्रं पावयात्मानमाहुत्येवानलार्पणात् । कार्यमेतच्च देवानां सुचिरं परिवर्तते ॥
जगदुद्धरणायैष क्रियतां वै समुद्यमः । इत्युक्तस्तैस्तदा शैलो हर्षाविष्टोऽवदन्मुनीन् ॥
असमर्थोऽभवद्वक्तुमुत्तरं प्रार्थयञ्छिवम् । ततो मेना मुनीन्वन्द्य प्रोवाच स्नेहविक्लवा ॥

दुहितुस्तान् मुनींश्चैव चरणाश्रयमर्थवित् ।

मेनोवाच ।

यदर्थं दुहितुर्जन्म नेच्छन्त्यपि महाफलम् ॥ ४१४ ॥

तदेवोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव साम्प्रतम् । कुलजन्मवयोरूपविभूत्यर्द्धियुतोऽपि यः ॥
वरस्तस्यापि चाहूय सुता देया ह्ययाचतः । तत्समस्ततपोघोरं कथं पुत्री प्रयास्यति ॥
पुत्रीवाक्याद्यदत्रास्ति विधेयं तद्विधीयताम् । इत्युक्ता मुनयस्ते तु प्रियया हिमभूभृतः ॥

ऊचुः पुनरुद्धारार्थं नारीचित्तप्रसादकम् ।

मुनय ऊचुः ।

ऐश्वर्यमवगच्छस्व शङ्करस्य सुरासुरैः ॥ ४१८ ॥

आराध्यमानपादाब्जयुगलत्वात् सुनिर्वृतैः । यस्योपयोगि यद्रूपं सा च तत्प्राप्तये चिरम् ।
घोरं तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्वृतिः । यस्तद्व्रतानि दिव्यानि नयिस्यति समापनम् ॥
तत्र सावहिता तावत्तस्मात् सैव भविष्यति । इत्युक्त्वा गिरिणा सार्द्धन्तेययुर्यत्र शैलजा ॥
जितार्कज्वलनज्वाला तपस्तेजोमयीह्युमा । प्रोचुस्तां मुनयः स्निग्धं सन्मान्य पथमागतम् ॥
रम्यं प्रियं मनोहारि मारूपं तपसा दह । प्रातस्ते शङ्करः पाणिमेव पुत्रि ! ग्रहीष्यति ॥
वयमर्थितवन्तस्ते पितरं पूर्वमागताः । पित्रा सह गृहङ्गच्छ वयं यामः स्वमन्दिरम् ॥

इत्युक्त्वा तपसः सत्यं फलमस्तीति चिन्त्य सा ।

त्वरमाणा ययौ वेश्म पितुर्दिव्यार्थशोभितम् ॥ ४२५ ॥

सा तत्र रजनीं मेने वर्षायुतसमां सतीम् । हरदर्शनसञ्जातमहोत्कण्ठा हिमाद्रिजा ॥
ततो मुहूर्ते ब्राह्मे तु तस्याश्चक्रुः सुरस्त्रियः । नानामङ्गलसन्दोहान्यथावक्त्रमपूर्वकम् ॥
दिव्यमण्डनमङ्गानां मन्दिरे बहुमङ्गले । उपासत गिरिं मूर्ता ऋतवः सार्वकामिकाः ॥
वायवो वारिदाश्चासन् संमार्जनविधौ गिरेः । हर्म्येषु श्रीःस्वयं देवी कृतनानाप्रसाधना ॥
कान्तिः सर्वेषु भावेषु ऋद्धिश्चाभवदाकुला । चिन्तामणिप्रभृतयो रत्नाः शैलं समन्ततः ।
उपतस्थुर्नगाश्चापि कल्पकाममहाद्रुमाः । ओषध्यो मूर्तिमत्यश्च दिव्यौषधिसमन्विताः ॥
रसाश्च धातवश्चैव सर्वे शैलस्य किङ्कराः । किङ्करास्तस्य शैलस्य व्यग्राश्चाज्ञानुवर्तिनः ॥
नद्यः समुद्रा निखिलाः स्थावरं जङ्गमञ्च यत् । तत् सर्वं हिमशैलस्य महिमानमवर्द्धयत् ॥
अभवन्मुनयो नागा यक्षगन्धर्वकिन्नराः । शङ्करस्यापि विबुधा गन्धमादनपर्वते ॥४३४
सर्वे मण्डनसम्भारास्तस्थुर्निर्मलमूर्तयः । सर्वस्यापि जटाजूटे चन्द्रखण्डं पितामहः ।
बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः । कपालमालां विपुलां चामुण्डामूर्द्धन्यबन्धत ॥
उवाच चापि वचनं पुत्रं जनय शङ्कर ! । यो दैत्येन्द्रकुलं हत्वा मारक्तैस्तर्पयिष्यति ।

सौरिर्ज्वलच्छिरोरत्नमुकुटश्चानलोल्वणम् ।

भुजगाभरणं गृह्य सज्जं शम्भोः पुरोऽभवत् ॥ ४३८ ॥

शक्रो गजाजिनं तस्य वसाभ्यक्ताग्रपल्लवम् ॥
दध्रे सरभसं स्विद्यद्विस्तीर्णमुखपङ्कजम् ॥ ४३९ ॥
वायुश्च विपुलं तीक्ष्णशृङ्गं हिमगिरिप्रभम् । वृषं विभूषयामास हरयानं महौजसम् ॥
वितेनुर्नयनान्तस्थाः शम्भोः सूर्यानलेन्दवः ।
स्वान्द्युतिं लोकनाथस्य जगतः कर्म्मसाक्षिणः ॥ ४४१ ॥
चिताभस्म समाधाय कपाले रजतप्रभम् । मनुजास्थिमयीं मालामाबबन्ध च पाणिना
प्रेताधिपः पुरोद्धारे सगदः समवर्तत । नानाकारमहारत्नभूषणं धनदाहृतम् ॥ ४४३ ॥
विहायोदग्रसर्पेन्द्रकटकेन स्वपाणिना । कर्णोत्तंसञ्चकारेशो वासुकिन्तक्षकं स्वयम् ॥
जलाधीशाहृतां स्थास्नुप्रसूनावेष्टितां पृथक् । ततस्तुते गणाधीशा विनयात्तत्र वीरकम्
प्रोचुर्व्यग्राकृते ! त्वन्नो समावेदय शूलिने । निष्पन्नाभरणं देवं प्रसाध्येशम्प्रसाधनः ॥
सप्तवारिधयस्तस्थुः कर्तुं दर्पणविभ्रमम् । ततो विलोकितात्मानं महाम्बुधिजलोदरे ॥
धरामालिङ्ग्य जानुभ्यां स्थाणुंप्रोवाच केशवः । शोभसे देव ! रूपेण जगदानन्ददायिना
मातरः प्रेरयाकामवधूं वैधव्यचिह्निताम् । कालोऽयमिति चालक्ष्य प्रकारैङ्गितसंज्ञया ॥
ततस्ताश्चोदिता देवमूचुः प्रहसिताननाः । रतिः पुरस्तव प्राप्ता नाभाति मदनोज्झिता ॥
ततस्तां सन्निवार्याह वामहस्ताग्रसंज्ञया । प्रयाणे गिरिजावक्त्रदर्शनोत्सुकमानसः ॥
ततो हरो हिमगिरिकन्दराकृतिम् समुन्नतं मृदुगतिभिः प्रचोदयन् ।
महावृषङ्क्षतुमुलाहितेक्षणं स भूधरानशनिरिव प्रकम्पयन् ॥ ४५२ ॥
ततो हरिद्रुतपदपद्धतिः पुरःसरः श्रमात् द्रुमनिकरेषु विश्रमन् ।
धरारजःशबलितभूषणोऽब्रवीत् प्रयात मा कुरुत पथोऽस्य संकटम् ॥४५३॥
प्रभोः पुनः प्रथमनियोगमूर्जयन् सुतोऽब्रवीद्भ्रुकुटिमुखोऽपि वीरकः ।
वियच्चरा वियति किमस्तिकान्तकम् प्रयात नो धरणिधराऽविदूरतः॥४५४॥
महार्णवाः कुरुत शिलोपमम्पयः सुरद्विषा गमनमहातिकर्दमान् ।
गणेश्वराश्चपलतया न गम्यताम् सुरेश्वरैः स्थिरमतिभिश्च गम्यताम् ४५५॥
न भृङ्गिणा स्वतनुमवेक्ष्य नीयते पिनाकिनः पृथुमुखमण्डमग्रतः ।

वृथायमप्रकटितदन्तकोटरम् त्वमायुधं वहसि विहाय पञ्जरम् ॥ ४५६ ॥
पदन्नयद्रथतुरगैः पुरद्विषा प्रमुच्यते बहुतरमातृसङ्कुलम् ।
अमी सुराः पृथगनुयायिभिर्वृताः पदातयो द्विगुणपथान् हरप्रियाः ॥४५७॥
स्ववाहनैः पवनविधूतचामरैश्चलध्वजैर्व्रजत विहारशालिभिः ।
सुराः स्वकं किमिति न रागमूर्जितं विचार्यते नियतलयत्रयानुगम् ॥ ४५८ ॥
न किन्नरैरभिभवितुं हि शक्यते विभूषणप्रचयसमुद्भवो ध्वनिः ।
स्वजातिकाः किमिति नषड्जमध्यमपृथुस्वरं बहुतरमत्र वक्ष्यते ॥४५९॥
नतानतानतनतनताङ्गताः पृथक् तया समयकृता विभिन्नताम् ।
विशङ्किता भवदतिभेदशीलिनः प्रयान्त्यमी द्रुतपदमेव गौडकाः ॥ ४६० ॥
विसंहताः किमिति न षाड्गवादयः स्वगीतकैर्ललितपदप्रयोगजैः ।
प्रभोः पुरो भवति हि यस्य चाक्षतं समुद्गतार्थकमिति तत्प्रतीयते॥४६१॥
अमी पृथग्विरचितरम्यरासकं विलासिनो बहुगमकस्वभावकम् ।
प्रयुञ्जते गिरिशयशोविसारिणं प्रकीर्णकं बहुतरनागजातयः ॥४६२॥
अमी कथं ककुभिकथाः प्रतिक्षणं ध्वनन्ति ते विविधवधूविमिश्रिताः ।
न जातयो ध्वनिमुरजासमीरिता न मूर्च्छिताः किमिति च मूर्च्छनात्मिकाः॥
श्रुतिप्रियक्रमगतिभेदसाधनं ततादिकं किमिति न तुम्बरेरितम् ।
न हन्यते बहुविधवाद्यडम्बरं प्रकीर्णवीणामुरजादि नाम यत् ॥ ४६४॥
इतीरिते गिरिमवधानशालिनः सुरासुराः सपदि तु वीरकाज्ञया ।
नियामितीः प्रययुरतीव हर्षिताश्चराचरं जगदखिलं ह्यपूरयन् ॥ ४६५ ॥
इतीस्तनत्ककुभिरसन्महार्णवे स्तनद्घने विदलितशैलकन्दरे ।
जगत्यभूत्तुमुल इवाकुलीकृतः पिनाकिना त्वरितगतेन भूधरः ॥ ४६६ ॥
परिज्वलत् कनकसहस्रतोरणं क्वचिन्मिलन्मरकतवेश्मवेदिकम् ।
क्वचित् क्वचिद्विमलवैदूर्यभूमिकं क्वचिद्गलज्जलधररम्यनिर्झरम् ॥ ४६७ ॥
चलध्वजप्रवरसहस्रमण्डितं सुरासुरैरवकीर्णं वत्सलम् ।

सिता सितारुणरुचिधातुवर्णकं श्रियोज्ज्वलं प्रविततमार्गगोपुरम् ॥४६८॥
विजृम्भिता प्रतिमध्वनिवारिदं सुगन्धिभिः पुरपवनैर्मनोहरम् ।
हरो महागिरिनगरं समासदत् क्षणादिव प्रवरसुरासुरस्तुतः ॥ ४६९ ॥
तं प्रविशन्तमगात् प्रविलोक्य व्याकुलतां नगरं गिरिभर्तुः ।
व्यग्रपुरन्ध्रिजनञ्जवियानं धावितमार्गजनाकुलरथ्यम् ॥ ४७० ॥
हर्म्यगवाक्षगतामरनारीलोचननीलसरोरुहमालम् ।
सुप्रकटासमदृश्यत काचित्स्वाभरणांशुवितानविगूढा ॥ ४७१ ॥
काप्यखिलीकृतमण्डनभूषा त्यक्तसखीप्रणयाहरमैक्षत् ।
काचिदुवाच कलङ्कतमानाकातरतां सखि ! मा कुरु मूढे ॥ ४७२ ॥
दग्धमनोभव एव पिनाकी कामयते स्वयमेव विहर्तुम् ।
काचिदपि स्वयमेव पतन्ति प्राह परां विरहस्खलिताङ्गीम् ॥ ४७३ ॥
मा चपले मदनव्यतिषङ्गं शङ्करजं स्खलनेन वदत्त्वम् ।
कापि कृतव्यवधानमदृष्ट्वा युक्तिवशाद्गिरिशो ह्ययमूचे ॥ ४७४ ॥
एष स यत्र सहस्रमखाद्या नाकसदामधिपाः स्वयमुक्तैः ।
नामभिरिन्दुजटं निजसेवाप्राप्तिफलायनतास्तु घटन्ते ॥ ४७५ ॥
एष न चैष स एष यदग्रे घर्मपरीततनुः शशिमौली ।
धावति वज्रधरोऽमरराजो मार्गममुं विवृतीकरणाय ॥ ४७६ ॥
एष स पद्मभवोऽयमुपेत्य प्रांशुजटामृगचर्मनिगूढः ।
सप्रणयङ्करघट्टितचक्रं किञ्चिदुवाच मितं श्रुतिमूले ॥ ४७७ ॥
एवमभूत् सुरनारिकुलानां चित्तविसंष्ठुलता गुररागात् ।
शङ्करसंश्रयणाद्गिरिजायाजन्मफलं परमन्त्विति चोचुः ॥ ४७८ ॥
ततो हिमगिरेर्वेश्म विश्वकर्म्मनिवेदितम् ।
महानीलमयस्तम्भज्वलत्काञ्चनकुट्टिमम् ॥४७९॥
मुक्ताजालपरिष्कारं ज्वलितौषधिदीपितम् ।

क्रीडोद्यानसहस्राढ्यं काञ्चनाबद्धदीर्घिकम् ॥४८०॥

महेन्द्रप्रमुखाः सर्वे सुरा दृष्ट्वा तदद्भुतम् । नेत्राणि सफलान्यद्य मनोभिरिति ते दधुः ॥
विमर्दकीर्णकेयूरा हरिणा द्वाररोधिताः । कथञ्चित् प्रमुखास्तत्र विविशुर्नाकवासिनः ॥
प्रणतेनाचलेन्द्रेण पूजितोऽथ चतुर्मुखः । चकार विधिना सर्वं विधिमन्त्रपुरःसरम् ॥
शर्वेण पाणिग्रहणमग्निसाक्षिकमक्षतम् । दाता महीभृतान्नाथो होता देवश्चतुर्मुखः ॥

वरः पशुपतिः साक्षात् कन्या विश्वारणिस्तथा ।
चराचराणि भूतानि सुरासुरवराणि च ॥४८५॥

तत्राप्येते नियमतो ह्यभवन्व्यग्रमूर्तयः । मुमोचाभिनवान्सर्वान्सस्यशालीन्रसौषधीः
व्यग्रा तु पृथिवी देवी सर्वभावमनोरमा । गृहीत्वा वरुणः सर्वरत्नान्याभरणानि च ॥
पुण्यानि च पवित्राणि नानारत्नमयानि तु । तस्थौ स्वाभरणो देवोहर्षदःसर्वदेहिनाम्
धनदश्चापि दिव्यानि हैमान्याभरणानि च । जातरूपविचित्राणि प्रयतः समुपस्थितः
वायुर्ववौ सुसुरभिः सुखसंस्पर्शनो विभुः । छत्रमिन्दुकरोद्गारं सुसितञ्च शतक्रतुः ॥
जग्राह मुदितः स्रग्वी बाहुभिर्बहुभूषणैः । जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः
वादयन्तोऽतिमधुरं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । मूर्त्ताश्च ऋतवस्तत्र जगुश्च ननृतुश्च वै ॥

चपलाश्च गणास्तस्थुर्लोलयन्तो हिमाचलम् ।
उत्तिष्ठन् क्रमशश्चात्र विश्वभुग्भगनेत्रहा ॥४९३॥
चकारौद्वाहिकं कृत्यं पत्न्या सह यथोचितम् ।
दत्तार्घो गिरिराजेन सुरवृन्दैर्विनोदितः ॥४९४॥
अवसत् तां क्षपान्तत्र पत्न्या सह पुरान्तकः ।
ततो गन्धर्वगीतेन नृत्येनाप्सरसामपि ॥४९५॥

स्तुतिभिर्देवदैत्यानां विबुधो विबुधाधिपः । आमन्त्र्य हिमशैलेन्द्रं प्रभाते चोमया सह
जगाम मन्दरगिरिं वायुवेगेन शृङ्गिणा ॥४९६॥
ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमया रतिमलभन्न भूधरः ।
स्मरानलो भवति च कस्य नो मनो विह्वलञ्च जगति हि कन्यकापितुः ॥४९७

ज्वलन्मणिस्फटिकहाटकोत्कटं स्फुरद्युतिस्फटिकगोपुरं पुरम् ।
हरो गिरौ चिरमनुकल्पितन्तदा विसर्जितामरनिवहोऽविशत्स्वकम् ॥४६८॥
तदोमासहितो देवो विजहार भगाक्षिहा । पुरोद्यानेषु रम्येषु विविक्तेषु वनेषु च ॥४६६
सुरक्तहृदयो देव्या मकराङ्कपुरः सरः । ततो बहुतिथे काले सुतकामा गिरेः सुता ॥
सखीभिः सहिता क्रीडां चक्रे कृत्रिमपुत्रकैः ।
कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्य शैलजा ॥५०१॥
चूर्णैरुद्वर्तयामास मलिनां तरितान्तनुम् । तदुद्वर्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम् ॥५०२
पुत्रकं क्रीडती देवी तं चाक्षिपयदम्भसि ।
जाह्नव्यास्तु शिवासख्यास्ततः सोऽभूद्वृहत् वपुः ॥५०३॥ ०८
कायेनातिविशालेन जगदापूरयत्तदा । पुत्रेत्युवाच तं देवी पुत्रेत्यूचे च जाह्नवी ॥५०४॥
गाङ्गेय इति देवैस्तु पूजितोऽभूद्गजाननः । विनायकाधिपत्यञ्च ददावस्य पितामहः ॥
पुनः सा क्रीडनं चक्रे पुत्रार्थं वरवर्णिनी । मनोज्ञमङ्कुरं रूढमशोकस्य शुभानना ॥
वर्द्धयामास तं चापि कृतसंस्कारमङ्गला । वृहस्पतिमुखै र्विप्रैर्दिवस्पतिपुरोगमैः ॥
ततो देवैश्च मुनिभिः प्रोक्ता देवी त्विदम्वचः । भवानी भवतीभव्या संभूता लोकभूयते
प्रायः सुतफलो लोकः पुत्रपौत्रैश्च लभ्यते । अपुत्राश्च प्रजाः प्रायो दृश्यन्ते दैवहेतवः
अधुना दर्शिते मार्गे मर्यादां कर्तुमर्हसि । फलं किम्भविता देवि ! कल्पितैस्तरुपुत्रकैः ॥
इत्युक्ता हर्षपूर्णाङ्गी प्रोवाचोमा शुभाङ्गिरम् ।

देव्युवाच ।

एवं निरुदके देशे यः कूपं कारयेद् बुधः ॥५११॥
विन्दौ विन्दौ च तोयस्य वसेत् सम्वत्सरन्दिवि । दशकूपसमावापीदशवापीसमोह्रदः
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः । एवैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी ॥५१३
इत्युक्तास्तु ततोविप्रा वृहस्पतिपुरोगमाः । जग्मुःस्वमन्दिराण्येवभवानींवन्द्य सादरम्
गतेषु तेषु देवोऽपि शङ्करः पर्वतात्मजाम् । पाणिना लम्बमानेन शनैः प्रावेशयच्छुभाम्
चित्तप्रसादजननं प्रासादमनुगोपुरम् । लम्बमौक्तिकदामानं मालिकाकुलवेदिकम् ॥

निर्धौतकलधौतं च क्रीडागृहमनोरमम् । प्रकीर्णकुसुमोद्दाममत्तालिकुलकूजितम् ॥५१९॥
किन्नरोद्गीतसङ्गीतगृहान्तरितभित्तिकम् । सुगन्धिधूपसङ्घातमनःप्रार्थ्यमल(ले)हितम् ।
क्रीडन्मयूरनारीभिर्वृतं वै ततवादिभिः । हंससङ्घातसंघुष्टं स्फाटिकस्तम्भवेदिकम् ।
अनारतमतिप्रीत्या बहुशःकिन्नराकुलम् । शुकैर्यत्राभिहन्यन्ते पद्मरागविनिर्मिताः ॥५२०॥

भित्तयो दाडिमभ्रान्त्या प्रति बिम्बितमौक्तिकाः ।
तत्राक्षक्रीडया देवो विहर्तुमुपचक्रमे ॥ ५२१ ॥

स्वच्छेन्द्रनीलभूभागे क्रीडने यत्रधिष्ठितौ । वपुः सहायतां प्राप्तौ विनोदरसनिर्वृतौ ।

एवं प्रक्रीडतोस्तत्र देवीशङ्करयोस्तदा ।
प्रादुर्भवन्महाशब्दस्तद्गृहोदरगोचरः ॥ ५२३ ॥
तच्छ्रुत्वा कौतुकाद्देवी किमेतदिति शङ्करम् ।
पप्रच्छ तं शुभतनुर्हरं विस्मयपूर्वकम् ॥ ५२४ ॥
उवाच देवीं नैतत्ते दृष्टपूर्वं सुविस्मिते ।
एते गणेशाः क्रीडन्ते शैलेऽस्मिन् मत्प्रियाः सदा ॥५२५॥

तपसा ब्रह्मचर्येण नियमैः क्षेत्रसेवनैः । यैरहंतोषितः पूर्वं त एते मनुजोत्तमाः ॥५२६॥
मत्समीपमनु प्राप्ता मम हृद्याः शुभानने । कामरूपा महोत्साहा महारूपगुणान्विताः ।
कर्मभिर्विस्मयं तेषां प्रयामि बलशालिनाम् । सामरस्यास्य जगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः ।

ब्रह्मविष्णवीन्द्रगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ।
विवर्जितोऽप्यहं नित्यन्नैभिर्विरहितो रमे ॥५२८ ॥
हृद्या मे चारु सर्वाङ्गास्त एते क्रीडते गिरौ ।
इत्युक्त्वा तु ततो देवी त्यक्त्वा तद्विस्मयाकुला ॥ ५३० ॥
गवाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते विस्मितानना ।
यावन्तस्ते कृशा दीर्घा ह्रस्वा स्थूला महोदराः ॥ ५३१ ॥
व्याघ्रेभवदनाः केचित् केचिन्मेषाजरूपिणः ।
अनेक प्राणिरूपाश्च ज्वालास्याः कृष्णपिङ्गलाः ॥ ५३२ ॥

सौम्या भीमाः स्मितमुखाः कृष्णपिङ्गजटासटाः ।
नानाविहङ्गवदना नानाविधमृगाननाः ॥ ५३३ ॥
कौशेयचर्म्मवसना नग्नाश्चान्ये विरूपिणः ।
गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुवक्त्रेक्षणोदराः ॥ ५३४ ॥
बहुपादा बहुभुजा दिव्यनानास्त्रपाणयः ।
अनेककुसुमापीडा नानाव्यालविभूषणाः ॥ ५३५ ॥
वृत्ताननायुधधरा नानाकवचभूषणाः ।
विचित्रवाहनारूढा दिव्यरूपा वियच्चराः ॥ ५३६ ॥
वीणा वाद्यरवाघुष्टा नानास्थानकनर्तकाः ।
गणेशांस्तांस्तथा दृष्ट्वा देवी प्रोवाच शङ्करम् ॥ ५३७ ॥

देव्युवाच ।

गणेशाः कति सङ्ख्याताः किं नामानः किमात्मकाः ।
एकैकशो मम ब्रूहिधिष्ठिता ये पृथक् पृथक् ॥ ५३८ ॥

शङ्कर उवाच ।

कोटिसङ्ख्या ह्यसङ्ख्याता नानाविख्यातपौरुषाः ।
जगदापूरितं सर्वैरेभिर्भीमै महाबलैः ॥ ५३९ ॥

सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु । दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु च ॥
एते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः । ऊष्मपाः फेनपाश्चैव धूमपा मधुपायिनः ॥
रक्तपाः सर्वभक्षाश्च वायुपा ह्यम्बुभोजनाः । गेयनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरवप्रियाः

न ह्येषां वै अनन्तत्वाद् गुणान् वक्तुं हि शक्यते ।

देव्युवाच ।

मार्गत्वगुत्तरासङ्गः शुद्धाङ्गो मुञ्जमेखली ॥ ५४३ ॥
वामस्थेन च शिक्येन चपलो रञ्जिताननः । मृगदंष्ट्रो ह्युत्पलानां स्रग्दामो मधुराकृतिः
पाषाणशकलोच्चालकांस्यतालप्रवर्तकः । असौ गणेश्वरो देव ! किन्नामा किन्नरानुगाः

य एष गणगीतेषु दत्तकर्णो मुहुर्मुहुः ।

शर्व उवाच ।

स एष वीरको देवि ! सदा मद्धृदयप्रियः ॥ ५४६ ॥

नानाश्चर्य्यगुणाधारो गणेश्वरगणार्चितः ।

देव्युवाच ।

ईदृशस्य सुतस्यास्ति ममोत्कण्ठा पुरान्तक ॥ ५४७ ॥

कदाहमीदृशं पुत्रं द्रक्ष्याम्यानन्ददायिनम् ।

शर्व उवाच ।

एष एव सुतस्तेऽस्तु नयनानन्दहेतुकः ॥ ५४८ ॥

त्वया मात्रा कृतार्थस्तु वीरकोऽपि सुमध्यमे ! ।

इत्युक्त्वा प्रेषयामास विजयां हर्षणोत्सुका ॥ ५४९ ॥

वीरकानयनायाशु दुहिता हिमभूभृतः । सावरुह्य त्वरायुक्ता प्रासादादम्बरस्पृशः ॥

विजयोवाच गणपङ्कणमध्ये प्रवर्तिता ।

विजयोवाच ।

एहि वीरक ! चापल्यात् त्वया देवः प्रकोपितः ॥ ५५१ ॥

किमुत्तरं वदत्यर्थे नृत्यरंगे तु शैलजा । इत्युक्तस्त्यक्तपाषाणशकलो मार्जिताननः ॥

आहूतस्तु तयोद्भूतमूलप्रस्तावशंसकः । देव्याः समीपमागच्छज्जययानुगतः शनैः ॥

प्रासादशिखरात्फुल्लरक्ताम्बुजनिभद्युतिः । तं दृष्ट्वा प्रस्नुतानल्पस्वादुक्षीरपयोधरा ॥

गिरिजोवाच सस्नेहं गिरा मधुरवर्णया ॥ ५५४ ॥

अथ गद्यानि ।

उमोवाच ।

एह्येहि यातोऽसि मे पुत्रतान्देव देवेनः दत्तोऽङ्गनावीरक ! ॥ ५५५ ॥

इत्येवमङ्के निधायाथ तं पर्यष्वजत् कपोले कलवादिनम ॥ ५५६ ॥

मूर्ध्न्युपाघ्राय संमार्ज्य गात्राणि भूषयामास दिव्यैः स्वयंभूषणैः किङ्किणीमेखलानूपुरैर्मा-

णिक्य केयूरहारोरुमूलगुणैः ॥५५७॥ कामलैःपल्लवैश्चित्रितैश्चारुभिर्दिव्यमन्त्रोद्भवैस्तस्य शुभैस्ततो भूरिभिश्चाकरोन्मिश्रसिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधिः ॥ ५५८ ॥ एवमादाय चोवाच कृत्वा संमूर्ध्नि गोरोचनां पत्रभङ्गोज्ज्वलैः ॥ ५५९ ॥ गच्छगच्छाधुना क्रीडसार्द्धंगणैर-प्रमत्तोवसं श्वभ्रवर्जाशनैर्व्यालमालाकुलाशैलसानुद्रुमदन्तिभिर्भिन्नसाराः परैसंगिनः ॥५६०॥ जाह्नवीयं जलं क्षुब्धतोयाकुलम् कूलं मा विशेथा बहुव्याघ्रदुष्टे वने ॥५६१॥ वत्सासंख्येषु दुर्गागणेशेष्वेतस्मिन् वीरके पुत्रभावोपतुष्टान्तः करणातिष्ठतु ॥५६२ स्वस्य पितृजनप्रार्थितं भव्यमायातिभाविन्यसौभव्यता ॥ ५६३ ॥ सोऽपि निभृत्य सर्वगणैः सस्मयमाह बालत्वलीलारसाविष्टधीः ॥ ५६४ ॥ एषमात्रा स्वयं मे कृतभूषणोऽत्र एषपटः पटलैर्विन्दुभिः सिन्दुवारस्य पुष्पैरियं मालतीमिश्रितामालिका मे शिरस्याहिता ॥ ५६५ ॥ कोऽयमातोद्यधारीगणस्तस्य दास्यामि हस्तादिदं क्रीड-नम् ॥ ५६६ ॥ दक्षिणात् पश्चिमं पश्चिमादुत्तरमुत्तरात् पूर्वमभ्येत्य सख्या युता प्रेक्षती तं गवाक्षान्तराद्वीरकं शैलपुत्री बहिः क्रीडनं यज्जगन्मातुरेष चित्तभ्रमः ॥ ५६७ ॥ पुत्रलुब्धो जनस्तत्र को मोहमायाति न स्वल्पचेताजडो मांसविण्मूत्रसङ्घातदेहः॥५६८ द्रष्टुमभ्यन्तरन्नाकवासेश्वरैरिन्दुमौलिं प्रविष्टेषु कक्षान्तरम् ॥ ५६९ ॥ वाहनात्या-वरोहागणास्तैर्युतोलोकपालास्त्रमूर्तोह्ययं खड्गो विखड्गकरोनिर्ममः कृतान्तः कस्य केनाहतो ब्रूत मौने भवन्तोऽस्त्रदण्डन किं दुस्पृहा ॥ ५७० ॥ भीममूर्त्याननं नास्ति कृत्यङ्गिरौ य एषोऽस्त्रज्ञेन किं वध्यते ॥ ५७१ ॥ मावृथा लोकपालानुगचित्तता एव मेवैतदित्यूचुरस्मै तदा देवताः ॥५७२॥ देवदेवानुगम्वीरकं लक्षणाप्राह देवी वनंपर्वता-निर्झराण्यद्रिदेव्यान्यथोभूतपानिर्झराम्भोनिपातेषु निमज्जत ॥ ५७३ ॥ पुष्पजाला-वनद्धेषु धामस्वपिशेत प्रत्तुङ्गनाद्रिकुञ्जेष्वनुगर्जन्तु हे मारुतां स्फोटसंक्षेपणान् कामतः ॥ ५७४ ॥ काञ्चनोत्तुगशृङ्गावरोहक्षितौ हेमरेणूत्करासङ्गद्युतिम् । खेचराणां घनाधायिनि रम्ये बहुरूपसम्पत्प्रकरैगणान्वासितम् मन्दरकन्दरे सुन्दरमन्दार-पुष्पप्रवालाम्बुजे सिद्धनारीभिरापीतरूपामृतं विस्तृतैर्नेत्रपात्रैरनुन्मेषिभिर्वीरकं शैल-पुत्री निमेषान्तरादस्मरत् पुत्रगृध्नी विनोदार्थिनी॥ ५७५ ॥ सोऽपि तादृक् क्षणावाप्त-

पुण्योदयो योऽपि जन्मान्तरस्यात्मजत्वंगतः ॥५७६॥ क्रीडतस्तस्य तृप्तिः कथं जायते योऽपि भाविजगद्वेधसा तेजसः कल्पितः प्रतिक्षणं दिव्यगीतक्षणो नृत्यलोलो गणेशः स्वप्रणत्यक्षणः सिंहनादाकुले गण्डशैलेऽसृजद्रत्नजाले वृहत्सालताले क्षणे फुल्लनानातमालालिकाले क्षणं वृक्षमूले विलोलोमराले क्षणे स्वल्पपङ्केजले पङ्कजाढ्ये क्षणं मातुरङ्के शुभे निष्कलङ्के ॥ ५७७ ॥

परिक्रीडते बाललीलाविहारी गणेशाधिपो दैवतानन्दकारी ।
निकुञ्जेषु विद्याधरैर्गीतशीलः पिनाकीव लीलाविलासैः सलीलः ॥ ५७८ ॥

प्रकाश्य भुवनाभोगी ततो दिनकरे गते । देशान्तरं तदा पश्चाद्दूरमस्तावनीधरम्॥

उदयास्ते पुरोभावी यो हि चास्तेऽवनीश्वरः ।
मित्रत्वमस्य सुदृढं हृदये परिचिन्त्यताम् ॥ ५८० ॥
नित्यमाराधितः श्रीमान् पृथुमूलः समुन्नतः ।
नाकरोत् सेवितुं मेरुरुपहारं पतिष्यतः ॥ ५८१ ॥

यतिष्ये मा व्यवस्थेति संश्रयेणाखिलं बुधः । दिनान्तानुगतो भानुः स्वजनत्वमपूरयत्

सन्ध्याबद्धाञ्जलिपुटा मुनयोऽभिमुखा रविम् ।
याचन्त्याङ्गमनं शीघ्रं निवार्यात्मनि भाविताम् ॥ ५८३ ॥

व्यजृम्भदथ लोकेऽस्मिन् क्रमाद्वैभावरन्तमः । कुटिलस्येव हृदये कालुष्यन्दूषयन्मनः॥ ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके । शयनं शशिसङ्घातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम्॥ नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् । रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम्॥ कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम् । मन्दिरे मन्दसञ्चारः शनैर्गिरिसुतायुतः॥ तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः । शशिमौलिसितज्योत्स्नाशुचिपूरितगोचरः॥ गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः । विभावर्या च संपृक्ता बभूवातितमोमयी

तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम् ॥ ५८६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शिवपार्वतीसंवादवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शिवपार्वतीसंवादवर्णनम् ।

शर्व उवाच ।

शरीरे मम तन्वङ्गि ! सिते भास्यसितद्युतिः
भुजङ्गीवासिता शुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ ॥ १ ॥

चन्द्रातपेन संपृक्ता रुचिराम्बरया तथा । रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ २ ॥

इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना । उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीकुटिलानना॥

देव्युवाच ।

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते । अवश्यमर्थात् प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डन !

तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम् । तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदे पदे ॥ ५ ॥

नैवास्मि कुटिला शर्व ! विषमा नैव धूर्जटे ! ।
स विषस्त्वङ्गतः ख्याति व्यक्तं दोषाकराश्रयात् ॥ ६ ॥

नाहं पूष्णोऽपि दशना नेत्रे चास्मि भवस्य हि ।
आदित्यश्च विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः ॥ ७ ॥

मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् । यस्त्वं ममाह कृष्णेति महाकालेतिविश्रुतः

यास्याम्यहं परित्यक्त्वा चात्मानं तपसा गिरिम् । जीवन्त्यानास्ति मे कृत्यं धूर्त्तेनपरिभूतया

निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरम्भवः । उवाचाधिकसम्भ्रान्तः प्रणयेनेन्दुमौलिना

शर्व उवाच ।

अगात्मजासि गिरिजे ! नाहं निन्दापरस्तव । त्वद्भक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम्

विकल्पःस्वस्थचित्तेऽपिगिरिजे ! नैव कल्पना । यद्येवं कुपिताभीरु ! त्वन्तवाहन्नवैपुनः

नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते ! । शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्तेमयाञ्जलिः

स्नेहेनाप्यवमानेन निन्दितेनैव विक्रियाम् । तस्मान्न यातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल

अनेकैः स्वादुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता । कोपन्तीव्रन्न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता
अवष्टब्धमथास्फाल्य वासः शङ्करपाणिना । विपर्यस्तालका वेगाद्यातुमैच्छत शैलजा ॥
तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः । सत्यं सर्वैरवयवैः सुतासि सदृशी पितुः
हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघजालाकुलैर्नभः । तथा दुरवगाह्येभ्यो हृदयेभ्यस्तवाशयः ॥१८॥
काठिन्याङ्गस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधागता । कुटिलत्वञ्चवर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वंहिमादपि
संक्रान्ति सर्वदैवेति तन्वङ्गि ! हिमशैलरात् । इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशंशैलजातदा
कोपकम्पितमूर्द्धा च प्रस्फुरद्दशनच्छदा ।

उमोवाच ।

मा सर्वान्दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनोजनान् ॥ २१ ॥

तवापिदुष्टसम्पर्कात् संक्रान्तंसर्वमेवहि । व्यालेभ्योऽधिकजिह्वत्वं भस्मनास्नेहवन्धनम्
हृत्कालुष्यं शशाङ्कात्तु दुर्बोधित्वं वृषादपि । तथा बहु किमुक्तेन अलं वाचा श्रमेण ते
श्मशानवासान्निर्भीत्वं नग्नत्वान्न तवत्रपा । निर्घृणत्वं कपालित्वाद्दया तेविगताचिरम्
इत्युक्त्वामन्दिरात्तस्मान्निर्जगामहिमाद्रिजा । तस्यांव्रजन्त्यांदेवेशगणैःकिलकिलोध्वनिः
क मातर्गच्छसित्यक्त्वारुदन्तोधाविताःपुनः । विष्टभ्य चरणौदेव्यावीरकोवाष्पगद्गदम्
प्रोवाचमातः ! किन्त्वेतत्क्वयासिकुपितान्तरा । अहंत्वामनुयास्यामिव्रजन्तींस्नेहवर्जिताम्
सोऽहं पतिष्ये शिखरात्तपोनिष्ठे त्वयोज्भितः । उन्नाम्य वदनं देवो दक्षिणेनतुपाणिना
उवाच वीरकं माता माशोकं पुत्र ! भावय । शैलाग्रात् पतितुं नैव नचागन्तुं मया सह
युक्तन्तेपुत्र ! वक्ष्यामि येनकार्येणतच्छृणु । कृष्णेत्युक्त्वाहरेणाहंनिन्दिताचाप्यनिन्दिता
साहं तपःकरिष्यामियेन गौरीत्वमाप्नुयात् । एष स्त्रीलम्पटोदेवो यातायां मय्यनन्तरम्
द्वाररक्षा त्वयाकार्य्यानित्यं रन्ध्रान्ववेक्षिणा । यथानकाचित्प्रविशेद्योषिदत्रहरान्तिकम्
दृष्ट्वा परस्त्रियश्चात्र वदेथा मम पुत्रक ! । शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम् ॥३३
एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह साम्प्रतम् । मातुराज्ञामृताह्लादप्लाविताङ्गो गतज्वरः
जगाम कक्ष्यां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पार्वतीवनगमनं नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पार्वतीतपश्चर्यावर्णनम् ।

सूत उवाच ।

देवीं सापश्यदायान्तीं सतीं मातुर्विभूषिताम् । कुसुमामोदिनीं नाम तस्यशैलस्यदेवताम्
सापि दृष्ट्वागिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा । क्व पुत्रि ! गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाचदेवता
साचास्यैसर्वमाचख्यौशङ्करात् कोपकारणम् । पुनश्चोवाचगिरिजादेवतांमातृसम्मताम्

उमोवाच ।

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते ! । सर्वतः सन्निधानन्तेमम चातीववत्सला
अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदाधिया । अन्यस्त्रीसंप्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः
रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ । पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयाऽनघे !॥
ततोऽहं संविधास्यामियत्कृत्यंतदनन्तरम् । इत्युक्तासा तथेत्युक्त्वाजगामस्वगिरिंशुभम्
उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम् । अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा ॥
ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी । ग्रीष्मे पञ्चाग्निसन्तप्ता वर्षासु च जलोषिता

वन्याहारा निराहारा शुष्का स्थण्डिलशायिनी ।
एवं साधयती तत्र तपसा संव्यवस्थिता ॥ १० ॥

ज्ञात्वा तु त्वां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरेवशी । अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन्
देवान्सर्वान् विजित्याजौ बकभ्राता रणोत्कटः । आडिर्नामान्तरप्रेक्षी सततंचन्द्रमौलिनः
आजगामामररिपुः पुरन्त्रिपुरघातिनः । स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम् ॥१३॥
विचिन्त्यासीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना । हते तदान्धके दैत्ये गिरिशेनामरद्विषि॥१४
आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम् । तमागत्याब्रवीद् ब्रह्मा तपसा परितोषितः ॥
किमाडे ! दानवश्रेष्ठ ! तपसा प्राप्तुमिच्छसि । ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे

ब्रह्मोवाच ।

न कश्चिच्चविनामृत्युंनरोदानव ! विद्यते । यतस्ततोऽपिदैत्येन्द्र ! मृत्युःप्राप्यःशरीरिणा

इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसम्भवम्। रूपस्यपरिवर्तो मे यदास्यात्पद्मसम्भव!
तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथात्वमरोह्यहम्। इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसम्भवः ॥१९
यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्तस्ते भविष्यति। तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति
इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः। तस्मिन् काले तु संस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः
परिहर्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा। भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशः पथम् ॥ २२॥
परिहृत्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः। अलक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम्॥
भुजङ्गरूपं सन्त्यज्य बभूवाथ महासुरः। उमारूपी छलयितुं गिरिशं मूढचेतनः ॥ २४॥
कृत्वा मायान्ततोरूपमप्रतर्क्यमनोहरम्। सर्वावयवसंपूर्णं सर्वाभिज्ञानसंवृतम् ॥ २५॥
कृत्वामुखान्तरैर्दन्तान्दैत्योवज्रोपमान्दृढान्। तीक्ष्णाग्रान् बुद्धिमोहेनगिरिशंहन्तुमुद्यतः
कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम्। पापोरम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषितः
तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदालिङ्ग्य महासुरम्। मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः॥
अपृच्छत् साधुतेभावोगिरिपुत्रि! न कृत्रिमः। यात्वं मदाशयं ज्ञात्वाप्राप्तेहवरवर्णिनि!
त्वया विरहितं शून्यं मन्यमानो जगत्त्रयम्। प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवं विधन्त्वयि॥
इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदा भाषत् स्मयंश्छनैः। नचाबुद्धयदभिज्ञानं प्रायस्त्रिपुरघातिनः

देव्युवाच।

यातास्म्यहं तपश्चर्तुं वलभ्यायतवातुलम्। रतिश्च तत्र मेनाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम्॥
इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां काञ्चित् प्राप्यावधारयत्। हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः
कुपिता मयि तन्वङ्गी प्रकृत्या च दृढव्रता। अप्राप्तकामा संप्राप्ता किमेतत् संशयो मम
इति चिन्त्य हरस्तस्या अभिज्ञानं विचारयन्। नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्गे पद्मलक्षणम्
लोमावर्तन्तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक्। अबुध्यद्दानवीमायामाकारं गूहयंस्ततः॥
मेढ्रे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमशातयत्। अबुध्यद्वीरकोनैव दानवेन्द्रं निषूदितम् ॥३७॥
हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम्। अपरिच्छिन्नतत्वार्था शैलपुत्र्यै न्यवेदयत्॥
दूतेन मारुतेनाशुगामिना नगदेवता। श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्तविलोचना॥
अशपद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता ॥ ३९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे आडिदैत्यवधवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पार्वतीम्प्रति ब्रह्मवरदानम् ।

देव्युवाच ।

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविक्लवात् । विहितावसरः स्त्रीणां शङ्करस्यरहोविधौ
तस्मात्ते पुरुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता । गणेशक्षारसदृशी शिला माता भविष्यति ॥२॥
निमित्तमेतद्विख्यातं वीरकस्य शिलोदये । सोऽभवत्प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंशयः॥

एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यस्त्वनन्तरम् ।
निर्जगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः ॥ ४ ॥

सतु सिंहः करालास्यो जटाजटिलकन्धरः । प्रोद्धूतलम्बलाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटमुखातटः
व्यावृत्तास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिः शिरादिषु । तस्याशुवर्तितुं देवी व्यवस्यत सतीतदा
ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः । आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा

ब्रह्मोवाच ।

किं पुत्रि ! प्राप्तुकामासि किमलभ्यं ददामि ते ॥ ८ ॥

विरम्यतामति क्लेशात्तपसोऽस्मान्मदाज्ञया। तच्छ्रुत्वोवाच गिरिजा गुरुङ्गौरवगर्भितम्
वाक्यं वाचा चिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाञ्छितम् ।

देव्युवाच ।

तपसा दुष्करेणाप्तः पतित्वे शङ्करो मया ॥ १० ॥

स मां श्यामलवर्णेति वहुशःप्रोक्तवान् भवः । स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येनच संयुता
भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निर्विशेऽङ्कवत् । तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः ॥
एवं भव त्वं भूयश्च भर्तृदेहार्द्धधारिणी । ततस्तस्याजभृङ्गाङ्गं फुल्लनीलोत्पलत्वचम् ॥
त्वचा सा चाभवद्दीप्ता घण्टाहस्ताविलोचना । नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयधारिणी
तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम् । निशे भूधरजा देहसम्पर्कात्त्वं ममाज्ञया ॥

सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशापुराह्यसि । य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने

स तेऽस्तु वाहनं देवि ! केतौ चस्तु महाबलः ।

गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि ॥ १७ ॥

पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः । दत्तस्ते किङ्करो देवि ! मया मायाशतैर्युतः॥

इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह ।

उमापि प्राप्तसङ्कल्पा जगाम गिरिशान्तिकम् ॥ १९ ॥

प्रविशन्तीति तां द्वारि ह्यपकृष्य समाहितः । रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः ।२०।

तामुवाच च कोपेन रूपात्तु व्यभिचारिणीम् ।

प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसि ॥ २१ ॥

देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह ।

प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स वै देवेन घातितः ॥२२॥

घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकण्ठेन कोपिना। द्वारेषु नावधानं ते यस्मात् पश्यामिवै ततः भविष्यसि नमद्द्वास्थोव र्षपूगान्यनेकशः । अतस्तेऽत्र न दास्यामिप्रवेशंगम्यतांद्रुतम्

इति श्री मत्स्यपुराणे पार्वतीम्प्रति ब्रह्मवरदानं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वीरक पार्वती संवादः ।

वीरक उवाच ।

एवमुक्त्वा गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला ।

प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने ॥१॥

इत्युक्ता तु तदा देवी चिन्तयामास चेतसा ।

न सा नारीति दैत्योऽसौ वायुर्मे [illegible] ॥२॥

वृथैव वीरकः शप्तो मया क्रोधपरीतया। अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्।

अपरिच्छिन्नतत्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम् ॥४॥

विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः। सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा ॥

लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा।

देव्युवाच।

अहं वीरक! ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः।

शङ्करस्यास्मि दयिता सुता तु हिमभूभृतः। मम गात्रच्छविभ्रान्त्यामाशङ्कांपुत्र! भावय

तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना। मया शप्तोऽस्य विदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते॥

ज्ञात्वा नारीप्रवेशन्तु शङ्करे रहसि स्थिते। न निवर्तयितुं शक्यः शापः किन्तु ब्रवीमिते

शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात् स त्वं कामसमन्वितः। शिरसा तु ततोवन्द्यमातरंपूर्णमानसः

उवाचार्चितपूर्णेन्दुद्युतिश्च हिमशैलजाम् ॥ १० ॥

वीरक उवाच।

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणिप्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते।

नगसुते! शरणागतवत्सले! तव नतोऽस्मि नतार्त्तिविनाशिनि ॥११॥

तपनमण्डलमण्डितकन्धरे! पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते।

विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते! गिरिसुते! भवतीमहमाश्रये ॥१२॥

जगति कः प्रणताभिमतन्ददौ झटिति सिद्धनुते भवती यथा।

जगति काञ्च न वाञ्छति शङ्करो भुवनधृत्तनये! भवतीं यथा ॥१३॥

विमलयोगविनिर्मितदुर्जयस्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले।

विदलितान्धकबान्धवसंहतिः सुरवरैः प्रथमन्त्वमभिष्टुता ॥१४॥

सितसटापटलोद्धतकन्धराभरमहामृगराजरथास्थिता।

विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघविपिष्टमहासुरा ॥१५॥

निगदिता भुवनैरिति चण्डिका जननि! शुम्भनिशुम्भनिषूदनी।

प्रणतचिन्तितदानवदानवप्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि ॥१६॥
वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वलेऽवनितले तव देवि ! च यद्वपुः ।
तदजितेऽप्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि ! ते भववल्लभे ॥१७॥
जलधयो ललितोद्धतवीचयो हुतवहद्युतयश्च चराचरम् ।
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमास्त्वदभिधास्यति मय्यभयङ्कराः ॥१८॥
भगवति ! स्थिरभक्तजनाश्रये ! प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम् ।
करणजातमिहास्तु ममाचलन्नुतिलवाप्तिफलाशयहेतुतः ॥
प्रशममेहि ममात्मजवत्सले ! नमोऽस्तु ते देवि ! जगत्त्रयाश्रये ! ॥१९॥

सूत उवाच ।

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता । प्रविवेश शुभं भर्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥२०॥
द्वारस्थो वीरको देवान् हरदर्शनकाङ्क्षिणः । व्यसर्जयत् स्वान्येव गृहाण्यादरपूर्वकम् ॥
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्यासह वृषाकपिः । निभृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्तेचयथागतम् ॥
गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसाः । ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम् ॥२३॥
प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः । ददृशे नयने शर्वं रतं गिरिजया सह ॥ २४॥
ददृशे तञ्च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम् । तमुवाच महादेवः किञ्चित् कोपसमन्वितः ॥
यस्मात्तु त्वत्कृतोविघ्नस्तस्मात्त्वय्युगपद्यते । इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद्वीर्यमाहितम् ॥
तेनापूर्यत तान्देवांस्तत्तत्कायविभेदतः । विपाट्य जठरन्तेषां वीर्यं माहेश्वरन्ततः ॥२७॥
निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं वितते शङ्कराश्रमे । तस्मिन् सरो महज्जातं विमलं बहुयोजनम् ॥
प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम् । तच्छ्रुत्वा तु ततो देवी हेमद्रुममहाजलम् ॥
तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा । उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता ॥३०॥
पातुकामा च तत्तोयंस्वादुनिर्मलपङ्कजम् । अपश्यन् कृत्तिकाःस्नाताःषडर्कद्युतिसन्निभम् ॥
पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहत्वोपस्थिता गृहम् । हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः ॥
ततस्ता ऊचुरखिलं कृत्तिका हिमशैलजम् ।

कृत्तिका ऊचुः ।

दास्यामो यदि ते गर्भः सम्भूतो यो भविष्यति ॥३२॥

सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मन्नाम्नाचवर्तताम् । भवेल्लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपिशुभानने!
इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्गात्रसम्भवः । सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतोभवेत् ॥
ततस्तां कृत्तिकाऊचुर्विधास्यामोऽस्यवैवयम् । उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यद्येवन्तुभविष्यति
उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः । ततस्ताहर्षसम्पूर्णाः पद्मपत्रस्थितं पयः ॥
तस्यैददुस्तयाचापितत्प्रीतं क्रमशो जलम् । पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन्सरोवरे
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणांकुक्षिमुद्गतः । निश्चक्रामाद्भुतोबालः सर्वलोकविभासकः
प्रभाकरप्रभाकारः प्रकाशकनकप्रभः । गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलः षडाननः ॥ ४० ॥

दीप्तो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छविः ।
एतस्मात् कारणाद्देवः कुमारश्चापि सोऽभवत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कुमारप्रादुर्भाववर्णनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कुमारोत्पत्तिवर्णनम् देवकृतकुमारस्तुतिश्च ।

सूत उवाच ।

वामं विदार्य निष्क्रान्तः सुतो देव्याः पुनः शिशुः ।
स्कन्दाच्च वदने वह्नेः शुक्रात् सुवदनोऽरिहा ॥ १ ॥

कृत्तिकामेलनादेवशाखाभिःसविशेषतः । शाखाभिधाःसमाख्याताःषट्सुवक्त्रेषुविस्तृताः

यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु षण्मुखः ।
स्कन्दो विशाखः षड्वक्त्रो कार्त्तिकेयश्च विश्रुतः ॥ ३ ॥

चैत्रस्य बहुले पक्षे पञ्चदश्यां महाबलौ । संभूतावर्कसदृशौ विशाले शरकानने ॥ ४ ॥

चैत्रस्यैव सिते पक्षे पञ्चम्यां पाकशासनः। बालकाभ्याञ्चकारैकं मत्वा चामरभूतये ॥
तस्यामेव ततःषष्ठ्यामभिषिक्तो गुहः प्रभुः। सर्वैरमरसङ्घातैर्ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभास्करैः ॥६॥
गन्धमाल्यैः शुभैर्धूपैस्तथा क्रीडनकैरपि। छत्रैश्चामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः ॥७॥
अभ्यर्चितो विधानेन यथावत्षण्मुखः प्रभुः। सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विश्रुताम्
पत्न्यर्थं देवदेवस्य ददौ विष्णुस्तदायुधान्। यक्षाणां दशलक्षाणि ददावस्मै धनाधिपः
ददौ हुताशनस्तेजो ददौ वायुश्च वाहनम्। ददौ क्रीडनकान्त्वष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम्
एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनुत्तमम्। ददुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायादित्यवर्चसे ॥११
जानुभ्यामवनौ स्थित्वा सुरसङ्घास्तमस्तुवन्। स्तोत्रेणानेन वरदं षण्मुखं मुख्यशःसुराः

देवा ऊचुः।

नमः कुमाराय महाप्रभाय स्कन्दाय च स्कन्दितदानवाय।
नवार्कविद्युद्द्युतये नमोऽस्तु नमोऽस्तु ते षण्मुख कामरूप !! ॥ १३ ॥
पिनद्धनानाभरणाय भर्त्रे नमो रणे दारुणदारुणाय।
नमोऽस्तु तेऽर्कप्रतिमप्रभाय नमोऽस्तु गुह्याय गुहाय तुभ्यम् ॥ १४ ॥
नमोऽस्तु त्रैकोक्यभयापहाय नमोऽस्तु ते बालकृपापराय।
नमो विशालामललोचनाय नमो विशाखाय महाव्रताय ॥ १५ ॥
नमो नमस्तेऽस्तु मनोहराय नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय।
नमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय नमोऽस्तु केयूरधराय तुभ्यम् ॥ १६ ॥
नमो धृतोदग्रपताकिने नमो नमः प्रभावप्रणताय तेऽस्तु।
नमो नमस्ते वरवीर्यशालिने क्रियापराणां भवभव्यमूर्तये ॥ १७ ॥
क्रियापरा यज्ञपतिश्च स्तुत्वा विरेमुरेव त्वमराधिपाद्याः।
एवं तदा षड्वदनन्तु सेन्द्रा मुदा सुतुष्टश्च गुहस्ततस्तान्।
निरीक्ष्य नेत्रैरमरैः सुरेशान् शत्रून् हनिष्यामि गतज्वराःस्थ ॥ १८ ॥

कुमार उवाच।

कं वः कामं प्रयच्छामि देवता ! ब्रूत निर्वृताः।

यद्यप्यसाध्यं हृद्यं वो हृदये चिन्तितम्परम् ॥ १६ ॥

इत्युक्तास्तु सुरास्तेन स्तुत्वा प्रणतमौलयः । सर्वएव महात्मानं गुहं तद्गतमानसाः ॥

दैत्येन्द्रस्तारकोनाम सर्वामरकुलान्तकृत् । बलवान् दुर्जयोदुष्टो दुराचारोऽतिकोपनः॥

तमेव जहि हृद्योऽर्थं एषोऽस्माकं भयापह. । एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्वामरपदानुगः ॥

जगाम जगतां नाथ स्तूयमानोऽमरेश्वरैः । तारकस्य वधार्थाय जगतः कण्टकस्य वै ॥

ततश्च प्रेषयामास शक्रोलब्धसमाश्रयः । दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरवादिनम् ॥ २४ ॥

स तु गत्वाब्रवोद्दैत्यं निर्भयो भीमदर्शनः ।

दूत उवाच ।

शक्रस्त्वामाह देवेशो दैत्यकेतो ! दिवस्पतिः ॥ २५ ॥

तारकासुर ! तच्छ्रुत्वा घट शक्त्या यथेच्छया ।

यज्जगद्दलनादात्तं किल्बिषं दानव ! त्वया ॥ २६ ॥

तस्याहं शासकस्तेऽद्य राजास्मि भुवनत्रये । श्रुत्वैतद्दूतवचनं कोपसंरक्तलोचनः ॥२७

उवाच दूतं दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः ।

तारक उवाच ।

दृष्टं ते पौरुषं शक्र ! रणेषु शतशो मया ॥ २८ ॥

निस्त्रपत्वान्न ते लज्जा विद्यते शक्र ! दुर्मते ! । एवमुक्ते गते दूते चिन्तयामास दानवः

नालब्धसंश्रयःशक्रोवक्तुमेवं हि चार्हति । जितः स शक्रो नोऽकस्माज्ज्ञायतेसंश्रयाश्रयः

निमित्तानि च दुष्टानि सोऽपश्यद्दुष्टचेष्टितः । पांसुवर्षमसृक्पातं गगनादवनीतले ॥

भुजनेत्रप्रकम्पं च वक्त्रशोषं मनोभ्रमम् । स्वकान्तावक्त्रपद्मानांम्लानताञ्चव्यलोकयत्

दुष्टांश्च प्राणिनो रौद्रान् सोऽपश्यद् दुष्टवेदिनः ।

तद्‌चिन्त्यैव दितिजो न्यस्तचिन्तोऽभवत् क्षणात् ॥ ३३ ॥

यावद्गजघटाघण्टारणत्काररवोत्कटाम् । तद्वत्तुरगसङ्घातक्षुण्णभूरेणुपिञ्जराम् ॥ ३४ ॥

चञ्चलस्यन्दनोदग्रध्वजराजिविराजिताम् । विमानैश्चाद्भुताकारैश्चलितामरचामरैः ॥३५॥

तां भूषणनिबद्धाश्च किन्नरोद्गीतवादिताम् । नानानाकतरूत्फुलकुसुमापीडधारिणीम् ॥

विकोशास्त्रपरिष्कारांवर्म्मनिर्म्मलदर्शनाम् । वन्द्युद्घुष्टस्तुतिरवां नानावाद्यनिनादिताम्

सेनां नाकसदां दैत्यः प्रासादस्थो व्यलोकयत् ।

चिन्तयामास स तदा किंचिदुद्भ्रान्तमानसः ॥ ३८ ॥

अपूर्वः को भवेद्योद्धा यो मया न विनिर्जितः । ततश्चिन्ताकुलोदैत्यसुश्रावकटुकाक्षरम्

सिद्धबन्दिभिरुद्घुष्टमिदं हृदयदारणम् ।

अथ गाथा ।

जय अतुलशक्तिदीधितिपिञ्जर !

भुजदण्डचण्डरभस ! सुखद ! कुमुदकाननविकासनेन्दो !

कुमार ! जय दितिजकुलमहोदधिवडवानल ! ॥ ४० ॥

षण्मुख ! मधुररवमयूररथ ! सुरमुकुटकोटिघट्टितचरणनखाङ्कुरमहासन ! ॥

जय ललितचूडाकलापनवविमलदल ! कमलकान्त ! दैत्यवंशदुःसहदावानल ! ॥४१

जय विशाख ! विभो ! जय सकललोकतारक !। स्कन्द ! जय गौरीनन्दन ! घण्टाप्रिय

प्रिय ! विशाख ! विभो ! धृतपताकप्रकीर्णपटल !। कनकभूषणभासुरदिनकरच्छाय !।

जय जनितसंभ्रमलीलालूनाखिलाराते !

जय सकललोकतारक ! दितिजासुरवरतारकान्तक ! ।

स्कन्द ! जय बाल ! सप्तवासर ! जय भुवनावलिशोकविनाशन ! ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्स्यमहापुराणे कुमारस्तुतिर्नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

तारकोपाख्यानम् । वधं च ।

सूत उवाच ।

श्रुत्वैतत्तारकः सर्वमुद्घुष्टं देववन्दिभिः । सस्मार ब्रह्मणोवाक्यं वधं बालादुपस्थितम्

स्मृत्वा धर्मं ह्यधर्माङ्गः पदातिरपदानुगः । मन्दिरान्निर्जगामाशु शोकग्रस्तेन चेतसा ॥

कालनेमिमुखा दैत्याः संरम्भादुद्भ्रान्तचेतसः। योधा! धावतगृह्णीतयोजयध्वंवरूथिनीम्

कुमारं तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणाकृतिः।
किं बाल! योद्धुकामोऽसि क्रीड कन्दुकलीलया ॥ ४ ॥

त्वया न दानवा दृष्टा यत् सङ्गरविभीषकाः। बालत्वादथ ते बुद्धिरेवं स्वल्पार्थदर्शिनी ॥
कुमारोऽपि तमग्रस्थं बभाषे हर्षयन् सुरान्। शृणु तारक! शास्त्रार्थस्तवचैव निरूप्यते
शास्त्रैरर्था न दृश्यन्ते समये निर्भये भटैः। शिशुत्वं मावमंस्था मे शिशुःकालभुजङ्गमः ॥

दुष्प्रेक्ष्यो भास्करो बालस्तथाहं दुर्जयः शिशुः।
अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सुस्फुरो दैत्य! दृश्यते ॥ ८ ॥

कुमारे प्रोक्तवत्येवं दैत्यश्चिक्षेप मुद्गरम्। कुमारस्तं निरस्याथ वज्रेणामोघवर्चसा ॥
ततश्चिक्षेप दैत्येन्द्रो भिन्दिपालमयोमयम्। करेण तच्च जग्राह कार्तिकेयोऽमरारिहा ॥

गदां मुमोच दैत्याय षण्मुखोऽपि खरस्वनाम्।
तया हतस्ततो दैत्यश्चकम्पेऽचलराडिव ॥ ११ ॥

मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा षड्वदनं रणे। चिन्तयामास बुद्ध्या वै प्राप्तः कालोऽसंशयः
कुपितन्तु तमालोक्य कालनेमिपुरोगमाः। सर्वे दैत्येश्वरा जघ्नुः कुमारं रणदारुणम् ॥

स तैः प्रहारैरस्पृष्टो वृथाक्लेशो महाद्युतिः।
रणशौण्डास्तु दैत्येन्द्राः पुनः प्रासैः शिलीमुखैः ॥ १४ ॥

कुमारं सामरञ्जघ्नुर्बलिनो देवकण्टकाः। कुमारस्य व्यथा नाभूद्दैत्यास्त्रनिहतस्य तु ॥
प्राणान्तकरणो जातो देवानां दानवाहवः। देवान्निपीडितान्दृष्ट्वाकुमारःकोपमाविशत्
ततोऽस्त्रैर्वारयामास दानवानामनीकिनीम्। तैरस्त्रैर्निष्प्रतीकारैस्ताडिताःसुरकण्टकाः
कालनेमिमुखाः सर्वे रणादासन् पराङ्मुखाः। विद्रुतेष्वथ दैत्येषु हतेषु च समन्ततः ॥

ततः क्रुद्धो महादैत्यस्तारकोऽसुरनायकः।
जग्राह च गदां दिव्यां हेमजालपरिष्कृताम् ॥ १८ ॥

जघ्ने कुमारं गदया निष्टप्तकनकाङ्गदः। शरैर्मयूरं चित्रैश्च चकार विमुखं रणे ॥२०॥
दृष्ट्वा पराङ्मुखं देवो मुक्तरक्तं स्ववाहनम्। जग्राह शक्तिं विमलां रणे कनकभूषणाम् ॥

बाहुना हेमकेयूररुचिरेण षडाननः । ततो जवान्महासेनस्तारकं दानवाधिपम् ॥ २२ ॥

तिष्ठ तिष्ठ सुदुर्बुद्धे ! जीवलोकं विलोकय ।

हतोऽस्यद्य मया शक्त्या स्मर शस्त्रं सुशिक्षितम् ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वा च ततः शक्तिं मुमोच दितिजम्प्रति ।

सा कुमारभुजोत्सृष्टा तत्केयूररवानुगा ॥ २४ ॥

बिभेद दैत्यहृदयं वज्रशैलेन्द्रकर्कशम् । गतासुः स पपातोर्व्यां प्रलये भूधरो यथा ॥

विकीर्णमुकुटोष्णीषो विस्रस्ताखिलभूषणः ।

तस्मिन् विनिहते दैत्ये त्रिदशानां महोत्सवे ॥ २६ ॥

नाभूत् कश्चित्तदा दुःखी नरकेष्वपि पापकृत् ।

स्तुवन्तः षण्मुखं देवाः क्रीडन्तश्चाङ्गनायुताः ॥ २७ ॥

जग्मुः स्वानेव भवनान् भूरिधामान उत्सुकाः । ददुश्चापिवरं सर्वे देवाःस्कन्दमुखं प्रति

तुष्टाः संप्राप्तसर्वेच्छाः सह सिद्धैस्तपोधनैः ।

देवा ऊचुः ।

यः पठेत् स्कन्दसंबद्धां कथां मर्त्यो महामतिः ॥ २९ ॥

शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत् कीर्तिमान् नरः ।

बह्वायुः सुभगः श्रीमान् कान्तिमान् शुभदर्शनः ॥ ३० ॥

भूतेभ्यो निर्भयश्चापिसर्वदुःखविवर्जितः । सन्ध्यामुपास्य वै पूर्वां स्कन्दस्य चरितंपठेत्

स मुक्तः किल्बिषैः सर्वैर्महाधनपतिर्भवेत् । बालानां व्याधिजुष्टानां राजद्वारश्च सेवताम्

इदं तत्परमन्दिव्यं सर्वदा सर्वकामदम् । तनुक्षये च सायुज्यं षण्मुखस्य व्रजेन्नरः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे स्कन्दविजयपठनफलवर्णनं नामोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम् ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः । दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स महत्तपः ॥ २ ॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ॥ ३ ॥
ततः शमदमाभ्याञ्च ब्रह्मचर्येण चैव हि । ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४॥
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह । विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५॥
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैस्तथा । रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ ६ ॥

दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥ ७ ॥
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥ ८ ॥
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेनसुव्रत ! । वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच ।

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मान्देवसत्तम !
ऋषयो वा न मां शापैः शपेयुः प्रपितामह । यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतोमया
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च । न शुष्केण न चार्द्रेण नदिवा न निशाऽथवा

भवेयमहमेवार्कः सोमोवायुर्हुताशनः । सलिलश्चान्तरिक्षश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवोयमः । धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥

ब्रह्मोवाच ।

एते दिव्या वरास्तात ! मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान् कामान् सदा वत्स ! प्राप्स्यसे त्वं न संशयः ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाश एव हि । वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह । वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥

देवा ऊचुः ।

वरप्रदानाद्भगवन् ! बधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाशु भगवन् ! वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥ १६ ॥

भगवन् । सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः । स्रष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुध
सर्वलोकहितंवाक्यं श्रुत्वा देवःप्रजापतिः । आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुभि

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् बधं विष्णुः करिष्यति ॥ २२ ॥
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रा जग्मुर्मुदान्विताः ॥ २३ ॥

लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥
आश्रमेषुमहाभागान् स मुनीन्शंसितव्रतान् । सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयामासदानवः
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः । त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मतः । यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियांश्च देवताः ॥२
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा । सेन्द्रा देवगणायक्षाः सिद्धद्विजमहर्षय
शरणं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् । देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ॥ २६ ॥

देवा ऊचुः ।

नारायण ! महाभाग ! देवास्त्वां शरणंगताः ।

त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ! ॥ ३० ॥

त्वं हि नःपरमो धाता त्वं हि न परमो गुरुः। त्वं हि नःपरमोदेवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम

विष्णुरुवाच।

भयन्त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्। तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ॥

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्। अवध्यममरेन्द्राणं दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ॥३३

एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्यत्रिदशेश्वरान्। वधं सङ्कल्पयामास हिरण्यकशिपोः प्रभुः

सहायश्च महाबाहुरोङ्कारं गृह्य सत्वरम्। अथोङ्कारसहायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः ॥

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः। तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येवचापरः

नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं तथा। नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥

ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम्।

सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ॥ ३८ ॥

विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम्। वैहायसीङ्कामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम् ॥

जराशोकक्लमापेतां निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम्।

वेश्महर्म्यवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥ ४० ॥

अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्म्मणा। दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ॥

नीलपीतसितश्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि। अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ॥४२॥

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत। रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ॥

सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा।

न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्यतां प्राप्नुवन्ति ते ॥ ४४ ॥

नानारूपैरुपकृतां विचित्रैरति भास्वरैः।

स्तम्भैर्न विभृता सा वै शाश्वती चाक्षपा सदा ॥४५॥

सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः।

रसयुक्तं प्रभूतञ्च भक्ष्यभोज्यमनन्तकम् ॥ ४६ ॥

पुण्यगन्धस्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः। उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि संतिच

पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालाङ्कुरधारिणः । लतावितानसंच्छन्ना नदीषु च सरःसु च
वृक्षान् बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभुः । गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च
नातिशीतानि नोष्णानि तत्रतत्र सरांसि च । अपश्यत् सर्वतीर्थानि सभायां तस्य सो विभुः
नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः । रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संवृतानि च ॥
सुकान्तैर्धार्तराष्ट्रैश्च राजहंसैश्च सुप्रियः । कारण्डवैश्चक्रवाकैः सारसैः कुररैरपि ५२
विमलैः स्फाटिकाभैश्च पाण्डुरैश्चन्दनैर्द्विजैः । बहुहंसोपगीतानि सारसाभिरुतानि च
गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्पमञ्जरिधारिणीः । दृष्टवान् पर्वताग्रेषु नागपुष्पधरा लताः ॥
केतक्यशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः । चूता नीपाः प्रस्थपुष्पाः कदम्बाबकुलाधवाः

प्रियङ्गुपाटलावृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रकाः ।
सालास्तालास्तमालाश्च पञ्चकाश्च मनोरमाः ॥ ५६ ॥
तथैवान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः ।
विद्रुमाश्च द्रुमाश्चैव ज्वलिताग्निसमप्रभाः ॥५७॥

स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः । अर्जुनाशोकवर्णाश्च बहवश्चित्रका द्रुमाः
वरुणो वत्सनाभश्च पनसाः सह चन्दनैः । नीलाः सुमनसश्चैव निम्बाअश्वत्थतिन्दुकाः
पारिजाताश्च लोध्राश्च मल्लिका भद्रदारवः । आमलक्यस्तथाजम्बुलकुचाः शैलवालुकाः॥

कालीयकाद्रुकालाश्च हिङ्गवः पारियात्रकाः ।
मन्दारकुन्दलक्काश्च पतङ्गाः कुटजास्तथा ॥६१॥

रक्ताः कुरण्टकाश्चैव नीलाश्चागरुभिः सह । कदम्बाश्चैव भव्याश्चदाडिमा बीजपूरकाः
सप्तपर्णाश्च बिल्वाश्च मधुपैरावतास्तथा । अशोकाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः ॥
मधूकाः सप्तपर्णाश्च बहवस्तीरगा द्रुमाः । लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः ॥
एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः । नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समन्ततः ॥

चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः ।
पुष्पिताः पुष्पिताग्रैश्च सम्पतन्ति महाद्रुमाः ॥६६॥

रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगताः खगाः । परस्परमवेक्षन्ते प्रहृष्टा जीवजीवकाः ॥६७॥

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा। स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः
अनर्घ्यमणिवज्रार्चिशिखाज्वलितकुण्डलः। आसीनश्चासने चित्रे दश नल्वप्रमाणतः ॥
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते। दिव्यगन्धवहस्तत्रमारुतःसुसुखोववौ ॥७०

हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः।
उपचेरुर्महादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा ॥७१॥

दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः। विश्वाची सहजन्याच प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता
दिव्याथ सौरभेयीच समीची पुञ्जिकस्थली। मिश्रकेशीचरम्भाचचित्रलेखाशुचिस्मिता
चारुकेशी घृताची च मेनका चोर्वशीतथा। एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः
उपतिष्ठन्त राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्। तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥
उपासन्त दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा। तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः ॥७६
बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः। प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः ॥७७॥
सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः। घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः कठिनस्तथा ॥
विश्वरूपः सुरूपश्च स्वबलश्च महाबलः। दशग्रीवश्च वालीच मेघवासा महासुरः ॥७९॥
घटास्यो कम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः। दैत्यदानवसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥

स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥ ८१ ॥
एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
उपासन्ति महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः ॥ ८२ ॥

विमानैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः। महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः ॥८३
भूषिताङ्गा दितेःपुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः। तस्यां सभायान्दिव्यायामसुराःपर्वतोपमाः ॥
हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः। न श्रुतन्नैव दृष्टं हि हिरण्यकशिपोर्यथा ॥८५॥

ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः।
कनकरजतचित्रवेदिकायां परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम्।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम् ॥ ८७ ॥

कनकविमलहारविभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श ।
दिवसकरमहाप्रभालसं तन्दितिजसहस्रशतै र्निषेव्यमाणम् ॥ ८८ ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे हिरण्यकशिपुवैभववर्णनंनाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम् । नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादोनाम वीर्यवान् । दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ॥
तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वान्तनुमाश्रितम् । विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः

प्रह्लाद उवाच ।

महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव । न श्रुतं न च नोदृष्टं नारसिंहमिदं वपुः ॥
अव्यक्तप्रभवन्दिव्यं किमिदं रूपमागतम् । दैत्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम ॥५॥
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्चयाः । हिमवान्पारियात्रश्चयेचान्येकुलपर्वताः
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैर्वसुभिः सह । धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥७

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥८॥

ब्रह्मा देवः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै । स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानितथैवच ॥
भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्देवगणैर्वृतः । विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा ॥

सर्वं त्रिभुवनं राजन् ! लोकधर्माश्च शाश्वताः ।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिंस्तथेदमखिलं जगत् ॥११॥

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगश्च महीरुहाश्च ।

उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च रतिश्च सत्यञ्च तपो दमश्च ॥१२॥
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे ।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो धर्म्मश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥१३॥
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
उवाच दानवान् सर्वान् गणांश्च स गणाधिपः ॥१४॥

मृगेन्द्रो गृह्यतामेष अपूर्वं सत्वमास्थितः । यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः
ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् । परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥
सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः । बभञ्ज तां सभां सर्वां व्यादितास्यइवान्तकः
सभायांभज्यमानायांहिरण्यकशिपुःस्वयम् ।चिक्षेपास्त्राणिसिंहस्यरोषाद्व्याकुललोचनः

सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम् ।
कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथा परम् ॥१९॥

पैतामहं तथात्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत् । विचित्रामशनीश्चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥
रौद्रं तथोग्रं शूलञ्च कङ्कालं मुसलं तथा । मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम् ॥
वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैङ्करम् । तथाप्रतिहतां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा । कम्पनं शतनञ्चैव त्वाष्ट्रञ्चैव सुभैरवम् ॥
कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनञ्च महाबलम् । संवर्तनं मादनञ्च तथा मायाधरं परम् ॥२४॥
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् । प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ।

अस्त्रं पाशुपतञ्चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥२५॥

अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च । नारायणास्त्रमैन्द्रञ्च सार्पमस्त्रं तथाद्भुतम् ॥
पैशाचमस्त्रमजितं शोषदं शामनं तथा । महाबलं भावनं च प्रस्थापनविकम्पने ॥२७॥

एतान्यस्त्राणि दिव्याणि हिरण्यकशिपुस्तदा ।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥२८॥

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमः । विवस्वान् धर्म्मसमयेहिमवन्तमिवांशुभिः
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः । क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः ॥

प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा । वज्रैरशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः ॥
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः । शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवज्रवेगाः ।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकायाः स्थितास्त्रिशीर्षा इव नागपाशाः ॥ ३३ ॥
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः ।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा हंसा इवा भान्ति विशालपक्षाः ॥ ३४ ॥
तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमौलीवलयोत्कटानाम् ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ ३५ ॥
क्षिपद्भिरुग्रैर्ज्वलितैर्महाबलैर्महास्त्रपूगैः सुसमावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारान्तरकन्दरोद्रुमैः ॥ ३६ ॥
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैर्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापस्थितप्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥३७॥
सन्त्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धुताङ्गा यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ॥३८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे हिरण्यकशिपुनरसिंह युद्धवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अन्यदानवैः सह नरसिंहयुद्धम् ।

सूत उवाच ।

खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः । ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिताः ॥१॥
बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा । अर्द्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा ॥२
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः । सिंहास्यांल्लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा

द्विजिह्वकावक्त्रशीर्षास्तथोल्का मुखसंस्थिताः । महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवाबलदर्पिताः
शैलसंवर्ष्मणस्तस्य शरीरे शरवृष्टिभिः । अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रुराहवे ॥५॥

एवं भूयोऽपरान् घोरानसृजन् दानवेश्वराः ।
मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निश्वसन्त इवोरगाः ॥ ६ ॥

ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः । विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥७॥
ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याःक्रोधसमन्विताः । मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानिसमन्ततः
तैरासीद्गगनं चक्रैः सम्पतद्भिरितस्ततः । युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव ॥६॥
तानि सर्वाणिचक्राणिमृगेन्द्रेणाशमातमना । ग्रस्तान्युदीर्णानि तदापावकार्चिःसमानिवै
तानि चक्राणि वदनं विशमानानि भान्ति वै । मेघोदरदरीष्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥११

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ।
शक्तिं प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतड़ित्प्रभाम् ॥ १२ ॥

तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्वलाम् । हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा
रराज भग्नासाशक्तिर्मृगेन्द्रेणमहीतले । स विस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केवदिवश्च्युता
नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजे विदूरतः । नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना

स गर्जित्वा यथान्यायं विक्रम्य च यथासुखम् ।
तत्सैन्यमप्सारितवान् तृणाग्राणीव मारुतः ॥ १६ ॥

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः । नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिशृङ्गैर्महाप्रभैः ।
तदश्मवर्षं सिंहस्य महन्मूर्द्धनिपातितम् । दिशोदश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ॥
तदाश्मौघैर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम् । छायायां चक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम्
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघादेवसत्तमम् । भीमवेगोऽचलश्रेष्ठं समुद्र इव मन्दरम् ॥२०॥
ततोऽश्मवर्षेविहिते जलवर्षमनन्तरम् । धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥
नभसः प्रच्युताधारास्तिग्मवेगाः समन्ततः । आवृत्यसर्वतो व्योमदिशश्चोपदिशस्तथा

धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायाञ्च सर्वशः ।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्तोऽनिशं भुवि ॥ २३ ॥

बाह्यतो वव्रृषुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृषुः । मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ॥
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते । सोऽसृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ॥
महेन्द्रस्तोयदैः सार्द्धं सहस्राक्षो महाद्युतिः । महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥
तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः । असृजत् घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च । स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ॥
त्रिशाखां भ्रुकुटीञ्चास्य ददृशुर्दानवा रणे । ललाटस्थां त्रिशूलाङ्कां गङ्गां त्रिपथगामिव
ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः । हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णाः शरणं ययुः ।

ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा ।
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ॥ ३१ ॥

आवहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः । परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः ॥ ३२ ॥
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः । इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ॥३३॥
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै । ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्त यथासुखम् ॥
अन्यङ्गते चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः । संग्रहः सहनक्षत्रै राकापतिररिन्दमः ॥३५॥
विवर्णताञ्च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः । कृष्णं कबन्धं च तथा लक्ष्यते सुमहद्दिवि
अमुञ्चच्चार्चिषां वृन्दं भूमिवृत्तिर्विभावसुः । गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिदृश्यते ॥३७

सप्त धूम्रनिभा घोराः सूर्य्या दिवि समुत्थिताः ।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ॥ ३८ ॥

वामेन दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती । शनैश्चरो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमुद्यती ॥
समं समधिरोहन्तः सर्वे ते गगनेचराः । शृङ्गाणि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः ॥
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैर्ग्रहैः सह तमोनुदः । चराचरविनाशाय रोहिणीं नाभ्यनन्दत ॥४१॥
गृह्यते राहुणाचन्द्र उल्काभिरभिहन्यते । उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे विचरन्ति यथासुखम्
देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षतशोणितम् । अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपामहास्वनाः
अकाले च द्रुमाःसर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च । लताश्च सफलाःसर्वा येचाहुर्दैत्यनाशनम्
फलैःफलान्यजायन्त पुष्पैःपुष्पं तथैव च । उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्तिच रुदन्ति च

विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च। प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम्
आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः। चक्रुः सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम्।
नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदकाः।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः॥ ४८॥
वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन। वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च॥
यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते। अपराह्णगते सूर्ये लोकानां युगसंक्षये॥ ५०॥
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः। भाण्डागारे युधागारे निविष्टमभवन्मधु॥
असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च। दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोराघोरनिदर्शनाः
एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः।
दैत्येन्द्रस्य विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः॥ ५३॥
मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना। महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजसः॥
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम्। चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्चपन्नगाः
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ। एलामुखः कालिकश्च महापद्मश्च वीर्यवान्॥
सहस्रशीर्षा नागोवै हेमतालध्वजः प्रभुः। शेषोऽनन्तोमहाभागो दुष्प्रकम्प्यःप्रकम्पितः
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च।
तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः॥ ५८॥
नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्टवान्महीम्
सन्दष्टौष्ठपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः। नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा॥
यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणी च निम्नगा। सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरीतथा
चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः। कमलप्रभवश्चैव शोणोमणिनिभोदकः॥
नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वसरस्वती॥ ६३॥
मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी। जम्बूद्वीपं रत्नवटं सर्वरत्नोपशोभितम्॥६४॥
सुवर्णप्रकटञ्चैव सुवर्णाकरमण्डितम्। महानदश्च लौहित्यं शैलकाननशोभितम्॥६५॥

पत्तनं कोशकरणं ऋषिवीरजनाकरम् । मागधाश्च महाग्रामा मुण्डाः शुङ्गास्तथैव च ॥
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः ।
भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम् ॥ ६७ ॥
कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा ।
रक्ततोयो महाभोमो लौहित्यो नाम सागरः ॥ ६८ ॥
उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम् । सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघपङ्क्तिनिषेवितः ॥
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः । शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ॥६९
अयोमुखश्च विख्यातः सर्वतो धातुमण्डितः । तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ॥
सुराष्ट्राश्च सबाल्हीकाः शूराभीरास्तथैवच ।
भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः ॥ ७२ ॥
तथैवोड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाःसकेरलाः। क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः
अगस्त्यभवनश्चैव यदगम्यङ्कृतं पुरा । सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम् ॥७४॥
विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम् । जातरूपमयैः शृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव ॥ ७५॥
चन्द्रसूर्यांशुसङ्काशैः सागराम्बुसमावृतैः । विद्युत्त्वान् सर्वः श्रीमानायतः शतयोजनम्॥
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे । ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञितः।
कुञ्जरः पर्वतः श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् । विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पाणामालयः पुरी
तथा भोगवतीचापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिताः । महासेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः।
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः । प्राग्ज्योतिषपुरञ्चापि जातरूपमयं शुभम्।
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः । विशालाक्षश्च दुर्द्धर्षो मेघगम्भीरनिस्वनः।
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः । तरुणादित्यसङ्काशो मेरुस्तत्र महागिरिः
यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः । हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखोगिरिः ॥८३॥
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः । हेमपुष्परसक्षेत्रं तेन वैखानसं सरः ॥८४॥
कम्पितं मानसञ्चैव हंसकारण्डवाकुलम् । त्रिशृङ्गपर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा॥८५॥

तुषारचयसञ्छन्ना मन्दरश्चापि पर्वतः । उशीरबिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाद्रिराट्।

प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः। देवाभ्रपर्वतश्चैव यथावै रेणुकोगिरिः ॥ ८७ ॥

क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः। एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ॥

नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः।

कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः ॥ ८९ ॥

खेचराश्च सतीपुत्राः पातालतलवासिनः। गणस्तथा परोरौद्रो मेघनामाङ्कुशायुधः ॥

ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः। गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा॥

जीमूतघनसङ्काशो जीमूतघननिस्वनः। जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ॥ ९२ ॥

देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत्। समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥

तदोङ्कारसहायेन विदार्य निहतोयुधि।

मही च कालश्च वशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः।

नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादन्दितिपुत्रनाशात् ॥ ९४ ॥

ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः। तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम् ॥९५॥

यत्त्वया विहितं देव! नारसिंहमिदं वपुः। एतद्देवार्चयिष्यन्ति परावरविदोजनाः ॥

ब्रह्मोवाच।

भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमाः!।

भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः ॥ ९७ ॥

पराञ्च सिद्धाञ्च परञ्च देवं परञ्च मन्त्रं परमं हविश्च।

परञ्च धर्मं परमञ्च विश्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ९८ ॥

परं शरीरं परमञ्च ब्रह्म परञ्च योगं परमाञ्च वाणीम्।

परं रहस्यं परमाङ्गतिञ्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ९९ ॥

एवं परस्यापि परं पदं यत् परं परस्यापि परञ्च देवम्।

परं परस्यापि परञ्च भूतन्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १०० ॥

परं परस्यापि परं निधानं परं परस्यापि परं पवित्रम्।

परं परस्यापि परं च दान्तन्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १०१ ॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामहः। स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः॥
ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च। क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः॥
नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमत्। पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः॥
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता। अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान् प्रभुः॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नरसिंहमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मनुमत्स्यसंवादवर्णनम्।

ऋषय ऊचुः।

कथितं नरसिंहस्य माहात्म्यं विस्तरेण च। पुनस्तस्यैव माहात्म्यमन्यद्विस्तरतो वद॥
पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत्। कथञ्च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत्पुरा॥२॥

सूत उवाच।

श्रुत्वा च नरसिंहस्य माहात्म्यं रविनन्दनः। विस्मयोत्फुल्लनयनः पुनः प्रपच्छकेशवम्॥

मनुरुवाच।

कथं पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत्। जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन!॥४॥
प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि। पुष्करे च कथं भूता देवाः सर्षिगणाःपुरा
एनमाख्याहि निखिलं योगं योगविदाम्पते!। शृण्वतस्तस्य मे कीर्ति नतृप्तिरुपजायते॥

कियता चैव कालेन शेते वै पुरुषोत्तमः।
कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भवः॥ ७॥

कियतावाथ कालेन ह्युत्तिष्ठति महायशाः। कथञ्चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलंजगत्
के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने!। कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनम्॥
प्रथमेकार्णवे तूर्ये नष्टस्थावरजङ्गमे। दग्धदेवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे॥ १०॥

नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहातले। केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥ ११ ॥
विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः। आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥१२
शृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः। वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ! यशो नारायणात्मकम् ॥
श्रद्धया चोपविष्टानां भगवान्! वक्तुमर्हसि।

मत्स्य उवाच।

नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ॥ १४ ॥
तद्वंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलर्षभ !। शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् ॥
ब्राह्मणानाञ्च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम्। यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ॥
पराशरसुतः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत्। तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति
यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः !। कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम्
विश्वायनञ्च यद्ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वतः। तत्कर्म्म विश्ववेदानां तद्रहस्यं महर्षिणाम्
तमीज्यं सर्वयज्ञानां तत्तत्त्वं सर्वदर्शिनाम्। तदध्यात्मविदां चिन्त्यंनरकंन विकर्मिणाम्
अधिदैवञ्च यद्दैवमधियज्ञं सुसंज्ञितम्। तद्भूतमधिभूतञ्च तत्परं परमर्षिणाम् ॥ २१ ॥
स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः। यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च
प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते। प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च
कालः शाकश्च यन्ता चद्रष्टास्वाध्यायएव च। उच्यते विविधैर्देवः स एवायं न तत्परम्
स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृतान् ॥ २५ ॥
यतामहे तमेवाद्यन्तमेवेच्छाम निर्वृताः। यो वक्ता यच्च वक्तव्यं यच्चाहन्तद्ब्रवीमि वः
श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते। याःकथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः
विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणःस्मृतः।
यत् सत्यं यदमृतमक्षरं परं यत् यद्भूतं परममिदं च यद्भविष्यत्।
यत् किञ्चिचरमचरं यदस्ति चान्यत् तत् सर्वं पुरुषवरः प्रभुः पुराणः॥२८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

चातुर्युगगतिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा रविनन्दन ! ॥ १ ॥

यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः । स्वधर्मनिरताः सन्तो जायन्ते यत्र मानवाः॥

विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः ।

कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवः स्थिताः ॥ ३ ॥

तदा सत्यञ्च शौचञ्च धर्मश्चैव विवर्धते । सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्यायते च वै ॥

एतत् कार्त्तयुगं वृत्तं सर्वेषामपि पार्थिव ! । प्राणिनांधर्मसक्तानांमपि वै नीचजन्मनाम्

त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते । तस्यतावच्छतीसन्ध्याद्विगुणा परिकीर्त्यते

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यांत्रिभिर्धर्मोव्यवस्थितः । यत्र सत्यञ्च सत्वञ्चत्रेताधर्मो विधीयते

त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णास्त्वेतेन संशयः ।

चतुर्वर्णस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रमाः ॥ ८ ॥

एषा त्रेतायुगगति र्विचित्रा देवनिर्मिता । द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि॥

द्वापरन्द्वे सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन ! । तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा युगमुच्यते

तत्र चार्थपराः सर्वे प्राणिनो रजसा हताः । सर्वे नैष्कृतिकाःक्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन!

द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ।

विपर्ययाच्छनैर्धर्मः क्षयमेति कलौ युगे ॥ १२ ॥

ब्राह्मण्यभावस्य ततो तथौत्सुक्यं व्यशीर्यते । व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये

तथा वर्षसहस्रन्तु वर्षाणां द्वेशते अपि । सन्ध्ययासह संख्यातं क्रूरङ्कलियुगं स्मृतम् ॥

यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद् धर्मःपादविग्रहः । कामिनस्तपसाच्छन्नाजायन्ते तत्र मानवाः

नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् ।
नास्तिका ब्रह्मभक्ता वा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ १६ ॥

अहङ्कारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः । विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे ॥
आश्रमाणां विपर्यासः कलौ संपरिवर्तते । वर्णानाञ्चैव सन्देहो युगान्ते रविनन्दन ! ॥

विद्याद् द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां पूर्वनिर्मिताम् ।
एवं सहस्रपर्यन्तं तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥ १६ ॥

ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेषामेव जीविनाम् । शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः ॥
देवतानाञ्च सर्वासां ब्रह्मादीनांमहीपते ! । दैत्यानां दानवानाञ्च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ॥
गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानाञ्च पार्थिव !। पर्वतानां नदीनाञ्च पशूनाञ्चैव सत्तम ! ॥

तिर्यग्योनिगतानाञ्च सत्वानां कृमिणान्तथा ।
महाभूतपतिः पञ्च हत्वा भूतानि भूतकृत् ॥ २३ ॥
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ।
भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणजालम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन् सर्व लोकान् भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽप्यवर्षत् ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे चातुर्युगगतिवर्णनं नाम चतुषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रलयकालनर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

भूत्वा नारायणो योगी सत्वमूर्तिर्विभावसुः !
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ॥ १ ॥

ततः पीत्वार्णवान् सर्वान् नदीः कूपांश्च सर्वशः । पर्वताश्च सलिलं सर्वमादायरश्मिभिः

भित्वा गभस्तिभिश्चैव महीङ्गत्वा रसातलात् । पातालजलमादाय पिबन्तु रसमुत्तमम्
मूत्रासृक्क्लेदमन्यञ्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् । तत् सर्वमरविन्दाक्षमादत्ते पुरुषोत्तमः

वायुश्च भगवान् भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् ।
प्राणापानसमानाद्यात् वायूनाकर्षते हरिः ॥ ५ ॥

ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु । गन्धोघ्राणं शरीरञ्च पृथिवीं संश्रितागुणाः
जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताःसलिले गुणाः। रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रितागुणाः
स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनेसंश्रितागुणाः । शब्दः श्रोत्रञ्च खान्येव गगनेसंश्रितागुणाः
लोकमाया भगवता मुहूर्त्तेन विनाशिता । मनोबुद्धिश्च सर्वेषां क्षेत्रज्ञश्चेति यः श्रुतः ॥६
तं वरेण्यं परमेष्ठि हृषीकेशमुपाश्रिताः । ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः ॥
वायुनाक्रम्यमाणासु द्रुमशाखासुचाश्रिताः । तेषां सङ्घर्षणोद्भूतःपावकःशतधाज्वलन्
अदहच्च तदा सर्वं वृतः सम्वर्तकोऽनलः । सपर्वतद्रुमान् गुल्मान् लतावल्लीस्तृणानिच

विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ।
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥ १३ ॥

भस्मीकृत्वाततःसर्वान् लोकान्लोकगुरुर्हरिः । भूयोनिर्वापयामासयुगान्तेन च कर्मणा
सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः । दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम्
ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाऽम्भसा । शिवेन पुण्येन महींनिर्वाणमगमत् परम् ॥
तेन रोधेन संछन्ना पयसां वर्षतो धरा । एकार्णवजलीभूता सर्वसत्वविवर्जिता ॥
महासत्वान्यपि विभुं प्रनष्टान्यमितौजसम् । नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते ॥

संशोषमात्मना कृत्वा समुद्रानपि देहिनः ।
दग्ध्वा संप्लाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ॥ १६ ॥

पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः । एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः
अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि । न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति
कश्चैव पुरुषोनाम किं योगःकश्चयोगवान् । असौ कियन्तं कालञ्च एकार्णवविधिंप्रभुः
करिष्यतीति भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते । न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः

तस्य न ज्ञायते किञ्चित्तमृते देवसत्तमम् ।

भ६ नभः क्षितिः पवनमपः प्रकाशं प्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम् ।
पितामहं श्रुतिनिलयमहामुनिं प्रशाम्य भूयः शयनं ह्यरोचयत् ॥ २४ ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे प्रलयकालवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

यज्ञावतारवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः । प्रच्छाद्यसलिलेनोर्वी हंसो नारायणस्तदा ॥
महतो रजसो मध्ये महार्णवसरःसु वै । विरजस्कं महाबाहुमक्षयं ब्रह्म यं विदुः ॥२॥
आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः । मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत् सत्यमासत ॥
याथातथ्यं परं ज्ञानं भूतन्तद्ब्रह्मणापुरा ! रहस्यारण्यकोद्दिष्टं यच्चौपनिषदं स्मृतम् ॥
पुरुषोयज्ञइत्येतत् यत्परं परिकीर्तितम् । यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात् स एव पुरुषोत्तमः॥
ये च यज्ञकरा विप्रा येचर्त्विज इतिस्मृताः । अस्मादेवपुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तथा॥

ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारञ्च सागरम् ।
होतारमपि चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः ॥ ७ ॥

ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतारञ्च सर्वशः । तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात् प्रतिप्रस्तारमेव च
उदरात् प्रतिहर्त्तारं होतारञ्चैव पार्थिव ! । अच्छावाकमथोरुभ्यान्नेष्टारञ्चैव पार्थिव! ॥
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रंसुब्रह्मण्यञ्च जानुतः । ग्रावस्तुतन्तु पादाभ्यामुन्नेतारञ्च याजुषम्
एवमेवैष भगवान् षोडशैव जगत्पतिः । प्रवक्तॄन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ॥
तदेष वै वेदमयःपुरुषो यज्ञसंस्थितः । वेदाश्चैतन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः ॥
स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत् पुरा । श्रूयन्तां तद्यथा विप्रा ! मार्कण्डेयकुतूहलम्॥

गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः । बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ॥१४॥
अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरान् । आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च १५

देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ।
जपहोमपरः शान्तस्तपोघोरं समास्थितः ॥ १६ ॥

मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः । स निष्क्रामन्नचात्मानं जानीते देवमायया
निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत् । सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत
तस्योत्पन्नं भयन्तीव्रं संशयश्चात्मजीविते । देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमङ्गतः ॥१९॥

चिन्तयन् जलमध्यस्थो मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत ।
किन्तु स्यान्मम चिन्तेयं मोहःस्वप्नोऽनुभूयते ॥ २० ॥

व्यक्तमन्यतमोभावस्तेषां सम्भावितो मम । नहीदृशं जगत् क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति ॥
नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले । कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः ॥२२॥
ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम् । सलिलेऽर्द्धमथो मग्नं जीमूतमिव सागरे ॥२३

ज्वलन्तमिव तेजोभिर्गोयुक्तमिव भास्करम् ।
शर्वर्यां जाग्रतमिव भासन्तं स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥
देवन्द्रष्टुमिहायातः को भवानिति विस्मयात् ।
तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः ॥ २५ ॥

सम्प्रविष्टः पुनःकुक्षिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः । तथैव च पुनर्भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम्
स तथैव यथा पूर्वं यो धरामटते पुरा । पुण्यतीर्थजलोपेतां विविधान्याश्रमाणि च ॥
क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणान् । अपश्यद्देवकुक्षिस्थान् याजकान् शतशोद्विजान्
सद्वृत्तमास्थिताः सर्वे वर्णाब्राह्मणपूर्वकाः । चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टामया तव
एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयस्य धीमतः । चरतः पृथिवीं सर्वान्न कुक्ष्यन्तः समीक्षितः
ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिस्सृतः । गुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरैक्षत ॥
तथैवैकार्णवजले नीहारेणावृताम्बरे । अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥ ३२ ॥

स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ।

बालमादित्यसङ्काशं नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ॥ ३३ ॥
स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ।
पूर्वदृष्टमिदं मन्ये शङ्कितो देवमायया ॥ ३४ ॥
अगाधसलिले तस्मिन् मार्कण्डेयः सुविस्मयः ।
प्लवंस्तथार्त्तिमगमत् भयात् सन्त्रस्तलोचनः ॥ ३५ ॥
स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान् । बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः॥३६॥
माभै वंत्स ! न भेतव्यमिहैवायाहि मेऽन्तिकम् ।
मार्कण्डेयोमुनिस्त्वाह बालन्तं श्रमपीडितः ॥ ३७ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कोमान्नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्मम । दिव्यं वर्षसहस्राख्यंधर्षयन्निवमेव यः ॥३८
नह्येष वः समाचारो देवेष्वपि ममोचितः । मां ब्रह्मापि हि देवेशो दीर्घायुरिति भाषते
कस्तपो घोरमासाद्य मामद्य त्यक्तजीवितः । मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हति
एवमाभाष्य तं क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।
तथैव भगवान् भूयो बभाषे मधुसूदनः ॥ ४१ ॥

भगवानुवाच ।

अहं ते जनको वत्स ! हृषीकेशः पिता गुरुः ।
आयुःप्रदाता पौराणः किं मान्त्वन्नोपसर्पसि ॥ ४२ ॥
मां पुत्रकामः प्रथमं पिता तेऽङ्गिरसोमुनिः । पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः ॥
ततस्त्वां घोरतपसा प्रावृणोदमितौजसम् । उक्तवानहमात्मस्थं महर्षिममितौजसम् ॥
कः समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मजः । द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगवर्त्मना
ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः । मूर्द्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः
नामगोत्रे ततः प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः । तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत्

मार्कण्डेय उवाच ।

इच्छेयं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुन्त्वयानघ ! ।

यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥ ४८ ॥
किं संज्ञश्चैव भगवन्! लोके विज्ञायसे प्रभो!
तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हति ॥ ४९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अहंनारायणो ब्रह्मन्! सर्वभूः सर्वनाशनः । अहं सहस्रशीर्षाख्यैर्यैः पदैरभिसंज्ञितः ॥५०
आदित्यवर्णः पुरुषो मखे ब्रह्ममयो मखः । अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः ॥५१
अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणां परिवत्सरः । अहं योगी युगाख्यश्च युगान्तावर्तएव च ५२
अहं सर्वाणि सत्वानि दैवतान्यखिलानि तु ।
भुजङ्गानामहं शेषो तार्क्ष्यो वै सर्वपक्षिणाम् ॥ ५३ ॥
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः । अहं धर्म्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम्
अहं चैव सरिद्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः । यत्तत् सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥
अहं सांख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमम्पदम् । अहमिज्या क्रिया चाहमहंविद्याधिपःस्मृतः
अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः । अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशोदश ॥
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः । क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे वडवामुखः ॥
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिवंस्तोयमयं हविः । अहं पुराणः परमं तथैवाहं परायणम् ॥
अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भवः ।
यत् किञ्चित् पश्यसे विप्र! यच्छृणोषि च किञ्चन ॥ ६० ॥
यल्लोके चानुभवसि तत् सर्वं मामनुस्मर । विश्वंसृष्टंमयापूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्यमाम्
युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत् ।
तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥ ६२ ॥
शुश्रूषुर्मम धर्मांश्च कुक्षौ चर सुखं मम । मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च ऋषिभिः सह ॥
व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छासुरद्विषम् । अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः ॥
परस्त्रिवर्गादोङ्कारस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः । एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः ॥६५॥
वक्त्रमाहतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् । ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ६६

स तस्मिन् सुखमेकान्ते शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ।
योऽहमेव विविधतनुं परिश्रितो महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे ।
शनैश्चरन् प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजं जगद्विरहितकालपर्यये ॥६७॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मार्कण्डेयस्यभगवत्कुक्षिप्रवेशनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भगवन्नाभितः कमलोत्पत्तिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

आपवः स विभुर्भूत्वा चारयामास वै तपः । च्छादयित्वात्मनो देहं यादसाङ्कुलसम्भवम्
ततो महात्मातिबलो मतिं लोकस्य सर्जने । महतां पञ्चभूतानां विश्वो विश्वमचिन्तयत्
तस्य चिन्तयमानस्य निर्वाते संस्थितेऽर्णवे । निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे
ईषत्सङ्क्षोभयामास सोऽर्णवं सलिलाश्रयः । अनन्तरोर्मिभिः सूक्ष्ममथच्छिद्रमभूत् पुरा
शब्दं प्रति तदोद्भूतो मारुतश्छिद्रसम्भवः । स लब्ध्वान्तरमक्षोभ्योव्यवर्धत समीरणः
विवर्द्धतावलवतावेगाद्विक्षोभितोऽर्णवः । तस्यार्णवस्यक्षुब्धस्यतस्मिन्नम्भसि मन्थिते

कृष्णवर्त्मा समभवत् प्रभुर्वैश्वानरो महान् ।
ततः स शोषयामास पावकः सलिलं बहु ॥७॥

क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रमभवद्विस्तृतं नभः । आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः
आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः । आभ्यां सङ्घर्षणोद्भूतं पावकं वायुसम्भवम्
दृष्ट्वा प्रीतो महादेवो महाभूतविभावनः । दृष्ट्वा भूतानि भगवांल्लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम् ॥
ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो व्यचिन्तयत् । चतुर्युगाभिसंख्याते सहस्रयुगपर्यये ॥११॥

बहुजन्मविशुद्धात्मब्रह्मणेह निरुच्यते ।
यत् पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मना ॥१२॥

ज्ञानं दृष्टन्तु विश्वार्थे योगिनां याति मुख्यताम् ।
तं योगवन्तं विज्ञाय सम्पूर्णैश्वर्यमुत्तमम् ॥१३॥

पद्मे ब्रह्मणि विश्वेशं न्ययोजयत योगवित् । ततस्तस्मिन् महातोये महीशो हरिरच्युतः
स्वयं क्रीडंश्च विधिवन्मोदते सर्वलोककृत् । पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा

सहस्रपर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ।
हुताशनज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभमुपस्थितं शरदमलार्कतेजसम् ।
विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम् ॥१६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कमलोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मण उत्पत्तिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजत् भूरितेजसम् । स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥
यस्मिन् हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते । सर्वतेजोगुणमयं पार्थिवैर्लक्षणैर्वृतम् ॥२॥
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूपमुत्तमम् । नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः ॥३॥
या पद्मा सा रसा देवी पृथिवी परिचक्षते । येपद्मसारगुरवस्तान्दिव्यान्पर्वतान् विदुः
हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च । कैलासं मुञ्जवन्तं च तथान्यं गन्धमादनम् ॥
पुण्यं त्रिशिखरञ्चैव कान्तं मन्दरमेव च । उदयं पिञ्जरं चैव विन्ध्यवन्तं च पर्वतम् ॥

एते देवगणानाञ्च सिद्धानाञ्च महात्मनाम् ।
आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः ॥७॥
एतेषामन्तरे देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः ।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यज्ञिया यत्र वै क्रिया ॥८॥

एभ्यो यत् स्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम् ।
दिव्यास्तीर्थशताधाराः सुरम्याः सरितः स्मृताः ॥६॥

स्मृतानि यानि पद्मस्य केसराणिसमन्ततः । असंख्येयाःपृथिव्यास्तेविश्वेवै धातुपर्वताः
यानि पद्मस्य पर्णानि भूरीणि तु नराधिप । ते दुर्गमाःशैलचितास्म्लेच्छदेशा विकल्पिताः
यान्यधोभागपर्णानि ते निवासास्तु भागशः । दैत्यानामुरगाणाञ्च पतङ्गानाञ्चपार्थिव ॥
तेषां महार्णवो यत्र तद्रसेत्यभिसंज्ञितम् । महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥
पद्मस्यान्तरतो यत्तदेकार्णवगता मही । प्रोक्ताथ दिक्षु सर्वासु चत्वारः सलिलाकराः
एवं नारायणस्यार्थे मही पुष्करसम्भवा । प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः
एतस्मात् कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः । याज्ञियैर्वेददृष्टान्तैर्यज्ञे पद्मविधिः स्मृतः
एवं भगवता तेन विश्वया धरया विधिः । पर्वतानां नदीनाञ्च ह्रदानां चैव निर्मितः ॥

विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः प्रभाकराभो वरुणासितद्युतिः ।
शनैः स्वयम्भूः शयनं सृजत्तदा जगन्मयं पद्मविधिं महार्णवे ॥१८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ब्रह्मणोऽनन्तरं देवदानवादीनां सृष्टिवर्णनं नामा-
ष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

मधुकैटभाख्यानवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

विघ्नस्तपसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुरः । तेनैव च सहोद्भूतो रजसा कैटभस्ततः ॥
तौ रजस्तमसौ विघ्नसम्भूतौ तामसौ गणौ । एकार्णवे जगत् सर्वं क्षोभयन्तौमहाबलौ
दिव्यरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्ताग्रदंष्ट्रिणौ । किरीटकुण्डलोदग्रौ केयूरवलयोज्वलौ ॥३॥
महाविक्रमताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ । महागिरेः संहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ ॥
नगमेघप्रतीकाशावादित्यसदृशाननौ । विद्युदाभौ गदाग्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ ॥

तौ पादयोस्तु विन्यासादुत्क्षिपन्ताविवार्णवम् ।
कम्पयन्ताविव हरिं शयानं मधुसूदनम् ॥६॥
तौ तत्र विचरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम् ।
योगिनां श्रेष्ठमासाद्य दीप्तं ददृशतुस्तदा ॥ ७ ॥

नारायणसमाज्ञातं सृजन्तमखिलाः प्रजाः । दैवतानि च विश्वानि मानसानसुरानृषीन्
ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ । दीप्तौ मुमूर्षू संक्रुद्धौ रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥ ९॥

कस्त्वं पुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्भुजः ।
आधाय नियमं मोहादास्ते त्वं विगतज्वरः ॥ १० ॥
एह्यागच्छावयोर्युद्धं देहि त्वं कमलोद्भव ! ।
आवाभ्यां परमीशाभ्यामशक्तस्त्वमिहार्णवे ॥ ११ ॥

तत्र कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वासि नियोजितः । कःस्रष्टा कश्चते गोप्ता केननाम्नाविधीयसे

ब्रह्मोवाच ।

एक इत्युच्यते लोकैरविचिन्त्यः सहस्रदृक् ।
तत्संयोगेन भवतोः कर्म नामावगच्छताम् ॥ १३ ॥

मधुकैटभावूचतुः ।

नावयोः परमं लोके किञ्चिदस्ति महामते !। आवाभ्यां छाद्यते विश्वंतमसारजसाथ वै
रजस्तमो मयावावामृषीणामवलम्बितौ । छाद्यमानो धर्म्मशीलौ दुस्तरौ सर्वदेहिनाम्
आवाभ्यामुह्यते लोको दुष्कराभ्यां युगे युगे । आवामर्थश्च कामश्च यज्ञः स्वर्गपरिग्रहः
सुखंयत्रमुदा युक्तं यत्र श्रीः कीर्तिरेव च । येषां यत्काङ्क्षितं चैव तत्तदावांविचिन्तय

ब्रह्मोवाच ।

यत्नाद्योगवतो दृष्ट्या योगः पूर्वं मयार्जितः ।
तं समाधाय गुणवत् सत्वं चास्मि समाश्रितः ॥ १८ ॥

यः परो योगमतिमान्योगाख्यः सत्वमेव च । रजसस्तमसश्चैव यः स्रष्टा विश्वसम्भवः
ततो भूतानिजायन्ते सात्विकानीतराणि च । स एव हि युवां नाशे वशी देवोहनिष्यति

स्वपन्नेव ततः श्रीमान् बहुयोजनविस्तृतम्। बाहुं नारायणो ब्रह्म कृतवानात्ममायया
कृष्यमाणौ ततस्तस्य बाहुना बाहुशालिनः। चेरतुस्तौ विगलितौ शकुनाविव पीवरौ ॥
ततस्तावाहतुर्गत्वा तदा देवं सनातनम्। पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्य स्थितावुभौ ॥२३॥

जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम्।
त्वामावाम्पाहि हेत्वर्थमिदं नौ बुद्धिकारणम् ॥ २४ ॥

अमोघदर्शनः सत्वंयतस्त्वां विद्मशाश्वतम्। ततस्त्वामागतावावामभितः प्रसमीक्षितुम्
तदिच्छामोवरंदेव ! त्वत्तोऽद्भुतमरिन्दम !। अमोघदर्शनोऽसित्वं नमस्तेसमितिञ्जय! ॥

श्रीभगवानुवाच।

किमर्थमद्भुतं ब्रूथ वरं ह्यसुरसत्तमौ !। दत्तायुष्कौ पुनर्भूयोरहो जीवितुमिच्छथ ॥२७

मधुकैटभावूचतुः।

यस्मिन्न कश्चिन् मृतवान् देव ! तस्मिन् प्रभो ! वधम्।
तमिच्छावो वधं चैव त्वत्तो नोऽस्तु महाव्रत ! ॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच।

बाढं युवान्तु प्रवरौ भविष्यत्कालसम्भवे।
भविष्यतो न सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम् ॥ २९ ॥
वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्ववरः सुरोत्तमः।
रजस्तमोवर्गभवायनौ यमौ ममन्थतावूरुतलेन वै प्रभुः ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मधुकैटभवरदानप्राप्तिवर्णनं नामोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मणस्तपश्चर्यावर्णनम्।

मत्स्य उवाच।

स्थित्वा च तस्मिन्कमलमूले ब्रह्माब्रह्मविदांवरः। ऊर्ध्वबाहुर्महातेजास्तपो घोरं समाश्रितः

प्रज्वलन्निव तेजोभिर्भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः । बभासेसर्वधर्म्मस्थःसहस्रांशुरिवांशुभिः
अथान्यद्रूपमास्थाय शम्भुर्नारायणोऽव्ययः । आजगाम महातेजा योगाचार्योमहायशाः
सांख्याचार्यो हि मतिमान् कपिलो ब्राह्मणो वरः ।
उभावपि महात्मानौ स्तुवन्तौ क्षेत्रतत्परौ ॥ ४ ॥
तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् । परावरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः ॥
ब्रह्मात्मदृढबन्धश्च विशालो जगदास्थितः । ग्रामणीः सर्वभूतानां ब्रह्मा त्रैलोक्यपूजितः
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा विप्रोऽभ्याहृतयोगवित् ।
त्रीनिमान् कृतवान् लोकान्यथेयं ब्रह्मणः श्रुतिः ॥ ७ ॥
पुत्रश्च सम्भवे चैकं समुत्पादितवानृषिः । तस्याग्रे वाग्यतस्तस्थौ ब्रह्माणमजमव्ययम् ॥
सोत्पन्नमात्रोब्रह्माणमुक्तवान् मानसःसुतः । किं कुर्मस्तवसाहाय्यंब्रवीतुभगवानृषिः ।६

ब्रह्मोवाच ।

य एष कपिलो ब्रह्म नारायणमयस्तथा । वदते भवतस्तत्वं तत् कुरुष्व महामते ॥१०
ब्रह्मणस्तु तदर्थन्तु तदा भूयः समुत्थितः । शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं करोमि कृताञ्जलिः

श्रीभगवानुवाच ।

यत् सत्यमक्षरं ब्रह्मन्! अष्टादशविधन्तु तत् । यत् सत्यं यदृतं तत्तु परं पदमनुस्मर ॥
एतद्वचोनिशम्यैव ययौ स दिशमुत्तराम् । गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमत् ज्ञानतेजसा ॥
ततो ब्रह्मा भुवन्नाम द्वितीयमसृजत् प्रभुः । सङ्कल्पयित्वा मनसा तमेव च महात्मना ॥
ततः सोऽथ ब्रवीद्वाक्यं किं करोमि पितामह !। पितामहसमाज्ञातोब्रह्माणं समुपस्थितः
ब्रह्माभ्यासन्तु कृतवान् भुवश्च पृथिवीं गतः ।
प्राप्तश्च परमंस्थानं स तयोः पार्श्वमागतः ॥ १६ ॥
तस्मिन्नपि गते पुत्रे तृतीयमसृजत् प्रभुः । सांख्यप्रवृत्तिकुशलं भूर्भुवं नामतोविभुम् ॥
गोपतित्वं समासाद्य तयोरेवागमद्गतिम् । एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येते उक्ताःशम्भोर्महात्मनः
तान् गृहीत्वा सुतांस्तस्य प्रयातः स्वार्जिताङ्गतिम् ।
नारायणश्च भगवान् कपिलश्च यतीश्वरः ॥ १९ ॥

यङ्कालन्तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तं कालमेव हि। ततो घोरतमम्भूयः संश्रितः परमं व्रतम्

न रेमेऽथ ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन्।

शरीरात्तां ततो भार्यां समुत्पादितवान् शुभाम् ॥ २१ ॥

तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च। सदृशीमात्मनो देवीं समर्थां लोकसर्जने ॥

ततो जगाद त्रिपदाङ्गायत्रीं वेदपूजिताम्। सृजन् प्रजानां पतयः सागरांश्चासृजद्विभुः

ततो जगाद त्रिपदाङ्गायत्रीं वेदपूजिताम्। अपरांश्चैव चतुरोवेदान् गायत्रिसम्भवान्।

आत्मनः सदृशान् पुत्रानसृजद्वै पितामहः।

विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः ॥२५॥

विश्वेशं प्रथमं तावन्महातापसमात्मजम्। सर्वमन्त्रहितं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान्

दक्षं मरीचिमत्रिञ्च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। वसिष्ठं गौतमञ्चैव भृगुमङ्गिरसन्मनुम् ॥

अथैवाद्भुतमित्येते ज्ञेयाः पैतामहर्षयः। त्रयोदशगुणं धर्ममालभन्त महर्षयः ॥ २८ ॥

अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायुः सिंहिकामुनिः। ताम्राक्रोधाथ सुरसाविनताकद्रुरेवच

दक्षस्यापत्यमेता वै कन्या द्वादश पार्थिव!। मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितःकिल

तस्मै कन्या द्वादशान्या दक्षस्ताः प्रददौ तदा।

नक्षत्राणि च सोमाय तदा वै दत्तवानृषिः ॥ ३१ ॥

रोहिण्यादीनिसर्वाणिपुण्यानिरविनन्दन!। लक्ष्मीमरुत्वतीसाध्याविश्वेशाचमताशुभा

देवी सरस्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिताः पुराः। एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव!

दत्ता भद्राय धर्माय ब्रह्मणा विश्वकर्मणा। या रूपार्द्धवती पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी ॥

सुरभिः सा हिता भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता।

ततस्तामगमद् ब्रह्मा मैथुनं लोकपूजितः ॥ ३५ ॥

लोकसर्जनहेतुज्ञोगवामर्थाय सत्तमः। जज्ञिरे च सुतास्तस्यां विपुला धूमसन्निभाः ॥

नक्तसन्ध्याभ्रसङ्काशाः प्रादहंस्तिग्मतेजसः। ते रुदन्तो द्रवन्तश्च गर्हयन्तः पितामहम् ॥

रोदनाद्द्रवणाच्चैव रुद्रा इति ततः स्मृताः। निर्ऋतिश्चैव शम्भुर्वै तृतीयश्चापराजितः।

मृगव्याधः कपर्दी च दहनोऽथ खरश्च वै। अहिर्बुध्न्यश्च भगवान् कपालीचापिपिङ्गलः

सेनानीश्च महातेजा रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः । तस्यामेव सुरभ्याञ्च गावो यज्ञेश्वराश्चवै
प्रकृष्टाश्च तथा मायाः सुरभ्याः पशवोऽक्षराः । अजाश्चैव तु हंसाश्च तथैवामृतमुत्तमम्
ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरभ्यास्ताः समुत्थिताः ।
धर्माल्लक्ष्मोस्तथा कामं साध्या साध्यान् व्यजायत ॥४२ ॥
भवञ्च प्रभवञ्चैवहीशञ्चासुरहं तथा । अरुण्यं चारुणिञ्चैव विश्वावसुबलध्रुवौ ॥४३॥
हविष्यञ्च वितानञ्च विधानशमितावपि । वत्सरञ्चैव भूतिञ्च सर्वासुरनिषूदनम् ॥४४॥
सुपर्वाणं वृहत्कान्तिः साध्या लोकनमस्कृता । तमेवानुगता देवी जनयामास वै सुरान्
वरं वै प्रथमन्देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम् । विश्वावसुं तृतीयञ्च चतुर्थं सोममीश्वरम् ॥
ततोऽनुरूपमायञ्च यमस्तस्मादनन्तरम् । सप्तमञ्च तथा वायुमष्टमन्निर्ऋतिं वसुम् ॥
धर्मस्यापत्यमेतद्वै सुदेव्यां समजायत । विश्वेदेवाश्च विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः
दक्षश्चैव महाबाहुः पुष्करस्वन एव च । चाक्षुषस्तु मनुश्चैव तथा मधुमहोरगौ ॥४६॥
विश्वन्तश्च वसुर्बाल्ला विस्कम्भश्चमहायशाः । गरुड़श्चातिसत्वौजा भास्करप्रतिमद्युतिः
विश्वान् देवान् देवमाता विश्वेशाजनयत् सुतान् ।
मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयत् सुतान् ॥५१ ॥
अग्नि चक्षूरविर्ज्योतिः सावित्रं मित्रमेव च । अमरं शरवृष्टिञ्च सुकर्षञ्च महाभुजम् ॥
विराजञ्चैव वाचञ्च विश्वावसुमतिं तथा । अश्वमित्रं चित्ररश्मिन्तथानिषधनं नृप ! ॥
ह्वयन्तं वाडवञ्चैव चारित्रं मन्दपन्नगम् । वृहन्तं वै वृहद्रूपं तथा वै पूतनानुगम् ॥५४॥
मरुत्वती पुरा जज्ञे एतान्वै मरुताङ्गणान् ।
अदितिः कश्यपाज्जज्ञे आदित्यान् द्वादशैव हि ॥ ५५ ॥
इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणो ह्यर्यमा रविः । पूषा मित्रश्च धनदो धाता पर्जन्य एव च
इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः । आदित्यस्य सरस्वत्यांजज्ञातेद्वौ सुतौवरौ
तपःश्रेष्ठौ गुणिश्रेष्ठौ त्रिदिवस्यापिसम्मतौ । दनुस्तु दानवान् जज्ञे दितिर्दैत्यान्व्यजायत
काला तु वै कालकेयानसुरान् राक्षसांस्तु वै । अनायुषायास्तनया व्याधयःसुमहाबलाः
सिंहिका ग्रहमातावै गन्धर्वजननीमुनिः । ताम्रा त्वप्सरसां माता पुण्यानांभारतोद्भव!

क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव पार्थिव ! ।
जज्ञे यक्षगणांश्चैव राक्षसांश्च विशाम्पते ! ॥ ६१ ॥

चतुष्पदानि सत्वानि तथा गावस्तुसौरसाः । सुपर्णान् पक्षिणश्चैवविनताचाप्यजायत
महीधरान् सर्वनागान् देवी कद्रूर्व्यजायत । एवं वृद्धिं समगमन् विश्वे लोकाःपरन्तप !
तदा वै पौष्करो राजन् ! प्रादुर्भावोमहात्मनः । प्रादुर्भावः पौष्करस्तेमयाद्वैपायनेरितः
पुराणः पुरुषश्चैव मया विष्णुर्हरिः प्रभुः । कथितस्तेऽनुपूर्वेण संस्तुतः परमर्षिभिः ॥

यश्चेदमग्र्यं शृणुयात् पुराणं सदा नरः पर्वसु गौरवेण ।
अवाप्य लोकान् स हि वीतरागः परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते ॥६६ ॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणाच चतुर्विधम् । प्रसादयति यः कृष्णं तंकृष्णोऽनुप्रसीदति
राजा च लभते राज्यमधनश्चोत्तमन्धनम् । क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामः सुतन्तथा

यज्ञा वेदास्तथा कामास्तपांसि विविधानि च ।
प्राप्नोति विविधं पुण्यं विष्णुभक्तो धनानि च ॥ ६९ ॥

यद्यत् कामयते किञ्चित् तत्तल्लोकेश्वराद्भवेत् । सत्रं विहाय य इमं पठेत्पौष्करकं हरेः
प्रादुर्भावं नृपश्रेष्ठ ! न तस्य ह्यशुभं भवेत् । एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः

कीर्तितस्ते महाभाग ! व्यासश्रुतिनिदर्शनात् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पौष्करप्रादुर्भाववर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

विष्णोःप्रादुर्भाववर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वञ्च कृते युगे । वैकुण्ठत्वञ्च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषुच
ईश्वरस्य हितस्यैव कर्मणां महनाम्...ः । संप्रत्यतीतान् भव्यांश्च शृणु राजन् ! यथातथम्

अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यएषभगवान् प्रभुः। नारायणोह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्ययएवच
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् सनातनः। ब्रह्मावायुश्चसोमश्च धर्म्मःशक्रोवृहस्पतिः
अदितेरपि पुत्रत्वं समेत्य रविनन्दन!। एष विष्णुरितिख्यात इन्द्रस्यावरजो विभुः॥
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम्। वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम्॥
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः। सोऽसृजन् पूर्वपुरुषः पुराकल्पेप्रजापतीन्
असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान्। तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधाब्रह्म शाश्वतम्

एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम्।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे॥ ९॥

वृत्ते वृत्रबधे तत्र वर्तमाने कृते युगे। आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः॥
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः। घ्नन्तिदेवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान्
ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे। त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुः॥
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः। सार्कचन्द्रग्रहगणंच्छादयन्तो नभस्तलम्॥
वेणुर्विद्युद्गणोपेता घोरनिह्रादकारिणः। अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः॥
दीप्ततोयाशनिघनैर्वज्रवेगानलानिलैः। रवैः सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम्॥ १५॥

तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च॥ १६॥

चतुर्युगान्ते पर्याये लोकानां यद्भयं भवेत्। अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे॥
जातश्च निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन। तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशोदश॥
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता। द्यौर्नभात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता

तान घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः।
वपुः स्वन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः॥ २०॥

बलाहकाञ्जनमिमं बलाहकतनूरुहम्। तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम्॥२१॥
दीप्तापीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम्। धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम्॥२२॥
चतुर्द्विगुणपीनांसङ्किरीटच्छन्नमूर्द्धजम्। बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम्॥ २३॥

चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् । नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम्॥
शक्तिचित्रफलोदग्रशङ्खचक्रगदाधरम् । विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् ॥
त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् । सर्वलोकमनःकान्तं सर्वसत्वमनोहरम् ॥२६
नानाविमानविटपन्तोयदाम्बुमधुस्रवम् । विद्याहङ्कारसाराद्यं महाभूतप्ररोहणम् ॥ २७ ॥
विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम् । दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोके प्रकाशितम् ।२८
सागराकारनिर्ह्रादं रसातलमहाश्रयम् । मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम् ॥ २६ ॥
शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् । अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम् ॥
महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् । विमानगरुतव्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम् ॥ ३१ ॥
जन्तुमत्स्यजनाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम् । त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ॥३२
वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैवलम् । द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ॥ ३३ ॥
वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् ।
सन्ध्यासङ्ख्योर्मिसलिलं सुपर्णानिलसेवितम् ॥ ३४ ॥
दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगझषाकुलम् । पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ॥३५॥
श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् । कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम्
तन्तु योगमहापारं नारायणमहार्णवम् । देवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तिवत्सलम् ॥३७
अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् । हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते ॥ ३८ ॥
ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते । अनन्तरश्मिभिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ॥ ३६ ॥
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे । भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ॥ ४० ॥
ददृशुस्तेस्थितं देवं दिव्ये लोकमये रथे । ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥४१॥
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणङ्गताः । स तेषां ताङ्गिरं श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतम् ॥
मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे । आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः । शान्तिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुताङ्गणाः॥
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥ ४५ ॥

देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमनुत्तमम् । ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहकाः ॥
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ताश्च दिशो दश ।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः । विरजस्का भवन्मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः
यथार्थमूहुः सरितो नापिचुक्षुभिरेऽर्णवाः । आसंश्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत । यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ॥५०॥
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः । विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम्
इति श्रीमत्स्यपुराणे विष्णोःप्रादुर्भाववर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

———

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दैत्यसैन्यविस्तारवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

ततो भयं विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः । उद्योगविपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च
मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वायतमक्षयम् । चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकल्पितमहायुगम् ॥ २ ॥
किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् । रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ॥
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम् । दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरविनादितम् ॥४॥
स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् । गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ॥ ५ ॥
हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् । सपताकध्वजोपेतं सादित्यमिव मन्दरम् ॥ ६ ॥
गजेन्द्राभोगवपुषं क्वचित् केसरिवर्चसम् । युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ॥७॥
दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् । अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ॥
तारमुत्क्रोशविस्तारं सर्वं हेममयं रथम् । शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ९॥
कार्ष्णायसमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम् । तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ॥

लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम्। आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥११।
प्रासैः पाशैश्च विततैर्नरसंयुक्तकण्टकैः। शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः ॥१२।
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम्। युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम्
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः। प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तग्रह इवाचलः ॥
युक्तं रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः। स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ॥ १५ ॥
व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत्। वाराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः॥
खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम्। स्फुरद्दन्तोष्ठनयनं संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत
त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः। व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान्॥
विप्रचित्तिसुतपुश्चैव श्वेतकुण्डलभूषणः। श्वेतः श्वेतप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः
अरिष्टोबलिपुत्रश्च वरिष्ठाद्रिशिलायुधः। युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः ।२०
किशोरस्त्वभिसंहर्षात् किशोर इति चोदितः। सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम्
अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः। लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥२२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान्। स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः॥
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः। अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ॥२४
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे। केचित् खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहनाः ॥
पतिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः। एकपादार्द्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥
आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथापरे। हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥२७॥
ते गदापरिघैरुग्रैः शिलामुसलपाणयः। बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्तिस्म देवताः ॥२८
पाशैः प्रासैश्च परिघैस्तोमराङ्कुशपट्टिशैः। चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ॥
गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः। चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ॥३०॥
एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम्। देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ॥

तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम्।
बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥ ३२ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे दैत्यसैन्यविस्तारवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सुरसैन्यविस्तारवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो रविनन्दन !। सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु
आदित्या वसवोरुद्रा अश्विनौच महाबलौ । सबलाः सानुगाश्चैव सन्नह्यन्त यथाक्रमम्
पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालाः सहस्रदृक् । ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विपम् ॥३॥

मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवररंहसः ।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥४॥

देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः । दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥५॥
वज्रविस्फूर्जितोद्भूतैर्विद्यु दिन्द्रायुधोदितैः । युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः॥

यमारूढः स भगवान् पर्येति सकलं जगत् ।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ॥७॥

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु । सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसाङ्गणे ॥८॥
केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः । युक्तो हयसहस्रेण मतो मारुतरंहसा ॥९॥
सस्यन्दनवरोभाति गुप्तोमातलिना तदा । कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा॥
यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गरम् । तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन्॥
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः । शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥१२॥

कालपाशान् समाविध्यन् हयैः शशिकरोपमैः ।
वाय्वीरितैर्जलाकारैः कुर्वन् लीलाः सहस्रशः ॥१३॥

पाण्डुरोद्भूतवसनः प्रचलन् रुचिराङ्गदः । मणिश्यामोत्तमवपुर्हरिभारार्पितोवरः ॥१४॥
वरुणः पाशधृङ्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् । युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः॥
यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि । युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः॥

राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत । विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः

स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ।
उक्षाणमास्थितः संख्ये साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥१८॥

पूर्वपक्षः सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः । वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥१९॥
चतुर्षुयुक्ताश्चत्वारो लोकपाला महाबलाः । स्वासु दिक्षुस्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते
सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना । श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः
उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना । त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥२२॥
सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा । चचार मध्ये लोकानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥

सोमः श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ।
हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥२४॥

तमृक्षपूगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् । शशच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् ॥
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसदं प्रभुम् । ओषधीनां सहस्राणांनिधानममृतस्यच
जगतः प्रथमं भागं सौम्यं सत्यमयं रथम् । ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणं स्थितम् ॥

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु ।
सप्तधातुगतो लोकां स्त्रीन्दधार चचार च ॥२८॥

यमाहुरग्निकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् । सप्तस्वरगतोयश्च नित्यङ्गीर्भिरुदीर्यते ॥ २९ ॥
यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् । यमाहुराकाशगमं शीघ्रगंशब्दयोगिनम्॥३०॥
स वायुः सर्वभूतायुरुद्भूतः स्वेन तेजसा । ववौप्रव्यथयन् दैत्यान् प्रतिलोमंसतोयदः
मरुतो दिव्यगन्धर्वैर्विद्याधरगणैः सह । चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिवपन्नगैः ॥३२॥
सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रतोयमयं विषम् । शरभूता दिवीन्द्राणाञ्चेरुर्व्यात्तानना दिवि ॥
पर्वतैश्च शिलाशृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः । उपतस्थुः सुरगणाः प्रहर्त्तुं दानवे बले ॥३४॥
यः सदेवोहृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः । युगान्ते कृष्णवर्णाभो विश्वस्यजगतःप्रभुः ॥

सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक् क्रतुसंस्थितः ।
भूम्यापोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥३६॥

अरिघ्नममरादीनाञ्चक्रं गृह्य गदाधरः। अर्कं नगादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा ॥३७॥
सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम्। करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदाङ्गदाम्॥
अन्यैर्भुजैः प्रदीप्ताभैर्भुजगारिध्वजः प्रभुः। दधारायुधजातानि शार्ङ्गादीनि महाबलः॥
सकश्यपस्यात्मभुवं द्विजं भुजगभोजनम्। पवनाधिकसम्पातं गगनक्षोभणं खगम्॥
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम्।
अमृतारम्भनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम् ॥४१॥
देवासुरविमर्देषु बहुशोदृढविक्रमम्। महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् ॥४२॥
शिखिनं वलिनञ्चैव तप्तकुण्डलभूषणम्। विचित्रपत्रवसनन्धातुमन्तमिवाचलम् ॥४३॥
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा। भोगिभोगावसिक्तेन मणिरत्नेन भास्वता॥
पक्षाभ्याञ्चारुपत्राभ्यामावृत्यदिविलीलया। युगान्तेसेन्द्रचापाभ्यान्तोयदाभ्यामिवाम्बरम्
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम्।
केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ॥४६॥
अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः। सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ॥४७॥
तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः। गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ॥४८
तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम्। द्विजराजपतिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ॥४९॥
चन्द्रप्रभाभिर्विपुलं युद्धाय समवर्तत। स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति वृहस्पतिरभाषत।
स्वस्त्यस्तु दानवानीके उशना वाक्यमाददे ॥ ५० ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे सुरसैन्यविस्तारवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवासुरसंग्रामवर्णनम्।

मत्स्य उवाच।

ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा। सुराणामसुराणाञ्च परस्परजयैषिणाम्॥

दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यताः। समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥२॥
तत् सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ। धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥ ३ ॥
ततोरथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः। उत्पतद्भिश्च गगनमसिहस्तैः समन्ततः ॥ ४ ॥
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः। चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः
तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसङ्कुलम्। जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम् ॥ ६ ॥
हस्तमुक्तैश्च परिघैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः। दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ७ ॥
ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जयकाशिभिः। विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परामृधे॥८॥
तेऽस्त्रशूलप्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः। भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमूरक्तं व्रणैर्बहु ॥९॥

वेष्टिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुरैः कृताः।
प्रविष्टा दानवीं मायान्न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥ १० ॥

अस्तं गतमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति। बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम् ॥११

दैत्यचापच्युतान् घोरांश्छित्वा वज्रेण तांश्छरान्।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥ १२ ॥

स दैत्यप्रमुखान् हत्वा तद्दानवबलं महत्। तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत्॥१३
तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवानां वाहनानि च। घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा॥
मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः। वपूंषि दैत्यसिंहानान्तमोभूतान्यपातयन्॥
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा। पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः॥
तद्घनीभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे। दानवन्देवकदनन्तमोभूतमिवाभवत् ॥ १७ ॥
तदासृजन्महामायां मयस्तां तामसीन्दहन्। युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना॥
सा ददाह ततः सर्वान् मायामयविकल्पिता। दैत्याश्चादित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे॥
मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः। भेजिरे चेन्द्रविषयं शीतांशुं सलिलप्रदम्॥
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण वह्निना नष्टचेतसः। शशंसुर्वज्रिणं देवाः सन्तप्ताः शरणैषिणः॥
सन्तप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः। चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत्॥
और्वो ब्रह्मर्षिजः शक्र! तपस्तेपे सुदारुणम्।

और्वः स पूर्वतेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥ २३ ॥

तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम् । उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सहः ॥
हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः । ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम् ॥२५॥
ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्तं तु वचनं धर्मसंहितम् । ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदं पदम् ॥ २६ ॥
एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न वर्तते । कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्त्तसे ॥

बहूनि विप्र ! गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥ २८ ॥

एवमुच्छिन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नास्ति कारणम् भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः॥
तत्र वर्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना । त्वया धर्मोऽर्जितस्तेन द्वितीयाङ्कुरु वै तनुम्
स एवमुक्तो मुनिभिर्ह्यौर्वोमर्मसु ताडितः । जगर्हे तान् ऋषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत्
यथायं विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतस्तु सः । आर्षं वै सेवतःकर्म वन्यमूलफलाशिनः
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः । ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥

जनानां वृत्तयस्तिस्रो यद् गृहाश्रमवासिनाम् ।
अस्माकन्तु वरं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥ ३४ ॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा । अश्मकुट्टा दश तथा पञ्चातपसहाश्च ये ॥
एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः । ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति पराङ्गतिम्॥३६
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते । एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदोजनाः॥

ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः ।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणा दिवि संस्थिता ॥ ३८ ॥
नास्ति योगं विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः ।
नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात् परन्तपः ॥ ३९ ॥

यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् । ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥४०
अयोगे केशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रिया । अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम् ॥४१
क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः । ननिचयं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम् ।
सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ॥ ४३ ॥
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः ।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥ ४४ ॥

यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः । व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतम् ॥
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत् कृत्वा मनोमयम् । दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम्
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति । वन्येनानेन विधिना दिधिक्षन्तमिव प्रजाः
और्वस्तु तपसाविष्टोनिवेश्योरुं हुताशने । ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्य प्रभवारणिम् ॥४८॥

तस्योरुं सहसा भित्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः ।
जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ॥ ४६ ॥

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्यऔर्वो नामान्तकोऽनलः । दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं श्लक्ष्णया गिरा । क्षुधा मे बाधते तात! जगद्भक्ष्ये त्यजस्वमाम्
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशोदश । निर्दहन् सर्वभूतानिववृधे सोऽन्तकोऽनलः
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् । उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयाङ्कुरु ॥५३॥
अस्यापत्यस्य ते विप्र! करिष्ये स्थानमुत्तमम् । तथ्यमेतद्वचः पुत्र! श्रृणु त्वंवदताम्वरः

ऊर्व उवाच ।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवांच्छिशोः । मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहायवै

प्रभातकाले संप्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवन्! तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥ ५६ ॥
कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम् ।
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजसः ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रेवै भविष्यति । मम योनिर्जलंविप्र ! तस्य पीतवतःसुखम्
यत्राहमास नियतं पिबन् वारिमयं हविः । तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयश्च तत्॥

ततो युगान्ते भूतानामेष चाहञ्च पुत्रक !। सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणामृणापहः
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः। दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम्॥
एवमस्त्विति तं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः। प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरिप्रभाम्

प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः।
ऊर्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वाङ्गतिमुपाश्रिताः ॥ ६३ ॥

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम्। ऊच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६४ ॥
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम्। तपसा ते मुनिश्रेष्ठ! परितुष्टः पितामहः ॥६५॥
अहन्तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत !। भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा॥
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम्। यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ! तवैव स्यात् पराजयः॥

ऊर्व उवाच।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं गुरुःस्थितः। नास्तिमे तपसानेन भयमद्येहसुव्रत!
तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम्। निरिन्धनामग्निमयीन्दुर्धर्षां पावकैरपि॥

एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे।
संरक्षत्यात्मपक्षञ्च विपक्षञ्च प्रधर्षति ॥ ७० ॥

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्। जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः
एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा। और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना॥७२॥
तस्मिंस्तु व्युत्थितेदैत्येनिर्वीर्यैषा न संशयः। शापोह्यस्याः पुरा दत्तोस्वृष्टायेनैवतेजसा

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्त्तव्यो भगवान् सुखी।
दीयतां मे सखा शक्र! तोययोनिर्निशाकरः ॥ ७४ ॥

तेनाहं सह सङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः। मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्नसंशयः
इति श्रीमत्स्यपुराणे और्वनिर्मितमायावर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवासुरसंग्रामवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः । सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥
गच्छ सोम ! सहायत्वंकुरुपाशधरस्य वै । असुराणां विनाशाय जयार्थञ्चदिवौकसाम्
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषाञ्चेश्वरेश्वरः । त्वन्मयं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ।
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले । परिवर्त्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ॥
लोकच्छायामयः लक्ष्म तवाङ्कः शशसन्निभः । न विदुः सोमदेवापि ये च नक्षत्रयोनयः

त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ।
तमः प्रोत्सार्य सहसा भासयस्यखिलं जगत् ॥ ६ ॥

अधिकृत्कालयोगात्माइष्टोयज्ञस्यसोऽव्ययः । औषधीशःक्रियायोनिरब्जयोनिरनुष्णभाः
शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः । त्वं कान्तिःकान्तिवपुषात्वं सोमःसोमपायिनाम्
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् । तद्गच्छ त्वं महासेन ! वरुणेन वरूथिना

शमयत्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे ॥ ९ ॥

सोम उवाच ।

यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज ! वरप्रद ! । एवं वर्षामि शिशिरन्दैत्यमायापकर्षणम् ॥

एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य स्वहिमवेष्टितान् ।
विमायान् विमदांश्चैव दैत्यसिंहान्महाहवे ॥ ११ ॥

तेषां हिमकरोत्सृष्टाः सपाशा हिमवृष्टयः । वेष्टयन्तिस्म तान् घोरान्दैत्यान्मेघगणाइव
तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्दू महाबलौ । जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥१३॥
द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ । मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥
ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानवमदृश्यत । जगत् संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिवसंवृतम् ॥

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ । शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम्
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे। न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्काइवाद्रयः

शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः ।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ॥ १८ ॥

तेषान्तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै। विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च
तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितांश्छीतरश्मिभिः । मयो ददर्श मायावी दानवान् दिवि दानवः
स शिलाजालविततां खङ्गचर्माट्टहासिनीम् । पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम्
सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदद्भिर्गजयूथपैः । ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥२२
निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम् । प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत्स समन्ततः
सासिशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः । जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत्

नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः ।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ॥ २५ ॥

साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसङ्कटा । अभवत् घोरसञ्चार्या पृथिवी पर्वतैरिव ॥२६॥
अश्मना प्रहताः केचित् शिलाभिः शकलीकृताः । नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् । निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ॥२८॥
स हि युद्धगतः श्रीमानीशानोऽश्मन्यकम्पत। सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी नचुक्रोधगदाधरः
कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन् कालमाहवे । देवासुरविमर्दन्तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः ॥
ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ । चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ॥

ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥ ३२ ॥

सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः । दैत्यसेनान्ददहतुर्युगान्तेष्विवमूर्च्छितौ
वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् । चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ॥
भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च । दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः ॥३५॥
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके । मयावधे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे ॥३६

निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने। संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ॥
जये दशशताक्षस्य दैत्यानाञ्च पराजये। दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्म्मविस्तरे ॥३८॥
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्थे दिवाकरे। प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चारित्रबन्धुषु ॥
यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु। अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने ॥४०॥
यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च। लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु ॥४१॥
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्म्मणाम्। देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति ॥४२
त्रिपाद्विग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे। अपावृत्ते महाद्वारे वर्त्तमाने च सत्पथे ॥ ४३ ॥
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च। प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥ ४४ ॥
प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे। अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते संग्रामकर्म्मणि ॥
तन्मया विपुला लोकास्ताभ्यां तज्जयकृत्क्रिया। पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतंमहत्
कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत। भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः ॥

बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान्।
ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टियुक्तान् बलाहकान् ॥ ४८ ॥
तिर्य्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम्।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ॥ ४९ ॥

तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशोदश। संवर्तकाले तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम् ॥
सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा। लम्बाभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितकर्म्मणा ॥५१॥
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता। दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ॥५२
तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालचेष्टितम्। वीक्षन्तेस्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः
तं वीक्षन्तिस्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम्। त्रिविक्रमाभिक्रमतं नारायणमिवापरम्
सोऽत्युच्छ्रयपुरः पादमारुता घूर्णिताम्बरः। प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः
समयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे। कालनेमिर्बभौ दैत्यः स विष्णुरिव मन्दरः ॥
अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः। कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम्।
इति श्रीमत्स्यपुराणे देवासुरसंग्रामवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालनेमिवृत्तान्तवर्णनम्

मत्स्य उवाच ।

दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः । विवर्द्धितमहातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥ १ ॥
तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः । उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम् ॥
ते वीतभयसन्त्रासा मयतारपुरोगमाः । तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः ॥ ३ ॥
रेजुरायोधनगता दानवाः युद्धकाङ्क्षिणः । मन्त्रमभ्यसतान्तेषां व्यूहश्च परिधावताम् ।
प्रेक्षताञ्चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् । ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः

ते तु सर्वे भयन्त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ।
मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥

विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि । अरिष्टोबलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ॥
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः । एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वेतपसिसुस्थिताः
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिं तमुद्धतम् । ते गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रैरथ परश्वधैः ॥
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः । अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः ॥
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः । घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितैः । दोर्भिश्चायतदीप्तैश्च प्रासैःपाशैश्च मूर्च्छनैः ॥१२॥
भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकैः । वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ॥

विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।
दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥ १४ ॥
ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिं महाहवे ।
सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः ॥ १५ ॥

द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घना नीलाम्बुदागमे । देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता ॥१६॥

उपेता सितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः । वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी । यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता ॥ १८ ॥ सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा । सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ॥१९॥ रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी । तयोश्चम्वोस्तदानीन्तु बभूव स समागमः ॥

द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगपर्यये ।

तद्युद्धमभवद् घोरं देवदानवसङ्कुलम् ॥ २१ ॥

क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च । निश्चक्रमुर्बलाभ्यान्तु भीमास्तत्र सुरासुराः ॥

पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ।

ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ॥ २३ ॥

वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यांयथागजाः । समाजघ्नुस्ततोभेरीःशङ्खान्दध्मुरनेकशः स शब्दोद्यां भुवं खञ्च दिशश्च समपूरयत् । ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च दुन्दुभीनाञ्च निनदो दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम् । तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तःपरस्परम् बभञ्जु बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः । देवास्तु चाशनिं घोरंपरिघांश्चोत्तमायसान् निस्त्रिंशान् ससृजुःसंख्ये गदागुर्वीश्च दानवाः। गदानिपातैर्भग्नाङ्गाबाणैश्च शकलीकृताः परिपेतुर्भृशं केचित् पुनः केचित्तु जघ्निरे । ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ॥ समीयुस्तेसुसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे । संवर्तमानाः समरे सन्दष्टौष्ठपुटाननाः ॥३०॥ रथारथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः । तेषां रथानान्तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् नभोनभश्चहि यथानभस्यैर्जलदस्वनैः । बभञ्जुस्तु रथान् केचित्केचित् सम्पादितारथैः

सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथान् ।

अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः ॥ ३३ ॥

संह्रादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः। अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हतायुधि ॥ क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे । तैरस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम् ॥ देवदानवसंक्षुब्धं सङ्कुलं युद्धमावभौ । तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ॥ ३६ ॥ अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमावभौ । एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिः स दानवः ॥

व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः । तस्य विद्युच्चलापीडैः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ॥३८
गात्रैर्नागगिरिप्रख्या विनिपेतु र्वलाहकाः । क्रोधाग्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ॥
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः । तिर्यगूर्द्ध्वञ्च गगने ववृधुस्तस्य वाहवः ॥
पर्वतादिव निष्क्रान्ताःपञ्चास्या इव पन्नगाः । सोऽस्त्रजालैर्वहुविधैर्धनुभिः परिघैरपि
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव । सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः ॥
सन्ध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः । ऊरुवेगप्रमथितैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः ॥४३॥

अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन् ।
वहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैच्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः ॥ ४४ ॥
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ।
मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचित्तु विदलीकृताः ॥ ४५ ॥

यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः । तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ॥४६॥
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः । तेन शक्रः सहस्राक्षः स्पन्दितः शरवन्धनैः
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह । निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः ॥४८
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणोमृधे । रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कामरूपिणा ॥

वित्तदोऽपि कृतः संख्ये निर्जितः कालनेमिना ।
यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणे रणे ॥ ५० ॥
याम्यामवस्थां सन्त्यज्य भीतः स्वान्दिशमाविशत् ।
स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषाञ्च कर्म्म तत् ॥ ५१ ॥

दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा । स नक्षत्रपथङ्गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शनम् ॥

जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत् ।
चालयामास दीप्तांशं स्वर्गद्वारात् स भास्करम् ॥ ५३ ॥
सायनञ्चास्य विषयं जहार दिनकर्म्म च ।
सोऽग्निं देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ॥५४॥
वायुञ्च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।

स समुद्रान् समानीय सर्व्वांश्च सरितो बलात् ॥५५॥
चकारात्ममुखे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः। अपः स्ववशगाःकृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः
स स्वयम्भुवि वा भाति महाभूतपतिर्यथा। सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वभूतभयावहः ॥
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान्। स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः
पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः। पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थानेलोकानां प्रभवोपमे
तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥ ५६ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे कालनेमिवृत्तान्तवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालनेमिना सह विष्णुयुद्धम्

मत्स्य उवाच।

पञ्च तत्राभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्म्मणा। वेदो धर्म्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया
स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधोदानवेश्वरः। वैष्णवंपदमन्विच्छन्ययौनारायणान्तिकम्
स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम्। दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ॥
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम्। स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनंकाश्यपं खगम्
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम्।
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे लुब्धमानसः ॥५॥
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः। अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ॥
अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते। अनेन संयुगेष्वद्य दानवाबहवो हताः
अयं स निर्घृणोलोके स्त्रीबालनिरपत्रपः। येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥
अयं स विष्णुर्देवानांवैकुण्ठश्चदिवौकसाम्। अनन्तोभोगिनामप्सुस्वपन्नाद्यः स्वयम्भुवः
अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम्।

अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१०॥
अस्य च्छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे श्रिताः ।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ॥११॥

अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् । यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥
अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः । सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ॥
अयं सकालोदैत्यानांकालभूतःसमास्थितः । अतिक्रान्तस्यकालस्यफलंप्राप्स्यति केशवः ॥
दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः । अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ॥

यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे ।
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥१६॥

क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्ततः । जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे ॥
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः । जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ॥
द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्द्धं नरस्य च । पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥
शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः । त्रीन् लोकानुज्जहारैको क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ॥

भूयस्त्विदानीं संग्रामे संप्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य स देवो विनशिष्यति ॥२१॥

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारयणं रणे । वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२२॥
क्षिप्यमाणो सुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः । क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत् ॥
अल्पं दर्पबलं दैत्य ! स्थिरमक्रोधजं बलम् । हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यद्भाषसे क्षमम् ॥
अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम् । न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः ॥

अहं त्वां दैत्य ! पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम् ।
प्रजापतिकृतं सेतुं भित्वा कः स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥२६॥

अद्य त्वांनाशयिष्यामिदेवव्यापारघातकम् । स्वेषुस्वेषुचस्थानेषुस्थापयिष्यामि देवताः ॥
एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि । जहासदानवःक्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान् ॥
स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे । क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुंवक्षस्यताडयत् ॥

दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः। उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे ॥३०

स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः।

न चचाल ततो युद्धे कम्पमान इवाचलः ॥३१॥

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः। सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥३२॥
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि। कर्म्मणातेनदैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत्
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्द्धिन सा गदा। सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा कृतश्च वपुरात्मनः
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे। व्यवर्द्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥३५॥

भुजाश्चास्य व्यवर्द्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश।

प्रदिशश्चैव खं गां वै पूरयामास केशवः ॥३६॥

ववृधे च पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा। तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ॥
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम्। सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ॥
पद्भ्याक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः।स सूर्यकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम्। सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयापहम् ॥४०॥

मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तन्दानवसम्भवैः।

अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥४१॥

स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम्। स्वयंस्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम्
महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्। क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे। तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा ॥
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः। समुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा ॥

चिच्छेद बाहूश्चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः।

तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाट्टहासि वै ॥४६॥

तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः। स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पतदानवः
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाखइव पादपः। सम्वितत्यमहापक्षौवायोःकृत्वासमञ्जवम्
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम्। स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन् ॥

निपपात दिवन्त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम् । तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् । अपरे ये तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः

ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे ।
कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेष्वपीडयत् ॥५२॥

चकर्ष कस्यचिद्वक्त्रं मध्येऽगृह्णादथापरम् । ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्वा गतासवः ॥
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले । तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥५४॥
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः । तस्मिन् विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः । सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥
देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत् । कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् ॥

वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः ।
योऽयं त्वया हतो विष्णो ! कालनेमी महासुरः ॥५८॥

त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते । एष देवान्परिभवन्लोकांश्च ससुरासुरान्
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति । तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ॥
यदयं कालकल्पस्तु कालनेमी निपातितः । तदा गच्छस्व भद्रन्ते गच्छाम दिवमुत्तमम्
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः । कश्चाहं तव दास्यामि वरं वरवताम्वर!
सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान् । निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम्

अस्मिन्नेव मृधे विष्णो ! शक्राय सुमहात्मने ।
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ॥ ६४ ॥
देवांश्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ।

विष्णुरुवाच ।

शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥ ६५ ॥

श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम् । अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः । अस्मिन्महति संग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ
विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः । स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च

याम्यांयमः पालयितामुत्तराञ्च धनाधिपः। ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैवचन्द्रमाः
अब्दं ऋतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह। आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः॥
हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा। देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः॥ ७१॥
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम्। वायुश्चरतु मार्गस्थ स्त्रिधा दीप्यतु पावकः

त्रींस्तु वर्णांश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्चात्मजैर्गुणैः।
क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः॥ ७३॥
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक्।
गान्तु सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु॥७४॥

तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्वएव स्वकर्मभिः। यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः॥ ७५॥
त्रैलोक्यमातरःसर्वाः समुद्रंयान्तु सिन्धवः। दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शांन्तिव्रजतदेवताः

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्।
स्वगृहे स्वर्गलोके वा संग्रामे वा विशेषतः॥ ७७॥
विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः।
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थिति र्ध्रुवा॥ ७८॥

सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवन्धनम्। एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुःसत्यपराक्रमः
जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं स्वलोकन्तु महायशाः। एतदाश्चर्यमभवत् संग्रामे तारकामये।

दानवानाञ्च विष्णोश्च यन्मान्त्वं परिपृष्टवान्॥ ८०॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कालनेमिवधवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

अष्टसप्ततयधिकशततमोऽध्यायः

भवमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः।

श्रुतः पद्मोद्भस्तात विस्तरेण त्वयेरितः। समासाद्भवमाहात्म्यं भैरवस्य विधीयताम्॥

सूत उवाच ।

तस्यापि देवदेवस्य श्रृणुध्वं कर्म चोत्तमम् ।
आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ २ ॥

तपसा महतायुक्तोह्यवध्य स्त्रिदिवौकसाम् । स कदाचिन् महादेवंपार्वत्या सहितंप्रभुम्
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे । तस्य युद्धं तदा घोरमभवत् सह शम्भुना ॥४॥
आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवनं प्रति । तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ॥
सुषुवे वाणमत्युग्रनाम्ना पाशुपतं हि तत् । रुद्रावाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु ॥६॥
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः । तेषां विदार्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः ॥
वभूवुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् । एवं मायाविनं दृष्ट्वा तञ्च देवस्तदान्धकम् ॥
पानार्थमन्धकास्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा । माहेश्वरी तथाब्राह्मी कौमारी मालिनीतथा

सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै नैऋती तथा ।
सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ॥१० ॥

वाराहीनारसिंहीच वैष्णवीच चलच्छिखा । शतानन्दाभगानन्दा पिच्छिलाभगमालिनी
बला चातिबला रक्ता सुरभीमुखमण्डिका । मातृनन्दा सुनन्दाच विडाली शकुनी तथा
रैवतीच महारक्ता तथैग पिलपिच्छिका । जयाच विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च । सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा
अदितिश्च दितिश्चैव मारीवै मृत्युरैव च । कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकीच घटोदरी॥

कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ॥ १६ ॥

खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी । विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटीकुक्कुटीतथा
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा । सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभीतथा॥
भ्रुकुटी बहुपुत्रीच प्रेतयाना विडम्बिनी। क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरमा दनुः॥१६
उषा रम्भा मेनकाच सलिलाचित्ररूपिणी । स्वाहास्वधा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठाकपर्दिनी
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा । मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी

कुमारी रोचनाभीमा सदाहा सा मदोद्धता। अलम्वाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णीमहासुरी केशिनी शङ्खिनीलम्वा पिङ्गलालोहितामुखी। घण्टारवाथदंष्ट्राला रोचना काकजङ्घिका गोकर्णिकाच मुखिकामहाग्रीवा महामुखी। उल्कामुखीधूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी मोहना कम्पनाक्ष्वेला निर्भया बाहुशाहिनी। सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोकानन्दिनीतथा जोत्स्नामुखीच रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना। अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्वमेखला। अवाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती॥

चित्ता चित्तजला कोणा शान्तिकाघविनाशिनी।
लम्वस्तनी लम्वसटा विसटा वासचूर्णिनी ॥ २८ ॥

स्खलन्ती दीर्घकेशीच सुचिरा सुन्दरी शुभा। अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनीच तथाशर्नी

कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी।
सामान्या हासिनी लम्वा कोविदारी समासवी ॥ ३० ॥

कङ्ककर्णी महानादा महादेवी महोदरी। हुङ्कारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी ॥ ३१ ॥

पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा।
एताश्चान्याश्च देवेशः सोऽसृजन्मातरस्तदा ॥ ३२ ॥

अन्धकानां महाघोराः पपुस्तद्रुधिरं तदा। ततोऽन्धकासृजः सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः तासु तृप्तासु संभूता भूय एवान्धकप्रजाः। अर्दितस्तैर्महादेवः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥३४ ततः स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृतः। जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम्॥

ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम्।
या पपौ सकलन्तेषामन्धकानामसृक् क्षणात्॥
यथा यथा च रुधिरं पिवन्त्यन्धकसम्भवम् ॥ ३६ ॥

तथा तथाऽधिकं देवी संशुष्यति जनाधिप!। पीयमाने तथातेषामन्धकानां तथासृजि

अन्धकास्तु क्षयन्नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा ॥ ३७ ॥

मूलान्धकन्तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक्। चकार वेगाच्छूलाग्रे सचतुष्टावशङ्करम्। अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः। सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च

ततो मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन् । भगवन् ! भक्षयिष्यामः स देवासुरमानुषान्
त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ।

शङ्कर उवाच ।

भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः ॥ ४१ ॥

तस्माद्घोरानभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् । इत्येवं शङ्करेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा ।
भक्षयामासुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् । त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै
नृसिंहमूर्त्तिं देवेशं प्रदध्यौ भगवाञ्छिवः । अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम् ॥
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम् । विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्टकम् ॥
कल्पान्तमारुतक्षुब्धं सप्तपर्णसमस्वनम् ॥ ४५ ॥

वज्रतीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम् । मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ॥ ४६ ॥
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम् । नखनिःसृतरोषाग्निज्वालाकेसरमालिनम् ॥
वज्राङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम् । श्रोणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥४८॥
नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम् । तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसङ्कुलम् ॥
पवनं भ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम् । आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः ॥५०
सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयन्तं महास्रजम् । स ध्यातमात्रो भगवान् प्रददौतस्य दर्शनम्
यादृशेनैवरूपेण ध्याते रुद्रेण धीमता । तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ॥ ५२ ॥
प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः ।

शङ्कर उवाच ।

नमस्तेऽतु जगन्नाथ ! नरसिंहवपुर्धर ! ॥५३ ॥

दैत्यनाथासृजापूर्ण ! नखशक्तिविराजित ! । ततः सकलसंलग्नहेमपिङ्गलविग्रह ! ॥५४
नतोऽस्मिपद्मनाभ ! त्वांसुरशक्र ! जगद्गुरो ! । कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष ! सूर्यकोटिसमप्रभ
सहस्रयमसंक्रोध ! सहस्रेन्द्रपराक्रम ! । सहस्रधनदस्फीत ! सहस्रवरुणात्मक ! ॥५६॥
सहस्रकालरचित ! सहस्रनियतेन्द्रिय ! । सहस्रभूमिसद्धैर्य ! सहस्रानन्त ! मूर्तिमन् ! ॥
सहस्रचन्द्रप्रतिम ! सहस्रग्रहविक्रम ! । सहस्ररुद्रतेजस्क ! सहस्रब्रह्मसंस्तुत ! ॥ ५८ ॥

सहस्रबाहुवर्गोग्र ! सहस्रास्य निरीक्षण ! । सहस्रयन्त्रमथन ! सहस्रवधमोचन ! ॥५६
अन्धकस्य विनाशाययाःसृष्टाःमातरो मया । अनादृत्य तु मद्वाक्यम्भक्षयन्त्यद्भुताःप्रजाः
कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित ! । स्वयङ्कृत्वा कथन्तासांविनाशमभिकारये
एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः । ससर्ज देवोजिह्वायास्तदावाणीश्वरीं हरिः ॥६२॥
हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी । अस्थिभ्यश्च तथाकाली सृष्टापूर्वं महात्मना
यया तद्रुधिरम्पीतमन्धकानां महात्मनाम् । याचास्मिन्कथिता लोकेनामतःशुष्करेवती

द्वात्रिंशन्मातरः सृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा ततः ।
तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु ॥ ६५ ॥

सर्वास्तासु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च । त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्ववशङ्करी
तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी । शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसङ्कर्षणी तथा
इत्येताःपृष्ठगाराजन् ! वागीशानुचराः स्मृताः । सङ्कर्षणीतथाश्वत्थावीजभावापराजिता
कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका । इति देव्यष्टकं राजन् ! मायानुचरमुच्यते
अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदंशना । नृसिंहभैरवा विल्वा गरुत्महृदया जया ॥
भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृपमातरः । आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका ॥७१
ज्वालामुखी भीषणिकाकामधेनुश्चबालिका । तथापद्मकराराजन् ! रेवत्यनुचराःस्मृताः
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः । त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ॥
ताः सृष्टमात्रादेवेन क्रुद्धामातृगणस्य तु । प्रधाविता महाराज ! क्रोधविस्फारितेक्षणाः
अविषह्यतमन्तासां दृष्टितेजः सुदारुणम् । तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ॥
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्तिचिरात् सुतान् । जयन्ति ते तथैवाशु यथावैदेवतागणः
भवत्यस्तु तथालोकान्पालयन्तु मयेरिताः । मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्वं त्रिपुरान्तकम् ॥
नच बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके । येच मां संस्मरन्तीह तेच रक्ष्याः सदानराः
बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः । सर्वकामप्रदास्तेषां भविष्यध्वन्तथैवच
उच्छासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम् । तेच रक्ष्याः सदालोकारक्षितव्यं मदासनम्
रौद्रीं चैव परा मूर्ति महादेवः प्रदास्यति । युष्मन्मुख्या महादेवस्तुक्त परिरक्षथ ॥

मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः ।
एष नित्यं विशालाक्ष्यो मयैव सह रंस्यते ॥८२॥
मया सार्द्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ ।
पृथक् सुपूजिता लोकैः सर्वान् कामान् प्रदास्यथ ॥८३॥

शुष्कां संपूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः । तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यन्तिनसंशयः
एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु । ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥८५
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः । तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः ॥८६
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्त्वा रुद्रस्तु पार्थिव । रौद्रां दिव्यां तनुं तत्रमातृमध्येव्यवस्थितः
सप्त ता मातरो देव्यः सार्द्धनारीनरः शिवः । निवेश्य रौद्रं तत् स्थानं तत्रैवान्तरधीयत

स मातृवर्गस्य हरस्य मूर्त्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे ।
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्तेः पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः ॥८९॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शङ्करकृतनृसिंहस्तुतिवर्णनं नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वाराणस्या माहात्म्यम्

ऋषय ऊचुः ।

श्रुतोऽन्धकवधः सूत ! यथावत्त्वदुदीरितः ।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥१॥

भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः । अन्नदत्त्वञ्च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः
क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वञ्च कथङ्गतः । एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत ! त्वया

सूत उवाच ।

शृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिङ्गलः ।

अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह ॥४॥

पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान्। हरिकेश इतिख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह
तस्य जन्मप्रभृत्यैव शर्वे भक्तिरनुत्तमा। तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥६॥
आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन्। भुञ्जानोऽथ पिवन्वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत्
तमेवं युक्तमनसम्पूर्णभद्रः पिताब्रवीत्। न त्वां पुत्रमहं मन्येदुर्जातो यस्त्वमन्यथा ॥८
न हि यक्ष कुलीनानामेतद्वृत्तं भवत्युत। गुह्यका वत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः॥९॥

क्रव्यादाश्चैव किं भक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक।
मैवं काषीर्नते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना ॥१०॥
स्वयम्भुवा यथादिष्टा त्यक्तव्या यदि नो भवेत्।
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत् ॥११॥

हित्वा मनुष्यभावं च कर्मभि र्विविधैश्चर। यत्त्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एवच ॥
यथावद्विविधन्तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम्। मयापि विहितं पश्य कर्मैतन्नात्र संशयः ॥

सूत उवाच।

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान्। उवाचनिष्क्रमन्क्षिप्रंगच्छपुत्र! यथेच्छसि
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं सम्बन्धिनस्तथा। वाराणसीं समासाद्यतपस्तेपे सुदुश्चरम्
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः। सन्नियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः ॥
अथ तस्यैवमनिशन्तत्परस्य तदा शिवः। सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यभ्यवर्तत ॥१७॥

वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः।
वज्रसूचीमुखैस्तीक्ष्णै र्विध्यमानस्तथैव च ॥१८॥

निर्मांसरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्खेंदुसप्रभः। अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि

एतस्मिन्नन्तरे देवी विज्ञापयत शङ्करम्।

देव्युवाच।

उद्यानं पुनरेवेह द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा ॥२०॥

क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतूहलं हि मे। यतश्च प्रियमेतत्ते तथास्य फलमुत्तमम् ॥

इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः । शर्वः पृष्टोयथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ॥
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शङ्करः । उद्यानं दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक्

देवदेव उवाच ।

प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥२४॥
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभि सकर्णिकारैर्वकुलैश्च सर्वशः ।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥२५॥
क्वचित् प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः ।
विनादितं सारसमण्डनादिभिः प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभिः ॥२६॥
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ॥२७॥
मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनाभि र्निषेवितश्चारु सुगन्धिपुष्पम् ।
क्वचित् सुपुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ॥२८॥
प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणं प्रवृत्तनृत्याप्सरसाङ्गणाकुलम् ।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ॥२९॥
मृगेन्द्रनादाकुलसत्वमानसैः क्वचित् क्वचिद्द्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैः सरस्तटाकैरुपशोभितं क्वचित् ॥३०॥
निविडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम् ।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिशलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ॥
क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं निषेवितं किं पुरुषव्रजैः क्वचित् ॥३२॥
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गैरभ्रङ्कषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैर्विभ्राजितं त्रिदशदेवकुलैरनेकैः ॥३३॥
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तैः स्तोयाशयैस्तमनुशोभितदेवमार्गम् ।

मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्तिसम्बद्धगुल्मविटपैर्विहगैरुपेतम् ॥३४॥

तुङ्गाग्रै र्नीलपुष्पस्तवकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै-

र्मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः

रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरैकतां सम्प्रयातं

च्छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ॥३५॥

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयम्

तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम् ।

मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतितै रञ्जितक्ष्माप्रदेशम्

देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृक्षम् ॥३६॥

सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं सच्छन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः ।

हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नराङ्गनाभिः क्षीवाभिः समधुरगीतवृक्षखण्डम् ॥३७

संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम् ।

आमूलात् फलनिचितैः क्वचिद्विशालैरुत्तुङ्गैः पनसमहीरुहैरुपेतम् ॥३८॥

फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलं सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम् ।

रम्यप्रियङ्गुतरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं भृङ्गावलीषु स्खलिताम्बुकदम्बपुष्पम् ॥३९॥

पुष्पोत्करानिलविघूर्णितपादपाग्रमग्रेसरो भुवि निपातितवंशगुल्मम् ।

गुल्मान्तरप्रभृतिलीनमृगासमूहं संमुह्यतान्तनुभृतामपवर्गदातृ ॥४०॥

चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।

चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः फुल्लारविन्दरचितं सुविशालशाखैः ॥४१

क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः । क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम् ॥४२

पुन्नागेषु द्विजगणविरुतं रक्ताशोकस्तवकभरनमितम् ।

रम्योपान्तं श्रमहरपवनं फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम् ॥४३॥

सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीन्तुहिनशिखरिपुत्र्याः सार्द्धमिष्टैर्गणेशैः ।

विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्टमुपवनतरुरम्यं दर्शयामास देव्याः ॥४४॥

देव्युवाच ।

उद्यानं दर्शितं देव ! शोभया परया युतम् । क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान्पुनर्वक्तुमिहार्हसि
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा । श्रुत्वापि हि न मे तृप्तिरतो भूयोवदस्वमे

देवदेव उवाच ।

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम । सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥ ४७॥
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि ! मदीयं व्रतमाश्रिताः ।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ ४८ ॥
अभ्यसन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः । नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगकूजिते
कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते । अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेवितेशुभे
रोचते मे सदा वासोयेन कार्येण तच्छृणु । मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः॥
यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित् । एतन्मम परं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं महत्
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः । अतः प्रियतमं क्षेत्रं तस्माच्चेह रतिर्मम ॥
विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन । महत् क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदंस्मृतम्
नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे । स्नानात्संसेविताद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः
इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते । प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ॥५६
प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम् ।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं योगतः स महातपाः ॥५७ ॥
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावनात् ।
जैगीषव्यो महाश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते ॥ ५८ ॥
ध्यायतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम् । कैवल्यं परमं याति देवानामपिदुर्लभम्
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः । इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः॥
तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम् । आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेवच
कुबेरस्तु महायक्षस्तथा शर्वार्पितक्रियः । क्षेत्रसम्वसनादेव गणेशत्वमवाप ह ॥ ६२॥
सम्वर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्त्या ममैव तु ।

इहैवाराध्य मां देवि ! सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम् ॥ ६३ ॥

पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः । धर्मकर्त्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ॥

रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः ।

ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ॥ ६५ ॥

देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः। उपासन्ते महात्मानः सर्वे मामेवसुव्रते

अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः । अनन्यमनसोभूत्वा मामिहोपासतेसदा

अलर्कश्च पुरीमेतां मत्प्रसादादवाप्स्यति । स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम्

स्फीतां जनसमाकीर्णां भक्त्याच सुचिरंनृपः । मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते

ततः प्रभृति चार्वङ्गि! येऽपि क्षेत्रनिवासिनः ।

गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः ॥ ७० ॥

मत्प्रसादाद्व्रजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम् । विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः॥

इह क्षेत्रे मृतः सोऽपिसंसारंन पुनर्विशेत् । ये पुनर्निर्ममा धीराःसत्वस्था विजितेन्द्रियाः

व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः । देहभङ्गं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः

गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते ! ॥ ७३ ॥

जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात् । तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति ।७४

एतत्सङ्क्षेपतो देवि ! क्षेत्रस्यास्य महत्फलम् । अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम्

अतःपरतरं नास्ति सिद्धिगुह्यं महेश्वरि!। एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वराभुवि ॥

एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम् । एतदेव परम्ब्रह्म एतदेव परम्पदम् ॥ ७७ ॥

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि !॥

अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः ॥

एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि ! नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगुल्मलतासु पुष्पम् ।

अस्मिन्मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति मूर्खागमेन रहितापि न संशयोऽत्र७९॥

सूत उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे देवो देवीं प्राह गिरीन्द्रजाम् । दातुं प्रसादाद्यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि॥

भक्तो मम वरारोहे! तपसा हतकिल्बिषः। अहो वरमसौ लब्धमस्मत्तो भुवनेश्वरि!॥
एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः। जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशोधमनिसन्ततः॥
ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्निरीक्षती। श्वेतवर्णं विचर्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम्॥
देवी प्राह तदा देवं दर्शयन्ती च गुह्यकम्। सत्यं नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शङ्कर!॥
ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम्। अत्र क्षेत्रे महादेव! पुण्येसम्यगुपासिते॥
कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः। शीघ्रमस्य वरं यच्छ प्रसादात् परमेश्वर!॥८६
एवं मन्वादयो देव! वदन्ति परमर्षयः। रुष्टाद्वाचाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतोभवेत्।
भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्तेमोक्षः सदाशिवात्। एवमुक्तस्ततो देवःसह देव्या जगत्पतिः
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशोधमनिसन्ततः। तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः॥
दिव्यञ्चक्षुरदात्तस्मै येनापश्यत् स शङ्करम्। अथ यक्षस्तदा देशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी

अपश्यत् सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम्।

देवदेव उवाच।

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा॥ ६१॥
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वरः।

सूत उवाच।

ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च॥६२॥
पादयोः प्रणतस्तथौकृत्वा शिरसिसाञ्जलिम्। उवाचाथतदातेन वरदोऽस्मीतिचोदितः
भगवन्! भक्तिमव्यग्रां त्वय्यनन्यां विधत्स्व मे।
अन्नदत्वं च ते लोकानां गाणपत्यं तथाऽक्षयम्॥ ६४॥
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा। एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम्॥

देवदेव उवाच।

जरा मरणसन्त्यक्तः सर्वरोगविवर्जितः। भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः॥
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रितः। अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालोभविष्यसि
महाबलो महासत्त्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः। त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च

उद्भ्रमःसम्भ्रमश्चैव गणौतु परिचारकौ। तवाज्ञाञ्च करिष्येते लोकस्योद्भ्रमसम्भ्रमौ

सूत उवाच।

एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम्। जगाम वामदेवेशः सह तेनामरेश्वरः॥१००

इति श्रीमत्स्यपुराणे वाराणसीमाहात्म्ये कुवेरवरप्राप्तिर्नामो-
नाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीस्थक्षेत्रमाहात्म्यम्।

सूत उवाच।

इमांपुण्योद्भवां स्निग्धांकथां पापप्राशिनीम्। शृण्वन्तु ऋषयःसर्वेसुविशुद्धास्तपोधनाः
गणेश्वरपतिं दिव्यं रुद्रतुल्यपराक्रमम्। सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम् ॥२॥
ब्रूहि गुह्यं यथा तत्वं यत्र नित्यं भव स्थितः। माहात्म्यं सर्वभूतानां परमात्मामहेश्वरः
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः। आभूतसंप्लवं यावत् स्थाणुभूतो महेश्वरः ॥४॥

नन्दिकेश्वर उवाच।

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुत्तमम्। तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥
ततो देवेनतुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया। कथितं भुविविख्यातं यत्र नित्यं स्वयंस्थितः
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी। महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ॥ ७ ॥
भगवन्! देवदेवेश! चन्द्रार्द्धकृतशेखर!। धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्द्ध्वरेतसाम्
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्। ध्यानाध्ययनसम्पन्नं कथं भवति चाक्षयम् ॥
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम्। कथं तत्क्षयमायाति तन्ममाचक्ष्व शङ्कर! ॥
यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसे परमेश्र!। व्रतानि नियमाश्चैवआचारो धर्मएवच
सर्वसिद्धिकरं यत्र ह्यक्षय्यगतिदायकम्। वक्तुमर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ॥१२

महेश्वर उवाच।

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ॥

सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्तं प्रिये मम ॥ १३ ॥

अष्टषष्टिःपुराप्रोक्तास्थानानांस्थानमुत्तमम् । यत्रसाक्षात्स्वयंरुद्रःकृत्तिवासाःस्वयंस्थितः
यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम् । तत्क्षेत्रं न मयामुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम् ।
अविमुक्तेपरा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः । जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥१६
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् । जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ॥
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् । अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम्
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रा वै वर्णसङ्कराः । कृमिम्लेच्छाश्चयेचान्ये सङ्कीर्णाःपापयोनयः
कीटाः पिपीलिकाश्चैव येचान्ये मृगपक्षिणः । कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्तेशृणुप्रिये!
चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः । शिवे ममपुरे देवि ! जायन्तेतत्र मानवाः
अकामो वा सकामोवाह्यपितिर्यग्गतोऽपि वा । अविमुक्तेत्यजन्प्राणान्ममलोकेमहीयते
अविमुक्तं यदागच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् । अश्मनाचरणौ बद्ध्वा तत्रैवनिधनं व्रजेत्
अविमुक्तं गतोदेवि ! ननिर्गच्छेत्ततः पुनः । सोऽपिमत्पदमाप्नोति नात्रकार्याविचारणा
वस्त्रप्रदं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम् । गोकर्णं रुद्रकर्णञ्च सुवर्णाक्षं तथैव च ॥२५॥

अमरञ्च महाकालं तथा कायावरोहणम् ।
एतानि हि पवित्राणि सान्निध्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ २६ ॥

कालिञ्जरवनञ्चैव शङ्कुकर्णं स्थलेश्वरम् । एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि ममप्रिये
अविमुक्ते वरारोहे ! त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः ॥ २७ ॥

हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम् । जलेश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा ॥२८॥
महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम् । गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च ॥ २९॥
अष्टावेतानि स्थानानिसान्निध्याद्धि ममप्रिये !। अविमुक्तेवरारोहे! त्रिसन्ध्यंनात्रसंशयः
यानि स्थानानि श्रूयन्तेत्रिषुलोकेषु सुव्रते ! । अविमुक्तस्य पादेषु नित्यंसन्निहितानिवै
अथोत्तरांकथांदिव्यामविमुक्तस्यशोभने। स्कन्दोवक्ष्यतिमाहात्म्यमृषीणांभावितात्मनाम्

इति श्रीमत्स्यपुराणे वाराणसीस्थक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामा-
शीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम् ।

सूत उवाच ।

कैलासपृष्ठमासीनं स्कन्दं ब्रह्मविदाम्वरम् । पृच्छन्ति ऋषयः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः
तथा राजर्षयः सर्वे येभक्तास्तु महेश्वरे । ब्रूहित्वंस्कन्द ! भूलोके यत्रनित्यंभवःस्थितः

स्कन्द उवाच ।

महात्मा सर्वभूतात्मा देवदेवः सनातनः । घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः ॥३॥
आभूतसम्प्लवं यावत् स्थाणुभूतस्थितः प्रभुः । गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तमिति स्मृतम्
अविमुक्ते सदा सिद्धिर्यत्रनित्यंव्यवस्थितः । अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं यदुक्तंत्वीश्वरेणतु
स्थानान्तरं पवित्रञ्च तीर्थमायतनं तथा । श्मशानसंस्थितं वेश्म दिव्यमन्तर्हितञ्च यत्
भूलोकेनैव संयुक्तमन्तरिक्षे शिवालयम् । अयुक्तास्तु न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्तिचेतसा
ब्रह्मचर्यव्रतोपेताः सिद्धा वेदान्तकोविदाः । आदेहपतनाद्यावत् तत्क्षेत्रं यो न मुञ्चति ॥
ब्रह्मचर्यव्रतैः सम्यक् सम्यगिष्टंमुखैर्भवेत् । अपापात्मागतिः सर्वा यातूक्ताचक्रियावताम्
यस्तत्र निवसेद्विप्रो संयुक्तात्मासमाहितः । त्रिकालमपि भुञ्जानो वायुभक्षसमोभवेत
निमेषमात्रमपि यो ह्यविमुक्ते तु भक्तिमान् । ब्रह्मचर्यसमायुक्तः परमं प्राप्नुयात्तपः ॥

यत्र मासं वसेद्धीरोःलब्धाहारो जितेन्द्रियः ।
सम्यक् तेन व्रतं चीर्णं दिव्यं पाशुपतं महत् ॥ १२ ॥

जन्ममृत्युभयन्तीर्त्वा स याति परमाङ्गतिम् । नैश्रेयसींगतिं पुण्यां तथा योगगतिंव्रजेत्
न हि योगगतिर्दिव्या जन्मान्तरशतैरपि । प्राप्यते क्षेत्रमाहात्म्यात् प्रभावाच्छङ्करस्यतु
ब्रह्महा योऽभिगच्छेत्तु अविमुक्तं कदाचन । तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्ब्रह्महत्यानिवर्तते
आदेहपतनाद्यावत् क्षेत्रं यो न विमुञ्चति । न केवलं ब्रह्महत्या प्राकृता च निवर्तते ॥
प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते । अनन्यमानसोभूत्वा यो विमुक्तंनमुञ्चति

तस्य देवः सदा तुष्टः सर्वान् कामान् प्रयच्छति ।
द्वारं यत् साङ्ख्ययोगानां स तत्र वसति प्रभुः ॥ १८ ॥

सगणो हि भवो देवो भक्तानामनुकम्पया । अविमुक्तं परं क्षेत्रमविमुक्ते परा गतिः ॥
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परं पदम् । अविमुक्तं निषेवेत देवर्षिगणसेवितम् ॥ २०॥
यदीच्छेन्मानवोधीमान् न पुनर्जायतेर्क्वचित् । मेरोः शक्तो गुणान्वक्तुंद्वीपानाञ्चतथैवच
समुद्राणाञ्च सर्वेषां नाविमुक्तस्य शक्यते । अन्तकाले मनुष्याणां छिद्यमानेषु मर्मसु ॥
वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिर्नैवोपजायते । अविमुक्ते ह्यन्तकाले भक्तानामीश्वरः स्वयम्
कर्मभिः प्रेर्यमाणानां कर्णजापं प्रयच्छति । मणिकर्ण्यां त्यजन्देहं गतिमिष्टां व्रजेन्नरः
ईश्वरप्रेरितो याति दुष्प्रापामकृतात्मभिः । अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा मानुषं बहुकिल्विषम्
अविमुक्तं निषेवेत संसारभयमोचनम् । योगक्षेमप्रदं दिव्यं बहुविघ्नविनाशनम् ॥ २६ ॥
विघ्नैश्चालोड्यमानोऽपि यो विमुक्तं न मुञ्चति । स मुञ्चति जरामृत्युंजन्मचैतदशाश्वतम्
अविमुक्ते प्रसादात्तु शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम् ।

देव्युवाच ।

हिमवन्तं गिरिं त्यक्त्वा मन्दरं गन्धमादनम् । कैलासं निषधञ्चैव मेरुपृष्ठं महाद्युतिम् ॥
रम्यं त्रिशिखरञ्चैव मानसं सुमहागिरिम् । देवोद्यानानि रम्याणि नन्दनं वनमेव च ॥
सुरस्थानानिमुख्यानितीर्थान्यायतनानिच । तानिसर्वाणिसन्त्यज्य अविमुक्तेरतिःकथम्
किमत्र सुमहत् पुण्यं परं गुह्यं वदस्व मे । येन त्वं रमसे नित्यं भूतसम्पद्गुणैर्युतः ॥
क्षेत्रस्य प्रवरत्वञ्च ये च यत्र निवासिनः । तेषामनुग्रहः कश्चित्तत् सर्वं ब्रूहि शङ्कर ! ॥

शङ्कर उवाच।

अत्यद्भुतमिमं प्रश्नं यत्त्वं पृच्छसि भामिनि। तत् सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि तन्मेनिगदतःशृणु
वाराणस्यांनदीपुण्या सिद्धगन्धर्वसेविता। प्रविष्टा त्रिपथा गङ्गा तस्मिन्क्षेत्रेममप्रिये!
मामेवप्रीतिसन्तुष्टाकृत्तिवासाश्च सुन्दरि! सर्वेषांचैवस्थानानां स्थानन्तत्तुयथाधिकम्

तेन कार्येण सुश्रोणि! तस्मिन् स्थाने रतिर्मम।
तस्मिन् लिङ्गे च सान्निध्यं मम देवि! सुरेश्वरि! ॥ ६ ॥

क्षेत्रस्यच प्रवक्ष्यामिगुणान् गुणवताम्वरे। यान् श्रुत्वा सर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः
यदि पापो यदि शठो यदि वा धार्मिकोनरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो ह्यविमुक्तंव्रजेद्यदि
प्रलये सर्वभूतानां लोके स्थावरजङ्गमे। न हि त्यक्ष्यामि तत् स्थानं महागणशतैर्वृतः
यत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। वक्त्रं मम महाभागे! प्रविशन्ति युगक्षये।
तेषां साक्षादहं पूजां प्रतिगृह्णामि पार्वति! सर्वगुह्योत्तमं स्थानं मम प्रियतमं शुभम् ॥
धन्याः प्रविष्टाःसुश्रोणि! ममभक्ता द्विजातयः। मद्भक्तिपरमा नित्यं येमद्भक्तास्तुतेनराः

तस्मिन् प्राणान् परित्यज्य गच्छन्ति परमाङ्गतिम्।
सदा जयति रुद्रेण सदा दानं प्रयच्छति ॥ १६ ॥

सदा तपस्वी भवति अविमुक्तस्थितोनरः। यो मां पूजयते नित्यं तस्य तुष्यामहं प्रिये!
सर्वदानानि यो दद्यात् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। सर्वतीर्थाभिषिक्तस्य सप्र पद्येत मामिह ॥
अविमुक्तं सदादेवि! येव्रजन्तिसुनिश्चिताः। ते तिष्ठन्तीहसुश्रोणि! त्वद्भक्ताश्चत्रिविष्टपे
मत्प्रसादात्तु ते देवि! दीव्यन्ति शुभलोचने! दुर्द्धराश्चैव दुर्द्धर्षा भवन्ति विगतज्वराः
अविमुक्तं शुभं प्राप्य मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः। निर्धूतपापा विमला भवन्ति विगतज्वराः॥

पार्वत्युवाच।

दक्षयज्ञस्त्वया देव! मत् प्रियार्थे निषूदितः। अविमुक्तगुणानान्तु न तृप्तिरिह जायते

ईश्वर उवाच।

क्रोधेन दक्षयज्ञस्तु त्वत् प्रियार्थेविनाशितः। महाप्रिये! महाभागे! नाशितोऽयंवरानने
अविमुक्ते यजन्ते तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः। न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥

देव्युवाच ।

दुर्लभास्तु गुणा देव ! अविमुक्ते तु कीर्त्तिताः । सर्वांस्तन्मम तत्वेन कथयस्वमहेश्वर
कौतूहलं महादेव ! हृदिस्थं मम वर्तते । तत् सर्वं मम तत्वेन आख्याहि परमेश्वर ! ॥

ईश्वर उवाच ।

अक्षया ह्यमराश्चैव ह्यदाहाश्च भवन्ति ते । मत् प्रसादाद्वरारोहे ! मामेव प्रविशन्ति वै ।
ब्रूहि ब्रूहि विशालाक्षि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

देव्युवाच ।

अविमुक्ते महाक्षेत्रे अहो पुण्यमहो गुणाः ॥ २८ ॥
न तृप्तिमधिगच्छामि ब्रूहि देव ! पुनर्गुणान् ।

ईश्वर उवाच ।

माहेश्वरि ! वरारोहे ! श्रृणु तांस्तु मम प्रिये ! ॥२६ ॥

अविमुक्तेगुणायेतु तथान्यानपि तच्छृणु । शाकपर्णाशिनो दान्ताः संप्रक्षाल्यामरीचिपाः
दन्तोलूखलिनश्चान्ये अश्मकुट्टास्तथापरे । मासि मासि कुशाग्रेण जलमास्वादयन्ति वै
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे । आदित्यवपुषः सर्वे जितक्रोधा जितेन्द्रियाः
एवं बहुविधैर्धर्मैरन्यत्र चरितव्रताः । त्रिकालमपि भुञ्जाना येऽविमुक्तनिवासिनः ॥३३॥
तपश्चरन्ति चान्यत्र कलां नार्हन्ति षोड़शीम् । येऽविमुक्ते वसन्तीह स्वर्गे प्रतिवसन्तिते
मत्समः पुरुषो नास्ति त्वत्समा नास्तियोषिताम् । अविमुक्तसमं क्षेत्रंनभूतंनभविष्यति
अविमुक्तं परो योगो ह्यविमुक्ते परा गतिः । अविमुक्ते परो मोक्षःक्षेत्रं नैवास्तितादृशम्
परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि तत्वेन वरवर्णिनि ! । अविमुक्ते महाक्षेत्रे यदुक्तं हि मया पुरा ॥३७
जन्मान्तरशतैर्देवि ! योगोऽयं यदि लभ्यते । मोक्षः शतसहस्रेण जन्मना लभ्यते न वा
अविमुक्तेन सन्देहो मद्भक्तः कृतनिश्चयः । एकेन जन्मना सोऽपि योगं मोक्षं च विन्दति
अविमुक्ते नरा देवि ! ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः । ते विशन्ति परंस्थानंमोक्षं परमदुर्लभम्
पृथिव्यामीदृशं क्षेत्रं नभूतंनभविष्यति । चतुर्मूर्त्तिः सदा धर्मो तस्मिन्सन्निहितःप्रिये !
चतुर्णामपि वर्णानां गतिस्तु परमा स्मृता ।

देव्युवाच।

श्रुता गुणास्ते क्षेत्रस्य इह चान्यत्र ये प्रभो ! ॥ ४२ ॥

वदस्व भुवि विप्रेन्द्राः कं वा यज्ञैर्यजन्ति ते।

ईश्वर उवाच।

दृष्ट्या चैव तु मन्त्रेण मामेव हि यजन्ति ते ॥ ४३ ॥

न तेषांक्षयमस्तीतिभवंरुद्रं यजन्ति यत्। अमन्त्रो मन्त्रकोदेवि ! द्विविधोविधिरुच्यते

साङ्ख्यं चैवाथ योगश्च द्विविधो योग उच्यते।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥ ४५ ॥

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते। आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति। निर्गुणःसगुणोवापियोगश्च कथितोभुवि सगुणश्चैव विज्ञेयो निर्गुणो मनसः परः। एतत्ते कथितं देवि! यन्मान्त्व परिपृच्छसि

देव्युवाच

या भक्ति स्त्रिविधा प्रोक्ता भक्तानां बहुधा त्वया।

तामहं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः कथयस्व मे ॥ ४६ ॥

ईश्वर उवाच।

शृणु पार्वति! देवेशि ! भक्तानां भक्तिवत्सले।

प्राप्य सांख्यञ्च योगञ्च दुःखान्तञ्च नियच्छति ॥ ५० ॥

सदा यः सेवते भिक्षां ततो भवति रञ्जितः।

रञ्जनात् तन्मयो भूत्वा लीयते स तु भक्तिमान् ॥ ५१ ॥

शास्त्राणान्तु वरारोहे ! बहुकारणदर्शिनः। नमां पश्यन्तितेदेवि! ज्ञानवाक्यविवादिनः परमार्थज्ञानतृप्ता युक्ताजानन्ति योगिनः। विद्यया विदितात्मानो योगस्यच द्विजातयः

प्रत्याहारेण शुद्धात्मा नान्यथा चिन्तयेच्च तत्।

तुष्टिञ्च परमां प्राप्य योगं मोक्षं परं तथा ॥ ५४ ॥

त्रिभिर्गुणैः समायुक्तो ज्ञानवान् पश्यतीह माम्।

एतत्ते कथितं देवि ! किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥ ५५ ॥
भूय एव वरारोहे ! कथयिष्यामि सुव्रते ! । गुह्यं पवित्रमथवा यच्चापि हृदि वर्तते ॥
तत्सर्वं कथयिष्यामि शृणुष्वेकमनाः प्रिये ।

देव्युवाच ।

त्वद्रूपं कीदृशं देव ! युक्ताः पश्यन्ति योगिनः ॥ ५७ ॥
पश्यन् मे संशयं ब्रूहि नमस्ते सुरसत्तम ! ।

श्रीभगवानुवाच ।

अमूर्तं चैव मूर्त्तञ्च ज्योतीरूपं हि तत् स्मृतम् ॥ ५८ ॥
तस्योपलब्धिमन्विच्छन् यत्नः कार्यो विजानता । गुणैर्विमुक्तोऽभूतात्माएवंवक्तुंनशक्यते
शक्यते यदि वक्तुं वै दिव्यैर्वर्षशतैर्न वा ।

देव्युवाच ।

किं प्रमाणन्तु तत् क्षेत्रं समन्तात् सर्वतो दिशम् ॥ ६० ॥
यत्र नित्यं स्थितो देवो महादेवो गणैर्युतः ।

ईश्वर उवाच ।

द्वियोजनन्तु तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतः स्मृतम् ॥ ६१ ॥
अर्द्धयोजनविस्तीर्णं तत्क्षेत्रं दक्षिणोत्तरम् । वाराणसी तदीया च यावच्छुक्लनदी तु वै॥
भीष्मचण्डिकमारभ्य पर्वतेश्वरमन्तिके । गणा यत्रावतिष्ठन्ति सन्नियुक्ता विनायकाः
कूष्माण्डराजःशम्भोश्चजयन्तश्चमदोत्कटाः । सिंहव्याघ्रमुखाःकेचिद्विकटाःकुब्जवामनाः
यत्र नन्दी महाकालश्चण्डघण्टो महेश्वरः । दण्डचण्डेश्वरश्चैव घण्टाकर्णो महाबलः॥
एते चान्ये च बहवो गणाश्चैव गणेश्वराः । महोदरा महाकाया वज्रशक्तिधरास्तथा ॥
रक्षन्ति सततं देवि !ह्यविमुक्तं तपोवनम् । द्वारे द्वारे च तिष्ठन्ति शूलमुद्गरपाणयः ६७
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुराञ्चैलाजिनपयस्विनीम् ।
वाराणस्यान्तु यो दद्यात्त्रिवर्णां कञ्जलोचने ! ॥ ६८ ॥
तां दत्त्वा तु वरारोहे ! ब्राह्मणे वेदपारगे । आसप्तमं कुलं तेन तारितं नात्र संशयः॥

योदद्याद् ब्राह्मणे किञ्चित् तस्मिन् क्षेत्रे वरानने ! ।
कनकं रजतं वस्त्रमन्नाद्यं बहु विस्तरम् ॥ ७० ॥
अक्षयं चाव्ययं चैव स्यातां तस्य सुलोचने ! । शृणुतत्त्वेनतीर्थस्य विभूतिं व्युष्टिमेवच
तत्रस्नात्वा महाभागे ! भवन्ति निरुजा नराः । दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोतिमानवः
तदवाप्नोति धर्मात्मा तत्र स्नात्वा वरानने ! । बहुस्वल्पेच यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे
शुभाङ्गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते । वाराणसीजाह्नवीभ्यां सङ्गमे लोकविश्रुते ॥
दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते । एतत्ते कथितं देवि! तीर्थस्यफलमुत्तमम्
उपवासन्तु यः कृत्वा विप्रान् सन्तर्पयन्नरः । सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोतिमानवः
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र वरानने ! । यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति ॥
अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः । प्रविशन्ति मुखन्ते मे निःसन्दिग्धं वरानने ! ॥
दशसौवर्णिकं पुष्पं योऽविमुक्ते प्रयच्छति । अग्निहोत्रफलं धूपे गन्धदाने तथा शृणु ॥
भूमिदानेन तत्तुल्यं गन्धदानफलं स्मृतम् । संमार्जने पञ्चशतं सहस्रमनुलेपने ॥ ८० ॥
मालया शतसाहस्रमनन्तं गीतवाद्यतः ।

देव्युवाच ।

अत्यद्भुतमिदं देव स्थानमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ८१ ॥
रहस्यं श्रोतुमिच्छामि यदर्थन्त्वं न मुञ्चसि ।

ईश्वर उवाच ।

आसीत् पूर्वं वरारोहे ! ब्रह्मणस्तु शिरो वरम् ॥ ८२ ॥
पञ्चमं शृणु सुश्रोणि ! जातं काञ्चनसप्रभम् । ज्वलत्तत् पञ्चमं शीर्षंजातंतस्यमहात्मनः
तदेवमब्रवीद्देवि ! जन्म जानामि ते ह्यहम् । ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च ॥८४ ॥
वामांगुष्ठनखाग्रेण छिन्नं तस्य शिरो मया ।

ब्रह्मोवाच ।

तदा निरपराधस्य शिरश्छिन्नं त्वया मम ॥ ८५ ॥
तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि । ब्रह्महत्याकुलोभूत्वाचरतीर्थानिभूतले

ततोऽहंगतवान्देवि ! हिमवन्तंशिलोच्चयम् । तत्र नारायणःश्रीमान्मयाभिक्षांप्रयाचितः
ततस्तेन स्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम् । स्रवतो महतीधारा तस्य रक्तस्य निःसृता
प्रयाता सातिविस्तीर्णा योजनार्द्धशतन्तदा । न संपूर्णं कपालन्तु घोरमद्भुतदर्शनम् ॥
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सा च धारा प्रवाहिनी । प्रोवाच भगवान्विष्णुः कपालं कुतईदृशम्
आश्चर्यभूतं देवेश ! संशयो हृदि वर्तते । कुतश्च सम्भवो देव ! सर्वं मे ब्रूहि पृच्छतः ॥

देवदेव उवाच ।

श्रूयतामस्य हे देव ! कपालस्य तु सम्भवः । शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्त्वासुदारुणम् ।
ब्रह्माऽसृजद्वपुर्दिव्यमद्भुतं लोमहर्षणम् । तपसश्च प्रभावेण दिव्यं काञ्चनसन्निभम् ॥९३
ज्वलत्तत् पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः । निकृत्तन्तं मया देव ! तदिदंपश्यदुर्जयम्
यत्र यत्र च गच्छामि कपालं तत्र गच्छति । एवमुक्तस्ततो देवः प्रोवाच पुरुषोत्तमः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

गच्छ गच्छ स्वकंस्थानंब्रह्मणस्त्वंप्रियङ्कुरु । तस्मिन्स्थास्यतिभद्रन्तेकपालंतस्यतेजसा
ततःसर्वाणितीर्थानिपुण्यान्यायतनानिच । गतोऽस्मिपृथुलश्रोणि ! नक्वचित् प्रत्यतिष्ठत
ततोऽहं समनुप्राप्तो ह्यविमुक्ते महाशये । अवस्थितः स्वके स्थाने शापश्च विगतो मम

विष्णुप्रसादात् सुश्रोणि ! कपालं तत् सहस्रधा ।
स्फुटितं बहुधा जातं स्वप्नलब्धं धनं यथा ॥९९॥

ब्रह्महत्यापहं तीर्थं क्षेत्रमेतन्मया कृतम् । श्मशानमेतद्भद्रं मे देवानां वरवर्णिनि ॥१००॥
कालो भूत्वा जगत् सर्वं संहरामि सृजामिच । देवेशि ! सर्वगुह्यानांस्थानंप्रियतरंमम
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्तिविष्णुभक्तास्तथैव च । येभक्ताभास्करेदेवि ! लोकनाथे दिवाकरे

तत्रस्थो यस्त्यजेद्देहं मामेव प्रविशेत्तु सः ।

देव्युवाच ।

अत्यद्भुतमिदं देव ! यदुक्तं पद्मयोनिना ॥१०३॥

त्रिपुरान्तकरस्थानं गुह्यमेतन्महाद्युते । सन्निधानात्तु ते सर्वे कलां नार्हन्ति षोडशीम्
यत्र तिष्ठति देवेशो यत्र तिष्ठति शङ्करः । गङ्गातीर्थसहस्राणां तुल्याःभवति वा न वा॥

त्वमेव भक्तिर्देवेश । त्वमेव गतिरुत्तमा । ब्रह्मादीनान्तु ते देव ! गतिरुक्ता सनातनी ।
श्राव्यते यद् द्विजातीनां भक्तानामनुकम्पया ॥१०६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शिवपार्वतीसंवादे वाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीक्षेत्रमाहात्म्यम् ।

महेश्वर उवाच ।

सेवितं बहुभिः सिद्धैरपुनर्भवकाङ्क्षिभिः । विदित्वा तु परं क्षेत्रमविमुक्तनिवासिनाम्
तद्गुह्यं देवदेवस्य तत्तीर्थं तत्तपोवनम् । परं स्थानं तु ते यान्ति सम्भवन्ति न ते पुनः
ज्ञाने विहितनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम् । या गतिर्विहिता सद्भिः साविमुक्ते मृतस्य तु
भवस्य प्रीतिरतुला ह्यविमुक्ते ह्यनुत्तमा । असङ्ख्येयं फलं तत्र ह्यक्षया च गतिर्भवेत् ॥
परं गुह्यं समाख्यातं श्मशानमिति संज्ञितम् ।
अविमुक्तं न सेवन्ते वञ्चितास्ते नरा भुवि ॥५॥

अविमुक्ते स्थितैःपुण्यैःपांसुभिर्वायुनेरितैः । अपिदुष्कृतकर्म्माणोयास्यन्ति परमाङ्गतिम्
मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्म्मणः । अविमुक्तं समासाद्यतत् सर्वंत्रजतिक्षयम्
श्मशानमिति विख्यातमविमुक्तं शिवालयम् । तद्गुह्यं देवदेवस्य तत्तीर्थं तत्तपोवनम्
तत्र ब्रह्मादयो देवा नारायणपुरोगमाः । योगिनश्च तथा साध्या भगवन्तं सनातनम् ॥
उपासन्ते शिवं मुक्ता मद्भक्ता मत्परायणाः । या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्
अविमुक्ते मृतानान्तु सा गतिर्विहिता शुभा ।
संहर्तारश्च कर्त्तारस्तस्मिन् ब्रह्मादयः सुराः ॥११॥

सम्राड्विराण्मया लोका जायन्ते ह्यपुनर्भवाः । महर्जनस्तपश्चैव सत्यलोकस्तथैव च
मनसःपरमोयोसौभूतभव्यभवस्य च । ब्रह्मादिस्थावरान्तश्चयोनौ साङ्ख्यादिमोक्षयोः

येऽविमुक्तं न मुञ्चन्ति नरास्ते नैव चिन्तिताः। उत्तमंसर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमञ्चयत्
क्षेत्राणामुत्तमञ्चैव श्मशानानां तथैव च। तटाङ्कानाञ्च सर्वेषां कूपानां स्रोतसांतथा॥
शैलानामुत्तमञ्चैतत्तडानां तथोत्तमम्। पुण्यकृद्भवभक्तैश्च ह्यविमुक्तन्तु सेव्यते॥१६॥

ब्रह्मणः परमं स्थानं ब्रह्मणाध्यासितञ्च यत्।
ब्रह्मणा सेवितं नित्यं ब्रह्मणा चैव रक्षितम्॥१७॥

अत्रैव सप्तभुवनं काञ्चनो मेरुपर्वतः। मनसः परमो योगः प्रीत्यर्थं ब्रह्मणः स तु॥१८
ब्रह्मा तु तत्र भगवांस्त्रिसन्ध्यंचेश्वरैस्थितः। पुण्यात् पुण्यतमंक्षेत्रंपुण्यकृद्भिर्निषेवितम्
आदित्योपासनं कृत्वा विप्राश्चामरताङ्गताः। अन्येऽपियेत्रयोवर्णाभवभक्त्यासमाहिताः
अविमुक्तेतनुन्त्यक्त्वागच्छन्तिपरमाङ्गतिम्। अष्टौमासान्विहारस्स्ययतीनांसंयतात्मनाम्
एकत्र चतुरो मासान् मासौ वा निवसेत् पुनः। अविमुक्तेप्रविष्टानांविहारस्तु न विद्यते
न देहो भविता तत्र दृष्टं शास्त्रे पुरातने। मोक्षो ह्यसंशयस्तत्र पञ्चत्वन्तु गतस्य वै॥
स्त्रियः पतिव्रता याश्चभवभक्ताःसमाहिताः। अविमुक्तेविमुक्तास्तायास्यन्ति परमाङ्गतिम्

अन्या याः कामचारिण्यः स्त्रियो भोगपरायणाः।
कालेन निधनं प्राप्ता गच्छन्ति परमाङ्गतिम्॥२५॥

यत्र योगश्च मोक्षश्च प्राप्यते दुर्लभो नरैः। अविमुक्तं समासाद्य नान्यद्गच्छेत्तपोवनम्
सर्वात्मना तपः सेव्यं ब्राह्मणैर्नात्र संशयः। अविमुक्ते वसेद्यस्तु मम तुल्यो भवेन्नरः
यतो मया न मुक्तं हि त्वविमुक्तं ततः स्मृतम्। अविमुक्तं न सेवन्ते मूढायेतमसावृताः
विण्मूत्ररेतसां मध्ये ते वसन्तिपुनःपुनः। कामःक्रोधश्चलोभश्च दम्भस्तम्भोऽतिमत्सरः
निद्रा तन्द्रातथाऽऽलस्यंपैशून्यमितितेदश। अविमुक्तेस्थिताविघ्नाःशक्रेणविहिताःस्वयम्
विनायकोपसर्गाश्च सततं मूर्द्धिन तिष्ठति। पुण्यमेतद्भवेत् सर्वं भक्तानामनुकम्पया॥

परं गुह्यमिति ज्ञात्वा ततः शास्त्रानुदर्शनात्।
व्याहृतं देवदेवैस्तु मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः॥३२॥

मेदसा विप्लुता भूमिरविमुक्ते तु वर्जिता। पूता समभवत् सर्वा महादेवेन रक्षिता॥
संस्कारस्तेन क्रियते भूमेरत्र सूरिभिः। ये भक्ता वरदं देवमक्षरं परमं पदम्॥३४॥

देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः । अविमुक्तमुपासन्ते तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥३५॥
ते विशन्ति महादेवमाज्याहुतिरिवानलम् । तं वै प्राप्य महादेवीमीश्वराध्युषितं शुभम्
अविमुक्तं कृतार्थोऽस्मीत्यात्मानमुपलभ्यते । ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः ॥३७॥

यतिभिर्मोक्षकामैश्च ह्यविमुक्तं निषेव्यते ।

नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी ॥३८॥

ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति पराङ्गतिम् । द्वियोजनमथार्द्धञ्च तत् क्षेत्रं पूर्वपश्चिमम् ॥
अर्द्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम् । वाराणसी तदीया च यावच्छुक्लनदी तु वै
एतत् क्षेत्रस्य विस्तारःप्रोक्तोदेवेनधीमता । लब्ध्वायोगश्चमोक्षश्चकाङ्क्षन्तोज्ञानमुत्तमम्
अविमुक्तं न मुञ्चन्तितन्निष्ठास्तत्परायणाः । तस्मिन्वसन्तियेमर्त्यानतेशोच्याःकदाचन
योगक्षेमं तपःक्षेत्रं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । सरितः सागराः शैला नाविमुक्तसमाभुवि ॥

भूर्लोके चान्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि च ।

अतीत्य वर्तते चान्यदविमुक्तं प्रभावतः ॥४४॥

ये तु ध्यानं समासाद्य मुक्तात्मानःसमाहिताः । सन्नियम्येन्द्रियग्रामंजपन्तिशतरुद्रियम्
अविमुक्ते स्थिता नित्यं कृतार्थास्ते द्विजातयः । भवभक्तिसमासाद्यरमन्तेतु सुनिश्चिताः

संहृत्य शक्तितः कामान् विषयेभ्यो बहिः स्थिताः ।

शक्तितः सर्वतो मुक्ताः शक्तितस्तपसि स्थिताः ॥४७॥

करणानीह चात्मानमपुनर्भवभाविताः । तं वै प्राप्य महात्मानमीश्वरन्निर्भयाः स्थिताः
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि । अविमुक्ते तु गृह्यन्ते भवेन विभुना स्वयम्
उत्पादितं महाक्षेत्रं सिध्यन्ते यत्र मानवाः । उद्देशमात्रं कथिता अविमुक्तगुणास्तथा
समुद्रस्येव रत्नानामविमुक्तस्य विस्तरम् । मोहनं तदभक्तानां भक्तानां भक्तिवर्धनम् ॥

मूढास्ते तु न पश्यन्ति श्मशानमिति मोहिताः ।

हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेद्विघ्नशतैरपि ॥५२॥

स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति । जन्ममृत्युजरामुक्तःपरंयाति शिवालयाम्
अपुनर्मरणानां हि सागतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम् । यांप्राप्यकृतकृत्यःस्यादितिमन्येतपण्डितः

न दानैर्न तपोभिर्वा न यज्ञैर्नापि विद्यया। प्राप्यते गतिरिष्टा या ह्यविमुक्तेतु लभ्यते॥

नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डाला ये जुगुप्सिताः।
किल्विषैः पूर्णदेहाश्च प्रकृष्टैःपातकैस्तथा॥ ५६॥

भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः। जात्यन्तरसहस्रेषु ह्यविमुक्ते म्रियेत यः॥ ५७॥
भक्तो विश्वेश्वरे देवे न स भूयोऽभिजायते। यत्र चेष्टं हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्॥
सर्वमक्षयमेतस्मिन्नविमुक्ते न संशयः। कालेनोपरता यान्ति भवे सायुज्यमक्षयम्॥५९

कृत्वा पापसहस्राणि पश्चात् सन्तापमेत्य वै।
यो विमुक्ते वियुज्येत स याति परमाङ्गतिम्॥ ६०॥

उत्तरं दक्षिणं चापि अयनं न विकल्पयेत्। सर्वस्तेषां शुभःकालो ह्यविमुक्ते म्रियन्तिये

न यत्र कालो मीमांस्यो शुभो वा यदि वा शुभः।
तस्य देवस्य माहात्म्यस्थानमद्भुतकर्मणः॥ ६२॥

सर्वेषामेव नाथस्य सर्वेषां विभुना स्वयम्। श्रुत्वेदं ऋषयः सर्वे स्कन्देन कथितं पुरा

अविमुक्ताश्रमं पुण्यं भावयेत् करणैः शुभैः॥ ६३॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम्।

सूत उवाच।

अविमुक्ते महापुण्ये आस्तिकाः शुभदर्शनाः। विस्मयं परमं जग्मुर्हर्षगद्गदनिस्वनाः॥१
ऊचुस्ते हृदमनसःस्कन्दं धर्म्मविदांवरम्। ब्रह्मणोदेव! पौत्रस्त्वंब्रह्मण्यो ब्रह्मणःप्रियः
ब्राह्मणो ब्रह्मविद्ब्रह्मा ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मलोककृत्। ब्रह्मकृद्ब्रह्मचारी त्वं ब्रह्मादिर्ब्रह्मवत्सलः
ब्रह्मतुल्योद्भवकरो ब्रह्मतुल्य नमोऽस्तु ते। ऋषयो भावितात्मानः श्रुत्वेदं पावनं महत्

तत्वन्तुपरमं ज्ञातंयज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते । स्वस्तितेऽस्तु गमिष्यामोभूर्लोकं शङ्करालयम्
यत्रासौ सर्वभूतात्मास्थाणुभूतः स्थितःप्रभुः। सर्वलोकहितार्थायतपस्युग्रे व्यवस्थितः
संयोज्य योगेनात्मानं रौद्रीं तनुमुपाश्रितः । गुह्यकैरात्मभूतस्तु आत्मतुल्यगुणैर्वृतः॥
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः । विज्ञप्तः परया भक्त्या त्वत्प्रसादाद्गणेश्वर !
वस्तुमिच्छाम नियतमविमुक्ते सुनिश्चिताः । एवं गुणे तथा मर्त्या ह्यविमुक्ते वसन्ति ये

धर्मशीला जितक्रोधा निर्ममा नियतेन्द्रियाः ।
ध्यानयोगपराः सिद्धिं गच्छन्ति परमाव्ययाम् ॥ १० ॥
योगिनो योगसिद्धाश्च योगमोक्षप्रदं विभुम् ।
उपासन्ते भक्तियुक्ताः शान्ता योगगतिङ्गताः ॥ ११ ॥

स्थानं गुह्यं श्मशानानां सर्वेषामेतदुच्यते । न हि योगादृते मोक्षः प्राप्यते भुवि मानवैः
अविमुक्ते तु वसतां योगो मोक्षश्च सिध्यति । अनेन जन्मनैवेह प्राप्यते गतिरुत्तमा ॥
एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्यपरमेश्वरि !। एकेन जन्मनादेवि ! मोक्षं पश्यन्त्यनुत्तमम्
अविमुक्ते निवसता व्यासेनामिततेजसा । नैव लब्धा क्वचिद्भिक्षा भ्रममाणेन यत्नतः ॥

क्षुधाविष्टस्ततः क्रुद्धोऽचिन्तयंच्छापमुत्तमम् ।
दिनं दिनं प्रति व्यासः षण्मासं योऽवतिष्ठति ॥ १६ ॥

कथं ममेदं नगरं भिक्षादोषाद्धतन्त्विदम् । विप्रोवा क्षत्रियो वापिविधवा ब्राह्मणीपिवा
संस्कृतासंस्कृता वापिपरिपक्वाः कथन्नमे । न प्रयच्छन्ति वै लोका ब्राह्मणाश्चर्यकारकम्
एषां शापं प्रदास्यामि तीर्थस्य नगरस्यतु । तीर्थश्चातीर्थतां यातु नगरं शापयाम्यहम्
मा भूत्त्रिपुरुषीविद्या मा भूत्त्रिपुरुषंधनम् । मा भूत्त्रिपुरुषंसख्यंव्यासोवाराणसींशपन्
अविमुक्ते निवसतां जनानां पुण्यकर्मणाम् । विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्नविद्यते
व्यासचित्तं तदा ज्ञात्वा देवदेव उमापतिः । भीतभीतस्तदा गौरीं तां प्रियां पर्य्यभाषत
शृणु देवि! वचोमह्यं यादृशं प्रत्युपस्थितम् । कृष्णद्वैपायनः कोपाच्छापं दातुं समुद्यतः

देव्युवाच ।

किमर्थं शपते क्रुद्धो व्यासः केन प्रकोपितः । किं कृतं भगवंस्तस्य येन शापं प्रयच्छति

देवदेव उवाच ।

अनेन सुतपस्तप्तं बहून् वर्षगणान् प्रिये !। मौनिना ध्यानयुक्तेन द्वादशाब्दान् वरानने !॥
ततः क्षुधा सुसञ्जाता भिक्षामटितुमागतः । नैवास्य केनचिद्भिक्षा ग्रासार्द्धमपिभार्मिनि
एवं भगवतः काल आसेत् षाण्मासिको मुनेः ।
ततः क्रोधपरीतात्मा शापं दास्यति सोऽधुना ॥ २७ ॥
यावन्नेष शपेत्तावदुपायस्तत्र चिन्त्यताम् । कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रिये
कोऽस्य शापान्न बिभेति ह्यपि साक्षात् पितामहः ।
अदैवं दैवतं कुर्य्याद् दैवं चाप्यपदैवतम् ॥ २९ ॥
आवान्तु मानुषौभूत्वा गृहस्थाविहवासिनौ । तस्य तृप्तिकरींभिक्षां प्रयच्छावोवरानने
एवमुक्त्वा ततो देवी देवेन शम्भुना तदा । व्यासस्य दर्शनं दत्त्वा कृत्वा वेषन्तु मानुषम्
एह्येहिभगवन्! सद्योभिक्षां ग्राहयसत्तम!। अस्मद्गृहे कदाचित्त्वं नागतोऽसिमहामुने!
एतच्छ्रुत्वा प्रीतमना भिक्षां ग्रहीतुमागतः ।
भिक्षां दत्त्वा तु व्यासाय षड्रसामम्‌तोपमाम् ॥ ३३ ॥
अनास्वादितपूर्वासा भक्षिता मुनिनातदा। भिक्षां व्यासस्ततोभुक्त्वा चिन्तयन्हृष्टमानसः
ववन्दे वरदं देवं देवीञ्च गिरिजां तदा । व्यासः कमलपत्राक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥३५॥
देवोदेवीनदी गङ्गामिष्टमन्नं शुभागतिः । वाराणस्यां विशालाक्षि ! वासः कस्यनरोचते
एवमुक्त्वा ततोव्यासो नगरीमवलोकयन् । चिन्तयानस्ततोभिक्षां हृदयानन्दकारिणीम्
अपश्यत् पुरतो देवं देवोञ्च गिरिजां तदा । गृहाङ्गणस्थितं व्यासं देवदेवोऽब्रवीदिदम्
इह क्षेत्रे न वस्तव्यं क्रोधनस्त्वं महामुने !। एवं विस्मयमापन्नो देवं व्यासोऽब्रवीद्वचः

व्यास उवाच ।

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं दातुमर्हसि । एवमस्त्वित्यनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४०॥
न तद् गृहं न सा देवी न देवो ज्ञायते क्वचित् ।
एवं त्रैलोक्यविख्यातः पुरा व्यासो महातपाः ॥ ४१ ॥
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्यैव पार्श्वतः ।

एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं शंसन्ति पण्डिताः ॥ ४२ ॥

अविमुक्तगुणानान्तुकः समर्थो वदिष्यति। देवब्राह्मणविद्विष्टा देवभक्तिविडम्बकाः ॥

ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च तथा नैष्कृतिकाश्च ये। लोकद्विषो गुरुद्विषस्तीर्थायतनदूषकाः ॥

सदा पापरताश्चैव ये चान्ये कुत्सिता भुवि।

तेषां नास्तीति वासो वै स्थितोऽसौ दण्डनायकः ॥४५ ॥

रक्षणार्थं नियुक्तं वै दण्डनायकमुत्तमम्। पूजयित्वा यथाशक्त्या गन्धपुष्पादिधूपकैः ॥

नमस्कारं ततः कृत्वा नायकस्य तु मन्त्रवित्। सर्ववर्णावृते क्षेत्रे नानाविधसरीसृपे ॥

ईश्वरानुगृहीता हि गतिं गाणेश्वरीं गताः। नानारूपधरा दिव्या नानावेषधरास्तथा ॥

सुरा वै येतु सर्वे च तन्निष्ठास्तत्परायणाः। यदिच्छन्ति परं स्थानमक्षयन्तदवाप्नुयुः॥

परं पुरं दैवपुराद्विशिष्यते तदुत्तरं ब्रह्मपुरात् पुरस्थितम्।

तपोवलादीश्वरयोगनिर्मितं न तत् समं ब्रह्मदिवौकसालयम्।

मनोरमं कामगमं ह्यनामयमतीत्य तेजांसि तपांसि योगवत् ॥ ५० ॥

अधिष्ठितस्तु तत्स्थाने देवदेवो विराजते। तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये

सर्वतीर्थाभिषेकं तु सर्वदानफलानि च । सर्वयज्ञेषु यत् पुण्यमविमुक्ते तदाप्नुयात् ॥

अतीतं वर्तमानश्चज्ञानादज्ञानतोऽपि वा। सर्वं तस्यचयत् पापं क्षेत्रं दृष्ट्वा विनश्यति ॥

शान्तैर्दान्तैस्तपस्तप्तं यत् किञ्चित् धर्मसंज्ञितम्।

सर्वं च तदवाप्नोति अविमुक्ते जितेन्द्रियः ॥ ५४ ॥

अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः। कल्पकोटिशतैश्चापि नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥

अमरा ह्यक्षयाश्चैव क्रीडन्ति भवसन्निधौ। क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं न संशयः॥५६॥

अविमुक्ते महादेवमर्चयन्ति स्तुवन्ति वै। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते तिष्ठन्त्यजरामराः ॥५७।

सर्वकामाश्च ये यज्ञाः पुनरावृत्तिकाः स्मृताः। अविमुक्ते मृता येच सर्वेते ह्यनिवर्तकाः

ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद्भयम्। अविमुक्ते मृतानान्तु पतनं नैव विद्यते ॥ ५६ ॥

कल्पकोटिसहस्रैस्तु कल्पकोटिशतैरपि। न तेषां पुनरावृत्तिर्मृता ये क्षेत्र उत्तमे ।६०।

संसारसागरे घोरे भ्रमन्तः कालपर्ययात्। अविमुक्तं समासाद्य गच्छन्ति मणिकर्णिकाम्

ज्ञात्वा कलियुगं घोरं हाहाभूतमचेतनम् ।
अविमुक्तं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि ॥ ६२ ॥

अविमुक्तं प्रविष्टस्तु यदि गच्छेत्ततः पुनः । तदा हसन्ति भूतानि अन्योन्यं करताडनम्
कामक्रोधेन लोभेन ग्रस्ता ये भुविमानवाः । निष्क्रमन्तेनरा देवि ! दण्डनायकमोहिताः
जपध्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम् । ततो दुःखहतानाञ्च गतिर्वाराणसी नृणाम् ।
तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने । दशाश्वमेधं लोलार्कः केशवो बिन्दुमाधवः
पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका । एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते ह्यविमुक्तकम्
एतद्वै कथितं सर्वं देव्यै देवेन भाषितम् । अविमुक्तस्य क्षेत्रस्य तत् सर्वं कथितं द्विजाः
इति श्रीमत्स्यपुराणे वाराणसीमाहात्म्यसमाप्तिवर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्यप्रारम्भः ।

ऋषय ऊचुः ।

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितन्त्वया । इदानीं नर्मदायास्तु माहात्म्यंवदसत्तम!
यत्रोङ्कारस्य माहात्म्यं कपिलासङ्गमस्य च । अमरेशस्य चैवाहुर्माहात्म्यं पापनाशनम्
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा । मार्कण्डेयश्च भगवान्न विनष्टस्तदा किल ॥
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद ॥ ३ ॥

सूत उवाच ।

एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना । नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ।
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्थो वनवासिना । पृष्टः पूर्वां महागाथां धर्मपुत्रेण धीमता ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादद्विजोत्तम ! । भूयश्चश्रोतुमिच्छामि तन्मेकथयसुव्रत!

कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता। नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने!

मार्कण्डेय उवाच।

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी। तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्। तदेतद्धि महाराज! तत्सर्वं कथयामि ते
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती। ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ॥ ११ ॥

कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके। पुण्ये च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ॥१२
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः। तपस्तप्त्वा महाराज! सिद्धिञ्च परमाङ्गताः ॥
तत्र स्नात्वानरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः। उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्
जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि। पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम्
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता। स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥
प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः। पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः ॥

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः ॥ १८ ॥

तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः। आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव! ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ॥२०॥
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥
धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते। पुनः स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते ॥
कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति। योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ॥
विस्तारेण तु राजेन्द्र! योजनद्वयमायता। षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च ॥
सर्वं तस्य समन्तात्तु तिष्ठतेऽमरकण्टके। ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः। परं शर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥
तस्य पुण्यफलं राजन्! शृणुष्वावहितो मम। शतवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदेत पाण्डव!

अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते। दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ॥
क्रीड़ते देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान्
गृहन्तु लभते स वै नानारत्नविभूषितम्। स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितैः ॥३०॥
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम्। मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां हेषितेन च ॥
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारं इन्द्रस्य भवनं यथा। राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ॥
तस्मिन् गृहे वसित्वा तु क्रीड़ाभोगसमन्वितः। जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ॥

एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके।
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके ॥ ३४ ॥

अनिवर्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा। पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप! ॥
कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे। तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीड़ते कालमक्षयम्। पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिताः
स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः। प्रीतःसोऽस्य भवेत् सर्वो रुद्रकोटिर्नसंशयः
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते ह्ययं देवो महेश्वरः। तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः। तिलोदकेन विधिवत्तर्पयेत् पितृदेवताः॥४०॥
आसप्तमं कुलन्तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव!। षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले॥
धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते। पुनः स्मरति तीर्थार्थं गमनं तत्र रोचते॥

तारयेत्तु कुलान् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते [सरिदुत्तमा]॥ ४४ ॥

विस्तारेण तु राजेन्द्र! योजनद्वयमायता। षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च॥
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके। ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः। एवं शर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥
तस्य पुण्यफलं राजन्! शृणुष्वावहितो मम। शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गेमोदेतपाण्डव!
पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते। यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ! पर्वतेऽमरकण्टके॥४६

तावत्तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे । ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा । पितरो दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै ॥
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी । सकलार्जुनसंच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ॥५२

सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर ॥ ५३ ॥

पुराणेश्रूयतेराजन्! सर्वंकोटिगुणं भवेत् । तस्यास्तीरेतुये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपियान्तिपराङ्गतिम् । द्वितीया तु महाभागाविशल्यकरणीशुभा
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात् । तत्रदेवगणा सर्वे सकिन्नरमहोरगाः
यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ५७ ॥
तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः । नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्यानाम नामतः

उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्! ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥

उपोष्य रजनीमेकाङ्कुलानान्तारयेच्छतम् । कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम !
ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया । तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलंलभेत्
अनाशकन्तुयःकुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकंसगच्छति
नर्मदायास्तु राजेन्द्र ! पुराणेयन्मया श्रुतम् । यत्र तत्र नरःस्नात्वा चाश्वमेधफलंलभेत्
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते । सरस्वत्याञ्च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर !।
समं स्नानं च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् । परित्यजतियःप्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते । नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिभिरलङ्कृतम् ॥६६
पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते । नर्मदा पर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ॥
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया । एवं रम्या च पुण्या च नर्मदा पाण्डुनन्दन !।
त्रयाणामपि लोकानां पुण्या ह्येषा महानदी । वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने ॥
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्युः संशितव्रताः । श्रुतं दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसङ्गमे ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदामाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

षड्शीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्ये ज्वालेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

नर्मदा तु नदीश्रेष्ठापुण्यात् पुण्यतमाहिता । मुनिभिस्तुमहाभागैर्विभक्तामोक्षकांक्षिभिः
यज्ञोपवीतमात्राणि प्रविभक्तानि पाण्डव । तेषु स्नात्वा तु राजेन्द्र ! सर्वपापैःप्रमुच्यते

ज(ज्वा)लेश्वरं परन्तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तस्योत्पत्तिं कथयतः श्रृणु त्वं पाण्डुनन्दन ! ॥ ३ ॥

पुरा मुनिगणाः सर्वे सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः । भयोद्विग्नाविरूपाक्षंपरित्रायस्व न प्रभो !

श्रीभगवानुवाच ।

स्वागतं तु सुरश्रेष्ठाः ! किमर्थमिह चागताः ।
किं दुःखं को नु सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ॥ ५ ॥
कथयध्वं महाभागा एवमिच्छामि वेदितुम् ।
एवमुक्तास्तु रुद्रेण कथयन् संशितव्रताः ॥ ६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

अतिवीर्य्यो महाघोरो दानवो बलदर्पितः । वाणोनामेतिविख्यातो यस्य वै त्रिपुरंपुरम्
गगने सततं दिव्यं भ्रमतेतस्य तेजसा ! । ततो भीता विरूपाक्ष ! त्वामेव शरणंगताः ॥
त्रायस्व महतो दुःखात् त्वं हि नः परमा गतिः । एवं प्रसादं देवेश ! सर्वेषांकर्तुमर्हसि
येन देवाः सगन्धर्वाः सुखमेधन्ति शङ्कर ! । परां निर्वृतिमायान्तितत्प्रभो ! कर्तुमर्हसि

श्रीभगवानुवाच ।

एतत् सर्वं करिष्यामि मा विषादं गमिष्यथ ।
अचिरेणैव कालेन कुर्य्यां युष्मत् सुखावहम् ॥ ११ ॥

आश्वास्य स तु तान् सर्वान्नर्मदातटमाश्रितः । चिन्तयामासदेवेशस्तद्वधंप्रतिमानद !

अथ केन प्रकारेण हन्तव्यं त्रिपुरं मया।

परं संचिन्त्य भगवान् नारदं चास्मरत्तदा। स्मरणादेव! संप्राप्तो नारदः समुपस्थितः

नारद उवाच।

आज्ञापय महादेव! किमर्थञ्च स्मृतो ह्यहम्।

किं कार्य्यन्तु मया देव! कर्तव्यं कथयस्व मे॥ १४॥

श्रीभगवानुवाच।

गच्छ नारद! तत्रैव यत्र तत्त्रिपुरं महत्। वाणस्य दानवेन्द्रस्य शीघ्रं गत्वा च तत्कुरु

या भर्तृदेवतास्तत्रस्त्रियश्चाप्सरसांसमाः। तासां वै तेजसाविप्र! भ्रमते त्रिपुरन्दिवि

तत्र गत्वा तु विप्रेन्द्र! मतिमन्यां प्रबोधय। देवस्य वचनं श्रुत्वा मुनिस्त्वरितविक्रमः

स्त्रीणां हृदयनाशाय प्रविष्टस्तत् पुरं प्रति। शोभते तत्पुरं दिव्यं नानारत्नोपशोभितम्

शतयोजनविस्तीर्णं ततो द्विगुणमायतम्। ततोऽपश्यद्धि तत्रैव वाणन्तु वलदर्पितम्॥

मणिकुण्डलकेयूरमुकुटेन विराजितम्। हारदोरसुवर्णैश्च चन्द्रकान्तविभूषितम्॥ २०॥

रशना तस्य रत्नाढ्या वाहू कनकमण्डितौ। चन्द्रकान्तमहावज्रमणिविद्रुमभूषिते॥२१॥

द्वादशार्कद्युतिनिभे निविष्टं परमात्मने। उत्थितो नारदं दृष्ट्वा दानवेन्द्रो महावलः॥

वाण उवाच।

देवर्षे! त्वं स्वयं प्राप्तोऽर्घ्यं पाद्यं निवेदये।

सोऽभिवाद्य यथान्यायं क्रियतां किं द्विजोत्तम!॥ २३॥

चिरात्त्वमागतो विप्र! स्थीयतामिदमासनम्। एवं सम्भाषयित्वा तुनारदंऋषिसत्तमम्

तस्य भार्या महादेवी ह्यनौपम्या तु नामतः॥ २४॥

अनौपम्योवाच।

भगवन्। केन धर्मेण देवास्तुष्यन्ति नारद!। व्रतेन नियमेनाथ दानेन तपसापि वा॥

नारद उवाच।

तिलधेनुञ्च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे। ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी॥ २६

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः। मोदते सुचिरं कालमक्षयं कृतशासनम्॥

आम्रामलकपित्थानि बदराणि तथैव च। कदम्बचम्पकाशोकाननेकविविधद्रुमान्॥
अश्वत्थपिप्पलांश्चैवकदलीवटदाडिमान्। पिचुमन्दं मधूकं च उपोष्य स्त्री ददाति या
स्तनौ कपित्थसदृशावुरू च कदलीसमौ। अश्वत्थे वन्दनीया च पिचुमन्दे सुगन्धिनी
चम्पके चम्पकाभा स्यादशोके शोकवर्जिता। मधूके मधुरं वक्ति वटे च मृदुगात्रिका।
बदरी सर्वदा स्त्रीणां महासौभाग्यदायिनी। कुक्कुटी कर्कटी चैव द्रव्यषष्ठी न शस्यते
कदम्बमिश्रकनकमञ्जरीपूजनं तथा। अनग्निपक्वमन्नञ्च पक्वान्नानामभक्षणम् ॥ ३३॥
फलानाञ्च परित्यागः सन्ध्यामौनं तथैव च। प्रथमं क्षेत्रपालस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः॥
तस्या भवति वै भर्ता मुखप्रेक्षः सदानघे !। अष्टमी च चतुर्थी च पञ्चमी द्वादशी तथा
संक्रान्तिर्विषुवच्चैवदिनच्छिद्रमुखंतथा। एतांस्तुदिवसान्दिव्यानुपवासन्तियाःस्त्रियः
तासान्तु धर्म्मयुक्तानां स्वर्गवासो न संशयः ॥ ३६ ॥
कलिकालुष्यनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः। उपवासरतां नारीं नोपसर्पति तां यमः॥

अनौपम्योवाच।

अस्मत्कृतेन पुण्येन पुराजन्मकृतेन वा। भवदागमनं भूतं किञ्चित् पृच्छाम्यहं व्रतम्॥
अस्ति विन्ध्यावलिर्नामबलिपत्नीयशस्विनी। श्वश्रूर्ममापि विप्रेन्द्र ! न तुष्यतिकदाचन
श्वशुरोऽपि सर्वकालंदृष्ट्वाचापि न पश्यति। अस्तिकुम्भीनसीनाम ननान्दापापकारिणी
दृष्ट्वा चैवाङ्गुलीभंगं सदा कालं करोति च। दिव्येन तु पथा याति ममसौख्यं कथं वद
ऊषरेण प्ररोहन्ति बीजं कुर्यात् कथंचन। येन व्रतेन चीर्णेन भवन्ति वशगा मम॥
तद्व्रतं ब्रूहि विप्रेन्द्र ! दासभावं व्रजामि ते ॥ ४२ ॥

नारद उवाच।

यदेतत्ते मयापूर्वं व्रतमुक्तं शुभानने ! अनेन पार्वती देवी चीर्णेन वरवर्णिनि ! ॥ ४३॥
शङ्करस्य शरीरस्था विष्णोर्लक्ष्मीस्तथैव च। सावित्रीब्रह्मणश्चैव वसिष्ठस्याप्यरुन्धती
एतेनोपोषितेनेह भर्ता स्थास्यति ते वशे। श्वश्रूश्वशुरयोश्चैव मुखबन्धो भविष्यति
एवं श्रुत्वा तु सुश्रोणि यथेष्टं कर्तुमर्हसि। नारदस्यवचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत्॥
प्रसादं कुरुविप्रेन्द्र ! व्रतं ग्राहयमेऽधुना। सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च

तव दास्यामहं विप्र ! यच्चान्यदपि दुर्लभम् ।
प्रगृहाण द्विजश्रेष्ठ ! प्रीयेतां हरिशङ्करौ ॥ ४८ ॥

नारद उवाच ।

अन्यस्मै दीयतांभद्रे ! क्षीणवृत्तिस्तु योद्विजः । अहन्तुसर्वसम्पन्नोमद्भक्तिःक्रियतामिति
एवं तासां मनो हृत्वा सर्वासान्तु पतिव्रताः । जगाम भरतश्रेष्ठ ! स्वकीयंस्थानकंपुनः
ततो ह्यहृदया अन्यतो गतमानसा। पुरे छिद्रं समुत्पन्नं वाणस्य तु महात्मनः ॥५१॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदामाहात्म्येबाणाख्यानवर्णनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुरविनाशार्थं रुद्रस्य वाणपुरे गमनम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

यन्मां पृच्छसि कौन्तेय ! तन्मेकथयतः शृणु । एतस्मिन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमाश्रितः ॥
नाम्नामहेश्वरं स्थानं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् । तस्मिन्स्थानेमहादेवोचिन्तयत्त्रिपुरे वधम्

गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम् ।
स्थानं कृत्वा तु वैशाखं विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम् ॥ ३ ॥

शल्येचाग्निं प्रतिष्ठाप्य मुखे वायुं समर्पयन् । हयांश्च चतुरो वेदान्सर्वदेवमयं रथम् ॥
अभीषवोऽश्विनौ देवावक्षोवज्रधरः स्वयम् । सतस्याज्ञां समादाय तोरणे धनदःस्थितः
यमस्तु दक्षिणे हस्तेवामेकालस्तु दारुणः । चक्रे त्वमरकोट्यस्तु गन्धर्वालोकविश्रुताः
प्रजापती रथश्रेष्ठे ब्रह्मा चैव तु सारथिः । एवं कृत्वा तु देवेशः सर्वदेवमयं रथम् ॥७॥
सोऽतिष्ठत् स्थाणुभूतस्तु सहस्रपरिवत्सरान् । यदात्रीणिसमेतानिअन्तरिक्षेस्थितानिवै
त्रिपर्वाणि त्रिशल्येन तदा तानि व्यभेदयत् । शरःप्रचोदितस्तेन रुद्रेण त्रिपुरं प्रति ॥९
भ्रष्टतेजा स्त्रियो जाता वलन्तासां व्यशीर्यत । उत्पाताश्चपुरेतस्मिन्प्रादुर्भूताःसहस्रशः

त्रिपुरस्य विनाशाय कालरूपा भवंस्तदा । अट्टहासं प्रमुञ्चन्ति हयाः काष्ठमयास्तदा ॥
निमेषोन्मेषणञ्चैव कुर्वन्ते चित्ररूपिणः । स्वप्ने पश्यन्तिचात्मानं रक्ताम्बरविभूषितम् ॥
स्वप्ने तु सर्वे पश्यन्त विपरीतानि यानि तु ।
एतान् पश्यन्त उत्पातांस्तत्र स्थाने तु ये जनाः ॥ १३ ॥
तेषां बलञ्च बुद्धिश्च हरकोपेन नाशिते ।
ततः सांवर्तको वायुर्युगान्तप्रतिमो महान् ॥ १४ ॥
समीरितोऽनलस्तेन उत्तमाङ्गेन धावति । ज्वलन्ति पादपास्तत्र पतन्ति शिखराणि च ॥
सर्वतो व्याकुलीभूतं हाहाकारमचेतनम् ।
भग्नोद्यानानि सर्वाणि क्षिप्रं तत् प्रत्यभज्यत ॥ १६ ॥
तेनैव पीडितं सर्वं ज्वलितं त्रिशिखैः शरैः । द्रुमाश्चारामखण्डानिगृहाणि विविधानिच
दशदिक्षु प्रवृत्तोऽयं समृद्धो हव्यवाहनः । मनःशिलानां पुञ्जानि दिशो दश विभागशः
शिखाशतैरनेकैस्तु प्रजज्वाल हुताशनः । सर्वं किंशुकवर्णाभं ज्वलितं दृश्यते पुरम् ॥
गृहाद्गृहान्तरं नैव गन्तुं धूमेन शक्यते । हरकोपानलैर्दग्धं क्रन्दमानं सुदुःखितम् ॥२०
प्रदीप्तं सर्वतो दिक्षु दह्यते त्रिपुरं पुरम् । प्रासादशिखराग्राणि व्यशीर्यन्त सहस्रशः ॥
नानामणिविचित्राणि विमानान्यप्यनेकधा ।
गृहाणि चैव रम्याणि दह्यन्ते दीप्तवह्निना ॥ २२ ॥
धावन्ति द्रुमखण्डेषु वलभीषु तथा जनाः । देवागारेषु सर्वेषु प्रज्वलन्तः प्रधाविताः ॥
क्रन्दन्ति चानलस्पृष्टा रुदन्ति विविधैः स्वरैः । दह्यन्ते दानवास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः
हंसकारण्डवाकीर्णा नलिन्यः सहपङ्कजाः । दृश्यन्तेऽनलदग्धानिपुरोद्यानानि दीर्घिकाः
अम्लानपङ्कजच्छन्ना विस्तीर्णा योजनायताः । गिरिकूटनिभास्तत्र प्रासादा रत्नभूषिताः
पतन्त्यनलनिर्दग्धा निस्तोया जलदा इव । वरस्त्रीबालवृद्धेषु गोषु पक्षिषु वाजिषु ॥
निर्दयो व्यदहद्वह्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः । सहस्रशः प्रबुद्धाश्च सुप्ताश्च बहवो जनाः ॥२४॥
पुत्रमालिङ्ग्य ते गाढं दह्यन्ते त्रिपुराग्निना ।
अथ तस्मिन् पुरे दीप्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ॥ २६ ॥

अग्निज्वालाहतास्तत्र ह्यपतन् धरणीतले ।
काचिच्छ्यामा विशालाक्षी मुक्तावलिविभूषिता ॥ ३० ॥
धूमेनाकुलिता सा तु पतिता धरणीतले । काचित् कनकवर्णाभा इन्द्रनीलविभूषिता ॥
भर्तारं पतितं दृष्ट्वा पतिता तस्य चोपरि । काचिदादित्यसङ्काशाप्रमुक्ता च गृहेस्थिता ॥
अग्निज्वालाहता सा तु पतिता गतचेतना । उत्थितो दानवस्तत्र खड्गहस्तो महाबलः
वैश्वानरहतः सोऽपि पतितो धरणीतले । मेघवर्णापरा नारी हारकेयूरभूषिता ॥ ३४ ॥
श्वेतरूपधरा नारी बालं स्तन्यं न्यधापयत् ।
दह्यन्तं बालकं दृष्ट्वा रुदते मेघशब्दवत् ॥ ३५ ॥
एवं स तु दहन्नग्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः । काचिच्चन्द्रप्रभा सौम्या वज्रवैदूर्यभूषिता ॥३६॥
सुतमालिङ्ग्य वेपन्ती दग्धा पतति भूतले ।
काचित् कुन्देन्दुवर्णाभा या शयाना गृहे स्थिता ॥ ३७ ॥
गृहे प्रज्वलिते सा तु प्रतिबुद्धा सुदुःखिता । पश्यन्ती ज्वलितं सर्वं स्वसुतोमेदिवङ्गतः
सुतं सन्दग्धमालिंग्य पतिता धरणीतले । काचित् सुवर्णवर्णाभा नीलरत्नैर्विभूषिता ॥
धूमेनाकुलिता सा तु प्रसुप्ता धरणीतले ।
अन्या गृहीतहस्ता तु सखि ! दह्यति बालिकाम् ॥ ४० ॥
अनेकदिव्यरत्नाढ्या दृष्ट्वा दहनमोहिता । शिरसि ह्यञ्जलिं कृत्वा विज्ञापयति पावकम् ॥
भगवन् ! यदि वैरन्ते पुरुषेष्वपकारिषु । स्त्रियः किमपराधन्ते गृहपञ्जरकोकिलाः ॥
पापनिर्दयनिर्लज्ज ! कस्ते कोपःस्त्रियः प्रति ।
न दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौर्य्यवर्जितम् ॥ ४३ ॥
अनेन ह्युपसर्गेण तूपालम्भं शिखिन्यदात् । किं त्वया न श्रुतं लोके ह्यवध्याःशत्रुयोषितः
किन्तु तुभ्यं गुणा ह्येते दहनोत्सादनं प्रति । न कारुण्यंदयावापिदाक्षिण्यंनस्त्रियःप्रति
दयां कुर्वन्ति म्लेच्छापि दहन्तीं वीक्ष्य योषितम् ।
म्लेच्छानामपि कष्टोऽसि दुर्निवारो ह्यचेतनः ॥ ४६ ॥
एते चैव गुणास्तुभ्यं दहनोत्सादनं प्रति । असावपि दुराचारः स्त्रीणां किंते निपातने

दुष्टनिर्घृणनिर्लज्ज ! हुताशिन् ! मन्दभाग्यक !। निराशत्वं दुरावास वलाद्दहसि निर्दय !
एवं विलप्यमानास्ताजल्पन्त्यश्च बहून्यपि । अन्याःक्रोशन्तिसंक्रुद्धावालशोकेनमोहिताः
दहते निर्दयो वह्निः संक्रुद्धः पूर्वशत्रुवत् । पुष्करिण्यां जलं दग्धं कूपेष्वपि तथैव च ॥

अस्मान् सन्दह्य म्लेच्छ ! त्वं काङ्गतिं प्रापयिष्यसि ।
एवं प्रलपतां तासां वह्निर्वचनमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

अग्निरुवाच ।

स्ववशेनैव युष्माकं विनाशन्तु करोम्यहम् । अहमादेशकर्ता वै नाहंकर्तास्म्यनुग्रहम् ॥
रुद्रक्रोधसमाविष्टो विचिशामि यथेच्छया । ततो बाणोमहातेजास्त्रिपुरंवीक्ष्यदीपितम्
सिंहासनस्थः प्रोवाच ह्यहं देवैर्विनाशितः । अल्पसत्वैर्दुराचारैरीश्वरस्य निवेदितम् ॥
अपरीक्ष्य त्वहं दग्धः शङ्करेणमहात्मना । नान्यः शक्तस्तु मां हन्तुंवर्जयित्वात्रिलोचनम्
उत्थितः शिरसा कृत्वा लिङ्गंत्रिभुवनेश्वरम् । निर्गतःसपुरद्वारात्परित्यज्यसुहृत्सुतान्
रत्नानियान्यनर्घाणिस्त्रियोनानाविधास्तथा । गृहीत्वाशिरसालिङ्गंगच्छन्गगनमण्डलम्
स्तुवंश्च देवदेवेशं त्रिलोकाधिपतिंशिवम् । त्यक्त्वापुरीमया देव ! यदिबध्योऽस्मिशङ्कर
त्वत्प्रसादान्महादेव ! मा मे लिङ्गंविनश्यतु । अर्चितं हि मया देव ! भक्त्या परमया सदा
त्वत्कोपाद्यदि बध्योऽहं तदिदं माविनश्यतु । श्लाघ्यमेतन्महादेव ! त्वत्कोपाद्दहनं मम
प्रतिजन्ममहादेव ! त्वत्पादनिरतो ह्यहम् । त्रो(तो)टकच्छन्दसादेवंस्तौमित्वांपरमेश्वर

शिवशङ्करशर्वहराय नमो भव भीम महेश्वर शर्व नमः ।
कुसुमायुधदेहविनाशकर त्रिपुरान्तक अन्धकशूलधर ॥ ६२ ॥
प्रमदाप्रिय कान्त विभक्त नमः ससुरासुरसिद्धगणैर्नमित ।
हयवानरसिद्धगजेन्द्रमुखादतिभास्वददीर्घविशालमुख ॥ ६३ ॥
उपलब्धुमशक्यतरैरमरैरसुरैः प्रथितोऽस्मि च बाहुशतैः ।
प्रणतोऽस्मि भवं भवभक्तिरतो चलचन्द्रकलाकुलदेव नमः ॥ ६४ ॥
न च पुत्रकलत्रहयादि धनं मम तु त्वदनुस्मरणं शरणम् ।
व्यथितोऽस्मि तु बाहुशतैर्बहुभिर्गमिता च महानरकस्य गतिः ॥ ६५ ॥

न निवर्तति जन्म न पापमतिः शुचिकर्मनिवद्धमपि त्यजति ।
अनुकम्पति विभ्रमति सति मम चैव कुकर्म निवारयति॥ ६६ ॥

यः पठेत्त्रोटकन्दिव्यं प्रयः शुचिमानसः। बाणस्येव यथा रुद्रस्तस्यापि वरदो भवेत् । इमं स्तवं महादिव्यं श्रुत्वा देवो महेश्वरः । प्रसन्नस्तु तदा तस्य स्वयं देवो महेश्वरः

महेश्वर उवाच ।

न भेतव्यंत्वयावत्स ! सौवर्णे तिष्ठ दानव !। पुत्रपौत्रसुहृद्बन्धुभार्याबन्धुजनैः सह ॥ अद्यप्रभृति बाण ! त्वमबध्यस्त्रिदशैरपि । भूयस्तस्य वरो दत्तो देवदेवेन पाण्डव ! ॥ अक्षयश्चाऽव्ययो लोके विचरस्वाकुतोभयः । ततो निवारयामास रुद्रः सप्तशिखं तदा ॥ तृतीयं रक्षितं तस्य पुरं तेन महात्मना । भ्रमत्तु गगने दिव्यं रुद्रतेजःप्रभावतः ॥ ७२ ॥ एवं तु त्रिपुरं दग्धं शङ्करेणं महात्मना । ज्वालामालाप्रदीप्तं तत्पतितं धरणीतले ।७३॥ एकं निपतितं तत्र श्रीशैले त्रिपुरान्तके। द्वितीयं पतितं तस्मिन् पर्वतेऽमरकण्टके ।७४॥ दग्धेषु तेषु राजेन्द्र ! रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता । ज्वलत्तदपतत्तत्र तेन ज्वालेश्वरः स्मृतः ॥

ऊद्ध्र्वेन प्रस्थितास्तस्य दिव्यज्वाला दिवङ्गताः ।
हाहाकारस्तदा जातो देवासुरकृतो महान् ॥ ७६ ॥

शरमस्तंभयद्रुद्रो माहेश्वरपुरोत्तमे । एवं वृत्तं तदा तस्मिन् पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ७७ ॥

चतुर्दशाख्यं भुवनं स भुक्त्वा पाण्डुनन्दन ! ।
वर्षकोटिसहस्रन्तु त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः ॥ ७८ ॥

ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः । पृथिवीमेकच्छत्रेण भुङ्क्ते स तु न संशयः एवं पुण्यो महाराज ! पर्वतोऽमरकण्टके। चन्द्रसूर्योपरागे तु गच्छेद् योऽमरकण्टकम् अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः। स्वर्गलोकमवाप्नोति दृष्ट्वा तत्र महेश्वरम् ॥८१॥ ब्रह्महत्या गमिष्यन्ति राहुग्रस्ते दिवाकरे। तदेवं निखिलं पुण्यं पर्वतेऽमरकण्टके ॥८२ मनसापि स्मरेद्यस्तं गिरिं त्वमरकण्टकम् । चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः ॥ त्रयाणामपिलोकानां विख्यातोऽमरकण्टकः । एषपुण्यो गिरिश्रेष्ठः सिद्धगन्धर्वसेवितः नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः । मृगव्याघ्रसहस्रैस्तु सेव्यमानो महागिरिः ॥

यत्र सन्निहितो देवो देव्या सह महेश्वरः। ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैःसह
ऋषिभिः किन्नरैर्यक्षैर्नित्यमेव निषेवितः। वासुकिः सहितस्तत्र क्रीडते यन्नगोत्तमे॥
प्रदक्षिणन्तु यः कुर्यात् पर्वतेऽमरकण्टके। पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः

तत्र ज्वालेश्वरं नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेपुनर्भवाः॥ ८९॥
ज्वालेश्वरे महाराज! यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
चन्द्रसूर्य्योपरागेषु तस्यापि शृणु यत् फलम्॥ ९०॥

सर्वकर्म्मविनिर्मुक्ते ज्ञानविज्ञानसंयुतः। रुद्रलोकमवाप्नोति यावदा भूतसंप्लवम्॥९१॥
अमरेश्वरदेवस्य पर्वतस्य उभे तटे। तत्र ता ऋषिकोट्यस्तु तपस्तप्यन्ति सुव्रत!॥९२
समन्ताद्योजनक्षेत्रो गिरिश्चामरकण्टकः। अकामो वा सकामो वा नर्मदायां शुभे जले

स्नात्वा मुच्यति तैः पापै रुद्रलोकं स गच्छति।

इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदामाहात्म्ये ज्वालेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्ये कावेरीसंगममाहात्म्यवर्णनम्।

सूत उवाच।

पृच्छन्ति ते महात्मानो मार्कण्डेयं महामुनिम्। युधिष्ठिरपुरोगास्ते ऋषयश्च तपोधनाः

आख्याहि भगवन्! तथ्यं कावेरीसङ्गमो महान्।
लोकानाञ्च हितार्थाय अस्माकञ्च विवृद्धये॥ २॥

सदा पापरता ये च नरा दुष्कृतकारिणः। मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो गच्छन्ति परमंपदम्॥

एतदिच्छाम विज्ञातुं भगवन् वक्तुमर्हसि॥ ३॥

मार्कण्डेय उवाच।

श्रृण्वन्त्ववहिताः सर्वे युधिष्ठरपुरोगमाः। अस्ति वीरो महायक्षः कुबेरः सत्यविक्रमः
इदन्तीर्थमनुप्राप्य राजा यक्षाधिपोऽभवत्। सिद्धिप्राप्तो महाराज! तन्मे निगदतःश्रृणु
कावेरी नर्मदा यत्र सङ्गमो लोकविश्रुतः। तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः
तपोऽतप्यत यक्षेन्द्रो दिव्यं वर्षशतं महत्। तस्य तुष्टो महादेवः प्रदातुं वरमुत्तमम् ॥७।
भो भो यक्ष! महासत्व! वरं ब्रूहि यथेप्सितम्। ब्रूहि कार्यं यथेष्टन्तु यद्वामनसिवर्तते

कुवेर उवाच।

यदि तुष्टोऽसि मे देव! यदि देयो वरो मम। अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामधिपोभवेत्॥ ९
कुबेरस्य वचः श्रुत्वा परितुष्टो महेश्वरः। एवमस्तु ततो देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१० ॥
सोऽपिलब्धवरो यक्षः शीघ्रं लब्धफलोदयः। पूजितः सतु यक्षैश्च ह्यभिषिक्तस्तु पार्थिव!
कावेरीसङ्गमं तत्र सर्वपापप्रणाशनम्। ये नरा नाभिजानन्ति वञ्चितास्ते न संशयः॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः। कावेरी च महापुण्या नर्मदाच महानदी॥१३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! ह्यर्चयेद्वृषभध्वजम्। अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते॥
अग्निप्रवेशंयः कुर्य्याद्यश्च कुर्य्यादनाशकम्। अनिवर्त्या गतिस्तस्ययथामे शङ्करोऽब्रवीत्
सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडते दिवि रुद्रवत्। षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः॥
मोदते रुद्रलोकस्थो यत्र तत्रैव गच्छति। पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः

भोगवान् दानशीलश्च महाकुलसमुद्भवः।
तत्र पीत्वा जलं सम्यक् चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ १८ ॥

स्वर्गंगच्छन्तिते मर्त्या ये पिबन्ति शुभंजलम्।'गङ्गायमुनयोर्मध्येयत् फलं प्राप्नुयान्नरः

कावेरीसङ्गमे स्नात्वा तत् फलं तस्य जायते ॥ १९ ॥

एवमादि तु राजेन्द्र! कावेरीसङ्गमे महत्। पुण्यं महत्फलं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदामाहात्म्येकावेरीसंगमवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

नार्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं योजनविस्तृतम् । मन्त्रेश्वरेति विख्यातं सर्वपापहरं परम ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! दैवतैः सह मोदते । पञ्चवर्षसहस्राणि क्रीडते कामरूपधृक् ।
गर्जनश्च ततो गच्छेद्यत्र मेघस्तथोत्थितः । इन्द्रजिन्नाम संप्राप्तस्तस्य तीर्थप्रभावतः॥३॥
मेघनादं ततो गच्छेद्यत्र मेघानुगर्जितम् । मेघनादो गणस्तत्र परमां गणताङ्गतः ॥ ४ ॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तीर्थमाम्रातकेश्वरम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५ ॥

नर्मदोत्तरतीरेतु तीर्थन्तु विश्रुतं भवेत् । तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा तर्पयेत् पितृदेवताः॥

सर्वान् कामानवाप्नोति मनसा ये विचिन्तिताः ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! ब्रह्मावर्तमिति स्मृतम् ॥ ७ ॥

तत्र सन्निहितो ब्रह्मा नित्यमेव युधिष्ठिर! । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! ब्रह्मलोकेमहीयते
ततोऽगारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः । सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति॥

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! कपिलातीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! कपिलादानमाप्नुयात् ॥ १० ॥
गच्छेत् करञ्जतीर्थन्तु देवर्षिगणसेवितम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! गोलोकं समवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कुण्डलेश्वरमुत्तमम् । तत्र सन्निहितो रुद्रस्तिष्ठते ह्युमया सह।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! ह्यवध्यस्त्रिदशैरपि। पिप्पलेशन्ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छत्तु राजेन्द्र! विमलेश्वरमुत्तमम्
तत्र देवशिला रम्या चेश्वरेण विनिर्मिता । तत्र प्राणान्परित्यज्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥

ततःपुष्करिणींगच्छेत् तत्रस्नानंसमाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्यीन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत्
नर्म्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता । तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वरेण महात्मना । कथिता ऋषिसङ्घेभ्यो ह्यस्माकञ्च विशेषतः ॥

मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्म्मदा प्रवरा नदी ।
रुद्रदेहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया ॥ १६ ॥

सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता । संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च ॥ २० ॥
नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनी ! । नमस्ते पापशमनि ! नमोदेवि ! वरानने !

नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते ! नमोऽस्तु ते शङ्करदेहनिःसृते ! ।
नमोऽस्तु ते धर्म्मभृतां वरप्रदे ! नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने ! ॥ २२ ॥

यस्त्विदं पठतेस्तोत्रंनित्यंश्रद्धासमन्वितः । ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियोविजयीभवेत्
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभाङ्गतिम् । अर्थार्थी लभते ह्यर्थं स्मरणादेव नित्यशः
नर्म्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः । तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदोत्तरेनानाविधतीर्थमाहात्म्यकथनं नामो-
ननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

तदाप्रभृति ब्रह्माद्या ऋषयश्च तपोधनाः । सेवन्ते नर्म्मदां राजन् ! रागक्रोधविवर्जिताः

युधिष्ठिर उवाच ।

कस्मिन्निपतितं शूलं देवस्य तु महीतले । तत्र पुण्यं समाख्याहि यथावन्मुनिसत्तम !

मार्कण्डेय उवाच ।

शूलभेदेऽति विख्यातं तीर्थं पुण्यतमं महत् । तत्र स्नात्वाऽर्चयेद्देवं गोसहस्रफलं लभेत्

त्रिरात्रङ्कारयेद्यस्तु तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! । अर्चयित्वा महादेवं पुनर्जन्म न विद्यते ॥
भीमेश्वरं ततो गच्छेन्नारदेश्वरमुत्तमम् । आदित्येशं महापुण्यं तथाघृत मधुस्रवम् ॥५॥
नन्दिकेशं परिष्वज्य पर्याप्तं जन्मनः फलम् । वरुणेशं ततः पश्येत् स्वतन्त्रेश्वरमेव च ॥
सर्वतीर्थफलं तस्य पञ्चायतनदर्शनात् ॥ ६ ॥

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र ! युद्धंयत्रसुसाधितम् । कोटितीर्थन्तु विख्यातमसुरायत्रमोहिताः
यत्रैव निहता राजन् ! दानवा वलदर्पिताः । तेषां शिरांस्यगृह्णन्त सर्वे देवाः समागताः
तैस्तु संस्थापितो देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः। कोटिर्विनिहता तत्र तेन कोटीश्वरःस्मृतः
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सदेहः स्वर्गमारुहेत् । यदा त्विन्द्रेण क्षुद्रत्वाद्वज्रकीलेन यन्त्रितम्
तदाप्रभृति लोकानांस्वर्गमार्गो निवारितः । सघृतं श्रीफलं जग्ध्वा कृत्वाचैवप्रदक्षिणम्
पार्वतं सहदीपन्तु शिरसा चैव धारयेत् । सर्वकामसुसम्पन्नो राजा भवति पाण्डव !
मृतो रुद्रत्वमाप्नोति ततोऽसौ जायते पुनः ।
स्वर्गादेत्य भवेद्राजा राज्यं कृत्वा दिवं व्रजेत् ॥ १३ ॥

वहुनेत्रं ततः पश्येत् त्रयोदश्यान्तु मानवः । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तीर्थं परमशोभनम् । नराणां पापनाशाय ह्यगस्त्येश्वरमुत्तमम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! ब्रह्मलोके महीयते । कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षेचतुर्दशी
घृतेन स्नापयेद्देवं समाधिस्थो जितेन्द्रियः । एकविंशकुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पुरात्
धेनुमुपाहनच्छत्रे दद्याच्च घृतकम्वलम् । भोजनं चैव विप्राणां सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥
ततोगच्छेच्चराजेन्द्र ! वलाकेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरोराजन् ! सिंहासनपतिर्भवेत्
नर्मदा दक्षिणे कूले तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् । उपोष्य रजनीमेकां स्नानं तत्र समाचरेत्
स्नानं कृत्वा यथान्यायमर्चयेच्चजनार्दनम् । गोसहस्रफलं तस्य विष्णुलोकं स गच्छति
ऋषितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापहरं नृणाम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥ २२ ॥
देवतीर्थं ततो गच्छेद् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! ब्रह्मलोके महीयते ॥ २३ ॥

अमरकण्टकं गच्छेदमरैः स्थापितं पुरा। स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ॥२४॥
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! रावणेश्वरमुत्तमम्। तत् पश्चायतनं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥
ऋणतीर्थं ततो गच्छेदृणेभ्यो मुच्यते ध्रुवम्। वटेश्वरं ततो दृष्ट्वा पर्याप्तं जन्मनः फलम्

भीमेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वव्याधिविनाशनम्।
स्नातमात्रो नरो राजन्! सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तुरासङ्गममुत्तमम्। तत्र स्नात्वामहादेवमर्चयन्सिद्धिमाप्नुयात्

सोमतीर्थं ततो गच्छेत् पश्येच्चन्द्रमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्! भक्त्या परमया युतः ॥२९॥

तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्थः शिववन्मोदते चिरम्। षष्टिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥३०॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्। अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र! कपिलां यः प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥३२॥

तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप! ॥३३॥
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ। नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठेयुर्यत्र मानवाः ॥३४॥
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनोयथा। सुरेश्वरंततोगच्छेन्नाम्ना कर्कोटकेश्वरम्
गङ्गावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः। नन्दितीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्रसमाचरेत् ॥
तुष्यते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते। ततो दीपेश्वरं गच्छेद्व्यासतीर्थंतपोवनम् ॥
निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी। हुङ्कारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता ॥
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। अक्षयं मोदते कालंयावच्चन्द्रदिवाकरौ

व्यासस्तस्य भवेत् प्रीतः प्राप्नुयादीप्सितं फलम्।
सूत्रेण वेष्टयित्वा तु दीपो देयः सवेदिकः ॥४०॥

क्रीडन्ति ह्यक्षयं कालं यथा रुद्रस्तथैव च। ततो गच्छेच्चराजेन्द्र! ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम्
सङ्गमे तु नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः। ऐरण्डी त्रिषुलोकेषुविख्यातापापनाशिनी
अथवाश्वयुजे मासि शुक्लपक्षेतु चाष्टमी। शुचिर्भूत्वा नरः। स्नात्वा सोपवासपरायणः

ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता। मृत्तिकां शिरसिस्थाप्यह्यवगाह्यचवै जलम्

नर्मदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥४५॥

प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ततः सुवर्णसलिले स्नात्वा दत्त्वातु काञ्चनम्

काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोके महीयते। ततः स्वर्गाच्च्युतः कालाद्राजा भवति वीर्यवान्

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! हीक्षुनद्यास्तु सङ्गमम्। त्रैलोक्यविश्रुतंदिव्यंतत्रसन्निहितःशिवः

तत्र स्नात्वा नरो राजन्! गाणपत्यमवाप्नुयात्।

स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ॥४६॥

तत्तीर्थं त्रिविधं पापं स्नानमात्राद्व्यपोहति। लिङ्गसारं ततोगच्छेत् स्नानंतत्र समाचरेत्

गोसहस्रफलं तस्य रुद्रलोके महीयते। भङ्गतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ॥५१

तत्र गत्वा तु राजेन्द्र! स्नानं तत्र समाचरेत्। सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः

वटेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वतीर्थमनुत्तमम्। तत्र स्नात्वानरोराजन्! गोसहस्रफलं लभेत्

सङ्गमेशन्ततो गच्छेत् सर्वदेवनमस्कृतम्। स्नानमात्रान्नरस्तत्र चेन्द्रत्वं लभेत् ध्रुवम्॥

कोटितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापहरं परम्।

तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः ॥५५॥

तत्र तीर्थं समासाद्य दत्त्वा दानं तु यो नरः। तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणंभवेत्

अथ नारी भवेत् काचित् तत्र स्नानं समाचरेत्।

गौरीतुल्या भवेत् सापि त्विन्द्रपत्नी न संशयः ॥५७॥

अङ्गारेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥

अङ्गारकचतुर्थ्यान्तु स्नानं तत्र समाचरेत्। अक्षयं मोदते कालं शुचिः प्रयतमानसः॥

अयोनिसम्भवे स्नात्वा न पश्येद्योनिसङ्कटम्।

पाण्डवेशन्तु तत्रैव स्नानं तत्र समाचरेत् ॥६०॥

अक्षयं मोदते कालमवध्यैस्त्रिदशैरपि। विष्णुलोकं ततो गत्वा क्रीडते भोगसंयुतः॥

तत्र भुक्त्वा महाभोगान् मर्त्यराजोऽभिजायते। कम्बेश्वरंततोगच्छेत्तत्रस्नानंसमाचरेत्

उत्तरायणसंप्राप्तो यदिच्छेत् तस्य तद्भवेत्। चन्द्रभागांततोगच्छेत्तत्रस्नानंसमाचरेत्

स्नातमात्रो नरो राजन्! सोमलोके महीयते।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् ॥६४॥

पूजितं देवराजेन देवैरपि नमस्कृतम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्! दानंदत्त्वातुकाञ्चनम्

अथवा नीलवर्णाभं वृषभं यः समुत्सृजेत्। वृषभस्य तु रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च॥

तावद्वर्षसहस्राणि नरो हरपुरे वसेत्। ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजाभवति वीर्यवान्॥

अश्वानां श्वेतवर्णानांसहस्राणां नराधिप!। स्वामी भवति मर्त्येषु तस्य तीर्थप्रभावतः

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! ब्रह्मावर्तमनुत्तमम्। तत्रस्नात्वानरोराजन्! तर्पयेत् पितृदेवताः

उपोष्य रजनीमेकांपिण्डंदत्त्वा यथाविधि। कन्यागते तथादित्येअक्षयं स्यान्नराधिप!

ततोगच्छेच्च राजेन्द्र! कपिलातीर्थमुत्तमम्। तत्रस्नात्वानरोराजन्! कपिलांयःप्रयच्छति

सम्पूर्णपृथिवीं दत्त्वा यत् फलं तदवाप्नुयात्।

नर्मदेशं परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ७२ ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्। नर्मदादक्षिणे कूले सङ्गमेश्वरमुत्तमम् ॥७२

तत्र स्नात्वा नरो राजन्! सर्वयज्ञफलं लभेत्।

तत्र सर्वांग्यतो राजा पृथिव्यामेव जायते ॥ ७४ ॥

सर्वलक्षणसम्पूर्णः सर्वव्याधिविवर्जितः। नार्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् ॥७५

आदित्यायतनं दिव्यमीश्वरेण तु भाषितम्। तस्य तीर्थप्रभावेण दत्तं भवति चाक्षयम्

दरिद्राव्याधिनो ये तु ये च दुष्कृतकर्मिणः।मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकंतु यान्ति ते

माघमासेतु संप्राप्ते शुक्लपक्षस्य सप्तमी। वसेदायतने तत्र निराहारो जितेन्द्रियः ॥७८॥

न जराव्याधितो मूको न चान्धो बधिरोऽथवा।

सुभगो रूपसंपन्नः स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥ ७६ ॥

एवं तीर्थं महापुण्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्।

ये न जानन्ति राजेन्द्र! वञ्चितास्ते न संशयः ॥ ८० ॥

गर्भेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।

स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥ ८१ ॥
मोदते स्वर्गलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतुर्दश । समीपतः स्थितं तस्य नागेश्वरतपोवनम् ॥
तत्र स्नात्वातु राजेन्द्र ! नागलोकमवाप्नुयात् ।
वह्निभिर्नागकन्याभिः क्रीडते कालमक्षयम् ॥ ८३ ॥
कुवेरभवनं गच्छेत् कुबेरो यत्र संस्थितः । कालेशरंपरं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः ॥८४॥
तत्र स्नात्वातु राजेन्द्र ! सर्वसम्पदमाप्नुयात् । ततःपश्चिमतो गच्छेत् मारुतालयमुत्तमम्
तत्र स्नात्वातु राजेन्द्र ! शुचिर्भूत्वासमाहितः । काञ्चनंतु ततोदद्याद्यथाशक्तिसुबुद्धिमान्
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति । यमतीर्थं ततो गच्छेन् माघमासे युधिष्ठिर!
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं तत्र समाचरेत् । नक्तम्भोज्यं ततःकुर्य्यान्नपश्येद्योनिसङ्कटम्
अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्यप्सरोभिः प्रमोदते ॥ ८९ ॥
अहल्या च तपस्तत्वा तत्र मुक्तिमुपागता । चैत्रमासेतु संप्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशी ॥९०॥
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत् । यत्रयत्र नरोत्पन्नो वरस्तत्र प्रियो भवेत् ॥
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान् कामदेव इवापरः । अयोध्यान्तुसमासाद्य तीर्थं रामस्यविश्रुतम्
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते । सोमतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्रसमाचरेत् ॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते । सोमग्रहे तु राजेन्द्र ! पापक्षयकरं नणाम् ॥
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन् ! सोमतीर्थं महाफलम् ।
यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ॥ ९५ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति । अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवापि ह्यनाशके ॥
सोमतीर्थे मृतो यस्तु नाऽसौ मर्त्येऽभिजायते ।
शुभतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ९७ ॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोलोकेषु महीयते । ततोगच्छेच्च राजेन्द्र ! विष्णुतीर्थमनुत्तमम्
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् । असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुः श्रीतो भवेदिह । अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ! तापसेश्वरमुत्तमम् । हरिणीव्याधसन्त्रस्तापतितायत्रसामृगी
जलेप्रक्षिप्तयात्रा तु अन्तरिक्षं गता च सा । व्याधोविस्मितचित्तस्तु परं विस्मयमागतः
तेन तापेश्वरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥

अमोहकमिति ख्यातं पितृंश्चैवात्र तर्पयेत् ।
पौर्णमास्याममायान्तु श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥ १०४ ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! पितृपिण्डन्तु दापयेत् ।
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये प्रतिष्ठिता ॥ १०५ ॥

तस्यान्तु दापयेत् पिण्डंवैशाख्यान्तुविशेषतः । तृप्यन्ति पितरस्तत्र यावत्तिष्ठति मेदिनी
ततोगच्छच्चराजेन्द्र ! सिद्धेश्वरमनुत्तमम् । तत्रस्नात्वानरोराजन् ! गणपत्यन्तिकं व्रजेत्

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! लिङ्गो यत्र जनार्दनः ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! विष्णुलोके महीयते ॥ १०८ ॥

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । वामदेवः स्वयं तत्र तपोऽतप्यत वै महत् ॥
दिव्यं वर्षं सहस्रन्तु शङ्करं पर्युपासत । समाधिभङ्गदग्धास्तु शङ्करेण महात्मना ॥११०
श्वेतपर्वा यमश्चैव हुताशः शुक्रपर्वणि । एते दग्धास्तु ते सर्वे कुसुमेश्वर संस्थिताः ॥
दिव्यवर्षसहस्रेण तुष्टस्तेषां महेश्वरः । उमया सहितो रुद्रस्तुष्टस्तेषां वरप्रदः ॥ ११२ ॥

मोक्षयित्वा तु तान् सर्वान् नर्मदातटमास्थितः ।
ततस्तीर्थप्रभावेण पुनर्देवत्वमागताः ॥ ११३ ॥

त्वत्प्रसादान्महादेव ! तीर्थं भवतु चोत्तमम् । अर्द्धयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रंदिक्षु समन्ततः
तस्मितीर्थे नरःस्नात्वा चोपवासपरायणः । कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते ॥११५
वैश्वानरो यमाश्चैव कामदेवस्तथामरुत् । तपस्तत्वा तु राजेन्द्र ! परांसिद्धिमवाप्नुयुः
अङ्कोलस्य समीपे तु नास्तिदूरे तु तस्य वै । स्नानं दानञ्च तत्रैव भोजनं पिण्डमेव च
अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवा तुह्यनाशके । अनिवर्तिका गतिस्तस्य मृतस्यामुत्र जायते ॥
त्र्यम्बकेन तु तोयेन यश्चरुं श्रपयेन्नरः । अङ्कोलमूले दत्त्वा तु पिण्डं चैव यथाविधि ॥
तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावच्चन्द्र दिवाकरौ । उत्तरे त्वयने प्राप्ते यः स्नानङ्करोति यः ॥

पुरुषो वाथ स्त्री वापि वसेदायतने शुचिः ।
सिद्धेश्वरस्य देवस्य प्रातः पूजां प्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥
स याङ्गतिमवाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः । यदावतीर्णः कालेन रूपवान् शुभगो भवेत्
मर्त्ये भवति राजा च त्वासमुद्रान्तगोचरे । क्षेत्रपालं न पश्येत्तु दण्डपाणिं महाबलम् ॥
वृथा तस्य भवेद्यात्रा ह्यदृष्ट्वाकर्णकुण्डलम् । एवं तीर्थफलं ज्ञात्वा सर्वे देवाः समागताः
मुञ्चन्ति कुसुमैर्वृष्टिं तेन तत् कुसुमेश्वरम् ॥ १२४ ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे नर्मदादक्षिणोत्तरकूलयो नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यकथनम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

भार्गवेशं ततो गच्छेद्भग्नो यत्र जनार्दनः । असुरैस्तु महायुद्धे महाबलपराक्रमैः ॥ १ ॥
हुङ्कारितास्तु देवेन दानवाः प्रलयङ्गताः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते
शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन ! हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते
तरुणादित्यसङ्काशे तप्तकाञ्चनसप्रभे । वज्रस्फटिकसोपाने चित्रवेदीशिलातले ॥ ४ ॥
जाम्बूनदमये दिव्ये नानापुष्पोपशोभिते । तत्रासीनं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम् ॥५॥
लोकानुग्रहदं शान्तङ्गणवृन्दैः समावृतम् । स्कन्दनन्दिमहाकालैर्वीरभद्रगणादिभिः ॥६॥
उमया सहितं देवं मार्कण्डिः पर्यपृच्छत । देवदेव महादेव ब्रह्मविष्ण्विन्द्रसंस्तुत !॥७
संसारभयभीतोऽहं सुखोपायं ब्रवीहि मे । भगवन् ! भूतभव्येश ! सर्वपापप्रणाशनम् ॥
तीर्थानां परमं तीर्थं तद्वदस्व महेश्वर ! ।

ईश्वर उवाच ।

शृणु विप्र ! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! स्नानार्थं गच्छ शुभग ! ऋषिसङ्घैः समावृतः

मन्वत्रिकश्यपाश्चैव याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः । यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती
नारदो गौतमश्चैव सेवन्ते धर्म्मकाङ्क्षिणः । गङ्गां कनखलं पुण्यं प्रयागं पुष्करंगयाम्
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे । दिवा वा यदि वा रात्रौ शुक्लतीर्थं महाफलम् ॥
दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव स्नानाद्दानात्तपोजपात् । होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थं महाफलम्
शुक्लतीर्थंमहापुण्यंनर्म्मदायांव्यवस्थितम् । चाणक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्रसमागतः
एतत् क्षेत्रं सुविपुलं योजनं वृत्तसंस्थितम् । शुक्लतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति । जगतीदर्शनाच्चैव भ्रूणहत्यां व्यपोहति ॥ १६ ॥
अहं तत्र ऋषिश्रेष्ठ ! तिष्ठामि ह्युमया सह । वैशाखे चैत्रमासे तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥

कैलासाच्चापि निष्क्रम्य तत्र सन्निहितो ह्यहम् ।
दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥ १८ ॥

गणाश्चाप्सरसोनागाःसर्वेदेवाः समागताः । गगनस्था तु तिष्ठन्ति विमानैःसार्वकामिकैः
शुक्लतीर्थं तु राजेन्द्र ! ह्यागता धर्मकाङ्क्षिणः । रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लम्भवतिवारिणा
आजन्मजनितं पापं शुक्लतीर्थं व्यपोहति । स्नानं दानं महापुण्यं मार्कण्डे ऋषिसत्तम ।
शुक्लतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति । पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानिमानवः
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति । तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः ॥ २३ ॥
देवार्चनेन या पुष्टिर्न सा क्रतुशतैरपि । कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम् । एकविंशकुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पदात् ॥

शुक्लतीर्थं महापुण्यमृषिसिद्धनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! न पुनर्जन्मभाक् भवेत् ॥ २६ ॥

स्नात्वा वै शुक्लतीर्थे तु ह्यर्चयेत् वृषभध्वजम् । कपालपूरणं कृत्वा तुष्यत्यत्र महेश्वरः
अर्द्धनारीश्वरं देवं पटे भक्त्या लिखापयेत् । शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च सद्विजैः॥२८
जागरं कारयेत्तत्र नृत्यगीतादिमङ्गलैः । प्रभाते शुक्लतीर्थे तु स्नानं वै देवतार्चनम् ॥२९

आचार्यान् भोजयेत् पश्चाच्छिवव्रतपरान् शुचीन् ।
दक्षिणाञ्च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ ३० ॥

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत्। एवं वै कुरुते यस्तु तस्य पुण्यफलं श्रृणु।
दिव्ययानं समारूढो गीयमानोऽप्सरोगणैः। शिवतुल्यबलोपेतस्तिष्ठत्याभूतसंप्लवम्॥
शुक्लतीर्थे तु या नारी ददाति कनकं शुभम्। घृतेन स्नापयेद्देवं कुमारं चापि पूजयेत्॥
एवं या कुरुते भक्त्या तस्याः पुण्यफलं श्रृणु। मोदते शर्वलोकस्था यावदिन्द्राश्चतुर्दश

पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा।
स्नात्वा तु सोपवासः सन् विजितात्मा समाहितः॥ ३५॥

दानं दद्याद्यथाशक्त्या प्रीयेतां हरिशङ्करौ। एवं तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥
अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा। उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं श्रृणु॥
यावत्तद्रोमसंख्या च तत्प्रसूतिकुलेषु च। तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥३८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदामाहात्म्ये शुक्लतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामै-
कनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्।

मार्कण्डेय उवाच।

ततस्त्वनरकं गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातयात्रो नरस्तत्र नरकञ्च न पश्यति।

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं श्रृणु त्वं पाण्डुनन्दन!।
तस्मिस्तीर्थे तु राजेन्द्र! यस्यास्थीनि विनिक्षिपेत्॥ २॥

विलयं यान्तिसर्वाणिरूपवान् जायते नरः। गोतीर्थन्तु ततो गत्वा सर्वपोपात्प्रमुच्यते
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्। तत्रगत्वानरोराजन्! गोसहस्रफलंलभेत्॥
ज्यैष्ठमासे तु संप्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः। तत्रोपोष्य नरो भक्त्या कपिलांयःप्रयच्छति
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य घृतेन स्नापयेच्छिवम्। सघृतं श्रीफलंजग्ध्वा दत्त्वाचान्तेप्रदक्षिणम्
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां यः प्रयच्छति। शिवतुल्यबलो भूत्वा नैवासौ जायते पुनः

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः । पूजयेत्तु शिवं भक्त्या ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम्
अङ्गारकनवम्यां तु अमायाञ्च विशेषतः । स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान् सुभगो भवेत् ॥
घृतेन स्नापयेल्लिङ्गं पूजयेद्भक्तितो द्विजान् । पुष्पकेण विमानेन सहस्रैः परिवारितः ॥
शैवं पदमवाप्नोति यत्र चाभिमतं भवेत् । अक्षयं मोदते कालं यथा रुद्रस्तथैव सः ॥
यदा तु कर्मसंयोगान्मर्त्यलोकमुपागतः । राजा भवति धर्मिष्ठो रूपवान् जायते कुले ॥
ततो गच्छेच्चराजेन्द्र! ऋषितीर्थमनुत्तमम् । तृणविन्दुर्नाम ऋषिः पापदग्धो व्यवस्थितः
तत्तीर्थस्य प्रभावेण शापमुक्तोऽभवद्द्विजः । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! गङ्गेश्वरमनुत्तमम्
श्रावणे मासि संप्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी । स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ॥१५॥
पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात् । गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम् ॥
अकामो वा सकामो वा तत्रस्नात्वातु मानवः । आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः
तत्रतीर्थे नरः स्नात्वा व्रजेद्वै यत्र शङ्करः । सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ॥
पितॄणां तर्पणं कृत्वा ह्यश्वमेधफलं लभेत् । प्रयागे यत् फलं दृष्टं शङ्करेण महात्मना ॥
तदेव निखिलं दृष्टं गङ्गावदनसङ्गमे । तस्यैव पश्चिमे स्थाने समीपे नातिदूरतः ॥ २० ॥
दशाश्वमेधजननं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे तथा ॥
अमायाञ्च नरः स्नात्वा व्रजते यत्र शङ्करः । सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्रसमाचरेत् ॥

पितॄणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ।
दशाश्वमेधात् पश्चिमतो भृगुर्ब्राह्मणसत्तमः ॥ २३ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रन्तु ईश्वरं पर्युपासत । वल्मीकवेष्टितश्चासौ पक्षिणाञ्च निकेतनः ॥२४॥
आश्चर्यं सुमहज्जातमुमायाः शङ्करस्य च । गौरी पप्रच्छ देवेशंकोऽयमेवन्तुसंस्थिता(तः)

देवो वा दानवो वाथ कथयस्व महेश्वर ! ।

महेश्वर उवाच ।

भृगुर्नाम द्विजश्रेष्ठ ऋषीणां प्रवरो मुनिः ॥ २६ ॥

मान्ध्यायते समाधिस्थो वरं प्रार्थयते प्रिये ! । ततः प्रहसिता देवी ईश्वरंप्रत्यभाषत ॥
धूमवत्तच्छिखा जातास्तोऽद्यापि न तुष्यसे । दुराराध्योऽसि देवत्वं नञ्चार्याविचारणा

महेश्वर उवाच ।

न जानासि महादेवि ह्ययं क्रोधेन वेष्टितः । दर्शयामियथातथ्यं प्रत्ययं ते करोम्यहम्
ततः स्मृतोऽथ देवेन धर्म्मरूपो वृषस्तदा । स्मरणात्तस्य देवस्य वृषः शीघ्रमुपस्थितः

वदंस्तु मानुषीं वाचमादेशो दीयतां प्रभो ! ।

भगवानुवाच ।

वल्मीकं त्वं खनस्वैनं विप्रं भूमौ निपातय ॥ ३१ ॥

योगस्थस्तु ततो ध्यायन् भृगुस्तेन निपातितः ।

तत्क्षणात् क्रोधसन्तप्तो हस्तमुत्क्षिप्य सोऽशपत् ॥३२॥

एवं स भाषमाणस्तु कुत्र गच्छसि भो वृष ! । अद्याहं संप्रकोपेन प्रलयं त्वान्नये वृष !
धर्षितस्तु तदा विप्रश्चान्तरिक्षङ्गतोवृषम् । आकाशे प्रेक्षते विप्र एतदद्भुतमुत्तमम् ॥३४॥
तत्रप्रहसिते रुद्र ऋषिरग्रे व्यवस्थितः । तृतीयलोचनं दृष्ट्वा वैलक्ष्यात् पतितो भुवि ॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौतुष्टावपरमेश्वरम् । प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं त्वामहंदिव्यरूपम्

भवातीतो भुवनपते प्रभो ! तु विज्ञापये किञ्चित् ॥३६॥

त्वद्गुणनिकरान् वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाम ।

वासुकिरपि हि कदाचिद्वदनसहस्रं भवेद्यस्य ॥३७॥

भक्त्या तथापि शङ्कर भुवनपते ! त्वत्स्तुतो मुखरः ।

वदतः क्षमस्व भगवन् ! प्रसीद मे तव चरणपतितस्य ॥३८॥

सत्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्योर्विनाशने देव !।

त्वां मुक्त्वा भुवनपते ! भुवनेश्वर नैव दैवतं किञ्चित् ॥३९॥

यमनियमयज्ञदानवेदाभ्यासाश्च धारणा योगः ।

त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हति हि कलासहस्रांशम् ॥४०॥

उच्छिष्टरसरसायनखड्गांजनपादुका विवरसिद्धिर्वा ।

चिह्नं भवव्रतानां दृश्यति चेह जन्मनि प्रकटम् ॥४१॥

शाठ्येन नमति यद्यपि ददासि त्वं भूतिमिच्छतो देव ! ।

भक्तिर्भवभेदकरी मोक्षाय विनिर्मिता नाथ ॥४२॥

परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसन्तप्तम् ।

परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर ! मां परित्राहि ॥ ४३ ॥

मिथ्याभिमानदग्धं क्षणभङ्गुरविभवविलसन्तम् ।

क्रूरं कुपथ्याभिमुखं पतितं मां पाहि देवेश ! ॥४४॥

दीने द्विजगणसार्थे बन्धुजनेनैव दूषिता ह्याशा ।

तृष्णा तथाऽपि शङ्कर ! किं मूढं मां विडम्बयति ॥४५॥

तृष्णा हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं प्रदस्व यावदासिनीं नित्यम् ।

छिन्धि मदमोहपाशानुत्तारय मां महादेव ! ॥ ४६ ॥

करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्वसिद्धिदं दिव्यम् ।

यः पठति भक्तियुक्तस्तस्य तुष्येत् भृगोर्यथा च शिवः ॥४७॥

ईश्वर उवाच ।

अहंतुष्टोऽस्मि ते वत्स ! प्रार्थयस्वेप्सितं वरम् । उमया सहितो देवोवरंतस्यह्यदापयत्

भृगुरुवाच ।

यदि तुष्टोसि देवेश ! यदि देयो वरो मम । रुद्रवेदी भवेदेवमेतत्सम्पादयस्व मे ॥ ४९ ॥

ईश्वर उवाच ।

एवं भवतु विप्रेन्द्र ! क्रोधस्त्वा न भविष्यति । न पितापुत्रयोश्चैव त्वैकमत्यंभविष्यति

तदा प्रभृति ब्रह्माद्या सर्वदेवाः सकिन्नराः । उपासन्ते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सद्यः पापात् प्रमुच्यते ।

अवशाः स्ववशा वापि म्रियन्ते यत्र मानवाः ॥ ५२ ॥

गुह्यातिगुह्यासु गतिस्तेषां निःसंशयं भवेत् । एतत् क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम्

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः । उपानहौच छत्रञ्च देवमन्नञ्च काञ्चनम्

भोजनञ्च यथाशक्त्या ह्यक्षयञ्च तथा भवेत् । सूर्योपरागे यो दद्याद्दानं चैव यथेच्छया ।

दीयमानस्तु तद्दानमक्षयं तस्य तद्भवेत् । चन्द्रसूर्योपरागेषु यत् फलं त्वमरकण्टके ॥५६।

तद्देव निखिलं पुण्यं भृगुतीर्थे न संशयः । क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानतपःक्रियाः॥५७॥
न क्षरेत्तु तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर ! । यस्य वै तपसोग्रेण तुष्टेनैव तु शम्भुना ॥५८॥
सान्निध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे नराधिप ! । प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु यत्र तुष्टो महेश्वरः
एवं तु वदतो देवीं भृगुतीर्थमनुत्तमम् । न जानन्ति नरा मूढा विष्णुमायाविमोहिताः

नर्म्मदायां स्थितं दिव्यं भृगुतीर्थं नराधिप ! ।
भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः क्वचित् ॥ ६१ ॥

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति । ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र ! गौतमेश्वरमुत्तमम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः । काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥६३॥
धौतपापं ततो गच्छेत् क्षेत्रं यत्र वृषेण तु । नर्म्मदायां कृतं राजन् ! सर्वपातकनाशनम्

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां विमुञ्चति ।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र ! प्राणत्यागं करोति यः ॥ ६५ ॥

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च शिवतुल्यबलो भवेत् । वसेत् कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः॥
कालेनमहता प्राप्तः पृथिव्यामेकराट् भवेत् । ततो गच्छेच्चराजेन्द्र ! ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम्

प्रयागे यत् फलं दृष्टं मार्कण्डेयेन भाषितम् ।
तत् फलं लभते राजन् ! स्नातमात्रो हि मानवः ॥ ६८ ॥

मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी । उपोष्य रजनीमेकां तस्मिन् स्नानं समाचरेत्
यमदूतैर्न बाध्येत रुद्रलोकं स गच्छति । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! सिद्धो यत्र जनार्दनः॥

हिरण्यदीपेति विख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! धनवान् रूपवान् भवेत् ॥ ७१ ॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तीर्थङ्कनखलं महत् । गरुडेन तपस्तप्तं तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥
प्रख्यातं त्रिषुलोकेषु योगिनी तत्र तिष्ठति । क्रीडते योगिभिःसार्द्धं शिवेन सह नृत्यति
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! रुद्रलोके महीयते । ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र ! हंसतीर्थमनुत्तमम्
हंसास्तत्रविनिर्मुक्ता गताऊर्द्ध्वं न संशयः । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! सिद्धोयत्रजनार्दनः
वाराहं रूपमास्थाय अर्चितः परमेश्वरः । वराहतीर्थे नरःस्नात्वा द्वादश्यान्तु विशेषतः

विष्णुलोकमवाप्नोति नरकं न च पश्यति। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।
पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्। स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते
दक्षिणेन तु तीरेण कन्यातीर्थन्तु विश्रुतम्। शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समारेत् ॥
प्रणिपत्य तु चेशानं बलिस्तेन प्रसीदति। हरिश्चन्द्रपुरं दिव्यमन्तरिक्षे च दृश्यते ॥८०॥
शक्रध्वजे समावृत्ते सुप्ते नागरिके जने। नर्म्मदासलिलौघेन तरून् संप्लावयिष्यति ॥८१॥

अस्मिन् स्थाने निवासः स्यात् विष्णुः शङ्करमब्रवीत्।
दीपेश्वरे नरः स्नात्वा लभेद् बहु सुवर्णकम् ॥८२॥
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कन्यातीर्थे सुसङ्गमे।
स्नातमात्रो नरस्तत्र देव्याः स्थानमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥

देवतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वतीर्थमनुत्तमम्। तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! दैवतैः सह मोदते
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! शिखितीर्थमनुत्तमम्। यत्तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्
अपरपक्षे त्वमायान्तु स्नानं तत्र समाचरेत्। ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता

भृगुतीर्थन्तु राजेन्द्र ! तीर्थकोटिर्व्यवस्थिता।
अकामो व सकामो वा तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ ८७ ॥

अश्वमेधमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते। तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो भृगुस्तु मुनिपुङ्गवः।

अवतारः कृतस्तत्र शङ्करेण महात्मना ॥ ८८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदामाहात्म्येऽनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्ये नानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्।

मार्कण्डेय उवाच।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! शङ्करेशमनुत्तमम्। दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥१॥

ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! नर्मदेश्वरमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्! स्वर्गलोकेमहीयते
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्। सुभगो दर्शनीयश्चभोगवान् जायतेनरः

पितामहं ततो गच्छेत् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डन्तु दापयेत्॥ ४॥

तिलदर्भविमिश्रन्तु ह्युदकं तत्र दापयेत्। तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥५॥
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत्। विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते॥
मनोहरं ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम्। तत्र स्नात्वा नरो राजन्! पितृलोकेमहीयते
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! मानसं तीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वानरो राजन्! रुद्रलोकेमहीयते
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! कुब्जतीर्थमनुत्तमम्। विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम्॥
यान्यान्कामयतेकामान् पशुपुत्रधनानिच। प्राप्नुयात्तानिसर्वाणि तत्र स्नात्वानराधिप

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! त्रिदशज्योतिविश्रुतम्।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः॥ ११॥

भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः। प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः॥
विकृताननवीभत्सुर्व्रती तीर्थमुपागतः। तत्र कन्यां महाराज! वरयन् परमेश्वरः॥१३॥
कन्यां ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम्। तीर्थं तत्र महाराज! ऋषिकन्येति विश्रुतम्

तत्र स्नात्वा नरो राजन्! सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! स्वर्णविन्दुत्विति स्मृतम्॥ १५॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्! दुर्गतिं न च पश्यति।
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्॥ १६॥

क्रीडते नागलोकस्थो ह्यप्सरैः सह मोदते। ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! नरकं तीर्थमुत्तमम्
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं च न पश्यति। भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो जनः॥१८
एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम्। अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते॥
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वाभारभूतौ महात्मनः। यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवंगाणेश्वरीगतिः
कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम्। अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णन्तु दापयेत्। विमानैः सूर्य्यसङ्काशैर्व्रजते यत्र शङ्करः ॥२२॥
वृषभं यः प्रयच्छेत्तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम्। वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥२३॥
धेनुमेकान्तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप। पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च
यथाशक्त्याचराजेन्द्र! ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः। तस्य तीर्थप्रभावेणसर्वं कोटिगुणंभवेत्
नर्म्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम्। दुर्गतिञ्चनपश्यतितस्मिंस्तीर्थेनराधिप!
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥२७॥
गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत् स्वर्गेमहीयते। अनाशकन्तुयः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥
गर्भवासे तु राजेन्द्र! न पुनर्जायते पुमान्। ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र! आषाढीतीर्थमुत्तमम्

तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत्।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३० ॥

तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः। ऐरण्डीनर्म्मदयोश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम्
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः ॥३२।

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! मुच्यते ब्रह्महत्यया।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! नर्म्मदोदधिसङ्गमम् ॥ ३३ ॥

जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धोयत्र जनार्दनः। यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत्
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! नर्म्मदोदधिसङ्गमे। त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलंप्राप्नोतिमानवः
पश्चिमस्योदधेः सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम्। तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः
आराधयन्ति देवेशं त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम्। तत्र स्नात्वा नरोराजन्! रुद्रलोकेमहीयते
विमलेशं परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम्॥

सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा यान्त्यमरालयम्।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः। उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः ॥
एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया। सर्वतीर्थाभिषेकन्तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ॥
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्त्ते संस्थितः शिवः। तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति। नर्म्मदासङ्गमं यावद्यावच्चामरकण्टकम् ॥४३
अत्रान्तरे महाराज ! तीर्थकोट्यो दशस्मृताः। तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्रऋषिकोटिनिषेवितम्
साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः।
सेवितानेन राजेन्द्र ! त्वीप्सितार्थप्रदायिका ॥ ४५ ॥
यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भावतः।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव ! ॥ ४६ ॥
नर्म्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशयः। प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः
वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत्।
कन्या लभेत भर्तारं यश्च वाञ्छेत् तु यत् फलम् ॥ ४८ ॥
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा। ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम्।
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
नरकञ्च न पश्येत्तु वियोगञ्च न गच्छति ॥ ५० ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नर्मदामाहात्म्यसमाप्तिवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृगुवंशज-ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनम्।

सूत उवाच।

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओङ्कारस्याभिवर्णनम्। ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे।

मनुरुवाच।

ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरणं तथा। प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तराद्वद
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायम्भुवान्तरे। तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्त्तय॥

दाक्षायणीनच तथा प्रजाः कीर्तय मे प्रभो। ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम् ॥

मत्स्य उवाच ।

मन्वन्तरेऽस्मिन् संप्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा। चरित्रं कथ्यतेराजन्! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा। ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ॥
देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च । स्कन्नंशुक्रंमहाराज ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥७।

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ।
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ॥ ८ ॥
अङ्गारेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च ।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः ॥ ९ ॥

केशैस्तु कपिशो जातः पुलस्त्यश्च महातपाः । केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततोजातोमहातपाः
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः । भृगुःपुलोम्नस्तुसुतांदिव्यांभार्यामविन्दत
यस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादशयाज्ञिकाः। भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा
शुचिक्रतुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह । प्रभवश्चाव्ययश्चैव दक्षोऽथद्वादशस्तथा ॥
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः । पौलोम्यांजनयन् विप्रान्देवानांतुकनीयसः
च्यवनन्तु महाभागमाप्नुवानं तथैव च । आप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ॥

और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् ।
तत्र गोत्रकरास्त्वन्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः ॥ १६ ॥

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च । और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः
वैगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः । शौनकायन जीवन्ति रावेदःकार्पणिस्तथा
वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च । वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्चसः

विष्णुः पौरोऽपि वालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः ।
भृतभार्गेयमार्कण्डजविनो वीतिनस्तथा ॥ २० ॥

मण्डमाण्डव्यमाण्डूकफेनपास्तनितस्तथा । स्थलपिण्डःशिखावर्णः शार्कराक्षिस्तथैवच

जालधिः सौधिकः क्षुभ्यः कुत्सन्यो मौद्गलायनः ।

कर्मायनो देवपतिः पाण्डुरोचिः सगालवः ॥ २२ ॥

साङ्कृत्यश्चातकिः सार्पियज्ञपिण्डायनस्तथा। गार्ग्यायनो गायनश्च ऋषिर्गार्हायनस्तथा गोष्ठायनो वात्यायनो वैशम्पायन एव च। वैकर्णिनिः शाङ्गरवो याज्ञेयिर्भ्राष्ट्रकायनिः

लालाटिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्योपरिमण्डलौ।

आलुकिः सौचकिः कौत्सस्तथान्यः पैङ्गलायनिः ॥ २५ ॥

सात्यायनिर्मालायनिः कौटिलिः कौचहस्तिकः।

सौहसोक्तिः सकौवाक्षिः कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ॥ २६ ॥

नैकजिह्वो जिह्मकश्च व्यधाद्यो लोहवैरिणः। शारद्वतिकनेतिष्यौलोलाक्षिश्चलकुण्डलः वागायनिश्चानुमतिः पूर्णिमागतिकोऽसकृत् ।सामान्येन यथा तेषां पञ्चैते प्रवरामताः॥ भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च। और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मताः ॥२९

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्वहान्।

जमदग्निर्विदश्चैव पौलस्त्यो वैजभृत्तथा ॥ ३० ॥

ऋषिश्चोभयजातश्च कायनिः शाकटायनः। और्वेया मारुताश्चैवसर्वेषांप्रवराः शुभाः॥ भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥३२ भृगुदासो मार्गपथो ग्राम्यायनिकटायनी। आपस्तम्बिस्तथा विल्विर्नैकशिः कपिरेवच आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेवच। आश्वायनिस्तथारूपिर्ये चार्षेयाः प्रकीर्तिताः॥ भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैवच। आर्ष्टिषेणस्तथारूपिः प्रवराः पञ्चकीर्तिताः॥ परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। यास्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथादमः

जैवन्त्यायनिर्मौञ्जश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा।

भागिलो भागवित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपिः ॥ ३७ ॥

बालपिः श्रमदागेपिः सौरस्तिथिस्तथैव च।

गार्गीयस्त्वथ जाबालिस्तथा पौष्ण्यायनो ह्यृषिः ॥ ३८ ॥

ग्रामदश्च तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः। भृगुश्च वीतहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ ॥३९॥ परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। शालायनिः शाकटाक्षो मैत्रेयः खाण्डवस्तथा

द्रौणायनो रौक्मायना पिशली चापि कायनिः ।
हंसजिह्वस्तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः ॥ ४१ ॥
भृगुश्चैवाथ वध्र्यश्वो दिवोदासस्तथैवच । परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥
एकायनो याज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च । प्रत्यूहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः
तथा गृत्समदो राजन्! सनकश्च महान् ऋषिः ।
प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥ ४४ ॥
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावेतौ प्रकीर्त्तितौ । परस्परमवैवाह्या ऋषी वै परिकीर्तितौ ॥
एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृप गोत्रकाराः ।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं विजहाति जन्तुः ॥ ४६ ॥
इतिश्रीमत्स्यपुराणेऋषीणांनामगोत्रवंशप्रवरवर्णनंनाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

आङ्गिरसवंशज-ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

मरीचितनया राजन्! सुरूपा नाम विश्रुता ।
भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः ॥ १ ॥
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदःप्राणस्तथैव च । हविष्मांश्च गविष्ठश्चऋतः सत्यश्च ते दश ॥
एते चाङ्गिरसोनाम देवा वै सोमपायिनः। सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान्
बृहस्पतिर्गौतमश्च संवर्त्तमृषिमुत्तमम् ।
उतथ्यं वामदेवं च अजस्यमृषिजन्तथा ॥ ४ ॥
इत्येते ऋषयःसर्वेगोत्रकाराःप्रकीर्तिताः । तेषां गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे
उतथ्योगौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा । सार्धनेमिःसलौगाक्षिःक्षीरः कौष्टिकिरेवच

राहुकर्णिः सौपुरिश्च कैरातिःसामलोमकिः। पौषजितिर्भार्गवतो ह्यृषिश्चैरीडवस्तथा॥
कारोटकः सजीवी च उपबिन्दुसुरैषिणौ। वाहिनीपतिवैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः
सोमोत्रायनिकासोरुकीशल्याः पार्थिवास्तथा।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च॥ ९॥
क्षपाविश्वकरोऽरिश्च पारिकारारिरेव च। त्र्यार्षेयाः प्रवराश्चैव तेषां च प्रवरान् शृणु
अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥
आत्रेयायनिसौवेष्ट्यौ अग्निवेश्यः शिलास्थलिः।
बालिशायनिश्चैकेपी वाराहिर्बाष्कलिस्तथा॥ १२॥
सौटिश्चत्रिणकर्णिश्चप्रावहिश्चाश्वलायनिः। वाराहिर्बर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः। कौचकिर्धूमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च॥
सोमतन्विर्ब्रह्मतन्विः सालडिर्बालडिस्तथा। देवरारिर्देवस्थानिर्हारिकर्णिः सरिद्भविः॥
प्रावेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः।
मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः फलाहारस्तथैव च॥ १६॥
गाङ्गोदधिः कोरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च। नायकिर्जैत्यद्रौणिश्च जैह्वलायनिरेव च॥
आपस्तम्बिर्मौञ्जवृष्टिर्मार्ष्टपिङ्गलिरेव च। पैलश्चैव महातेजाः शालङ्कायनिरेव च॥
द्व्याख्येयोः मारुतश्चैषां त्र्यार्षेयः प्रवरो नृप!।
अङ्गिराः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः॥ १९॥
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः। परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः॥२०॥
काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणाः।
भ्राष्ट्रकृद्राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनिः॥ २१॥
क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृन्मधुरावहः। लावकृद्गालविद्गाथी मार्कटिः पौलिकायनिः
स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा।
बालाकिः साहरिश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः॥ २३॥
अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः। भरद्वाजस्तथा गर्गः सैन्यश्च भगवानृषिः॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिःशक्तिःपतञ्जलिः॥
भूयसिर्जलसन्धिश्च विन्दुर्मादिःकुसीदकिः। ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा
शालिश्च कलशीकण्टःऋषिःकारीरयस्तथा। काट्योधान्यायनिश्चैवभावास्यायनिरेव च
भारद्वाजिःसौबुधिश्च लब्धी देवमतीस्तथा। त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैव प्रवरो भूमिपोत्तम!
अङ्गिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः। परस्परायण्वपर्णौ च लौक्षिर्गार्ग्य हरिस्तथा
गालविश्चैव त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः। अङ्गिरा संकृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। वृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिः प्रवरा मताः॥
अङ्गिरा वृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च। कुत्साकुत्सैरवैवाह्या एवमाहुः पुरातनाः॥
रथीतराणां प्रवरा त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः। अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैवच रथीतरः॥३३
रथीतराह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः। विष्णुवृद्धिः शिवमतिर्जतृणः कत्तृणस्तथा॥३४
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायणः। त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप!॥
अङ्गिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपाः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥

हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडपः।
अपाग्नेयस्त्वश्वयुश्च परण्यस्ताविमौद्गलाः॥ ३७॥

त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपाः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीयः शाकटायनः॥३९॥
ततः प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरणः शिवः। कटुमर्कटपश्चैव तथा नाडायनोह्यृषिः
श्यामायनस्तथैवैषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा शुभाः। अङ्गिराश्चाजमीढश्च कट्यश्चैव महातपाः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषिः॥
त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः। अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कविभूश्च महानृषिः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा॥
ऋषिर्मैत्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः। अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः॥४५
ऋषिर्मित्रवरश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥४६॥
भारद्वाजो हुतःशौङ्गःशैशिरेयस्तथैव च। इत्येते कथिताः सर्वे द्व्यामुष्यायणगोत्रजाः

पञ्चार्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः। अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च वृहस्पतिः॥
मौद्गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः॥ ४८॥
एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ ४९॥
इतिश्रीमत्स्यपुराणे ऋषीणांनामगोत्रवंशप्रवरवर्णनंनाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अत्रिवंशज-ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनम्।

मत्स्य उवाच।

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे। कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये॥
उद्दालकिः शौणकर्णिरथौ शौक्रतवश्च ये। गौरग्रीवा गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये॥
अर्द्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दवः। कणजिह्वो हरप्रीतिर्नैद्राणिः शाकलायनिः
तैलपश्च सवैलेय अत्रिर्गोणीपतिस्तथा। जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपाः॥४॥
छन्दोगेयस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः। श्यावाश्वश्च तथा त्रिश्चआर्चनानशएव च॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। दाक्षिर्बलिः पर्णविश्च ऊर्णनाभिः शिलार्दनिः
बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिरः। भलन्दनस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः॥
अत्रिर्गविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वातिथिः स्मृतः। परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥८
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्द्ध्वं निबोध मे। कालेयाश्च सवालेया वासरथ्यास्तथैव च
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः। अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैवमहानृषिः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥१०॥
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तवाख्या महानुभावा नृपगोत्रकाराः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्त्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥११॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे ऋषीणांनामगोत्रवंशप्रवरवर्णनं षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुशिकवंशज-ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अत्रेरेवापरं वंशन्तव वक्ष्यामि पार्थिव ! । अत्रे सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवोनृप ॥
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान् । तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु
विश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः । वतण्डश्च सलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायनः ॥३॥

श्यामायना याज्ञवल्क्या जावालाः सैन्धवायनाः ।
बाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्या अथ संश्रुताः ॥४॥

उलूपा औपगहया पयोदजनपादपाः । खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः ॥
त्र्यार्षेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्त्तिताः । विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः । देवश्रवाः सुजातेयाः सौसुकाः कारुकायनाः
तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप ! । त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरःशुभः ॥

देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥६॥

धनञ्जयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव !। पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः ॥
विश्वामित्रस्तथाद्यश्च माधुच्छन्दस एव च । त्र्यार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयःपरिकीर्त्तिताः
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः । परस्परमवैवाह्याऋषयः परिकीर्त्तिताः ॥
कमलायजिनश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च । वञ्जुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ॥
विश्वामित्रश्चाश्वरथो वञ्जुलिश्च महातपाः । परस्परमवैवाह्या ऋषयःपरिकीर्तिताः ॥
विश्वामित्रोलोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा । विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौप्रवरौ स्मृतौ

परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम् ।
लोहिता अष्टकाश्चैषां त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ॥१६॥

विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः । अष्टका लोहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम्
उद्रेणुः क्रथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा । शाट्यायनिः करीराशी शालङ्कायनिलावकी
मौञ्जायनिश्च भगवान्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः । खिलिखिलीस्तथा विद्यो विश्वामित्रस्तथैव च
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१६॥

एते तवोक्ताः कुशिका नरेन्द्र ! महानुभावाः सततं द्विजेन्द्राः ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥२०॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कुशिकवंशज ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनं नाम
सत्यनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कश्यपवंशज-ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले ।
गोत्रकारान् ऋषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु ॥१॥

आश्रायणि ऋषिगणो मेषकीरिटकायनाः । उदग्रजामाठराश्च भोजा विनयलक्षणाः ॥
शालाहलेयाः कौरिष्ठाः कन्यकाश्चासुरायणाः ।
मन्दाकिन्यां वै मृगयाः श्रुतया भोजयापनाः ॥३॥

देवयाना गोमयानाह्यधश्छाया भयाश्च ये । कात्यायनाःशाक्रयाणाःबर्हियोगगदायनाः॥
भवनन्दि महाचक्रि दाक्षपायन एव च । योधयानाः कार्तिवयो हस्तिदानास्तथैव च॥
वात्स्यायनानि कृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा ।
प्रागायणाः पौलमौलिराश्ववातायनस्तथा ॥ ६ ॥

कौवेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणश्च ये । मेषपाः कैकरसपास्तथा चैव तु बभ्रवः ॥
प्राचेयो ज्ञातसंज्ञेया आग्रा असेव्य एव च । श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैवोद्बलायनाः

काष्ठाहारिणमारीचाआजिहायनहास्तिकाः। वैकर्णेयाःकाश्यपेयाःसासिसाहारितायनाः
मान्तगिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः। वत्सरः कश्यपश्चैव निध्रवश्चमहातपाः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। अतः परं प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रजान्
अनसूयो नाकुरयः स्नातपो राजवर्तपः। शैशिरोदवहिश्चैव सैरन्ध्रीरोपसेवकिः ॥१२

या मुनिः काद्रुपिङ्गाक्षिः सजातम्बिस्तथैव च।
दिवावष्टाश्व इत्येते भक्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः ॥१३॥

त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। वत्सरः काश्यपश्चैव वसिष्ठश्चमहातपाः॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः
भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्द्दभीमुखः। हिरण्यबाहुकैरातावुभौ काश्यपगोभिलौ ॥
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः। निदाघमसृणौ भत्स्या महान्तः केवलाश्च ये ॥
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा वै देवजातयः। पैप्पलादित्स प्रवरा ऋषयःपरिकीर्तिताः
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः।

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ १९ ॥

ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलं प्रसूतम्।
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमन्तरेण ॥२०॥

इति श्रीमत्स्यपुराणेऋषीणांनामगोत्रवंशप्रवरवर्णनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वशिष्ठवंशज-ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनम्।

मत्स्य उवाच।

वसिष्ठवंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम।
एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः ॥१॥

वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः। व्याघ्रपादा औपगवा वैक्लवाः शाद्वलायनाः

कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्चषठाः कठाः । गौपयानाबोधपाश्चदाकव्याह्यथवाह्यकाः
वालिशयाः पालिशयास्ततोवाग्ग्रन्थयश्चये । आपस्थूणाःशीतवृत्तास्तथाब्राह्मपुरेयकाः ॥

लोमायनाः स्वस्तिकराः शाण्डिलिगौंडिनिस्तथा ।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ॥ ५ ॥

चौलिर्वौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च । पौड़वो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेयामहर्षयः ॥
वसिष्ठ एषां प्रवर अवैवाह्याः परस्परम् । शैलालयो महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा
कपिञ्जलावालखिल्याभागवित्तायनाश्चये । कीलायनःकालशिखःकोरकृष्णाःसुरायणाः
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्चये । शाकायनाउहाकाश्चअथमाषशरावयः
दाकायनावालवयोवाकयो गोरथास्तथा । लम्बायनाःश्यामवयो ये चकोडोदरायणाः
प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च । साङ्ख्यायनाश्चऋषयस्तथावै वेदशेरकाः
पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च वलेक्षवः । मातेया ब्रह्मवलिनः पर्णागारिस्तथैव च ॥
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा । भिगीवसुर्वशिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरेवच ॥१३॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । औपस्थलास्वस्थलयो पालोहालो हलाश्च ये ।
माध्यन्दिनो माक्षतयः पैप्पलादिर्विचक्षुषः । त्रैश्रृङ्गायन सैवल्काः कुण्डिनश्च नरोत्तम ।
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः । वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः । शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च ॥१६॥
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा । जातूकर्ण्योवसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥ १८ ॥

वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ १९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ऋषीणांनामगोत्रवंशप्रवरवर्णनंनाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्विशततमोऽध्यायः

ऋषीणामाख्याने निमेराख्यानवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

वसिष्ठस्तु महातेजानिमेः पूर्वपुरोहितः । बभूव पार्थिवश्रेष्ठ ! यज्ञास्तस्य समन्ततः ॥
श्रान्तात्मापार्थिवश्रेष्ठ ! विशश्राम तदा गुरुः । तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत्
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मां याजयमाचिरम् । तमुवाच महातेजा वसिष्ठःपार्थिवोत्तमम्

कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः ।
श्रान्तोऽस्मि राजन् ! विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृपः ॥ ४ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तम ! । पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत्॥

न च मे सौहृदं ब्रह्मन् ! कृतान्तेन बलीयसा ।
धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम् ॥ ६ ॥

धर्मपथ्यौदनो जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते । श्वः कार्य्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतश्चास्य न वा कृतम् । क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्र गतमानसम् ॥
वृकश्चोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति । नैकान्तेन प्रियः कश्चित्द्वेष्यश्चास्यन विद्यते
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् । प्राणवायोश्चलत्वञ्च त्वया विदितमेव च ॥
यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् ! क्षणमात्रन्तदद्भुतम् । शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने॥
अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि सङ्कटे । सोऽहं संभृत सम्भारोभवन्मूलमुपागतः ॥

नचेद्याजयसे मां त्वं अन्यं यास्यामि याजकम् ।
एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः ॥ १३ ॥
शशाप तं निमिं क्रोधाद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ।
श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम् ॥ १४ ॥

धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र ! त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि । निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे

विघ्नङ्करोषि नान्येन याजनंच तथेच्छसि । शापंददासि यस्मात्वं विदेहोऽथभविष्यसि॥
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ । देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतुः ॥
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मावचनमब्रवीत् । अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिजीव ददाम्यहम्॥

नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव ।
त्वत् सम्बन्धात्तथा तेषां निमेषः सम्भविष्यति ॥१६॥

चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवाः। एवमुक्ते मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वशः॥
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात् स्वयम्भुवः । वसिष्ठ जीवं भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत्
मित्रावरुणयोःपुत्रो वसिष्ठ ! त्वं भविष्यसि । वसिष्ठेतिचते नाम तत्रापिचभविष्यति
जन्मद्वयमतीतश्च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि। एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा ॥
बदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम् । तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ ॥२४॥
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे दूयितमारुते । उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम् ॥
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथङ्गता । तां दृष्ट्वा सुमुखीं सुभ्रूं नीलनीरजलोचनाम् ॥२६॥
उभौ चुक्षुभतुर्धैर्यात्तद्रूपपरिमोहितौ । तपस्यतोस्तयो वीर्यमस्खलच्च मृगासने ॥२७॥
स्कन्नं रेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीतौ परस्परम् । चक्रतुः कलशे शुक्रं तोयपूर्णे मनोरमे ॥
तस्माद्दृषिवरौ जातौ तेजसा प्रतिमौ भुवि । वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च मित्रावरुणयोर्द्वयोः
वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भगिनीं नारदस्य तु । अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत् ॥
शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंशं निवोध मे । यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत ॥
प्रकाशो जनितो येन लोके भारत चन्द्रमाः । पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम्
काण्डषपो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः । गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ॥

प्रपोहयावाह्य मयाः ख्याते याः कौतुजातयः ।
हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषां नीलाज्ञेयाः पराशराः ॥३४ ॥
कार्ष्णायनाः कपि मुखाः काकेयस्थाजपातयः ।
पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णाज्ञेयाःपराशराः ॥ ३५ ॥

आविष्टायन वालेयास्वायष्टाश्चोपयाश्च ये । इषीकहस्ताश्चैते वै पञ्चश्वेताः पराशराः ॥

पाटिको वादरिश्चैवस्तम्बा वै क्रोधनायनाः। क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः खल्यायनाः वार्ष्णायनास्तैलेयः खलु यूथपाः। तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राःपराशराः

उक्तास्तवैते नृप ! वंशमुख्याः पराशराः सूर्यसमप्रभावाः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ ३९॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः।

एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरवर्णनम्।

मत्स्य उवाच।

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्येवंशोद्भवान्द्विजान्। अगस्त्यश्चकरम्भश्चकौशल्यःकरटस्तथा सुमेधसोमयोभुवस्तथा गान्धारकायणाः। पौलस्त्याः पौलहाश्चैवक्रतुवंशभवास्तथा आर्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः। अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः। पौर्णमासाः पारणाश्च आर्षेयाः परिकीर्तिताः अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः। परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणैः एवमुक्तो ऋषीणान्तु वंश उत्तमपौरुषः। अतः परं प्रवक्ष्यामि किम्भवानद्य कथ्यताम्

मनुरुवाच।

पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैवमहात्मनः। अगस्त्यस्य तथा चैवकथं वंशस्तदुच्यताम्

मत्स्य उवाच।

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे। इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः॥ अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञं आगस्त्याः क्रतवस्ततः। पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते !॥ तेषान्तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि। पुलहस्तु प्रजांदृष्ट्वानातिप्रीतमनाः स्वकाम् अगस्त्यजंदृढास्यन्तुपुत्रत्वेवृतवांस्ततः। पौलहाश्चतथाराजन् ! आगस्त्याःपरिकीर्तिताः पुलस्त्यान्वयसम्भूतान् दृष्ट्वारक्षःसमुद्भवान्। अगस्त्यस्यसुतन्धीमान्पुत्रत्वेवृतवांस्ततः

पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः । सगोत्रत्वादिमे सर्वेपरस्परमनन्वयाः
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां महानुभावा नृपवंशकाराः ।
एषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ १४ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे ऋषीणां नामगोत्रवंशप्रवरमाहात्म्यवर्णनं
नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुमत्स्यसंवादे धर्मवंशवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव ! । दाक्षायणीभ्यः सकलं वंशं दैवतमुत्तमम्
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप ! । अरुन्धत्याः प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥२॥
अष्टौ च वसवः पुत्राः सोमपाश्चविभोस्तथा । धरोध्रुवश्चसोमश्चआपश्चैवानिलानलौ
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः । धरस्य पुत्रो द्रविणः कालःपुत्रोध्रुवस्यतु
कालस्यावयवानान्तु शरीराणि नराधिप ! । मूर्तिमन्ति च कालाद्धि संप्रसूतान्यशेषतः
सोमस्य भगवान् वर्चाः श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यते । अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्यतु
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः । विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्धकिः
समीहितकराः प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव । लम्बापुत्रःस्मृतोघोषोभानोःपुत्राश्चभानवः
ग्रहर्क्षाणाश्च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम् । मरुत्वत्यां मरुत्वन्तःसर्वेपुत्राः प्रकीर्तिताः
सङ्कल्पायाश्चसङ्कल्पस्तथापुत्रःप्रकीर्तितः। मुहूर्ताश्चमुहूर्तायाःसाध्याःसाध्यासुताःस्मृताः
मनोर्मनुश्च प्राणश्च नरोपानौ च वीर्यवान् । चित्तहार्योऽयनश्चैवहंसोनारायणस्तथा
विभुश्चापिप्रभुश्चैवसाध्याद्वादशकीर्तिताः। विश्वायाश्चतथापुत्राविश्वेदेवाःप्रकीर्तिताः
क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः कालकामोमुनिस्तथा । कुरजोमनुजोबीजोरोचमानश्च ते दश ॥
एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः संक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ! ।
व्यासेन वक्तुं न हि शक्यमस्ति राजन् विना वर्षशतैरनेकैः ॥१४॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे धर्मवंशवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुमत्स्यसंवादे पितृगाथावर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

एतद्वंशभवा विप्राः श्राद्धे भोज्याः प्रयत्नतः ।
पितॄणां वल्लभं यस्मादेषु श्राद्धं नरेश्वर ! ॥ १ ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि पितृभिर्याःप्रकीर्तिताः । गाथाःपार्थिवशार्दूल ! कामयद्भिःपुरे स्वके
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम् ।
नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः ॥३॥
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकंयःश्राद्धंनित्यमाचरेत् । पयोमूलफलैर्भक्ष्यैस्तिलतोयेनवा पुनः
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकंयोनोदद्यात्त्रयोदशीम् । पायसंमधुसर्पिर्भ्यांवर्षासुचमघासुच
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं खड्गमांसेन यः सकृत् ।
श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन कालशाकेन वा पुनः ॥ ६ ॥
कालशाकं महाशाकं मधु मुन्यन्नमेव च। विषाणवर्जा ये खड्गा आसूर्यन्तदशीमहि॥
गयायांदर्शनेराहोःखड्गमांसेनयोगिनाम् । भोजयेत्कःकुलेऽस्माकंच्छायायांकुञ्जरस्य च
आकल्पकालिकी तृप्तिस्तेनास्माकं भविष्यति । दातासर्वेषुलोकेषुकामचारोभविष्यति
आभूतसंप्लवं कालं नात्र कार्या विचारणा । यदेतत्पञ्चकंतस्मादेकेनापिच यः सदा ॥
तृप्तिं प्राप्स्याम चानन्तां किं पुनः सर्वसम्पदा ।
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं दद्यात् कृष्णाजिनञ्च यः ॥ ११ ॥
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकंकश्चित् पुरुषसत्तमः। प्रसूयमानां यो धेनुंदद्याद्ब्राह्मणपुङ्गवे
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं वृषभं यः समुत्सृजेत् । सर्ववर्णविशेषेण शुक्लनीलं वृषन्तथा
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं यःकुर्यात्श्रद्धयान्वितः। सुवर्णदानंगोदानंपृथिवीदानमेव च
अपि स्यात्स कुलेऽस्माकंकश्चित्पुरुषसत्तमः । कूपारामतडागानांवापीनांयश्चकारकः

अपि स्यात्स कुलेऽस्माकं सर्वभावेन यो हरिम्। प्रयायाच्छरणं विष्णुं देवेशं मधुसूदनम्
अपि नः सकुले भूयात् कश्चिद्विद्वान् विचक्षणः। धर्मशास्त्राणि यो दद्याद्विधिना विदुषामपि

एतावदुक्तं तव भूमिपाल ! श्राद्धस्य कल्पं मुनिसम्प्रदिष्टम्।
पापापहं पुण्यविवर्द्धनञ्च लोकेषु मुख्यत्वकरन्तथैव ॥ १८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे श्राद्धकल्पवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

धेनुदानविधिवर्णनम्।

मनुरुवाच।

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्राह्मणपुङ्गवे। विधिना केन धर्मज्ञ ! दानं दद्याच्च किं फलम्॥

मत्स्य उवाच।

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम्। कांस्योपदोहनां राजन् सवत्सां द्विजपुङ्गवे
प्रसूयमानां गां दत्वा महत्पुण्यफलं लभेत्। यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति॥
तावद्वै पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना। प्रसूयमानां यो दद्याद्धेनुं द्रविणसंयुताम् ॥४॥
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना। चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥ ५ ॥
यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्यस्य च नराधिप। तावत्सङ्ख्यं युगगणं देवलोके महीयते
पितॄन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्। उद्धरिष्यत्यसंदेहान्नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥७
घृतक्षीरवहाः कुल्या दधिपायसकर्दमाः। यत्र तत्र गतिस्तस्य द्रुमाश्चेप्सितकामदाः।

गोलकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ॥ ८ ॥

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यरूपाः।
महानितम्बास्तनुवृत्तमध्या भजन्त्यजस्रं नलिनाभनेत्राः ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे धेनुदानविधिवर्णनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः।

पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

कृष्णमृगचर्मदानविधिवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालौ ममानघ। ब्राह्मणञ्च तथाचक्ष्व तत्र मे संशयोमहान्

मत्स्य उवाच ।

वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणे शशिसूर्ययोः । पौर्णमासीतुयामाघेह्याषाढीकार्तिकी तथा
उत्तरायणं द्वादशी वा तस्यां दत्तं महाफलम् । आहिताग्निर्द्विजो यस्तुतद्देयंतस्यपार्थिव
यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु । गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप ॥४
आदावेव समास्तीर्य शोभनं शस्तमाविकम् । ततः सशृङ्गंसखुरमास्तरेत्कृष्णमार्गकम्
कर्तव्यं रुक्मशृङ्गं तद्रौप्यदन्तं तथैव च । लाङ्गूलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नंतथैव च ॥६
तिलैश्च शिखितं कृत्वा वाससाच्छादयेच्छुचि । सुवर्णनाभं तत्कुर्यादलङ्कुर्याद्विशेषतः
रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्यातस्य दिक्षुचविन्यसेत् । कांस्यपात्राणिचत्वारितेषुदद्याद्युयथाक्रमम्
मृण्मयेषु च पात्रेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम् । घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दद्याद्यथाविधि ॥

चम्पकस्य तथा शाखामव्रणं कुम्भमेव च ।
वाह्योपस्थापनं कृत्वा शुभचित्तो निवेशयेत् ॥ १० ॥

सूक्ष्मवस्त्रं शुभम्पीतं मार्जनार्थं प्रयोजयेत् । तथा धातुमयीःपात्रीः पादयोस्तस्यदापयेत्
यानि कानि च पापानि मयालोभात् कृतानिवै । लोहपात्रादिदानेन प्रणश्यन्तुममाशुवै
तिलपूर्णं ततः कृत्वा वामपादे निवेशयेत् । यानि कानिच पापानिकर्णोत्थानिकृतानि च
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा । मधुपूर्णन्तु तत्कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत्
परापवादपैशून्याद्वृथा मांसस्य भक्षणात् । तत्रोत्थितञ्च मे पापं ताम्रपात्रात्प्रणश्यतु
कन्यानृतात् गवाञ्चैव परदाराभिमर्शनात् । रौप्यपात्रप्रदानाद्धि क्षिप्रं नाशं प्रयातु मे ॥
ऊर्ध्वपादे त्विमे कार्ये ताम्रस्य रजतस्य च । जन्मजन्मसहस्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना ॥
सुवर्णपात्रदानात्तु नाशयाशु जनार्दन ! । हेममुक्ताविद्रुमञ्च दाडिमं बीजपूरकम् ॥१८॥
प्रशस्तपत्रे श्रवणे मुरे शृङ्गाटकानि च । एवं कृत्वा यथोक्तेन सर्वशाकफलानि च १९

तत्प्रतिग्रहविद्विद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः। स्नातो वस्त्रयुगच्छन्नःस्वशक्त्या चाप्यलङ्कृतः
प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीपते ! । तत एवं समीपे तु मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥२१॥
कृष्णः कृष्णगलोदेवः कृष्णाजिनधरस्तथा । तद्दानाद्धूतपापस्य प्रीयतां वृषभध्वजः ॥

अनेन विधिना दत्त्वा यथावत् कृष्णमार्गकम् ।
न स्पृश्योऽसौ द्विजो राजन् ! चितियूपसमो हि सः ॥२३ ॥

स दाने श्राद्धकाले च दूरतः परिवर्जयेत् । स्वगृहात्प्रेष्य तं विप्रं मङ्गलस्नानमाचरेत् ॥
पूर्णकुम्भेन राजेन्द्र ! शाखया चम्पकस्य तु । कृत्वाचार्यश्च कलशं मन्त्रेणानेन मूर्द्धनि ।
आप्यायस्वसमुद्रज्येष्ठाऋचासंस्नाप्यषोड़श । अहतेवाससीवत आचान्तःशुचितामियात्
तद्वासः कुम्भसहितं नीत्वा क्षेप्यं चतुष्पथे । कृतेनानेन या तुष्टिर्न सा शक्या सुरैरपि
वक्तुं हि नृपतिश्रेष्ठ ! तथाप्युद्देशतः शृणु । समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
सर्वान् लोकांश्च जयति कामचारी विहङ्गवत् । आभूतसंप्लवं यावत्स्वर्गमाप्नोत्यसंशयम्
न पिता पुत्रमरणं वियोगं भार्यया सह । धनदेशपरित्यागं न चैवेहाप्नुयात् क्वचित् ॥

कृष्णेप्सितं कृष्णमृगस्य चर्म दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा ।
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत् प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलं तत् ॥३१॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कृष्णमृगचर्मदानविधिवर्णनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः।

षडधिकद्विशततमोऽध्यायः २०८

वृषोत्सर्गविधिवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

भगवंच्छ्रोतुमिच्छामि वृषभस्य च लक्षणम् । वृषोत्सर्गविधिश्चैव तथा पुण्यफलंमहत्

मत्स्य उवाच ।

धेनुमादौ परीक्षेतसुशीलाश्चगुणान्विताम् । अव्यङ्गामपरिक्लिष्टां जीववत्सामरोगिणीम्
स्निग्धवर्णां स्निग्धखुरां स्निग्धशृङ्गीं तथैव च ।

मनोहराकृतिं सौम्यां सुप्रमाणामनुद्धताम् ॥ ३ ॥
आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्तां दक्षिणतस्तथा । वामावर्तैर्वामतश्च विस्तीर्णजघनां तथा ॥ ४॥
मृदुसंहतताम्रोष्ठीं रक्तग्रीवासुशोभिताम् । अश्यामदीर्घास्फुटिता रक्तजिह्वा तथा च या
विस्लावामलनेत्रा च शफैरविरलैर्दृढैः । वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुदसन्निभैः ॥ ६ ॥
रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः । सप्त चतुर्दशदन्ता च तथा वा श्यामतालुका
षडुन्नता सुपार्श्वोरुः पृथुपञ्चसमायता । अष्टायतशिरोग्रीवा या राजन् ! सा सुलक्षणा

मनुरुवाच ।

षडुन्नताः के भगवन् ! केच पञ्चसमायताः । आयाताश्च तथैवाष्टौ धेनूनाङ्के शुभावहाः

मत्स्य उवाच ।

उरः पृष्ठं शिरः कुक्षी श्रोणी च वसुधाधिप ! । षडुन्नतानि धेनूनांपूजयन्ति विचक्षणाः
कर्णौ नेत्रे ललाटश्चपञ्चभास्करनन्दन ! । समायतानि शस्यन्ते पुच्छं सास्नाचसक्थिनी
चत्वारश्चस्तनाराजन् ! ज्ञेयाह्यष्टौमनीषिभिः । शिरोग्रीवायताश्चैते भूमिपाल! दशस्मृताः
तस्याः सुतं परीक्षेत वृषभं लक्षणान्वितम् । उन्नतस्कन्धककुदं ऋजुलाङ्गूलकम्बलम्
महाकटितटस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनम् । प्रवालगर्भश्रृङ्गाग्रं सुदीर्घपृथुबालधिम् ॥१४॥
नवाष्टादशसङ्ख्यैर्वा तीक्ष्णाग्रैर्दर्शनैःशुभैः । मल्लिकाक्षश्च मोक्तव्यो गृहेऽपि धनधान्यदः
वर्णतस्ताम्रकपिलो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते । श्वेतोरक्तश्च कृष्णश्च गौरः पाटल एव च ॥
श्रृङ्गिणस्ताम्रपृष्ठश्च शवलः पञ्चवालकैः । पृथुकर्णौ महास्कन्धः श्लक्ष्णरोमा च योभवेत्

रक्ताक्षः कपिलो यश्च रक्तश्रृङ्गतलो भवेत् ॥१७॥

श्वेतोदरः कृष्णपार्श्वो ब्राह्मणस्य तु शस्यते । स्निग्धा रक्तेनवर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते
काचनाभेन वैश्यस्य कृष्णेनाप्यन्त्यजन्मनः । यस्य प्रागायते श्रृङ्गे भूमुखाभिमुखे सदा
सर्वेषामेव वर्णानां सर्वः सर्वार्थसाधकः । मार्जारपादः कपिलोधन्यः कपिलपिङ्गलः ॥
श्वेतो मार्जारपादस्तु धन्योमणिनिभेक्षणः । करटः पिङ्गलश्चैव श्वेतपादस्तथैव च ॥
सर्वपादसितो यश्च द्विपादः सत्यएव च । कपिञ्जलनिभो धन्यस्तथा तित्तिरिसन्निभः
आकर्णमूलश्वेतन्तु मुखं यस्य प्रकाशते । नन्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विशेषतः ॥

श्वेतन्तु जठरं यस्य भवेत् पृष्ठं च गोपतेः। वृषभः स समुद्राख्यः सततं कुलवर्धनः॥
मल्लिकापुष्पचित्रश्च धन्यो भवति पुङ्गवः। कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्रो भवति भाग्यदः

अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः।
एते धन्यास्तथा धन्यान् कीर्तयिष्यामि ते नृप ! ॥२६॥

कृष्णताल्वोष्ठवदना रूक्षशृङ्गशफाश्च ये। अव्यक्तवर्णा ह्रस्वाश्च व्याघ्रसिंहनिभाश्च ये।
ध्वाङ्क्षगृध्रसवर्णाश्चतथामूषकसन्निभाः। कुण्ठाःकाणास्तथा खञ्जाःकेकराक्षास्तथैवच
विषमश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा। नैते वृषाः प्रमोक्तव्या न च धार्यास्तथागृहे

मोक्तव्यानाश्च धार्याणां तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।
स्वस्तिकाकारशृङ्गाश्च तथा मेघौघनिस्वनाः॥ ३० ॥

महाप्रमाणाश्च तथा मत्तमातङ्गगामिनः। महोरस्का महोच्छ्राया महाबलपराक्रमाः॥३१
शिरः कर्णौललाटश्चबालधिश्चरणास्तथा। नेत्रेपार्श्वेचकृष्णानि शस्यन्तेचन्द्रभासिनाम्
श्वेतान्येतानिशस्यन्तेकृष्णस्यतु विशेषतः। भूमौ कर्षति लाङ्गूलं प्रलम्बस्थूलबालधीः
पुरस्तादुद्यतो नीलो वृषभश्च प्रशस्यते। शक्तिध्वजपताकाढ्या येषां राजी विराजते
अनड्वाहस्तु ते धन्याश्चित्रसिद्धिजयावहाः। प्रदक्षिणं निवर्तन्ते स्वयं ये विनिवर्तिताः
समुन्नतशिरोग्रीवा धन्यास्ते यूथवर्द्धनाः। रक्तशृङ्गाग्रनयनः श्वेतवर्णो भवेद्यदि ॥३६॥
शफैः प्रवालसदृशैर्नास्तिधन्यतरस्ततः। एते धार्य्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः।
धारिताश्च तथा मुक्ता धनधान्यप्रवर्द्धनाः। चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानिगोपतेः
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्। वृष एष स मोक्तव्यो न सन्धार्योगृहेभवेत्
तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी। एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।

गौरीश्चाप्युद्वहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥४१॥
एवं वृषं लक्षणसंप्रयुक्तं गृहोद्भवं क्रीतमथापि राजन् !
मुक्त्वा न शोचेन्मरणं महात्मा मोक्षं गतश्चाहमतोऽभिधास्ये ॥४२॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वृषोत्सर्गविधिवर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः।

सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

पतिव्रतामाहात्म्ये सावित्र्युपाख्यानम् ।

सूत उवाच ।

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः । पतिव्रतानां माहात्म्यं तत्सम्बन्धांकथामपि

मनुरुवाच ।

पतिव्रतानां का श्रेष्ठा कयामृत्युः पराजितः । नामसङ्कीर्तनं कस्याः कीर्तनीयंसदा नरैः

सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे ॥ २ ॥

मत्स्य उवाच ।

त्रैलोक्यं धर्मराजोऽपिनाचरत्यथयोषिताम् । पतिव्रतानांधर्मज्ञ! पूज्यास्तस्यापि ताःसदा

अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।

यथा विमोक्षितो भर्त्ता मृत्युपाशाद्यतः स्त्रिया ॥ ४ ॥

मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा । अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामदाम्

आराधयति सावित्रींलक्षितोऽसौद्विजोत्तमैः । सिद्धार्थकैर्हूयमानांसावित्रींप्रत्यहंद्विजैः

शतसंख्यैश्चतुर्थ्यांन्तु दशमासागते दिने । काले तु दर्शयामास स्वान्तनुं मनुजेश्वरम् ॥

साविञ्युवाच ।

राजन्! भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा ।

तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम् ॥ ८ ॥

एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव! । जगामादर्शनं देवी यथा वै नृप! चञ्चला

मालती नाम तस्यासीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता । सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः ॥

सावित्र्याहुतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा । सावित्री च भवत्वेषा जगाद नृपतिर्द्विजान्

कालेन यौवनं प्राप्ता ददौ सत्यवते पिता । नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम् ॥

संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः । सकृत्कन्या प्रदीयते चिन्तयित्वा नराधिपः

तथापि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे । सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे ॥ नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा । शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशुरयोर्वने ॥१५॥

राज्याद् भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः ।
न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम् ॥ १६ ॥

चतुर्थेऽहनि मर्तव्यं तथा सत्यवता द्विजाः ! । श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिंस्तदा दिने । चारुपुष्पफलाहारः सत्यवांस्तु ययौ वनम् ॥ श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा । सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्त्रा महद्वनम् ॥ चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम् । वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासद्दृशांस्तथा ॥२०॥

आश्वासयामास स राजपुत्रीं क्लान्तां वने पद्मविशालनेत्राम् ।
सन्दर्शनेनाथ द्रुमद्विजानान्तथा मृगाणां विपिने नृवीरः ॥ २१ ॥

इतिश्री मत्स्यपुराणे पतिव्रतामाहात्म्ये सावित्र्युपाख्यानवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

सत्यवानुवाच ।

वनेऽस्मिन् शाद्वलाकीर्णे सहकारं मनोहरम् ।
नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्तं रतिवर्धनम् ॥ १ ॥

वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवन्तं सुपुष्पितम् । वसन्तो हसतीवायं मामेवायतलोचने ! ॥ दक्षिणे दक्षिणनैतां पश्य रम्यां वनस्थलीम् । पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः । करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम् ॥ पश्चिमेन विशालाक्षि ! कर्णिकारैः सुपुष्पितैः । काञ्चनेन विभात्येषा वनराजीमनोरमा

अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली। रम्या सा चारुसर्वाङ्गी कुसुमोत्करभूषणा ॥६
मधुमत्तालिझङ्कारव्याजेन वरवर्णिनी। चापाकृष्टिं करोतीव कामः पार्श्वे जिघांसया ॥
फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता। विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली
कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः। गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव ॥ ९ ॥
पुष्परेणुविलिप्ताङ्गीं प्रियामनु सरिद्वने। कुसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः
मञ्जरीं सहकारस्य कान्तावक्त्राग्रपीडिताम्। स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने

काकः प्रसूतां वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना।
काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम् ॥ १२ ॥
शुभाङ्गनिम्नमासाद्य दयितासहितो युवा।
नाहारमपि चादत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः ॥ १३ ॥
कलविङ्कस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्गं समास्थितः।
मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि! उत्कण्ठयति कामिनः ॥ १४ ॥
वृक्षशाखां समारूढः शुकोऽयं सह भार्यया।
करेण लम्बयन् शाखां करोति सफलं शिरः ॥ १५ ॥
घनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः।
शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी ॥ १६ ॥

व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकन्दरसंस्थितम्। ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहाभिन्नेव लक्ष्यते ॥
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनःपुनः। प्रीतिमायातिच तयालिह्यमानःस्वकान्तया
उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम्। जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी ॥ १९ ॥

भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम्।
नखैर्दन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा ॥ २० ॥

शशकः शशकी चोभे संसुप्ते पीडिते इमे। संलीनगात्रचरणे कर्णैर्व्यक्तिमुपागते ॥२१॥
स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः। सम्भावयति तन्वङ्गींमृणालकवलैःप्रियाम्
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी। करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगा

दृढाङ्गसन्धिर्महिषः कर्दमाक्ततनुर्वने । अनुव्रजति धावन्तीं प्रियबद्धचतुष्करः ॥ २४ ॥
पश्य चार्वङ्गि ! सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः । सभार्यंमांहिपश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम्
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम् । स्नेहार्द्रभावात्कर्षन्ती भर्त्तारं शृङ्गकोटिना॥
द्रागिमाञ्चमरीं पश्य सितबालामगच्छतीम् । अन्वास्ते चमरः कामी माञ्चपश्यतिगर्वितः
आतपे गवयं पश्य प्रहृष्टं भार्यया सह । रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकङ्ककुदि वारयन् ॥२८॥
पश्येमं भार्यया सार्द्धं न्यस्ताग्रचरणद्वयम् । विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया २९
हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम् । सुमुक्तस्येन्दुबिम्बस्य पश्य वै श्रियमुद्वहन्॥

सभार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः ।
करोति पद्मिनीं कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरी ॥ ३१ ॥
मया फलोच्चयः सुभ्रु ! त्वया पुष्पोच्चयः कृतः ।
इन्धनं न कृतं सुभ्रु ! तत्करिष्यामि सांप्रतम् ॥ ३२ ॥

त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता । क्षणमात्रंप्रतीक्षस्व विश्रमस्वच भामिनि

सावित्र्युवाच ।

एवमेतत्करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया । दूरं कान्त ! न कर्तव्योबिभेमि गहने वने ॥३४

मत्स्य उवाच ।

ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्वने तदा राजसुतासमक्षम् ।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं मेने च सा तं मृतमेव राजन् ॥ ३५ ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे सावित्र्युपाख्यानेऽष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

मत्स्य उवाच ।

तस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञे शिरसि वेदना । स वेदनार्तः संगम्य भार्यां वचनमब्रवीत्॥१

आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना। तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किञ्चन॥

त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम्।

राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिवः॥ ३॥

तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाविललोचनः। पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका

ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम्। नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम्॥५॥

विद्युल्लतानिबद्धाङ्गं सतोयमिव तोयदम्। किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलैश्च विराजितम्॥

हारभारार्पितोरस्कं तथाङ्गदविभूषितम्। तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना॥७॥

स तु संप्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा। अंगुष्ठमात्रं पुरुषं पाशबद्धं वशंगतम्॥८॥

आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा। सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वातं गतजीवितम्

अनुवव्राज गच्छन्तन्धर्मराजमतन्द्रिता। कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता॥ १०॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्यातु मध्यमम्। गुरुं शुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते॥

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैतेत्रयआदृताः। अनादृतास्तु यस्यैतेसर्वास्तस्याफलाःक्रियाः

यावत्त्रयस्तेजीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्। तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः

तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदाऽऽचरेत्।

तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः। त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते॥१४॥

यम उवाच।

कृतेन कामेन निवर्त्तयाशु धर्मा न तेभ्योऽपि हि उच्यते च।

ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि॥ १५॥

गुरुपूजारतिर्भक्ता त्वञ्च साध्वी पतिव्रता। विनिवर्तस्व धर्मज्ञे! ग्लानिर्भवति तेऽधुना

सावित्र्युवाच।

पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।

अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः॥ १७॥

मितन्ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।

अमितस्य च दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत्॥ १८॥

नीयते यत्र भर्त्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति। मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम!

पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव! न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम्॥ २०॥
मनस्विनी तु या काचित् वैधव्याक्षरदूषिता।
मुहूर्त्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता॥ २१॥

यम उवाच।

पतिव्रते! महाभागे! परितुष्टोऽस्मि ते शुभे!। विना सत्यव्रतःप्राणैर्वरंवरय माचिरम्

सावित्र्युवाच।

विनष्टचक्षुषोराज्यञ्चक्षुषा सह कारय। च्युतराष्ट्रस्य धर्मज्ञ! श्वशुरस्य महात्मनः॥

यम उवाच।

दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि॥ २४॥
इति श्री मत्स्यपुराणे सावित्र्युपाख्याने नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः।

दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम्।

सावित्र्युवाच।

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे।
सतान्तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम!॥ १॥

साधूनां वाप्यसाधूनां सन्त एव सदागतिः। नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः
विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम्। अकारणं जगद्वैरिखलेभ्यो जायतेयथा

सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा।

तथाऽसन्तोऽपि सन्त्यज्य परपीड़ासु तत्पराः ॥ ४ ॥

त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणवद्यस्य कारणात् । परोपघातशक्तास्तं परलोकन्तथा सतः ॥

निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः । असतामुपघाताय राजानं ज्ञातवान् स्वयम्

नरान् परीक्षयेद्राजा साधून् सम्मानयेत्सदा । निग्रहश्चासतांकुर्यात्सलोके लोकजित्तमः

निग्रहेणासतां राजा सताञ्च परिपालनात् । एतावदेव कर्तव्यं राज्ञा स्वर्गमभीप्सुना ॥

राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतीपते ! असतां निग्रहादेव सताञ्च परिपालनात् ॥

राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान् ।

तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे ॥१० ॥

जगत्तु धार्यतेसद्भिःसतामग्र्यस्तथाभवान् । तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमोदेव ! न विद्यते

यम उवाच ।

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसंगतैः ।

विना सत्यवतः प्राणाद् वरं वरय मा चिरम् ॥ १२ ॥

सावित्र्युवाच ।

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो ! ।

अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ॥ १३ ॥

तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ! । और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर ॥

नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः । पतिव्रतासि तेन त्वं मुहूर्तंमम यास्यसि ॥

गुरुशुश्रूषणाद्भद्रे ! तथा सत्यवतो महत् ।

पुण्यं समर्जितं येन न याम्येनमहं स्वयम् ॥ १६ ॥

एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता । मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि ! ॥१७

तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने । पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयानेन चिरं शुभे ! ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे ! । पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।

नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणा न विशेषतः ॥ २० ॥

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः ॥ २१ ॥
जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ २२ ॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा । तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते । न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥२४॥
तएव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः । तएव च त्रयोवेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ॥ २६ ॥
त्रिषु प्रमाद्यते नैषु त्रीन् लोकान् जयते गृही । दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात् तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥ २८ ॥
इति श्री मत्स्यपुराणे सावित्र्युपाख्याने दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

सावित्र्युवाच ।

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ ! कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा । त्वत्पादमूलसेवा च परमं धर्मकारणम् ॥
धर्मार्जनन्तथा कार्यं पुरुषेण विजानता । तल्लाभः सर्वलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते ॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम् ।
धर्महीनस्य कामार्थौ वन्ध्यासुतसमौ प्रभो ! ॥ ३ ॥

धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा । धर्मएकोऽनुयात्येनं यत्र क्वचन गामिनम् ॥
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति । एको हि जायते जन्तुरेकएव विपद्यते॥५॥

धर्मस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः ।
क्रियासौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते ॥ ६ ॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रशर्वेन्दुयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम् ।
वस्वश्विधनदाद्यानां ये लोकाः सर्वकामदाः ॥ ७ ॥

धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक !। मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुसुखानि च ॥
प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिकाः । नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानियानि च॥
तानि पुण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठन्तथा नरैः। विमानानि विचित्राणि तथैवाप्सरसःशुभाः
तैजसानि शरीराणिसदा पुण्यवतांफलम् । राज्यं नृपतिपूजा च कामसिद्धिस्तथेप्सिता
संस्काराणि च मुख्यानि फलंपुण्यस्य दृश्यते। रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानिच
चामराणि सुराध्यक्ष ! भवन्ति शुभकर्मणाम् । पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना
धार्यतां याति छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा । जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागधनिःस्वनैः॥१४॥
वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणः । वरान्नपानं गीतञ्च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ॥
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मणः। रूपौदार्यगुणोपेतास्त्रियश्चातिमनोहराः॥
वासः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणः । सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिणः ॥
वहन्ति तुरगा देव नरं पुण्येन कर्मणा । तस्य द्वाराणि यजनन्तपोदानन्दमः क्षमा॥१८॥
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्थानुमरणं शुभम् । स्वाध्यायसेवासाधूनां सहवासः सुरार्चनम्

गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम् ।
इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ॥ २० ॥

तस्माद्धर्मः सदा कार्योनित्यमेव विजानता । नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य च वा कृतम्
बालएवचरेद्धर्ममनित्यं देव ! जीवितम् । कोहि जानाति कस्याद्यमृत्युरेवापतिष्यति ॥
पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम् । अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम !
युवत्वापेक्षया बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा । मृत्योरुत्सङ्गमारूढः स्थविरः किमपेक्षते ॥२४

तत्रापि विण्ड(न्द)तस्त्राणं मृत्युनातस्यका गतिः । न भयंमरणञ्चैवप्राणिनामभयंक्वचित्
तत्रापि निर्भयाः सन्तः सदा सुकृतकारिणः ॥ २५ ॥

यम उवाच ।

तुष्टोऽस्मितेविशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसङ्गतैः । विना सत्यव्रतः प्राणान् वरंवरयमाचिरम्

[सावित्र्युवाच ।

वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम् । अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते

यम उवाच ।

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं यथोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥२८॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादे एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

सावित्र्युवाच ।

धर्माधर्मविधानज्ञ ! सर्वधर्मप्रवर्त्तक ! । त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनोयमः ॥ १ ।
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः । तस्माद्वै प्रोच्यसे देव ! यम इत्येव नामतः ॥
धर्मेणेमाः प्रजाः सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो ! । तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते॥
सुकृतं दुष्कृतंचोभे पुरोधाय यदाजनाः । त्वत्सकाशंमृता यान्ति तस्मात्त्वं मृत्युरुच्यसे
कालं कलार्द्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि ।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान् । तस्मात्त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते ! ॥
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तितः । तस्माद्वैवस्वतोनाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यते ॥

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभञ्जनम् । तदा त्वं कथ्यसे लोके सर्वप्राणिहरेतिवै
तव प्रसादाद्देवेश ! सङ्करो न प्रजायते । सतां सदा गतिर्देव ! त्वमेव परिकीर्तितः ॥६
जगतोऽस्यजगन्नाथ ! मर्यादापरिपालकः । पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ ! दुःखितांशरणागताम्

पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ ॥ १० ॥

यम उवाच ।

स्तवेन भक्त्याधर्मज्ञे ! मया तुष्टेन सत्यवान् । तव भर्ता विमुक्तोऽयंलब्धकामाव्रजाबले!
राज्यं कृत्वा त्वया सार्द्धं वत्सराशीतिपञ्चकम् । नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सहरंस्यते ।
त्वयि पुत्रशतञ्चापिसत्यवान् जनयिष्यति । ते चापिसर्वे राजानःक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः

मुख्यास्त्वन्नाम पुत्राख्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।

पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥ १४ ॥

मालव्यां मालवानामशाश्वताःपुत्रपौत्रिणः । भ्रातरस्ते भविष्यन्तिक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः
स्तोत्रेणानेनधर्मज्ञे! कल्पमुत्थाय यस्तु माम् । कीर्तयिष्यति तस्यापिदीर्घमायुर्भविष्यति

मत्स्य उवाच ।

एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा ।

अदर्शनं तत्र यमो जगाम कालेन सार्द्धं सह मृत्युना च ॥१७॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादे द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

मत्स्य उवाच ।

सावित्री तु ततः साध्वीजगामवरवर्णिनी । यथा यथा गतेनैव यत्रासीत्सत्यवान्मृतः
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः । कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे

सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः । उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप !
ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत् । क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति
न जानामिवरारोहे ! कश्चासौपुरुषःशुभे । वनेऽस्मिन्चारुसर्वाङ्गि ! सुप्तस्यचदिनंगतम्
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया । अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा ॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु ! गमने त्वरिता भव ॥ ६ ॥

सावित्र्युवाच ।

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रुचितं प्रभो !। आश्रमन्तु प्रयास्यावः श्वशुरौहीनचक्षुषौ
यथा वृत्तश्च तत्रैव शृणु वक्ष्ये यथाश्रमे । एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ ॥८
आससादाश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा । एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः ॥
द्युमत्सेनः सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव ! । प्रियपुत्रमपश्यन्वै स्नुषाञ्चैवाथ कर्शिताम् ॥
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनैः । ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह कानने
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा । ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्रपुङ्गवम् ॥
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दनः ।
अभिवाद्य ततः सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान् ॥ १३ ॥
उवास तत्र मां रात्रिमृषिभिः सर्वधर्मवित् । सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता
व्रतं समापयामास तस्यामेव यथानिशि । ततस्तुर्यैस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः ॥
आजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे । विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम्॥
विचक्षुषस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम् । अमात्यैः स हतो राजा भवांस्तस्मिन् पुरेनृपः
एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा बलेनचतुरङ्गिणा । लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान् महात्मनः
भ्रातॄणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना । एवम्पतिव्रता साध्वीपितृपक्षंनृपात्मजा
उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च । मोक्षयामास भर्तारं मृत्युपाशगतं तदा ॥२०॥
तस्मात्साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः ।
तासां राजन् ! प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम् ॥ २१ ॥
तासान्तु वाक्यं भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु ।

तस्मात्सदा ताः परिपूजनीयाः कामान् समग्रानभिकामयानैः ॥२२॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सावित्र्युपाख्याने पतिव्रतामाहात्म्यसमाप्तिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अभिषिक्तस्यराज्ञःकृत्यवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किंनुकृत्यतमं भवेत् । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्तियतोभवान्

मत्स्य उवाच ।

अभिषेकार्द्रशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना । सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ॥

यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुश्चरम् । पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ॥ ३ ॥

तस्मात्सहायान् वरयेत् कुलीनान्नृपतिः स्वयम् ।
शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्तान् श्रियान्वितान् ॥ ४ ॥
रूपसत्वगुणोपेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान् ।
क्लेशक्षमान् महोत्साहान् धर्मज्ञांश्च प्रियंवदान् ॥ ५ ॥

हितोपदेशकान्राज्ञःस्वामिभक्तान्यशोऽर्थिनः । एवंविधान्सहायांश्चशुभकर्मसु योजयेत्
गुणहीना अपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् । कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः
कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः । हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलःश्लक्ष्णभाषिता
निमित्ते शकुने ज्ञाते वेत्ताचैव चिकित्सिते । कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेशसहोऽऋजुः॥
व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित् । राज्ञासेनापतिः कार्यो ब्राह्मणःक्षत्रियोऽथवा
प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः । चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते
यथोक्तवादी दूतः स्याद्देशभाषाविशारदः । शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित्
विज्ञातादेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः । वक्ता न यस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत्

प्रांशवो व्यायताः शूराः दृढभक्ता निराकुलाः ।
राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः ॥ १४ ॥
अनाहार्यो नृशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे । ताम्बूलधारी भवति नारी वाप्यथ तद्गुणा ॥
षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः । सन्धिविग्रहकः कार्यो राज्ञा नयविशारदः॥
कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता । आयव्ययज्ञोलोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः॥
सुरूपस्तरुणः प्रांशु र्दृढभक्तिः कुलोचितः । शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः ॥
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः । धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः ॥१९॥
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः । हयायु र्वेदतत्त्वज्ञो भुवोभागविचक्षणः ॥२०॥
बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियम्वदः । शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परिकीर्तितः ॥
अनाहार्यः शुचिर्दक्षश्चिकित्सितविदाम्वरः । सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते ॥
सूदशास्त्रविधानज्ञाः पराभेद्या कुलोद्गताः । सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः ॥२३
समः शत्रौच मित्रेच धर्मशास्त्रविशारदः । विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणी भवेत् ॥
कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः । सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः॥
लेखकः कथितोराज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै ।
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान् ॥ २६ ॥
आन्तरान्वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः । उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः
बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम ॥ पुरुषान्तरतत्त्वज्ञाः प्रांशवश्चाप्यलोलुपाः॥
धर्माधिकारिणः कार्याः जना दानकरा नराः ।
एवम्विधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जनाः ॥ २९ ॥
लोहवस्त्राजिनादीनांरत्नानाञ्च विधानवित् । विज्ञाताफल्गुसाराणामनाहार्यःशुचिःसदा
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्षः प्रकीर्तितः । आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नराः ॥३१
व्ययद्वारेषु च तथा कर्तव्याः पृथिवीक्षिता ।
परम्परागतो यः स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते ॥ ३२ ॥
अनाहार्यः स वैद्यः स्यात् धर्मात्मा च कुलोद्गतः ।

प्राणाचार्यः स विज्ञेयो वरुणात्तस्य भूभुजा ॥ ३३ ॥

राजन् ! राज्ञा सदा कार्यं यथाकार्यं पृथक् जनैः ।

हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारदः ॥ ३४ ॥

क्लेशक्षमस्तथाराज्ञो गजाध्यक्षः प्रशस्यते । एतैरेव गुणैर्युक्तः स्वासनश्च विशेषतः ॥३५

गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते । हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः ॥

अश्वाध्यक्षो महीभर्त्तुः स्वासनश्च प्रशस्यते । अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः॥

दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकर्मसु । वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः

दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः । यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते ॥

अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते । वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः : पितृपैतामहःशुचिः॥

राज्ञामन्तःपुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते । एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे॥४१॥

परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु । स्थापनाजातितत्त्वज्ञः सततं प्रतिजाग्रता

राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्मसु चोद्यतः । कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह !॥

उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः । उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ॥

नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात् । नियोगं पौरुषं भक्ति श्रुतं शौर्यं कुलं नयम् ॥

ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता । पुरुषान्तरविज्ञानतत्त्वसारनिबन्धनात् ॥

बहुभि र्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रं पृथक् पृथक् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ॥ ४७ ॥

कचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ! निश्चयस्तु सदामन्त्रे कार्यएकेनसूरिणा

भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् । एकस्यैव महोभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः॥

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान् ।

नासच्छास्त्रवतो मूढास्ते हि लोकस्य कण्टकाः ॥ ५० ॥

वृद्धान् हि नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् ।

तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः ॥ ५१ ॥

समग्रां वशगां कुर्य्यात् पृथिवीं नात्र संशयः । बहवोविनयाद्भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः

वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीविद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥ ५३ ॥
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्याम्वार्तारम्भाश्च लोकतः ।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥ ५४ ॥

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशेस्थापयितुं प्रजाः । यजेतराजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः
धर्मार्थंचैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च । साम्वत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्
स्यात्स्वाध्यायपरोलोके वर्तेतपितृवन्धुवत् । आवृत्तानांगुरुकुलात्द्विजानांपूजकोभवेत्
नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते । ततस्तेनानवा भित्रा हरन्ति न विनश्यति ॥
तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो विधिः ।
समोत्तमाधमै राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजाः ॥ ५६ ॥

न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् । संग्रामेस्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ॥
शुश्रूषा ब्राह्मणानाञ्च राज्ञां निश्श्रेयसम्परम् । कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च पालनम् ॥
योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् । वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथाकार्यं विशेषतः ॥६२॥
स्वधर्मप्रच्युतान् राजा स्वधर्मे स्थापयेत्तथा । आश्रमेषुतथा कार्यमन्नं तैलञ्च भाजनम्
स्वयमेवानयेद्राजा सत्कृतान्नावमानयेत् । तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मात्मनमेवच॥
निवेदयेत्प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत् । द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः ॥६५॥
वक्रां ज्ञात्वा न सेवेत प्रतिवाधेत चागताम् ।
नास्य च्छिद्रं परो विन्याद्विन्याच्छिद्रं परस्य तु ॥ ६६ ॥

गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः । न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेनातिविश्वसेत् ॥
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति । विश्वासयेच्चाप्यपरन्तत्त्वभूतेन हेतुना ॥६८
वकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमे। वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत् ॥६९॥
दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः । चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तस्तथा श्ववत् ॥
तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः । काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत् ॥
नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं व्रजेत् । वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम !॥७२॥

न गाहेज्जनसम्बाधं नचाज्ञातजलाशयम् । अपरीक्षितपूर्वञ्च पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ७३ ॥
नारोहेत्कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगंतथा । नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत्
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राता यत्तोभवेन्नृपः । सद्भृत्याश्च तथा पुष्टाः सततं प्रतिमानिताः

राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता ।
यथार्हश्चाप्यसुभृतो राजा कर्मसु योजयेत् ॥ ७६ ॥

धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु । निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन् ॥
स्त्रीषु षण्ढं नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुणकर्मसु । धर्मे चार्थेच कामे च नये च रविनन्दन !॥

राजा यथार्हङ्कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम् ।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान् ॥ ७६ ॥

तत्पादान्वेषणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत् । एवमादीनि कर्माणिनृपैःकार्याणिपार्थिव
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः । कर्माणि पापसाध्यानियानि राज्ञो नराधिप!
सन्तस्तानि न कुर्वन्तितस्मात्तानित्यजेन्नृपः । नेष्यतेपृथिवीशानान्तीक्ष्णोपकरणक्रिया

यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम् ।
तस्मिन् कर्मणि तं राज्ञा परीक्ष्य विनिवेशयेत् ॥८३॥

पितृपैतामहान् भृत्यान् सर्वकर्मसु योजयेत् । विनादायादकृत्येषुपरीक्षां स्वकृतान्तरान्
नियुञ्जीत महाभाग ! तस्य ते हितकारिणः । परराजगृहात्प्राप्तान् जनसंग्रहकाम्यया ॥
दुष्टान् वाप्यथवादुष्टान् आश्रयीत प्रयत्नतः । दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्रभूमिपः
वृत्तिं तस्यापि वर्तेत जनसंग्रहकाम्यया । राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद् भृशम् ॥८७
मामयं देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत् । कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यान्नराधिप ॥

न च वा संविभक्तांस्तान् भृत्यान् कुर्यात्कथञ्चन ।
शत्रवोऽग्नि र्विषं सर्पो निस्त्रिंश इति चिन्तयेत् ॥ ८६ ॥

भृत्या मनुजशार्दूल ! रुषिताश्च तथैकतः । तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञायनित्यशः
गुणिनां पूजनं कुर्यात् निर्गुणानाञ्चशासनम् । कथिताःसततंराजन् ! राजानश्चारचक्षुषः
स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणान् । अनाहार्यान् क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथाचरान्

जनस्याविदितान् सौम्यान् तथा ज्ञातान् परस्परम् ।
वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान् ॥ ६३ ॥
तथा प्रव्राजिताकारांश्चारान् राजा नियोजयेत् ।
नैकस्य राजा श्रद्दध्यात् चारस्यापि सुभाषितम् ॥ ६४ ॥

द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नृपतिस्तदा । परस्परस्याविदितौ यदिस्यातांश्च तावुभौ तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान्नियोजयेत् । रागापरागौभृत्यानां जनस्यचगुणागुणान् सर्वं राज्ञां चरायत्तन्तेषु यत्नपरोभवेत् । कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते ॥ विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता । विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः ॥ ६८

तथा च रागप्रभवा हि लक्ष्म्यो राज्ञां मता भास्करवंशचन्द्र ! ।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ॥ ६६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणेऽभिषिक्तस्य राज्ञःकृत्यवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजकृत्यवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच

यथा न वर्तितव्यं स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविना ।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम ॥ १ ॥

राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्यं तत्प्रयत्नतः । आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं तथा वचः अनुकूलं प्रियं तस्य वक्तव्यं जनसंसदि । रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत् ॥३॥ परार्थमस्य वक्तव्यं समे चेतसि पार्थिव । स्वार्थः सुहृद्भि र्वक्तव्यो न स्वयं तु कथञ्चन काय्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः । नच हिंस्यं धनं किञ्चित् नियुक्तेनचकर्मणि नोपेक्ष्यस्तस्यमानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत् । राज्ञश्चनतथाकार्य्यं वेषभाषितचेष्टितम्

राजलीला न कर्तव्या तद्विद्विष्टश्च वर्जयेत्। राज्ञःसमोऽधिकोवानकार्य्योवेषोविजानता
द्यूतादिषु तथैवान्यत् कौशलं तु प्रदर्शयेत्। प्रदर्श्यकौशलं चास्यराजानन्तु विशेषयेत्॥

अन्तःपुरजनाध्यक्षै वैरिदूतै र्निराकृतैः।
संसर्गं न व्रजेद्राजन् विना पार्थिवशासनात्॥ ६॥

निस्नेहताञ्चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत्। यच्च गुह्यं भवेद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत्॥
नृपेण श्रावितं यत्स्याद्वाच्यावाच्यं नृपोत्तम!। नतत्संश्रावयेल्लोकेतथाराज्ञोऽप्रियोभवेत्
आज्ञाप्यमानेवान्यस्मिन्समुत्थायत्वरान्वितः। किमहङ्करवाणीतिवाच्योराजाविजानता

कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत्।
सततं क्रियमाणेऽस्मिन् लाघवन्तु व्रजेद् ध्रुवम्॥ १३॥

राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि न चात्यर्थंपुनःपुनः। महासुशीलस्तुभवेत्नचापि भृकुटीमुखः
नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा। आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत्तु कथञ्चन

दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित्।
वस्त्रमस्त्रमलङ्कारं राज्ञा दत्तं तु धारयेत्॥ १६॥

औदार्येण न तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता। तत्रैवात्मासनं कार्यं दिवा स्वप्नं न कारयेत्
नानिर्दिष्टे तथाद्वारे प्रविशेत्तु कथञ्चन। न च पश्येत्तु राजानमयोग्यासु च भूमिषु॥
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा। पुरस्ताच्च तथापश्चादासनन्तु विगर्हितम्
जृम्भां निष्ठीवनङ्कासं कोपं पर्यस्तिकाश्रयम्। भृकुटिं वान्तमुद्गारन्तत्समीपे विवर्जयेत्
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः। स्वगुणाख्यापने युक्ता परमेव प्रयोजयेत्
हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः। अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राज्ञामतन्द्रितैः॥

शाठ्यं लौल्यं च पैशून्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा।
चापल्यञ्च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः॥२३॥

श्रुतिविद्यासुशीलैश्च संयोज्यात्मानमात्मना। राजसेवान्ततः कुर्याद् भूतयेभूतिवर्द्धनीम्
नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः। सचिवैश्चास्यविश्वासोनतुकार्यः कथञ्चन
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं ब्रूयात्तथा यदि। हितं तथ्यञ्च वचनंहितैःसहसुनिश्चितम्

चित्तञ्चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना । भर्त्तुराराधनंकुर्याच्चित्तज्ञोमानवः सुखम्
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता । त्यजेद्विरक्तो नृपती रक्तवृत्तिन्तु कारयेत्
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा । आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ॥
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः ।
वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै ॥ ३० ॥
प्रदेशवाक्यमुदितो न सम्भावयतेऽन्यथा । आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते ॥
कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च । लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसङ्कीर्तनेऽपि च
दृष्टिंक्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि । विरक्तलक्षणं चैतत् शृणु रक्तस्य लक्षणम्
दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात् । कुशलादिपरिप्रश्नं संप्रयच्छति चासनम्
विविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते । जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ॥
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते । उपायनञ्च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ॥
कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा । इति रक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह !॥३७॥
मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्या भजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।
विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ॥ ३८ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे राजकृत्यवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

षोड़शाधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजकृत्यवर्णनम् ।

मत्स्यउवाच ।

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम् । रम्यमानतसामन्तं मध्यमन्देशमावसेत् ॥ १ ॥
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथापरैः । किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरन्तथा ॥ २ ॥
अदैवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम् । करैरपीडितञ्चापि बहुपुष्पफलं तथा ॥ ३ ॥

अगम्यं परचक्राणां तद्वासगृहमापदि । समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ॥४॥
सरीसृपविहीनञ्च व्याघ्रतस्करवर्जितम् । एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ॥५॥
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः । धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥६ ॥
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव ! । सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते
दुर्गंच परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम् । शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम् ॥ ८ ॥
गोपुरं सकपाटञ्च तत्र स्यात्सुमनोहरम् । सपताकङ्गजारूढोयेन राजा विशेत्पुरम्॥९॥
चतस्रश्च तथातत्र कार्यास्त्वायतवीथयः । एकस्मिंस्तत्र वीथ्यग्रे देववेश्म भवेद्दृढम्
वीथ्यग्रे च द्वितीये च राजवेश्म विधीयते । धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके
चतुर्थेत्वथ वीथ्यग्रे गोपुरञ्च विधीयते । आयतश्चतुरस्त्रं वा वृत्तं वा कारयेत् पुरम् ॥
मुक्तिहीनं त्रिकोणञ्चयवमध्यं तथैवच । आयतश्चतुरस्त्रं वा वृत्तं वा कारयेत्पुरम् ॥१३॥
अर्द्धचन्द्रं प्रशंसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन् । अन्यत्तत्र न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता ॥१४॥
राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः । तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते

गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्यावाप्युदङ्मुखी ।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते ॥ १६ ॥

महानसश्च धर्मज्ञ ! कर्मशालास्तथापराः । गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः ॥
मन्त्रिवेदविदाञ्चैव चिकित्साकर्त्तुरेवच । तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ॥
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैवच । उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते ॥
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः । तुरगास्तेतथाधार्याः प्रदीपैःसार्वरात्रिकैः
कुक्कुटान् वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः । धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेवच ॥
अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा । गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः
अस्तंगते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे । तत्र तत्र यथास्थानं राजाविज्ञाय सारथीन् ॥
दद्यादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः । योधानां शिल्पिनाञ्चैव सर्वेषामविशेषतः॥२४॥
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान् । गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवैद्यांस्तथैवच ॥
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः । कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते ॥

न बहूनामतो दुर्गं विनाकार्यं तथा भवेत्। दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः॥
सहस्रघातिनो राजंस्तैस्तु रक्षा विधीयते।
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा ॥ २८ ॥
सञ्चयश्चात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते। धनुषां क्षेपणीयानान्तोमराणां च पार्थिव॥
शराणामथ खड्गानां कवचानां तथैवच। लगुडानां गुडानाञ्च हुडानां परिघैः सह॥
अश्मनाञ्च प्रभूतानां मुद्गराणां तथैवच। त्रिशूलानां पट्टिशानां कुठाराणाञ्च पार्थिव॥
प्रासानाञ्च सशूलानां शक्तीनाञ्च नरोत्तमः। परश्वधानां चक्राणां वर्मणाञ्चर्मभिः सह
कुद्दालक्षुरवेत्राणां पीठकानान्तथैव च। तुषाणाञ्चैव दात्राणामङ्गाराणाञ्च सञ्चयः ३३
सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां सञ्चयश्चात्र चेष्यते। वादित्राणाञ्च सर्वेषामौषधीनान्तथैवच
यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः। गुड़स्य सर्वतैलानां गोरसानान्तथैव च॥
वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभिः सह। गोचर्मपटहानाञ्च धान्यानां सर्वतस्तथा
तथैवाभ्रपटानाञ्च यवगोधूमयोरपि। रत्नानां सर्ववस्त्राणां लोहानामप्यशेषतः॥ ३७॥
कलापमुद्गमाषाणाञ्चणकानान्तिलैः सह। तथा च सर्वशस्यानां पांशुगोमययोरपि॥
शणसर्जरसं भूर्जं जतुलाक्षा च टङ्कणम्। राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किञ्चन॥
कुम्भाश्चाशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा।
मृगाश्च पक्षिणश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ॥ ४० ॥
स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक्।
कर्तव्यानि महाभाग! यत्नेन पृथिवीक्षिता ॥ ४१ ॥
उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः।
सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया ॥ ४२ ॥
जीवकर्षभकाकोलमामलक्याटरूषकान्। शालपर्णी पृष्ठिपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च ॥४३
माषपर्णी च मदद्वैसारिवेद्वेवलात्रयम्। वारा श्वसन्ती वृष्या च वृहती कण्टकारिका
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूर्दर्भरेणुका। मधुपर्णी विदार्येद्वे महाक्षीरा महातपाः॥४५
धन्वनः सहदेवाह्वा कटुकैरण्डकं बिषः। पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गु खर्जरयष्टिका॥

१ गोलकानि
२ लौहमुद्गर

शुक्रातिशुक्रकाश्मर्यञ्छत्रातिच्छत्रवीरणाः। इक्षुरिक्षुविकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम ॥

सिंही च सहदेवी च विश्वेदेवाश्वरोधकम्।
मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ॥ ४८ ॥

शतावरीमधूकेच पिप्पलन्तालमेव च। आत्मगुप्ता कट्फलाख्यादार्विका राजशीर्षकी ॥
राजसर्षपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा। कालशाकं पद्मवीजं गोवल्ली मधुवल्लिका ॥
शीतपाकी कुवेराक्षी काकजिह्वोरुपुष्पिका। पर्वतत्रपुसौ चोभौ गुञ्जातकपुनर्नवे॥५१॥

कसेरु कारुकाश्मीरी वल्या शालूक केसरम्।
तुषधान्यानि सर्वाणि शमीधान्यानि चैव हि ५२ ॥
क्षीरं क्षौद्रन्तथा तक्रं तैलं मज्जा वसा घृतम्।
नीपश्चारिष्टकाक्षोड़वातामसोमवाणकम् ॥ ५३ ॥

एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरोगणः। राजा सञ्चिनुयात्सर्वं पुरे निरवशेषतः ५४
दाड़िमाम्रातकौ चैव तिन्तिड़ीकाम्लवेतसम्। भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्द्दकरूषकम् ५५॥
वीजपूरककण्डूरे मालतीराजबन्धुकम्। कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्नातयोरपि ॥५६ ॥
पारावतं नागरकं प्राचीनोलकमेव च। कपित्थामलकं चुक्रफलन्दन्तशठस्य च ॥५७॥
जाम्बवं नवनीतञ्च सौवीरकरुषोदके। सुरासवञ्च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ॥५८॥
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमाम्लगणं द्विज। एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे
सैन्धोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम्। कुप्यसौवर्चलविड़ं बालकेयं यवाह्वकम् ॥६०॥

औवं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणोगणः।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ॥ ६१ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम्। कुवेरकं मरिचकं शिग्रुभल्लातसर्षपाः ॥६२॥

कुष्ठाजमोदाकिणिहीहिङ्गुमूलकधान्यकम्।
कारवीकुञ्चिका याज्या सुमुखा कालमालिका ॥ ६३ ॥
फणिज्ञकोथलशुनं भूस्तृणां सुरसन्तथा।
कायस्था च वयस्था च हरितालं मनःशिला ॥ ६४ ॥

अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमन्तथा । जया एरण्डकाण्डीरं सल्लकीहञ्जिका तथा ॥
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायोहरितकानि च । फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपत्रिका
एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः । राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम !॥
मुस्तश्चन्दनह्रीवेरकृतमालकदारवः । दरिद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम् ॥ ६८ ॥

दूर्वा पटोलकटुका दीर्घत्वक् पत्रकं वचा ।
किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ॥ ६९ ॥
तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः ।
काकोदुम्बरिका दिव्या तथा चैव सुरोद्भवा ॥ ७० ॥
षड्ग्रन्था रोहिणी मांसी पर्पटश्चाथ दन्तिका ।
रसाञ्जनं भृङ्गराजं पतङ्गी परिपेलवम् ॥ ७१ ॥
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यामाकं गन्धनाकुली ।
रूपपर्णी व्याघ्रनखं मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला ॥ ७२ ॥
रम्भा चैवाङ्कुरास्फोता तालास्फोता हरेणुका ।
वेत्राग्र वेतसस्तुम्बी विषाणी लोध्रपुष्पिणी ॥ ७३ ॥
मालतीकरकृष्णाख्या वृश्चिका जीविता तथा ।
पर्णिका च गुडूची च सगणस्तिक्तसंज्ञकः ॥ ७४ ॥

एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे। अभयामलके चोभे तथैव च बिभीतकम्॥
प्रियङ्गुधातकी पुष्पं मोचाख्या चार्जुनासनाः। अनन्तास्त्रीतुवरिका स्योनाक्कट्फलन्तथा
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम् । समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ॥७७॥
विद्रुमं स मधूच्छिष्टंकुम्भिकाकुमुदोत्पलम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिंशुकाःशिंशुपा शमी

प्रियालपीलुकासारिशिरीषाः पद्मकन्तथा ।
बिल्वोऽग्निमन्थः प्लक्षश्च श्यामाकश्च वको घनम् ॥ ७९ ॥

राजादनं करीरश्च धान्यकं प्रियकस्तथा । कङ्कोलाशोकबदराः कदम्बखदिरद्वयम् ॥८०
एषां पत्राणि साराणिमूलानि कुसुमानिच । एवमादीनिचान्यानिकषायाख्योमतोरसः

प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ ! राजा सञ्चिनुयात्पुरे । कीटाश्च मारणे योग्या व्यङ्गतायां तथैव च ॥
वातधूमाश्च मार्गाणां दूषणानि तथैव च । धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव

विषाणां धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।
विचित्राश्चागदा धार्या विषस्य शमनास्तथा ॥ ८४ ॥
रक्षोभूततपिशाचघ्नाः पापघ्नाः पुष्टिवर्धनाः ।
कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नतः ॥ ८५ ॥
भीतान् प्रमत्तान् कुपितांस्तथैव च विमानितान् ।
कुभृत्यान् पापशीलांश्च न राजा वासयेत्पुरे ॥ ८६ ॥
यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्नं समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम् ।
वणिग्जनैश्च वृतमावसेत दुर्गं सुगुप्तं नृपतिः सदैव ॥ ८७ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे राजधर्मवर्णनं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृताम्वर ! ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच ।

विल्वाटकी यवक्षारं पाटलावाह्लिकोषणाः । श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तो निकाथः प्रोक्षणंपरम्
सविषं प्रोक्षितं तेन सद्यो भवति निर्विषम् । यवसैन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ॥
कवचाभरणं छत्रं बालव्यजनवेश्मनाम् । शेलुः पाटलातिविषा शिग्रुमूर्वा पुनर्नवा ॥४॥
समङ्गावृषमूलञ्च कपित्थवृषशोणितम् । महादन्तशठन्तद्वत् प्रोक्षणं विषनाशनम् ॥५॥

लाक्षाप्रियंगुमञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका। यष्ट्याह्वा मधुरा चैव बभ्रुपित्तेनकल्पिताः॥
निखनेद्गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले। ततः कृत्वा मणिं हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत्
संसृष्टं सविषन्तेन सद्यो भवति निर्विषम्। मनोह्वया शमीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपाः॥

कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठाः पित्तेन श्लक्ष्णकल्पिताः।
शुनो गोः कपिलाश्च सौम्याक्षिप्तोऽपरोगदः॥ ६॥

विषजित् परमं कार्यं मणिरत्नञ्च पूर्ववत्। मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्धा विषापहा
हरेणुमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुकामधु। अक्षत्वक् सुरसं लाक्षा श्वपित्तं पूर्ववद्भुवि
वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतैः प्रलेपिताः। श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्योभवति निर्विषः
त्र्युषणं पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम्। सूक्ष्मैलात्रिवृतापत्रं विडङ्गानीन्द्रवारुणी॥
मधुकं वेतसं क्षौद्रं विषाणे च निधापयेत्। तस्मादुष्णाम्बुना मात्रं प्रागुक्तं योजयेत्ततः

शुक्लं सर्जरसोपेतसर्षपा एलवालुकैः॥ १५॥

सुवेगा तस्करसुरौ कुसुमैरर्जुनस्य तु। धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम्॥
न तत्र कीटा न विषन्दर्दुरा न सरीसृपाः। न कृत्या कर्मणाञ्चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते
कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः। मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डुलीयकैः॥ १८॥
क्वाथः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुतो हितः। रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन्॥
विषैर्न बाध्यते स्याच्च नरनारीनृपप्रियः। चूर्णैः हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः।२०
दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं सर्वविषार्दितम्। शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पंत्वङ्मूलमेव च॥
गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः। एकवीर! महौषध्यः शृणु चातः परं नृप!

बन्ध्या कर्कोटकी राजन्! विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा।
शतमूली सितानन्दा वला मोचा पटोलिका॥ २३॥
सोमापिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या।
स्थले कमलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका॥ २४॥
चण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका।
रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या॥ २५॥

कोशातकी नक्तमालं प्रियालश्च सुलोचनी ।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली ॥ २६ ॥
ईश्वरी शिवगन्धाच श्यामला वंशनालिका ।
जतुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका ॥ २७ ॥

वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः । जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका नालश्च जाली जातीच तथाच वटपत्रिका । कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुहं सपादिका ॥ मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके । सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपासुखाकरा रुजापहो वृद्धिकरी तथाचैव तु शल्यदा । पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महौषधी ॥

तथामलकवन्दाकं श्यामचित्रफला च या ।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ॥ ३२ ॥

केशिनी वृश्चिकालीच महानागा शतावरी । गरुडीच तथा वेगा जले कुमुदिनीतथा ॥ स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या । उन्मादिनीसोमराजीसर्वरत्नानिपार्थिव विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषतः । जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः ॥ रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावैतालनाशनाः । विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः ॥ सर्पतित्तिरगोमायुवस्र(क)मण्डकजाश्च ये । सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसंभवाः ॥

कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये ॥ ३७ ॥
इत्येवमेतैः सकलैरुपेतन्द्रव्यैश्च सर्वैः स्वपुरं सुरक्षितम् ।
राजा वसेत्तत्र गृहं सुशुभ्रं गुणान्वितं लक्षणसंप्रयुक्तम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् ।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच ।

शिरीषोदुम्बरशमीवीजपूरं घृतप्लुतम् ।
क्ष्युद्योगः कथितो राजन्! मासार्द्धं तु पुरातनैः ॥ २ ॥

कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा बिसम् । दूर्वाक्षीरघृतैर्मण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः
नरं शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत् । कल्माषवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ॥
गृहे त्रिरपसव्यन्तु क्रियते यत्र पार्थिव! । नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्या विचारणा

कार्पासस्था भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत् ।
सर्पनिर्वासने धूपः प्रशस्तः सततं गृहे ॥ ६ ॥

सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका । तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप!
दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः । विषाच्च रक्ष्योनृपतिस्तत्रयुक्तिंनिबोधमे
क्रीड़ानिमित्तं नृपति धारयेन्मृगपक्षिणः । अन्नं वै प्राक् परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च ॥
वस्त्रंपुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा । नापरीक्षितपूर्वन्तु स्पृशेदपि महामतिः ॥१०॥
स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्तः सोद्वेगश्च निरीक्षते । विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते॥

स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा ।
प्रच्छादयति चात्मानं लज्जते त्वरते तथा ॥ १२ ॥

भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप! । कण्डूयति च मूर्द्धानं परिलोड्याननन्तथा

क्रियासु त्वरितो राजन्! विपरीतास्वपि ध्रुवम् ।

एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत् ॥ १४ ॥

समीपैर्विक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयान्वितैः । इन्द्रायुधसवर्णन्तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम् ।१५

एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते । तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते ॥१६ ॥

सविषेऽऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः ।

निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा ॥ १७ ॥

विरज्यति चकोरस्य दृष्टिःपार्थिवसत्तम!। विकृतिश्च स्वरो याति कोकिलस्यतथानृप!

गतिस्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति । क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च ॥

विक्रोशतिशुकोराजन् !सारिकावमतेततः । चामीकरोऽन्यतोयातिमृत्युंकारण्डवस्तथा

मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः । हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति ॥

हर्षमायाति च शिखी विषसन्दर्शनान्नृप ! । अन्नञ्च सविषं राजंश्चिरेण च विपद्यते

तदा भवति निःश्राव्यं पक्षपर्युषितोपमम् ।

व्यापन्नरसगन्धश्च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम् ॥ २३ ॥

व्यञ्जनानान्तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः । ससैन्धवानां द्रव्याणांजायतेफेनमालिता

सस्यराजिश्च ताम्रा स्यात् नीला च पयसस्तथा ।

कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम ! ॥ २५ ॥

धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च ।

मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च ॥ २६ ॥

घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च सत्तनुः । हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्यच तथारुणा

फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते । प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा

मृदुता कठिनानां स्यात् मृदूनाञ्च विपर्ययः । सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता ॥

श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैवच । लोहानाञ्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता ॥

अनुलेपनगन्धानां माल्यानाञ्च नृपोत्तम । विगन्धता च विज्ञेयातथा राजन् !जलस्य तु

दन्तकाष्ठत्वचः श्यामास्तनुसत्वास्तथैव च । एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम!

तस्माद्राजा सदा तिष्ठेत् मणिमन्त्रौषधांगणैः ।

उक्तैः संरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ॥ ३३ ॥
प्रजातरोर्मूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ।
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र ! ॥ ३४ ॥
इतिश्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णनं नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऊनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्मवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

राजन् ! पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता ।
आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः ॥ १ ॥
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत् । रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामङ्कारयेत्सदा ॥
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नाप्तो मिथ्या प्रियं वदेत् ।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥ ३ ॥
नचास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः । तथा च विनयेदेनं यथा यौवनगोचरे ॥
इन्द्रियैर्नापकृष्येत सतां मार्गात्सुदुर्गमात् । गुणाधानमशक्यन्तु यस्य कर्तुं स्वभावयः ॥
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम् । अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते ॥
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् । आदौ स्वल्पे ततःपश्चात्क्रमेणाथ महत्स्वपि
मृगया पानमक्षांश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः । एतान्ये सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः
बहवो नरशार्दूल ! तेषां सङ्ख्या न विद्यते । दिवा स्वापं क्षितीशस्तु विशेषेणविवर्जयेत्
वाक्पारुष्यं न कर्तव्यं दण्डपारुष्यमेव च । परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता॥
अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत् । अर्थानां दूषणञ्चैकं तथार्थेषु च दूषणम् ॥ ११
प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।

अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥ १२ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च। अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥ १३ ॥

कामः क्रोधोमदोमानो लोभो हर्षस्तथैव च।

एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता ॥ १४ ॥

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः।

कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत् ॥ १५ ॥

कृत्वा च विजयन्तेषां शत्रून् बाह्यांस्ततो जयेत्।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः ॥ १६ ॥

गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत्। पितृपैतामहं मित्रममित्रञ्च तथा रिपोः ॥ १७॥
कृत्रिमञ्च महाभाग ! मित्रं त्रिविधमुच्यते। तथापि च गुरुः पूर्वं भवेत्तत्रापि चादृतः ॥
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च। कोशोमित्रञ्चधर्मज्ञ ! सप्ताङ्गंराज्यमुच्यते
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलंस्वामी प्रकीर्तितः। तन्मूलत्वात्तथाङ्गानांसतुरक्ष्यः प्रयत्नतः
षड़ङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः। अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्तु द्रोहमाचरतेऽल्पधीः ॥
बन्धस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता। न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते ॥
न भाव्यं दारुणेनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः। काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत्। भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत्
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशङ्गतम्। व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत् ॥
लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनी भवेत्। शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः ॥
जना विरागमायान्ति सदादुःसेव्यभावतः। स्मितपूर्वाभिभाषीस्यात्सर्वस्यैवमहीपतिः
बध्येष्वपि महाभाग ! भ्रुकुटिं न समाचरेत्। भाव्यंधर्मभृतांश्रेष्ठ ! स्थूललक्ष्येणभूभुजा
स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वाभवति मेदिनी। अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः ॥
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवम्भवेत्। रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥
अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते। राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम ! ॥
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम्। कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्यभूपतेः

नारब्धानि महाभाग ! तस्य स्याद्वसुधावशे । मन्त्रमूलंसदाराज्यंतस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः
कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा । मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनांसुखावहः
मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः । आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः । नयस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुन्धरा ॥
भवतीह महीपाले सदा पार्थिवनन्दन ! । नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह ॥
नारोहेद्विषमां नावमपरीक्षितनाविकम् । ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः
तानानयेद्वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः । यथा न स्यात् कृशीभावः प्रजानामनवेक्षया
तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता । मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥

सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ॥ ४१ ॥

तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृतं कर्मसहम्भवेत् । यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति ॥
सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत्फलम् । गृह्याद्धिरण्यं धान्यञ्च महीं राजासु रक्षिताम्

महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता ।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ॥ ४४ ॥
गोपितानि सदा कुर्यात् संयतानीन्द्रियाणि च ।
अजस्रमुपयोक्तव्यं फलन्तेभ्यस्तथैव च ॥ ४५ ॥

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे । तयोर्दैवमचिन्त्यञ्च पौरुषे विद्यते क्रिया ॥४६॥

एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु ।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतश्चापि परा च लक्ष्मीः ॥४७॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णनं नामोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

———

विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायय इति मनुप्रश्ने मत्स्योत्तरम् ।

मनुरुवाच ।

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद्ब्रवीहि मे ! अत्र मे संशयो देव ! च्छेतुमर्हस्यशेषतः

मत्स्य उवाच ।

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् । तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥२
प्रतिकूलन्तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते । मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ॥
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्विकं मनुजोत्तम ! । पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम्

कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥ ५ ॥

पौरुषेणाप्यते राजन् ! प्रार्थितव्यं फलं नरैः । दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषवर्जिताः
तस्मात्त्रिकालं संयुक्तं दैवन्तु सफलंभवेत् । पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलतिपार्थिव !
दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम ! । त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितंस्यात् फलावहम् ॥
कृष्टिवृष्टिसमा योगा दृश्यन्ते फलसिद्धयः । तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन
तस्मात्सदैव कर्तव्यं सधर्मं पौरुषं नरैः । विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ॥
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम्

त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्यानुत्थानयुक्तान् पुरुषान् हि लक्ष्मीः ।
अन्विष्य यत्नाद् वृणुयान्नृपेन्द्र ! तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ॥१२॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे राजधर्मवर्णने पुरुषार्थप्राधान्यवर्णनं नाम
विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्मवर्णने सामप्रयोगवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते !। लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम !

मत्स्य उवाच ।

सामभेदस्तथा दानदण्डश्च मनुजेश्वर !। उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव!।२॥
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु । द्विविधं कथितं साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते । तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम !॥
महाकुलीना ऋजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः । सामसाध्या न चातथ्यन्तेषु साम प्रयोजयेत्
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादि वर्णनम् । तथा तदुपचाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम्।
अनयैव तथा युक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम् । एवं साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्पराः

साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः ।
तथाप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम् ॥ ८ ॥

अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम् । असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत्।

ये शुद्धवंशाः ऋजवः प्रणीता धर्मे स्थिताः सत्यपरा विनीताः ।
ते सामसाध्याः पुरुषाः प्रदिष्टा मानोन्नता ये सततञ्च राजन् ॥१०॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णने सामप्रयोगवर्णनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्मवर्णने भेदप्रयोगवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

परस्परन्तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः । तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति । ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशन्ततः ॥२॥
आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद्दर्शयेद्भयम् । एवं हि भेदयेद्भिन्नान् यथावद्वशमानयेत् ॥३॥
संहितानि विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहाः । भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदाः ॥
स्वमुखेनाश्रयेद्भेदम्भेदम्परमुखेन च । परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम् ॥५ ॥
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्येहि भेदिताः । भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राज्ञार्थवादिभिः

अन्तःकोपो बहिःकोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम् ।
अन्तः कोपो महांस्तत्र नाशकः पृथिवीक्षिताम् ॥ ७ ॥

साम्ना न कोपोवाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभृतः । महिषीयुवराजभ्यां तथासेनापतेर्नृप!
अमात्यमन्त्रिणाञ्चैव राजपुत्रेतथैवच । अन्तः कोपो विनिर्दिष्टो दारुण पृथिवीक्षिताम्
बाह्यकोपे समुत्पन्ने सुमहत्यपि पार्थिवः । शुद्धान्तस्तु महाभाग! शीघ्रमेव जयी भवेत्
अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति । सोऽन्तःकोपःप्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्योमहीभृता
परतः कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा । ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ॥
रक्ष्यञ्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मनः । ज्ञातयः परितप्यन्ते सततं परितापिताः ॥१३
तथापि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा । ग्रहणं दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयङ्करः ॥
न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं वै श्वसन्ति च । ज्ञातिभिर्भेदनीयास्तु रिपवस्ते न पार्थिवैः

भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूताः स्वल्पेन सैन्येन निहन्तुमाजौ ।
सुसंहतानां हि तदस्तु भेदः कार्यो रिपूणां नयशास्त्रविद्भिः ॥१६ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे राजधर्मवर्णने भेदप्रयोगवर्णनंनाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्मवर्णने दानप्रयोगवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम् । सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित् ॥ १ ॥
न सोऽस्ति राजन् ! दानेनवशगो यो न जायते । दानेन वशगा देवाभवन्तीहसदानृणाम्
दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम ! । प्रियो हि दानवान् लोके सर्वस्यैवोपजायते
दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत् । दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान्।
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः । न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः।
अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान्यथा वशे । उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः
दानं श्रेष्ठतमं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् । दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ॥७ ॥

न केवलं दानपरा जयन्ति भूलोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ॥८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णने दानप्रयोगवर्णनं नाम
त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्मवर्णने दण्डोपायवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

न शक्या ये वशे कर्तुमुपायत्रितयेन तु ।
दण्डेन तान् वशीकुर्यात् दण्डो हि वशकृन्नृणाम् ॥ १ ॥
सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता । धर्मशास्त्रानुसारेण स सहायेन धीमता

तस्य सम्यक् प्रणयनं यथाकार्यंमहीक्षिता। वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निर्ममान्निष्परिग्रहान्
स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान्। समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्॥

आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान्।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मेण तिष्ठति ॥ ५ ॥

अदण्ड्यान् दण्डयेद्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकञ्च प्रपद्यते
तस्माद्राज्ञा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः। दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया ॥७
यत्र श्यामो लोहिताक्षोदण्डश्चरति निर्भयः। प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधुपश्यति
बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवायतः। मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्डं न पातयेत्।
देवदैत्योरगगणाः सर्वे भूतपतत्रिणः। उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत् ॥१०॥
एष ब्रह्माभिशापेषु सर्वप्रहरणेषु च। सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसाये च तिष्ठति ॥ ११ ॥
पूज्यन्ते दण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डिनः। न ब्रह्माणं विधातारं न पूषार्यमणावपि
यजन्ते मानवाः केचित् प्रशान्ताः सर्वकर्मसु। रुद्रमग्निञ्च शक्रञ्च सूर्याचन्द्रमसौ तथा

विष्णुं देवगणांश्चान्यान् दण्डिनः पूजयन्ति च।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥१४॥

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः। राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते ॥
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि। एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥१६।
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डं न पातयेत्। यस्माद्दण्डो दमयति अदण्ड्यान्दमयत्यपि

दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥ १७ ॥
दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागोधृतः शूलधरस्य यज्ञे।
दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं वरं शिशूनाञ्च भयाद्बलस्य ॥१८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णने दण्डोपायवर्णनंनाम
चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्मवर्णने राज्ञो देवसाम्यत्ववर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा । देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ॥ १ ॥
तेजसा यदमुं कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम् । ततो भवति लोकेषु राजाभास्करवत्प्रभुः
यदास्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति । नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमाः ॥
यथा यमः प्रियद्वेष्येप्राप्ते कालेप्रयच्छति । तथा राज्ञा विधातव्याःप्रजास्तद्धि यमव्रतम्
वरुणेन यथा पाशैर्बद्धएव प्रदृश्यते । तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥५॥
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः । तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृपः
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यंस्यात्सर्वकर्मसु । दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाग्नेयव्रतेस्थितः ॥
यथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ।
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ ८ ॥
चन्द्रस्याग्नेःपृथिव्याश्चतेजोव्रतं नृपश्चरेत् । वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोप्यथवर्षति
तथाभिवर्षेत्स्वंराज्यंकाममिन्द्रव्रतंस्मृतम् । अष्टौमासान्यथादित्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यकर्मव्रतं हि तत् ॥ १० ॥
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः । तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥११

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे राजधर्मवर्णने राज्ञः देवसाम्यत्ववर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्मवर्णने दण्डविधानवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

निक्षेप्यस्य समं मूल्यं दण्डयो निक्षेपभुक्तथा । वस्त्रादिकस्य [illegible] तदा धर्मोन हीयते

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षेप्य याचते ।
तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा द्विगुणन्धनम् ॥ २ ॥
उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः । स सहायः स हन्तव्यः प्रकामं विविधैर्वधैः ॥
यो याचितं समादाय न तद्द्याद्यथाक्रमम् ।
स निगृह्य बलाद्दाप्यो दण्ड्यो वा पूर्वसाहसम् ॥ ४ ॥
अज्ञानाद्यदि वा कुर्यात्परद्रव्यस्य विक्रयम् । निर्दोषो ज्ञानपूर्वन्तु चोरवद्वधमर्हति ॥५॥
मूल्यमादाय यो विद्यां शिल्पं वा न प्रयच्छति ।
दण्ड्यः समूल्यं सकलं धर्मज्ञेन महीक्षिता ॥६॥
द्विजभोज्ये तु सम्प्राप्ते प्रतिवेश्ममभोजयन् । हिरण्यमाषकं दण्ड्यः पापे नास्ति व्यतिक्रमः
आमन्त्रितो द्विजो यस्तु वर्तमानश्च स्वे गृहे ।
निष्कारणं न गच्छेद्यः स दाप्योऽष्टशतं दमम् ॥ ८ ॥
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः । भृत्यश्चाज्ञां न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम्
स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयश्चास्यवेतनम् । संगृहीतं न दद्याद्यः काले वेतनमेव च ॥
अकाले तु त्यजेद् भृत्यं दण्ड्यःस्याच्छतमेव च ।
यो ग्रामदेशसस्यानां कृत्वा सत्येन सम्विदम् ॥ ११ ॥
विसम्वदेन्नरो लोभात् तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।
क्रीत्वा विक्रयवान् किञ्चित् यस्येहानुशयो भवेत् ॥ १२ ॥
सोऽन्तर्दशाहात्तत्साम्यन्दद्याच्चैवाददीत वा । परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नैव दापयेत् ॥
आददन्विददंश्चैव राज्ञादण्ड्यः शतानि षट् । यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डंस्वयं षण्णवतिं पणान् । अकन्यैवेतियः कन्यां ब्रूयाद्दोषेणमानवः
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ।
यस्त्वन्यां दर्शयित्वान्यां वोढुः कन्यां प्रयच्छति ॥ १६ ॥
उत्तमन्तस्य कुर्वीत राजा दण्डं तु साहसम् । वरोदोषाननाख्याय यः कन्यां वरयेदिह॥
दत्ताप्यदत्ता सा तस्य राज्ञाद्ण्ड्यः शतद्वयम् । प्रदायकन्यांयोऽन्यस्मैपुनस्तांसंप्रयच्छति

दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः। तत्प्रकारेण वा वाचा युक्तं पण्यमसंशयम्
लुब्धोह्यन्यत्र विक्रेताषट्शतं दण्डमर्हति। दुहितुः शुल्कविक्रेता सत्यङ्कारात्तुसन्त्यजेत्
द्विगुणं दण्डयेदेनमिति धर्मो व्यवस्थितः। मूल्यैकदेशं दत्वा तु यदि क्रेता धनन्त्यजेत्

स दण्ड्यो मध्यमं दण्डं तस्य पण्यस्य मोक्षणम्।

दुह्याद्धेनुश्च यः पालो गृहीत्वा भक्तवेतनम्॥ २२॥

सतु दण्ड्यःशतं राज्ञा सुवर्णञ्चाप्यरक्षिता। दण्डं दत्वा तु विरमेत्स्वामितःकृतलक्षणः
बद्धः कार्ष्णायसैः पाशैस्तस्यकर्म करोभवेत्। धनुः शतपरीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः
द्विगुणं त्रिगुणं वापि नगरस्य तु कल्पयेत्। वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत्
छिद्रं वा वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम्। यत्रापरिकृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि
न तत्र कारयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणे। अनिर्दशाहाद्गां सूतां वृषं देवपशुं तथा॥ २७॥
छिद्रंवा वारयेत्सर्वं न दण्ड्या मनुरब्रवीत्। अतोऽन्यथा विनष्टस्य दशांशं दण्डमर्हति
पाल्यस्य पालकस्वामी विनाशे क्षत्रियस्य तु। भक्षयित्वोपविष्टस्तु द्विगुणं दण्डमर्हति
विशं दण्ड्याद्दशगुणं विनाशे क्षत्रियस्यतु। गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वापि समाहरन्।

शतानि पञ्चदण्डःस्यादज्ञानाद् द्विशतोदमः।

सीमाबन्धनकाले तु सीमान्तं यो हि कारयेत्॥ ३१॥

तेषां संज्ञां ददानस्तु जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात्। मथैनामपि यो दद्यात्संविदंवाधिगच्छति
उत्तमं साहसं दण्ड्य इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्। वर्णानामानुपूर्व्येण त्रयाणामविशेषतः
अकार्यकारिणः सर्वान् प्रायश्चित्तानि कारयेत्। असत्येन प्रमाप्य स्त्रीशूद्रहत्याव्रतंचरेत्
दानेन च धनेनैकं सर्पादीनामशक्नुवन्। एकैकं स चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये।
फलदानाञ्च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्। गुल्मवल्ली लतानाञ्च पुष्पितानाञ्चवीरुधाम्
अस्थिमताञ्च सत्वानां सहस्रस्य प्रमापणे। पूर्णेवानस्य वस्थातुं शूद्रहत्या व्रतञ्चरेत्।
किञ्चिद्देयञ्च विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे। अनस्थ्याञ्चैवहिंसायां प्राणायामै विशुध्यति
अन्नादिजानां सत्वानां रसजानाञ्च सर्वशः। फलपुष्पोद्भतानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम्
कृष्टानामोषधीनाञ्च जातानाञ्च स्वयं वने। वृथाच्छेदन गच्छेत दिनमेकं पयोव्रती॥

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्याद्देनोहिंसा समुद्भवम् । स्तेयकर्त्रपहर्तॄणां श्रूयतां व्रतमुत्तमम् ॥४१॥

धान्यान्न धनचौर्याणि कृत्वा कामं द्विजोत्तमः ।
सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥ ४२ ॥

मनुष्याणान्तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य तु । कूपवापीजलानान्तु शुद्धिश्चान्द्रायणंस्मृतम्

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रन्तन्निर्यात्य विशुद्धये ॥ ४४ ॥

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य तु । पुष्पमूलफलानान्तुपञ्चगव्यंविशोधनम् ॥४५

तृणकाष्ठद्रुमाणान्तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चैलचर्मामिषाणान्तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ४६ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्यच । अयःकांस्योपलानाञ्च द्वादशाहं कणान्नभुक्
कार्पासकीटवर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगन्धौषधीनाञ्च रज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥
एतैर्व्रतैरपोहन्ति पापं स्तेयकृतं द्विजः । अगम्यागमनीयन्तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥ ४९ ॥

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु ।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वंत्यजासु च ॥ ५० ॥

पितृष्वस्रीयभगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुरार्यायाङ्गत्वा चान्द्रायणं चरेत्

एतास्त्रियस्तु भार्यार्थे नोपगच्छेत्तु बुद्धिमान् ।
ज्ञातींश्च मातुलेयास्ते पतिता उपयन्ति ये ॥ ५२ ॥

अमानुषीषु पुरुषो उदक्यायामयोनिषु । रेतःसिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्॥
मैथुनञ्च समालोक्य पुंसि योषिति वा द्विजः । गोयानेऽप्सुदिवाचैव सवासास्नानमचरेत्

चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यन्तु गच्छति ॥ ५५ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि । यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनाञ्चारयेद्व्रतम् ॥

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपमन्त्रिता ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणञ्चैव तत्तस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ५७ ॥

यःकरोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः। तद्भैक्षभुक् जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति॥
एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः। पतितैः संप्रयुक्तानामिमां शृणुत निष्कृतिम्
संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनादनुयानाशनासनात् ६०
यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः। स तस्यैव व्रतं कुर्यात् तत्संसर्गविशुद्धये॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञातिभिर्गुरुसन्निधौ॥ ६२॥

दासीघटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्सदा। अहोरात्रमुपासीरन् नाशौचं बान्धवैः सह॥
निवर्त्तयेरंस्तस्मात्तु सम्भाषणसहासनम्। दायादस्य प्रमाणञ्च यात्रामेवञ्च लौकिकीम्

ज्येष्ठभावान्निवर्तेत ज्यैष्ठ्यावाप्तं च च यत्पुनः।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यो वा स्याद्गुणतोऽधिकः॥ ६५॥
स्थापिताश्चापि मर्यादां ये भिन्द्युः पापकर्मिणः।
सर्वे पृथक् दण्डनीया राज्ञा प्रथमसाहसम्॥ ६६॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति। वैश्यस्तु द्विशतं राजन्! शूद्रस्तु वधमर्हति

पञ्चाशद् ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्यस्याप्यर्द्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः॥ ६८॥

क्षत्रियस्याप्नुयाद्वैश्यः साहसं पुनरेव च। शूद्रः क्षत्रियमाक्रुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात्
पञ्चाशत् क्षत्रियो दण्ड्यस्तथा वैश्याभिशंसने। शूद्रे चैवार्द्धपञ्चाशत्तथा धर्मो न हीयते
वैश्यस्याक्रोशने दण्ड्यःशूद्रश्चोत्तमसाहसम्। शूद्राक्रोशे तथावैश्यः शतार्द्धं दण्डमर्हति
सवर्णाक्रोशने दण्ड्यस्तथा द्वादशकं स्मृतम्। वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत्॥

एकजातिर्द्विजातिन्तु वाचा दारुणया क्षिपन्।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यः प्रथमो हि सः॥ ७३॥

नामजातिगृहं तेषामभिद्रोहेण कुर्वतः। निक्षेप्योऽयोमयःशंकुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः॥
धर्मोपदेशं शूद्रस्तु द्विजानामभि कुर्वतः। तप्तमासेचयेत् तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः॥
श्रुतिंदेशञ्च जातिञ्च कर्म शारीरमेव च। वितथेन ब्रुवन् दण्ड्यो राज्ञा द्विगुणसाहसम्

यस्तु पातकसंयुक्तः क्षिपेद्वर्णान्तरं नरः। उत्तमं साहसं दण्डः पात्यस्तस्मिन्यथाक्रमम्
राज्ञो निवेशनियमं वितथं यान्ति वै मिथः। सर्वे द्विगुणदण्ड्यास्ते विप्रलम्भान्नृपस्य तु

प्रीत्या मयास्याभिहितं प्रमादेनाथ वा वदेत्।
भूयो नचैवं वक्ष्यामि स तु दण्डार्द्धभाग् भवेत् ॥ ७६ ॥
काणं वाप्यथ वा खञ्जमन्धं चापि तथाविधम्।
तथैवापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणं धनम् ॥८० ॥

मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम्। आक्रोशयन्शतं दण्ड्यः पन्थानञ्चार्थयन् गुरोः

गुरुवर्ज्यन्तु मार्गार्हं यो हि मार्गं न यच्छति।
स दाप्यः कृष्णलं राज्ञस्तस्य पापस्य शान्तये ॥ ८२ ॥

एकजातिर्द्विजातिन्तु येनाङ्गेनापराध्नुयात्। तदेव च्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन् ॥
अवनिष्ठीवतो दर्पात् द्वावोष्ठौच्छेदयेन्नृप! । अवमूत्रयतोमेढ्रमपशब्दयतो गुदम् ॥८४॥
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः। कट्यां कृताङ्कोनिर्वास्यः स्फिचंवाप्यस्यकर्तयेत्
केशेषु गृह्णतोहस्तं छेदयेदविचारयन्। पादयो र्नासिकायाञ्च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥८६।

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः।
मांसभेत्ता च षण्णिष्कान् निर्वास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ ८७ ॥

अङ्गभङ्गकरस्याङ्गं तदेवापहरेन्नृपः। दण्डपारुष्यकृद्दण्ड्यौ समुत्थानव्ययन्तथा ॥ ८८॥
अर्द्धपादकरः कार्यो गोगजाश्वोष्ट्रघातकः। पशुक्षुद्रमृगाणाञ्च हिंसायां द्विगुणो दमः
पञ्चाशच्च भवेद्दण्ड्यस्तथैव मृगपक्षिषु। कृमिकीटेषु दण्ड्यःस्याद्रजतस्य च माषकम् ॥

तस्यानुरूपं मौल्यञ्च प्रदद्यात् स्वामिने तथा।
स्वस्वामिकानां सकलं शेषाणां सकलं तथा ॥ ९१ ॥

वृक्षन्तु सफलंच्छित्वा सुवर्णं दण्डमर्हति। द्विगुणं दण्डयेच्चैनं पथिसीम्नि जलाशये
छेदनादफलस्यापि मध्यमं साहसं स्मृतम्। गुल्मवल्लीलतानाञ्च सुवर्णस्य च माषकम्

वृथाच्छेदी तृणस्यापि दण्ड्यः कार्षापणं भवेत्।
त्रिभागं कृष्णला दण्ड्याः प्राणिनस्ताडने तथा ॥ ९४ ॥

देशकालानुरूपेण मूल्यं राजा द्रुमादिषु । तत्स्वामिनस्तथा दण्ड्यादण्डमुक्तन्तुपार्थिव !
यत्रातिवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्यतु । तत्रस्वामीभवेद्दण्ड्योनाप्तश्चेत्प्राजकोभवेत्
प्राजकश्च भवेदाप्तःप्राजको दण्डमर्हति । नास्ति दण्डश्च तस्यापि तथा वै हेतुकल्पकः

द्रव्याणि यो हरेद् यस्य जानतोऽजानतोऽपि वा ।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्यात्ततो दमम् ॥ ६८ ॥
यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिन्द्याच्च तां प्रपाम् ।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च सम्प्रतिपादयेत् ॥ ६६ ॥

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकंवधः । शेषेऽप्येकादशगुणंतस्यदण्डंप्रकल्पयेत्
तथा भक्ष्यान्नपानानां न तथाप्यधिके वधः । सुवर्णरजतादीनामुत्तमानाञ्च वाससाम् ॥
पुरुषाणां कुलीनानां नारीणाञ्च विशेषतः । महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥
मुख्यानाञ्चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति । दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य रसस्य च ॥
वेणु वैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च । मृण्मयानाञ्च सर्वेषां मृदो भस्मन एव च ॥

कालमासाद्य कार्य्यञ्च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ।
गोषु ब्राह्मणसंस्थासु महिषीषु तथैव च ॥ १०५ ॥

अश्वापहारकश्चैव सद्यः कार्योऽर्द्धपादकः । सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्यगुडस्य च
मत्स्यानां पक्षिणाञ्चैव तैलस्यचघृतस्यच । मांसस्यमधुनश्चैव यच्चान्यद्वस्तुसम्भवम्

अन्येषां लवणादीनां मद्यानामोदनस्य च ।
पक्वान्नानाञ्च सर्वेषान्तन्मूल्याद् द्विगुणोदमः ॥ १०८ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीलतासु च । अन्नेषु परिपूर्णेषु दण्डः स्यात्पञ्चमाषकम् ।

परिपूर्णेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥ १०६ ॥

निरन्वये शतं दण्ड्यः सान्वये द्विशतन्दमः । येन येन यथाङ्गेन स्तेनोऽन्येषु विचेष्टते ॥
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः । द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके
त्रपुसोर्वारुकौ द्वौ च तावन्मात्रं फलेषु च। तथाच सर्वधान्यानां मुष्टिग्राहेण पार्थिव!
शाके शाकप्रमाणेन गृह्णमाणेन तुष्यति । वानस्पत्यं फलं मूलं दार्व्वर्थं तथैव च ॥

तृणङ्गोऽभ्यवहारार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् । अदेववारिजं पुष्पं देवतार्थं तथैव च ॥११४॥

आददानः परक्षेत्रात् न दण्डं दातुमर्हति ।

श्रृङ्गिणं नखिनं राजन् ! दंष्ट्रिणञ्च वधोद्यतम् ॥ ११५॥

यो हन्यान्न स पापेन लिप्यते मनुजेश्वर! । गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिवधे दोषो हन्तु र्भवति कश्चन ॥

प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ।

गृहक्षेत्राभिहर्तारस्तथागम्याभिगामिनः ॥ ११८ ॥

अग्निदोगरदश्चैव तथा चाभ्युद्यतायुधः । अभिचारन्तु कुर्वाणो राजगामि च पैशुनम् ॥

एते हि कथिता लोके धर्मज्ञैराततायिनः। परस्त्रीणान्तु सम्भाषे तीर्थेऽरण्ये गृहेऽपिवा

नदीनाञ्चैव सम्भेदेः स संग्रहणमाप्नुयात् । न सम्भाषेत्सहस्त्रीभिःप्रतिषिद्धःसमाचरेत्

प्रतिषिद्धे समाभाष्य सुवर्णं दण्डमर्हति । नैव चारणदारेषुविधिरात्मोपजीविषु ॥१२२

सज्जयन्ति मनुष्यैस्ता निगूढं वाचरन्त्युत । किञ्चिदेवतुदाप्यःस्यात्सम्भाषेणापचारयन्

प्रेष्यासु चैव सर्वासु गृहप्रव्रजितासु च । योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति

सकामां दूषमाणस्तु प्राप्नुयाद्द्विशतं दमम् । यश्च संरक्षकस्तत्र पुरुषः स तथा भवेत्

पारदारिकवद्दण्ड्यो योऽपि स्यादवकाशदः । बलात्संदूषयेद्यस्तु परभार्यां नरःक्वचित् ॥

वधो दण्डो भवेत्तस्य नापराधो भवेत्स्त्रियः ।

रजस्तृतीयं या कन्या स्वगृहे प्रतिपद्यते ॥ १२७ ॥

अदण्ड्या सा भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम् ।

स्वदेशे कन्यकान्दत्त्वा तामादाय तथा व्रजेत् ॥ १२८ ॥

परदेशे भवेद्वध्यः स्त्रीचोरः स यतो भवेत् । अद्रव्यां मृतपत्नीन्तु संगृह्णन्नापराध्यति

सद्रव्यां तां संग्रहीता दण्डन्तु क्षिप्रमर्हति। उत्कृष्टंयाभजेत्कन्या देया तस्यैवसा भवेत्

यच्चान्यं सेवमानाञ्च संयतां वासयेद्गृहे । जघन्यमुत्तमा नारी सेवमाना तथैव च ॥

भर्त्तारं लङ्घयेद्या स्त्री ज्ञातिभि र्बलदर्पिता ।

ताञ्च निष्कासयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ १३२ ॥

हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।
वासयेत् स्वैरिणीं नित्यं सवर्णेनाभिदूषिताम् ॥ १३३ ॥

ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् । वासश्चमलिनंनित्यंशिखांसंप्राप्नुयाद्दश
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः क्षत्रविट्शूद्रयोषितः । ब्रह्मदाप्यो भवेद्राजादण्डमुत्तमसाहसम्
वैश्यागमे च विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे । मध्यमं प्रथमं वैश्योदण्ड्यःशूद्रागमाद्भवेत्
शूद्रः सवर्णागमने शतं दण्ड्योमहीक्षिता । वैश्यस्तुद्विगुणंराजन् ! क्षत्रस्तुत्रिगुणन्तथा
ब्राह्मणश्च भवेद्दण्ड्यस्तथाराजंश्चतुर्गुणम् । अगुप्तासुभवेद्दण्डःस्वगुप्तास्वधिको भवेत् ॥

मातापितृष्वसाश्वश्रूर्मातुलानी पितृव्यजा ।
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री गर्भिणी तत्सखी तथा ॥ १३६ ॥
भ्रातृभार्यागमे पूर्वाद् दण्डस्तु द्विगुणो भवेत् ।
चण्डालीश्च श्वपाकीश्च गच्छन् वधमवाप्नुयात् ॥ १४० ॥

तिर्यग्योनिश्च गोवर्ज्यं मैथुनं यो निषेवते । वपनं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्याश्च यवसादिकम्

सुवर्णश्च भवेद्दण्ड्यो गां व्रजन्मनुजोत्तम ! ।
वेश्यागामी द्विजोदण्ड्यो वेश्याशुल्कसमस्पणम् ॥ १४२ ॥

गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति । वेतनं द्विगुणं दद्याद्दण्डश्च द्विगुणं तथा
अन्यमुद्दिश्ययोवेश्यांनयेदन्यस्यकारयेत् । तस्यदण्डोभवेद्राजन् ! सुवर्णस्यच माषकम्

नीत्वा भोगान्न यो दद्याद्दाप्यो द्विगुणवेतनम् ।
राज्ञश्च द्विगुणं दण्डस्तथा धर्म्मो न हीयते ॥ १४५ ॥
बहूनां व्रजतामेकां सर्वे ते द्विगुणन्दमम् ।
दद्युः पृथक् पृथक् सर्वे दण्डश्च द्विगुणं परम् ॥ १४६ ॥
न माता न पिता न स्त्री न ऋत्विग् याज्यमानवाः ।
अन्योन्यं पतितास्त्याज्या योगे दण्ड्याः शतानि षट् ॥ १४७ ॥

पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथञ्चन । गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी
अधीयानोऽप्यनध्याये दण्ड्यः कार्षापणत्रयम् । अध्यापकश्चद्विगुणं तथाचारस्य लङ्घने

अनुक्तस्य भवेद्दण्डःसुवर्णस्य च कृष्णलम् । भार्यापुत्रश्चदासश्चशिष्योभ्राताचसोदरः
कृतापराधास्ताड्याःस्यू रज्वा वेणुदलेन वा । पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गं कथञ्चन ॥
अतोऽन्यथा प्रहरतः प्राप्तःस्याच्चोरकिल्विषम् । दूतीं समाह्वयंश्चैवयोनिषिद्धंसमाचरेत्

आच्छन्नं वा प्रकाशं वा स दण्ड्यः पार्थिवेच्छया ।
वासांसि फलकैः श्लक्ष्णैर्निर्णिज्याद्रजकः शनैः ॥ १५३ ॥

अतोऽन्यथाहि कुर्वंस्तु दण्ड्यः स्याद्रुक्ममाषकम् । रक्षास्वधिकृतैश्चैवप्रदेयंयैर्विलुप्यते
कर्षकेभ्योऽर्थमादाय यः कुर्यात्करमन्यथा । तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्

ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ।
निर्घृणाः क्रूरमनसः सर्वे कर्मापराधिनः ॥ १५६ ॥

धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः । कूटशासनकर्तॄंश्चप्रकृतीनाञ्च दूषकान्

स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च वध्या द्विट्सेविनस्तथा ।
अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा ॥ १५८ ॥

तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् । ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च तस्करो गुरुतल्पगः
एतान्सर्वान्पृथक्हिंस्यात्महापातकिनोनरान् । महापातकिनोवध्याब्राह्मणन्तुविवासयेत्
कृतचिह्नं स्वदेशाच्च शृणु चिह्नाकृतिन्ततः । गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः
स्तेने तु श्वपदन्तद्वद्ब्रह्महण्यशिराःपुमान् । असम्भाष्याह्यसम्भोज्याअसंवाह्याविशेषतः
त्यक्तव्याश्चतथाराजन्! ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः।महापातकिनोवित्तमादायनृपतिःस्वयम्
अप्सुप्रवेशयेद्दण्डवरुणायोपपादयेत् । सहोढं न विना चोरं घातयेद्धार्मिको नृपः ॥
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् । ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चोराणां भक्ष्यदायकाः ॥
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपिघातयेत् । राष्ट्रेषु राज्ञाधिकृताःसामन्ताश्चैवदूषकाः
अभ्यघातेषु मध्यस्थाः क्षिप्रंशास्यास्तु चोरवत् । ग्रामघाते मठाभङ्गे पथिमोषाभिमर्दने

शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ।
राज्ञः कोशापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु संस्थिताम् ॥ १६८ ॥

अरीणामुपजर्तॄंश्च घातयेद्विविधैर्वधैः। सन्धि कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौकुर्वन्ति तस्कराः

तेषां छित्वा नृपोहस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत्। तड़ागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन तु
यस्तु पूर्वंनिविष्टंस्यात्तड़ागस्योदकं हरेत्। आगमञ्चाप्यपांभिन्द्यात्सदाप्यःपूर्वशासनम्
कोष्ठागारायुधागारदेवागारविभेदकान्। पापान् पापसमाचारान् घातयेच्छीघ्रमेव च॥
समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि। स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तत्त्वमेध्यञ्चशोधयेत्

अजङ्गमोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव च।
परिभाषणमर्हन्ति न च शोध्यमिति स्थितिः॥ १७४॥

प्रथमं साहसं दण्ड्योयश्च मिथ्या चिकित्सते। परुषे मध्यमं दण्डमुत्तमञ्च तथोत्तमे॥
छत्रस्य ध्वजयष्टीनां प्रतिमानाञ्च भेदकाः। प्रतिकुर्युस्ततः सर्वे पञ्चदण्ड्याः शतानि च
अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा। मणीनामपि भेदेन दण्ड्यः प्रथमसाहसम्॥
समञ्च विषमञ्चैव कुरुते मूल्यतोऽपि वा। समाप्नुयात्स वै पूर्वं दममध्यममेव च॥
बन्धनानि च सर्वाणि राजमार्गेनिवेशयेत्। कर्षन्तो यत्र दिश्यन्ते विकृताःपापकारिणः

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखानाञ्च भेदकम्।
द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात्॥ १८०॥

मूलकर्माभिचारेषु कर्तव्यो द्विशतोदमः। अबीजविक्रयी यश्च बीजोत्कर्षक एव च॥
मर्यादाभेदकश्चापि विकृतं बन्धमाप्नुयात्। सर्वसङ्करपापिष्ठं हेमकारं नराधिप!॥
अन्याये वर्तमानञ्च च्छेदयेल्लवशः क्षुरैः। द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम्॥
द्रव्याणां दूषकोयस्तु प्रतिच्छन्नस्य विक्रयी। मध्यमं प्राप्नुयाद्दण्डं कूटकर्त्तातथोत्तमम्

राजा पृथक् पृथक् कुर्याद्दण्डं चोत्तमसाहसम्।
शास्त्राणां यज्ञतपसां देशानां क्षेपको नरः॥ १८५॥

देवतानां सतीनाञ्च उत्तमं दण्डमर्हति। एकस्य दण्डपारुष्ये बहूनां द्विगुणोदमः॥१८६
कलहो यद्गतोदाप्यो दण्डश्च द्विगुणस्ततः। मध्यमं ब्राह्मणं राजा विषयाद्विप्रवासयेत्
लशूनञ्च पलाण्डुञ्च शूकरं ग्रामकुक्कुटम्। तथा पञ्चनखं सर्वं भक्ष्यादन्यत्तु भक्षयेत्॥

विवासयेत् क्षिप्रमेव ब्राह्मणं विषयात् स्वकात्।
अभक्ष्यभक्षणे दण्ड्यः शूद्रो भवति कृष्णलम्॥ १८९॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां चतुस्त्रिद्विगुणं स्मृतम्। यःसाहसंकारयति सदण्ड्योद्विगुणन्दमम्
यस्त्वेवमुक्त्वाऽहन्दाता कारयेत्स चतुर्गुणम्। सन्दिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकः॥
पञ्चाशत्पणिको दण्डस्तत्र कार्यो महीक्षिता।
अस्पृश्यश्चास्पृशन्नार्य्यो ह्ययोग्योऽयोग्यकर्मकृत्॥ १६२॥
पुंस्त्वहर्त्तापशूनाञ्च दासीगर्भविनाशकृत्। शूद्रप्रव्रजितानाञ्च दैवे पैत्र्ये च भोजकः॥
अव्रजन् वाढमुक्त्वा तु तथैव च निमन्त्रणे। एते कार्षापणशतं सर्वे दण्ड्या महीक्षिता
दुःखोत्पादिगृहे द्रव्यं क्षिपेदन्धस्यकृष्णलम्। पितापुत्रविरोधेच साक्षिणांद्विशतोदमः
स्यान्नरस्य तथार्य्यः स्यात्तस्याप्यष्टशतो दमः॥ १६५॥
तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च। एभिश्च व्यवहर्ता च स दण्ड्यो दममुत्तमम्
विषाग्निदाम्पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्। विकर्णनासिकांव्योष्ठीं कृत्वागोभिःप्रमापयेत्
खलस्य दाहका येच येच क्षेत्रस्य वेश्मनः। राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तेकटाग्निना
ऊनं वाप्यधिकञ्चापि लिखेद्यो राजशासनम्। परदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः
अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्ड उत्तमसाहसः। क्षत्रियं मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्द्धकम्॥
मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गान्तु ताडयतस्तथा। राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः॥२०१॥
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः।
तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद्‌ द्विगुणन्दमम् २०२॥
आह्वानकरो मध्यः स्यादनाह्वाने तथाह्वयन्। दण्डिकस्य च योहस्तादभियुक्तःपलायते
हीनपुरुषकारेण तं दण्ड्याद्दाण्डिकोधनम्। प्रेष्यापराधात्प्रेष्यस्तु स दण्ड्याश्चार्द्धमेवच
दण्डार्थं नियमार्थञ्च नीयमानेषु बन्धनम्। यदि कश्चित्पलायेत दण्डश्चाष्टगुणो भवेत्
अनिन्दिते विवादे तु नखरोमावतारणम्। कारयेद्यः स पुरुषो मध्यमं दण्डमर्हति॥
बन्धनञ्चाप्यवध्यस्य बलान्मोचयते तु यः। वन्ध्यं विमोचयेद्यस्तु दण्डद्द्विगुणभाग्भवेत्
दुर्दृष्टव्यवहाराणां सभ्यानां द्विगुणोदमः। राज्ञा त्रिंशद्गुणोदण्डः प्रक्षेप्य उदके भवेत्
अल्पदण्डेऽधिकं कुर्याद्विपुले चाल्पमेव च।
ऊनाधिकन्तु तं दण्डं सभ्यो दद्यात् स्वकाद् गृहात्॥ २०६॥

यावानवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य रक्षणे। अधर्मो नृपतेर्दृष्टस्तथा बध्यस्य मोक्षणे॥
ब्राह्मणं नैव हन्यात्तु सर्वपापेष्ववस्थितम्। प्रवासयेत् स्वकाद्राष्ट्रात्समग्रधनसंयुतम्॥
न जातु ब्राह्मणंवध्यात् पातकं त्वधिकं भवेत्। यस्मात्तस्मात्प्रयत्नेनब्रह्महत्यांविवर्जयेत्
अदण्ड्यान्दण्डयेद्राजादण्ड्यांश्चैववाप्यदण्डयन्। अयशोमहदाप्नोतिनरकञ्चाधिगच्छति

ज्ञात्वापराधं पुरुषस्य राजा कालं तथा चानुमतं द्विजानाम्।
दण्ड्येषु दण्डं परिकल्पयेत्तु यो यस्य युक्तः स समीक्ष्य कुर्यात्॥२१४॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे राजधर्मवर्णने दण्डविधानवर्णनं नाम
षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुमत्स्यसंवादे त्रिविधमहोत्पातेषु शान्तिविधानम्

मनुरुवाच।

दिव्यान्तरिक्षभौमेषु या शान्तिरभिधीयते। तामहं श्रोतुमिच्छामि महोत्पातेषुकेशव!

मत्स्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामित्रिविधामद्भुतादिषु। विशेषेणतु भौमेषु शान्तिःकार्य्यातथाभवेत्

अभया चान्तरिक्षेषु सौम्या दिव्येषु पार्थिव!।
विजिगीषुः परं राजन्! भूतिकामस्तु यो भवेत्॥ ३॥

विजिगीषुः परानेवमभियुक्तस्तथा परैः। तथाभिचारशङ्कायां शत्रूणामभिनाशने॥ ४॥
भये महति संप्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते। राजयक्ष्माभिभूतस्य क्षतक्षीणस्य चाप्यथ।
सौम्या प्रशस्यते शान्तिर्यज्ञकामस्य चाप्यथ। भूकम्पे च समुत्पन्ने प्राप्तेचान्नक्षयेतथा
अतिवृष्ट्यामनावृष्ट्यां शलभानां भयेषु च। प्रमत्तेषु च चोरेषु वैष्णवी शान्तिरिष्यते
पशूनां मारणे प्राप्ते नराणामपि दारुणे। भूतेषु दृश्यमानेषु रौद्री शान्तिस्तथेष्यते॥८॥
वेदनाशे समुत्पन्ने जने जाते च नास्तिके। अपूज्यपूजने जाते ब्राह्मी शान्तिस्तथेष्यते

भविष्यत्यभिषेके च परचक्रभयेऽपि च। स्वराष्ट्रभेदेऽरिवधे रौद्री शान्तिः प्रशस्यते ॥
व्यहातिरिक्ते पवने भक्ष्ये सर्वविगर्हिते। वैकृते वातजे व्याधौ वायवी शान्तिरिष्यते ॥
अनावृष्टिभये जाते प्राप्ते विकृतिवर्षणे। जलाशयविकारेषु वारुणी शान्तिरिष्यते ॥१२॥
अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथैव च। जाते प्रसववैकृत्ये प्राजापत्या महाभुज ! ॥
उपस्कराणांवैकृत्ये त्वाष्ट्रीपार्थिवनन्दन !। बालानां शान्तिकामस्य कौमारीचतथानृप !
कुर्याच्छान्तिमथाग्नेयीं सम्प्राप्ते वह्निवैकृते। आज्ञाभङ्गे तु सञ्जाते तथा भृत्यादिसङ्क्षये
अश्वानांशान्तिकामस्यतद्विकारेसमुत्थिते। अश्वानांकामयानस्यगान्धर्वीशान्तिरिष्यते
गजानां शान्तिकामस्यतद्विकारे समुत्थिते। गजानांकामयानस्य शान्तिराङ्गिरसीभवेत्
पिशाचादिभये जाते शान्तिर्वै नैर्ऋती स्मृता। अपमृत्युभये जाते दुःस्वप्नेच तथास्थिते
याम्यान्तु कारयेच्छान्तिं प्राप्ते तु नरके तथा। धननाशे समुत्पन्ने कौवेरी शान्तिरिष्यते
वृक्षाणाञ्च तथार्थानां वैकृते समुपस्थिते। भूतिकामस्तथा शान्तिं पार्थिवीं प्रतियोजयेत्
प्रथमे दिनयामे च रात्रौवा मनुजोत्तम !। हस्ते स्वातौ चचित्रायामादित्येचाश्विनेतथा
अर्यम्णि सौम्य ! जातेषु वायव्यांत्वद्भुतेषु च। द्वितीये दिनयामे तु रात्रौचरविनन्दन !
पुष्याग्ने ये विशाखासु पित्र्यासु भरणीषु च। उत्पातेषुतथाभाग्येआग्नेयींतेषु कारयेत्
तृतीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन !। रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे वैश्वदेवते ॥
ज्येष्ठायाञ्च तथा मैत्रे येभवन्त्यद्भुताःक्वचित्। ऐन्द्री तेषु प्रयोक्तव्याशान्ती रविकुलोद्वह !
चतुर्थे दिनयामे रात्रौ वा रविनन्दन !। सार्पे पौष्णे तथार्द्रायामहिर्बुध्न्ये च दारुणे ॥
मूले वरुणदैत्ये ये भवन्त्यद्भुतास्तथा। वारुणी तेषु कर्त्तव्या महाशान्तिर्महीक्षिता ॥
मित्रमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित्। तत्र शान्तिद्वयं कार्यं निमित्तेषुच नान्यथा
निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तेनोपयुज्यते ॥ २८ ॥
बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद्राजन्नृणां सन्नहनैर्युतानाम्।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद्धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे त्रिविधमहोत्पातेषु शान्तिविधानवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम्

मनुरुवाच ।

अद्भुतानां फलं देव ! शमनञ्च तथा वद । त्वं हि वेत्सि विशालाक्ष ! ज्ञेयंसर्वमशेषतः ॥

मत्स्य उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः । अत्र ये वृद्धगर्भस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥२॥

सरस्वत्याःसुखासीनंगर्गं श्रोतसि पार्थिव ! । पप्रच्छासौ महातेजा अत्रिर्मुनिजनप्रियम्

अत्रिरुवाच ।

नश्यतां पूर्वरूपाणि जनानां कथयस्व मे । नगराणां तथा राज्ञा त्वंहि सर्वं वदस्वमाम्

गर्ग उवाच ।

पुरुषापचारान्नियतमपरज्यन्ति देवताः । ततोऽपरागाद्देवानामुपसर्गः प्रवर्तते ॥ ५ ॥

दिव्यान्तरिक्षभौमञ्च त्रिविधं संप्रकीर्तितम् । ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे ॥

उल्कापातो दिशान्दाहः परिवेषस्तथैव च । गन्धर्वनगरञ्चैव वृष्टिश्च विकृता तु या ॥

एवमादीनि लोकेऽस्मिन्नान्तरिक्षं विनिर्दिशेत् ।
चरस्थिरभवभौमो भूकम्पश्चापि भूमिजः ॥ ८ ॥

जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम् । भौमे त्वल्पफलं ज्ञेयं चिरेण च विपच्यते

अभ्रजं मध्यफलदं मध्यकालफलप्रदम् । अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत्

सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं निष्फलं भवेत् । अद्भुतस्य विपाकश्च विना शान्त्या न दृश्यते

त्रिभिर्वर्षैस्तथा ज्ञेयं सुमहद्भयकारकम् । राज्ञः शरीरे लोके च पुरद्वारे पुरोहिते ॥१२॥

पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने । ऋतुस्वभावाद्राजेन्द्र ! भवन्त्यद्भुतसंज्ञिताः ॥

शुभावहास्ते विज्ञेयास्तांश्च मे गदतः शृणु । वज्राशनिमहीकम्पसस्यानिर्घातनिःस्वना

परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः । द्रुमोद्भेदकरस्नेहो बहुशः सफलद्रुमः ॥ १५ ॥

गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शुभानि मधु माधवे ।
ऋक्षोल्कापातकलुषे कपिलार्केन्दुमण्डलम् ॥ १६ ॥
कृष्णश्वेतं तथापीतं धूसरध्वान्तलोहितम् । रक्तपुष्पारुणं साध्यंनभः क्षुब्धार्णवोपमम्
सरिताश्चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मेशुभं वदेत् । शक्रायुधपरीवेषं विद्युदुल्काधिरोहणम् ॥
कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं हसनं दारणं क्षितेः । नद्योदपानं सरसां विधूनतरणप्लवाः ॥ १९ ॥
शृङ्गिणाञ्च वराहाणां वर्षासु शुभमिष्यते । शीतानिलतुषारत्वं नर्द्दनं मृगपक्षिणाम् ॥
रक्षोभूतपिशाचानां दर्शनं वागमानुषी । दिशो धूमान्धकाराश्च स नभोवनपर्वताः ।२१
उच्चैः सूर्यादयास्तौ च हेमन्ते शोभनाःस्मृताः । दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम्
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वागमानुषी । गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु ॥ २३ ॥
सस्यवृद्धी रसोत्पत्तिःशरत्काले शुभाः स्मृताः । हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम्
कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम् । चित्रगर्भोद्भवः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु
पत्राङ्कुरलतानाञ्च विकारा शिशिरे शुभाः ॥ २५ ॥
ऋतुस्वभावेन विनाद्भुतस्य जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेव ।।
यथागमं शान्तिरनन्तरन्तु कार्या यथोक्ता वसुधाधिपेन ॥ २६ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे शान्तिविधानंवर्णनं नाम
अष्टाविंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम्

गर्गउवाच ।

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्तिच । वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम्
आरयन्ति रुदन्त्येताः प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च ।
उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति धमन्ति च ॥ २ ॥

भुञ्जते विक्षिपन्ते वा कोशप्रहरणध्वजान् ।
अवाङ्मुखा वै भवन्ति स्थानात् स्थानं भ्रमन्ति च ॥ ३ ॥

एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः । लिङ्गायतनविप्रेषु तत्र वासंनरोचयेत् राज्ञो वा व्यसनन्तत्र सच देशो विनश्यति । देवयात्रासु चोत्पातात् दृष्ट्वा देशभयंवदेत् पितामहस्य हर्म्येषु तत्र वासंन रोचयेत् । पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥६॥

ज्ञेयं सेनापतीनान्तु यत्स्यात् कन्दविशाखजम् ।
लोकानां विष्णुवस्वीन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम् ॥ ७ ॥

विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां ये तु नायकाः । देवप्रेष्यान्नृपप्रेष्यादेव स्त्रीभिर्नृपस्त्रियः ॥ वासुदेवोद्भवं ज्ञेयं ग्रहाणामेव नान्यथा । देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ॥६॥ देवतार्चान्तु गत्वा वै स्नानमाच्छाद्यभूषयेत् । पूजयेच्च महाभाग ! गन्धमाल्यान्नसम्पदा मधुपर्केण विधिवत् उपतिष्ठेदनन्तरम् । पुरोधाज्जुहुयाद्वह्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥११॥

विप्राश्च पूज्या मधुरान्नपानैः सदक्षिणं सप्तदिनं नरेन्द्र ! ।
प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि क्षितिगोप्रदानैः सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम् ॥ १२ ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नामोननत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम्

गर्ग उवाच ।

अनग्नि र्दीप्यते यत्र राष्ट्रे यस्य निरन्धनः । न दीप्यते चेन्धनवान् तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः प्रज्वलेदप्सु मांसं वा तथार्द्रं वापि किञ्चन । प्राकारन्तोरणं द्वारं नृपवेश्म सुरालयम् ॥ एतानि यत्र दीप्यन्ते तत्र राज्ञो भयं भवेत् । विद्युता वा प्रदह्यन्ते तदापि नृपतेर्भयम् ॥ अनैशानि तमांसि स्युर्विनापांसुरजांसि च । धूमश्चानग्निजो यत्र तत्र विन्द्यान्महाभयम् ।

तडित्त्वनभ्रे गगने भयं स्याद्वृक्षवर्जिते। दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत् ॥५॥
ग्रहनक्षत्रवैकृत्ये ताराविषमदर्शने। पुरवाहनयानेषु चतुष्पान्मृगपक्षिषु ॥ ६ ॥
आयुधेषु च दीप्तेषु धूमायत्सु तथैव च। निर्गमत्सु च कोशाच्च संग्रामस्तुमुलोभवेत्

विनाग्निं विस्फुलिङ्गाश्च दृश्यन्ते यत्र कुत्रचित्।
स्वभावाच्चापि पूर्यन्ते धनूंषि विकृतानि च ॥:८॥
विकारश्चायुधानां स्यात् तत्र संग्राममादिशेत्।
त्रिरात्रोपोषितश्चात्र पुरोधाः सुसमाहितः ॥ ९ ॥

समिद्भिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च। होमं कुर्यादग्निमन्त्रै र्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्

दद्यात्सुवर्णञ्च तथा द्विजेभ्यो गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवञ्च।
एवं कृते पापमुपैति नाशं यदग्निवैकृत्यभवं द्विजेन्द्र! ॥ ११ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम्।

गर्ग उवाच।

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपादेव चोदिता। रुदन्तो वा हसन्तो वा स्रवन्तो वा रसान्बहून्

अरोगा वा विना वातं शाखां मुञ्चत्यथ द्रुमाः।
फलं मूलं तथा कालं दर्शयन्ति त्रिहायनाः ॥ २ ॥

पूर्ववत्स्वं दर्शयन्ति फलं पुष्पं तथान्तरे। क्षीरं स्नेहं तथा रक्तंमधु तोयं स्रवन्ति च ॥

शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्का रोहन्ति वा पुनः।
उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः ॥ ४ ॥

तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्! विपाकंफलमेव च। रोदने व्याधिमभ्येति हसने देशविभ्रमम्
शाखाप्रपतनंकुर्यात्संग्रामे योधपातनम्। बालानां मरणं कुर्यात् बालानां बालपुष्पिता ॥

स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमथान्तरे। क्षयः सर्वत्र गोक्षीरे स्नेहे दुर्भिक्षलक्षणम्॥
वाहनापचयं मद्ये रक्ते संग्राममाविशेत्। मधुस्रावे भवेद्व्याधि र्जलस्रावे न वर्षति॥
अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन्! दुर्भिक्षलक्षणम्। शुष्केषु संप्रहरोहस्तु वीर्यमन्त्रश्च हीयते॥
उत्थाने पतितानाञ्च नयं भेदकरम्भवेत्। स्थानात् स्थानन्तु गमने देशभङ्गस्तथाभवेत्
ज्वलत्स्वपि च वृक्षेषु रुदत्स्वपि धनक्षयम्। एतत्पूजितवृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपद्यते॥
पुष्पे फले वा विकृतेराज्ञो मृत्युं तथादिशेत्। अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत्। वृक्षोपरितथाछत्रं कुर्यात् पापप्रशान्तये
शिवमभ्यर्चयेद्देवं पशुञ्चास्मै निवेदयेत्। रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत्ततः॥१४॥

मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन संपूज्य विप्रांश्च भुवञ्च दद्यात्।
गीतेन नृत्येन तथार्चयेत्तु देवं हरं पापविनाशहेतोः॥ १५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम्।

गर्ग उवाच।

अतिवृष्टिरनावृष्टि दुर्भिक्षादि भयं मतम्। अनृतौ तु दिवानन्ता वृष्टिर्ज्ञेया भयानका।
अनभ्रे वैकृताश्चैव विज्ञेया राजमृत्यवे। शीतोष्णानां विपर्यासे नृपाणां रिपुजं भयम्
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयम्भवेत्। अङ्गारपांसुवर्षेषु नगरन्तद्विनश्यति॥ ३॥
मज्जास्थिस्नेहमांसानां जनमारभयम्भवेत्। फलं पुष्पन्तथा धान्यं परेणातिभयाय तु
पांसुजन्तुफलानाञ्च वर्षतो रोगजं भयम्। छिद्रेवान्नप्रवर्षेण सस्यानां भीतिवर्द्धनम्
विरजस्के रवौ व्यभ्रे यदा च्छाया न दृश्यते। दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशभयम्भवेद्

निरभ्रे वाथ रात्रौ वा श्वेतं याम्योत्तरेण तु।
इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च॥ ७॥

दिग्दाहपरिवेषौ च गन्धर्वनगरन्तथा। परचक्रभयं ब्रूयाद्देशोपद्रवमेव च ॥ ८ ॥

सूर्य्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद् द्विजेन्द्र !
धनानि गौः काञ्चनदक्षिणा च देया द्विजानामघनाशहेतोः ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम्।

गर्गउवाच।

नगराद्पसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च। नद्योह्रदप्रस्रवाणि विरसाश्च भवन्ति च ॥ १ ॥

विवर्णं कलुषन्तप्तं फेनवज्जन्तुसङ्कुलम्। स्नेहं क्षीरं सुरां रक्तं वहन्ते वा कुलोदकाः ॥२

षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयम्भवेत्। जलाशया नदन्ते वा प्रज्वलन्ति कथञ्चन ॥३

विमुञ्चन्ति तथा ब्रह्मन् ! ज्वालाधूमरजांसि च।
अथवाते जलोत्पत्तिः सुसत्वा वा जलाशयाः ॥ ४ ॥

सङ्गीतशब्दाः श्रूयन्ते जनमारभयम्भवेत्। दिव्यमम्भोमयं सर्पिर्मधुतैलावसेचनम् ॥५॥

जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत् ॥ ६ ॥

मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र देयं द्विजानां द्विजभोजनार्थम्।
गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्तास्तथोदकुम्भाः सलिलाघशान्त्यै ॥ ७ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम् ।

गर्ग उवाच ।

अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा। विकृतप्रसवाश्चैव युग्मसंप्रसवास्तथा ॥१॥

अमानुषा ह्यतुण्डाश्च सञ्जातव्यसनास्तथा ।
हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ २ ॥

पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः। विनाशन्तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्

विवासयेत्तान्नृपतिः स्वराष्ट्रात् स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः ।।
कस्येच्छकै ब्राह्मणतर्पणश्च लोके ततः शान्तिमुपैति पापम् ॥ ४ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम् ।

गर्ग उवाच ।

यान्ति यानान्ययुक्तानि युक्तान्यपि न यान्ति च ।
चोद्यमानानि तत्र स्यात् महद्भयमुपस्थितम् ॥ १ ॥

वाह्यमाना न वाह्यन्ते वाह्यन्ते नात्यनाहताः ।
अचलाश्च चलन्त्येव न चलन्ति चलानि च ॥ २ ॥

आकाशे तूर्यनादश्च गीतगन्धर्वनिस्वनाः ।
काष्ठदर्वीकुठारादि विकारं कुरुते यदि ॥ ३ ॥

गावो लांगूलसङ्घैश्च स्त्रियः स्त्री च विघातयेत् ।
उपस्करादिविकृतौ घोरं शस्त्रभयम्भवेत् ॥ ४ ॥
वायोस्तु पूजां द्विजसक्तुभिश्च कृत्वा नियुक्तांश्च जपेच्च मन्त्रान् ।
दद्यात् प्रभूतं परमान्नमत्र सदक्षिणन्तेन शमोऽस्य भूयात् ॥ ५ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम् ।

गर्ग उवाच ।

प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ।
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः ॥ १ ॥
स्थलजाश्च जलं यान्ति घोरं वाशन्ति निर्भयाः। राजद्वारे पुरद्वारे शिवा चाप्यशिवप्रदा
दिवारात्रिञ्चरावापि रात्रावपि दिवाचराः । ग्राम्यास्त्यजन्तिग्रामञ्चशून्यतांतस्यनिर्दिशेत्
दीप्तावाशन्ति सन्ध्यासु मण्डलानि च कुर्वते । वाशन्तिविस्वरंयत्रतदाप्येतत्फलंलभेत्
प्रदोषे कुक्कुटो वाशेद्धेमन्ते वापि कोकिलः । अर्कोदये त्वभिमुखी शिवारौति भयं वदेत्
गृहं कपोतः प्रविशेत्क्रव्यादोमूर्ध्नि लीयते । मधुवा मक्षिकाः कुर्युर्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत् ॥
प्राकारद्वारगेहेषु तोरणापणवीथिषु। केतुच्छत्रायुधाद्येषु क्रव्यादं प्रपतेद्यदि ॥ ७ ॥
जायन्तेवाथ वल्मीका मधु वा स्यन्दते यदि । सदेशोनाशमायाति राजा च म्रियतेतथा
मूषकान्शलभान्दृष्ट्वाप्रभूतंक्षुद्भयम्भवेत् । काष्ठोल्मुकास्थिशृङ्गाढ्याःश्वानोमर्कटवेदनाः
दुर्भिक्षवेदना ज्ञेया काकाधान्यमुखा यदि । जनानभिभवन्तीह निर्भया रणवेदिनः ॥१०
काको मैथुनसक्तश्च श्वेतस्तु यदि दृश्यते । राजा वा म्रियते तत्र सच देशो विनश्यति
उलूको दृश्यते यत्र नृपद्वारे सभां गृहे । ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च ॥ १२ ॥

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सदक्षिणम्। देवा कपोता इति वा जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः
गावश्च देया विधिवद् द्विजानां सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं मृगैर्द्विजैर्वा विनिवेदितं यत्॥ १४॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्तिविधानवर्णनम्।

गर्ग उवाच।

प्रासादतोरणाट्टालद्वारप्राकारवेश्मनाम्। निर्निमित्तन्तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे॥१॥
रजसा वाथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः। आदित्यचन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये॥२
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः। ऋतवश्चविपर्यस्ता अपूज्यः पूज्यते जनैः
नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम्। केतूदयोपरागौ च छिद्रं वा शशिसूर्य्ययोः
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत्। स्त्रियश्च कलहायन्ते वाला निघ्नन्तिबालकान्
क्रियाणामुचितानाञ्च विच्छित्तिर्यत्र जायते। हूयमानस्तु यत्राग्निर्दीप्यते न च शान्तिषु
पिपीलिकाश्च क्रव्यादा यान्ति चोत्तरतस्तथा। पूर्णकुम्भाः स्रवन्तेचहविर्वा विप्रलुप्यते
मङ्गल्याश्च गिरो यत्र न श्रूयन्ते समन्ततः।
क्षवथुर्बाधते वाथ प्रहसन्ति स्रवन्ति च॥ ८॥
न च देवेषु वर्तन्ते यथावद्ब्राह्मणेषु च। मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते विस्वराणि च
गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता नराः। ब्राह्मणान् सुहृदो मान्यान् जनो यत्रावमन्यते॥
शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते। राजा वा म्रियते तत्र स देशोवा विनश्यति
राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबोध मे।

ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते॥ १२॥

ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति। न च स्मरति कृत्येषु याचितश्च प्रकुप्यति
रमते निन्दया तेषां प्रशंसां नाभिनन्दति। अपूर्वन्तु करं लोभात्तथा पातयते जने ॥१४
एतेष्वस्यर्चयेच्छक्रं सपत्नीकं द्विजोत्तम !। भोज्यानिचैव कार्याणि सुराणां बलयस्तथा
सन्तो विप्राश्च पूज्याः स्युस्तेभ्यो दानञ्च दीयताम् ॥ १५ ॥
गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्यो भुवस्तथा काञ्चनमम्बराणि।
होमश्च कार्योऽमरपूजनञ्च एवं कृते पापमुपैति शान्तिम् ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे शान्तिविधानवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ग्रहयज्ञादीनां विधानवर्णनम्।

मनुरुवाच।

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः। कोटिहोमोऽपिवा देव ! सर्वपापप्रणाशनः ॥
क्रियते विधिना येन यद्दृष्टं शान्तिचिन्तकैः। तत्सर्वं विस्तराद्देव! कथयस्व जनार्दन!॥

मत्स्य उवाच।

इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप। राज्ञा धर्मप्रसक्तेन प्रजानाञ्च हितेप्सुना ॥३॥
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः। नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ॥४ ॥
सुसमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः। गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्द्धं भूमिं परिक्षयेत्
खनेत् कुण्डञ्च तत्रैव सुसमं हस्तमात्रकम्। द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम्॥
युग्मास्तु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा ॥ ७ ॥
वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च। सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निञ्च समिन्धयेत्

गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः । त्रिंशद्ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः
कुष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश । होतव्या दशसाहस्रं बादरैर्जातवेदसि ॥१०
श्रियोमन्त्रेण होतव्याःसहस्राणि चतुर्दश । शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः
हुत्वा शतसहस्रस्तु पुण्यस्नानं समाचरेत् । कुम्भैः षोडशसङ्ख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः
स्नापयेद्यजमानन्तु ततः शान्तिर्भविष्यति । एवं कृते ते यत्किञ्चिद्ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥

तत्सर्वं नाशमायाति दत्त्वा वै दक्षिणां नृप ! ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ॥ १४ ॥

हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च । अनडुद्गोशतं दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम् ॥
यथाविभवसारन्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत् । मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप! ।

लक्षहोमस्य राजेन्द्र ! विधानं परिकीर्तितम् ।
इदानीं कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम् ॥ १७ ॥

गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर ! । नर्मदा देविकायास्तु तटे होमो विधीयते ! ॥
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन! षोडश । सर्वहोमेतु राजर्षे! दद्याद्विप्रेऽथ वा धनम्

ऋत्विगाचार्यसहितो दीक्षां साम्वत्सरीं स्थितः ।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ॥ २० ॥

प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप ! । यजमानः पयोभक्षी फलाशीच तथानघ!॥
यवादिव्रीहयो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः । पालाशाः समिधःशस्ता वसोर्धारातथोपरि

मासेऽथ प्रथमे दद्यात् ऋत्विग्भ्यः क्षीरभोजनम् ।
द्वितीये कृसरां दद्याद्धर्मकामार्थसाधनीम् ॥ २३ ॥

तृतीये मासि संयावो देयो वै रविनन्दन ! । चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन्
पञ्चमे दधिभक्तन्तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम् । पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः ॥२५॥
षष्ठ्योदनञ्च नवमे दशमे यवषष्टिका । एकादशे समाषन्तु भोजनं रविनन्दन ! ॥ २६ ॥
द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वहः । षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम्

देया द्विजानां राजेन्द्र! मासि मासि च दक्षिणा ।

अहतवासाः सम्वीतो दिनार्द्धं होमयेच्छुचिः ॥ २८ ॥
तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः ।
इन्द्राद्यादिसुराणाञ्च प्रीणनं सर्वकामिकम् ॥ २९ ॥
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र! पशुघातसमन्वितम् । सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमञ्च कारयेत्॥
एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते । सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ॥
पुरोडाशस्ततः साध्यो देवतार्थे च ऋत्विजैः ।
युक्तो वसन् मानवैश्च पुनः प्राप्तार्चनान् द्विजान् ॥ ३२ ॥
प्रीणयित्वा सुरान् सर्वान् पितॄनेव ततः क्रमात् ।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानाञ्च समर्पणम् ॥ ३३ ॥
समाप्तौतस्य होमस्यविप्राणामथ दक्षिणाम् । समाञ्चैवतुलां कृत्वाबद्ध्वा शिक्यद्वयंपुनः
आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीञ्चैव द्वितीयकाम् । सुवर्णेन तथात्मानं रजतेन तथा प्रियाम्
तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः । ददेच्छतसहस्रन्तु रूप्यस्य कनकस्य च ॥
सर्वस्वं वा ददेत्तत्र राजसूयफलं लभेत् । एवङ्कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत्
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः । तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं भवेत्
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते । एवं शान्तिस्तवाख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत्
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे । सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप ! ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ग्रहयज्ञ लक्षहोम कोटिहोमविधिवर्णनं नामा-
ष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

यात्राकालविधानवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

इदानीं सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! यात्राकालविधानंमे कथयस्व महीक्षिताम् ॥

मत्स्य उवाच ।

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा । पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽयं तदा यात्रां प्रयोजयेत्॥
दुष्टायोधा भृता भृत्याः साम्प्रतञ्चबलंमम । मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदायात्रां प्रयोजयेत्
अशुद्धपार्ष्णिनृपतिर्नतु यात्रां प्रयोजयेत् । पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यंमूले निक्षिप्यचव्रजेत्

चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः ।
चैत्र्यां पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टिञ्च शारदीम् ॥५ ॥

एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः । शत्रोर्वा व्यसने यायात् कालएव सुदुर्लभः
दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडितं परम् । षडक्षपीडासन्तप्तं पीड़ितञ्च तथा ग्रहैः ॥७
ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं याञ्च प्रपद्यते । भूकम्पोल्का दिशंयाति याञ्चकेतुःप्रसूयते
निर्घातञ्च पतेद्यत्र तां यायाद्वसुधाधिपः । स बलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीड़ितम्॥
सम्भूतान्तरकोपञ्च क्षिप्रं प्रायादरिं नृपः । यूकामाक्षीकबहुलं बहुपङ्कन्तथा बिलम्॥१०
नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथा मङ्गलवादिनम् । अपेतप्रकृतिञ्चैव निःसारञ्च तथा जयेत्॥
विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम् । व्यसनाशक्तनृपतिं बलं राजाभियोजयेत्॥
सैनिकानां न शास्त्राणिस्फुरन्त्यङ्गानियत्रच । दुःस्वप्नानिचपश्यन्तिबलन्तदभियोजयेत्
उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा । तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत् ॥१४॥
शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने । निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत्॥
ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च । प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः॥
एवन्तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुतः । देशकालोपपन्नान्तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः॥
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे । उलूकस्यनिशि ध्वाङ्क्षः सचतस्यदिवावशे

एवं देशञ्च कालञ्च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् । हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम्

खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः ॥ २० ॥

चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ । सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवीपतेः ॥२१॥
अभियोज्यो भवेत्तेन शत्रुर्विषममाश्रितः । गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुन्तथैव च॥

किञ्चित् पङ्के तथा यायाद्द बहुनागो नराधिपः ।
तथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं समं पथिस्थितम् ॥ २३ ॥

तमाश्रयन्तो बहुलास्तांस्तु राजा प्रपूजयेत् । खरोष्ट्रबहुलो राजा शत्रूर्बन्धेन संस्थितः
बन्धनस्थोऽभियोज्योऽरिस्तथाप्रावृषिभूभुजा । हिमपातयुते देशेस्थितंग्रीष्मेऽभियोजयेत्
यवसेन्धनसंयुक्तःकालःपार्थिव ! हैमनः । शरद्वसन्तौधर्मज्ञ ! कालौसाधारणौस्मृतौ

विज्ञाय राजा हितदेशकालौ दैवं त्रिकालज्ञ तथैव बुद्ध्वा ।
यायात् परं कालविदां मतेन सञ्चिन्त्य सार्द्धं द्विजमन्त्रविद्भिः ॥२७॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे यात्राकालविधानवर्णनं नामो-
नचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अङ्गस्फुरणविचारवर्णनम् ।

मनुरुवाच ।

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च । सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ ! त्वंहिसर्वविदुच्यते

मत्स्य उवाच ।

अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणम्भवेत् । अथ शस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च

मनुरुवाच ।

अङ्गानां स्पन्दञ्चैव शुभाशुभविचेष्टितम् । तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यात्तद्विधो भुवि

मत्स्य उवाच ।

पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्द्धिन ललाटेरविनन्दन ! स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसङ्गमः
भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धनागमः । उत्कण्ठोपगमो मध्येदृष्टंराजन् !विचक्षणैः
दृग्बन्धने सङ्गरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात् । योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियाश्रुतिः

नासिकायां प्रीतिसौख्यंप्रजाप्तिरधरोष्ठजे। कण्ठे तु भोगलाभः स्याद्भोगवृद्धिरथांसयोः
सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः। पृष्ठे पराजयः सद्यः जयो वक्षःस्थले भवेत्
कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने। स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रेचैवधनागमः
जानुसन्धौ परैः सन्धिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप !। दिशैकदेशनाशोऽथ जङ्घायां रविनन्दन !॥
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप !। सलाभश्चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप!
लाञ्छनं पिटकश्चैव ज्ञेयं स्फुरणवत्तथा। विपर्ययेण विहिता सर्वस्त्रीणां फलागमः।

दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ॥१२॥

अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणं स्यात्॥ १३॥

इति श्रीमत्स्यपुराणेऽङ्गस्फुरणविचारवर्णनं नाम
चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

मनुमत्स्यसंवादे स्वप्नदर्शनवर्णनम्।

मनुरुवाच।

स्वप्नाख्यानं कथं देव ! गमने प्रत्युपस्थिते। दृश्यन्तेविविधाकाराःकथन्तेषांफलंभवेत्

मत्स्य उवाच।

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने। नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ॥३॥
चूर्णनं मूर्द्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नतातथा। मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता
उच्चात् प्रपतनञ्चैव दोलारोहणमेव च। अर्जनं पक्वलोहानां हयानामपि मारणम् ॥४॥
रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च मण्डलस्य तथैव च। वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया ॥५॥
भक्षणं पक्वमांसानां तैलस्य कृसरस्य च। नर्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव॥ ६॥

तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम्। स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा॥
पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ। मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च॥ ८॥
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः। दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पानाञ्च दर्शनम्॥ ९॥
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोध एव च। आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मैथुनम्॥
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया। दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च। गृहाणाञ्चैव पातश्च गृहसम्मार्जनन्तथा॥
क्रीड़ा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि। परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः॥१३॥
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीड़नन्तथा। स्नेहपानावगाहौच रक्तमाल्यानुलेपनम्

एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत्।
एषां सङ्कथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनन्तथा॥ १५॥
कल्कस्नानन्तिलै र्होमो ब्राह्मणानाञ्च पूजनम्।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम्॥ १६॥

नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम्। स्वमास्तु प्रथमे यामे सम्वत्सरविपाकिनः॥
षड्भिर्मासै र्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके। चतुर्थं मासमात्रेण पश्यतो नात्र संशयः
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलम्भवेत्। एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदिवाशुभम्
पश्चाद्दृष्टस्तु यस्तत्रतस्यपाकंविनिर्दिशेत्। तस्माच्छोभनकेस्वप्नेपश्चात्स्वप्नोनपश्यति
शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम्। द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज!
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव वहुवाहुता। तथैव वहुशीर्षत्वं फलितोद्भव एव च॥ २२॥

सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता।
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च॥ २३॥

शक्रध्वजालिङ्गनञ्च तदुच्छ्रायक्रिया तथा। भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणाञ्च वधक्रिया॥

जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज!।
भक्षणञ्चार्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च॥ २५॥

दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च। सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथवा

अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा। मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम्॥
सिंहीनां हस्तिनीनाञ्च वडवानां तथैव च। प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां श्रृङ्गाश्रितेन वा।
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजन्! ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः॥२९॥

राज्याभिषेकश्च तथाच्छेदनं शिरसस्तथा। मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु॥३०

लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम्।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलङ्घनम्॥ ३१॥

हस्तिनीवडवानाञ्च गवाञ्च प्रसवो गृहे। आरोहणमथाश्वानां रोदनञ्च तथाशुभम्॥
वरस्त्रीणां तथालाभस्तथालिङ्गनमेव च। निगडैर्बन्धनं धन्यं तथा विष्ठानुलेपनम्॥
जीवितां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम्। दर्शनं देवतानाञ्च विमलानां तथाम्भसाम्

शुभान्यथैतानि नरस्तु दृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद् ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ! व्याधेर्विमोक्षञ्च तथाऽऽतुरोऽपि॥३५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे स्वप्नदर्शनविचारवर्णनं नामै-
कचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

यात्रासमये मङ्गलामङ्गलासूचकशकुनवर्णनम्।

मनुरुवाच।

गमनं प्रति राज्ञान्तु संमुखादर्शने च किम्। प्रशस्तांश्चैव सम्भाष्य सर्वानेतांश्चकीर्तय

मत्स्य उवाच।

औषधानि त्वयुक्तानिधान्यं कृष्णञ्चयद्भवेत्। कार्पासश्चतृणं राजन्! शुष्कंगोमयमेवच
इन्धनञ्च तथाङ्गारं गुडं तैलं तथा शुभम्। अभ्यक्तं मलिनं मुण्डन्तथानग्नञ्च मानवम्॥

मुक्तकेशं रुजार्तञ्च काषायाम्बरधारिणम्। उन्मत्तकन्तथा सत्वं दीनञ्चाथ नपुंसकम् ॥
अयः पङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च। तथैवोद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ॥
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः। वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैवच
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डानि यानि च। रक्तानि चैव भाण्डानि मृतंशार्ङ्गिकमेवच

एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने।
अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः ॥ ८ ॥

पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः। गच्छेति पश्चात् धर्मज्ञो ! पुरस्तात्तु विगर्हितः
क यासि तिष्ठमा गच्छकिन्तेतत्र गतस्य तु। अन्ये शब्दाश्च ये निष्ठास्तेविपत्तिकराअपि
ध्वजादिषु तथास्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम्। स्खलनं वाहनानाञ्च वस्त्रसङ्गस्तथैवच
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता। छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनञ्च तथा शुभम्
दृष्टे निमित्ते प्रथममङ्गल्यविनाशनम्। केशवं पूजययेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम् ॥१३॥
द्वितीये तु ततोदृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्गृहम्। अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथाऽनघ !
श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाःपूर्णकुम्भास्तथैव च। जलजाःपक्षिणश्चैवमांसं मत्स्याश्चपर्थिच!
गावस्तुरङ्गमा नागा बद्ध एकःपशुस्त्वजः। त्रिदेशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः

गणिका च महाभाग ! दूर्वा चार्द्रञ्च गोमयम्।
रुक्मरूप्यन्तथा ताम्रं सर्वरत्नानि चाप्यथ ॥ १७ ॥

औषधानिव धर्मज्ञ ! यवाः सिद्धार्थकास्तथा। नृवाह्यमानं यानञ्च भद्रपीठन्तथैव च ॥
खङ्गं चक्रं पताका च मृदश्चायुधमेव च। राजलिङ्गानि सर्वाणि सर्वे रुदितवर्जिताः ॥
घृतं दधि पयश्चैव फलानिविविधानि च। स्वस्तिकं वर्द्धमानञ्च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम्

वादित्राणां सुखः शब्दः गम्भीरः सुमनोहरः।
गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा स्वराः ॥ २१ ॥

वायुः सशर्करोरूक्षः सर्वत्र समुपस्थितः। प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयोभयकृद्द्विज !॥
अनुकूलोमृदुःस्निग्धःसुखस्पर्शःसुखावहः। रूक्षारूक्षस्वराभद्राः क्रव्यादाःपरिगच्छताम्
मेघाः शस्ताघनाःस्निग्धागजवृंहितसन्निभाः। अनुलोमास्तड़िच्छन्नाःशक्रचापन्तथैवच

अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे। अनुलोमा ग्रहाः शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषतः॥

आस्तिक्यं श्रद्दधानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम्।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ! यच्च स्यान्मनसः प्रियम्॥ २६॥

मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम्। एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः॥ २७॥

मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन्! ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि॥२८॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे यात्रासमये मङ्गलामङ्गलसूचकशकुनविचारवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वामनावतारचरित्रवर्णनम्।

ऋषय ऊचुः।

राजधर्मस्त्वया सूत! कथितो विस्तरेण तु। तथैवाद्भुतमङ्गल्यं स्वप्नदर्शनमेव च॥ १॥

विष्णोरिदानीं माहात्म्यं पुनर्वक्तुमिहार्हसि। कथं स वामनो भूत्वा ववन्ध बलिदानवम्॥

क्रमतः कीदृशं रूपमासील्लोकत्रये हरेः।

सूत उवाच।

एतदेव पुरा पृष्टः कुरुक्षेत्रे तपोधनः॥ ३॥

शौनकस्तीर्थयात्रायां वामनायतने पुरा। यदा समयभेदित्वं द्रौपद्याः पार्थिवं प्रति॥४

अर्जुनेन कृतन्तत्र तीर्थयात्रां तदा ययौ। धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे वामनायतने स्थितः॥ ५॥

दृष्ट्वा स वामनस्तत्र अर्जुनो वाक्यमब्रवीत्।

अर्जुन उवाच।

किन्निमित्तमयं देवो वामनाकृतिरिज्यते॥ ६॥

वराहरूपी भगवान् कस्मात्पूज्योऽभवत्पुरा ।
कस्माच्च वामनस्येदमिष्टं क्षेत्रमजायत ॥ ७ ॥

शौनक उवाच ।

वामनस्यच वक्ष्यामि वराहस्यच धीमतः । पुरा निवारिते शक्रे सुरेषु विजितेषु च ॥
चिन्तयामास देवानां जननी पुनरुद्भवम् । अदिति र्देवमाता च परमं दुश्चरं तपः ॥६ ॥
तीव्रश्चचारवर्षाणां सहस्रं पृथिवीपते ! । आराधनाय कृष्णस्य वाताहारा ह्यभोजना ॥
दैत्यैर्निराकृतान् दृष्ट्वा तनयान् कुरुनन्दन ! । वृथा पुत्राहमस्मीति निर्वेदात्प्रणताहरिम्
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परमार्थनिवोधने । देवदेवं हृषीकेशं नत्वा सर्वगतं हरिम् ॥१२॥

अदितिरुवाच ।

नमः स्मृतार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने । नमः परमकल्याणकल्याणायादिवेधसे ॥
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये । श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे ॥
नमः पङ्कजसम्भूतिसम्भवायात्मयोनये । नमः शङ्खासिहस्ताय नमः कनकरेतसे ॥१५॥
तथात्मज्ञातविज्ञातयोगिचिन्त्यात्मयोगिने । निर्गुणायाविशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥
जगत्प्रतिष्ठितं यत्र जगता यो न दृश्यते । नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शङ्खिने॥
यन्न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलन्नराः । अपश्यद्भि र्जगत्यत्र न देवोहृदि संस्थितः

यस्मिन्नन्नं पयश्चैव नद्यश्चैवाखिलं जगत् ।
तस्मै समस्तजगतामाधाराय नमोनमः ॥ १६ ॥

आद्यः प्रजापतिपतिः यः प्रभूणांपतिःपरः । पतिः सुराणां यस्तस्मैनमः कृष्णाय वेधसे
यः प्रवृत्तौ निवृत्तौ च इज्यते कर्मभिः स्वकैः । स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते
यश्चिन्त्यमानो मनसा सद्यः पापं व्यपोहति । नमस्तस्मै विशुद्धाय पराय हरिवेधसे ॥
यं बुद्ध्वा सर्वभूतानि देवदेवेशमव्ययम् । न पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति नमामि तम् ॥
यो यज्ञे यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंज्ञितः । तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥ २४॥
गीयते सर्वदेवेषु वेदविद्भिर्विदांपतिः । यस्तस्मै वेदवेद्याय विष्णवे जिष्णवे नमः॥२५॥
यतोविश्वं समुत्पन्नं यस्मिंश्च लयमेष्यति । विश्वोद्भवप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं येन विश्वमिदं ततम्। मायाजालं समुत्तर्तुंन्तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥
यस्तु तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः। विश्वं प्रजापतिं विष्णुन्तंनमामिप्रजापतिम्
यमाराध्य विशुद्धेन मनसा कर्मणा गिरा। तरन्त्यविद्यामखिलान्तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥
विषादतोषरोषाद्यैर्योऽजस्रं सुखदुःखजैः। नृत्यत्यखिलभूतस्थस्तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥३०
मूर्तं तमो सुरमयन्तद्वधात् विनिहन्ति यः। रात्रिरूपी सूर्यरूपी तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥
यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम्। पश्यतः कर्म सततमुपेन्द्रं तं नमाम्यहम्॥
यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम्। नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाव्ययम्
यच्चैतत्सत्यमुक्तं मे भूयांश्चातो जनार्दनः। सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः॥

शौनक उवाच।

एवंस्तुतः स भगवान् वासुदेव उवाच ताम्। अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याःसन्दर्शनेस्थितः

श्रीभगवानुवाच।

मनोरथांस्त्वमदिते! यानिच्छस्यभिवाञ्छितान्।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे! मत्प्रसादान्न संशयः॥३६॥

शृणुष्व सुमहाभागे वरो यस्ते हृदिस्थितः। तमाशु व्रियतां कामं श्रेयस्ते सम्भविष्यति
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति॥ ३७॥

अदितिरुवाच।

यदि देव! प्रसन्नस्त्वं मद्भक्त्याभक्तवत्सल!। त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तुममवासवः
हृतं राज्यं हृताश्चास्य यज्ञभागा महासुरैः। त्वयि प्रसन्ने वरदे तान् प्राप्नोतु सुतो मम
हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव!। सापत्न्याद्दायनिभ्रंशो बाधां न कुरुते हृदि

श्रीभगवानुवाच।

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि! यथेप्सितः। स्वांशेन चैवतेगर्भेसम्भविष्यामिकश्यपात्
तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः। तानहं निहनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि!॥

अतिदिरुवाच।

प्रसीद देव! देवेश! नमस्ते विश्वभावन!। नाहं त्वामुदरे देव! वोढुंशक्ष्यामिकेशव!

यस्मिन् प्रतिष्ठितंविश्वं योविश्वंस्वयमीश्वरः । तमहं नोदरेणत्वां वोढुंशक्ष्यामिदुर्धरम्
श्रीभगवानुवाच ।

सत्यमात्थमहाभागे ! मयिसर्वमिदं जगत् । प्रतिष्ठितं न मां शक्तावोढुंसेन्द्रादिवौकसः
किं त्वहं सकलान् लोकान् सदेवासुरमानुषान् ।
जङ्गमान् स्थावरान् सर्वान् त्वाञ्च देवि ! सकश्यपाम् ॥४६॥
धारयिष्यामि भद्रन्ते तदलं सम्भ्रमेण ते । न ते ग्लानिर्न ते स्वेदो गर्भस्थे भवितामयि
दाक्षायणि! प्रसादन्तेकरोम्यन्यैःसुदुर्लभम् । गर्भस्थेमयिपुत्राणां तव योऽभिभविष्यति
तेजसस्तस्य हानिश्च करिष्ये मा व्यथां कृथाः ॥ ४८ ॥

शौनक उवाच ।

एवमुक्त्वा ततः सद्यो यातोऽन्तर्धानमीश्वरः । सापि कालेन तं गर्भमवाप कुरुसत्तम !
गर्भस्थितेततः कृष्णेचचालसकला क्षितिः । चकम्पिरे महाशैलाः क्षोभञ्जग्मुस्तथाब्धयः
यतो यतोऽदितिर्याति ददातिललितं पदम् । ततस्ततः क्षितिःस्वेदात् ननामवसुधाधिप!
दैत्यनामथ सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने । बभूव तेजसां हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ ५२ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणेऽदित्यै भगवद्वरप्रदानं नाम
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलिप्रह्लादसंवादवर्णनम् ।

शौनक उवाच ।

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः । प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम् ॥
बलिरुवाच ।

तात ! निस्तेजसोदैत्या निर्दग्धा इव वह्निना । किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव ॥२

दुरिष्टं किन्नुदैत्यानांकिंकृत्यावैरिनिर्मिता । नाशायैषासमुद्भूता यया निस्तेजसोऽसुराः

शौनक उवाच ।

इति दैत्यपतिर्धीरः पृष्टः पौत्रेण पार्थिव ! । चिरन्ध्यात्वा जगादैनमसुरेन्द्रं बलिन्तदा ॥
चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहसा धृतिम् । सर्वेसमुद्राःक्षुभितादैत्यानिस्तेजसःकृताः
सूर्योदयो यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः । देवानाञ्च परा लक्ष्मीः कारणैरनुमीयते ।
महदेतन्महाबाहो ! कारणं दानवेश्वर ! । न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं सुरार्दन !

शौनक उवाच ।

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः । अत्यन्तभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम्
स ध्यानयोगं कृत्वाऽथ प्रह्लादः सुमनोहरम् । विचारयामास ततो यतो देवजनार्दनः ॥
सददर्शोदरेऽदित्या प्रह्लादो वामनाकृतिम् । अन्तस्थान् बिभ्रतं सप्तलोकानादिप्रजापतिम्

तदन्तस्थान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
साध्यान् विश्वांस्तथादित्यान् गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ ११ ॥

विरोचनं स्वतनयं बलिञ्चासुरनायकम् । जम्भं कुजम्भं नरकं तत्रैवान्यान्महासुरान् १२
आत्मानमुर्वीङ्गगनं वायुमम्भो हुताशनम् । समुद्रान्वै द्रुमसरित्सरांसि च पशून्मृगान्

वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान् ॥ १३ ॥

प्रह्लाद उवाच ।

वत्स ! ज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम् । तेजसोहानिरुत्पन्ना तच्छृणु त्वमशेषतः ॥
देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिकृत् । अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः ॥१५
परस्पराणां परमः परः परवतामपि । प्रमाणञ्च प्रमाणानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः ॥ १६ ॥

प्रभुः प्रभूणां परमः पराणामनादिमध्यो भगवाननन्तः ।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेष कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः ॥ १७ ॥
न तस्य रुद्रो न च पद्मयोनिर्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमुख्याः ।
जानन्ति दैत्याधिप ! यत्स्वरूपं स वासुदेवः कलयावतीर्णः ॥ १८ ॥
योऽसौ कलांशेन नृसिंहरूपी जघान पूर्वं पितरं ममेशः ।

यः सर्वयोगी शमनो निवासः स वासुदेवः कलयावतीर्णः ॥ १९ ॥
यमक्षरं वेदविदो विदित्वा विशन्ति यं ज्ञानविधूतपापाः ।
यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम् ॥ २० ॥
भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम् ।
लयञ्च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥ २१ ॥
न यस्य रूपं न बलप्रभावौ न यस्य भावः परमस्य पुंसः ।
विज्ञायते शर्वपितामहाद्यैस्तं वासुदेवं प्रणमाम्यजस्रम् ॥ २२ ॥
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगिष्टा स्पर्शे ग्रहित्री रसना रसस्य ।
श्रोत्रञ्च शब्दग्रहणे नराणां घ्राणञ्च गन्धग्रहणे नियुक्तम् ॥ २३ ॥
येनैकदंष्ट्राग्रसमुद्धृतेयं धराचलान् धारयतीह सर्वान् ।
यस्मिंश्च शेते सकलं जगच्च तमीशमाद्यं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥२४॥
न घ्राणग्राह्यः श्रवणादिभिर्यः सर्वेश्वरो वेदितुमक्षयात्मा ।
शक्यस्तमीड्यं मनसैव देवं ग्राह्यन्ततोऽहं हरिमीशितारम् ॥२५॥
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे हृतानि तेजांसि महासुराणाम् ।
नमामि तं देवमनन्तमीशमशेषसंसारतरोः कुठारम् ॥२६॥
देवो जगद्योनिरयं महात्मा स षोड़शांशेन महासुरेन्द्र ! ।
स देवमातुर्जठरं प्रविष्टो हृतानि वस्तेन बलाद्वपूंषि ॥२७॥

बलिरुवाच ।

तात ! कोऽयं हरिर्नामयतो नोभयमागतम् । सन्ति मे शतशोदैत्या वासुदेवबलाधिकाः
विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च । अयःशिराश्वाश्वशिरा भङ्कारो महाहनुः ॥
प्रतापः प्रघसः शम्भुः कुकुरश्च सुदर्जयः । एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा ।
महाबला महावीर्या भूभारोद्धरणक्षमाः । एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्द्धेन सम्मितः ॥

शौनक उवाच ।

पौत्रस्येतद्वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यपुङ्गवः । धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्

प्रह्लाद उवाच ।

विनाशमुपयास्यन्ति मन्ये दैतेयदानवाः ! । येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान् ।
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम् । त्वामृते पापसङ्कल्पः कोऽन्य एवं वदिष्यति ॥
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः । सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरानन्तभूमयः
त्वञ्चाहञ्च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीनदम् । समुद्रद्वीपलोकाश्च न समं केशवस्य हि ॥३६॥
यस्यातिवन्द्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः । एकांशेन जगत्सर्वं कस्तमेवं प्रवक्ष्यति ॥
ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम् । कुबुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम्
शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तवपिताधमः । यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवस्यनिन्दकः
तिष्ठत्येषा हि संसारसम्भूताघविनाशिनी । कृष्णेभक्तिरहन्ताघद्वेक्ष्य भवता नु किम् ।
न मे प्रियतमः कृष्णादपिदेहोमहात्मनः । इति जानात्ययं लोको न भवान्दितिजाधम!
न जानासि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम । निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन्गौरवंमम

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले ! ।
ममापि सर्वजगतां गुरोर्नारायणो गुरुः ॥ ४३ ॥

निन्दां करोषियस्तस्मिन्कृष्णेगुरुगुरोर्गुरौ । यस्मात्तस्मादिहैश्वर्यादचिराद्भ्रंशमेष्यसि
मम देवो जगन्नाथो बले! तस्माज्जनार्दनः । भवत्वहमुपेक्ष्यस्ते प्रीतिमानस्तु मे गुरुः ॥
एतावन्मात्रमप्येवं निन्दितो जगतोगुरुः । नावेक्षितं त्वया यस्मात्तस्माच्छापन्ददामिते
यथा मे शिरसः च्छेदादिदं गुरुतरं वचः । त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥
यथा च कृष्णान्न परं परित्राणं भवार्णवे । तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्

शौनक उवाच ।

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा गुरोर्वचनमप्रियम् । प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥

बलिरुवाच ।

प्रसीद तात ! मा कोपं कुरु मोहहते मयि । बलावलेपमत्तेन मयैतद्वाक्यमीरितम् ॥५०॥

मोहोपहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम ! ।
यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम् ॥ ५१ ॥

राज्यभ्रंशं वसुभ्रंशं प्राप्यैव न तथाप्यहम्। विषण्णोऽस्मि यथा तात! तथैवाविनयेकृते त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम्। संसारे दुर्लभास्ते तु गुरवो ये भवद्विधाः तत्प्रसीद न मे कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप!। त्वत्कोपदूषिया ताताहं परितप्ये न शापतः।

प्रह्लाद उवाच।

वत्स! कोपो न मोहेन जनितस्तेन ते मया। शापोदत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतोमम। यदि मोहेन मे ज्ञानंनक्षिप्तं स्यान्महासुर!। तत्कथं सर्वगं जानन्हरिंकिञ्चिच्छपाम्यहम् योऽयं शापो मयादत्तो भवतोऽसुरपुङ्गव!। भाव्यमेतेन नूनन्ते तस्मान्मात्वंविषीद वै अद्य प्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ। भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति॥

शापं प्राप्याथ मां वीर! संस्मरैथाः स्मृतस्त्वया।
तथा तथा यतिष्येऽहं श्रेयसा योज्यसे यथा॥ ५६॥

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रं विरराम महाद्युतिः। अजायत सगोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन् सर्वामरेश्वरे। देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा॥ ववुर्वाताः सुखस्पर्शा विरजस्कमभून्नभः। धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत॥६२ नोद्वेगश्चाप्यभूत्तत्र मनुजेन्द्रासुरेष्वपि। तदादि सर्वभूतानां भूम्यम्वरदिवौकसाम्॥६३ तं जातमात्रंभगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः। जातकर्मादिकं कृत्वा कृष्णं दृष्ट्वाच पार्थिव!

तुष्टाव देवदेवेशमृषीणाञ्चैव शृण्वताम्॥ ६४॥

ब्रह्मोवाच।

जयाद्येश! जयाजेय! जय सर्वात्मकात्मक। जय जन्मजरापेत! जयानन्त! जयाच्युत! जयाजित! जयामेय! जयाव्यक्तस्थिते! जय। परमार्थार्थसर्वज्ञ! ज्ञानज्ञेयात्मनिःसृत!

जयाशेष! जगत्साक्षिन्! जगत्कर्त्तः! जगद्गुरो!
जगतोऽस्यान्तकृद्देव स्थितिं पालयितुं जय॥ ६७॥
जयाशेष! जयाशेष! जयाखिल! हृदिस्थित!।
जयादिमध्यान्त! जय सर्वज्ञाननिधे! जय॥ ६८॥

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य! स्वयं हृष्टजनेश्वर!। योगिनां मुक्तिफलद! दमादिगुणभूषण!

जयातिसूक्ष्म ! दुर्ज्ञेय ! जयस्थूल ! जगन्मय ! ।
जय स्थूलातिसूक्ष्म ! त्वं जयातीन्द्रिय ! सेन्द्रिय ! ॥७० ॥

जय स्वमायायोगस्थ ! शेषभोग ! जयाक्षर !। जयैकदंष्ट्राप्रान्ताग्रसमुद्धृतवसुन्धर ! ॥
नृकेसरिन् ! जयारातिवक्षस्थलविदारण ! । साम्प्रतंजयविश्वात्मन्! जयवामन! केशव!
निजमायापटच्छन्न ! जगन्मूर्त्ते! जनार्दन ! । जयाजित ! जयानेकस्वरूपैकविध ! प्रभो!
वर्द्धस्व वर्धिताशेषविकारप्रकृते ! हरे ! । त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः ॥
न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे ! । न ज्ञातुमीशा मुनयः सनकाद्यानयोगिनः
त्वन्मायापटसम्वीते जगत्यत्र जगत्पते !। कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः
त्वमेवाराधितो येन प्रसादसुमुख ! प्रभो ! । स एकः केवलो देव ! वेत्तित्वांनेतरेजनाः
नन्दीश्वरेश्वरेशान ! प्रभो!वर्धस्ववामन !। प्रभवायास्यविश्वस्यविश्वात्मन् ! पृथुलोचन!

शौनक उवाच ।

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः । प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचाब्जसमुद्भवम् ॥
स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च । मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्
भूयश्चाहं स्तुतोदेव्यातस्याश्चापिप्रतिश्रुतम् । यथाशक्राय दास्यामित्रैलोक्यंहतकण्टकम्
सोऽहन्तथा करिष्यामिमहेन्द्रोजगतः पतिः । भविष्यति सहस्राक्षःसत्यमेतद्ब्रवीमिवः

ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान् ।
यज्ञोपवीतं भगवान् ददौ तस्मै बृहस्पतिः ॥ ८३ ॥

आषाढमददाद्दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः । कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं वेदमथाङ्गिराः ॥
अक्षसूत्रञ्च पुलहः पुलस्त्यः सितवाससी । उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवोच्चारभूषणाः ॥
शास्त्राण्यशेषाणितथासांख्ययोगोक्तयश्च याः । सवामनोजटीदण्डीछत्रीधृतकमण्डलुः
सर्वदेवमयो भूत्वा बलेर्ध्वरमभ्यगात् । यत्र यत्र पदम्भूयो भूभागे वामनो ददौ ॥८७
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्रातिपीड़िता । स वामनो जड़गतिर्मृदु गच्छन् सपर्वताम् ॥

साब्धिद्वीपवतीं सर्वाञ्चालयामास मेदिनीम् ॥ ८८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वामनप्रादुर्भाववर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलिशुक्रमन्त्रणम् ।

शौनक उवाच ।

सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षोभितां बलिः । पप्रच्छोशनसं शुद्धं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥१॥

आचार्य ! क्षोभमायाता साब्धिभूभृद्वना मही ।

कस्माच्च नासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः ॥ २ ॥

इति पृष्टोऽथ बलिनाकाव्योवेदविदाम्वरः । उवाच दैत्याधिपतिं चिरन्ध्यात्वामहामतिः

अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः । वामनेनेह रूपेण जगदात्मा सनातनः ॥४॥

स एष यज्ञमायाति तव दानवपुङ्गव !। तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही ॥५ ॥

कम्पन्ते गिरयश्चामी क्षुभितो मकरालयः । नैनं भूतपतिं भूमिः सर्वार्था वोढुमीश्वरम्

सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नरा । अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः ॥७ ॥

धारयत्यखिलान् देवो मन्त्रादींश्च महासुरः । इयमेव जगद्धेतोर्माया कृष्णस्य गह्वरी ॥

धार्यधारकभावेन यया संपीड़ितं जगत् । तत्सन्निधानादसुरा भागार्हा नासुरोत्तम !॥

भुञ्जते नासुरान् भागानमी ते नैव चाग्नयः ॥ ६ ॥

बलिरुवाच ।

धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम् ।

यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन् ! मत्तः कोऽन्योधिकः पुमान् ॥१०॥

यं योगिनः सदा युक्ताः परमात्मानमव्ययम् । द्रष्टुमिच्छन्तिदेवेशं स मेऽध्वरमुपैष्यति

होताभागप्रदोऽयश्च यमुद्गाता च गायति । तमध्वरेश्वरं विष्णुं मत्तः कोऽन्यउपैष्यति॥

सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे मदध्वरमुपागते । यन्मया काव्य ! कर्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि ॥१२

शुक्र उवाच ।

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर ! त्वया तु दानवा दैत्या मखभागभुजः कृताः

अयञ्च देवः सत्वस्थः करोति स्थितिपालनम्। विसृष्टेरनुचान्नेन स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः
त्वत्कृते भविता नूनं देवो विष्णुः स्थितौ स्थितः। विदित्वेतन्महाभाग! कुरुयत्नमनागतम्
त्वयाहि दैत्याधिपते! स्वल्पकेऽपिहि वस्तुनि। प्रतिज्ञानहि वोढव्यावाच्यं सामवृथाफलम्
नालन्दातुमहं देव! दैत्य! वाच्यंत्वया वचः। कृष्णस्य देवभूत्यर्थंप्रवृत्तस्य महासुर!

बलिरुवाच।

ब्रह्मन्! कथमहं ब्रूयामन्येनापिहि याचितः। नास्तीति किमु देवेन संसाराघौघहारिणा
व्रतोपवासैर्विविधैः प्रतिसंग्राह्यतेहरिः। स चेद्वक्ष्यतिदेहीतिगोविन्दः किमतोऽधिकम्
यदर्थमुपहाराद्या तपः शौचगुणान्वितैः। यज्ञाः क्रियन्ते देवेशः स मां देहीति वक्ष्यति
तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं मम। यन्मया दत्तमीशेशः स्वयमादास्यते हरिः॥

नास्ति नास्तीत्यहं वक्ष्ये तमप्यागतमीश्वरम्।
यदा वञ्चामि तं प्राप्तं वृथा तज्जन्मनः फलम्॥ २३॥

यज्ञेऽस्मिन्यदि यज्ञेशो याचते मां जनार्दनः। निजमूर्द्धानमप्यत्र तद्दास्याम्यविचारितम्
नास्तीति यन्मया प्रोक्तमन्येषामपि याचताम्। वक्ष्यामि कथमायाते तदनभ्यस्तमुच्यते
श्लाघ्य एव हि वीराणां दानादापत्समागमः। नाबाधकारि यद्दानं तदङ्गमलवत्स्मृतम्
मद्राज्येनासुखी कश्चिन्न दरिद्रो नचातुरः। नाभूषितो न चोद्विग्नो नस्रगादिविवर्जितः
हृष्टस्तुष्टः सुगन्धिश्च तृप्तः सर्वसुखान्वितः। जनः सर्वो महाभाग! किमुताहंसदासुखी
एतद्विशिष्टपात्रोऽयं दानबीजफलं मम। विदितं भृगुशार्दूल! मयैतत्त्वत्प्रसादतः॥२७॥
एतद्विजानता दानबीजं पतति चेद्गुरो!। जनार्दनमहापात्रे किन्न प्राप्तन्ततो मया॥
मत्तो दानमवाप्येशो यदि पुष्णाति देवताः। उपभोगाद्दशगुणं दानं श्लाघ्यतमं मम॥
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः। तेनाभ्येति न सन्देहो दर्शनादुपकारकृत्॥

अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधिनम्।
मां निहन्तुमनाश्चैव बधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात्॥ ३२॥

तन्मयं सर्वमेवेदं नाप्राप्यं यस्य विद्यते। स मां याचितुमभ्येति नानुग्रहमृते हरिः॥
यः सृजत्यात्मभूः सर्वं ... संहरेत्। स मां हन्तुं हृषीकेशःकथं यत्नं करिष्यति

एतद्विदित्वा न गुरो ! दानविघ्नकरेण च । त्वया भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते

शौनक उवाच ।

इत्येवं वदतस्तस्य संप्राप्तः स जगत्पतिः । सर्वदेवमयो चिन्त्यो मायावामनरूपधृक् ॥
तं दृष्ट्वा यज्ञवाटान्तःप्रविष्टमसुराः प्रभुम् । जग्मुः सभासदः क्षोभन्तेजसातस्यनिष्प्रभाः
जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे । बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः ॥
ततः संक्षोभमापन्नो न कश्चित्किञ्चिदुक्तवान् । प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास चेतसा ।
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान् । देवदेवपतिः साक्षी विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥४१
तुष्टाव यज्ञवह्निश्च यजमानमथर्त्विजः । यज्ञकर्माधिकारस्थान् सदस्यान् द्रव्यसम्पदः ॥
ततः प्रसन्नमखिलं वामनं प्रतितत्क्षणात् । यज्ञवाटस्थितं वीरः साधु साध्वित्युदीरयन्
स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा । पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः ॥

बलिरुवाच ।

सुवर्णरत्नसंघातं गजाश्वममितन्तथा । स्त्रियोवस्त्राण्यलङ्कारांस्तथा ग्रामांश्चपुष्कलान्
सर्वस्वं सकलामुर्वीं भवतो वा यदीप्सितम् । तद्ददामि शृणुष्व त्वं येनार्थीवामनःप्रियः
इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः । प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान् वामनाकृतिः

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन्! पदत्रयम् ।
सुवर्णग्रामरत्नानि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ॥ ४८ ॥

बलिरुवाच ।

त्रिभिः प्रयोजनं किन्ते पादैः पदवताम्वर ! ।
शतं शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान् ॥ ४६ ॥

वामन उवाच ।

एतावतैव दैत्येन्द्र ! कृतकृत्योऽस्मि मार्गताम् ।
अन्येषामर्थिनां वित्तमीहितं दास्यते भवान् ॥ ५० ॥

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः । ददौ तस्मैमहाबाहु र्वामनायपदत्रयम् ॥
पाणौतु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः । सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात् ॥५२

चन्द्रसूर्यौच नयनेद्यौर्मूर्द्धा चरणौ क्षितिः। पादाङ्गुल्यःपिशाचास्तुहस्ताङ्गुल्यश्चगुह्यकाः

विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
यक्षा नखेषु सम्भूता रेखाश्चाप्सरसस्तथा ॥ ५४ ॥

दृष्टौ ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः। तारकारोमकूपाणिरोमाणिच महर्षयः बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः। अश्विनौ श्रवणेतस्यनासावायुर्महात्मनः प्रसादश्चन्द्रमा देवो मनोधर्मः समाश्रितः। सत्यं तस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ग्रीवा दिति र्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा। स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्टा पूषाच वै भ्रुवौ॥ मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः। हृदयञ्चपरं ब्रह्मपुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः॥ पृष्ठेऽस्यवसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु। सर्वसूक्तानि दशनाज्योतींषि विमलप्रभाः॥ वक्षस्थले महादेवो धैर्यं चास्य महार्णवाः। उदरेचास्यगन्धर्वाः सम्भूताश्चमहाबलाः॥ लक्ष्मीर्मेधाधृतिःकान्तिः सर्वविद्याश्चवै कटिः। सर्वज्योतींषिजानीहि तस्य तत्परमंमहः तस्यदेवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम्। स्तनौकुक्षी च वेदाश्च उदरञ्च महामखाः॥ इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च। तस्य देवमयंरूपं दृष्ट्वा विष्णो र्महाबलाः॥ उपासर्पन्त दैत्येन्द्राः पतङ्गा इव पावकम्। प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः॥ कृत्वारूपं महाकायं जहाराशु स मेदिनीम्। तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे नाभौ विक्रममाणस्य सक्थिदेशस्थितावुभौ। परं विक्रमतस्तस्य जानुमूले प्रभाकरौ॥ विष्णोरास्तांमहीपाल! देवपालनकर्मणि। जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नंहत्वाचासुरपुङ्गवान् पुरन्दरायत्रैलोक्यं ददौ विष्णुर्जगत्पतिः। सुतलं नाम पातालमधस्ताद्वसुधातलात्॥ बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना। अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः॥ यत्त्वयासलिलं दत्तंगृहीतंपाणिनामया। कल्पप्रमाणं तस्मात्ते भविष्यत्यायुरुत्तमम्॥ वैवस्वते तथातीते बले! मन्वन्तरेह्यथ। सावर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति॥ साम्प्रतं देवराजाय त्रैलोक्यं सकलं मया। दत्तं चतुर्युगानाञ्च साधिका ह्येकसप्ततिः॥ नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः। तेनाहं परयाभक्त्या पूर्वमाराधितो बले!॥ सुतलंनाम पातालं त्वमासाद्यमनोरमम्। वसासुर! ममादेशं यथावत्परिपालयन् ७५॥

तत्र दिव्यवनोपेते प्रासादशतसङ्कुले। प्रोत्फुल्लपद्मसरसि स्रवच्छुद्धसरिद्वरे ॥ ७६ ॥
सुगन्धिधूपस्रग्वस्त्रवराभरणभूषितः। स्रक्चन्दनादिमुदितो गेयनृत्यमनोरमे ॥ ७७ ॥

पानान्नभोगान् विविधान् उपभुङ्क्ष्व महासुर!।
ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ त्वं सततं वृतः ॥ ७८ ॥

यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं करिष्यसि। तावदेतान्महाभोगानवाप्स्यसि महासुर!
यदा च देवविप्राणांविरोधं त्वंकरिष्यसि। बन्धिष्यन्तितदापाशावारुणास्त्वामसंशयम्
एतद्विदित्वा भवता मयाज्ञप्तमशेषतः। न विरोधः सुरैः कार्य्यो विप्रैर्वा दैत्यसत्तम!
इत्येवमुक्तो देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना। बलिःप्राह महाराज! प्रणिपत्य मुदायुतः ॥

बलिरुवाच।

तत्रासतो मे पाताले भगवन्! भवदाज्ञया। किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम्

श्रीभगवानुवाच।

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम् ॥ ८४ ॥
अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च ॥ ८५ ॥

शौनक उवाच।

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय त्रिदिवं तथा। व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥
प्रशशासयथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यपूजितः। सिषेवेच परान् कामान्बलिःपातालसंस्थितः
इहैव देवदेवेन बद्धोऽसौदानवोत्तमः। देवानां कार्य्यकरणे भूयोऽपि जगति स्थितः ॥
सम्बन्धी ते महाभाग! द्वारकायां व्यवस्थितः। दानवानांविनाशायभारावतरणाय च
यतोयदुकुले कृष्णो भवतः शत्रुनिग्रहे। सहायभूतः सारथ्यं करिष्यति बलानुजः ॥
एतत्सर्वं समाख्यातं वामनस्य च धीमतः। अवतारं महावीर! श्रोतुमिच्छोस्तवार्जुन!

अर्जुन उवाच।

श्रुतवानिह ते पृष्टं माहात्म्यं केशवस्य च। गङ्गाद्वारमितो यास्याम्यनुज्ञां देहि मे विभो

एवमुक्त्वा ययौ पार्थो नैमिषं शौनको गतः ॥ ६२ ॥

सूत उवाच ।

इत्येतद्देवदेवस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् । वामनस्य पठेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६३

बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः । बलेर्विष्णोश्च कथितं यः स्मरिष्यति मानवः

नाधयोव्याधयस्तस्यनच मोहाकुलंमनः । भविष्यतिकुरुश्रेष्ठ! पुंसस्तस्य कदाचन ॥६५

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टाप्तिश्च वियोगवान् ।
अवाप्नोति महाभागो नरः श्रुत्वा कथामिमाम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वामनचरित्रपठनश्रवणफलवर्णनं नाम
पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वराहावतारविषयेऽर्जुनप्रश्नः ।

अर्जुन उवाच ।

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः । सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम्

न जाने तस्यचरितं न विधिं नच विस्तरम् । न कर्मगुणसंस्थानं न चाप्यन्तंमनीषिणः

किमात्मको वराहोऽसौ किं मूर्त्तिः कास्य देवता ।
किं प्रमाणः किं प्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३ ॥

एतन्मे शंस तत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् । यथार्हश्च समेतानां द्विजातीनां विशेषतः ॥

शौनक उवाच ।

एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम् । महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥५॥

यथा नारायणो राजन्! वाराहं वपुरास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः

छन्दोगीभिरुदाराभिः श्रुतिभिःसमलङ्कृतः । मनः प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना

इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् । नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्त्तयेत्॥

पुराणं वेदमखिलं साङ्ख्यं योगश्च वेद यः।
कात्स्न्र्येन विधिना प्रोक्तं सौख्यार्थं वै वदिष्यति ॥ ९ ॥

विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ। प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः।
मनः सङ्कल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा। वसवो मरुतश्चैव गन्धर्व्वा यक्षराक्षसाः ॥

दैत्याः पिशाचाः नागाश्च भूतानि विविधानि च।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः म्लेच्छाश्च ये भुवि ॥ १२ ॥

चतुष्पादानिसर्व्वाणितिर्य्यग्योनिशतानि च। जङ्गमानिचसत्वानियच्चान्यज्जीवसंज्ञितम्
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते। निर्व्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥
हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः। शिखाभिर्विधमँल्लोकानशोषयत वह्निना
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः। विवर्णवर्णादग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः ॥
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः। सर्वविद्याः क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः ॥१७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम्। सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तु कोटयः ॥१८
तस्मिन्नहनि संप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम्। प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते। यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह ॥ २०॥
पूर्णे युगसहस्रान्ते सर्वे निःशेष उच्यते। यस्मिन् जीवकृतं सर्वे निःशेषं समतिष्ठत ॥
संहृत्य लोकानखिलान् सदेवासुरमानुषान्। कृत्वासुसंस्थां भगवानास्तएकजगद्गुरुः
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः।अव्ययः शाश्वतो देवो यस्यसर्वमिदंजगत्
नष्टार्ककिरणो लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते। त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥ २४ ॥
अपक्षिगणसम्पाते सर्वप्राणिहरे पथि। अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते ॥ २५ ॥
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम्। प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके। परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ॥२७॥

पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः।
शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन् ॥ २८ ॥

श्रीवत्सलक्षणधरं रक्तचन्दनभूषितम्। वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः सविद्युदिव तोयदः ॥

पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा। पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्यतिष्ठति ॥
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोके शुभावहः। किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागतः
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः। स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥
ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत्। नरान् देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा
ततः सञ्चिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिञ्जयः। सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति सतांगतिः
कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वै प्रजापतिः। नारायणं परं सत्यं नारायणः परं पदम् ॥
नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः। स स्वयम्भूरिति ज्ञेयः स स्रष्टाभुवनाधिपः
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः। यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते ॥
यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः। प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ॥
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः। यदस्य परमं रूपं न तत्पश्यन्तिदेवताः
प्रादुर्भावे तु यद्रूपन्तदर्चन्ति दिवौकसः। दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्ष्यन्ति देवताः ॥४०
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते। ग्राम्याणां सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ॥ ४१ ॥
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च। चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः ॥ ४२ ॥
चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः। तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थमात्मनः ॥
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रकम् ॥ ४३ ॥
सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्द्रुमौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसङ्कुलं तदा स वै सृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वराहावतारस्यपूर्वोपक्रमवर्णनं नाम
षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

२४७ वराहावतारचरित्रवर्णनम्।

शौनक उवाच।

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम्। प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥१॥

तत्तु वर्षसहस्रान्ते विभेदोद्र्ध्वमुखं विभुः। लोकसर्जनहेतोस्तु विभेदाधोमुखं नृप ! ॥
भूयोऽष्टधा विभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत्। चकार जगतश्चात्र विभागंसविभागकृत्
यच्छिद्रमूर्द्धमाकाशं विवराकृतितां गतम्। विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवोलोकचिकीर्षया। तत्र यत्सलिलंस्कन्नंसोऽभवत्काञ्चनोगिरिः
शैलैः सहस्रैर्महती मेदिनी विषमाभवत्। तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः ॥ ६ ॥
पीडिता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा। महामते भूरिवलं दिव्यं नारायणात्मकम् ॥
हिरण्मयं समुत्सृज्य तेजो वै जातरूपिणम्। अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः। पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधोमधुसूदनः
उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ॥ १० ॥

भगवानुवाच।

मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी।
रसातलं प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्वला ॥ ११ ॥

पृथिव्युवाच।

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर ! प्रसीद ॥१२ ॥

तव देहाज्जगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम्। ब्रह्माणमिह लोकानां भूतानां शाश्वतंविदुः ॥
तव प्रसादाद्देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः। तव क्रोधाद्धि वलवान् जनार्दनजितोवलिः।
धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। मनुःकृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनोघनः
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवो जलम्। नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञायज्ञस्य च क्रियाः

विद्यावेद्यश्च सत्वश्च ह्रीः श्रीः कीर्ति धृतिः क्षमा।
पुराणं वेदवेदाङ्गं सांख्ययोगौ भवाभवौ ॥ १७ ॥

जङ्गमं स्थावरञ्चैव भविष्यञ्च भवच्च यत्। सर्वन्तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितन्तव ॥१८
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः। सर्वलोकमनःकान्तः सर्वसत्वमनोहरः ॥१६॥
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः। दिव्यलोकमहास्कन्धः सत्यलोकप्रशाखवान् ॥

सागराकारनिर्यासो रसातलजलाश्रयः । नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः ॥२१॥
शीलाचारार्यगन्धस्त्वं सर्वलोकमयोद्रुमः । द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ॥२२॥
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः । सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगरुषाकुलः । पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ॥ २४ ॥

धीश्रीह्रीकान्तिभि र्नित्यं नदीभिरुपशोभितः ।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥ २५ ॥

त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायणमहार्णवः । कालोभूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ॥

त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः ।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ॥ २७ ॥

युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे । महाभारावताराय देव ! त्वं हि युगे युगे॥
त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः । द्वापरे रक्तसङ्काशः कृष्णःकलियुगे भवान्॥
वैवर्ण्यमभिधत्से त्वं प्राप्तेषु युगसन्धिषु । वैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ॥
भासि वासिप्रतपसित्वञ्च पासिविचेष्टसे । क्रुध्यसिक्षान्तिमायासि त्वं दीपयसिवर्षसि

त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वापयसि जाग्रसि ।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ॥ ३२ ॥

शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः । युगान्ताग्नावलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन

यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः ।
च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु ॥ ३४ ॥

यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्सङ्कीर्त्यसेऽच्युतः । ब्रह्माणमिन्द्रञ्चयमं रुद्रं वरुणमेव च
निगृह्य हरसे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे । सम्मानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया
परेण वपुषा देव ! तस्माच्चासि सनातनः । यस्माद्ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः ॥
न तेऽन्तं त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे । न क्षीयसे न क्षरसेकल्पकोटिशतैरपि

तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुरित्येव कीर्त्यसे ।
विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ३८ ॥

जगद्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे। विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम्। व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४१॥

तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ऋषिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥ ४२ ॥

अयनन्तस्यता: पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः। युगे युगेप्रनष्टाङ्गां विष्णो! विन्दसितत्वतः
गोविन्देतिततोनाम्नाप्रोच्यसेऋषिभिस्तथा। हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्वज्ञानविशारदाः
ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यते। वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ॥

त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे।
सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

ततः सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तत्वज्ञानविशारदैः। प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः ॥
प्रविद्युः सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे। निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ॥
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः। यत्त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत्
त्वं धारयसि भूतानि भवनं त्वं बिभर्षि च। यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसाचवलेन च
मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया। न हि तद्विद्यते भूतं त्वया यन्नात्र धार्यते
त्वमेव कुरुषे! देव! नारायण युगे युगे। महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥
तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलङ्गताम्। त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ! त्वामेव शरणंगताम् ॥
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः। त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम्

तावन्मेऽस्ति भयं देव! यावन्न त्वां ककुद्मिनम्।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥ ५५ ॥

उपमानं न ते शक्ताः कर्तुं सेन्द्रा दिवौकसः। तत्वं त्वमेव तद्वेत्सि निरुत्तरमतः परम्

शौनक उवाच।

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्गचक्रधृक्।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरिः ॥५७ ॥

अब्रवीच्च महादेवि! माधवीयं स्तवोत्तमम्। धारयिष्यति योमर्त्योनास्तितस्यपराभवः

लोकान्निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान्प्रतिपत्स्यते । एतदाश्चर्यसर्वस्वंमाधवीयंस्तवोत्तमम्
अधीतवेदः पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत् ॥ ६० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मा भैर्धरणि ! कल्याणि ! शान्तिं व्रज ममाग्रतः ।
एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम् ॥ ६१ ॥

शौनक उवाच ।

ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ।
किन्नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम् ॥ ६२ ॥

जलक्रीड़ारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थितः । अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्म संस्थितम्
शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः । नीलजीमूतसङ्काशं मेघस्तनितनिस्वनम् ॥
गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् । विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ॥
पीनोन्नतकटीदेशे वृषलक्षणपूजितम् । रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितोहरिः ॥६६॥
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम् । वेदपादो यूपदंष्ट्र क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥ ६७ ॥
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः । अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥६८॥
आज्यनासः स्रुवतुण्डःसामघोषस्वनोमहान् । सत्यधर्ममयःश्रीमान्कर्मविक्रमसत्क्रमः
प्रायश्चित्तनखोघोरः पशुजानुर्मखाकृतिः । उद्गाथा होमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः ॥

वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान् ॥ ७१ ॥
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ॥ ७२ ॥

उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः । नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥ ७३ ॥
छायापत्नीसहायो वै मणिश्रृङ्गइवोच्छ्रितः । रसातलतले मग्नां रसातलतलङ्गताम् ॥७४
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम् । ततः स्वस्थानमानीय वराहः पृथिवीधरः ॥
मुमोच पूर्वं मनसा धारिताञ्च वसुन्धराम् ।

ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥ ७६ ॥

चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे । एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥ उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा । अथोद्धृत्य क्षितिं देवोजगतःस्थापनेच्छया

पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ॥ ७८ ॥

रसाङ्गतामवनिमचिन्तविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक् ।

वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुलयपौरुषः ॥ ७६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वराहावतारचरिते पृथ्व्युद्धरणं नाम

सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

क्षीरोदमथनप्रकरणवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत ! यथाक्रमम् ।

न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ॥ १ ॥

कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः । तपसा कर्मणा वापि प्रसादात्कस्य तेजसा

सूत उवाच ।

यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक् । तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ॥ पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः । पुनः सञ्जीविनीं विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः ॥ जीवापयति दैत्येन्द्रान् यथा सुप्तोत्थितानिव । तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना॥ मृतसञ्जीविनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा । तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुहुः सर्वदानवाः । ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता या नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्वरक्षसाम् । न नागानामृषीणाञ्च न च ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु

तां लब्ध्वा शङ्कराच्छुक्रः परां निर्वृतिमागतः। ततो दैवासुरोघोरः समरः सुमहानभूत्
तत्र देवैर्हतान् दैत्यान् शुक्रोविद्याबलेन च। उत्थापयति दैत्येन्द्रान् लीलयैवविचक्षणः
एवम्विधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः। हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः। ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान् कमलोद्भवः।
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः॥ १२॥

ब्रह्मोवाच।

देवाः! श्रृणुत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम्। क्षिपतां दानवैः सार्द्धंसख्यमत्रप्रवर्त्तताम्
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः। सहायं वरुणंकृत्वाचक्रपाणिर्विबोध्यताम्
मन्थानं मन्दरं कृत्वाशेषनेत्रेण वेष्टितम्। दानवेन्द्रोबलिस्वामीस्तोककालंनिवेश्यताम्
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः। प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलः मन्थकार्यंप्रवर्त्यताम्
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम्। अलं विरोधेनवयंभृत्यास्तव बले! ऽधुना
क्रियताममृतोद्योगो व्रियतां शेषनेत्रकम्। त्वया चोत्पादितेदैत्य! अमृतेऽमृतमन्थने
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः। एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः
यथा वदत हे देवा! स्तथाकार्यं मयाऽधुना। शक्तोऽहमेकएवात्रमथितुं क्षीरवारिधिम्
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना। सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति। पालयिष्यामिवःसर्वानधुनास्नेहमास्थितः
एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा। मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम्
सखा भवत्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने। सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं जगत्॥२४
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारोभवेन्मम। यत्र स्थित्व भ्रमिष्यामिमथिष्येवरुणालयम्
कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद्वेष्टने मम। ततस्तु निर्गतौ देवौ कूर्मशेषौ महाबलौ॥
विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ। ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनंशेषकच्छपौ॥
त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते। किमु मन्दरकात्क्षुद्रातघुटिकासन्निभादिह

शेष उवाच।

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा। न मे ग्लानिर्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने॥२६॥

तत उत्पाट्यतंशैलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे। चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधःस्थितस्तदा
निराधारं यदा शैलं नशेकु र्देवदानवाः । मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा ॥ ३१ ॥
नारायणनिवासन्ते जग्मुर्वलिसमन्विताः । यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः॥३२
तत्रापश्यन्त तन्देवं सितपद्मप्रभं शुभम् । योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमच्युतम् ॥३३।
हारकेयूरनद्धाङ्गमहिपर्यङ्कसंस्थितम् । पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम् ॥३४॥
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानङ्गरुत्मता । स्तूयमानं समन्ताच्च सिद्धचारणकिन्नरैः ॥३५॥
आम्नायै र्मूर्त्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः । सव्यबाहूपधानं तन्तुष्टुवु र्देवदानवाः ॥३६

कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतो दिशम् ।

देवदानवा ऊचुः ।

नमो लोकत्रयाध्यक्ष ! तेजसामितभास्कर ! ॥ ३७ ॥
नमो विष्णो ! नमो जिष्णो ! नमस्ते कैटभार्दन ! ।
नमः सर्गक्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः ॥ ३८ ॥

रुद्ररूपाय शर्व्वाय नमः संहारकारिणे । नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने ॥३९॥
नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च । नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकाल महानल !
नमो नाभिह्रदोद्भूतपद्मगर्भमहाचल !। पद्मभूत ! महाभूत ! कर्त्रेहर्त्रे जगत्प्रिय ! ॥४१॥
जनिता सर्वलोकेश ! क्रियाकारणकारिणे । अमरारिविनाशाय महासमरशालिने॥४२॥
लक्ष्मीमुखाब्जमधुप ! नमः कीर्तिनिवासिने । अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम्
मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः । अनन्तवलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना ॥ ४४ ॥

मथ्यताममृतं देव ! स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ।
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्व्वं वचस्तदा ।
विहाय योगनिद्रान्तामुवाच मधुसूदनः ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

स्वागतं विबुधाः ! सर्वे किमागमनकारणम् ।
यस्मात्कार्य्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः ॥ ४६ ॥

नारायणेनैव मुक्ताः प्रोचुस्तत्र दिवौकसः। अमरत्वाय देवेश! मथ्यमाने महोदधौ॥

यथाऽमृतत्वं देवेश! तथा नः कुरु माधव!।

त्वया विना न तच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन!॥ ४८॥

प्राप्तुं तदमृतं नाथ! ततोऽग्रे भव नो विभो!।

इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः॥ ४९॥

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः।

वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः॥ ५०॥

विषभीतास्ततोदेवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः। मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरःसराः

सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना। दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवांस्तथा ५२

दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम्। नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु॥५३

ततो देवासुरैः सर्वैं जयशब्दपुरःसरम्। दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः॥५४

ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवादैत्यपुरःसराः। श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघोभूत्वाम्बुशीकरान्

ववर्षामृतकल्पांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः। भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासनः॥

मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः। अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत्सदा

ब्रह्मप्रोत्साहितादेवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम्। भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे॥

निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः। श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलाद्रुमाः॥

ततः फलानां वीर्य्येण पुष्पौषधिरसेन च। क्षीरसङ्घर्षणाच्चापि दधिरूपमजायत॥६०॥

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः। तदम्बुमेदसोत्सर्गाद्वारुणी समपद्यत॥ ६१॥

वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः। तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन्॥६२

ततोऽतिवेगाज्जगृहु र्नागेन्द्रं सर्वतोऽसुराः। मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत्

अभवच्चाग्रतोविष्णु र्भुजमन्दरबन्धनः। स वासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत॥

यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः।

ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा॥ ६५॥

भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततःपरम्।

ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ॥ ६६ ॥
पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ ।
द्विमूर्द्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो वलिस्तथा ॥६७ ॥

एतेचान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः । ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिताः ॥
बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः । उदधे मंथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥ ६६ ॥
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा । विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥
वारुणानि च भूतानि विविधानि महेश्वरः । पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ॥
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम् । न्यपतन् पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥
तेषां सङ्घर्षजाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन् मुहुः । विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम्
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् । विगतासूंनि सर्वाणिसत्वानिविविधानिच
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः । वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ॥ ७५ ॥
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि । महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ॥
तेषाममृतवीर्य्याणां रसानां पयसैव च । अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः॥
अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः । रसान्तरैर्विमिश्रञ्च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ॥७८॥
ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् । श्रान्ताःस्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतञ्च यत् ॥
ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा । चिरायितमिदञ्चापि सागरस्य तु मन्थनम्
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् । विधत्स्वैषां बलं विष्णो ! भवानेव परायणम्

विष्णुरुवाच ।

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिताः । क्षुभ्यतां क्रमशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम् ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे क्षीरोदमथनेऽष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

क्षीरोदमथनवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्तेमहोदधिम् । तत्पयः सहिताभूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम्॥

ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात् । प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमःशीतांशुरुज्ज्वलः ॥

श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी । सुरादेवीसमुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥३॥

कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः ।
मरीचिविकचः श्रीमान् नारायण उरोगतः ॥ ४ ॥
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तवकाञ्चितः ।
अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसन्निभम् ॥ ५ ॥
आपूरितदिशाम्भागं दुःसहं सर्वदेहिनाम् ।
तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छितापरिलङ्घिताः ॥ ६ ॥
उपाविशन्नब्धितटे शिरः संगृह्य पाणिना ।
ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत ॥ ७ ॥
ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा ।
तेनाग्निनापरिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ॥ ८ ॥

दग्धाश्चाप्यर्द्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः । प्रधाना देवदैत्याश्च भीषिनास्तेन वह्निना

अनन्तरं समुद्भूतास्तस्मात् डुण्डुभजातयः । कृष्णासर्पामहादंष्ट्रारक्ताश्च पवनाशनाः ॥

श्वेतपीतास्तथाचान्ये तथा गोनसजातयः । मशकाभ्रमरादंशा मक्षिकाः शलभास्तथा॥

कर्णशल्याः कृकलासा अनेकाश्चैव बभ्रमुः ।
प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रास्तथा हि विषजातयः ॥ १२ ॥
शार्ङ्गहालाहलामुस्तवत्सकं गुरुभस्मगाः ।

नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः ।
येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ॥ १३ ॥
अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम् ।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ॥ १४ ॥
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम् ।
नीलोत्पलाभैः कुसुमैः कृतार्घं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम् ॥ १५ ॥
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहि भयाश्रयन्तम् ।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे ॥ १६ ॥
केचिद्विलोक्यैव गता ह्यभावं निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः ।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्त्ववाप्ता विषमामवस्थाम् ॥ १७ ॥
श्वासेन तस्य निर्दग्धा ततो विष्णिवन्द्रदानवाः ।
दग्धाङ्गारनिभाजाता ये भूता दिव्यरूपिणः ।
ततस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम् ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च ।
किं कृत्वा ते प्रियं जाये देवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ॥ १६ ॥
तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसन्निभः ।
उवाच कालकूटस्तु भिन्नदुन्दुभिनिस्वनः ॥ २० ॥

कालकूट उवाच ।

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भवः ।
यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः ॥ २१ ॥
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः ।
सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तुं देवान् सदानवान् ॥ २२ ॥
सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः ।

मा मां ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम् ॥ २३ ॥

श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः । ब्रह्मविष्णूपुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम्
निवेदितास्ततोद्वास्थैस्ते गणेशैःसुरासुराः। अनुज्ञाताः शिवेनाथ विविशुर्गिरिशान्तिकम्
मन्दरस्यगुहांहैमीं मुक्तामालाविभूषिताम् । सुस्वच्छमणिसोपानांवैदूर्यस्तम्भमण्डिताम्
तत्र देवासुरैः सर्वैं र्जानुभिर्धरणींगतैः । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम् ॥२७

देवदानवा ऊचुः ।

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष ! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे ।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ॥ २८ ॥

नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे । नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ॥ २९ ॥
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे । ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ॥
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे । साङ्ख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते ॥
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयङ्कर । रंहसे देवदेवाय नमस्ते च सुरोत्तम ! ॥३२॥
एकवीराय शर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने । उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने ॥ ३३ ॥
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे । लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ॥
ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च। अग्र्यायचैवचोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ॥३५॥
रजसेचैवसत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने । अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ॥
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः। भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च
उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च । ऋतुमन्वन्तकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ॥
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने । नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥
धन्विने रथिने चैव यतये ब्रह्मचारिणे। इत्येवमादिचरितैः स्तुतं तुभ्यं नमोनमः ॥४०॥
एवं सुरासुरैःस्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः । उवाच वाक्यंभीतानांस्मितान्वितशुभाक्षरम्

श्रीशङ्कर उवाच ।

किमर्थमागता ब्रूत त्रासग्लानमुखाम्बुजाः ! ।
किं वाऽभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् ।

इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः ॥ ४२ ॥

सुरासुरा ऊचुः ।

अमृतार्थे महादेव ! मथ्यमानेमहोदधौ । विषमद्भुतमुद्भूतंलोकसंक्षयकारकम् ॥४३ ॥
स उवाचाथसर्वेषां देवानां भयकारकः । सर्वान्वा भक्षयिष्यामि अथवा मा पिबस्तथा
तमशक्तावयं ग्रस्तुं सोऽस्मान् शक्तोवलोत्कटः । एषनिश्वासमात्रेण शतपर्वसमद्युतिः ॥
विष्णुः कृष्णः कृतस्तेनयमश्च विषमात्मवान् । मूर्च्छिताःपतिताश्चान्येविप्रणाशङ्किताःपरे
अर्थोऽनर्थक्रियांयाति दुर्भगानां यथा विभो ! दुर्वलानाञ्च संकल्पो यथाभवतिचापदि
विषमेतत्समुद्भूतं तस्माद्वामृतकांक्षया । अस्माद्भयान्मोचयत्वं गतिस्त्वञ्च परायणम्

भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः ।

यज्ञाग्रभुक् सर्वहविः सौम्यः सोमः स्मरान्ततकृत् ॥ ४६ ॥

त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत् ।

रक्षास्मान् भक्षसंकल्पाद्विरूपाक्ष ! विषज्वरात् ॥ ५० ॥

तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद्भवः । भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम्

तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्यं सुरासुराः ! ।

तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥ ५२ ॥

इत्युक्त्वाहृष्टरोमाणो वाष्पगद्गदकण्ठिनः । आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथाइव मेनिरे ॥

सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः ॥ ५३ ॥

ततोऽव्रजद् द्रुतगतिना ककुद्मिना हरोऽम्बरे पवनगतिर्जगत्पतिः ।

प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनै र्विगृहीत शुभ्रचामरैः ।

पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः॥५४॥

आसाद्य दुग्धसिन्धुतं कालकूटं बिषं यतः । ततो देवोमहादेवो विलोक्यविषमंविषम् ॥
च्छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद्वामपाणिना। पीयमानेविषेतस्मिंस्ततोदेवाःमहासुराः
जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान् । चक्रुःशक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा
स्तुवन्तश्चैव देवेशं प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा । कण्ठदेशे ततःप्राप्ते विषेदेवमथाब्रुवन् ॥

विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः । शोभते देव ! कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे॥
भृङ्गमालानिभंकण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव । इत्युक्तः शङ्करोदेवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ॥
पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्तं ममन्थुरब्धिं विविधप्रकारैः ॥ ६१ ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे क्षीरोदमथनवर्णनं नामोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

क्षीरोदमथनवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत । धन्वन्तरिः स भगवान् आयुर्वेदप्रजापतिः
मदिरा चायताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी । ततोऽमृतञ्च सुरभिः सर्वभूतभयापहा ॥
जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभञ्च महामणिम् । गजेन्द्रञ्चसहस्राक्षो हयरत्नञ्च भास्करः
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् । च्छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः
पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा । धन्वन्तरिस्ततोदेवो वपुष्मानुदतिष्ठत ॥ ५ ॥
श्वेतंकमण्डलुंविभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति । एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ॥ ६॥
अमृतार्थे महानादो ममेदमिति जल्पताम् ।
ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः ॥ ७ ॥
स्त्रीरूपमतुलंकृत्वा दानवानभिसंसृतः । ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः ॥ ८ ॥
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥८ ॥
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च । प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान् सहितादैत्यदानवाः
ततस्तदमृतंदेवो विष्णुरादाय वीर्यवान् । जहारदानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा । विष्णोः सकाशात् संप्राप्य संग्रामे तुमुलेसति

ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम् । राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत्तदा ॥
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा । आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम् । चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ॥
तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरोमहत् । चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयन् वसुधातलम् ॥१५
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै । शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते ॥
विहायभगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः । नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् समकम्पयत् ॥
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः । ते सुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तोरुधिरं बहु
असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले । भिन्नानिपट्टिशश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः
तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशन्तदा । रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः ॥२०॥
अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते । ततो हलहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः ॥२१॥

अन्योऽन्यं च्छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति ।
परिघैश्चायसैः पीतैः सन्निकर्षैश्च मुष्टिभिः ॥ २२ ॥
निघ्नतां समरेऽन्योऽन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत् ।
च्छिन्धि भिन्धि प्रधावेति पातयेभिसरेति वै ॥ २३ ॥

विश्रूयन्ते महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः । एवं सुतुमुलेयुद्धे वर्त्तमाने महाभये ॥२४॥
नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम् । तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि ॥
चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसत्तमान् ॥ २५ ॥
ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम् ।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यमुत्तमम् ॥ २६ ॥
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयङ्करं करिकरबाहुरच्युतः ।
महाप्रभं दनुकुलदैत्यदारणं तथोज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम् ॥ २७ ॥
मुमोच वै तपनमुदग्रवेगवान् महाप्रभं रिपुनगरावदारणम् ।
सम्वर्त्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा ॥ २८ ॥
व्यदारयद्दितितनयान् सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ।

दहत् क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरितं प्रसह्य तानसुरगणान्नकृन्तत ॥ २९ ॥
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमयः पिशाचवत् ।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तथा ॥ ३० ॥
महाचला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः ।
अथान्तराभरजनना: प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः ॥ ३१ ॥
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य भास्वराः ।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना महीधराः पवनहताः समन्ततः ॥ ३२ ॥
परस्परं भृशमभिगर्जितं मुहू रणाजिरे भृशमभि सम्प्रसंते ।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणै र्महेषुभिः पवनपथं समावृणोत् ॥ ३३ ॥
विदारयन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा ।
ततो महीं लवणजलञ्च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ॥ ३४ ॥
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशाम्य च ।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ॥ ३५ ॥
विनादयन् स्वदिशमुपेत्य सर्वशस्ततोगताः सलिलधरा यथा गतम् ।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलिभिरथामरैः सह ॥ ३६ ॥
इति श्री मत्स्यपुराणे क्षीरोदमथनवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रासादभवनादीनां निर्माणवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

प्रासादभवनादीनां निवेशं विस्तराद्वद । कुर्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः ॥१॥

सूत उवाच ।

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा । नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ॥२॥
ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च । वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः ।
सङ्क्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्यरूपिणा ॥ ४ ॥
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् । पुरान्धकवधे घोरे घोररूपस्य शूलिनः ॥५
ललाटस्वेदसलिलमपतद्भुवि भीषणम् । करालवदनं तस्मात् भूतमुद्भूतमुल्वणम् ॥६
ग्रसमानमिवाकाशं सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत्पतितं क्षितौ ॥ ७ ॥
तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले । तथापि तृप्तिमगमन्न तद्भूतं यदा तदा ॥ ८ ॥
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम् । क्षुधाविष्टन्तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ॥ ९॥
ततः कालेन सन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाहवे । वरं वृणीष्व भद्रन्ते ! यदभीष्टन्तवानघ ! ॥
तमुवाच ततोभूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् । भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तश्च शूलिना ॥ ११॥
ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः । स्वदेहेनान्तरिक्षञ्च रुन्धानं प्रपतद्भुवि ॥ १२॥
भीतभीतैस्ततोदेवै र्ब्रह्मणा चाथ शूलिना । दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः ॥ १३॥
येन यत्रैवचाक्रान्तं स तत्रैवावसत्पुनः । निवासात्सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते ॥
अवष्टब्धाश्च तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः । प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः
स्थास्यामहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः ।
ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः ॥ १६ ॥
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्मिन्भविष्यति । वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति
अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति । यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारोभविष्यति
एव मुक्तस्ततोहृष्टः सवास्तुरभवत्तदा । वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात्ततः प्रभृतिशान्तये ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे वास्तुयज्ञविधानवर्णनं नामै-
कपञ्चाशदधिक द्विशततमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गृहनिर्माणकालवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम् ।

यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ॥ १ ॥

चैत्रेव्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः । वैशाखे धेनुरत्नानि ज्यैष्ठे मृत्युं तथैव च ॥

आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् । श्रावणे भृत्यलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥

पत्नीनाशोऽश्विने विन्द्यात्कार्तिके धनधान्यकम् ।

मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥४॥

लाभश्च बहुशो विन्द्यात् अग्निं माघे विनिर्दिशेत् ।

फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ॥ ५ ॥

अश्विनीरोहिणीमूलं उत्तरात्रयमैन्दवम् । स्वातीहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥

आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्ववाराः शुभावहाः । वर्ज्यंव्याघातशूलेचव्यतीपातातिगण्डयोः

विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु कारयेत् ।

श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे ॥ ८ ॥

तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत् । चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत्

स्तम्भोच्छ्रायादिकर्तव्यमन्यत्तु परिवर्जयेत् । प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीषुचैव हि

पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत् । श्वेतारक्ता तथापीता कृष्णाचैवानुपूर्वशः ।

विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्यं परीक्षणम् । विप्राणांमधुरास्वादाकटुकाक्षत्रियस्य तु

तिक्ताकषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते । अरत्निमात्रेवैगर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः ॥

घृतमामशरावस्थं कृत्वावर्तिचतुष्टयम् । ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णंसर्वदिङ्मुखम् ॥

दीप्तौपूर्वादिगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः । वास्तुः सामूहिकोनाम दीप्यते सर्वतस्तुयः ॥

शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च ।
अरत्निमात्रमधोगर्ते परीक्ष्यं खातपूरणे ॥ १६ ॥

अधिकेश्रियमाप्नोति न्यूनेहानिं समे समम् । फालकृष्टेऽथवादेशे सर्ववीजानि वापयेत्
त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि । ज्येष्ठोत्तमाकनिष्ठाभूर्वर्जनीयतरा सदा॥१८॥
पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा च सेचयेत् । एकाशीति पदं कृत्वा रेखाभिःकनकेन च
पश्चात्पिष्टेनचालिप्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः । दशपूर्वायतालेखा दशचैवोत्तरायताः ॥
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव । एकाशीति पदं कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु

पदस्थान् पूजयेद्देवां स्त्रिशत्पञ्चदशैव तु ।
द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदशः ॥ २२ ॥
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत ।
ईशानकोणादिषु तान् पूजयेद्धविषा नरः ॥२३ ॥

शिखोचैवाथपर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः । सूर्य्यसत्यौ भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ । गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा ॥२५
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः । असुरः शोषपापौ चरोगोहिर्मुख्यएवच
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा । बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद्बुधः । आपश्चैवाथसावित्रो जयोरुद्रस्तथैवच
मध्ये नवपदे ब्रह्मातस्याष्टौचसमीपगान् । साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामतःशृणु
अर्य्यमासविताचैवविवस्वान्विबुधाधिपः । मित्रोऽथराजयक्ष्माचतथापृथ्वीधरःस्मृतः
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृतः । आपश्चैवापवत्सश्च पर्य्यन्योऽग्निर्दितिस्तथा
पदिकानान्तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः । तन्मध्ये तु बहिर्विंश द्विपदास्ते तु सर्वशः ॥

अर्य्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा ।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः ॥ ३३ ॥
वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक् ।
वायुं यावत्तथारोगात् पितृभ्यः शिखिनं पुनः ॥ ३४ ॥

मुख्यात्भृशं तथा शोषाद्वितथं यावदेव तु । सुग्रीवाददितिं यावन् मृगात्पर्जन्यमेवच
एतेवंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु । एतेषां यस्तुसम्पातः पदं मध्यं समं तथा
मर्मचैतत्समाख्यातं त्रिशूलं कोणगञ्च यत् । स्तम्भं न्यासेषुवर्ज्यानितुलाविधिषुसर्वदा
कीलोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद् यत्नतो जनः । सर्वत्र वास्तुर्निर्दिष्टो पितृवैश्वानरायतः
मूर्द्धन्यग्निः समादिष्टो मुखेचापःसमाश्रितः । पृथ्वीधरोऽर्यमाचैवस्तनयोस्तावधिष्ठितौ
वक्षस्थले चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः । नेत्रयोर्दितिपर्जन्यौ श्रोत्रेऽदितिजयन्तकौ
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः । सूर्यसोमादयस्तद्वत् बाह्वोः पञ्च च पञ्च च

रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ ।
सावित्रः सविता तद्वद्धस्तं दक्षिणमास्थितौ ॥ ४२ ॥

विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ । पूषाच पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने ॥
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वं समाश्रितौ । पार्श्वेतु दक्षिणे तद्वत् वितथः सगृहक्षतः ॥

ऊर्वोर्यमांबुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धर्वपुष्पकौ ।
जङ्घयो भृंगसुग्रीवौस्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः ॥ ४५ ॥

जयशक्रौ तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा । मध्ये नव पदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते ॥
चतुःषष्टि पदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणास्मृतः । ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदास्तथा

वहिः कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिताः ।
विंशति द्विपदाश्चैव चतुःषष्टि पदे स्मृताः ॥ ४८ ॥

गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते । शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ॥
सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम् । हीनाधिकां गतावास्तोसर्वथातु विवर्जयेत्
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं विवर्जयेत् । चतुःशालं त्रिशालञ्च द्विशालं चैकशालकम् ।

नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे गृहनिर्माणवर्णनं नाम
द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

भवननिर्माणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

चतुःशालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपन्नामतस्तथा । चतुःशालश्चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम्
नाम्ना तत् सर्वतोभद्रं शुभं देवनृपालये । पश्चिमद्वारहीनश्च नन्द्यावर्तः प्रचक्षते ॥ २ ॥
दक्षिणद्वारहीनन्तु वर्द्धमानमुपाहृतम् । पूर्वद्वारविहीनं तत्स्वस्तिकं नाम विश्रुतम् ॥
रुचकंचोत्तरद्वारविहीनं तत्प्रचक्षते । सौम्यशालाविहीनं यत्त्रिशालं धान्यकञ्च तत् ॥
क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम् । शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम् ॥ ५॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं शोकमोह विनाशनम् । शालया याम्ययाहीनंयद्विशालंतुशालया
कुलक्षयकरंनृणां सर्वव्याधिविनाशनम् । हीनं पश्चिमया यत्तु पक्षघ्नं नाम तत्पुनः ॥७॥

मित्र बन्धून् सुतान् हन्ति तथा सर्वभयापहम् ।
याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम् ॥ ८ ॥

क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथापुत्र फलप्रदम् । यम सूर्यश्च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालिकम् ॥ ६॥
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत् । उदक्पूर्वे तु शालेहं दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत् ॥
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम् । धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यांयद्विशालकम्
तच्छस्त्रभयदंनृणां पराभवभयावहम् । चुल्लीपूर्वा पराभ्यां तु साभवेन्मृत्युसूचनी ॥१२
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम् । कार्यमुत्तरयाम्याभ्यांशालाभ्यांभयदंनृणाम्॥
सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि विशालानि सदाबुधैः । अथातः संप्रवक्ष्यामि भवनंपृथिवीपतेः
पञ्चप्रकारं तत्प्रोक्तमुत्तमादि विभेदतः । अष्टोत्तरंहस्तशतं विस्तरश्चोत्तमोमतः ॥ १५॥
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयतेचाष्टभिः करैः । चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते
युवराजस्य वक्ष्यामि तथाभवनपञ्चकम् । षड्भिःषड्भिस्तथाशीतिहीयतेतत्रविस्तरात्
त्र्यंशेन चाधिकंदैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते । सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्

चतुःषष्टिस्तुविस्तारात्षड्भिःषड्भिस्तुहीयते। पञ्चस्वेतेषुदैर्घ्यञ्चषड्भागेनाधिकंभवेत्
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्। चतुश्चतुर्भिर्हीनास्यात् करषष्टिः प्रविस्तरे
अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते। सामन्तामात्यलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भि र्हीयते क्रमात्। चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषु शस्यते

शिल्पिनां कञ्चुकीनाञ्च वेश्यानां गृहपञ्चकम्।
अष्टाविंशत् कराणान्तु विहीनं विस्तरे क्रमात्॥ २३॥

द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत्। दूतीकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्॥
चतुर्थांशाधिकंदैर्घ्यं विस्तारोद्वादशैव तु। अर्धार्धकरहानिःस्याद्विस्तारात्पञ्चशःक्रमात्
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम्। तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्॥
चत्वारिंशत्तुविस्ताराच्चतुर्भिर्हीयते क्रमात्। पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यञ्च षड्भागे नाधिकंभवेत्
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम्। द्वात्रिंशत्तिकराणान्तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात्
आषोड़शादितिपरं नूनमन्तेवसायिनाम्। दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेनाथ पादिकम्॥
अधिकंदैर्घ्यमित्याहु ब्राह्मणादेः प्रशस्यते। सेनापते र्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु॥३०
नृपवासगृहंकार्य्यं भाण्डागारन्तथैव च। सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे॥

वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा॥३१॥

अन्तरप्रभवानाञ्च स्व पितु र्गृहमिष्यते। तथा हस्तशतादर्द्धं गदितं वनवासिनाम्॥
सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्यासहितेऽन्विते। चतुर्दश हृतेव्यासे शालान्यासःप्रकीर्तितः॥
पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः। तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता
विप्रस्य महतीशाला न दैर्घ्यं परतोभवेत्। दशाङ्गुलाधिका तद्वत् क्षत्रियस्य न विद्यते
पञ्चत्रिंशत्करावैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश। तावत्करैव शूद्रस्य युतापञ्च दशाङ्गुलैः॥३६॥

शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत्।
सोष्णीषंनाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत्॥ ३७॥

पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भन्तदुच्यते। समन्ताद्वीथिकायत्र सुस्थितं तदिहोच्यते
शुभदंसर्वमेतत्स्यां च्चातुर्वर्णे चतुर्विधम्। विस्तरात् षोडशो भागस्तथाहस्तचतुष्टयम्॥

प्रथमोभूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात्प्रहीयते। द्वादशांशेनसर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ४०
पक्केष्टकाभवेद्भित्तिः षोड़शांशेन विस्तरात्। दारवैरपिकल्पास्यात्तथा मृन्मयभित्तिका
गर्भमानेन मानन्तु सर्ववास्तुषु शस्यते। गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ॥४२॥

संयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयोभवेत्।
द्वारशाखा सुबाहुल्यमुच्छ्राय करसम्मितैः ॥ ४३ ॥

अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां पृथुत्वं शस्यतेबुधैः। उदुम्बरोत्तमाङ्गञ्च तदर्धार्धं प्रविस्तरात् ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे भवननिर्माणवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्तम्भमाननिर्णयवर्णनम्।

सूत उवाच।

अथातः संप्रवक्ष्यामि स्तम्भमान विनिर्णयम्। कृत्वास्वभुवनोच्छ्रायंसदासप्तगुणंबुधैः१
अशीत्यंशः पृथुत्वं स्यादग्रेणावगुणैःसह। रुचकश्चतुरःस्यात्तु अष्टास्रो वज्र उच्यते ॥
द्विवज्रःषोड़शास्रस्तु द्वात्रिंशास्रःप्रलीनकः। मध्यप्रदेशे यस्तम्भो वृत्तोवृत्तइति स्मृतः॥
एतेपञ्च महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु। पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः ॥ ४ ॥

स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ॥ ५ ॥

त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुनः। हीनं हीनं चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु
वासगेहानि सर्वेषां प्रवेशे दक्षिणेन तु। द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु
पूर्वेणेन्द्रं जयन्तञ्चद्वारं सर्वत्रशस्यते। याम्यञ्च वितथञ्चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ॥८॥
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणञ्च प्रशस्यते। उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं तु शुभदम्भवेत्॥९॥
तथावास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत्। द्वारे तु रथ्ययाविद्धे भवेत् सर्वकुलक्षयः ॥

तरुणाद्वेषवाहुल्यं शोकः पङ्केन जायते। अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ॥ ११ ॥

व्यथाप्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्नि भयं भवेत्।

विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृतं भवेत् ॥ १२ ॥

गृहभर्तुर्विनाशःस्यात् गृहेण च गृहे कृते। अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत्

तथा शस्त्रमयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु।

उच्छ्राया द्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा वेधो न जायते ॥ १४ ॥

स्वयमुत्पाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम्। स्वयंवापिहितेविद्यात् कुलनाशंविचक्षणः

मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत्। द्वारोपरि च यद्द्वारं तदन्तकमुखं स्मृतम्

अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः। वज्रन्तु सङ्कटं मध्ये सद्योभर्तुर्विनाशनम्॥

तथान्यपीड़ितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत्। मूलद्वारात्तथान्यत्तु नाधिकं शोभनं भवेत् ॥

कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभि र्मूलद्वारन्तु शोभयेत्। पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिनाचाक्षतोदकैः ॥

भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः।

उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः ॥ २० ॥

प्लक्षश्चोत्तरतोधन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये। कण्टकीक्षीरवृक्षश्च आसन्नः सफलो द्रुमः ॥

भार्य्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा।

न च्छिन्द्यात् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ॥ २२ ॥

पुन्नागाशोकवकुलशमीतिलकचम्पकान्। दाड़िमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान्

जम्बीरपूगपनसद्रुमकेतकीभि र्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः।

यन्नालिकेरकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति ॥२४ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे स्तम्भमाननिर्णयवर्णनं नाम

चतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

———

पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

भवननिर्माणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरंतथा । परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्य्यात्स्तम्भोच्छ्रायंविचक्षणः
न देवधूर्तसचिवचत्वराणां समन्ततः । कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःखशोकभयं ततः ॥ २ ॥
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतःशुभः । पृष्ठतः पृष्ठभागस्तु सव्यावर्तः प्रशस्यते ॥
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा । सर्वकामफलोनॄणां सम्पूर्णो नाम वामतः ।
एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् । अथ सांवत्सरैप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ॥ ५ ॥

रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् ।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम् ॥ ६ ॥

शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगैः । स्नापितं विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम् ।
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम् । ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः ॥ ८ ॥
पायसं भोजयेद्विप्रान् होमन्तु मधुसर्पिषा । वास्तोष्पतेप्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा
सूत्रपाते तथा कार्य्यमेवं स्तम्भोदये पुनः । द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ॥१०।
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा । ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेयेस्तम्भरोपणम् ॥
प्रदक्षिणश्च कुर्वीत वास्तोः पद्विलेखनम् । तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ॥
प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ठा कृतोदकम् । सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेदने ॥ १३ ॥

न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः ।
न श्रृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत् ॥ १४ ॥
एभिर्विलिखितं कुर्य्याद्दुःखशोकभयादिकम् ।
यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत् ॥ १५ ॥

स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम् । आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः पुरुषं यदि

तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मनः। वास्तवङ्के तद्विजानीयान्नरशल्यं भयप्रदम्॥
अङ्गानान्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत्। तदङ्गसम्भवं विन्द्यात्तत्र शल्यं विचक्षणः॥
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुर्विलङ्घिते। तत्तु शल्यं विजानीयात् खरशब्देति भैरवे॥
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः। धनं तत्र विजानीयाद्भागे वास्वाम्यधिष्ठिते
सूत्रच्छेदेभवेन्मृत्युर्व्याधिः कीले त्वधोमुखे। अङ्गारेषुतथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम्

कम्बुशल्येषु जानीयात् पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित्।
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे॥ २२॥
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत्।
कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत्॥ २३॥

मृत्युः स्थानच्युतेकुम्भे भग्नेबन्धं विदुर्बुधाः। करसङ्ख्याविनाशे तु नाशंगृहपतेर्विदुः
विजौषधिविहीनेतुभूतेभ्योभयमादिशेत्। ततःप्रदक्षिणेनान्यानन्यसेत्स्तम्भान्विचक्षणः
यस्माद्भयकरं नृणां योजिताह्यप्रदक्षिणम्। रक्षांकुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम्॥

तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत्।
प्रागुदक्प्रवणं कुर्य्याद्दिङ्मूढन्तु न कारयेत्॥ २७॥

स्तम्भं वा भवनंवापिद्वारं वासगृहं तथा। दिङ्मूढे कुलनाशः स्यान्नच संवर्द्धयेद् गृहम्
यदिसंवर्द्धयेद्गेहं सर्वदिक्षु विवर्द्धयेत्। पूर्वेण वर्द्धितं वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा॥
दक्षिणे वर्द्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः। पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारक॥
वर्द्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम्। आग्नेये यत्र वृद्धिःस्यात् तदग्निभयदं भवेत्
वर्द्धितं राक्षसेकोणे शिशुक्षयकरं भवेत्। बद्ध्वापि तन्तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत्
ईशान्यां अन्नहानिःस्यात् वास्तौसंवर्द्धितेसदा। ईशानेदेवतागारं तथा शान्तिगृहंभवेत्
महानसन्तथाग्नेये तत्पार्श्वेचोत्तरेजलम्। गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्येस्थापयेद्बुधः॥
वधस्थानं बहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च। धनधान्यञ्च वायव्ये कर्मशालान्ततो बहिः

एवं वास्तु विशेषः स्यात् गृहभर्तुः शुभावहः॥ ३५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे भवननिर्माणवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दार्वाहरणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम् । धनिष्ठापञ्चके मुक्त्वा विष्ट्यादिकमतःपरम्
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्वनं बुधः । प्रथमं बलिपूजाञ्च कुर्य्याद्वृक्षस्य सर्वदा ॥
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते । अन्यथा न शुभं विन्द्यात् याम्योपरि निपातनम् ॥
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत् । कृताधिवासं विहगैरनिलानलपीड़ितम् ॥४॥
गजावरुग्णञ्च तथा विद्युन्निर्घातपीड़ितम् । अर्द्धशुष्कं तथा दारुभग्नशुष्कं तथैवच ॥५॥
चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसङ्गमजन्तथा । श्मशानकूपनिलयं तड़ागादिसमुद्भवम् ॥ ६ ॥
वर्जयेत्सर्वथादारुयदीच्छेद्विपुलांश्रियम् । तथा कण्टकिनोवृक्षान् नीपनिम्वविभीतकान्
श्लेष्मातकानाम्रतरून् वर्जयेद् गृहकर्मणि । आसनाशोकमधुकसर्जशालाःशुभावहाः ॥
चन्दनं पनसन्धन्यं सुरदारुहरिद्रवः । द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वाभवनं शुभम् ॥
बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत् । एकैव शिंशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकीतथा
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः । स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः
एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः । तरुच्छेदे महापीतेगोधा विन्द्याद्विचक्षणः

माञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत् ।
अरुणे सरठं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत् ॥ १३ ॥
कपिले मूषकान्विद्यात् खड्गाभे जलमादिशेत् ।
एवंविधं सगर्भन्तु वर्जयेद्वास्तु कर्मणि ॥ १४ ॥

पूर्वच्छिन्नन्तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः । व्यासेन गुणिते दैर्घ्यअष्टाभिर्विहृते तथा ॥
यच्छेषमायतं विद्यादष्टभेदं वदामि वः । ध्वजो धूमश्च सिंहश्च वृषभः खर एव च ॥
हस्तीध्वांक्षश्च पूर्वाद्याः करशेषाभवन्त्यमी । ध्वजःसर्वमुखोधन्यः प्रत्यग्द्वारोविशेषतः

उदङ्मुखो भवेत्सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिःसमुदाहृतः ॥ १८ ॥
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिःसिंहः प्रकीर्तितः । पञ्चभिर्वृषभःप्रोक्तोविकोणस्थाश्चवर्जयेत्
तमेवाष्टगुणंकृत्वा कर्राशिं विचक्षणः । सप्तविंशाहृतेभागे ऋक्षं विद्याद्विचक्षणः ॥२०॥
अष्टभिर्भाजितेऋक्षेयःशेषःसव्ययो मतः । व्ययाधिकं न कुर्वीत यतोदोषकरस्भवेत् ॥
आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ॥ २१ ॥
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो मङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु ॥
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात् प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः।
सन्तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सधूपम् ।२३

इति श्रीमत्स्यपुराणे गृहप्रवेशवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशदधिकद्विततमोऽध्यायः

क्रियायोगविधिवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

क्रियायोगः कथं सिद्ध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यत् लोकेषु विद्यते ॥ २ ॥
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवतार्चानुकीर्तनम् । देवयज्ञोत्सवश्चापि बन्धनाद्ये न मुच्यते ॥
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते । शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तंगदाधरम् ॥४॥

च्छत्राकारंशिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम्। तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ॥
क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम्। द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ॥६॥
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत। खड्गोगदाशरःपद्मं दिव्यं दक्षिणतो हरेः।
धनुश्च खेटकश्चैव शङ्खचक्रे च वामतः। चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिः ॥
दक्षिणेन गदापद्मं वासुदेवस्य कारयेत्। वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते। यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥

अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तंनिवेशयेत् ॥ ११ ॥

वामतस्तुभवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना। गरुत्मानग्रतोवापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता
श्रीश्चपुष्टिश्च कर्तव्येपार्श्वयोः पद्मसंयुते। तोरणश्चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम् ॥१३
देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम्। पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥१४।
तथाकल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः। एवंविधोभवेद्विष्णो स्त्रिभागेनास्य पीठिका ॥
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः। अतःपरं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः १६
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजःस्फुटम्। त्रसरेणुःसविज्ञेयो बालाग्रन्तैरथाष्टभिः ॥
तदष्टकेन लिक्षा तु यूकालिक्षाष्टकैर्मता। यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदंगुलम् ॥१८॥

स्वकीयांगुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशांगुलम्।
मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥१९॥

सौवर्णीराजतीवापि ताम्री रत्नमयी तथा। शैलीदारुमयीचापि लोहसंघमयी तथा॥२०॥
रीतिकाधातुयुक्तावा ताम्रकांस्यमयी तथा। शुभदारुमयीवापि देवतार्चा प्रशस्यते ॥
अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु। गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥

आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ॥ २३ ॥
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत्।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टन्तु यद्भवेत् ॥ २४ ॥

भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः ।

पीठिका भागतःकार्या नातिनीचा नचोच्छ्रिता ॥ २५ ॥

प्रतिमामुखमानेन नवभागान् प्रकल्पयेत् । चतुरंगुला भवेद्ग्रीवाभागेन हृदयंपुनः ॥२६

नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना । निम्नत्वेविस्तरत्वे च अंगुलंपरिकीर्तितम्

नाभेरधस्तथामेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत् । द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरंगुले ॥ २८ ॥

जङ्घेद्विभागेविख्यातेपादौ च चतुरंगुलौ । चतुर्दशांगुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः ॥

ऊद्र्ध्वमानमिदंप्रोक्तं पृथुत्वञ्चनिबोधत । सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः ! ॥

चतुरंगुलंललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च । द्व्यंगुलन्तु हनुर्ज्ञेयमोष्ठः स्वांगुलसम्मितः॥

अष्टांगुले ललाटे च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते । अर्द्धांगुलाभ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता ॥

उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णा तीक्ष्णा प्रशस्यते ।

अक्षिणी द्व्यंगुला यामे तदर्धं चैव विस्तरे ॥ ३३ ॥

उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे । तारकार्धविभागेन दृष्टिःस्यात्पञ्चभागिका॥३४

द्व्यंगुलन्तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथांगुलम् । नासाग्रविस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम् ॥

नासापुटबिलंतद्वदर्धांगुलमुदाहृतम् । कपोले द्व्यंगुले तद्वत् कर्णमूलाद्विनिर्गते ॥ ३६॥

हन्वग्रमंगुलं तद्वद्विस्तारो द्व्यंगुलो भवेत् । अर्द्धांगुलाभ्रुवोराजी प्रणालसदृशी समा॥

अर्द्धांगुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे । निष्पावसदृशन्तद्वन्नासापुटदलं भवेत् ॥ ३८॥

सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडंगुले ।

कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयौ ऊद्र्ध्वन्तु चतुरंगुलौ ॥ ३९ ॥

द्व्यंगुलौकर्णपार्श्वौ तु मात्रामेकान्तु विस्तृतौ । कर्णयोरुपरिष्टाच्चमस्तकं द्वादशांगुलम्

ललाटात्पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशांगुलम् । षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः

सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदंगुलः । केशान्तात्हनुका तद्वदंगुलानि तु षोडश ॥

ग्रीवा मध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकांगुलः । अष्टांगुला भवेद्ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते॥४३

स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा । स्तनयोरन्तरं तद्वद् द्वादशांगुलमिष्यते ॥४४॥

स्तनयोर्मण्डलंतद्वद्यवद्वलं परिकीर्तितम् । चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौस्मृतौ

द्वितालश्चापि विस्ताराद्वक्षस्थलमुदाहृतम् । कक्षे षड़ंगुलेप्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ॥४६॥
चतुर्दशांगुलौपादावङ्गुष्ठौ तु त्रियंगुलौ । पञ्चांगुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं तथोन्नतम् ॥

अंगुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी ।
तस्याः षोड़शभागेन हीयते मध्यमांगुली ॥ ४८ ॥

अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते । पर्वत्रयेणचांगुल्योगुल्फौ द्व्यंगुलकौ मतौ ॥
पार्ष्णिर्द्व्यंगुलमात्रस्तु कलयोच्चः प्रकीर्तितः । द्विपर्वांगुष्ठकःप्रोक्त परीणाहश्च द्व्यंगुलः
प्रदेशिनी परीणाहस्त्र्यंगुलः समुदाहृतः । कन्यसा चाष्टभागेन हीयते क्रमशोद्विजाः॥

अंगुलेनोच्छ्रयःकार्योः ह्यंगुष्ठस्य विशेषतः । वि
तदर्धेन तु शेषाणामंगुलीनान्तथोच्छ्रयः ॥ ५२ ॥

जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अंगुलानि चतुर्दश । जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशांगुलः ॥५३॥
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरंगुलः । जानूच्छ्रयोऽङ्गुलप्रोक्तो मण्डलन्तु त्रिरंगुलम् ॥
उरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकांगुलः । एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरंगुलौ ॥
द्व्यंगुलश्च तथामेढ्रं परीणाहः षड़ंगुलम् । मणिबन्धादधोविद्यात् केशरेखास्तथैव च ॥
मणिकोशपरीणाहश्चतुरंगुल इष्यते । विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशांगुला ॥ ५७ ॥

द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशांगुलौ ।
नाभिमध्यपरीणाहो द्विचत्वारिंशदंगुलः ॥ ५८ ॥

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्याञ्चैव तु वेष्टनम् । कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौप्रोक्तौ षडंगुलौ

अष्टांगुलान्तु विस्तारे ग्रीवाञ्चैव विनिर्दिशेत् ।
परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ॥६० ॥

आयामो भुजयोस्तद्वत् द्विचत्वारिंशदंगुलः । कार्यन्तु बाहुशिखरं प्रमाणेषोड़शांगुलम्
ऊर्द्ध्वं यद्वाहुपर्यन्तं विन्द्यादष्टांगुलं शतम् । तथैकांगुलहीनन्तु द्वितीयं पर्व उच्यते ॥
बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशांगुलः । षोड़शोक्तःप्रबाहुस्तु षट्कलोग्रकरोमतः ॥
सप्तांगुलं करतलं पञ्चमध्यांगुलीमता । अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते ॥६४॥
तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते । मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥

अंगुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः । अंगुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरंगुलः ॥६६॥
शेषाणामंगुलीनान्तु भागो भागेन हीयते ।
मध्यमामध्यभागन्तु अंगुलद्वयमायतम् ॥ ६७ ॥
यवो यवेन सर्वासान्तस्यास्तस्याः प्रहीयते । अंगुष्ठपर्वमध्यन्तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ।
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम् । पर्वार्धे तु नखान्विद्यादंगुलीषु समन्ततः ॥ ६९ ॥
स्निग्धंश्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः । निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतःकलयोच्छ्रितम्
तत्रैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
स्त्रियःकार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः ॥ ७१ ॥
चतुर्दशांगुलायाममुदरं नाम निर्दिशेत् । नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चित्श्लक्ष्णभुजास्ततः
किञ्चिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा । नासाग्रीवा ललाटञ्च सार्द्धमात्रं त्रिरंगुलम्
अध्यर्द्धांगुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः । अधिकंनेत्रयुग्मन्तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् ॥
ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धांगुलोच्छ्रया । एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च
तव चालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ॥ ७५ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रतिमानिर्माणवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवाकारप्रमाणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः ।
दशतालःस्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा ॥ १ ॥
वराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः । मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा
अतःपरं प्रवक्ष्यामि ब्रह्माकारमुत्तमम् । स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥२॥

शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटोविभुः। जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च सः॥४॥
बाहुवारणहस्ताभो वृत्तजङ्घोरुमण्डलः। ऊर्द्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः ॥५
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः। हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा ॥ ६ ॥
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः। पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलंकृतः॥
आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः। खेटकं वामहस्ते तु शङ्खश्चैव तु दक्षिणे८॥
शक्तिं दण्डं त्रिशूलञ्च दक्षिणेषु निवेशयेत्। कपालं वामपर्श्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च॥६
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः। वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः॥
नृत्यन्दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा। तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोड़शैव तु ॥११॥
शङ्खं चक्रं गदाशार्ङ्गं घण्टातत्राधिकाभवेत्। तथाधनुः पिनाकञ्च शरो विष्णुमयस्तथा
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः। तीक्ष्णनासाग्रदशनः करालवदनो महान्॥१३॥
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः। न मूलायतने कार्यं भैरवस्तु भयङ्करः॥ १४॥

नारसिंह वराहोवा तथान्येऽपि भयङ्कराः।
नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कर्तव्या देवताः क्वचित् ॥१५॥
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी ॥१६॥

कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसाधननाशिनी। वक्रनासा तु दुःखाय सङ्क्षिप्ताङ्गी भयङ्करी
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी। दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा

हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्।
शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत्॥ १९॥

पाणिपादविहीनो योजायते मारकोमहान्। जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षस्थला तु या। सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा
एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः। स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद्दर्शयेद्वचम्॥२२॥
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम्। प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः
नृत्यद्भृङ्गीरिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः। सर्वेहृष्टास्तु कर्तव्याःस्तुवन्तः परमेश्वरम्

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरो गुह्यकनायकानाम् ।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रै र्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ॥ २५ ॥
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयन्ददद्भिः ।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवाकारप्रमाणवर्णनं नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवाकारप्रमाणवर्णनम् ।

सूतउवाच ।

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् । अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम्
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलयायुतः । उमार्धेचापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ॥२
वासुकिर्दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् । बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणेकरे
त्रिशूलं वापि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥ ३ ॥
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलन्तु विशेषतः ॥ ४ ॥
वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः । उपवीतञ्च कर्तव्यं मणिमुक्तामयन्तथा ॥ ५ ॥
स्तनभारं तथार्धेतु वामेपीनं प्रकल्पयेत् । परार्ध्यमुज्ज्वलंकुर्य्याच्छ्रोण्यर्धेतु तथैव च ॥
लिङ्गार्द्धमूर्ध्वगं कुर्य्यात् व्यालाजिनकृताम्बरम् । वामेलम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम्
नानारत्नसमोपेतं दक्षिणेभुजगान्वितम् । देवस्य दक्षिणं पादंपद्मोपरिसुसंस्थितम् ॥८॥
कञ्चिदर्धे तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु ।
रत्नैर्विभूषितान् कुर्य्यादङ्गुलीष्वङ्गुलीयकान् ॥ ६ ॥
सालक्तकं तथापादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा । अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम्॥१०॥
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुतद्विजाः । संस्थानन्तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम्

चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषणम्। लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम् ॥
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामेकुचभरेकरम्। द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम् ॥१३॥

सुप्रतिष्ठं सुवेषञ्च तथार्धेन्दुकृताननम्।
वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता ॥१४॥

शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललिताननाा। सवालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्वला ॥१५॥
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित्। हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी॥१६॥
वामांसन्देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः। दक्षिणन्तु वहिःकृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा

स्कन्धं वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलजैः क्वचित्।
वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ॥ १८ ॥

कटिसूत्रत्रयंचैव नितम्बे स्यात्प्रलम्बकम्। जया च विजयाचैव कार्तिकेयविनायकौ
पार्श्वयोर्दर्शयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान्। माला विद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः
एतद्रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता। शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २१॥

वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम्।
बाहुद्वयञ्च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ॥ २२॥

शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्तांगुलिविभ्रमम्। चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्याद्गदाभृतः ॥
शङ्खञ्चैवेतरे दद्यात् कट्यर्धं भूषणोज्वलम्। पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम्
दक्षिणार्धे जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम्। भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम् ॥ २५॥
द्वितीयञ्चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम्। व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम्
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम्। शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ॥
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम्। तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनीवामकूर्परम् ॥

दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम्।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥ २९

दक्षिणं कटिसंस्थन्तु करं तस्याः प्रकल्पयेत्। कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि ॥
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत्। नारसिंहन्तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ॥

रौद्रं सिंहासनं तद्वत् विदारितमुखेक्षणम्। स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तन्दितेः सुतम्
विनिर्गतान्त्रजालञ्च दानवं परिकल्पयेत्। वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥३३॥
युध्यमानश्च कर्तव्यः कचित्करणबन्धनैः। परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः॥
दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खड्गखेटकधारिणम्। स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः॥३५॥
तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्वणम्। पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत्
अधस्ताद्वामनं तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम्। दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत्
भृङ्गारधारिणं तद्वद्वलिं तस्य च पार्श्वतः। बन्धनञ्चास्य कुर्वन्तं गरुडन्तस्य दर्शयेत्

मत्स्यरूपं तथा मात्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत्।
एवं रूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः॥ ३६॥

ब्रह्माकमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः। हंसारूढः क्वचित्कार्य्यः क्वचिच्च कमलासनः
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः। कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे॥४१॥
वामेदण्डधरं तद्वत् स्तुवञ्चापि प्रदर्शयेत्। मुनिभिर्देवगन्धर्वैःस्तूयमानं समन्ततः॥४२॥
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन् शुक्लाम्बरधरं विभुम्। मृगचर्मधरञ्चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम्

आज्यस्थालिं न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम्॥ ४४॥

अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्य्याः पैतामहेपदे। कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम्॥
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम्। दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम्॥ ४६॥
स्थापयेत्स्वेष्टनगरेभुजान्द्वादश कारयेत्। चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वनेग्रामे द्विबाहुकः॥
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शरःशूलं तथैवच। वरदश्चैकहस्तः स्यादथचाभयदो भवेत्॥
एतेदक्षिणतोज्ञेयाः केयूरकटकोज्वलाः। धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता॥४९
खेटकं ताम्रचूडश्च वामहस्तेतु शस्यते। द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि॥
चतुर्भुजे शक्तिपाशो वामतो दक्षिणे त्वसिः। वरदोभयदोवापि दक्षिणःस्यात्तुरीयकः
विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं व्यालयज्ञोपवीतिनम्॥
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम्। स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलञ्चापरे तथा॥५२॥

मोदकं परशुञ्चैव वामतः परिकल्पयेत् । बृहत्वात् क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम्

युक्तन्तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।
कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ॥ ५५ ॥
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् ।
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ॥ ५६ ॥

लोचनत्रयसम्पन्नां पद्मेन्दुसदृशाननाम् । अतसीपुष्पसङ्काशां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । सुचारुदशनान्तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ॥५८ ॥
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् । त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गंचक्रं तथैवच
तीक्ष्णं बाणं तथाशक्तिं वामतोऽपि निबोधत । खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुशमेव च ॥
घण्टांवा परशुञ्चापि वामतः सन्निवेशयेत् । अधस्तान्महिषन्तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ॥
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् । रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फारितेक्षणम् ६२
वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् । वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ॥६३॥

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् ।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि ॥ ६४ ॥

स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैःसन्निवेशयेत् । इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः ॥६५ ॥
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम् । पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ॥६६॥
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम् । वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम् ॥६७ ॥

पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम् ।
छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत् ॥ ६८ ॥
सिंहासनगतञ्चापि गन्धर्वगणसंयुतम् ।
इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्य्यादुत्पलधारिणीम् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नानादेवप्रतिमाप्रमाणवर्णनं नामोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

———

षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानादेवप्रतिमाप्रमाणवर्णनम् ।

सूत उवाच

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः ! ।
रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ॥ १ ॥

सप्ताश्वञ्चैकचक्रञ्च रथं तस्य प्रकल्पयेत् । मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम् ॥ २ ॥

नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम् । स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा॥

चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत् ।
वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ ॥ ४ ॥

प्रतिहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ ।
कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ ॥ ५ ॥

लेखनीकृतहस्तञ्च पार्श्वे धातारमव्ययम् ।
नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद्दिवाकरम् ॥ ६ ॥

अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसन्निभः । अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयोः

भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः । पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत्॥

वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम् । दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ॥९॥

बालार्कसदृशं तस्य वदनञ्चापि दर्शयेत् । यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ॥ १० ॥

कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् । ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्वलम् ॥

कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ।
तथ यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ॥ १२ ॥

महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम् । सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥१३॥

महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किङ्करास्तथा । समन्ताद्दर्शयेत्तस्य सौम्यासौम्यान्सुरासुरान्

राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालञ्च नैर्ऋतम्। नरारूढं महामायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम्॥
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसन्निभम्। नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम्॥
वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम्। शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम्॥
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम्। वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम्॥
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम्। मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम्॥
कुवेरञ्च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलंकृतम्। महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम्॥
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा। हारकेयूररचितं सिताम्बरधरं सदा॥ २१॥

गदाधरञ्च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम्।
नरयुक्तविमानस्थं एवं रीत्या च कारयेत्॥ २२॥

तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम्। त्रिशूलपाणिनं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम्॥
मातॄणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः। ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा॥२४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः। महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता॥
जटा मुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा। कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्या चतुर्भुजा॥२६॥
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना। रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता॥ २७॥
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा। वैष्णवी विष्णुसदृशा गरुडे समुपस्थिता॥ २८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा। सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता॥ २९॥

वाराहीञ्च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम्।
वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी॥ ३०॥

गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी। इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम्॥३१॥
गजासनगतां देवीं लोचनैर्बहुभिर्वृताम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम्॥

तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम्।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम्॥ ३३॥
दंष्ट्राकरालवदनां कुर्य्याच्चैव कृशोदरीम्।
कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम्॥ ३४॥

कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम् । मस्तिष्काक्तश्च विभ्राणां शक्तिकां दक्षिणेकरे
गृध्रस्था वायसस्था वा निर्मांसा विनतोदरी । करालवदनातद्वत्कर्तव्या सा त्रिलोचना

चामुण्डा वद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा ।
दिग्वासाः कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी ॥ ३७ ॥

सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनी ध्वजसंयुता । विनायकश्च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ॥
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः । वीणाहस्तत्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ॥

श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् ।
सुयौवनां पीतगण्डां रक्तोष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम् ॥ ४० ॥
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम् ।
सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ॥ ४१ ॥

पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुण्डलालकैः । कञ्चुकाबद्धगात्रौ च हारभूषौ पयोधरौ
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ । पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥
मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् । नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ॥
पार्श्वतस्याःस्त्रियःकार्य्याश्चामरव्यग्रपाणयः । पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता
करिभ्यांस्नाप्यमानासौभृङ्गाराभ्यामनेकशः । प्रक्षालयन्तौ करिणौभृङ्गाराभ्यांतथापरौ

स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः ।
तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ॥ ४७ ॥
पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः ।
नागाश्चैव तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः ॥ ४८ ॥

अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वन्तु पौरुषी । फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्याद्विजिह्वाबहवःसमाः
पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः । निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलोविकृताननः । दिग्वासा जटिलस्वद्वच्छ्वागोमायुनिषेवितः
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशैः समावृतम् । दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायुधम् ।

पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम् ॥ ५३ ॥

दक्षिणे पुष्पबाणञ्च वामे पुष्पमयं धनुः । प्रीतिःस्याद्दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता

रतिश्च वामपार्श्वेतु शयनं सारसान्वितम् । पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा ॥

पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च । सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान् कुसुमायुधः

संस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद्विस्मास्मितवक्त्रकम् ।

एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया । विस्तरेण न शक्नोति वृहस्पतिरपि द्विजाः ! ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे नानादेवप्रतिमालक्षणवर्णनं नाम षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पीठिकालक्षणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः । पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत्॥

भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगतीमता । वृत्तोभागस्तथैकःस्याद्वृतः पटलभागतः

भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्त्रिभागतः ।

भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ॥ ३ ॥

प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीयावदेवतु । निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्वै शेषपट्टिका ॥ ४ ॥

वारिनिर्गमनार्थन्तु तत्र कार्य्यःप्रणालकः । पीठिकानान्तुसर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम्

विशेषान् देवताभेदान् शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ! ।

स्थण्डिला वाथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ॥६॥

पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मावार्धशशिस्तथा । त्रिकोणादशमीतासांसंस्थानं वा निबोधत

स्थण्डिला चतुरस्रातु वर्जिता मेखलादिभिः। वापीद्विमेखला ज्ञेया यक्षीचैव त्रिमेखला

चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् । मण्डलावर्तुलायातु मेखलाभिर्मणप्रिया ॥

रक्ता द्विमेखलामध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् । मेखलात्रयसंयुक्ता षड़स्रावज्रिका भवेत्
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किञ्चिद्ध्रस्वा तु मूलतः । तथैव धनुषाकारा सार्द्धचन्द्रा प्रशस्यते
त्रिशूलसदृशीतद्वत् त्रिकोणाह्यूर्द्ध्वतोमता । प्रागुदक्प्रवणा तद्वत्प्रशस्तालक्षणान्विता
परिवेषंत्रिभागेन निर्गमं तत्र कारयेत् । विस्तारं तत्प्रमाणञ्च मूलेचाग्रे ततोद्ध्र्वतः॥१३
जलमार्गश्च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः । लिङ्गस्यार्द्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता
मेखला तत्त्रिभागेन खातञ्चैव प्रमाणतः । अथवा पादहीनन्तु शोभनं कारयेत्सदा॥१४

उत्तरस्थं प्रणालञ्च प्रमाणादधिकारयेत् ।
स्थण्डिलायामथारोग्यं धनं धान्यञ्च पुष्कलम् ॥ १५ ॥

गोप्रदा च भवेद्यक्षी वेदी संपत्प्रदाभवेत् । मण्डलायां भवेत्कीर्तिर्वरदापूर्णचन्द्रिका ॥

आयुःप्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत् ।
पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणशत्रुनाशिनी ॥१७ ॥

देवस्य यजनार्थन्तु पीठिकादश कीर्तिताः । शैले शैलमयींदद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा
दारुजे दारुजां कुर्यात् मिश्रेमिश्रांतथैवच । नान्ययोनिस्तुकर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः

अर्चायामासमन्दैर्घ्यं लिङ्गायामसमन्तथा ।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत् ॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षणम् ॥ २० ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पीठिकालक्षणवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

———

द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

लिङ्गलक्षणवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम् । सुस्निग्धञ्च सुवर्णञ्च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणः

प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते। लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम्
चतुरस्रेसमेगर्त्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत्। वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्च्चा वा लिङ्गमेव च ॥३॥
प्रागुत्तरेण लीनन्तु दक्षिणा परयाश्रितम्। पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत् ॥४॥
पूर्वेणचापरंद्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम्। द्वारं विभज्य पूर्वन्तु एकविंशतिभागिकम् ॥
ततो मध्यगतंज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रंप्रकल्पयेत्। तस्यार्द्धन्तु त्रिधाकृत्वा भागञ्चोत्तरतस्त्यजेत्
एवं दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत्। भागार्द्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यन्तदिह शस्यते
पञ्चभागविभक्ते वा त्रिभागे जैष्ठ्यमुच्यते। भाजिते नवधागर्भे माध्यमं पाञ्चभागिकम्

एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्।
समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम् ॥ ६ ॥

ज्येष्ठमद्धर्धंकनीयोऽर्धंतथामध्यममध्यमम् । एवंगर्भःसमाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत्
ज्येष्ठन्तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमन्त्रिविधन्तथा। कन्यसं त्रिविधं तद्वत् लिङ्गभेदा नवैव तु
नाभ्यर्ध्रमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः। भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भञ्चतुरस्रकम्

अष्टास्रं मध्यमं ज्ञेयं भागं लिङ्गस्य वै ध्रुवम्।
विकीर्णे चेत्ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः ॥ १३ ॥

अष्टास्रंकारयेत्तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु। षोड़शास्रीकृतं पश्चाद्वर्तुलं कारयेत्ततः ॥ १४ ॥

आयामा तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतम्।
माहेश्वरं त्रिभागन्तु ऊद्र्ध्वंवृत्तं त्ववस्थितम् ॥ १५ ॥

अधस्ताद्ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रोविधीयते। अष्टास्रोवैष्णवोभागो मध्यस्तस्यउदाहृतः॥
एवं प्रमाणसंयुक्तं लिङ्गवृद्धिप्रदम्भवेत्। तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः ॥१७
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत्। चतुर्धातद्विभज्याथ विष्कुम्भन्तु प्रकल्पयेत् ॥
देवतायतने सूत्रं भागत्रयविकल्पितम्। अधस्ताच्चतुरस्रन्तु अष्टास्रं मध्यभागतः ॥
पूज्यभागस्ततोऽर्द्धन्तु नाभिभागस्तथोच्यते। आयामे यद्भवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके
चतुरस्रार्द्धं परित्यज्य अष्टास्रस्यतु यद्भवेत्। तस्याप्यर्द्धंपरित्यज्य ततोवृत्तन्तु कारयेत्
शिरःप्रदक्षिणं तस्य संश्रितं मूलतोन्यसेत्। ज्येष्ठपूज्यं भवेल्लिङ्गमभस्ताद्विपुलञ्च यत्

शिरसा च सदा निम्नंमनोज्ञंलक्षणान्वितम् । सौम्यन्तु दृश्यते लिङ्गन्तद्वैवृद्धिप्रदं भवेत्
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणेसर्वतः समम् । एवम्विधन्तु यल्लिङ्गं भवेत्तत्सार्वकामिकम्
अन्यथा यद्भवेल्लिङ्गं तदसत्संप्रचक्षते । एवंरत्नमयंकुर्यात् स्फाटिकं पार्थिवं तथा ॥२५
शुभं दारुमयञ्चापि यद्वा मनसि रोचते ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे लिङ्गलक्षणवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् । वद सूत ! यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः ॥ १॥

सूत उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् । कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणञ्च यथाक्रमम्
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा । माघेवासर्वदेवानांप्रतिष्ठाशुभदाभवेत्
प्राप्यपक्षं शुभंशुक्लमतीते दक्षिणायने । पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी ।
आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृत्वा बहुफला लभेत् ॥ ५ ॥

आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च । ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥
हस्ताश्विनीरेवती च पुष्योमृगशिरस्तथा । अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते
बुधोबृहस्पतिःशुक्रस्त्रयोऽप्येते शुभग्रहाः । एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रञ्च प्रशस्यते ॥८॥
ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च ।
निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम् ॥ ६ ॥

शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते । लग्नेऋक्षेप्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ॥ १० ॥

अयने विषुवे तद्वत् षड़शीतिमुखे तथा। एतेषु स्थापनंकार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११॥
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा। मुहूर्तेस्थापनंकुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः॥१२
प्रासादस्योत्तरेवापि पूर्वेवा मण्डपो भवेत्। हस्तान् षोड़शकुर्वीतदशद्वादश वा पुनः ॥
मध्येवेदिकयायुक्तः परिक्षिप्तः समन्ततः। पञ्चसप्तापि चतुरः करान् कुर्वीतवेदिकाम् ॥
चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपःस्याच्चतुर्मुखः। प्लक्षद्वारंभवेत्पूर्वं याम्येचौदुम्बरं भवेत् ॥
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे। भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानिचोच्छ्रये॥१६॥

सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम्।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ॥ १७ ॥
कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत्।
अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥ १८ ॥

चूतपल्लवसंच्छन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान्। सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ॥
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः। ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥
ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत्। पताकाजलदाकारामध्येस्यान्मण्डपस्यतु
गन्धधूपादिकंकुर्यात् स्वैस्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्। बलिश्चलोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत्

ऊर्द्ध्वन्तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः।
संहितायान्तु ये मन्त्रा तद्दैवत्याः श्रुतौ स्मृताः ॥२३ ॥
तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा ॥ २४ ॥

अथवा सप्तरात्रन्तु कार्यं स्यादधिवासनम्। एवं सतोरणंकृत्वा अधिवासनमुत्तमम् ॥
तस्याप्युत्तरतःकुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम्। तदर्द्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः ॥
आनीय लिङ्गमर्च्चां वा शिल्पिनः पूजयेद्बुधः। वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः
क्षमध्वमितितान् ब्रूयाद्यजमानोऽप्यतः परम्। देवं प्रस्तरणेकृत्वा नेत्रज्योतिःप्रकल्पयेत्
अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः। सर्वतस्तु बलिं दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसैः

शक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम्।

विप्राणाञ्चार्चनं कुर्य्याद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥ ३० ॥

गां महीं कनकञ्चैव स्थापकाय निवेदयेत् । लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः ॥

ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने । हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः

मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिष्वपि स्मृतः । एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत्॥

मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम् ।

वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वान् अमङ्गल्यविनाशनम् ॥ ३४ ॥

लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः ।

त्रिधा विभज्य पूज्यायां लक्षणं स्याद् विभाजकम् ॥ ३५ ॥

लेखात्रयन्तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् । न स्थूलं न कृशं तद्वत् सन्नं छेदवर्जितम्

निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् । सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथामध्यमकेन्यसेत्

अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः । लम्बयेत्सप्तरेखास्तु पार्श्वयोरुभयोःसमाः

तावत् प्रलम्बयेद्विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् । श्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्सङ्गमन्ततः

रेखयोः सङ्गमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत् । एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानान्तु लक्षणम् ।

स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ! ॥ १ ॥

सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः । पुराणवेत्ता तत्वज्ञो दम्भलोभविवर्जितः ॥ २ ॥

कृष्णसारमयेदेशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः । शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिस्पृहः ॥

समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः । ऊहापोहार्थतत्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्यपारगः॥
आचार्य्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः । मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीनाऋजवस्तथा

द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपावः प्रकीर्तिता ॥ ६ ॥
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् ।
गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ॥ ७ ॥

पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा । शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ॥ ८ ॥
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः । यासां राजेतिमन्त्रस्तु आपोहिष्ठेतिचापरः
एवं स्नाप्य ततोदेवं पूज्य गन्धानुलेपनैः । प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवस्त्रेत्युदाहृतम्
उत्थापयेत्ततोदेवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ! । अमूरजेति च तथारथे तिष्ठेति चापरः ॥११ ॥
रथे ब्रह्मरथेवापि धृतां शिल्पिगणेन तु । आरोप्यच ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत् ॥

ततः प्रास्तीर्य्य शय्यायां स्थापयेच्छनकैर्बुधः ।
कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत् प्राङ्मुखं ततः ॥ १३ ॥

ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् । शिरोभागेतु देवस्य जपन्नेवं निधापयेत् ॥

आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च ।
ततो दुकूलपट्टैश्चाच्छाद्य नेत्रोपधानकम् ॥ १५ ॥

दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षणः । मधुनासर्पिषाभ्यज्य पूज्यसिध्यार्थकैस्ततः
आप्यायस्वेति मन्त्रेण यातेरुद्रशिवेति च । उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः॥१७॥
सितं प्रतिसरं दद्यात् वार्हस्पत्येति मन्त्रतः । दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापिवा ॥
आच्छाद्य देवं सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम् । पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानंपुष्पसंयुतम् ॥
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च । भाजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च ॥

अभित्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो न्यसेत् ।
क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वत् भक्ष्यभोज्यान्य(न्न)पायसैः ॥ २१ ॥
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात् परिपूजयेत् ।

बलिं दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥ २२ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे इति सर्वतः शनकैर्भुवि । मूर्तिपान्स्थापयेत्पश्चात्सर्वदिक्षुविचक्षणः

चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् । श्रीसूक्तं पावमानञ्च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ॥

तथाच शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च । रक्षोघ्नञ्च तथा सूक्तं पूर्वतोवह्वृचोजपेत्

रौद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम् । तथैव मण्डलाध्यायमध्वर्युर्दक्षिणेजपेत् ॥

वामदेवं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् । तथा पुरुषसूक्तञ्च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ॥२७॥

भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ।

अथर्वोऽङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ॥ २८ ॥

तथा पराजिता देवी सप्तसूक्तं सरौद्रकम् । तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ॥

शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् ।

शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन् मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ॥ ३० ॥

पलाशोदुम्बराश्वत्थअपामार्गः शमी तथा । हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत्॥

ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः । नाभिमध्यं तथावक्षःशिरश्चाप्यालभेत्पुनः

हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतो दिशम् । समेखलेषुते कुर्युर्योनिवक्त्रेषु चादरात् ॥

वितस्तिमात्रायोनिःस्यद्गजोष्ठसदृशी तथा । आयताच्छिद्रसंयुक्तापार्श्वतःकलयोच्छ्रिता

कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला । विस्तारेणोच्छ्रयातद्वच्चतुरस्रा समाभवेत् ॥

वेदीभित्ति परित्यज्य त्रयोदशभिरंगुलैः । एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणञ्चैव दृश्यते ॥३६॥

आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः । शान्तयोलोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यःक्रमशस्तथा

तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहितः ।

वसुधा वसुरेता च यजमानो दिवाकरः ॥ ३८ ॥

जलं वायुस्तथासोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः ।

देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत् ॥ ३६ ॥

एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः । पृथ्वीं पाति शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च ॥

यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च । भवोजलं सदा पाति वायुमीशान एव च॥४१

महादेवस्तथा चन्द्र भीमश्चाकाशमेव च । सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा होत एव च ॥४२॥
एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रै र्यथास्वं होममाचरेत् ।
तथा शान्तिघटं कुर्य्यात् प्रतिकुण्डेषु सन्न्यसेत् ॥ ४३ ॥
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते ।
समपादः पृथिव्यान्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ॥ ४४ ॥
आहुतीनान्तु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत् । मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ॥
स्थितश्च स्नापयेत्तेन सम्पाताहुतिवारिणा । प्रतियामेषु धूपन्तु नैवेद्यञ्चदेनोदकम् ॥
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः । पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ॥
सितवस्त्रैश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः । विचित्रैर्हैमकटकै र्हैमसूत्रांगुलीयकैः ॥४८॥
वासोभिः शयनीयैश्च परिधाप्याः स्वशक्तितः ।
भोजनञ्चापि दातव्यं यावत् स्यादधिवासनम् ॥ ४६ ॥
बलिस्त्रिसन्ध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतो दिशम् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं शेषान् वर्णांस्तु कामतः ॥ ५० ॥
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः । सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकर्म यावता
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापिवा । सप्तरात्रमथोकुर्य्यात् क्वचित्सद्योऽधिवासनम्
सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा ॥ ५२ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

कृत्वाधिवासं देवानां शुभं कुर्य्यात् समाहितः ।
प्रासादस्यानुरूपेण मानं लिङ्गस्य वा पुनः ॥ १ ॥

पुष्पोदकेन प्रासादं प्रोक्ष्य मन्त्रयुतेन तु । पातयेत्पक्षसूत्रन्तु द्वारसूत्रं तथैव च ॥ २ ॥
आश्रयेत्किञ्चिदीशानीं मध्यं ज्ञात्वा दिशं बुधः । ईशानोमाश्रितंदेवं पूजयन्तिदिवौकसः
आयुरारोग्यफलदमथोत्तरसमाश्रितम् । शुभं स्यादशुभं प्रोक्तमन्यथा स्थापनं बुधैः॥४॥

अधः कूर्मशिला प्रोक्ता सदा ब्रह्म शिलाधिका ।
उपर्यवस्थिता तस्या ब्रह्मभागाधिका शिला ॥ ५ ॥
ततस्तु पिण्डिका कार्या पूर्वोक्तै र्नामलक्षणैः ।
ततः प्रक्षालितां कृत्वा पञ्चगव्येन पिण्डिकाम् ॥६ ॥

कषायतोयेन पुनर्मन्त्रयुक्तेन सर्वतः । देवतार्चाश्रयं मन्त्रं पिण्डिकासु नियोजेत् ॥७॥
तत उत्थाप्य देवेशं उत्तिष्ठ ब्रह्मणेति च। आनीय गर्भभवनं पीठान्ते स्थापयेत्पुनः ॥८॥
अर्घ्यपाद्यादिकं तत्र मधुपर्कं प्रयोजयेत् । ततो मुहूर्तं विश्रम्य रत्नन्यासं समाचरेत् ॥९॥

वज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्फटिकमेव च ।
पुष्परागेन्द्रनीलञ्च नीलं पूर्वादि दिक् क्रमात् ॥ १० ॥
तालकञ्च शिलावज्रमञ्जनं श्याममेव च ।
काक्षीकाशी समाक्षीकं गौरिकञ्चादितः क्रमात् ॥ ११ ॥

गोधूमञ्च यवं तद्वत्तिलमुद्गं तथैवच । नीवारमथश्यामाकं सर्षपं व्रीहिमेव च ॥ १२ ॥
न्यस्य क्रमेण पूर्वादि चन्दनं रक्तचन्दनम् । अगरुञ्चाञ्जनञ्चापि उशीरञ्च ततः परम् ॥
वैष्णवीं सहदेवीञ्च लक्ष्मणाञ्च ततः परम् । स्वलोकपालनाम्नातु न्यसेदोङ्कारपूर्वकम्
सर्ववीजानि धातूंश्च रत्नान्योषधयस्तथा । काञ्चनं पद्मरागन्तु पारदं पद्ममेव च ॥१५॥

कूर्मं धरां वृषं तत्र न्यसेत्पूर्वादितः क्रमात् ।
ब्रह्मस्थाने तु दातव्या संहता स्युः परस्परम् ॥१६ ॥

कनकं विद्रुमं ताम्रं कांस्यञ्चैवारकूटकम् । रजतं विमलं पुष्पं लोहञ्चैव क्रमेण तु ॥१७॥
काञ्चनं हरितालञ्च सर्वाभावेऽपि निक्षिपेत् । दद्याद्बीजौषधिस्थाने सहदेवीं यवानपि
न्यासमन्त्रानतो वक्ष्ये लोकपालात्मकानिह । इन्द्रस्तु सहसादीप्तः सर्वदेवाधिपो महान्
वज्रहस्तो महासत्वस्तस्मैनित्यं नमोनमः । आग्नेयः पुरुषोरक्तः सर्वदेवमयः शिखी ॥

धूमकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमोनमः ।
यमश्चोत्पलवर्णाभः किरीटी दण्डधृक् सदा ॥ २१ ॥
धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमोनमः ।
निर्ऋतिस्तु पुमान् कृष्णः सर्वरक्षोऽधिपो महान् ॥ २२ ॥
खड्गहस्तो महासत्वस्तस्मै नित्यं नमोनमः । वरुणो धवलोविष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमोनमः । वायुश्च सर्ववर्णो वै सर्वगन्धवहः शुभः ॥
पुरुषोध्वजहस्तश्चतस्मै नित्यं नमोनमः । गौरो यश्च पुमान् सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः
नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमोनमः ।
ईशानपुरुषः शुक्लः सर्वविद्याधिपो महान् ॥ २६ ॥
शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः । पद्मयोनिश्चतुमूर्तिर्वेदवासाः पितामहः ॥
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः । योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥
पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मैनित्यं नमोनमः । ओङ्कारपूर्वका ह्येते न्यासे बलिनिवेदने ॥
मन्त्राःस्युः सर्वकार्य्याणां वृद्धिपुत्रफलप्रदाः ।
न्यासं कृत्वा तु मन्त्राणां पायसेनानुलेपितम् ॥ ३० ॥
पाटेनाच्छादयेत् श्वभ्रं शुक्लेनोपरि यत्नतः । तत उत्थाप्य देवेशमिष्टदेशे तु शोभने॥३१॥
ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण श्वभ्रोपरिनिवेशयेत् । ततःस्थिरीकृतस्यास्य हस्तं दत्वा तु मस्तके
ध्यात्वा परमसद्भावाद्देवदेवश्च निष्कलम् । देवव्रतं तथा सोमं रुद्रसूक्तं तथैव च ॥३३॥
आत्मानमीश्वरं कृत्वा नानाभरणभूषितम् । यस्य देवस्य यद्रूपं तद्ध्याने संस्मरेत्तथा ॥
अतसीपुष्पसङ्काशं शङ्खचक्रगदाधरम् । संस्थापयामि देवेशं देवोभूत्वा जनार्दनम् ॥३५
त्र्यक्षश्च दशबाहुश्च चन्द्रार्धकृतशेखरम् । गणेशं वृषसंस्थश्च स्थापयामि त्रिलोचनम् ॥
ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम् । पितामहं महाबाहुं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम्
सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसंयुतम् । पद्महस्तंमहाबाहुंस्थापयामि दिवाकरम् ॥
देवमन्त्रांस्तथा रौद्रान् रुद्रस्य स्थापने जपेत् ।
विष्णोस्तु वैष्णवांस्तद्वत् ब्राह्मणान् वै ब्रह्मणो बुधैः ॥ ३९॥

सौराः सूर्यस्य जप्तव्यास्तथान्येषु तदाश्रयाः । वेदमन्त्रप्रतिष्ठा तु यस्मादानन्ददायिनी

स्थापयेद्यन्तु देवेशन्तं प्रधानं प्रकल्पयेत् ।
तस्य पार्श्वस्थितानन्यान् संस्मरेत् परिवारितः ॥ ४१ ॥

गणं नन्दिमहाकालं वृषभृङ्गिरिटिं गुहम् । देवीं विनायकञ्चैव विष्णुं ब्रह्माणमेवच॥४२
रुद्रं शक्रं जयन्तञ्च लोकपालान् समन्ततः । तथैवाप्सरसः सर्वा गन्धर्वगणगुह्यकान् ॥
यो यत्र स्थाप्यतेदेवस्तस्यतान् परितःस्मरेत् । आवाहयेत्तथा रुद्रं मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥
यस्य सिंहा रथेयुक्ता व्याघ्रभूतास्तथोरगाः । ऋषयोलोकपालाश्च देवःस्कन्दस्तथा वृषः

प्रियो गणो मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः ।
नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः ॥४६ ॥

तमहं ऋक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम् । आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम् ॥
आगच्छभगवन् ! रुद्रानुग्रहाय शिवोभव । शाश्वतो भवपूजां मे गृहाण त्वं नमोनमः॥
ॐ नमः स्वागतं भगवते नमः ॐ नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु भगवन् ! मन्त्रपूतमिदंसर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमोनमः स्वाहा ॥
ततः पुण्याहघोषेण ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । स्नापयेत्तु ततो देवं दधिक्षीरघृतेन च ॥ ५०॥
मधुशर्करया तद्वत् पुष्पगन्धोदकेन च । शिवध्यानैकचित्तस्तु मन्त्रानेतानुदीरयेत्॥५१॥

यज्जाग्रतो दूरमुदेति । ततोविराडजायत इति च । सहस्रशीर्षा पुरुषइति च । अभित्वाशूरनोनम इति च। पुरुष एवेदं सर्वमिति। त्रिपादूर्ध्वमिति। येनेदं भूतमिति। नत्वा अवीन्य इति ।

सर्वांश्चैतान् प्रतिष्ठासु मन्त्रान् जप्त्वा पुनः पुनः ।
चतुःकृत्वा स्पृशेदद्भिर्मूलमध्ये शिरस्यपि ॥ ५२ ॥

स्थापिते तु ततोदेवे यजमानोऽथमूर्तिपम् । आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥
दीनान्धकृपणांस्तद्वद्ये चान्ये समुपस्थिताः । ततस्तु मधुना देवं प्रथमेऽहनि लेपयेत् ॥
हरिद्रयाऽथ सिद्धार्थैर्द्वितीयेऽहनि तत्वतः। चन्दनेनाँयवैस्तद्वत्तृतीयेऽहनि लेपयेत् ॥५५॥

मनःशिलाप्रियङ्गुभ्यां चतुर्थेऽहनि लेपयेत् ।

सौभाग्यशुभदं यस्माल्लेपनं व्याधिनाशनम् ॥ ५६ ॥
परस्प्रीतिकरन्नृणामेतद्वेदविदो विदुः ।
कृष्णाञ्जनन्तिलं तद्वत् पञ्चमेऽपि निवेदयेत् ॥ ५७ ॥

षष्ठे तु सघृतंदद्याच्चन्दनं पद्मकेसरम् । रोचनागुरुपुष्पं तु सप्तमेऽहनि दापयेत् ॥ ५८ ॥
यत्र सद्योऽधिवासःस्यात्तत्रसर्वं निवेदयेत् । स्थितं न चालयेद्देवमन्यथा दोषभाग्भवेत्
पूरयेत्सिकताभिस्तु निच्छिद्रं सर्वतोभवेत् । लोकपालस्य दिग्भागे यस्यसञ्चलते विभुः

तस्य लोकपतेःशान्ति र्देयाश्चेमाश्च दक्षिणाः ।
इन्द्रायाभरणं दद्यात् काञ्चनं चाल्पवित्तवान् ॥६१ ॥

अग्नेः सुवर्णमेवस्याद्यमस्य महिषं तथा । अन्नञ्च काञ्चनं दद्यान्नैर्ऋतं राक्षसं प्रति ॥
वरुणं प्रतिमुक्तानि सशुक्तीनि प्रदापयेत् । रीतिकं वायवे दद्याद्वस्त्रयुग्मेन साम्प्रतम् ॥
सोमाय धेनुर्दातव्या रजतं सवृषंशिवे । यस्यां यस्यां सञ्चलनं शान्तिः स्यात्तत्र तत्र तु
अन्यथा तु भवेद्घोरं भयङ्कुलविनाशनम् । अचलं कारयेत्तस्मात्सिकताभिः सुरेश्वरम्

अन्नं वस्त्रञ्च दातव्यं पुण्याहजयमङ्गलम् ।
त्रिः पञ्च सप्त दश वा दिनानि स्यान् महोत्सवः ॥ ६६ ॥

चतुर्थेऽह्नि महास्नानं चतुर्थीकर्मकारयेत् । दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रातिभक्तितः ॥

देवप्रतिष्ठाविधिरेष तुभ्यं निवेदितः पापविनाशहेतोः ।
यस्माद् बुधैः पूर्वमनन्तमुक्तमनेकविद्याधरदेवपूज्यम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि देवस्नपनमुत्तमम् । अर्घस्यापि समासेन शृणुत्वं विधिमुत्तमम् ॥

दध्यक्षतकुशाग्राणि क्षीरं दूर्वा तथा मधु । यवाः सिद्धार्थकास्तद्वदष्टाङ्गोऽर्घः फलैःसह

गजाश्वरथ्यावल्मीकवराहोत्खातमण्डलात् ।
अग्न्यागारात्तथा तीर्थाद्‌ व्रजाद्गोमण्डलादपि ॥३ ॥
कुम्भे तु मृत्तिकां दद्यादुद्धृतासीति मन्त्रवित् ।
शन्नोदेवीत्यपां मन्त्रमापोहिष्ठेति वै तथा ॥ ४ ॥

सावित्र्यादायगोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् । आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णोतिवै दधि तेजोसीति घृतं तद्वद्देवस्यत्वेति चोदकम् । कुशमिश्रं क्षिपेद्विद्वान् पञ्चगव्यं भवेत्ततः ॥ स्नाप्याथ पञ्चगव्येन दध्नाशुद्धेन वै ततः । दधिक्राव्णोतिमन्त्रेण स्नापयेद्रत्नवारिणा ॥ कुशाम्भसा ततः स्नानं देवस्यत्वेति कारयेत् । फलोदकेन च स्नानमग्न आयाहि कारयेत्

ततस्तु गन्धतोयेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।
ततो घटसहस्रेण सहस्रार्द्धेन वा पुनः ॥ ६ ॥
तस्याप्यर्धेन वा कुर्यात् सपादेन शतेन वा ।
चतुःषष्ट्या ततोर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ १० ॥

चतुर्भिरथवा कुर्याद्धटानामल्पवित्तवान् । सौवर्णैराजतैर्वापि ताम्रैर्वा रीतिकोद्भवैः ॥ कांस्यैर्वा पार्थिवैर्वापि स्नपनं शक्तितो भवेत् । सहदेवीवचाव्याघ्री बलाचातिबला तथा शङ्खपुष्पी तथा सिंही ह्यष्टमी च सुवर्चला । महौषध्यष्टकंह्येतत् महास्नानेषु योजयेत् ॥ यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालयः । प्रियङ्गवो व्रीहयश्च स्नानेषु परिकल्पिताः ।१४॥ स्वस्तिकं पद्मकं शङ्खमुत्पलं कमलं तथा । श्रीवत्सं दर्पणन्तद्वन्नन्द्यावर्तमथाष्टकम् १५।

एतानि गोमयैः कुर्य्यान् मृदा च शुभया ततः ।
पञ्चवर्णादिकं तद्वत् पञ्चवर्णं रजस्तथा ॥ १६ ॥
दूर्वा कृष्णतिलान् दद्यान्नीराजनविधिं ततः ।
एवं नीराजनं कृत्वा दद्यादाचमनं बुधः ॥ १७ ॥

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापापहं शुभम् । ततोवस्त्रयुगं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः ॥ देवसूत्रसमायुक्ते यज्ञदानसमन्विते । सर्ववर्णे शुभे देव वाससी ते विनिर्मिते ॥१६॥

ततस्त चन्दनं दद्यात् समं कर्पूरकुङ्कुमैः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं दर्भपाणिः प्रयत्नतः ॥

शरीरन्ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च।

मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥ २१ ॥

चत्वारिंशत्ततो दीपान् दद्याच्चैव प्रदक्षिणान्। त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैवच त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ततस्त्वनेन मन्त्रेण धूपं दद्याद्विचक्षणः

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।

मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ २४ ॥

ततस्त्वाभरणं दद्यान् महाभूषाय ते नमः। अनेन विधिनाकृत्वा सप्तरात्रं महोत्सवम् ॥ देवकुम्भैस्ततः कुर्याद्यजमानोऽभिषेचनम्। चतुर्भिरष्टभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ॥ स पञ्चरत्नकलशैः सितवस्त्राभिवेष्टितैः। देवस्यत्वेति मन्त्रेण साम्नाचाथर्वणेन च ॥ अभिषेके च ये मन्त्रा नवग्रहमखे स्मृताः। सिताम्बरधरः स्नात्वादेवान्संपूज्य यत्नतः॥ स्थापकंपूजयेद्भक्त्यावस्त्रालङ्कारभूषणैः। यज्ञभाण्डानि सर्वाणिमण्डपोपस्करादिकम् यच्चान्यदपि तद्गेहे तदाचार्याय दापयेत्। सुप्रसन्ने गुरौ यस्मात्तुष्यन्ते सर्वदेवताः ॥

नैतद्विशीलेन च दाम्भिकेन न लिङ्गिना स्थापनमत्र कार्यम्।

विप्रेण कार्यं श्रुतिपारगेण गृहस्थधर्माभिरतेन नित्यम् ॥ ३१ ॥

पाखण्डिनं यस्तु करोति भक्त्या विहाय विप्रान् श्रुतिधर्मयुक्तान्।

गुरुं प्रतिष्ठादिषु तत्र नूनं कुलक्षयः स्यादचिरादपूज्यः ॥ ३२ ॥

स्थानं पिशाचैः परिगृह्यते वा अपूज्यतां यात्यचिरेण शोकः।

विप्रैः कृतं यच्छुभदं कुले स्यात् प्रपूज्यतां याति चिरञ्च कालम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे देवप्रतिष्ठाविधिवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रासादविधिनिर्णयवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

प्रासादाः कीदृशाः सूत ! कर्तव्या भूतिमिच्छता । प्रमाणंलक्षणंतद्वद्वदविस्तरतोऽधुना

सूत उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रासादविधिनिर्णयम् ।
वास्तौ परीक्षिते सम्यग्वास्तुदेहविचक्षणः ॥ २ ॥

वास्तूपशमनं कुर्यात् समिद्भिर्बलिकर्मणा । जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने ॥
नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने । द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च ॥ ४ ॥
वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः । एकाशीतिपदं लिख्य वास्तु मध्ये च पृष्ठतः
होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके । यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिःक्षीरवृक्षकैः ॥

पालाशैःखादिरैश्चापि मधुसर्पिसमन्वितैः ।
कुशदूर्वामयैर्वापि मधुसर्पिसमन्वितैः ॥ ७ ॥
कार्यस्तु पञ्चभिर्बिल्वैर्विल्वबीजैरथापि वा ।
होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे बलिं हरेत् ॥ ८ ॥

तद्वद्विशेषनैवेद्यमेवन्दद्यात्क्रमेण तु । ईशकोणे घृतान्नन्तु शिखिने विनिवेदयेत् ॥ ९ ॥

ओदनं सफलं दद्यात् पर्जन्याय घृतान्वितम् ।
जयाय च ध्वजान्पीतान् पैष्टं कूर्मञ्च सन्न्यसेत् ॥ १० ॥

इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टञ्च कुलिशं तथा । वितानकञ्च सूर्याय धूम्रं सक्तूं तथैव च ॥ ११ ॥
सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यंदद्याद्भृशाय च । शष्कुलीश्चान्तरिक्षाय दद्यात्सक्तुंश्चवायवे

लाजाः पूष्णे तु दातव्याः वितथे चणकौदकम् ।
गृहक्षतायमध्वन्नं यमाय पिशितौदनम् ॥ १३ ॥

गन्धौदनञ्च गन्धर्वे भृङ्गराजस्य भृंगिकाम्। मृगाय यावकं दद्यात्पितृभ्यःकृसरामता
दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णबलिं तथा। सुग्रीवे पुष्पकं दद्यात् पुष्पदन्ताय पायसम्
कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथा पद्मञ्च वारुणम्। पिष्टं हिरण्मयंदद्यादासुराय सुरा मता॥
घृतौदनञ्च शोषाय यवान्नं पापयक्ष्मणे। घृतलड्डुकांस्तु रोगाय नागे पुष्पफलानि तु
सर्पिर्मुख्याय दातव्यं मुद्गौदनमतः परम्। भल्लाटस्थानके दद्यात् सोमायघृतपायसम्
भगाय शालिकं पिष्टमदित्यै पोलिकास्तथा। दित्यैतु पूरिका दद्यादित्येवंबाह्यतोबलिः

क्षीरं यमाय दातव्यमापवत्साय वै दधि।
सावित्रे लड्डुकान् दद्यात् समरीचं कुशौदनम्॥ २०॥

सवितुर्गुड़पूपांस्तु जयाय घृतचन्दनम्। विवस्वते पुनर्दद्याद्रक्तचन्दनपायसम्॥ २१॥
हरितालौदनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतम्। घृतौदनञ्च मित्राय रुद्राय घृतपायसम्॥२२॥
आमं पक्कं तथामांसं देयं स्याद्राजयक्ष्मणे। पृथ्वीधरायमांसानिकूष्माण्डानिच दापयेत्
शर्करा पायसं दद्यादर्यम्णे पुनरेव हि। पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलाक्षतमयं चरुम्॥२४॥
भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत्। एवंसम्पूजितादेवाःशान्तिकुर्वन्तिते सदा

सर्वेभ्यः काञ्चनं दद्याद् ब्रह्मणे गां पयस्विनीम्।
राक्षसीनां बलिर्देयो अपि यादृक् यथा शृणु॥ २६॥

मांसौदनं घृतं पद्मकेसरं रुधिरान्वितम्। ईशानभागमाश्रित्य चरक्यै विनिवेदयेत्॥२७॥
मांसौदनञ्च रुधिरं हरिद्रौदनमेव च। आग्नेयीं दिशमाश्रित्य विदार्यै विनिवेदयेत्॥
दध्योदनं स रुधिरमस्थिखण्डैश्च संयुतम्। पीतरक्तं बलिं दद्यात् पूतनायै सरक्षसे॥
वायव्यां पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम्। पायसञ्चापिदातव्यंस्वनाम्नासर्वतःक्रमात्
नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन संयुतः। ततः सर्वौषधीस्नानं यजमानस्य कारयेत्॥३१।
द्विजान् सुपूजयेद्भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः। एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समारभेत्
प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे विनिवर्तने। पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये॥ ३२॥
रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम्। नृत्यमङ्गलवाद्येन कुर्य्यात् ब्राह्मणवाचनम्॥
अनेन विधिना यस्तु प्रतिसम्वत्सरं बुधः। गृहे वायतने कुर्य्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्

न च व्याधिभयं तस्य न च बन्धुधनक्षयः। जीवेद्वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकञ्च तिष्ठति ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रासादविधिनिर्णयवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥

अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रासादविधिनिर्णयवर्णनम्।

सूत उवाच।

एवंवास्तुवलिंकृत्वा भजेत्षोड़शभागिकम्। तस्यमध्येचतुर्भिस्तु भागैर्गर्भन्तु कारयेत्
भागद्वादशकं सार्द्धं ततस्तुपरिकल्पयेत्। चतुर्दिक्षुतथाज्ञेयं निर्गमं तु ततो बुधैः ॥ २ ॥

चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायःस्यात् प्रमाणतः।
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्राय(प्र)मान(ण)तः ॥ ३ ॥

शिखरार्द्धस्य चार्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा। गर्भसूत्रद्वयंचाग्रे विस्तारो मण्डपस्य तु ॥
आयतःस्यात् त्रिभिर्भागैर्भद्रयुक्तःसुशोभनः। पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः
भागमेकंगृहीत्वा तु प्राग्ग्रीवं कल्पयेद्बुधः। गर्भसूत्रसमाद्भागादग्रतोमुखमण्डपः ॥६ ॥
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्येह लक्षणम्। तथान्यन्तुप्रवक्ष्यामि प्रासादंलिङ्गमानतः
लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्तव्या पीठिकाबुधैः। पिण्डकार्द्धेविभागःस्यात्तन्मानेन तु भित्तयः
बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तुभवेत्पुनः। भित्त्युच्छ्रायात्तुद्विगुणःशिखरस्य समुच्छ्रयः

शिखरस्य चतुर्भागात् कर्तव्या च प्रदक्षिणा।
प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपोभवेत् ॥ १० ॥

तस्यचार्द्धेन कर्तव्यस्त्वग्रतोमुखमण्डपः। प्रासादान्निर्गतौकार्यौ कपालौगर्भमानतः ॥
ऊर्ध्वंभित्त्युच्छ्रयात्तस्य मञ्जरीन्तु प्रकल्पयेत्। मञ्जर्याश्चार्द्धभागेनशुकनासांप्रकल्पयेत्
ऊर्ध्वंतथार्द्धभागेन वेदीबन्धोभवेदिह। वेद्याश्चोपरि यच्छेषं कण्ठश्चामलसारकः ॥
एवं विभज्य प्रासादं शोभनंकारयेद्बुधः। अथान्यच्चप्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम्।

गर्भमानप्रमाणेन प्रासादंशृणुतद्विजाः !। विभज्य नवधा गर्भं मध्येस्याल्लिङ्गपीठिका ॥
पादाष्टकं तु रुचिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत्। मानेन तेन विस्तारो भित्तीनान्तु विधीयते

पादं पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनामुच्छ्रयो भवेत्।
स एव शिखरस्यापि द्विगुणःस्यात् समुच्छ्रयः ॥ १७ ॥

चतुर्धाशिखरंभज्य अर्द्धभागद्वयस्य तु। शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता ॥१८॥
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत्। कपालयोस्तुसंहारो द्विगुणोऽत्रविधीयते ॥
शोभनैः पत्रवल्लीभिरण्डकैश्चविभूषितः। प्रासादोऽयं तृतीयस्तु मया तुभ्यंनिवेदितः॥

सूत उवाच।

सामान्यमपरं तद्वत् प्रासादं शृणुत द्विजाः !।
त्रिभेदं कारयेत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः ॥२१॥

रथाङ्कस्तेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतः। नेमीपादेन विस्तीर्णा प्रासादःस्यात् समन्ततः॥
गर्भन्तु द्विगुणं कुर्यात् तस्यमानं भवेदिह। स एव भित्तेरुत्सेधो द्विगुणः शिखरोमतः

प्राग् ग्रीवः पञ्चभागेन निष्कासस्तस्य चोच्यते।
कारयेत् सुषिरं तद्वत् प्राकारस्य त्रिभागतः ॥२४॥

प्राग् ग्रीवं पञ्चभागेन निष्काषेण विशेषतः। कुर्य्यादापञ्चभागेन प्राग् ग्रीवे कर्णमूलतः
स्थापयेत्कनकं तत्र गर्भान्ते द्वारमूलतः। एवन्तु त्रिविधं कुर्य्यात् ज्येष्ठमध्यकनीयसम्
लिङ्गमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः। एते समासतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना ॥२७॥
मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा। विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च ॥ २८ ॥
अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्तुलः सर्वभद्रकः। सिंहास्यो नन्दनश्चैव नन्दिवर्धनकस्तथा ॥
हंसोवृषः सुवर्णेशः पद्मकोऽथ समुद्गकः। प्रासादा नामतःप्रोक्ताविभागं शृणुतद्विजाः!
शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिका षोड़शोच्छ्रितः। नानाविचित्रशिखरो मेरुः प्रासाद उच्यते
मन्दरो द्वादश प्रोक्तः कैलासो नवभूमिकः। विमानच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः ॥
स चाष्टभूमिकस्तद्वत् सप्तभिर्नन्दिवर्धनः। विषाणकसमायुक्तो नन्दनः स उदाहृतः ॥
षोडशास्रसमायुक्तो नानारूपसमन्वितः। अनेकशिखरस्तद्वत्सर्वतोभद्र उच्यते ॥

चित्रशालासमोपेतो विज्ञेयः पञ्चभूमिकः । वलभीच्छन्दकस्तद्वदनेक शिखराननः ॥३५॥

वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्यो मण्डलश्चास्रवर्जितः ।

सिंहःसिंहाकृतिर्ज्ञेयो गजो गजसमस्तथा ॥ ३६ ॥

कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद्भूमिका नवकोच्छ्रयः । अङ्गुलीपुटसंस्थानःपञ्चाण्डकविभूषितः

षोड़शास्रः समन्ताच्च विज्ञेयः स समुद्गकः ।

पार्श्वयोश्चन्द्रशालेऽस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम् ॥ ३८ ॥

तथैव पद्मकःप्रोक्तः उच्छ्रायोभूमिकात्रयम् । षोड़शास्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरःशुभः

मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालाविभूषितः । प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिकासु षडुन्नतः

अनेकश्चन्द्रशालश्च गजः प्रासाद इष्यते । पर्यस्तगृहराजो वै गरुड़ोनाम नामतः ॥४१॥

सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः । भूमिकाषड़शीतिस्तु बाह्यतः सर्वतोभवेत्।

तथान्योगरुड़स्तद्वदुच्छ्रयादशभूमिकः । भूमिकाषोड़शास्रस्तु भूमिद्वयमथाधिकः ॥४३

पद्मतुल्यप्रमाणेन श्रीवृक्षक इति स्मृतः । पञ्चाण्डको द्विभूमिश्च गर्भे हस्तचतुष्टयम् ॥

वृषोभवतिनाम्नायं प्रासादःसार्वकामिकः । सप्तकाः पञ्चकाश्चैव प्रासादा वै मयोदिताः

सिंहास्येन समाज्ञेया येचान्ये तत्प्रमाणकाः । चन्द्रशालैःसमोपेताः सर्वेप्राग्ग्रीवसंयुताः

ऐष्टका दारवाश्चैव शैला वा स्युः सतोरणाः ॥४६ ॥

मेरुःपञ्चाशद्धस्तःस्यान्मन्दरःपञ्चहीनकः । चत्वारिंशत्तु कैलासश्चतुस्त्रिंशद्विमानकः ॥४७

नन्दिवर्द्धनकस्तद्वद् द्वात्रिंशत् समुदाहृतः ।

त्रिंशतानन्दनःप्रोक्तः सर्वतोभद्रकस्तथा ॥ ४८ ॥

वर्तुलःपद्मकश्चैव विंशद्धस्त उदाहृतः । गजःसिंहश्च कुम्भश्च वलभी च्छन्दकस्तथा ॥

एते षोड़शहस्ताःस्युश्चत्वारो देववल्लभाः । कैलासो मृगराजश्च विमानच्छन्दकोमतः ॥

एते द्वादशहस्ताःस्युरेतेषामिह मन्मतम् । गरुड़ोऽष्टकरोज्ञेयो हंसोदश उदाहृतः ॥५१॥

एवमेते प्रमाणेन कर्तव्याः शुभलक्षणाः । यक्षराक्षसनागानां मातृहस्तान् प्रशंस्यते॥५२

तथामेर्वादयःसप्त ज्येष्ठलिङ्गे शुभावहाः । श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौ मध्यमस्य प्रकीर्तिताः ॥

तथा हंसादयःपञ्च कन्यसे शुभदा मताः । वलभीच्छन्दके गौरी जटामुकुटधारिणी ॥

वरदाभयदा तद्वत् साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
गृहे तु रक्तमुकुटा उत्पलाङ्कुशधारिणी ।
वरदाभयदा चापि पूजनीया सभर्तृका ॥ ५५ ॥

तपोवनस्थामितरां तां तु संपूजयेद्बुधः । देव्या विनायकस्तद्वत् वलभीच्छन्दके शुभः

इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रासादविधिनिर्णयवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मण्डपलक्षणवर्णनम् ।

सूतउवाच ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि मण्डपानान्तु लक्षणम् । मण्डपप्रवरान्वक्ष्ये प्रासादस्यानुरूपतः

विविधा मण्डपाःकार्या ज्येष्ठमध्यकनीयसः ।
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥ २ ॥

पुष्पकः पुष्पभद्रश्च सुव्रतोऽमृतनन्दनः । कौशल्योबुद्धिसंकीर्णो गजभद्रोजयावहः ॥

श्रीवत्सोविजयश्चैव वास्तुकीर्तिः श्रुतिजयः । यज्ञभद्रोविशालश्च, सुश्लिष्टः शत्रुमर्दनः

भागपञ्चोनन्दनश्च मानवोमानभद्रकः । सुग्रीवोहरितश्चैव कर्णिकारः शतर्द्धिकः ॥ ५ ॥

सिंहश्च श्यामभद्रश्च सुभद्रश्च तथैव च ।
सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत ! द्विजाः ! ॥ ६ ॥

स्तम्भा यत्र चतुःषष्टिपुष्पकः समुदाहृतः । द्विषष्टिपुष्पभद्रस्तु षष्टिःसुव्रत उच्यते॥७॥

अष्टपञ्चाशकस्स्तम्भः कथ्यते मृतनन्दनः । कौशल्यः षट्चपञ्चाशच्चतुःपञ्चाशता पुनः

नाम्ना तु बुद्धिसंकीर्णो द्विहीनो गजभद्रकः ।
जयावहस्तु पञ्चाशत् श्रीवत्सस्तद्विहीनकः ॥ ६ ॥

विजयस्तद्विहीनःस्यात् वास्तुकीर्तिस्तथैव च ।

द्वाभ्यामेव प्रहीयेत ततः श्रुतिजयोऽपरः ॥ १० ॥

चत्वारिंशद्यज्ञभद्रस्तद्विहीनो विशालकः। षट्त्रिंशच्चैव सुश्लिष्टो द्विहीनः शत्रुमर्दनः
द्वात्रिंशद्भागपञ्चस्तु(?) त्रिंशद्भिर्नन्दनःस्मृतः। अष्टाविंशन्मानवस्तु मानभद्रो द्विहीनकः
चतुर्विंशस्तुसुग्रीवो द्वाविंशो वर्षणो मतः। विंशतिःकर्णिकारःस्यादष्टादश शतर्धिकः
सिंहोभवेद्विहीनश्च श्यामभद्रो द्विहीनकः। सुभद्रस्तु तथाप्रोक्तो द्वादशस्तम्भ उच्यते

मण्डपाःकथितास्तुभ्यं यथावल्लक्षणान्विताः।

त्रिकोणं वृतमर्द्धन्तु ह्यष्टकोणं द्विरष्टकम् ॥ १५ ॥

चतुःकोणन्तु कर्तव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु। राज्यञ्च विजयश्चैव आयुर्वर्द्धनमेव च ॥

पुत्रलाभःश्रियःपुष्टिस्त्रिकोणादि क्रमाद्भवेत्।

एवं तु शुभदाः प्रोक्ताश्चान्यथा त्वशुभावहाः ॥ १७ ॥

चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये द्वारं प्रकल्पयेत्।

विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रायं तत्त्रिभागः कटिर्भवेत् ॥ १८ ॥

विस्तारार्द्धोभवेद्गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः। गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं त्रिगुणमायतम्
तथा द्विगुणविस्तीर्णमुखस्तद्वदुदुम्बरः। विस्तारपादप्रतिमंबाहुल्यंशाखयोऽस्मृतम्(?)
त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते। कनिष्ठमध्यमंज्येष्ठं यथायोगं प्रकल्पयेत् ॥२१
अङ्गुलानां शतं सार्द्धं चत्वारिंशत्तथोन्नतम्। त्रिंशद्विंशोत्तरं चान्यद्धन्यमुत्तममेव च
शतञ्चाशीतिसहितं वातनिर्गमने भवेत्। अधिकं दशभिस्तद्वत् तथाषोड़शभिःशतम्

शतमानं तृतीयञ्च नवत्याशीतिभिस्तथा।

दश द्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा ॥ २४ ॥

अन्यानि वर्जनीयानि मनसोद्वेगदानि तु। द्वारवेधं प्रयत्नेन सर्ववास्तुषु वर्जयेत् ॥
वृक्षकोणभ्रमिद्वारस्तम्भकूपध्वजादपि। कुड्यश्वभ्रेण वा विद्धं द्वारं न शुभदम्भवेत् ॥२६

क्षयश्च दुर्गतिश्चैव प्रवासः क्षुद्भयं तथा।

दौर्भाग्यं बन्धनं रोगो दारिद्र्यं कलहं तथा ॥ २७ ॥

विरोधश्चार्थनाशश्च सर्वं वेधाद्भवेत् क्रमात्। पूर्वेण फलिनोवृक्षाः क्षीरवृक्षास्तु दक्षिणे

पश्चिमेन जलं श्रेष्ठंपद्मोत्प लविभूषितम् । उत्तरे सरलैस्तालैः शुभास्यात् पुष्पवाटिका
सर्वतस्तु जलं श्रेष्ठं स्थिरमस्थिरमेव च । पार्श्वतश्चापि कर्त्तव्यं परिवारादिकालयम्
याम्ये तपोवनस्थानमुत्तरे मातृकागृहम् । महानसं तथाग्नेये नैर्ऋत्येऽथ विनायकम् ॥

वारुणे श्रीनिवासस्तु वायव्ये गृहमालिका ।
उत्तरे यज्ञशाला तु निर्माल्यस्थानमुत्तरे ॥ ३२ ॥

वारुणे सोमदैवत्ये बलिनिर्वपणं स्मृतम् । पुरतो वृषभस्थानं शेषे स्यात् कुसुमायुधः
जलं वापि तथैशाने विष्णुस्तु जलशाय्यपि । एवमायतनंकुर्यात् कुण्डमण्डपसंयुतम्
घण्टावितानकसतोरणचित्रयुक्तं नित्योत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्धम् ।
यः कारयेत् सुरगृहं विविधध्वाजाङ्कं श्रीस्तं न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च ॥ ३५ ॥
एवं गृहार्चनविधावपि शक्तितः स्यात् संस्थापनं सकलमन्त्रविधानयुक्तम् ॥ ३६ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे मण्डपलक्षणवर्णनं नामोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कलौ भाविनृपान्वयवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

पूरोवंशस्त्वया सूत ! सभविष्यो निवेदितः । सूर्यवंशे नृपायेतु भविष्यन्ति हि तान्वद
तथैव यादवे वंशे राजानः कीर्तिवर्धनाः । कलौयुगे भविष्यन्ति तानपीह वदस्व नः ॥

वंशान्ते ज्ञातयो याश्च राज्यं प्राप्स्यन्ति सुव्रताः ।
ब्रूहि संक्षेपतस्तासां यथाभाव्यमनुक्रमात् ॥ ३ ॥

सूत उवाच ।

बृहद्बलस्य दायादो वीरोराजा ह्युरुक्षयः । उरुक्षयसुतश्चापि वत्सद्रोहो महायशाः ॥
वत्सद्रोहात् प्रतिव्योमस्तस्यपुत्रो दिवाकरः । तस्यैव मध्यदेशे तु अयोध्यानगरी शुभा

दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः। सहदेवाच्च भविता ध्रुवाश्वो वै महामनाः॥
तस्य भाव्यो महाभागः प्रतीपाश्वश्च तत्सुतः। प्रतीपाश्वसुतश्चापि सुप्रतीपो भविष्यति
मरुदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रस्ततोऽभवत्। किन्नराश्वः सुनक्षत्राद्भविष्यति परन्तपः॥

किन्नराश्वादन्तरिक्षो भविष्यति महामनाः।
सुषेणश्चान्तरिक्षाच्च सुमित्रश्चाप्यमित्रजित्॥ ९॥
सुमित्रजो वृहद्राजः वृहद्राजस्य वीर्यवान्।
पुत्रः कृतञ्जयो नाम धार्मिकश्च भविष्यति॥ १०॥
कृतञ्जयसुतो विद्वान् भविष्यति रणेजयः।
भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणेजयात्॥ ११॥
सञ्जयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धौदनो नृपः।
शुद्धौदनस्य भविता सिद्धार्थः पुष्कलः सुतः॥ १२॥
प्रसेनजित्ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः।
क्षुद्रकात् कुलकोभाव्यः कुलकात् सुरथः स्मृतः॥ १३॥

सुमित्रसुरथाज्जातो अन्यस्तु भविता नृपः। एतेचैक्ष्वाकवः प्रोक्ताभविष्यायेकलौयुगे
वृहद्बलान्ववाये तु भविष्याः कुलवर्द्धनाः। अत्रानुवंशश्लोकोऽयं विप्रैर्गीतः पुरातनैः॥
इक्ष्वाकूणामयंवंशः सुमित्रान्तो भविष्यति। सुमित्रंप्राप्यराजानंसंस्थांप्राप्स्यतिवैकलौ
इत्येवं मानवोवंशः प्रागेव समुदाहृतः। अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधा ये वृहद्रथाः॥
पूर्वेण येजरासन्धात् सहदेवान्वये नृपाः। अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्यांश्च निबोधत
संग्रामे भारतेवृत्ते सहदेवे निपातिते। सोमाधिस्तस्यदायादो राजाऽभूत्सगिरिव्रजे॥
पञ्चाशतं तथाष्टौच समा राज्यमकारयत्। श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिं समास्तस्यान्वयेऽभवत्॥

अप्रतीपीच षट्त्रिंशत् समा राज्यमकारयत्।
चत्वारिंशत् समास्तस्य निरमित्रो दिवङ्गतः॥२१॥
पञ्चाशतं समाः षट् च सुरक्षः प्राप्तवान्महीम्।
वृहत्कर्मा त्रयोविंशद्वर्षं राज्यमकारयत्॥ २२॥

सेनाजित् सम्प्रयातश्च भुक्त्वा पञ्चशतं महीम् । श्रुतञ्जयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति अष्टाविंशति वर्षाणि महीं प्राप्स्यतिवै विभुः । अष्टपञ्चाशतंषट्च राज्येस्थास्यतिवैशुचिः

अष्टाविंशत् समा राजा क्षेमो भोक्ष्यति वै महीम् ।
अनुव्रतश्चतुःषष्टि राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान् ॥ २५ ॥

पञ्चत्रिंशतिवर्षाणि सुनेत्रो भोक्ष्यते महीम् । भोक्ष्यते निर्वृतिश्चेमामष्टपञ्चाशतंसमाः अष्टाविंशत् समाराज्यंत्रिनेत्रो भोक्ष्यते ततः । चत्वारिंशत्तथाष्टौच द्युमत्सेनोभविष्यति त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि महीनेत्रः प्रकाश्यते । द्वात्रिंशत्तु समा राजा ह्यचलस्तु भविष्यति रिपुञ्जयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत् प्राप्स्यते महीम् । द्वात्रिंशति नृपाह्येते भवितारोवृहद्रथाः पूर्णं वर्षसहस्रन्तु तेषां राज्यं भविष्यति । जयतां क्षत्रियाणाञ्च बालकः पुलकोभवेत् ॥ इति श्रीमत्स्यपुराणे कलौ भाविनृपान्वयवर्णनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कलौ भाविनृपान्वयवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

वृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु । पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति ॥ मिषतां क्षत्रियाणाञ्च बालकः पुलकोद्भवः । सवै प्रणतसामन्तो भविष्यो न च धर्मतः त्रयोविंशत् समाराजा भविता स नरोत्तमः । अष्टाविंशतिवर्षाणि पालको भविता नृपः विशाखयूपोभविता त्रिपञ्चाशत्तथा समाः । एकविंशत्समा राजा सूर्यकस्तु भविष्यति

वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम् ।
शिशुनाकस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥ ५ ॥
काकवर्णः सुतस्तस्य षड्विंशत् प्राप्स्यते महीम् ।
षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि क्षेमधर्मा भविष्यति ॥ ६ ॥

चतुर्विंशत्समाः सोऽपि क्षेमजित्प्राप्स्यते महीम् ।
अष्टाविंशति वर्षाणि विन्ध्यसेनो भविष्यति ॥ ७ ॥

भविष्यतिसमाराजा नवकाण्वायनो नृपः । भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति॥
अजातशत्रुर्भविता सप्तविंशत् समानृपः । चतुर्विंशत्समा राजा वंशकस्तु भविष्यति ॥
उदासीभविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समानृपः । चत्वारिंशत्समाभाव्यो राजावैनन्दिवर्द्धनः
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति । इत्येते भवितारो वै दश द्वौ शिशुनाकजाः
शतानि त्रीणिपूर्णानि षष्टिवर्षाधिकानि तु । शिशुनाकाभविष्यन्तिराजानः क्षत्रबन्धवः
एतैः सार्द्धं भविष्यन्ति यावत्कलिनृपाः परे । तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वेह्येतेमहीक्षितः
चतुर्विंशत्तथैक्ष्वाकाः पाञ्चालाः सप्तविंशतिः । काशेयास्तु चतुर्विंशदष्टाविंशत्तु हैहयाः
कलिङ्गाश्चैव द्वात्रिंशदश्मकाः पञ्चविंशतिः । कुरवश्चापि षट्विंशदष्टाविंशस्तु मैथिलाः
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः । एतेसर्वे भविष्यन्ति एककालं महीक्षितः ॥
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः । उत्पत्स्यतेमहापद्मः सर्वक्षत्रान्तको नृपः ॥
ततः प्रभृतिराजानो भविष्याः शूद्रयोनयः । एकराट्समहापद्मो एकच्छत्रोभविष्यति ॥
अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथिव्याञ्च भविष्यति । सर्वक्षत्रमथोत्साद्य भाविनार्थेनचोदितः
सुकल्पादि सुताह्यष्टौसमाद्वादशते नृपाः । महापद्मस्य पर्य्यायेभविष्यन्तिनृपाःक्रमात्॥

उद्धरिष्यति कौटिल्यः समैर्द्वादशभिः सुतान् ।
भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्य्यान् गमिष्यति ॥ २१ ॥
भविता शतधन्वा च तस्य पुत्रस्तु षट्समाः ।
बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः ॥ २२ ॥

षट्त्रिंशत्तु समाराजा भविता शक एव च । सप्तानां दशवर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति
राजादशरथोऽष्टौतु तस्य पुत्रो भविष्यति । भविता नववर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः॥

इत्येते दशमौर्य्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम् ।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति ॥ २५ ॥

पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान् । कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशतिसमानृपः

भवितापि वसुज्येष्ठः सप्तवर्षाणि वै नृपः । वसुमित्रस्तथाभाव्यो दशवर्षाणि वै ततः ॥
ततोऽन्तकः समिद्धेतुतस्यपुत्रोभविष्यति । भविष्यतिसमस्तस्मात्त्रीण्येवं स पुलिन्दकः
भविता वज्रमित्रस्तु समाराजा पुनर्भवः । द्वात्रिंशत्तु समाभागः समाभागात्ततो नृपः
भविष्यति सुतस्तस्य देवभूमिः समादश । दशैते क्षुद्रराजानोभोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्
शतं पूर्णं शतेद्वेच ततः शुङ्गान् गमिष्यति । अमात्यो वसुदेवस्तु प्रसह्य ह्यवनीं नृपः ॥
देवभूमिमथोत्साद्य शौङ्गस्तु भविता नृपः । भविष्यति समाराजा नवकाण्वायनो नृपः
भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति । नारायणः सुतस्तस्य भविताद्वादशैव तु ॥
सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यतिदशैव तु । इत्येतेशुङ्गभृत्यास्तुस्मृताःकाण्वायनानृपाः

चत्वारिंशद्द्विजा ह्येते काण्वा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।
चत्वारिंशतपञ्च चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ॥ ३५ ॥
एते प्रणतसामन्ता भविष्या धार्मिकाश्च ये ।
येषां पर्य्यायकाले तु भूमिरान्ध्रान् गमिष्यति ॥ ३६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कलौ भाविनृपान्वयवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कलौ भाविनृपान्वयवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

काण्वायनास्ततो भूपाः सुशर्माणः प्रसह्यताम् ।
शुङ्गानाञ्चैव यच्छेषं क्षपित्वा तु बलीयसः ॥ १ ॥
शिशुकोन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ।
त्रयोविंशत् समाराजा शिशुकस्तु भविष्यति ॥ २ ॥

श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश । पूर्णोत्संगस्ततोराजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥

पञ्चाशतं समाःषट्च शान्तकर्णिर्भविष्यति । दशचाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरःसुतः
आपीतकोदशद्वेच तस्य पुत्रो भविष्यति । दशचाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वाति र्भविष्यति
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु ।
स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ॥ ६ ॥
मृगेन्द्रस्वातिकर्णस्तु भविष्यतिसमास्त्रयः । कुन्तलः स्वातिकर्णस्तु भविताष्टौसमानृपः
एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ॥ ८ ॥
भवितारिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशति । ततः संवत्सरान् पञ्च हालोराजा भविष्यति
पञ्चमन्दुलकोराजाभविष्यतिसमा नृप । पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सौम्योभविष्यति
सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति ।
चकोरःस्वातिकर्णस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ॥ ११ ॥
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति । राजा च गौतमी पुत्रोह्येकविंशत्यतोनृपः॥
अष्टाविंशतिसुतस्तस्यसुलोमावैभविष्यति । शिवश्रीर्वै सुलोमात्तु सप्तैव भवितानपः ॥
शिवस्कन्धशान्तिकर्णाद्भविता ह्यात्मजः समाः ।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञः श्रीः शान्तिकर्णिकः ॥ १४ ॥
षड़ेव भवितातस्याद्विजयस्तुसमास्ततः । चण्डश्रीः शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समादश
सुलोमा सप्तवर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति ।
एकोनविंशतिर्ह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ॥ १६ ॥
तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारिषष्टिरेव च । आन्ध्राणां संस्थिताराज्येतेषांभृत्यान्वयेनृपाः
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः । सप्तगर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश । त्रयोदश गु(मु)रुंडाश्च हूणाह्येकोनविंशतिः
यवनाष्टौभविष्यन्तिसप्ताशीतिमहीमिमाम् । सप्तगर्दभिलाभूयोभोक्ष्यन्तीमांवसुन्धराम्
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता । शतानि त्रीण्यशीतिश्च शतान्यष्टादशैव तु ॥
शतान्यर्द्धश्चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश ।
गु(मु)रुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ॥ २२ ॥

शतानित्रीणिभोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु । आन्ध्राःश्रीपार्व्वतीयाश्चतेद्विपञ्चाशतंसमाः
सप्तषष्टिस्तुवर्षाणि दशाभीरास्तथैव च । तेपूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिलानृपाः ॥
भविष्यन्तीह यवनाधर्मतः कामतोऽर्थतः । तैर्विमिश्रा जनपदाआर्य्याम्लेच्छाश्च सर्वशः
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः । लुब्धानृतब्रुवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ॥
कल्किनानिहताःसर्वेआर्य्याम्लेच्छाश्चसर्वतः ।अधार्मिकाश्चयेऽत्यर्थंपाषण्डाश्चैवसर्वशः

प्रणष्टे नृपवंशे तु सन्ध्याशिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टाः प्रजास्तावै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ॥ २८ ॥

असाधवो ह्यसत्वाश्च व्याधिशोकेन पीड़िताः । अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सवः
अशरण्याःपरित्रस्ताःसङ्कटंघोरमाश्रिताः । सरित्पर्वतवासिन्योभविष्यन्त्यखिलाःप्रजाः
पत्रमूलफ़लाहाराश्चीरपत्राजिनाम्वराः । वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाकाले युगान्तके । निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु

क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके ।
ससन्ध्यांशे सुनिःशेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥
एवं वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्तितो यो मया क्रमात् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ३४ ॥

महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षितः । एवं वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ॥ ३५ ॥
पौलोमास्तु तथान्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः । अनन्तरंशतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा

तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षितः ।
भविष्येते प्रसङ्ख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ॥ ३७ ॥

सप्तर्षयस्तदाप्रांशु प्रदीप्तेनाग्निना समाः । सप्तविंशतिभाव्यानां आन्ध्राणान्तुयदापुनः
सप्तर्षयस्तु वर्त्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले । सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्य्यायेण शतं शतम् ॥

सप्तर्षीणामुपर्यें तत् स्मृतं वै दिव्यसंज्ञया ।
समादिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ॥ ४० ॥

एभिः प्रवर्तते कालोदिव्यःसप्तर्षिभिस्तुवै । सप्तर्षीणाञ्च यौ पूर्वौदृश्येतेह्युदितौनिशि

तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि । तेन सप्तर्षयोज्ञेया युक्ताव्योम्नि शतं समाः
नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यैतन्निदर्शनम् । सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम्
ब्राह्मणस्तु चतुर्विंशा भविष्यति शतंसमाः । ततःप्रभृत्ययं सर्वोलोकोव्यापत्स्यतेभृशम्
अनृतोपहतालुब्धा धर्मतःकामतोऽर्थतः । श्रौतस्मार्तेति शिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ॥

सङ्करं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः ।
ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्थाः शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ॥ ४६ ॥
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः ।
क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम् ॥ ४७ ॥

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये । यस्मिन्कृष्णोदिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि
प्रतिपन्नं कलियुगं प्रमाणं तस्य मे श्रृणु । चतुःशतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृतं बुधैः ॥
चत्वार्यष्टसहस्राणि सङ्ख्यातं मानुषेण तु । दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदासङ्ख्या प्रवर्तते ॥
निःशेषेतु तदा तस्मिन् कृतं वै प्रतिपत्स्यते । ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेवः प्रकीर्त्तिताः
इक्ष्वाकोः संस्मृतं क्षत्रं सुमित्रान्तंभविष्यति । ऐलं क्षत्रंसमाक्रान्तं सोमवंशविदोविदुः
एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः । अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंशः समाप्यते ॥ ५४ ॥

देवापिः पौरवोराजा ऐक्ष्वाकोयश्च ते मतः । महायोगवलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ ॥
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे । सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ॥
नवविंशे युगेसो वै वंशस्यादिर्भविष्यति । देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भविता नृपः
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्येतु चतुर्युगे । एवं सर्वेषु विज्ञेयं सन्तानार्थन्तु लक्षणम् ॥५८॥
क्षीणे कलियुगेचैव तिष्ठन्तीति कृते युगे । सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः ॥
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुनः । एवमेवं तु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च ॥
सप्तर्षयोनृपैः सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे । एवं क्षत्रस्य चौत्सेधःसम्बन्धोवैद्विजैःस्मृतः
मन्वन्तराणां सन्ताने सन्तानाश्चश्रुतौस्मृताः । अतिक्रान्तयुगाश्चैवब्रह्मक्षत्रस्यसम्भवाः

यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां यथाक्षयः ।
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुस्त्वं क्षयोदयौ ॥ ६३ ॥

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः । उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणाः कलौ युगे॥ अनुयान्ति युगाख्यान्तु यावन्मन्वन्तरक्षयम् । जामदग्न्येन रामेण क्षत्रेनिरवशेषिते ॥ रिक्तेयं वसुधासर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः । द्विवंशकरणं सर्वं कीर्तयिष्ये निबोध मे ।६६॥ ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च प्रकृतिं परिचक्षते । राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रियाभुवि ॥ ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः । एषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते ॥

तावदेव तु भोजानां विस्ताराद्द्विगुणं स्मृतम् ।
भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्द्धा तद्यथातथम् ॥ ६६ ॥

ते ह्यतीताः स नामानो ब्रुवतस्तान्निबोध मे । शतं वै प्रतिविन्ध्यानांशतंनागाःशतंहयाः शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः । शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः शतम् ॥७१ ततः शतञ्च पञ्चालाः शतं काशिकुशादयः । तथापरे सहस्रेद्वे ये नीपाः शशविन्दवः ॥ इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः । एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यासन्वर्तमानेऽन्तरेविभोः । तेषांतुनिधनोत्पत्तौलोकसंस्थितयःस्थिताः न शक्योविस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् । तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ॥७५। अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे । एते देवगणैः सार्द्धं शिष्टा ये तान्निबोधत चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भविष्यास्ते महात्मनः । अवशिष्टायुगाख्यास्ते ततोवैवस्वतोह्ययम् एतद्वः कीर्तितं सम्यक् समासव्यासयोगतः । पुनर्वक्तुं बहुत्वात्तु न शक्यंविस्तरेण तु उक्ता राजर्षयो येतु अतीतास्ते युगैः सह । ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः । लभते स वरान्पञ्चदुर्लभानिहलौकिकान् आयुः कीर्तिं धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते । धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः

इति श्रीमत्स्यपुराणे कलौ भाविनृपान्वयकीर्तनफलवर्णनं नाम
द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

षोड़शमहादानानांवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्द्धनञ्चाभिरक्षणम् । सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥१॥
कृतकृत्योभवेत्केन मनस्वी धनवान् बुधः । महादानेन दत्तेन तन्नो विस्तरतो वद ॥२॥

सूत उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानानुकीर्तनम् । दानधर्मेऽपि यन्नोक्तंविष्णुनाप्रभविष्णुना
तदहं सम्प्रक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्ननाशनम् ॥ ४ ॥
यत्तत् षोड़शधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले । पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥५॥
पूजितं देवताभिश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । आद्यन्तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञकम् ॥
हिरण्यगर्भदानञ्च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् । कल्पपादपदानञ्च गोसहस्रञ्च पञ्चमम् ॥ ७ ॥
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च । हिरण्याश्वरथस्तद्वत् हेमहस्तिरथस्तथा ॥८॥
पञ्चलाङ्गलकं तद्वद् धरादानं तथैव च । द्वादशं विश्वचक्रन्तु ततः कल्पलतात्मकम् ॥६॥
सप्तसागरदानञ्च रत्नधेनुस्तथैव च । महाभूतघटस्तद्वत् षोड़शं परिकीर्तितम् ॥ १० ॥
सर्वाण्येतानि कृतवान् पुरा शम्बरसूदनः । वासुदेवस्तु भगवान् अम्बरीषोऽथ भार्गवः
कार्तवीर्य्यार्जुनोनाम प्रह्लादः पृथुरेव च । कुर्युरन्येमहीपालाः केचिच्च भरतादयः ॥१२॥
यस्माद्विघ्नसहस्रेण महादानानि सर्वदा । रक्षन्तेदेवताः सर्वा एकैकमपि भूतले ॥१३॥
एषामन्यतमं कुर्य्याद्वासुदेव प्रसादतः । न शक्यमन्यथा कर्तुमपि शक्रेण भूतले ॥१४॥
तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ । महादानमखं कुर्य्याद्विप्रैश्चैवानुमोदितः ॥
एतदेवाह मनवे परिपृष्टो जनार्दनः । यथावदनुवक्ष्यामि श्रृणुध्वमृषिसत्तमाः ! ॥१६॥

मनुरुवाच ।

महादानानि यानीह पवित्राणि शुभानि च । रहस्यानि प्रदेयानि तानि मे कथयाच्युत॥

मत्स्य उवाच ।

यानि नोक्तानि गुह्यानि महादानानि षोड़श । तानि ते कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः
तुलापुरुषयागोऽयं येषामादौ विधीयते । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥१६॥
युगादिषु परागेषु तथा मन्वन्तरादिषु । सङ्क्रान्तौ तौवैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च
सितपञ्चदशीपर्वं द्वादशीष्वष्टकासु च । यज्ञोत्सवविवाहेषुदुः स्वप्नाद्भुतदर्शने ॥२१॥
द्रव्यब्राह्मणलाभे वा श्रद्धा वा यत्र जायते । तीर्थे वायतने गोष्ठे कूपारामसरित्सु च
गृहे वायतने वापि तडागे रुचिरे तथा । महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा ॥२३
अनित्यं जीवितंयस्मात् वसुचातीव चञ्चलम् । केशेष्वेवगृहीतः सन्मृत्युनाधर्ममाचरेत्
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । षोड़शारत्निमात्रन्तु दशद्वादशवाकरान्
मण्डपं कारयेद्विद्वान् चतुर्भद्रासनं वुधः । सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्येपञ्चकरा तथा ॥२६

तन्मध्ये तोरणं कुर्य्यात् सारदारुमयं बुधः ।
कुर्य्यात् कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥ २७ ॥
समेखलायोनियुतानि कुर्यात् सम्पूर्णकुम्भानि सहासनानि ।
सुताम्रपात्रद्वयसंयुतानि सयज्ञपात्राणि सुविष्टराणि ॥ २८ ॥
हस्तप्रमाणानि तिलाज्यधूपपुष्पोपहाराणि सुशोभनानि ।
पूर्वोत्तरे हस्तमिताऽथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय ॥ २९ ॥
अत्रार्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां तत्रैव कार्य्यं फलमाल्यवस्त्रैः ।
लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात् ॥३० ॥
द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि चत्वार्य्यपि क्षीरवनस्पतीनाम् ।
द्वारेषु कुम्भद्वयमत्रकार्य्यं स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम् ॥ ३१ ॥
शालेङ्गुदीचन्दनदेवदारुश्रीपर्णिबिल्वप्रियकाञ्चनोत्थम् ।
स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितञ्च ॥ ३२ ॥
तदन्तरं हस्तचतुष्टयं स्यादथोदरङ्गश्च तदङ्गमेव ।
समानजातिश्च तुलावलम्ब्या हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता ॥ ३३ ॥

दैर्घ्येण सा हस्तचतुष्टयं स्यात् पृथुत्वमस्यास्तु दशांगुलानि ।
सुवर्णपट्टाभरणा तु कार्य्या सा लोहपाशद्वयशृङ्खलाभिः ॥३४॥
युता सुवर्णेन तु रत्नमाला विभूषितामाल्यविलेपनाभ्याम् ।
चक्रं लिखेद्वारिजगर्भयुक्तं नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णम् ॥ ३५ ॥
विमानकस्योपरि पञ्चवर्णं संस्थापयेत् पुष्पफलोपशोभम् ।
अथर्त्विजो वेदविदश्च कार्य्याः सुरूपवेशान्वयशीलयुक्ताः ॥ ३६ ॥
विधानदक्षाः पटवोऽनुकूला ये चार्य्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः ।
गुरुश्च वेदान्तविदार्य्यवंश समुद्भवः शीलकुलाभिरूपः ॥ ३७ ॥
पुराणशास्त्राभिरतोऽतिदक्षः प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः ।
सिताम्बरः कुण्डलहेमसूत्रकेयूरकण्ठाभरणाभिरामः ॥ ३८ ॥
पूर्वेण ऋग्वेदविदावथास्तां यजुर्विदौ दक्षिणतश्च शस्तौ ।
स्थाप्यौ द्विजौ सामविदौ तु पश्चादाथर्वणावुत्तरतस्तु कार्यौ ॥ ३९ ॥
विनायकादिग्रहलोकपालवस्वष्टकादित्यमरुद्गणानाम् ।
ब्रह्माच्युतेशार्कवनस्पतीनां स्वमन्त्रतो होमचतुष्टयं स्यात् ॥ ४० ॥
जप्यानि सूक्तानि तथैव चैषामनुक्रमेणापि यथा स्वरूपम् ।
होमावसाने कृततूर्य्यनादो गुरुर्गृहीत्वा बलिपुष्पधूपम् ।
आवाहयेल्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ॥ ४१ ॥
एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरोऽमरेशः ।
संवीज्यमानोऽप्सरसाङ्गणेन रक्षाध्वरन्नो भगवन्नमस्ते ॥ ४२ ॥
एह्येहि सर्वामरहव्यवाह ! मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्टः ।
तेजस्विता लोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं रक्ष कवे ! नमस्ते ॥ ४३ ॥
एह्येहि वैवस्वत धर्मराज ! सर्वामरैरर्चितदिव्यमूर्ते ! ।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश ! शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥४४॥
एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं सर्वैस्तु वेतालपिशाचसङ्घैः ।

ममाध्वरं पाहि शुभादिनाथ ! लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥ ४५ ॥
एह्येहि यादोगणवारिधीनाङ्गणेन पर्जन्यमहाप्सरोभिः ।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान ! पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥ ४६ ॥
एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः महसिद्धसङ्घैः ।
प्राणाधिपः कालकवेः सहायः गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ४७ ॥
एह्येहि यज्ञेश्वर ! यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ४८ ॥
एह्येहि विश्वेश्वर ! नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।
लोकेशयज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ४९ ॥
एह्येहि पातालधराधरेन्द्र ! नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ! ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसार्द्धमनन्त ! रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥ ५० ॥
एह्येहि विश्वाधिपते ! मुनीन्द्र ! लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।
सर्वस्य धातास्यमितप्रभाव विशाध्वरन्नो भगवन्नमस्ते ॥ ५१ ॥

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणिचराणिच। ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षांकुर्वन्तुतानिमे
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवोगावो देवमातर एव च ॥ ५३ ॥
सर्वे ममाध्वरे रक्षांप्रकुर्वन्तु मुदान्विताः । इत्यावाह्य सुरानद्द्यादृत्विग्भ्योहेमभूषणम्॥
कुण्डलानिच हैमानि सूत्राणि कटकानिच । अंगुलीयपवित्राणि वासांसिशयनानिच ॥
द्विगुणं गुरवे दद्यादुभूषणाच्छादनानिच । जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाःसर्वतोदिशम्
तत्रोषितास्तु ते सर्वे कृत्वैवमधिवासनम् । आदावन्तेच मध्येचकुर्य्याद्ब्राह्मणवाचनम्
ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥५८॥
शुक्लमाल्याम्बरोभूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत् । नमस्तेसर्वदेवानांशक्तिस्त्वंसत्यमाश्रिता
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना। एकतः सर्वसत्यानितथानृतशतानिच ॥
धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगद्धिते। त्वं तुले! सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तुते।योऽसौतत्वाधिपोदेवःपुरुषःपञ्चविंशकः॥

स एकोऽधिष्ठितो देवि! त्वयि तस्मान्नमोनमः। नमोनमस्ते गोविन्द! तुलापुरुषसंज्ञक!
त्वं हरे! तारयस्वास्मान्नस्मात् संसारकर्दमात्।
पुण्यकालं समासाद्य कृत्वैवमधिवासनम्॥ ६४॥
पुनः प्रदक्षिणां कृत्वा तुलामारोहयेद् बुधः।
स खड्गचर्मकवचः सर्वाभरणभूषितः॥ ६५॥
धर्मराजमथादाय हैमं सूर्य्येण संयुतम्। कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन् हरेर्मुखम्।
ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः। समादभ्यधिकं यावत् काञ्चनं चातिनिर्मलम्
पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वरः। क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत्॥
नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते! सनातनि!।
पितामहेन देवि! त्वं निर्मिता परमेष्ठिना॥ ६९॥
त्वया धृतं जगत्सर्वं सहस्थावरजङ्गमम्। सर्वभूतात्मभूतस्थे! नमस्ते विश्वधारिणि!
ततोऽवतीर्य्य गुरवे पूर्वमर्द्धं निवेदयेत्। ऋत्विग्भ्यो परमर्धन्तु दद्यादुदकपूर्वकम्॥७१॥
गुरवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत्। प्राप्य तेषामनुज्ञांतु तथान्येभ्योऽपिदापयेत्
दीनानाथविशिष्टादीन् पूजयेद्ब्राह्मणैः सह। नचिरं धारयेद्गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः॥
तिष्ठेद्भयावहं यस्माच्छोकव्याधिकरं नृणाम्।
शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति मानवः॥ ७४॥
अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत्। प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत्॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना। पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततोविष्णुपुरंव्रजेत्
कल्पकोटिशतं यावत्तस्मिन् लोके महीयते॥ ७६॥
कर्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजो भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः।
श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी दीप्तप्रतापजितसर्वमहीपलोकः॥ ७७॥
यो दीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके॥
यो वा शृणोति पठतीन्द्रसमानरूपः प्राप्नोति धाम सपुरन्दरदेवजुष्टम्॥७८॥
इतिश्रीमत्स्यपुराणे तुलापुरुषमहादानविधिवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हिरण्यगर्भाख्यमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यंमहापातकनाशनम् ॥

पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् । ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥

कुर्य्यादुपोषितस्तद्वल्लोकेशावाहनं बुधः । पुण्याहवाचनं कृत्वा तद्वत् कृत्वाधिवासनम्

ब्राह्मणैरानयेत्कुम्भं तपनीयमयं शुभम् । द्विसप्तत्यंगुलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत् ॥ ४ ॥

त्रिभागहीनविस्तारमाज्यक्षीराभिपूरितम् ।
दशास्त्राणि च रत्नानि दात्रीं सूचीं तथैव च ॥ ५ ॥

हेमनालं सपिठकं बहिरादित्यसंयुतम् । तथैवावरणं नाभेरुपवीतञ्च काञ्चनम् ॥ ६ ॥

पार्श्वतःस्थापयेत्तद्वत् हैमदण्डकमण्डलू । पद्माकारंपिधानंस्यात्समन्तादंगुलाधिकम्

मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागसमन्वितम् । तिलद्रोणोपरिगतं वेदिमध्ये व्यवस्थितम् ॥८॥

ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च । सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥ ९ ॥

शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ १० ॥

नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च । सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमोनमः ॥११॥

भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तवगर्भे व्यवस्थिताः ।
ब्रह्मादयस्तथा देवाः नमस्ते विश्वधारिणे ॥ १२ ॥

नमस्ते भुवनाधार ! नमस्ते भुवनाश्रय ! । नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः ॥

यतस्त्वमेव भूतात्मा भूतेभूते व्यवस्थितः । तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥

एवमामन्त्र्य तन्मध्यमाविश्यास्त उदङ्मुखः । मुष्टिभ्यां परिसंगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ

जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकम् ।
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ॥ १६ ॥

कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः। गीतमङ्गलघोषेण गुरुरुत्थापयेत्ततः॥ १७॥
जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः।
सूच्यादिकञ्च गुरवे दद्यान् मन्त्रमिमं जपेत्॥ १८॥
नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः। चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः॥१९॥
यथाहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्मा सुरोत्तम!। त्वद्गर्भसम्भवादेषदिव्यदेहो भवाम्यहम्।
चतुर्भिः कलशैर्भूयः ततस्ते द्विजपुङ्गवाः। स्नापयेयुः प्रसन्नागाः सर्वाभरणभूषिताः॥
देवस्यत्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने।
अद्य जातस्यतेऽङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम्॥ २२॥
दिव्येनानेन वपुषा चिरं जीव सुखी भव। ततो हिरण्यगर्भं तन्तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः॥
ते पूज्याः सर्वभावेन बहवो वा तदाज्ञया। तत्रोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत्॥२४
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम्। ग्रामं वा विषयं वापि यदन्यदपि सम्भवेत्॥
अनेन विधिना यस्तु पुण्येऽहनि निवेदयेत्। हिरण्यगर्भदानं स ब्रह्मलोके महीयते॥२६॥
पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरं वसेत्।
कल्पकोटिशतं यावद् ब्रह्मलोके महीयते॥ २७॥
कलि कलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसाध्यैरमरचमरमालावीज्यमानोप्सरोभिः।
पितृशतमथ बन्धून् पुत्रपौत्रान् प्रपौत्रान् अपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेक एव॥ २८॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यक् मधुरिपुरिव लोके पूज्यते सोऽपि सिद्धैः।
मतिमपि च जनानां यो ददाति प्रियार्थं विबुधपतिजनानां नायकः स्यादमोघम्॥२९॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे हिरण्यगर्भाख्यमहादानविधिवर्णनं नाम
चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

———

पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्माण्डमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्यउवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डविधिमुत्तमम् ।
यच्छ्रेष्ठं सर्वदानानां महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ २ ॥
लोकेशावाहनं कुर्य्यादधिवासनकं तथा । कुर्य्याद्विंशपलादूर्द्धमासहस्राच्च शक्तितः ॥
कलशद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः । दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षड्वेदाङ्गसमन्वितम् ॥
लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्मुखम् । शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम् ॥
वस्वादित्यमरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम् । वितस्तेरंगुलशतं यावदायामविस्तरम् ॥ ६ ॥
कौशेयवस्त्रसम्वीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत् ।
तथाष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् ॥ ७ ॥
पूर्वेणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे । प्रकृतिं दक्षिणे देशे सङ्कर्षणमतःपरम् ॥ ८ ॥
पश्चिमे चतुरो वेदाननिरुद्धमतःपरम् । अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतःपरम् ॥ ९ ॥
समन्ताद्‌ गुड़पीठस्थानर्चयेत् काञ्चनान् बुधः ।
स्थापयेद्वस्त्रसम्वीतान् पूर्णकुम्भान् दशैव तु ॥ १० ॥
दशैव धेनवो देयाः सहैमाम्बरदोहनाः ।
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः । भक्ष्यभोज्यान्नदीपेक्षुफलमाल्यानुलेपनैः ॥ ११ ॥
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वाथ प्रदक्षिणम् ॥
नमोऽस्तु विश्वेश्वर ! विश्वधाम ! जगत्सवित्रे भगवन्नमस्ते ।
सप्तर्षिलोकामरभूतलेश ! गर्भेण सार्धं वितराभिरक्षाम् ॥ १२ ॥

ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणाम् ।
त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदोषः प्रलयं व्रजन्तु ॥ १४ ॥
एवं प्रणम्यामरविश्वगर्भं दद्याद् द्विजेभ्यो दशधा विभज्य ।
भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्य समं भजेच्छेषमनुक्रमेण ॥ १५ ॥
स्वल्पे च होमं गुरुरेक एव कुर्य्यादथैकाग्निविधानयुक्त्या ।
स एव सम्पूज्यतमोऽल्पवित्ते यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥ १६ ॥
इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्य्याद् ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानम् ।
निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुर्मुरारेरानन्दकृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः ॥ १७ ॥
सन्तारयेत् पितृपितामहपुत्रपौत्रबन्धुप्रियातिथिकलत्रशताष्टकं सः ।
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकौघमानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषम् ॥ १८ ॥
इति पठति शृणोति वा य एतत् सुरभवनेषु गृहेषु धार्मिकाणाम् ।
मतिमपि च ददाति मोदतेऽसावमरपतेर्भवने सहाप्सरोभिः ॥ १९ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे ब्रह्माण्डमहादानविधिवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कल्पपादपमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

कल्पपादपदानाख्यमतःपरमनुत्तमम् । महादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् । पुण्याहवाचनं कृत्वा लोकेशावाहनं तथा ॥२॥
ऋत्विग् मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
काञ्चनं कारयेत् वृक्षं नानाफलसमन्वितम् ॥ ३ ॥
नानाविहगवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत् । शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रं प्रकल्पयेत्

अर्धक्लृप्तसुवर्णस्य कारयेत्कल्पपादपम् । गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च सितवस्त्रयुगान्वितम्
ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम् । कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत् ॥
सन्तानं पूर्वतस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् । मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सार्धं घृतोपरि ॥
पश्चिमे पारिजातन्तु सावित्र्या सह जीरके । सुरभीसंयुतं तद्वत्तिलेषु हरिचन्दनम् ॥८॥

तुरीयांशेन कुर्वीत सौम्येन फलसंयुतम् ।
कौशेयवस्त्रसम्वीतानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ॥ ६ ॥

तथाष्टौ पूर्णकलशान् पादुकासनभाजनम् । दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम् ॥१०
फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्टात् वितानकम् । तथाष्टादशधान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत्
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥
नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थं प्रदायिने । विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये

यस्मात् त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्दिवाकरः ।
मूर्तोऽमूर्त परं बीजमतः पाहि सनातन ! ॥ १४ ॥

त्वमेवामृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः । सन्तानाद्यैरुपेतास्मान् पाहि संसारसागरात्
एवमामन्त्र्य तं दद्यात्गुरवेकल्पपादपम् । चतुर्भ्यश्चाथऋत्विग्भ्यःसन्तानादीन्प्रकल्पयेत्

स्वल्पे त्वेकाग्निवत् कुर्य्यात् गुरवे चाभिपूजनम् ।
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत न च विस्मयवान् भवेत् ॥ १७ ॥

अनेन विधिना यस्तु महादानं निवेदयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तःसोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥
अप्सरोभिःपरिवृतःसिद्धचारणकिन्नरैः। भूतान् भाव्यांश्चमनुजांस्तारयेत् गोत्रसंयुतान्॥
स्तूयमानो दिवः पृष्ठे पितृपुत्रप्रपौत्रकान् । विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥
दिवि कल्पशतं तिष्ठेत् राजराजो भवेत्ततः । नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः ॥२०

नारायणकथासक्तो नारायणपुरं व्रजेत् ॥ २१ ॥
यो वा पठेत्सकलकल्पतरुप्रदानं यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनःस्मरेद्वा ।
सोऽपीन्द्रलोकमधिगम्य सहाप्सरोभिर्मन्वन्तरं वसति पापविमुक्तदेहः ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कल्पपादपमहादानविधिवर्णनं नाम
षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गोसहस्रप्रदानाख्य-महादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम् ॥१॥
पुण्यां तिथिं समासाद्य युगमन्वन्तरादिकीम् । पयोव्रतंत्रिरात्रंस्यादेकरात्रमथापि वा
लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत् । पुण्याहवाचनं कुर्याद्धोमः कार्यस्तथैव च ।
गोसहस्रं बहिः कुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषणम् । सुवर्णशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितम् ॥४॥
अन्तः प्रवेश्य दशकंवस्त्रमाल्यैश्च पूजयेत् । सुवर्णघण्टिकायुक्तं कांस्यदोहनकान्वितम्
सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलङ्कृतम् । कौशेयवस्त्रसम्वीतं माल्यगन्धसमन्वितम् ॥ ६ ॥
हेमरत्नमयैः शृङ्गैश्चामरैरुपशोभितम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसंयुतम् ॥ ७ ॥

गवां दशक मध्येस्यात् काञ्चनो नन्दिकेश्वरः ।
कौशेयवस्त्रसम्वीतो नानाभरणभूषितः ॥ ८ ॥

लवणद्रोणशिखरे माल्येक्षुफलसंयुतः । कुर्यात् पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः ॥ ६ ॥
शक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु । गोशतेऽपि दशांशेन सर्वमेतत्समाचरेत् ॥ १० ॥
पुण्यकालं समासाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः । सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥११
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः । नमोऽस्तु विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च
लोकाधिवासिनीभ्यश्चरोहिणीभ्योनमोनमः । गवामङ्गेषुतिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः ॥
ब्रह्मादयस्तथादेवा रोहिण्यःपान्तु मातरः । गावो मे अग्रतः सन्तुगावः पृष्ठत एव च ॥
गावः शिरसि मे नित्यं गवांमध्ये वसाम्यहम् । यस्मात्त्वं वृषरूपेण धर्म एव सनातनः
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतःपाहि सनातन ॥ इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद् गुरवे नन्दिकेश्वरम् ॥१६।
सर्वोपकरणोपेतं गोयुतञ्च विचक्षणः । ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकाद्विनिवेदयेत् ॥
गवाञ्च शतमेकैकं तदर्द्धं वाथ विंशतिम् । दश पञ्चाथ वा दद्यादन्येभ्यस्तदनुज्ञया ॥१८।

नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत् ।
बह्वयश्चैकस्य दातव्या धीमतारोग्यवृद्धये ॥ १९ ॥

पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः । श्रावयेच्छृणुयाद्वापि महादानानुकीर्तनम् ॥२०
तद्दिने ब्रह्मचारी स्यात् यदीच्छेद्विपुलांश्रियम् । अनेन विधिनायस्तु गोसहस्रप्रदोभवेत्
सर्वपाप विनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥ २१ ॥

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । सर्वेषां लोकपालानां लोके संपूज्यतेऽमरैः
प्रतिमन्वन्तरं तिष्ठेत्पुत्रपौत्रसमन्वितः । सप्तलोकानतिक्रम्य ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥२३॥
शतमेकोत्तरन्तद्वत्पितॄणां तारयेद्बुधः । मातामहानां तद्वच्च पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥
यावत्कल्पशतन्तिष्ठेद्राजराजो भवेत् पुनः ॥ २४ ॥

अश्वमेधशतं कुर्याच्छिवध्यानपरायणः । वैष्णवं योगमास्थाय ततो मुच्येत बन्धनात्
पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्रप्रदं सुतम् । अपिस्यात्स कुलेऽस्माकं पुत्रो दौहित्रएव वा
गोसहस्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्धरिष्यति ॥ २६ ॥

तस्य कर्मकरो वा स्याद्पिद्रष्टातथैव च । संसारसागरादस्माद्योऽस्मान्सन्तारयिष्यति
इति पठति य एतत् गोसहस्रप्रदानं सुरभुवनमुपेयात् संस्मरेद्वाथ पश्येत् ।
अनुभवति मुदं वा मुच्यमानो निकामं प्रहतकलुषदेहःसोऽपि यातीन्द्रलोकम् ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे गोसहस्राख्य महादानविधिवर्णनं नाम
सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कामधेनुमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परम् । सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम् ॥
लोकेशावाहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम् ।

तुलापुरुषवत्कुर्यात् कुण्डमण्डपवेदिकम् ॥ २ ॥
स्वल्पेत्वेकाग्निवत्कुर्यात् गुरुरेकः समाहितः । काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुवत्सञ्चकारयेत्
उत्तमा पलसाहस्री तदर्धेन तु मध्यमा । कनीयसी तदर्धेन कामधेनुः प्रकीर्तिताः ॥४॥
शक्तितस्त्रिपलादूर्द्ध्वमशक्तोऽपीह कारयेत् । वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्यगुडप्रस्थसमन्वितम्
न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलङ्कृताम् । कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम्
तथाष्टादश धान्यानि समन्तात्परिकल्पयेत् । इक्षुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफल समन्वितम् ।
भाजनञ्चासनं तद्वत्ताम्रदोहनकन्तथा ॥ ७ ॥
कौशेयवस्त्रद्वयसंयुताङ्गां दीपातपत्राभरणाभिरामाम् ।
सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां सुवर्णशृङ्गीं परिरूप्यपादाम् ॥ ८ ॥
रसैश्च सर्वैः परितोऽभिजुष्टां हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः ।
अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्करादिभिर्वितानकञ्चोपरि पञ्चवर्णम् ॥ ९ ॥
स्नातस्ततोमङ्गलवेदघोषैः प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।
आवाहयेत्तां गुरुणोक्तमन्त्रैर्द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः ॥ १० ॥
त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमङ्गभूता विश्वेश्वरित्रिपथगोदधिपर्वतानाम् ।
त्वद्दानशस्त्रशकलीकृतपापकौघः प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव परां नमामि ॥
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भुवि दुःखमुपैति मर्त्यः
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं त्वां कामधेनुमिति देवगणा वदन्ति ॥
आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।
प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टं कन्यागणैः परिवृतः [पदमिन्दुमौलेः ॥१३॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे कामधेनुमहादानविधिवर्णनं नामा-
ष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

———

ऊनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हिरण्याश्वमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम् । यस्य प्रदानाद्भुवने चानन्त्यं फलमश्नुते
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत्
ऋत्विक्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
स्वल्पे त्वेकाग्निवत् कुर्याद्धेमवाजिमखम्बुधः ॥ ३ ॥
स्थापयेद्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि । कौशेयवस्त्रसम्वीतं कारयेत्हेमवाजिनम् ॥
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रपलाद् वुधः । पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनैः ॥५॥
पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम् । शय्यां सोपस्करां तद्वत्हेममार्तण्डसंयुताम्
ततः सर्वौषधीस्नानस्नापितो द्विजपुङ्गवैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ ७ ॥
नमस्ते सर्वदेवेश ! वेदाहरणलम्पट ! । वाजिरूपेण मामस्मात्पाहि संसारसागरात् ॥
त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्कर !। यस्माद्भासयसेलोकानतः पाहि सनातन!
एवमुच्चार्य गुरवे तमश्वं विनिवेदयेत् ।
दत्वा पापक्षयाद्भानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम् ॥ १० ॥
गोभिर्विभवतः सर्वान्नृत्विजश्चापि पूजयेत् । सर्वधान्योपकरणं गुरवे विनिवेदयेत् ॥
सर्वं शय्यादिकं दत्वा भुञ्जीतातैलमेव हि ।
पुराणश्रवणं तद्वत् कारयेद् भोजनादिकम् ॥ १२ ॥
इमं हिरण्याश्वविधिं करोति यः संपूज्यमानो दिवि देवसङ्घैः ।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन् ॥ १३ ॥
इति पठति य एतद्धेमवाजिप्रदानं सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वमेधेन युक्तः ।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयाति त्रिदशपतिबधूभिःपूज्यते योऽभिपश्येत् ॥ १४॥
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद्वा हेमाश्वदानमभिनन्दयतीह लोके ।
सोऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः स्थानं पुरन्दरमहेश्वरदेवजुष्टम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे हिरण्याश्वमहादानविधिवर्णनंनामोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वरथाख्यमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम् ॥१॥

पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥ २ ॥

ऋत्विक्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा काञ्चनं स्थापयेद्रथम् ॥ ३ ॥

अष्टाश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूबरम् । ऐन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम् ॥
लोकपालाष्टकं तद्वत्पद्मरागदलान्वितम् । चतुरःपूर्णकलशान् धान्यान्यष्टादशैव तु ॥
कौशेयवस्त्रसंयुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम् । माल्येक्षुफलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् ॥ ६ ॥

यो यद्भक्तः पुमान् कुर्यात् स तन्नाम्नाधिवासनम् ।
छत्रचामरकौशेयवस्त्रोपानहपादुकम् ॥ ७ ॥

गोभिर्विभवतःसार्द्धं दद्याच्च शयनादिकम् । आभारात्त्रिपलादूर्ध्वं शक्तितःकारयेद्बुधः
अश्वाष्टकेन संयुक्तं चतुर्भिरथ वाजिभिः । द्वाभ्यामपियुतं दद्याद्धेमसिंहध्वजान्वितम् ॥

चक्ररक्षावुभौ तस्य तुरगस्थौ यथाश्विनौ ।
पुण्यकालमथावाप्य पूर्ववत्स्नापितौ द्विजैः ॥ १० ॥

त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः । शुक्लमाल्याम्बरो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय ।
धाम्नामधीशाय दिवाकराय पापौघदावानल ! देहि शान्तिम् ॥ १२ ॥

वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां त्वमेव धाता परमं निधानम् ।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मैकतानत्वमघौघनाशात् ॥१३॥

इति तुरगरथप्रदानमेकं भवभयसूदनमत्र यः करोति ।
स कलुषपटलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः ॥ १४ ॥
देदीप्यमानवपुषां विजितप्रभावमाक्रम्य मण्डलमखण्डितचण्डभानोः ।
सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमानवक्त्राम्बुजोऽम्बुजभवेन चिरं सहास्ते ॥१५॥
इति पठति शृणोति वा य इत्थं कनकतुरगरथप्रदानमस्मिन् ।
न स नरकपुरं व्रजेत् कदाचिन्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणेऽश्वरथाख्यमहादानविधिवर्णनं नामा-
शीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हेमहस्तिमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम् । यस्य प्रदानाद्भुवनं वैष्णवं याति मानवः ॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् । विप्रवाचनकं कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ॥२॥
ऋत्विक्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
अत्राप्युपोषितस्तद्वद्ब्राह्मणैः सहभोजनम् । कुर्यात्पुष्परथाकारं काञ्चनंमणिमण्डितम्
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् । कृष्णाजिने तिलद्रोणंकृत्वासंस्थापयेद्रथम्
लोकपालाष्टकोपेतं ब्रह्मार्कशिवसंयुतम् । मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् ॥
तथाष्टादश धान्यानि भाजनासनचन्दनैः । दीपिकोपानहच्छत्रदर्पणं पादुकान्वितम् ॥
ध्वजे तु गरुड़ं कुर्यात् कूवराग्रेविनायकम् । नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम् ॥
कौशेयं पञ्चवर्णन्तु अम्लानकुसुमान्वितम् । चतुर्भिः कलशैः सार्द्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम्
चतुर्भि र्हेममातङ्गै र्मुक्तादामविभूषितैः । स्वरूपतः करिस्याश्च युक्तं कृत्वा निवेदयेत् ॥

कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमाभारादपि शक्तितः। तथा मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः॥
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्॥

नमो नमः शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञैस्तेजोमयस्यन्दन पाहि तस्मात्॥ १२॥
यत्तत्पदं परमगुह्यतमं मुरारेरानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तमन्तः।
योगैकमानसदृशो मुनयःसमाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथाधिरूढ़!॥१३॥
यस्मात्त्वमेव भवसागरसंप्लुतानामानन्दभाण्डभृतमध्वगपारयानम्।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादञ्चामीकरेभरथ! माधव सम्प्रदानात्॥ १४॥
इत्थं प्रणम्य कनकेभरथप्रदानं यः कारयेत् सकलपापविमुक्तदेहः।
विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टं प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः॥ १५॥
कृतदुरितवितानप्रज्वलद्वह्निजालव्यतिकरकृतदेहोद्वेगभाजोऽपि बन्धून्।
नयति स पितृपुत्रान् बान्धवानप्यशेषान् कृतगजरथदानाच्छाश्वतं सद्म विष्णोः॥१६॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे हेमहस्तिमहादानविधिवर्णनं
नामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चलाङ्गलकमहादानविधिवर्णनम्।

मत्स्य उवाच।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। पञ्चलांगलकं नाम महापातकनाशनम्॥१॥
पुण्यां तिथिमथासाद्य युगादि ग्रहणादिकाम्।
भूमिदानं नरो दद्यात् पञ्चलाङ्गलकान्वितम्॥ २॥
खर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनम्। निवर्तनशतं वापि तदर्धं वापि शक्तितः

सारदारुमयान् कृत्वा हलान्पञ्च विचक्षणः । सर्वोपकरणैर्युक्तानन्यान् पञ्च च काञ्चनान्
कुर्य्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि ॥ ४ ॥
वृषान् लक्षणसंयुक्तान् दशचैव धुरन्धरान् । सुवर्णशृङ्गाभरणान् मुक्तालांगूलभूषणान् ॥
रूप्यपादाग्रतिलकान् रक्तकौशेयभूषणान् । स्रग्दामचन्दनयुतान् शालायामधिवासयेत्
धरण्यादित्यरुद्रेभ्यःपायसं निर्वपेच्चरुम् । एकस्मिन्नेव कुण्डे तु गुरुस्तेभ्यो निवेदयेत्
पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलास्तथा ।
तुलापुरुषवत्कुर्य्याल्लोकेशावाहनं बुधः ॥ ८ ॥
ततो मङ्गलशब्देन शुक्लमाल्याम्बरो बुधः । आहूय द्विजदाम्पत्यं हेमसूत्रांगुलीयकैः ॥ ९ ॥
कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चाभिपूजयेत् । शय्यां सोपस्करां दद्याद्धेनुमेकां पयस्विनीम् ॥
तथाष्टादशधान्यानि समन्तादधिवासयेत् ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥ ११ ॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्वं निवेदयेत् ।
यस्माद्देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च ॥ १२ ॥
धुरन्धराङ्गे तिष्ठन्ति तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे ।
यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ १३ ॥
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे एव दृढा भवेत् । दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् ॥
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः । मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः ।
विधिनानेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः ॥१५ ॥
तदर्द्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम् ।
भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥
यावन्ति लाङ्गलकमार्गमुखानि भूमेर्भासांपतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि ।
तावन्ति शङ्करपुरे स समा हि तिष्ठेत् भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥
गन्धर्वकिन्नरसुरासुरसिद्धसङ्घैराधूतचामरमुपेत्य महद्विमानम् ।
संपूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः शम्भोःपदं व्रजति चामरनायकः सन् ॥१८॥

इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति गोभूमिलाङ्गलधुरन्धरसम्प्रदानात् ।
तस्मादघौघपटलक्षयकारिभूमे र्दानं विधेयमिति भूतिभवोद्भवाय ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पञ्चलाङ्गलक-महादानविधिवर्णनं नाम
द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

हेमधराख्यमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि धरादानमनुत्तमम् । पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम् ॥१॥
कारयेत् पृथिवीं हैमीं जम्बुद्वीपानुकारिणीम् । मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम्
लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम् । नदीनदसमोपेतामन्ते सागरवेष्टिताम् ॥ ३ ॥
महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुताम् । हेम्नः पलसहस्त्रेण तदर्द्धेनाथ शक्तितः ॥४॥
शतत्रयेण वा कुर्यात् द्विशतेन शतेन वा । कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि विचक्षणः ॥

तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशवाहनं बुधः ।
ऋत्विक्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ ६ ॥
वेद्यां कृष्णाजिनं कृत्वा तिलानामुपरि न्यसेत् ।
तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥ ७ ॥
तथाष्टौ पूर्णकलशान् समन्तात् परिकल्पयेत् ।
वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च ॥ ८ ॥

तथांशुकानि रम्याणि श्रीखण्डशकलानिच । इत्येवं कारयित्वा तामधिवासनपूर्वकम्
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लाभरणभूषितः । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१०॥
पुण्यं कालमथासाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः ॥११॥
धात्री च सर्वभूतानामतःपाहि वसुन्धरे ॥ [illegible] वसु धारयसे [illegible]तीव निर्मलम्

वसुन्धरा ततो जाता तस्मात्पाहि भयादलम् ।
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले ! ॥ १३ ॥

अनन्तायै नमस्तस्मात्पाहिसंसारकर्दमात् । त्वमेवलक्ष्मीर्गोविन्दे शिवेगौरीतिचास्थिता
गायत्रीब्रह्मणःपार्श्वे ज्योत्स्नाचन्द्रेरवौप्रभा । बुद्धिर्बृहस्पतौख्याता मेधामुनिषुसंस्थिता

विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात् ततो विश्वम्भरा स्मृता ।
धृतिःस्थितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा ॥ १६ ॥

एताभिर्मूर्तिभिःपाहिदेवि ! संसारसागरात् । एवमुच्चार्य तांदेवीं ब्राह्मणेभ्योनिवेदयेत्
धरार्द्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत् । शेषञ्चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत्
अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्धेमधरां शुभाम् । पुण्यकालेतु संप्राप्ते सपदं याति वैष्णवम्
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणी जालमालिना । नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथावसेत् ॥

पितॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम् ॥ २० ॥

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गादपि कलुषवितानैर्मुक्तदेहः समन्तात् ।
दिवममरवधूभिर्याति संप्रार्थ्यमानो पदममरसहस्रैः सेवितं चन्द्रमौलेः ॥ २१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे हेमधराख्यमहादानविधिवर्णनं नाम
त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विश्वचक्राख्यमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । विश्वचक्रमितिख्यातं महापातकनाशनम् ॥
तपनीयस्य शुद्धस्य विषुवादिषु कारयेत् । श्रेष्ठंपलसहस्रेण तदर्द्धेन तु मध्यमम् ॥ २ ॥
तस्यार्द्धेन कनिष्ठं स्यात् विश्वचक्रमुदाहृतम् । अन्यर्द्विशत्पलादूर्ध्वमशक्तोऽपिनिवेदयेत्
षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम् । नाभिपद्मे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् ॥
शङ्खचक्रेऽस्यपार्श्वे तु देव्यष्टक समावृतम् । द्वितीयावरणे तद्वत पूर्वतो जलशायिनम् ॥

अत्रिर्भृगुर्वशिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च। मत्स्यःकूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥
रामोरामश्च कृष्णश्च बुद्धःकल्कीतिच क्रमात्। तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता
चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च। पञ्चमे पञ्चभूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥ ८ ॥
लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्नागङ्गास्तथैवच। सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गलानिच कारयेत्
अन्तरान्तरतोदेवान् विन्यसेदष्टमे पुनः। तुलापुरुषवच्छेषं समन्तात् परिकल्पयेत् ॥१०॥
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्। विश्वचक्रं ततःकुर्यात्कृष्णाजिनतिलोपरि
तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान्। पूर्णकुम्भाष्टकञ्चैव वस्त्राणि विविधानिच
माल्येक्षुफलरत्नानि वितानञ्चापि कारयेत्। ततोमङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो गृही
होमाधिवासनान्ते वै गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१३॥
इममुच्चारयेन्मन्त्रन्त्रिः कृत्वातु प्रदक्षिणम्। नमोविश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः
परमानन्दरूपी त्वं पाहिनः पापकर्दमात्। तेजोमयमिदं यस्मात् सदापश्यन्ति योगिनः
हृदि तत्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम्। वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः
अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह। विश्वचक्रमिदंयस्मात् सर्वपापहरं परम्
आयुधञ्चापि वासश्च भवादुद्धर मामतः। इत्यामन्त्र्य च यो दद्याद्विश्वचक्रं विमत्सरः
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते। वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुः सनातनः ॥
सेव्यतेऽप्सरसांसङ्घैस्तिष्ठेत्कल्पशतत्रयम्। प्रणमेद्द्वादश कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने
तस्यायुर्वर्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत् ॥२०॥
इति सकलजगत्सुराधिवासं वितरति यस्तपनीयषोडशारम्।
हरिभवनमुपागतःससिद्धैश्चिरमभिगम्य नमस्यते शिरोभिः ॥ २१ ॥
शुभदर्शनतां प्रयाति शत्रोर्मदनसुदर्शनताञ्च कामिनीभ्यः।
स सुदर्शनकेशवानुरूपः कनकसुदर्शनदानदग्धपापः ॥ २२ ॥
कृतगुरुदुरितानि षोडशारप्रवितरणे प्रवराकृतिर्मुरारेः।
अभिभवति भवोद्भवन्ति भीत्या भवमभितो भुवने भयानि भूयः ॥ २३ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे विश्वचक्राख्यमहादानविधिवर्णनं नाम
चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः।

पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

महाकल्पलताख्यमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । महाकल्पलता नाम महापातकनाशनम् ॥
पुण्यांतिथिमथासाद्यकृत्वाब्राह्मणवाचनम् । ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्
तुलापुरुषवत् कुर्यात् लोकेशावाहनं बुधः । चामीकरमयीः कुर्याद्दशकल्पलताः समाः ॥
नानापुष्पफलोपेता नानांशुकविभूषिताः । विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः ॥
हारानादित्सुभिःसिद्धैःफलानिचविहङ्गमैः । लोकपालानुकारिण्यः कर्तव्यास्तासु देवताः
ब्राह्मीमनन्तशक्तिञ्च लवणस्योपरि न्यस्येत् । अधस्ताल्लतयोर्मध्ये पद्मशङ्खकरे शुभे ॥६॥
इभासनस्था तु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा । रजनी संस्थिताग्नायी श्रुवपाणिरथानले ॥
याम्ये च महिषारूढा गदिनी तण्डुलोपरि । घृते तु नैर्ऋतीस्थाप्या सखड्गा दक्षिणापरे
वारुणे वारुणी क्षीरे झषस्था नागपाशिनी । पताकिनी च वायव्ये मृगस्था शर्करोपरि ॥

सौम्या तिलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता ।
माहेश्वरी वृषारूढा नवनीते त्रिशूलिनी ॥ १० ॥

मौलिन्योवरदास्तद्वत्कर्तव्याबालकान्विताः । शक्त्यापञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रात्प्रकल्पयेत्॥
सर्वासामुपरि स्थाप्यं पञ्चवर्णं वितानकम् । धेनवो दशकुम्भाश्च वस्त्रयुग्मानि चैव हि
मध्यमे द्वे तु गुरवे ऋत्विग्भ्योऽन्यास्तथैवच । ततोमङ्गलशब्देन स्नातःशुक्लाम्बरो बुधः

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालिनीभ्यः ।
आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥ १४ ॥

इति सकलदिगङ्गनाप्रदानं भवभयसूदनकारि यः करोति ।
अभिमतफलदे स नागलोके वसति पितामहवत्सराणि त्रिंशत् ॥ १५ ॥
पितृशतमथ तारयेद्भवाब्धेर्भवदुरितौघविघातशुद्धदेहः ।

सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः परिवृतमम्बुजसंसदाभिवन्द्यः ॥ १६ ॥
इति विधानमिदं दिगङ्गनानां कनककल्पलताविनिवेदकम् ।
पठति यः स्मरतीह तथेक्षते स पदमेति पुरन्दरसेवितम् ॥ १७ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे महाकल्पलताख्यमहादानविधिवर्णनं नाम
पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

षड्शीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सप्तसागरमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् । सप्तसागरकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । तुलापुरुषवत्कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः ॥२॥
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
कारयेत्सप्तकुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ॥ ३ ॥
प्रादेशमात्राणि तथारत्निमात्राणि वै पुनः । कुर्यात्सप्तपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ॥
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि । प्रथमं पूरयेत्कुण्डं लवणेन विचक्षणः
द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः । चतुर्थन्तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च ॥ ६ ॥
षष्ठं शर्करया तद्वत् सप्तमं तीर्थवारिणा । स्थापयेल्लवणस्थं तु ब्रह्माणं काञ्चनं शुभम्
केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरम् । भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये निशाधिपम्
शर्करायांन्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम् । सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः
तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत् । ततो वारुणहोमान्ते स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥१०॥
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः ॥
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः ॥ ११ ॥
क्षीरोदकाज्यदधिमाधुरलावणेक्षुसारामृतेन भुवनत्रयजीवसङ्घान् ।

आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्तस्तस्मान्ममाप्यघविघातमलं दिशन्तु ॥१२॥
यस्मात्समस्तभुवनेषु भवन्त एव तीर्थामरासुरसुबद्धमणिप्रदानम् ।
पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय लोकस्य बिभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः ॥१३॥
इति ददाति रसामृतसंयुतान् शुचिरविस्मयवानिह सागरान् ।
कमलकाञ्चनवर्णमयानसौ पदमुपैति हरेरमरार्चितः ॥ १४ ॥
सकलपापविधौतविराजितः पितृपितामहपुत्रकलत्रकम् ।
नरकलोकसमाकुलमप्ययं झटिति सोऽपि नयेच्छिवमन्दिरम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तसागरमहादानविधिवर्णनं नाम
षड़शीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नधेनुमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।
रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम् ॥ १ ॥
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् । लोकेशावाहनं कृत्वा ततो धेनुं प्रकल्पयेत् ॥
भूमौ कृष्णाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम् ।
धेनुं रत्नमयीं कुर्यात् सङ्कल्प्य विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥
स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीति मुखे बुधः । पुष्परागशतं तद्वद्घोणायां परिकल्पयेत् ॥
ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतंदृशोः । भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्मृतौ ॥ ५ ॥
काञ्चनानानि च शृङ्गाणिशिरोवज्रशतात्मकम् । ग्रीवायांनेत्रपटकं गोमेदकशतान्वितम्
इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतपार्श्वके। स्फाटिकैरुदरं तद्वत्सौगन्धिकशतैः कटिम् ॥ ७ ॥
खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् ।

सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दने ॥ ८ ॥

कुङ्कुमानि च रोमाणि रौप्यनाभिं च कारयेत्। गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत् ॥
तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्वसन्धिषु। कुर्याच्छर्करयाजिह्वां गोमयञ्च गुडात्मकम्
गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धे स्वरूपतः । पुच्छाग्रे चामरं दद्यात् समीपे ताम्रदोहनम्
कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः। कारयेदेवमेवन्तु चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥
तथा धान्यानि सर्वाणिपादाश्चेक्षुमयाःस्मृताः। नानाफलानिसर्वाणिपञ्चवर्णं वितानकम्
एवं विरचनंकृत्वा तद्वद्धोमाधिवासनम्। ऋत्विग्भ्योदक्षिणांदद्याद्धेनुमामन्त्रयेत्ततः ॥

गुडधेनुवदावाह्य इदञ्चोदाहरेत्ततः ॥ १४ ॥

त्वां सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति रुद्रेन्द्रसूर्यकमलासनवासुदेवाः ।
तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेहयुक्ता मां पाहि देवि ! भवसागरपीड्यमानम् ॥ १५ ॥
आमन्त्र्य चेत्यमभितः परिवृत्य भक्त्या दद्याद्द्विजाय गुरवे जलपूर्विकां ताम् ।
यः पुण्यमाप्य दिनमत्रकृतोपवासः पापैर्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः ॥ १६ ॥
इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम् ॥
सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदनसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः ॥१७॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे रत्नधेनुमहादानफलवर्णनं नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

महाभूतघटमहादानविधिवर्णनम् ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्। महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ॥ १ ॥

पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ २ ॥

तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनादिकम् । कारयेत्काञ्चनंकुम्भं महारत्नाचितं बुधः ॥
प्रादेशादंगुलशतं यावत् कुर्यात् प्रमाणतः । क्षीराज्यपूरितं तद्वत् कल्पवृक्षसमन्वितम् ॥
पद्मासनगतांस्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । लोकपालान् महेन्द्रांश्च स्वस्ववाहनमास्थितान्
वराहेणोद्धृतां तद्वत् कुर्यात् पृथ्वीं सपङ्कजाम् ॥ ५ ॥
वरुणंचासनगतं काञ्चनं मकरोपरि । हुताशनं मेषगतं वायुं कृष्णमृगासनम् ॥६ ॥
तथा कोशाधिपंकुर्यात् मूषिकस्थं विनायकम् । विन्यस्यघटमध्येतान्वेदपञ्चकसंयुतान्
ऋग्वेदस्याक्षसूत्रं स्याद्यजुर्वेदस्य पङ्कजम् । सामवेदस्य वीणास्याद्वेणुं दक्षिणतोन्यसेत्
अथर्ववेदस्यपुनःस्रुक्स्रुचौ कमलङ्करे । पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥ ९ ॥
परितःसर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम् । पादुकोपानहच्छत्रं दीपिका भूषणानि च ॥
शय्याश्च जलकुम्भांश्च पञ्चवर्णं वितानकम् । स्नात्वाधिवासनान्तेतु मन्त्रमेतमुदीरयेत्
नमो वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे । महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम ॥
यस्मान्नकिञ्चिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम् । ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्माच्छ्रीरक्षयास्तु मे
इत्युच्चार्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमाङ्गतिम् ॥
विमानेनार्कवर्णेन पितृबन्धुसमन्वितः । स्तूयमानो वरस्त्रीभिः पदमभ्येति वैष्णवम् ॥
षोड़शैतानि यःकुर्यान् महादानानि मानवः । न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते ॥
इह पठति य इत्थं वासुदेवस्य पार्श्वे ससुतपितृकलत्रः संश्रृणोतीह सम्यक्
मुररिपुभवने वै मन्दिरे वार्कलक्ष्म्या त्वमरपुरवधूभिर्मोदते सोऽपि नित्यम् ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे महाभूतघटदानवर्णनं नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

———

ऊननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कल्पानां कीर्त्तनम् ।

मनुरुउवाच ।

कल्पमानं त्वया प्रोक्तं मन्वन्तरयुगेषु च । इदानीं कल्पनामानि समासात्कथयाच्युत !

मत्स्य उवाच ।

कल्पानां कीर्तनं वक्ष्ये महापातकनाशनम् ।
यस्यानुकीर्तनादेव वेदपुण्येन युज्यते ॥ २ ॥

प्रथमंश्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः । वामदेवस्तृतीयस्तु ततोराथन्तरोऽपरः ॥
रौरवःपञ्चमःप्रोक्तः षष्ठो देव इतिस्मृतः । सप्तमोऽथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते ॥
सद्योऽथ नवमःप्रोक्त ईशानो दशमःस्मृतः । तम एकादशः प्रोक्तः तथा सारस्वतःपरः ॥
त्रयोदश उदानस्तु गारुडोऽथ चतुर्दशः । कौर्मःपञ्चदशःप्रोक्तः पौर्णमास्यामजायत ॥
षोडशो नारसिंहस्तुसमानस्तु ततोऽपरः । आग्नेयोऽष्टादशःप्रोक्तः सोमकल्पस्तथापरः
मानवोविंशतिःप्रोक्तस्तत्पुमानिति चापरः । वैकुण्ठश्चापरस्तद्वल्लक्ष्मीकल्पस्तथापरः ॥
चतुर्विंशतिमःप्रोक्तः सावित्रीकल्पसंज्ञकः । पञ्चविंशस्ततोघोरो वाराहस्तु ततोऽपरः
सप्तविंशोऽथ वैराजो गौरिकल्पस्तथापरः । माहेश्वरस्तु स प्रोक्तस्त्रिपुरोयत्रघातितः
पितृकल्पस्तथान्तेतु या कुहूर्ब्रह्मणः परा । इत्येवं ब्रह्मणोमासः सर्वपातकनाशनः ॥
आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन्यस्य विधीयते । तस्य कल्पस्यतन्नामविहितंब्रह्मणापुरा

सङ्कीर्णास्तामसाश्चैव राजसाः सात्विकास्तथा ।
रजस्तमोमयास्तद्वदेते त्रिंशदुदाहृताः ॥ १३ ॥

सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां व्युष्टिरुच्यते । अग्नेः शिवस्यमाहात्म्यंतामसेषुदिवाकरे
राजसेषुच माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणः स्मृतम् । यस्मिन्कल्पेतुयत्प्रोक्तंपुराणंब्रह्मणापुरा

तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते ।
सात्विकेष्वधिकं तद्वद्विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ १६ ॥

तथैव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परांगतिम् । ब्राह्मं पाद्ममिमं यस्तु पठेत्पर्वणिपर्वणि ॥
तस्य धर्ममतिर्ब्रह्माकरोतिविपुलां श्रियम् । यस्तु दद्यादिमान्कृत्वा हैमान्पर्वणिपर्वणि
ब्रह्मविष्णुपुरे वासं मुनिभिः पूज्यते दिवि । सर्वपाप क्षयकरं कल्पदानं यतो भवेत् ॥

मुनिरूपांस्ततः कृत्वा दद्यात्कल्पान् विचक्षणः ।
पुराणसंहिता चेयं तव भूप ! मयोदिता ॥ २० ॥

सर्वपापहरा नित्यमारोग्यश्रीफलप्रदा। ब्रह्मसंवत्सरशतादेकाहं शैवमुच्यते ॥ २१ ॥
शिववर्षशतादेकं निमेषं वैष्णवं विदुः। यदा सविष्णुर्जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ॥२२
यदा स्वपिति शान्तात्मातदा सर्वं निमीलति। इत्युक्त्वा देवदेवेशो मत्स्यरूपी जनार्दनः

पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत।
वैवस्वतो हि भगवान् विसृज्य विविधाः प्रजाः ॥ २४ ॥

स्वान्तरं पालयामास मार्तण्डकुलवर्द्धनः। यस्य मन्वन्तरञ्चैतदधुना चानुवर्तते ॥२५॥
पुण्यं पवित्रमेतद्वः कथितं मत्स्य भाषितम्। पुराणं सर्वशास्त्राणां यदेतन्मूर्ध्नि संस्थितम्
इति श्रीमत्स्यपुराणे मनुमत्स्यसंवादे कल्पवर्णनं नामोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मत्स्यपुराणान्तर्गतसम्पूर्ण विषयवर्णनम्।

सूत उवाच।

एतद्वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा। मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम्
यत्रादौ मनुसंवादो ब्रह्माण्डकथनन्तथा। सांख्यं शारीरकं प्रोक्तं चतुर्मुखमुखोद्भवम ॥
देवासुराणामुत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च। मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम् ॥ ३ ॥
मन्वन्तराणामुद्देशो वैन्यराजाभिवर्णनम्। सूर्यवैवस्वतोत्पत्ति र्बुधस्यागमनं तथा ॥४॥
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च। पितृतीर्थप्रवासश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च ॥५॥

कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा।
कार्तवीर्यस्य महात्म्यं वृष्णिवंशानुकीर्तनम् ॥ ६ ॥

भृगुशापस्तथा विष्णोर्दैत्यशापस्तथैव च। कीर्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनस्तथा ॥७
पुराणकीर्तनं तद्वत्क्रियायोगस्तथैव च। व्रतं नक्षत्रसंख्याकं मार्तण्डशयनं तथा ॥ ८ ॥
कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद्रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम्। तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च ॥
सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च। तथानन्ततृतीया तु रसकल्याणिनी तथा ॥१०॥

आर्द्रानन्दकरी तद्वद्व्रतं सारस्वतं पुनः । उपरागाभिषेकश्च सप्तमीस्नपनं पुनः ॥ ११ ॥
भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयनं तथा । अशून्यशयनं तद्वत्तथैवाङ्गारकव्रतम् ॥ १२ ॥
सप्तमी सप्तकं तद्वद्विशोक द्वादशी तथा । मेरु प्रदानं दशधा ग्रहशान्ति स्तथैव च॥१३॥
ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी । तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा ॥ १४ ॥
संक्रान्तिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशीव्रतम् । षष्ठिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः ॥
प्रयागस्य तु माहात्म्यं सर्वतीर्थानुकीर्तनम् । पैलाश्रमफलं तद्वद्द्वीपलोकानुकीर्तनम् ॥
तथान्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च । भुवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुराघोषणं तथा ॥
पितृपिण्डदमाहात्म्यं मन्वन्तरविनिर्णयम् । वज्राङ्गस्य तु संभूतिः तारकोत्पत्तिरेव च॥
तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुकीर्तनम् । पार्वतीसम्भवस्तद्वत् तथा शिवतपोधनम् ॥
अनङ्गदेहदाहस्तु रतिशोकस्तथैव च । गौरीतपोवनं तद्वद्विश्वनाथप्रसादनम् ॥ २० ॥
पावतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाहमङ्गलम् । कुमारसम्भवस्तद्वत् कुमारविजयस्तथा॥२१
तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम् । पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम् ॥२२॥
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च । प्रवरानुक्रमस्तद्वत् पितृगाथानुकीर्तनम्
ततोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च । तथा सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च ॥
यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमङ्गल्यकीर्तनम् । वामनस्य तु माहात्म्यं तथैवाथ वराहजम् ॥
क्षीरोदमथनं तद्वत् कालकूटाभिशासनम् ॥ २६ ॥
प्रासादलक्षणं तद्वन् मण्डपानान्तु लक्षणम् । पुरुवंशे तु संप्रोक्तं भविष्यद्राजवर्णनम्२७॥
तुलादानादि बहुशो महादानानुकीर्तनम् । कल्पानुकीर्तनं तद्वद् ग्रन्थानुक्रमणीं तथा ॥
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् । एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ॥२६॥
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः ।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानिभुङ्क्ते ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे ग्रन्थानुक्रमणीकथनं नाम नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

समाप्तमिदं श्रीमत्स्यमहापुराणम् ।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।